प्रकाशक
प्रसाद-परिषद्
की ओर से
वाणी-वितान
ब्रह्मनाल, बनारस-१

प्रबोधनी : २००६
मूल्य : ६)
प्रतियाँ : १५००

मुद्रक
श्रीमद्भागवत [illegible]
सुड़िया, काशी

प्रस्तुत ग्रंथावली

प्रस्तुत ग्रंथावली के संपादन में प्रत्येक पुस्तक के विभिन्न हस्तलेखों का आलोडन करके पहले यह निर्णय किया गया है कि किसमें शुद्धता एवम् प्रामाणिकता अधिक है और फिर उसे प्रधान रखकर प्रायः अन्यों से पाठांतर दिए गए हैं। पर सर्वत्र उसी का पाठ मूल में न होकर यथास्थान अन्यों के उपयुक्त पाठ लिए गए हैं। 'घनआनंद-कवित्त' और 'सुजान-हित' घनआनंद के कवित्तों के दो विभिन्न संग्रह हैं। इनमें से 'घनआनंद-कवित्त' मेरे विचार और अनुसंधान से प्राचीन है। फिर भी 'सुजान-हित' में कवित्तों के पाठ उसी (सुजान-हित) के हस्तलेखों के आधार पर रखे गए हैं। इस ग्रंथावली में 'घनआनंद-कवित्त' नहीं रखा गया है, 'सुजान-हित' ही संमिलित है। वह पृथक् प्रकाशित किया जा चुका है।

विभिन्न हस्तलेखों के संकेत '१, २, ३' या 'क, ख, ग' आदि न रखकर उनके प्राप्तिस्थानों के संक्षेप से व्यक्त किए गए हैं। जैसे 'वृंदावन' के लिए 'वृंदा०', 'रामनगर' के लिए 'राम' आदि। ऐसा करने में लाघव तो नहीं है, पर भ्रम की संभावना कम है। पाठांतरों के लिए मूल में अंकों की योजना भी इसी से नहीं की गई। अंक आदि के टूट-फूट जाने से भी गड़बड़ हो सकता है। हाँ, लाघव के लिए मूल के संबंधि पाठों का पूरा उद्धरण न देकर कुछ शब्द ही दिए गए हैं, फिर शून्य लगाकर आगे पूरा पाठांतर दिया गया है। ऐसा करने में कुछ पृष्ठ बढ़ गए हैं, पर स्पष्टता अधिक है।

मूल के नीचे पहले छोटे भिन्न अक्षरों में पाठांतर हैं, जिनके लिए पद्यों की संख्या बिना कोष्ठक के दी गई है। फिर छोटे पर भिन्न अक्षरों में कठिन शब्दों के अर्थ दिए गए हैं। पद्य की संख्या बड़े कोष्ठक से घिरी है। विस्तार-भय से बहुत कठिन शब्दों के ही अर्थों की योजना की गई है। घनआनंद व्रजभाषा-प्रवीण थे, इसका पता इस ग्रंथावली से विशेष रूप से लगता है। कुछ शब्दों के दिए गए अर्थ संदिग्ध हैं। व्रजभाषा-ज्ञान के

लिए भिखारीदास ने ब्रजवास को प्रधान नहीं माना, कवियों के काव्य को साधन कहा है। पर घनआनंद के बहुत से शब्द और प्रयोग अन्य कवियों में हैं ही नहीं।

सुजान-हित, कृपाकंद, प्रेमपत्रिका, वृंदावनमुद्रा में कुछ कवित्त-सवैये ओत-प्रोत हैं। उन्हें प्रत्येक ग्रंथ में ज्यों का त्यों रहने दिया गया है। 'प्रेमसरोवर' पूरा का पूरा 'ब्रज-व्यवहार' में २२५ से २३२ तक आ गया है। 'मनोरथमंजरी' पूरी 'पदावली' में भी आई है। फिर भी पुनरुक्ति बनी रहने दी गई है। 'पदावली' में कुछ दोहे भी आए हैं वे भी यथास्थान हैं। यह सब इसलिए किया गया जिससे ग्रंथावली अनुसंधान के उपयोग की भी बनी रहे।

शब्दरूपों में वहीं तक एकरूपता लाई गई है जहाँ तक ग्रंथ के 'वैज्ञानिक' संपादन का महत्त्व बना रहे और साहित्यिकता भी खंडित न हो। अतः शब्दों के विभिन्न रूप भी यथास्थान मिलेंगे। प्राचीन ग्रंथों में 'समान', 'सुजान' आदि शब्दों के रूप 'समांन', 'सुजांन' या 'समाँन', 'सुजाँन' भी मिलते हैं। ये रूप भाषा-विज्ञान की दृष्टि से काम के हैं—सानुनासिक 'न' से 'म्' या 'ज्' का 'आ' प्रभावित है। पर ऐसे रूप गृहीत नहीं किए गए, सार्वत्रिक प्रवृत्ति न होने से। 'माँ' की सानुनासिकता इसलिए नहीं छोड़ दी गई है कि 'म्' स्वयम् सानुनासिक है अतः उसमें अनुस्वार या अर्धानुस्वार व्यर्थ है, जैसा आधुनिक हिंदी में 'में' के संबंध में कुछ पंडितंमन्य समझने करने लगे हैं। परमार्थतः 'अनुस्वार' या 'अर्धानुस्वार' 'म्' को नहीं उसके आगे के 'स्वर' को रंजित करता है। विस्तार-भीति से एकदेश का ही निरूपण करके विरत होता हूँ, अन्यत्र भी ऐसी ही गति है।

ग्रंथ के अंत में केवल कवित्तों (मनहरण, सवैया, छप्पय) और पदों की सूची संधान-अनुसंधान के प्रेमियों के लिए जोड़ दी गई है। अन्य छंदों की सूची निष्प्रयोजन समझी गई। अतः पदावली या कवित्तों के बीच आए दोहे-सोरठे सूची में न मिलेंगे।

प्रस्तुत संस्करण में घनआनंदजी का चित्र भी दिया जा रहा है। यह चित्र कृष्णागढ़ से प्राप्त हुआ है और मुझे निंबार्क-संप्रदाय के वृंदावननिवासी ब्रह्मचारी

घनआनन्द

श्रीव्रजवल्लभशरणजी वेदांताचार्य से मिला है। इस चित्र पर यह छप्पय भी अंकित है—

"सकल-गुन-सुजान स्वामीजी श्रीआनंदघनजी।
वृंदावन में अटल है वास कियौ आनंदघन।
रचें कवीली काव्य, स्तुति कछु परत न गाई।
अनुपम अच्छर जटित चोज चेटक सरसाई।
श्रवन परत हिय द्रवै कुकनि भूलैं सब भूलैं।
मानौ मोहन मंत्र महा सुधि की सुधि भूलै।
गान-कला में अति कुसल सुनत बढ़ै आह्लाद मन।
वृंदावन में अटल है वास कियौ आनंदघन॥"

जिन महानुभावों ने अपने हस्तलेख या उनकी प्रतिलिपियाँ दीं, जिन संस्थाओं ने हस्तलेखों को देखने की सुविधा दी उन सबके प्रति अपनी कृतज्ञता विनम्र भाव से व्यक्त करता हूँ। वृंदावनवाले हस्तलेख के लिए 'निंबार्क-माधुरी' के संपादक श्रीबिहारीशरणजी का, सरस्वती-भंडार (रामनगर) के हस्तलेखों के लिए हिज हाइनेस महाराज विभूतिनारायण सिंहजी का, अलवरगढ़ के काव्यसंग्रहवाले हस्तलेख के लिए हिज हाइनेस सवाई महाराजा पुष्पप्रताप सिंहजू देव का, घनआनंद के चित्र तथा निंबार्क-संप्रदाय की बहुत सी सामग्री देने के लिए बड़ी कुंज (वृंदावन) के श्रीव्रजवल्लभशरणजी वेदांताचार्य का, लंदन के हस्तलेख का माइक्रोफिल्म ला देने के लिए लखनऊ विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डा० केसरीनारायणजी शुक्ल का, उस माइक्रोफिल्म के पठनार्थ अत्यंत शक्तिशाली मैग्निफाइंग ग्लास देने के लिए के० कृष्ण एंड संस (चौक, बनारस) के संचालक श्रीविधानकुमार चक्रवर्ती का, समय-समय पर शब्दार्थ-संबंधी परामर्श के लिए श्रीपुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी (रामनगर) का, घनआनंद-संबंधी मढ़ीओं की प्रतिलिपि भेजने के लिए धर्मसमाज कालिज (अलीगढ़) के हिंदी-संस्कृत-विभाग के अध्यक्ष श्रीमनोहरलालजी गौड़ का और अजयगढ़वाला हस्तलेख ले आने के लिए भारती महाविद्यालय (काशी विश्वविद्यालय) के प्राध्यापक श्रीविश्वंभरशरण पाठक का विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ।

इस कार्य में मेरे कई शिष्यों ने छोटी-मोटी सहायता करके हाथ बँटाया। उनमें से पाठांतरों के मिलान के लिए गया कालिज के प्राध्यापक श्रीबटेकृष्ण और माइक्रोफिल्म से प्रतिलिपि करने में सहायता देने और प्रतीकानुक्रमणी प्रस्तुत करने के लिए काशी विश्वविद्यालय (हिंदी-विभाग—एम० ए० कक्षा) के छात्र श्रीगोपालदास कार्य-गौरव के निमित्त उल्लेख्य और आशीर्वाद के विशिष्ट भाजन हैं।

इस ग्रंथावली के मुद्रित हो जाने से घनआनंद की कृतियों के संपादन का अनुष्ठान पूर्ण हो गया। अब रह गई उनके सौंदर्यविधान और भावनाभेद की सरणियों का परिचय करानेवाली समीक्षा, जिसके लिए मैं प्रतिश्रुत हूँ। उसकी संभावना भी शीघ्र ही करनी चाहिए, क्योंकि व्याधि-मंदिर में इस कार्य की परिपूर्ति में सतत श्रम के अनिवार्य परिणाम-स्वरूप कई व्याधियों के स्थापित हो जाने पर भी मैं स्फूर्ति का अनुभव करने लगा हूँ—

'क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते'

प्रबोधिनी, २००६
वाणी-वितान
ब्रह्मनाल, काशी।

विश्वनाथप्रसाद मिश्र

'मूल' के आधार-ग्रंथ

हस्तलिखित

सुजानहित—(१) राजपुस्तकालय, रामनगर, बनारस राज्य।
(२) म्यूनिसिपल म्यूजियम, प्रयाग।
(३) भदावर राज्य, नवगाँव, आगरा।
(४) विद्या-विभाग, काँकरौली।

कृपाकंद—सरस्वती-भंडार, रामनगर, बनारस राज्य।

वियोग-बेलि—(१) श्रीराधाचंद्र वैद्य, भरतपुर।
(२) भदावर राज्य, नवगाँव, आगरा।

इश्कलता—श्रीरामचंद्र सेनी, बेलनगंज, आगरा।

यमुना-यश—म्यूनिसिपल म्यूजियम, प्रयाग।

प्रीति-पावस—भदावर राज्य, नवगाँव, आगरा।

पदावली—मानस-संघ, रामवन, सतना।

आनंदघन-ग्रंथावली—श्रीब्रह्मचारी बिहारीशरण, वृंदावन।

व्रजस्वरूप (आनंदघन-ग्रंथावली)—(माइक्रोफिल्म, ब्रिटिश म्यूजियम, हस्तलेख-विभाग, १६४)—श्रीकिशोरीनारायण शुक्ल, लखनऊ।

प्रकीर्णक—(१) आनंदघन-कवित्त, रत्नाकर-संग्रह, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी।
(२) घनआनंद-कवित्त, वही।
(३) सुधासर, खोज-विभाग, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी।
(४) संग्रह, राजपुस्तकालय, अजयगढ़ राज्य, विंध्यप्रदेश।
(५) मझौआ, (याज्ञिक-संग्रह), श्रीमनोहरलाल गौड़, अलीगढ़।

मुद्रित

घनआनंद-कवित्त—विश्वनाथप्रसाद मिश्र।
शृंगार-संग्रह—सरदार कवि।
सुजान-शतक—भारतेंदु हरिश्चंद्र।
मिश्रबंधु-विनोद—मिश्रबंधु महोदय।
'खोज' के विवरण—(अप्रकाशित भी)

सुजान-सागर—श्रीजगन्नाथदास 'रत्नाकर'।
विरह-लीला—श्रीकाशीप्रसाद जायसवाल ('सभा' द्वारा प्रकाशित)।
रसखान और घनानंद—श्रीअमीरसिंह ('सभा' द्वारा प्रकाशित)।
रागकल्पद्रुम (तीनों भाग)—श्रीकृष्णानंद व्यास।
रागरत्नाकर—श्रीभक्तराम।
व्रजनिधि-ग्रंथावली—('सभा' द्वारा प्रकाशित)
घन-आनंद—श्रीशंभुप्रसाद बहुगुना (आधार—याज्ञिक-संग्रह)
व्रज-भारती (पत्रिका)—संपादक, श्रीजवाहरलाल चतुर्वेदी।

संकेत

राम—रामनगर (बनारस राज्य) के हस्तलेख।
प्रयाग—प्रयाग (म्यूनिसिपल म्यूजियम) के हस्तलेख।
कवित्त—घनआनंद-कवित्त ('सभा') के हस्तलेख।
काँक०—काँकरौली, विद्या-विभाग के हस्तलेख।
भदा०—भदावर राज्य (नवगाँव, आगरा) के हस्तलेख।
संग्रह—विभिन्न संग्रहों के हस्तलेख या मुद्रित ग्रंथ।
सभा—'सभा' द्वारा मुद्रित ग्रंथ।
खोज—खोज-विभाग के मुद्रित और अप्रकाशित विवरण।
वृंदा०—वृंदावन, श्रीबिहारीशरणजी वाला हस्तलेख।
लंदन—लंदन (ब्रिटिश म्यूजियम) का हस्तलेख (माइक्रोफिल्म)
भरत—भरतपुर, श्रीराधाचंद्र वैद्य का हस्तलेख।
बेल०—बेलनगंज (आगरा), श्रीरामचंद्र सैनी का हस्तलेख।
याज्ञिक—याज्ञिक-संग्रह के हस्तलेख (बहुगुना के घन-आनंद के आधार पर)।
सतना—सतना (मानस-संघ) की पदावली का हस्तलेख।
वही—पूर्वगामी संकेत के लिए।

सूचना—जहाँ पाठांतर में कोई संकेत नहीं वहाँ उत्तरगामी संकेत समझिए।

सूची

वाङ्मुख	१–७६
प्रशस्ति (व्रजनाथ कवि कृत)	३
सुजानहित	५
कृपाकंद	१४६
वियोग-बेलि	१६७
इश्कलता	१७४
जमुना-जस	१८२
प्रीति-पावस	१८६
प्रेम-पत्रिका	१९१
प्रेमसरोवर	२१५
व्रजविलास	२१६
सरस वसंत	२२२
अनुभवचंद्रिका	२२७
रंगबधाई	२३०
प्रेमपद्धति	२३३
वृषभानुपुरसुषमा-वर्णन	२४१
गोकुलगीत	२४३
नाममाधुरी	२४५
गिरिपूजन	२४७
विचारसार	२४९
दानघटा	२५३
भावनाप्रकाश	२५७
कृष्णकौमुदी	२६७

	२७४
धामचमत्कार	२७७
प्रियाप्रसाद	२८२
वृंदावनमुद्रा	२८६
व्रजस्वरूप	२९२
गोकुलचरित्र	२९४
प्रेमपहेली	२९५
रसनायश	२९७
गोकुलविनोद	३०२
व्रजप्रसाद	३१०
मुरलिका-मोद	३१२
मनोरथमंजरी	३१५
व्रजव्यवहार	३२६
गिरिगाथा	३२९
पदावली	५२६
परिशिष्ट	५८५
प्रकीर्णक	६०५
छंदाष्टक	६०६
त्रिभंगी	६०७
परमहंस-वंशावली	६१२
प्रतीकानुक्रमणी	

वाङ्मुख

शृंगारकाल

आधुनिक इतिहासों में हिंदी-साहित्य की लगभग एक सहस्र वर्षों की दीर्घ-कालीन परंपरा तीन भागों में विभाजित की गई है—आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल[1]। मध्यकाल को ऐतिहासिकों ने कई प्रकार से बाँटा। मिश्रबंधुओं ने उसके तीन उपविभाग किए—पूर्व, प्रौढ़ और अलंकृत[2]। पं० रामचंद्रजी शुक्ल ने उसके दो खंड माने—पूर्व-मध्यकाल और उत्तर-मध्यकाल[3]। पहले का नाम भक्तिकाल और दूसरे का रीतिकाल रखा। 'मिश्रबंधु-विनोद' के अनुसार दूसरा 'अलंकृत काल' है और 'हिंदी-साहित्य का इतिहास' के अनुसार 'रीतिकाल'[4]। मिश्रबंधुओं ने 'अलंकृत' शब्द का व्यापक अर्थ ग्रहण किया है। संस्कृत में 'अलंकार' शब्द का व्यवहार साहित्य के समस्त शास्त्रपक्ष के लिए भी होता है[5]। 'अलंकारशास्त्र' कहने से रस, अलंकार, रीति, पिंगल आदि समस्त काव्यांगों का भी बोध होता है। हिंदी में संस्कृत के ही अनुगमन पर केशवदासजी ने 'अलंकार' शब्द 'कविप्रिया' में व्यापक अर्थ में स्वीकृत किया[6]। वहाँ काव्य की सारी सामग्री—वर्ण्य विषय और वर्णन-प्रणाली—'भूषण' अर्थात् अलंकार मानी गई है। संस्कृत में 'रीति' शब्द का व्यवहार ऐसे व्यापक अर्थ में नहीं होता, पर 'हिंदी-साहित्य का इतिहास' में 'रीति' शब्द का प्रयोग रस,

---

१ मिश्रबंधु-विनोद—मिश्रबंधु-कृत, चतुर्थ संस्करण (सं० १९९४); हिंदी-साहित्य का इतिहास—पं० रामचंद्र शुक्ल कृत, संशोधित और प्रवर्धित संस्करण (सं० १९९९); हिंदी भाषा और साहित्य—बाबू श्यामसुंदरदास-कृत प्र० संस्करण।

२ मिश्रबंधु-विनोद, चतुर्थ संस्करण।

३ हिंदी-साहित्य का इतिहास, संशोधित और प्रवर्धित संस्करण।

४ उत्तरवर्ती अन्य इतिहासों में भी शुक्लजी का ही विभाजन और नाम स्वीकृत हुआ है, अतः वे भी इसी में गतार्थ हैं।

५ आप्टे का संस्कृत-कोश पृ० १२६।

६ कविप्रिया, तृतीय प्रकाश।

अलंकार, पिंगल आदि काव्यांगों के लिए किया गया है, जिसे हिंदी-काव्य-परंपरा का मान्य अर्थ समझना चाहिए। 'रीति' वस्तुतः 'काव्य-रीति' का संक्षिप्त रूप है[१]।

साहित्य के विविध कालों का विभाजन और नामकरण किस आधार पर हो, यह विचारणीय है। मुख्यतया कृति, कर्ता, विषय और पद्धति को दृष्टिपथ में रखकर विभाजन तथा नामकरण होता है। साहित्य के किसी विशिष्ट काल या युग की एकरूप कृतियों के विचार से विभाजन और नामकरण का दृष्टांत है हिंदी का आदिकाल, जिसमें उपलब्ध अधिकांश रचनाओं का नाम 'रासो' है। अतः कुछ लोग उसे 'रासो-काल' कहना ठीक समझते हैं। कर्ताओं की एकरूपता को लक्ष्य करके उसे 'चारण-काल' भी कहा गया है[२]। प्रतिपाद्य विषय की दृष्टि से उसका नाम 'वीरगाथा-काल' भी रखा गया है[३]। पर कभी-कभी विशिष्ट पद्धति की बहुलता भी नामकरण का हेतु होती है। हिंदी का आधुनिक काल 'गद्यकाल' कहा जाता है[४]। जब विभाजन और नामकरण का कोई मार्ग नहीं मिलता तब किसी विवेच्य काल का कोई विशिष्ट कवि या लेखक सामने किया जाता है; अथवा राजनीतिक या सामाजिक इतिहास की शरण ली जाती है। अँगरेजी-साहित्य के इतिहासों में पूर्व-शेक्सपियर-युग उत्तर-शेक्सपियर-युग आदि नाम[५] और उन्हीं की अनुकृति पर संस्कृत-साहित्य के इतिहासों में पूर्व-कालिदास-युग, पर-कालिदास युग आदि नाम[६] पहले प्रकार के उदाहरण हैं। हिंदी में 'मिश्रबंधु-विनोद' के उपविभाग सूरकाल, तुलसी-काल, बिहारी-काल इसी के बोधक हैं और आधुनिक काल के भारतेंदु-

१ भिखारीदास ने लिखा है—काव्य की रीति सिखी सुकबीन सों देखी सुनी, बहु लोक की बातें—काव्य-निर्णय, प्रथम उल्लास।

२ सेलेक्शन्स फ्राम हिंदी-लिटरेचर—लाला सीताराम संगृहीत, प्रथम भाग।

३ हिंदी-साहित्य का इतिहास—पं० रामचंद्र शुक्ल-कृत।

४ मिश्रबंधु-विनोद तथा हिंदी-साहित्य का इतिहास।

५ ए हिस्ट्री आव् इंगलिश लिटरेचर—श्री आर्थर काम्प्टन रिकेट-कृत (सन् १९२१) पृ० १५४।

६ संस्कृत-लिटरेचर—श्री कीथ-कृत।

युग, द्विवेदी-युग[१] आदि भी यही सूचित करते हैं। अँगरेजी-साहित्य के इतिहासों में एलिजाबेथन या विक्टोरियन पीरियड नाम दूसरे प्रकार के उदाहरण हैं। हिंदी में अकबर-काल, दयानंद-काल नाम भी वैसे ही हैं।

विभाजन और नामकरण में एक ओर तो किसी विशेष काल या युग की व्यापक प्रवृत्तियों का बोध लक्ष्य होता है और दूसरी ओर अंतर्विभाग का सुभीता। जहाँ तक प्रवृत्तियों के बोध का पक्ष है इतर क्षेत्रों से नाम का ग्रहण असामर्थ्य का सूचक है। साहित्य का इतिहास जनता की मानस-परंपरा का इतिहास होता है, उसे किसी शासक के नाम से प्रकट करना साहित्य की भावधारा के अज्ञान की घोषणा करना है। किसी विशिष्ट कवि या लेखक का नाम तब तक युग के साथ न जुड़ना चाहिए जब तक उसकी प्रवृत्तियाँ सर्वमान्य न हो गई हों। 'भारतेंदु-युग' और 'द्विवेदी-युग' नाम को इसी दृष्टि से उचित कहा जा सकता है। अंतर्विभाग के लिए ध्यान में रखना होगा—विभाग के नाम की व्याप्ति को। अंतर्विभाग व्यापक प्रवृत्तियों के स्कंधों का बोधक होता ही है, साथ ही किसी विभाग की दीर्घ सीमा के विवेचन की कठिनाई भी सुगम करता है। प्रत्येक काल के पृथक्-पृथक् युग या सामान्य प्रवृत्तियों के पृथक्-पृथक् स्कंध बतलाने और समझने की दृष्टि से अनिवार्य होते हैं। अतः विद्वान् ऐतिहासिक सदा विभाजन करके ही विवेचन में प्रवृत्त होते हैं। शुक्लजी ने हिंदी-साहित्य का पूर्व-मध्यकाल विवेचन-सौकर्य के ही लिए चार अंतर्विभागों में विभक्त किया है। निर्गुण तथा सगुण धारा की दो-दो शाखाएँ मानकर ये नाम रखे हैं—ज्ञानमार्गी-प्रेममार्गी तथा रामभक्ति-कृष्णभक्ति।

इस प्रकार किसी साहित्य-काल के नामकरण की उपयुक्तता के दो तत्त्व उपलब्ध होते हैं। एक तो नाम सर्वसामान्य प्रवृत्ति का बोधक हो, दूसरे अंतर्विभाग का मार्ग अनवरुद्ध रखे। सर्वसामान्य प्रवृत्ति की बोधकता का संबंध किसी विशेष काल में प्रस्तुत ग्रंथराशि के बाहुल्य से है, समस्तता से नहीं। किसी काल में बहुत सी प्रवृत्तियाँ पूर्व काल की भी चलती रहती हैं और कुछ नए काल का आभास देती हुई भी सामने आती हैं। इसलिए बाहुल्य की दृष्टि ही सर्वव्यापक प्रवृत्तियों का प्रकृत रूप निर्दिष्ट कर सकती है।

१ आधुनिक हिंदी-साहित्य का इतिहास—श्री कृष्णशंकर शुक्ल-कृत।

इस विचार से साहित्य का इतिहास प्रस्तुत करनेवाले आलोचकों और राजनीतिक तथा सामाजिक दृष्टि से शासकों का शासन सामने लानेवाले ऐतिहासिकों में बड़ा भेद है। परंपरा के अनुसार किसी देश के इतिहास का कर्ता किसी काल के नामकरण या विभाजन में बहुधा शासक-वर्ग के नाम या जाति का ही सहारा लेता है। यद्यपि जनता की मनोवृत्तियों की झलक भी उसे देनी पड़ती है तथापि वह शासकों की व्यवस्था और कार्य-कलाप पर ही अधिक दृष्टि रखता है, अतः उसे नामकरण में कोई विशेष कठिनाई नहीं पड़ती। हिंदू-काल, मुस्लिम काल, ब्रिटिश काल या अफगान-काल, मुगल-काल आदि नाम किसी गहरी छान-बीन के परिणाम नहीं। पर साहित्य में ये व्यक्तिवाचक या जातिबोधक नाम यदि कहीं रख भी दिए जायँ तो भी सर्वत्र यही ऋजु पथ न मिलेगा। साहित्य जनता के मन की छाया है और जनता का संघटन सब प्रकार की जातियों, वर्गों आदि से होता है। इसी से साहित्य में एक ही प्रकार की रचना प्रस्तुत करनेवाले विविध जातियों, वर्गों, सम्प्रदायों आदि के लोग हो सकते हैं क्या, होते ही हैं। हिंदी-साहित्य के किसी काल या युग की रचना उठा लीजिए, प्रमाण मिल जायगा। हिंदी के आधुनिक काल में एक ही प्रकार की रचना करनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, जैन, बौद्ध आदि सभी जाति तथा मत के भारतवासी मिलते हैं। वस्तुतः साहित्य भेद में अभेद की स्थापना करनेवाला होता है। इसी से किसी देश की सार्वजनिक एकता का प्रमाण होता है एक साहित्य और एक भाषा। इसलिए विभागोपविभाग के नामकरण में कवियों और लेखकों की सर्वनिष्ठ प्रवृत्तियाँ ही प्रयोजनीय होती हैं। अतः कर्ताओं की एकरूपता के अनुसार नामकरण, यदि कहीं ऐसी एकरूपता मिले भी तो, विशेष उपयुक्त नहीं प्रतीत होता। इसलिए अंत में कृति, विषय और पद्धति की एकरूपता ही बच रहती है।

अब देखना चाहिए कि साहित्य में प्रवृत्ति की एकरूपता का कौन सा लक्ष्य चुना जाय—कृति, पद्धति या विषय। 'रासो' की भाँति सदा कृति की नामावली एकरूप नहीं हुआ करती, अतः यह ढंग भी बहुत स्थूल लक्ष्य का परिचायक है। पद्धतियाँ एक ही समय में कई होती हैं। आधुनिक काल 'गद्य-काल' तो कहा जाता है पर पद्य की रचना भी प्रचुर परिमाण में हो रही है।

इसी गद्य-काल में 'छायावाद' का डंका पिट चुका है, पर उसकी समाई गद्यकाल में कहाँ है? इस प्रकार व्याप्ति निर्दुष्ट नहीं रह जाती। वस्तुतः इस प्रकार के नामकरण तभी ठीक माने जा सकते हैं जब साहित्य के वर्ण्य विषय की एकरूपता किसी प्रकार घटित न होती हो।

इससे निश्चित है कि साहित्य के इतिहासों में विभाजन और नामकरण का समीचीन ढंग वर्ण्य विषय की व्याप्ति के अनुसंधान से संबद्ध है। पर वर्ण्य विषय की दृष्टि से भी वस्तुतः दो पक्ष हो जाते हैं—एक बाह्य और दूसरा आभ्यंतर। हिंदी के आदिकाल को ही लीजिए। इस काल में वीर पुरुषों की गाथाओं का बखान करनेवाले ग्रंथ अधिक मिलते हैं। अतः वीरगाथा उनका वर्ण्य हुआ अर्थात् इन ग्रंथों में बाह्यार्थ वीरकथा है। पर कवियों ने जिस भाव या रस की अभिव्यक्ति लक्ष्य करके ये गाथाएँ काव्यबद्ध कीं वह भी तो वर्ण्य ही है। वह बाह्यार्थ नहीं पर काव्यार्थ तो है ही, अर्थात् प्रवृत्ति का मानस या आभ्यंतर पक्ष है। अतः इस दृष्टि से यदि 'आदिकाल' को 'वीरगाथा-काल' न कहकर 'वीररस-काल' या संक्षेप में 'वीरकाल' कहा जाय तो कोई हानि नहीं। भारतीय दृष्टि से साहित्य या काव्य का प्रतिपाद्य भाव या रस ही होता है। इसी से उसमें कर्ताओं के मानस-पक्ष का प्रसार दूर तक दिखाई पड़ता है अर्थात् उसकी व्याप्ति प्रकृत्या अधिक होती है। 'भक्तिकाल' नाम में 'भक्ति' शब्द की व्याप्ति उसके भाव होने से अधिक है। यदि 'रीतिकाल' नाम की ओर देखते हैं तो उसमें रीति अर्थात् रस, अलंकार, शब्दशक्ति, नायक-नायिका-भेद, पिंगल आदि काव्यरीति अवश्य वर्ण्य विषय ही है, पर 'रीति' शब्द बाह्यार्थ का ही बोधक है, आभ्यंतरार्थ का नहीं। उस काल का आभ्यंतर वर्ण्य 'शृंगार' था। 'रीति' की सीमा में जितनी कृतियाँ समाविष्ट हैं वे अधिकतर 'शृंगार' की हैं। थोड़ी सी वीररस या शुद्ध भक्ति की रचनाएँ शृंगार की सीमा में आबद्ध नहीं होतीं। जिन्होंने 'नवरस' का प्रतिपादन लक्ष्य बनाया उन्होंने भी शृंगार की व्यापक प्रवृत्ति के कारण विस्तार से 'शृंगार' का ही वर्णन किया। हाँ, गिनाने के लिए एक एक उदाहरण अन्य रसों का भी रख दिया, और प्रतिज्ञा पूरी की। केशव, देव, पद्माकर, दास आदि की भी, जो अच्छे प्रतिपादक आचार्य हैं, यही दशा है, औरों का कहना ही क्या! वीररस की रचना करनेवाले शृंगार रस से

कोरे हों ऐसा भी नहीं है। 'भूषण' ने शिवाजी की प्रशंसा में 'शिवभूषण' में की सारी रचना वीररस में की, पर उनके बहुत से फुटकल छंद शृंगार के भी मिलते हैं, वे 'रीति' के पूरे कायदे-कानून के अनुसार निर्मित हैं। बहुत संभव है, उन्होंने रस या नायिका-भेद का कोई ग्रंथ ही लिखा हो, पर अब न मिलता हो। 'भूषण-उल्लास', 'दूषण-उल्लास' और 'भूषण-हजारा' नाम से जो इनके ग्रंथ जनश्रुति में सुने जाते हैं वे वीररस के होंगे ऐसी संभावना नहीं प्रतीत होती। उनके फुटकल शृंगार के छंद इन्हीं ग्रंथों के होंगे, अतः भूषण की यदि सारी रचना मिल जाय तो कदाचित् वे बाहुल्य के विचार से शृंगार के ही कवि ठहरेंगे। शिवाजी के दरबार में पहुँचने से पूर्व वे कई दरबारों में गए थे। उन्होंने वहाँ शृंगार की ही रचना से श्रीगणेश किया होगा। उनके भाई चिंतामणि, मतिराम, जटाशंकर भी तो शृंगार रस का ही नायक भरते रहे!

यदि रीतिकाल के समस्त ग्रंथों की छान-बीन की जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि सभी प्रकार के ग्रंथों में शृंगार तो किसी-न-किसी रूप या परिमाण में अवश्य मिल जाता है अर्थात् दूसरे रस का वर्णन करनेवाले भी शृंगार का वर्णन अवश्य करते थे, पर शृंगार की अभिव्यक्ति करनेवाले बहुत से ऐसे मिलेंगे जिन्होंने दूसरे रसों का नाम भी नहीं लिया। नायक-नायिका भेद के ग्रंथों की तो कोई बात ही नहीं, वे शृंगार के ही ग्रंथ हैं, शृंगार का आलंबन-पक्ष ही सामने रखते हैं। नख-शिख के ग्रंथ भी ऐसे ही हैं। षट्ऋतु के ग्रंथों में शृंगार का ही उद्दीपन विभाव लिया गया है। अलंकार, शब्दशक्ति और पिंगल के ग्रंथों में सर्वत्र अधिकतर उदाहरण शृंगार के हैं। कुछ पिंगल या अलंकार के ग्रंथ ऐसे अवश्य हैं जिनमें आश्रयदाताओं के शौर्य की गाथा है। पर 'भूषण' के 'शिवभूषण' या उसी प्रकार के दो-एक ग्रंथों को छोड़कर ये ग्रंथ शृंगार रस से शून्य हों, ऐसा नहीं है। भक्ति के ग्रंथ हैं तो भक्ति के ही, पर वे शृंगार-रहित हैं, यह नहीं कह सकते। काव्य-दृष्टि से उनमें राधा-कृष्ण के शृंगार की कथा ही तो है। 'सूरदास' के 'सूरसागर' में गोपीकृष्ण का शृंगार है, इसे तो मानना ही पड़ेगा। वह लौकिक शृंगार न सही, अलौकिक सही, पर है तो शृंगार ही। इस प्रकार रीति के अधिकांश ग्रंथ तो शृंगार-प्रधान हैं ही, और ग्रंथ भी शृंगार-संवलित हैं।

रीतिकाल में कुछ कवि ऐसे भी हैं जिन्होंने रीतिशास्त्र पर कोई ग्रंथ नहीं लिखा। पर वे रीति के ही प्रतिनिधि कवि माने गए हैं, क्योंकि उनपर रीतिशास्त्र की भरपूर छाप है। इनमें मुख्य बिहारी हैं। बिहारी ने अपनी सतसई रीति-ग्रंथ के रूप में नहीं प्रस्तुत की, पर उनकी सारी रचना टीकाकारों ने शृंगार के आलंबन, उद्दीपन, अनुभाव आदि के भेदोपभेदों में खतिया कर रख दी है। अतः लक्षण-ग्रंथ लिखनेवालों से ऐसी रचनाएँ पृथक् अवश्य हैं। हाँ, इन्हें हम रीतिबद्ध रचना ही मानेंगे। जैसे रीति-ग्रंथ के प्रणेताओं ने शृंगार के भेद का क्रमबद्ध वर्णन किया है वैसे इन्होंने क्रमबद्ध वर्णन नहीं किया और समस्त भेदों के उदाहरण जुटाने पर दृष्टि नहीं रखी। साधारणतः दोनों प्रकार की रचनाओं में कोई भेद नहीं लक्षित होता। पर ध्यान देने से भिन्नता स्पष्ट हो जाती है। रीति-ग्रंथ लिखनेवाले शास्त्र में गिनाई सामग्री की योजना करने में सावधान रहते थे। उन्हें लक्ष्य और लक्षण का समन्वय भी करना पड़ता था, पर 'सतसई', 'सौसई' या 'हजारा' लिखनेवाले रीति की सामग्री का उपयोग अपने ढंग से करते थे। यही कारण है कि इन्हें कहने के लिए कुछ स्वच्छंदता मिल गई थी। इसी से सतसई आदि प्रस्तुत करनेवालों की रचना रीति-ग्रंथ लिखनेवालों से प्रायः उत्कृष्ट दिखाई देती है। बंधन ढीला करके ये कविता में रमणीयता लाने में अवश्य सफल हुए। ऐसे कवियों को रीति का प्रतिनिधि कहने में इसी से विशेष तर्क से काम लेना पड़ा है। यह कहना पड़ा है कि "बिहारी ने यद्यपि लक्षण-ग्रंथ के रूप में अपनी सतसई नहीं लिखी है, पर 'नखशिख', 'नायिकाभेद', 'षट्ऋतु' के अन्तर्गत उनके सब शृंगारी दोहे आ जाते हैं और कई टीकाकारों ने दोहों को इस प्रकार के साहित्यिक क्रम के साथ रखा भी है। जैसा कि कहा जा चुका है, दोहों की रचना करते समय बिहारी का ध्यान लक्षणों पर अवश्य था। इसी लिए हमने बिहारी को रीतिकाल के फुटकल कवियों में न रखकर उक्त काल के प्रतिनिधि-कवियों में ही रखा है।"[१] टीकाकारों या संग्रह-कर्ताओं के अनुसार चलें तो बहुतों को रीतिकाल का प्रतिनिधि मानना पड़ेगा। क्योंकि उन्होंने तो आलम, ठाकुर, घनआनंद आदि की भी रचनाएँ नायक-नायिका-भेद के अंतर्गत ही खींचकर बैठाई हैं, फिर

१. हिंदी-साहित्य का इतिहास, संशोधित और प्रवर्धित संस्करण, १९९६, पृ० २७८।

भी बिहारी को रीतिकाल का प्रतिनिधि माननेवाले शुक्लजी ने इन्हें उस काल के फुटकल कवियों की श्रेणी में आसन दिया है। ठाकुर आदि की कुछ रचनाएँ लक्षणों से समन्वित होने का आभास मात्र देती हैं। पर ये 'रीति' के प्रतिनिधि कवि नहीं हैं। यहाँ यह प्रतिपाद्य नहीं है कि बिहारी रीति के प्रतिनिधि नहीं थे। कहना इतना ही है कि 'रीतिकाल' की सीमा बढ़ाने के लिए 'रीति' के नाम पर उन रचनाओं को भी समेटना पड़ा है जो रीतिशास्त्र का उदाहरण प्रस्तुत करने के उद्देश्य से नहीं निर्मित हुई थीं। दूसरे शब्दों में इन कवियों का साध्य शृंगार था, रीति से वे कभी-कभी साधन का काम अवश्य लेते थे। यदि शृंगारकाल नाम रखा जाता तो यह तर्क देने की भी आवश्यकता न पड़ती और वे तथा उनके अतिरिक्त फुटकल खाते में फेंके हुए और भी बहुत से कवि उसकी सीमा में आपसे आप आ जाते।

'रीतिकाल' वस्तुतः उन ग्रंथों के समुदाय का बोधक है जिनकी राशि 'रीति' के नाम पर एकत्र हुई। विचार करने पर रीति-ग्रंथ-प्रणेता अधिकतर आचार्य नहीं सिद्ध होते। इन्होंने रीति का पल्ला सहारे के लिए पकड़ा, कहना ये चाहते थे शृंगार ही। किसी ने अलंकारों की माला बनाई, किसी ने पिंगल का प्रस्तार किया, किसी ने रसभाव की धारा बहाई और किसी ने सीधे नायक-नायिका-भेद, नख-शिख, षट्ऋतु बारहमासा आदि के बने बनाए साँचे ले लिए। सच पूछिए तो इन्हें रीतिशास्त्र का विवेचन करने के लिए बुद्धि दौड़ाने की आवश्यकता ही नहीं थी, संस्कृत में शास्त्र-पक्ष की सारी सामग्री जुटी-जुटाई रखी थी, उसे उठाकर हिंदी-पद्यों में ढाल भर देना था। यदि 'रीति' का विवेचन इनका साध्य होता तो ये संस्कृत के आचार्यों की भाँति प्रत्येक विषय के विमर्श में लगते, दोहों में लक्षण देकर काम चलता न करते। शास्त्र के पुराने विवेचक पहले से प्रस्तुत ग्रंथों या विवेचित पक्षों को हृदयंगम करते थे, तब उनपर अपना स्वच्छंद मत प्रकट करते थे। हिंदी के ये आचार्य तो काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण, काव्यादर्श, रसतरंगिणी, रसमंजरी, चंद्रालोक, कुवलयानंद, वृत्तरत्नाकर में से एक या दो ग्रंथ सामने रख लेते और लक्षणों का टेढ़ा-सीधा पद्यबद्ध उल्था करके हिंदी में संस्कृत-उदाहरण से मिलता जुलता दूसरा उदाहरण गढ़ देते थे। कहीं-कहीं पद्य का भी उल्था ही दिया जाता था। फल यह हुआ कि जहाँ रीतिकाल के

विवेचन का अल्प प्रयास दिखाई भी पड़ा वहाँ भी सारा ग्रंथ भ्रांति-शून्य न बन सका। विषय पूर्णतया हृदयंगम करके यदि ग्रंथ प्रस्तुत किए जाते तो ऐसा प्रायः न होता। केशव, देव, दास, पद्माकर ऐसे आचार्यों से भी संस्कृत की विवेचित सामग्री का संग्रह करने में भ्रांति हो गई है, फिर औरों की बात ही क्या! जैसा इतिहासकारों ने भी स्वीकार किया है ये सबके सब वस्तुतः कवि थे। इनका प्रधान वर्ण्य विषय शृंगार ही था। इसी से नायक-नायिका-भेद, नख-शिख, षट्ऋतु, बारहमासा, रस आदि के रीतिग्रंथ ही प्रचुर परिमाण में प्रणीत हुए, शब्दशक्ति ऐसे दुरूह विषय के ग्रंथ दो तीन ही मिलते हैं। अलंकार के ग्रंथों की संख्या अधिक अवश्य है पर शृंगार से ही वे भी भरे हैं।

यदि तत्कालीन परिस्थिति पर विचार करते हैं तो भी इनका प्रतिपाद्य शृंगार ही ठहरता है। इस काल के अधिकांश कर्ता दरबारी कवि थे। कोई देशी नरेशों की दरबारदारी करता था तो कोई विदेशी या मुसलमान बादशाहों, शाहों या दीवानों की। देशी दरबारों या सभाओं में हिंदी के कवियों को अपना चमत्कार दिखाने में संस्कृत के पंडितों से जोड़-तोड़ भिड़ाना पड़ता था और मुसलमानी दरबारों में भी अपना रंग जमाने में फारसी या उर्दू के शायरों से मोर्चा लेना पड़ता था। संस्कृतवाले शृंगार की मुक्तक रचना सामने लाते थे, जिसमें नायक-नायिका, ऋतु-वर्णन, नख-शिख आदि की छटा दिखाते थे, हिंदीवालों को भी वही करना पड़ता था। नरेश ही नहीं, छोटे-छोटे ताल्लुकेदार और जमींदार तक ऐसी रचना के शौकीन हो गए थे। कवि-कर्म करनेवालों के ये ही तो आश्रयदाता थे। मुसलमानी दरबारों में फारसी या उर्दू की रचना प्रेम का ही बँधा-बँधाया विषय (थीम) लेकर चलती थी। उसके जोड़ में भी हिंदी-कवियों ने शृंगार या नायक-नायिका-भेद की रचना सामने की। उधर से वे शेर पढ़ते या गजल गाते थे, इधर से ये कवित्त, सवैया या दोहा भनते थे। मुक्तक-रचना के आधिक्य का कारण यह दरबारदारी ही है, क्योंकि मुक्तक द्वारा ही थोड़े में रस के छींटे उछाले जा सकते थे। दरबारी कवियों ने प्रबंध छुआ तक नहीं, उनका काम मुक्तकों से ही चल जाता था।

'रीतिकाल' नाम ग्रहण करने का दुष्परिणाम यह हुआ कि उस काल के अच्छे-अच्छे शृंगारी कवियों को छाँटकर पृथक् करना पड़ा। आलम, ठाकुर,

घनआनंद, बोधा, द्विजदेव ऐसे प्रेम के उमंग-भरे कवि किसी रीति-ग्रंथकार से काव्योत्कर्ष में कम नहीं हैं, पर 'रीति' की सीमा में वे न समा सके। रीतिकाल की शृंगारगत व्यापक प्रवृत्ति 'रीतिकाल' नाम देनेवालों ने भी लक्षित की है, और 'अलंकृत काल' नाम रखनेवालों ने भी। पर रीति या अलंकारशास्त्र की ग्रंथ-राशि ने एकत्र होकर इन्हीं नामों की ओर उन्हें आकृष्ट किया। फलतः शृंगार की सर्वनिष्ठ प्रवृत्ति नामकरण के संबंध में पीछे छूट गई। बात यहीं तक होती तो भी कोई बात थी। सबसे बड़ी कठिनाई काल के विभाजन की आ गई, पर गृहीत नामों ने यह मार्ग छेंक रखा। 'अलंकृत' नाम देकर उसके पूर्व और उत्तर नाम दिए गए, पर उनमें भेद का स्पष्ट संकेत कोई नहीं है। केवल वर्णन का विस्तार कम हो गया है। 'रीतिकाल' नाम देकर स्पष्ट स्वीकार करना पड़ा कि इसका विभाजन करने का कोई मार्ग अभी नहीं मिल रहा है। कुछ लोगों ने समस्त काव्यांगों का वर्णन करनेवाले और किसी एक अंग का वर्णन करने-वालों को पृथक् किया है। पर सभी काव्यांगों के विवेचकों ने भी एक-एक काव्यांग का पृथक् वर्णन किया है, जैसे दास, चिंतामणि आदि ने। अतः रीति में उपविभाग का मार्ग संकीर्ण ही है। इस प्रकार चाहे जिस दृष्टि से देखें, अलंकृत काल और रीतिकाल नाम व्याप्ति के बोधक नहीं प्रतीत होते। उन्हें हटाने की आवश्यकता है और उनके स्थान पर 'शृंगारकाल' की दृढ़ अपेक्षा जान पड़ती है।

शृंगारकाल नाम स्वीकृत करने से वर्ण्य विषय की व्याप्ति के बोध के साथ ही फुटकल खाते से निकलकर कई उत्कृष्ट कवि अलग खाते में आ जाते हैं। विभाजन का मार्ग सुस्पष्ट और सरल हो जाता है। रीति की सारी सामग्री रीति-ग्रंथकारों का साधन थी, वह उनकी काव्य-सामग्री थी, शास्त्र-सामग्री नहीं। शृंगारिक रचना रीतिबद्ध थी। रीतिबद्ध कृति उन्हीं की नहीं थी जो लक्षण लिखकर और लक्ष्य बनाकर उसमें उसका विनियोग करते थे, प्रत्युत उनकी कृति भी रीतिबद्ध ही थी जो लक्षण-ग्रंथ न रचकर रीति का संभार लेकर केवल लक्ष्य प्रस्तुत करते थे, जैसे बिहारी, रसनिधि आदि। इन्होंने लक्षण क्यों न लिखे, लक्ष्य ही क्यों प्रस्तुत किया? ये वस्तुतः लक्षण के बखेड़े में फँसना नहीं चाहते थे। कुछ चुने हुए प्रसंगों पर ही कविता रचना चाहते थे। ये रीति का बंधन

ढीला करके चलते थे, यद्यपि वे उससे मुक्त नहीं हुए थे। इसी से लक्षणबद्ध रचना से इनकी कविता अपेक्षाकृत उत्कृष्ट है। लक्षण और लक्ष्य का समन्वय करने में काव्योत्कर्ष को क्षति पहुँचती थी। इसका पक्का प्रमाण 'भूषण' की रचना में मिलता है, जिनकी फुटकल रचना उनके लक्षण-ग्रंथ 'शिवभूषण' की कविता से उत्तम है। लक्षणकार लक्षण से तिलभर हट नहीं सकता। वह रत्तीभर भी हटा नहीं कि लक्ष्य बेमेल हुआ नहीं। लक्षण-ग्रंथों में ऐसी बेमेल रचनाएँ भी कभी कभी मिल जाती हैं। इसका कारण यही होता है कि कवि की वह लक्षणा-नुगामिनी निर्मिति न होकर पहले से स्वीकृति उक्ति होती है जिसे वह बरबस वहाँ खोंसना चाहता है। रीति की केवल प्रेरणा ग्रहण करनेवाले की कविता में ऐसा न होगा। रीति उसके ध्यान में रहे, रहा करे, पर उक्ति बाँधने में उसे एकदम बँध ही न जाना पड़ेगा। बिहारी की रचना में रीति का आधार अवश्य है पर उक्ति का वैशिष्ट्य उन्हें लक्षणबद्ध कर्ताओं से पृथक् कर देता है। बिहारी आदि को रीतिबद्ध मानने का हेतु था बंधन बाँधे रहना ही, भले ही वह ढीला हो। उन्हें रीति की अपेक्षा अवश्य थी, कम से कम उन्होंने उसकी उपेक्षा नहीं की। बिहारी की सतसई में खंडिता के उदाहरण बीसों हैं। अधिक ऐसे मिलेंगे जिनमें केवल आँखों की ललाई का वर्णन है। लक्षणानुधावन करनेवालों को संभोग-चिह्नों का लंबा-चौड़ा वर्णन करना पड़ता है। बिहारी उक्तिवैचित्र्य पर विशेष ध्यान देनेवाले थे, अतः उन्होंने खंडिता के लक्ष्य में प्रमुख चिह्नों का तिरस्कार करके केवल ललाई पकड़ी और ऐसी उक्तियाँ बाँध दीं—

> रही चकित चहुँघा चितै, चित मेरो मति भूलि।
> सूर उदै आएँ रही, दृगनि साँझ सी फूलि॥

इन कवियों से वे सरलतापूर्वक पृथक् किए जा सकते हैं जो रीतिबद्ध रचना को उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे। वे रीति में बँधना नहीं चाहते थे। इसी से उन्हें रीतिमुक्त या 'स्वच्छंद' कवि कहना उपयुक्त प्रतीत होता है। वे रीतिबद्ध कवि जो बँधी बँधाई उक्तियाँ सुनाते या शास्त्र-कथित सामग्री के भरोसे पांडित्य प्रदर्शित करते थे, उन्हें नहीं रुचते थे। सीखी-सिखाई काव्य-सामग्री के बल पर छंद जोड़नेवालों को 'ठाकुर' ने कविता के साथ खेल करने या कविता को खेल समझनेवाले कहा है—

सीखि लीनो मीन मृग खंजन कमल नैन,
सीखि लीनो जस औ प्रताप को कहानो है।
सीखि लीनो कल्पवृक्ष कामधेनु चिंतामनि,
सीखि लीनो मेरु औ कुबेर गिरि आनो है।
ठाकुर कहत याकी बड़ी है कठिन बात,
याको नहीं भूलि कहूँ बाँधियत बानो है।
ढेल सो बनाय आय मेलत सभा के बीच,
लोगन कबित्त कीबो खेल करि जानो है।

कुछ रटी-रटाई उपमाएँ जोड़ने या प्रशंसित करनेवाले काव्य-मर्मज्ञों की सभा में ढेला सा फेंका करते थे। स्वच्छंद कवियों को इन कृतियों से चोट लगती थी। और वे इन्हें मिट्टी ही समझते भी थे। घनआनंद के कवित्तों के संग्रहकर्ता ब्रजनाथ ने ऐसी रीतिबद्ध रचना को 'जग की कविता' अर्थात् साधारण रचना कहा है—(जग की कबिताई के धोखे रहै ह्याँ प्रबीनन की मति जाति जकी) और उससे घनआनंद की कविता को शुद्ध और पृथक् घोषित किया है। स्वच्छंद कवियों की रचना का वैशिष्ट्य उन्होंने बड़े ही मार्मिक ढंग से बतलाया है। घनआनंद के काव्यमीमांसक के गुण निर्दिष्ट करते हुए उन्होंने घनआनंद ऐसे रीतिमुक्त कवि के काव्योत्कर्ष का रूप इस प्रकार उद्घाटित किया है। इसे स्वच्छंद कवियों का स्वरूप-लक्षण समझना चाहिए—

नेही महा ब्रजभाषा-प्रबीन औ सुंदरतानि के भेद कों जानै।
जोग-बियोग की रीति मैं कोबिद भावना-भेद-स्वरूप कों ठानै।
चाह के रंग मैं भीज्यौ हियौ, बिछुरें मिलें प्रीतम साँति न मानै।
भाषा-प्रबीन, सुछंद सदा रहै, सो घनजी के कबित्त बखानै॥

पद्य में प्रयुक्त 'सुछंद' शब्द ध्यान देने योग्य है। 'सुछंद' शब्द का तात्पर्य है—रीति से स्वछंद, रीतिमुक्त। रीतिबद्ध या शास्त्रबद्ध (क्लासिकल) के बंधन से छूट कर ही ये रीतिमुक्त या स्वच्छंद (रोमांटिक) होनेवाले कवि थे। उनके अनुसार ये प्रेम की अनेक अंतर्वृत्तियों के उद्घाटक काव्यगत रमणीयता के नाना भेदों के विधायक, संयोग और वियोग की अनेक प्रेमदशाओं के मार्मिक द्रष्टा, भावनाभेदों के सहृदय चितेरे, प्रेमरस से सिक्त भावुक, मिलन और विरह की

हृद्गत अशांति के अनुभावक और भाषा-प्रयोग की सीमा के सच्चे ज्ञाता थे। ये वासना से पंकिल राजाओं के मानस का रंजन करनेवाले चाटुकार नहीं थे। ये अपनी उमंग के आदेश पर थिरकनेवाले और काव्य-विभूति द्वारा काव्य-मर्मज्ञों को प्रभावित करनेवाले थे। ये प्रेम के पंथ पर अग्रसर होनेवाले, रचना में मोतियों की सी निर्मल वाग्धारा प्रवाहित करनेवाले और उससे काव्य-माला गूँथनेवाले थे—मनमोहिनी और प्रभावुक। काव्य-कोविदों की तुलना में ये काव्य-सौष्ठव के प्रदर्शन के अभिलाषी थे। 'ठाकुर' कहते हैं—

मोतिन कैसी मनोहर माल गुहै तुक अच्छर जोरि बनावै।
प्रेम को पंथ कथा हरि-नाम की बात अनूठी बनाय सुनावै।
ठाकुर सो कबि भावत मोहिं जो राजसभा में बड़प्पन पावै।
पंडित और प्रबीनन को जोइ चित्त हरै सो कबित्त कहावै॥

ये अनूठी उक्तियाँ बाँधनेवाले थे पर हृदय से संयुक्त। जूठी उक्ति का पुनर्विधान या पिष्ट-पेषण इन्हें अरुचिकर था। यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि रीतिबद्ध रचना में हृदय-पक्ष दब गया था, कला-पक्ष उभर आया था। मस्तिष्क के पूरे व्यायाम के साथ उनका रीतिबद्ध काव्य अखाड़े में उतरता था। 'जग के कवि' काव्य के बहिरंग में ही लिपटे रह गए, उसके अंतरंग में प्रविष्ट नहीं हुए। इसी से 'स्वच्छंद कवि' हृदय की दौड़ के लिए राजमार्ग चाहते थे, रीति की सँकरी गली में धक्कमधक्का करना नहीं। ये कविता की नपी-तुली नाली खोदनेवाले न थे। ये काव्य का उत्स प्रवाहित करनेवाले या मानस-रस का उन्मुक्त दान देनेवाले थे। पश्चिमी समीक्षकों के ढंग से कहें तो रीतिबद्ध कर्ता की कृति चेतनावस्था (कान्सस स्टेट) में गढ़ी जाती थी और रीतिमुक्त कर्ता की कविता अंतःसंज्ञा (सबकान्सस स्टेट या अनकान्सस स्टेट) में लीन हो जाने पर आपसे आप उद्भूत होती थी, घनआनंद ने स्पष्ट कहा है—

तीछन ईछन बान बखान सो पैनी दसान लै सान चढ़ावत।
प्रानिन प्यासे भरे अति पानिप मायल घायल चोप चढ़ावत।
है घनआनंद छावत भावत जान सजीवन ओर तें आवत।
लोग हैं लागि कबित्त बनावत मोहिं तौ मेरे कबित्त बनावत॥

'लोग' अर्थात् रीतिबद्ध कवि रच-रचकर कविता बनाने, शब्द-रत्न की पच्चीकारी करने में, मरते पचते रहते थे, पर रीतिमुक्त कवि का काव्यस्रोत स्वतः उद्भावित होता था। रीतिबद्ध कवि की काव्य प्रणाली उनकी बुद्धि के संकेत पर टेढ़े-सीधे मार्ग पर बहती थी, पर रीतिमुक्त या स्वच्छंद कवि अपनी भावधारा में स्वतः बह जाता था। इस प्रकार दोनों का अंतर स्पष्ट है। रीतिमुक्त कवियों में भी अंतर्भेद हो सकते हैं। इसके लिए शृंगारकाल के पूर्व तरंगित होनेवाली काव्यधाराओं की ओर दृष्टि करनी होगी। भक्तिकाल में एक ओर तो सगुण-काव्यधारा बह रही थी और दूसरी ओर निर्गुण-काव्यधारा। पहली का प्रसार भारतीय काव्य-परंपरा के प्रकृत राजपथ पर हुआ था और दूसरी का विदेशी सूफी रहस्य-मार्ग पर। स्वयं हिंदी के कवि सूफी 'प्रेम की पीर' का उद्घाटन प्रेममार्गी शाखा में कर ही रहे थे। कबीर आदि संतों की ज्ञानमार्गी शाखा भी सूफियों की 'प्रेम की पीर' से प्रभावित थी। सूफियों की इस 'प्रेम की पीर' का हिंदी-काव्य पर बहुत व्यापक प्रभाव पड़ा। आगे चलकर सगुण धारा की कृष्ण-भक्ति-शाखा तक इससे विशेष प्रभावित हुई। नागरीदास (सावंतसिंह), कुंदनशाह आदि में तो यह 'प्रेम की पीर' इतनी व्याप्त हुई कि उसका विदेशी रूप तक छिप न सका। सूफी प्रेम की पीर ही नहीं, फारसी काव्य के प्रेम-वैषम्य ने भी कवियों को खींच रखा। व्यापक प्रभाव का अनुभव इसी से किया जा सकता है कि शुद्ध भारती काव्य-परंपरा में जब इसकी समाई न हो सकी तो यह जनता की गीत-परंपरा में भरपूर प्रसरित हुआ। लावनी और ख्याल में लोकभाषा रेखता या खड़ी बोली के सहारे इसकी दौड़ दूर तक हो गई। इसका स्पष्ट रूप है लौकिक प्रेम का अलौकिक प्रेम में लय। इश्क-मजाजी की इश्क-हकीकी में परिणति। आलम, ठाकुर और द्विजदेव शुद्ध भारती प्रेम-पद्धति के प्रतिनिधि हैं, पर रसखानि, घनआनंद और बोधा में यह अपनी झलक मारती है। रसखानि और घनआनंद ने बड़े ढंग से इसे ग्रहण किया है। पर बोधा इसे अपने रंग में रँग न सके। उन्होंने तो बार बार इसकी डुग्गी पीटी है—

इस्कमजाजी मैं जहाँ इस्कहकीकी खूब।—(विरह-वारीश)

रसखानि ने भी यही कहा है, इससे भी स्पष्ट, पर ढंग से—

आनँद-अनुभव होत नहिं बिना प्रेम जग जान।
कै वह बिषयानंद कै ब्रह्मानंद बखान॥

घनआनंद ने भी लौकिक प्रेमलीला को अलौकिक प्रेमलीला का कण कहा है, किंतु रसखानि और घनआनंद दोनों ने कृष्णप्रेम में इसे छिपा रखा। बोधा ने उधर उतना ध्यान नहीं दिया। वे कृष्णभक्ति में लीन नहीं हुए। यदि कृष्ण-भक्ति का अवलंब वे लेते भी तो उनकी प्रवृत्ति और रंग-ढंग से यह जान पड़ता है कि बहुत कुछ नहीं तो कुछ कुछ कुंदनशाह की सी वृत्ति होती। बोधा प्रेम की प्रकृत गंभीरता को प्रायः सँभाल नहीं पाते। कृष्ण की प्रेम-लक्षणा भक्ति का विकास आचार्यों ने लौकिक क्रीड़ा से संबद्ध रखकर किया। इसलिए सूफियों की 'प्रेम की पीर' को उसी में लय हो जाने का अवसर मिल गया। घनआनंद ने सुजान के प्रति अपने प्रेम (इश्कमजाजी) को राधा-कृष्ण की अलौकिक प्रेम-लीला (इश्कहकीकी) का क्षुद्र अंश कहा है—

प्रेम को महोदधि अपार हेरि कै,
    बिचार बापुरो हहरि वार ही तें फिरि आयौ है।
ताही एकरस ह्वै बिबस अवगाहैं दोऊ,
    नेही हरि-राधा जिन्हैं देखैं सरसायौ है।
ताकी कोऊ तरल तरंग-संग छूट्यौ कन,
    पूरि लोक लोकनि उमगि उफनायौ है।
सोई घनआनँद सुजान लागि हेत होत,
    ऐसें मथि मन पै सरूप ठहरायौ है॥

संसार में फैला प्रेम-व्यापार उसी प्रेम-महोदधि का एक कण है जिसमें राधा-कृष्ण जलकेलि किया करते हैं। वही कण घनआनंद और सुजान के प्रेम में भी लगा हुआ है। सूफियों की भाँति घनआनंद ने लौकिक प्रेम में कई स्थानों पर ब्रह्म-प्रेम का आभास भी दिया है—

बगरौ जग छाय रह्यौ घनआनँद चातिक लौं तकियै अब तौ।[1]

सूफियों का ब्रह्म-विरह इस सवैये में स्पष्ट है—

---

१ घनआनंद-कवित्त—८०।

अंतर हौ किधौं अंत रहौ दृग फारि फिरौं कि अभागनि भीरौं।
आगि जरौं अकि पानि परौं अब कैसी करौं हिय का बिधि धीरौं॥
जौ घनआनँद ऐसी रुची तौ कहा बस है अहो प्रानिन पीरौं।
पाऊँ कहाँ हरि हाय तुम्हैं धरनी मैं धँसौं कि अकासहि चीरौं॥

इसलिए इन्हें रहस्योन्मुख प्रेमी कवि तथा दूसरों को उदात्त प्रेम-लीन शुद्ध प्रेमी कवि कह सकते हैं। इस प्रकार शृंगारकाल का विभाजित रूप यों हुआ—

- शृंगारकाल
  - रीतिबद्ध काव्यधारा
    - लक्षणबद्ध काव्य
    - लक्ष्यमात्र काव्य
  - रीतिमुक्त या स्वच्छंद काव्यधारा
    - रहस्योन्मुख काव्य
    - शुद्ध प्रेमकाव्य

साहित्य के इतिहास में काल-विभाजन ऐसा सटीक नहीं हो सकता कि किसी निश्चित संवत् से नए युग या काल का प्रवर्तन मान लिया जाय। अर्थात् यह नहीं कहा जा सकता कि अमुक संवत् से पूर्ववर्ती काल की प्रधान प्रवृत्ति समाप्त हो गई और परवर्ती काल की नई विशिष्ट प्रवृत्ति का उद्भव हो गया। वस्तुतः साहित्य में कई प्रकार की प्रवृत्तियाँ चलती रहती हैं; उन्हीं में से किसी काल में कोई प्रवृत्ति प्रधान होकर और अनेक रूप-रंग पकड़कर व्याप्त हो जाती है। जिस साहित्य की परंपरा प्राचीन होती है उसमें परवर्ती काल में पहले से जमी हुई प्रवृत्तियों में से कोई एक किसी समय प्रबल होकर छा जाती है और अन्य क्षीण होकर धीरे-धीरे दब जाती हैं। ऐतिहासिकों ने साहित्य-धारा को पहाड़ी सरिता का रूपक इसी से दिया है। पर्वत से उद्गत सरिता आरंभ में लघु-लघु कुल्याओं के रूप में बहती है और फिर परस्पर मिलकर वे ही कन्याएँ सरिता बन प्रसरित होती हैं। पटपर (समतल) पर पहुँचकर सरिता का पाट बढ़ जाता है, कभी-कभी ढाल के कारण कई धाराएँ भी हो जाती हैं, समय-समय पर सहायक नदियाँ भी मिलती रहती हैं। वस्तुतः साहित्य में भी जो प्रवृत्ति एक बार आविर्भूत और विकसित हो जाती

१ वही, २८५।

है वह बाधा के लिए शुद्ध आम्नाय नहीं हो पाती। हिंदी-साहित्य का इतिहास इसका साक्षी है। उसमें जो प्रवृत्ति एक बार आविर्भूत हुई वह किसी न किसी रूप में निरंतर चलती रही। किसी काल में जब कोई प्रवृत्ति प्रधान होने लगती है तब कुछ समय तक तो पूर्ववर्ती प्रमुख प्रवृत्ति के साथ साथ चलती है पर आगे बढ़कर नूतन प्रवृत्ति प्रधान और पूर्ववर्ती प्रवृत्ति गौण हो जाती है। शृंगारकाल के पूर्व भक्ति की प्रवृत्ति प्रधान थी। पर भक्ति का प्राधान्य होने के साथ ही शृंगार भी अपना सिर उठाने लगा और आगे चलकर वह सर्वांग से उत्थित दिखाई पड़ा। भक्ति की रचना उसके साथ छिपती दिखाई देने लगी, पर भक्ति का लोप नहीं हुआ।

शृंगार की प्रवृत्ति का लोप साहित्य में कभी नहीं होता। हिंदी की ही दृष्टि से विचार करें तो स्पष्ट दिखाई देता है कि प्राकृत और अपभ्रंश-काल में शृंगार और वीरता की धाराएँ प्रवाहित थीं। हिंदी के वीरगाथा-काल या वीरकाल में शृंगार या प्रेम शौर्य या उत्साह से संपृक्त था। वीरता का जो प्रदर्शन 'रासो'-ग्रंथों में हुआ वह प्रीति और वीरता की गंगा-जमुनी धारा के रूप में। जैसे यूरोप के पुराने काव्यों ('इलियड' और 'ओडेसी') में प्रेम और युद्ध ('लव' एंड 'वार') का मेल था वैसे ही इन काव्यों में भी। प्रेम हेतु के रूप में आँका है और शौर्य कार्य-रूप में। लोकदृष्टि से विचार करें तो अवगत होगा कि प्रेम और साथ ही उत्साह दोनों के आलंबन लौकिक ही थे। प्रेम और उत्साह के आलंबनों का लौकिकता से अलौकिकता की ओर धीरे धीरे बढ़ाव होने लगा। जयदेव ने संस्कृत में राधा-कृष्ण के प्रेमगीत गाए तो उसकी प्रतिध्वनि विद्यापति के गीतों में हुई। सूरदास तथा कृष्ण-भक्ति-काव्य के कवियों में प्रेम का लौकिक आलंबन भक्ति का मधुर या अलौकिक आलंबन हो गया और प्रेमलक्षणा भक्ति का माधुर्य पुंजीभूत हुआ। भागवत के लीलापुरुषोत्तम वृंदावन में अपनी प्रेमलीला का अभिनय करते दिखाई पड़े। भारतीय वीरों के लौकिक वीरोल्लास की गाथा पराजित देश किस मन से गाता और किन कानों से सुनता, इसलिए वाल्मीकि के मर्यादापुरुषोत्तम तुलसी के लोकरक्षक भगवान् रामचंद्र का रूप धरकर सामने आए। प्रेम की पुकार न कबीर आदि संतों की बंद गली और न 'प्रेम की पीर' जायसी आदि सूफी कवियों से उठी। लौकिक प्रेम अलौकिक प्रेम या भक्ति में परिवर्तित हो गया। काव्य की शुद्ध प्रेमधारा अपना मार्ग खोज रही थी। भक्तिकाल में ही भक्ति से पृथक् होकर शृंगार ने अपना

अलग पथ पकड़ना आरंभ कर दिया, भक्ति के बीच से आने के ही कारण 'शृंगार' के प्रधान आलंबन राधा और कृष्ण ही रहे। नहीं तो प्राकृत, अपभ्रंश तथा लोकगीतों तक में प्रेम की अभिव्यक्ति ऐसा आवरण लेकर नहीं हुई है। आदिकाल या वीरकाल में लौकिक जीवन के वीरोल्लास का ही चित्रण था। उस समय तक हिंदी-साहित्य ने अपनी 'प्राकृत'-परंपरा ही रक्षित रखी। पर भक्तिकाल में साहित्य संस्कृत की ओर गया। श्रीमद्भागवत और ब्रह्मवैवर्तपुराण की कृष्णलीला दृष्टिगत रही। अलौकिकता में प्रविष्ट हो जाने से फिर जब कवि लोग जीवन की ओर मुड़े तब 'भाषा' की परंपरा पीछे छूट गई। भक्ति अपनी छाप शृंगार पर छोड़ती गई। कृष्णकाव्य से ही शृंगारिक रचना का संबंध रहा। यह भी एक हेतु है कि शृंगार में परकीया-प्रेम की उक्तियाँ अधिक कही गईं। भक्ति में श्रीकृष्ण की वृंदावन-व्यापिनी लीला ही की गई थी। अपभ्रंश या लोक-वाङ्मय की सी स्वकीया-प्रीति-परक मार्मिकता शृंगारकाल के कवि भूल ही बैठे।

'शृंगारकाल', जिसे इतिहासकारों ने 'अलंकृत काल' या 'रीतिकाल' कहा है, साधारणतया संवत् १७०० के आसपास से आरब्ध माना जाता है। विचार करने पर अवगत होता है कि साहित्य की शृंखला में इस काल की कड़ी भक्तिकाल की कड़ी के गर्भ से घूमती हुई आगे बढ़ी है। शुद्ध या पृथक् रूप में शृंगार की प्रस्तावना इससे कम-से-कम सौ वर्ष पूर्व, अर्थात् संवत् १६०० के आसपास, अवश्य हो गई थी। सं० १५९८ में कृपाराम ने 'हिततरंगिणी' लिखी थी, जिसमें शृंगार रस का दोहों में विवेचन किया गया है अर्थात् लक्षण-लक्ष्य जुटाए गए हैं। उन्होंने सूचित किया है कि और कर्ता बड़े छंदों में रसग्रंथ प्रस्तुत करते हैं, मैंने छोटे छंद अर्थात् दोहा, सोरठा, बरवै में इसका प्रणयन किया। इससे एक ओर तो यह स्पष्ट पता चलता है कि रीतिग्रंथ प्रस्तुत करने का स्फुरण कुछ और पहले का है और दूसरी ओर यह सूचना मिलती है कि वीरता और भक्ति की लपेट से बहुत-कुछ बचकर भी शृंगार अपने लिए मार्ग प्रशस्त कर रहा था। 'अलंकृत काल' या 'रीतिकाल' नाम मानने से यह निश्चय करना अनिवार्य हो जाता है कि अलंकृत या रीतिबद्ध ग्रंथों की अखंड परंपरा कब से और किस आदर्श पर प्रवर्तित हुई। रीति के सिलसिले में 'कृपाराम' का नाम सबसे पहले लिया जाता है; पर भक्ति की प्रभूत ग्रंथराशि सामने पाकर काल की सीमा कुछ छोटी करनी पड़ती है। यदि

आदर्श की बात देखी जाय तो पता चलता है कि अकबर के दरबारी 'करनेस' कवि ने 'कर्णाभरण', 'श्रुतिभूषण' और 'भूपभूषण' इसी आदर्श पर निर्मित किए जिस आदर्श पर आगे चलकर अन्य अनेक अलंकार-ग्रंथों का निरूपण हुआ। जयदेव के 'चंद्रालोक' और अप्पय दीक्षित के 'कुवलयानंद' ही इनके भी आधार थे। अलंकार-निरूपण में जैसे संस्कृत के इन ग्रंथों का सहारा लिया गया वैसे ही रस-निरूपण में भानुदत्त की 'रसतरंगिणी' का आधार रहा और नायिकाभेद में उन्हीं की 'रसमंजरी' का। चंद्रालोक, रसतरंगिणी और रसमंजरी संस्कृत के पिछले ढंग की रचनाएँ हैं जिनमें विवेच्य विषय का निरूपण बड़ी ही बोधगम्य शैली से किया गया है। केशवदासजी की 'कविप्रिया' को सामने रखकर यह कहना कि वह वामन, दंडी आदि अलंकारवादी आचार्यों के अनुगमन पर निर्मित हुई है, और हिंदी के अन्य ग्रंथ कुवलयानंद या चंद्रालोक भिन्न आदर्श पर खड़े हुए हैं, सोलह आने ठीक नहीं है। वामन और दंडी रीतिवादी या अलंकारवादी थे, जयदेव (चंद्रालोक के कर्ता) तो कट्टर अलंकारवादी थे, उनसे भी बढ़कर। वे तो यहाँ तक कह जाते हैं कि काव्य को निरलंकार कहना वैसा ही है जैसे अग्नि को अनुष्ण कहना अर्थात् उनकी दृष्टि में अलंकार काव्य का नित्य धर्म है। ऐसा उन्होंने मम्मटाचार्य का खंडन करने के लिए लिखा है; क्योंकि मम्मटाचार्य ने काव्यलक्षण का विचार करते हुए कहा है कि वह कहीं-कहीं अनलंकृत भी हो सकता है (अनलंकृती पुनः क्वापि)। उन्हीं का यह अलंकारवादियों की ओर से उत्तर था। वामन ने भी ऐसी ही बात कही थी। उन्होंने कहा कि काव्य, सौंदर्य की विशेषता के ही कारण, ग्राह्य होता है (काव्यं ग्राह्यमलंकारात्) और सौंदर्य ही अलंकार है (सौन्दर्य-मलंकारः)। इनकी दृष्टि काव्य के 'सौंदर्य' पर ही थी, उसकी 'रमणीयता' पर नहीं, अर्थात् वे काव्य का बाह्य ही देखते थे, उसका अभ्यंतर नहीं। इसी से रसों और भावों को भी इन्होंने अलंकार मान लिया। ये वस्तुतः आधुनिक शब्दों में 'कलावादी' थे। यह (आलंकारिकों का) संप्रदाय पुराना है। आगे चलकर रस-संप्रदाय खड़ा हुआ। अलंकार्य (वर्ण्य विषय) और अलंकार (वर्णन-प्रणाली) का जो भेद रसवादी आचार्यों ने प्रतिपन्न किया उसका प्रभाव काव्यक्षेत्र के समस्त संप्रदायों पर पूरा-पूरा नहीं पड़ा, अलंकारवादियों पर तो बहुत कम।

केशवदासजी ने 'कविप्रिया' में शुद्ध अलंकारवादी दृष्टि से काम नहीं लिया है। उन्होंने काव्य की सारी सामग्री को 'अलंकार' कहकर वर्ण्य-वस्तु और वर्णन-प्रणाली का अभेद अवश्य दिखलाया है, पर रसदृष्टि उन्होंने त्याग दी हो ऐसा प्रतीत नहीं होता। दंडी के 'काव्यादर्श' पर ही वह अवलंबित भी नहीं है। बात यह है कि वह केवल 'अलंकार' की दृष्टि से प्रस्तुत ही नहीं की गई है, वह वस्तुतः 'कवि-शिक्षा' की पुस्तक है। उसमें कवि होने का हौसला रखनेवालों को 'कवि-समय' से परिचित कराने का प्रयास ही अधिक है। इसके लिए उसमें अधिक सामग्री 'कविकल्पलतावृत्ति' से उठाकर रखी गई है। वह वस्तुतः काव्य की सीमा, उसका स्वरूप, उसकी धारणा आदि का पता देनेवाली है, इसीसे उसका नाम 'कविप्रिया' है। अलंकारों का प्रतिपादन उसमें वर्णन-प्रणाली की रूपरेखा मात्र खींचने के लिए हुआ है, अर्थात् वह गौण है। यह मानने में कोई आनाकानी नहीं कि केशवदासजी चमत्कारवादी थे। पर वे अलंकार्य और अलंकार का भेद माननेवाले नहीं थे, ऐसा नहीं है। अलंकारों के संबंध में उन्होंने यह कभी नहीं कहा कि जो कुछ कहा जाय वह सब अलंकार ही है। यदि ऐसा होता तो 'नग्नत्व' दोष उन्होंने स्वीकार ही न किया होता, जहाँ निरलंकार कविता रखी गई है। यही क्यों उन्होंने 'हीनरस' दोष भी माना है; कविता में रस होना उन्हें मान्य है। यही उनकी दृष्टि में काव्यार्थ है। पर वे यह अवश्य मानते थे कि 'भूषन बिन न बिराजई कविता बनिता मित्त'। पर वह कविता कैसी हो—'जदपि सुजाति सुलच्छनी सुबरन सरस सुवृत्त'। यहाँ 'सरस' शब्द क्या कह रहा है? यही कि केशव को रस अमान्य नहीं था। उन्होंने 'रसिकप्रिया' भी तो लिखी है—रसवादी 'साहित्यदर्पण' और 'शृंगार-प्रकाश' के आधार पर। वहाँ रस रसवत् अलंकार मात्र नहीं कहे गए हैं; इसलिए केशवदासजी को पुराना या अलंकारवादी कहकर छोड़ने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। अब, 'कृपाराम' को शृंगारकाल की सूचना देनेवाला आचार्य या कवि मानने में क्या बाधा है। 'हिततरंगिणी' 'रसतरंगिणी' का ही आधार लेकर चली जिसके आधार पर हिंदी के परवर्ती लेखकों के ग्रंथ बने, ऐसा उसका वर्ण्य विषय और नाम तक बतलाता है। इस प्रकार समय के सीमा-निर्धारण में 'आदर्श' का पक्ष मानने पर भी कृपाराम सीमा के बाहर नहीं किए जा सकते।

रही अखंड परंपरा की बात। विचार करने पर परंपरा कृपाराम से भी पहले जाती है। उन्होंने स्वयं लिखा है कि लोग बड़े छंदों में रसनिरूपण करते हैं ये लोग उनके पूर्ववर्ती ही होंगे—पर वे कौन हैं, इतिहास इस संबंध में मौन है, उसके पास पर्याप्त सामग्री का दारिद्र्य है। पर कृपाराम से लेकर संवत् १७०० तक रीतिग्रंथों की अखंड परंपरा रही है, इस संबंध में इतिहास मुखर है। देखिए—

संवत् (रचनाकाल)	कवि	रचना
१५९८	कृपाराम	हिततरंगिणी
१६१५	गंग	फुटकल
१६१६	मोहनलाल	शृंगारसागर
१६२०	मनोहर	फुटकल
१६३०	गंगाप्रसाद	कोई रीतिग्रंथ बनाया जिसका नाम अज्ञात है।
१६३७	करनेस	कर्णाभरण, श्रुतिभूषण, भूपभूषण
१६४०	बलभद्र मिश्र	नखशिख
१६४०	रहीम	बरवै-नायिकाभेद
१६४८	केशवदास	रसिकप्रिया, कविप्रिया
१६५०	मोहनदास	बारहमासा
१६५१	हरिराम	छंदरत्नावली
१६५२	बालकृष्ण	रसचंद्रिका (पिंगल)
१६६०	मुबारक	अलकशतक, तिलशतक
१६७५	लीलाधर	नखशिख
१६८८	सुंदर	सुंदरशृंगार
१७०६	सेनापति	षट्ऋतुवर्णन

इस प्रकार अखंडता का बोध सरलता से हो जाता है। ये सब कवि रीतिबद्ध लिखनेवाले थे, किसी ने लक्षणबद्ध लिखा, किसी ने शास्त्र का अंगोपांग लेकर लक्ष्य मात्र—जैसे नखशिख, ऋतुवर्णन, बारहमासा आदि। परंपरा बराबर जुड़ती चली आ रही है। इसके अतिरिक्त इस शैली में ऐसे कोडियों कवि और हैं जिन्होंने बिहारी

आदि की भाँति काव्यांगबद्ध रचना न करके रीतिसिद्ध मुक्तक रचना की है। वस्तुतः सत्रहवीं शती विक्रमीय के आरंभ में एक ओर भक्ति की सरिता कई धाराओं में बह रही थी तो दूसरी ओर शृंगार की पृथक् धारा भी भक्ति की कृष्णपरक भक्तिधारा के ठीक समानांतर। भक्ति में भी शृंगार की रीतिबद्ध रचना होती थी। उसमें नखशिख, षड्ऋतु, बारहमासा आदि के वर्णन भरे पड़े हैं। यदि इतिहासकारों के ही अनुसार 'साहित्यलहरी' को सूरदास की रचना मानें तो उसमें नायिकाभेद और अलंकार के लक्षण-लक्ष्य दृष्टकूट के चमत्कार के साथ उलझे पड़े हैं ; फिर कैसे कहा जाय कि रीति का प्रवर्तन बाद में हुआ। हिंदीवालों को स्वतंत्र निरूपण करना ही कहाँ था ! संस्कृत की पकी पकाई सरस सामग्री पहले से ही थी, उठाकर हिंदी-पद्यों के साँचे में ढाल भर देना था। रीति का जो कोई विकास नहीं दिखाई देता उसका कारण संस्कृत से विवेच्य विषय ज्यों का त्यों ले लेना है। संस्कृत में विचार हो भी बहुत चुका है। हिंदी में सच पूछिए तो भिन्न भिन्न संप्रदायों का चलन हुआ ही नहीं। कहीं-कहीं जो अलंकारवादी कवि दिखाई पड़ते हैं वे वैसे हैं नहीं। अनुकार्य ग्रंथों के अनुवाद का ही परिणाम है कि वे अलंकारवादी प्रतीत होते हैं, इसीसे रीतिकाल या शृंगार-काल की सीमा कुछ पीछे हटानी पड़ती है। संवत् १६०० के आगे-पीछे ही शृंगारकाल की सारी प्रवृत्तियाँ प्रचलित हो जाती हैं। रीतिमुक्त रचना करनेवाले 'रसखानि' और 'आलम' भी १६४० के आसपास अपनी काव्यधारा बहा रहे थे।

इस संबंध में यह कह देना आवश्यक है कि भक्ति और शृंगार की रचनाओं के क्षेत्र भिन्न थे। शृंगारी कवि अधिकतर दरबारी थे। भक्त कवियों का संबंध दरबारों से बिलकुल नहीं था। उनकी रचना वस्तुतः जनता की इच्छाओं की प्रतिध्वनि थी। पूर्वोक्त तथा अन्य बहुत-से कवि दरबारों में भी अपनी 'कविताई' का चमत्कार दिखा रहे थे। अकबर के दरबार में कई कवि थे जो अधिकतर शृंगार की ही रचना किया करते थे। इनके नामों की उद्धरणी इस सवैये में इस प्रकार है—

पाय प्रसिद्ध पुरंदर ब्रह्म सुधारस अंमृत अंमृतबानी।
गोकुल गोप गोपाल गनेस गुनी, गुनसागर गंग सुज्ञानी।
जोध जगन्न जगे जगदीस जगामग जैत जगत्त है जानी।
कोरे अकब्बर सों न कधी, इतने मिलि कै कविता जु बखानी।।

शृंगारकाल की अधिकांश रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध रचना दरबारों में बनी—मुख्यतः चाहे बादशाहों, शाहों या शाहजादों के रहे हों, चाहे राजा-महाराजाओं, रईसों, तअल्लुकेदारों या जमींदारों के। इस रचना को 'दरबारी' कहना सोलह आने ठीक है। रीतिमुक्त कवियों (रसखानि, घनआनंद, बोधा आदि) में से कई का संबंध दरबारों से है अवश्य ; पर वे अपनी स्वच्छंद वृत्ति के कारण दरबारों के आसरे पर बहुत दिनों तक टिकनेवाले नहीं थे। इसी से उन्होंने दरबारों का त्याग किया। वहाँ से छूटकर जनता के सांनिध्य में आते ही वे जो भक्ति की रचना में रमते हुए उसका हेतु भी स्पष्ट हो जाता है।

इस प्रकार इस 'काल' का आरंभ संवत् १६०० के आसपास से ही मानना चाहिए। पर १६०० से १७०० तक वस्तुतः इस काल की प्रस्तावना ही है। शृंगार के अभिनय का आरंभ इसके अनंतर ही हुआ। धारा का वेग तभी प्रखर हुआ। भक्ति की रचनाएँ संवत् १७०० तक खूब हुई थीं। इधर भक्ति का वेग कम तथा उधर शृंगार की धारा वेगवती हुई। भक्ति अपना प्रभाव इन कवियों पर भी छोड़ गई। इन्होंने नायक और नायिका के रूप में श्रीकृष्ण और राधिका या गोपियों को स्वीकार किया। रचना की लोकस्वीकृति के संबंध में वे अपने मन को भक्ति की आड़ में यों फुसला लेते थे—

आगे के सुकवि रीझिहैं तौ कविताई
न तु राधिका-कन्हाई सुमिरन को बहानो है।

शृंगारकाल की उत्तर-सीमा बहुत कुछ स्पष्ट है। भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र ने हिंदी में आधुनिक या नूतन विचारधारा प्रवाहित की, यद्यपि उन्होंने पुरानी काव्यधारा भी अक्षुण्ण रखी। कवित्त-सवैयों में प्रेम की—निश्चय ही स्वच्छंद प्रेम की—रीति-मुक्त शृंगारिक रचना की ओर पहले से अधिक की। पुराने ढंग की शृंगारी रचनाएँ तो द्विवेदीजी के समय तक होती आई हैं और अधिक परिमाण में। कविसंमेलनों में समस्यापूर्ति की और पहले गोष्ठियों में अनुप्रास यमक आदि की बहार देखने-सुनने योग्य होती थी। भारतेंदु बाबू के समय में शृंगारिक कविता करनेवाले सभी थे, एक कपोल से पुरानी शृंगारी कविता निकलती थी और दूसरे से नए ढंग की देशप्रेम आदि की कविता। इसी युग में काशी, कानपुर, आजमगढ़ आदि कई स्थानों पर कविमंडल, कविसमाज, कविसभा आदि की स्थापना हो चुकी थी,

जिनमें अधिकतर समस्यापूर्ति के रूप में प्रायः शृंगारिक कविता ही होती थी। संवत् १९५० के उपरांत शृंगार की पुरानी धारा मंद पड़ने लगी और लगभग १९७५ तक आते-आते वह विलीन हो गई। जैसे संवत् १६०० से १७०० तक शृंगार का प्रस्तावना-काल या उपक्रमकाल है वैसे ही १९०० से १९७५ तक अवसानकाल या उपसंहारकाल। नई धारा १९०० के आसपास प्रकट हो गई थी, जिसके साथ पुरानी धारा भी चलती रही। इसलिए शृंगारकाल की कड़ी के गर्भ से आधुनिक काल की कड़ी १९०० के लगभग घूमी और १९५० तक आते-आते वह घूमकर आगे चली आई, १९७५ तक उसने अपने को एकदम पृथक् कर लिया।

शृंगारकाल की प्रस्तावनाएँ भक्तिकाल के भीतर ही हो गई थीं। राधा-कृष्ण की जैसी प्रेमक्रीड़ा का वर्णन कृष्णभक्त-कवि कर चले वह शृंगार का बहुत बड़ा अवलंब सिद्ध हुई। राधा-कृष्ण की भक्ति में रसदृष्टि से भक्त कवियों ने तीन ही रस ग्रहण किए थे—वत्सल, भक्ति और शृंगार। 'वत्सल' तो हिंदी में भक्तिकाव्य में ही व्यक्त हुआ और उसके साथ ही लुप्त भी हो गया। श्रीवल्लभाचार्य ने अपने संप्रदाय में कृष्ण के बालभाव की उपासना चलाई। इसी से उनके वल्लभसंप्रदाय के कवियों ने उसकी धारा वेग से बहाई। पर धीरे धीरे कृष्णभक्ति ने जो अनेक रूप धारण किए उनमें 'मधुर रस' या 'माधुर्य भाव' ने प्रधानता पाई। श्रीचैतन्य के गौड़ीय संप्रदाय का प्रभाव ऐसा पड़ा कि 'वत्सल रस' उसमें लीन हो गया। माध्व, निबार्क (टट्टी, अनन्य, राधावल्लभी) जितने कृष्णभक्ति के अन्य संप्रदाय दिखाई पड़ते हैं उन सबकी उपासना शृंगार-प्रमुख हो गई, उनमें 'राधा' की योजना प्रधान हुई। राधातत्त्व के जुड़ जाने से प्रणय-लीला के गीत गाए जाने लगे। फल यह हुआ कि वल्लभ-कुल के भक्त भी राधाकृष्ण की प्रेमलीला के विस्तार में ही लग गए। इसलिए आगे चलकर वत्सल रस का प्रवाह रुक गया। भक्ति और शृंगार ने मिलकर 'मधुर रस' का रूप धारण किया, जिस रस के भीतर शृंगार रस ने सचमुच अलौकिक रस का रूप पाया। भक्ति की पिछले कोटि की रचना काव्य-दृष्टि से शृंगार की ही रचना हो गई, भले ही उसे हम लौकिक शृंगार की सीमा में न घेर सकें पर वह शृंगार का ही परिष्कृत, संस्कृत या ईश्वर-संबद्ध—चाहे जो नाम रखें—रूप हो गई। विनय आदि के रूप में जो थोड़ी सी रचना रह गई उसे ही शुद्ध भक्तिरस की रचना कह सकते हैं। इस प्रकार शृंगार रस की धारा

को फैलने के हेतु बहुत चौड़ा मैदान मिल गया। पर भारतीय काव्य-परंपरा में आचारनिष्ठता का ध्यान बराबर रखा गया है। शृंगारकाल में कवियों ने नायक-नायिकाओं की प्रेमलीला का निरूपण आरंभ किया तो उसमें स्वकीया के प्रणय के विस्तार का अवकाश न मिला। अपभ्रंश की पुरानी रचनाओं और देश-गीतों में स्वकीया-प्रेम के बड़े ही मधुर एवं मर्मस्पर्शी संदर्भ दिखाई देते हैं, पर हिंदी में शृंगार की काव्यधारा भक्तिधारा से फूटी, सीधे लोकधारा से उसका संबंध नहीं रहा, अतः स्वकीया की प्रीति के रमणीय स्थलों का संनिवेश उसमें न रह सका। अलौकिक दृष्टि से भक्ति के भीतर जो दांपत्य-प्रेम रखा गया वह सर्वत्र स्वकीया का प्रेम न रहा, क्योंकि उपास्य और उपासक या आकर्षक और आकृष्ट के रूप की सबसे ऊँची भूमि परकीया-प्रेम के परिष्कार में दिखाई पड़ी, जिसमें अलौकिक संबंध का आरोप होने लगा। इस प्रकार प्रेम की विभूति के साहचर्य में परकीया-प्रेम के विस्तार को विशेष उत्तेजना प्राप्त हुई। हिंदी-साहित्य को उस समय जिस साहित्य से प्रतिद्वंद्विता करनी पड़ी उसमें परकीया-प्रेम का बाहुल्य था। प्रतिद्वंद्विता से पीछे हटने पर कवियों की हेठी होती थी। अतः नायिका-भेद में परकीया-प्रेम ले लिया गया, पर आचारनिष्ठता को ध्यान में रखकर प्रेम के आलंबन श्रीकृष्ण और राधिका मान गए। प्रेम की घोर वासनापूर्ण रचना करनेवालों ने भक्ति की शृंगारिकता की ओट लेने का पूरा प्रयत्न किया। अपनी रचना के लिए वे धार्मिक बुद्धि जगाते हुए कह गए कि 'आगे के सुकवि रीझिहैं तो कविताई, नतु राधिका-कन्हाई सुमिरन को बहानो है।' लक्षण-ग्रंथों में यह भी कहा गया कि नायक होने योग्य और कोई नहीं कृष्ण ही है; ठीक इसी प्रकार नायिका होने योग्य राधा या गोपी।

यह उद्भावना शृंगारकाल की न थी, बहुत पहले की थी। विद्यापति आदिकाल में ही राधा-कृष्ण की प्रेमलीला का वर्णन साहित्यिक दृष्टि से (भक्त की दृष्टि से नहीं) कर गए थे। भक्त जयदेव की पद्धति उन्होंने साहित्य में प्रतिष्ठित कर दी थी। ध्यान देने की बात है कि विद्यापति ने भक्त कवियों की भाँति श्रीकृष्ण या राधा को प्रभु या स्वामिनी के रूप में नहीं रखा, यद्यपि उनके शृंगार के पदों या गीतों की सारी रचना कृष्ण और राधा के ही स्नेह की अभिव्यक्ति है, अतः उन्हें भक्त कवि कहना भ्रांतिशून्य नहीं है। उनके राधा-कृष्ण भक्ति के नहीं, शृंगार के देवता हैं।

इस प्रकार रीतिकाल में जितनी रचना हुई उसमें प्रायः हरि और गोपी या राधा का कीर्तन तो मिलता है पर उसे भक्ति की रचना नहीं कह सकते। इन कवियों ने भक्ति की शृंगारमयी रचना का भक्तिवाला अंश त्याग दिया। आवरण के रूप में भक्ति अवश्य रह गई, पर सारी रचना लौकिक प्रेम-प्रसंगों की ही प्रस्तुत होने लगी। शृंगारकाल की सीमा के भीतर शृंगार के अतिरिक्त वीररस और भक्ति-रस की रचना बराबर होती रही। पर वीररस की रचना थोड़ी है और जिन्होंने वीररस की रचना की वे शृंगार की रचना से विरत नहीं थे। भक्ति की जो रचना बाद में हुई उसमें सूरदास आदि भक्त कवियों से भी बढ़-चढ़कर शृंगार की छाप पड़ी। इस प्रकार उस युग में शृंगार ही शृंगार दिखाई देता है। इसी से इसे रीति-काल माननेवाले विद्वान् भी रसदृष्टि से 'शृंगारकाल' कहना उचित समझते हैं।[1]

भक्ति के ही क्षेत्र में उत्पन्न होने के कारण शृंगारकाल में जो व्यापक प्रवृत्ति दिखाई पड़ी वह मुक्तक रचना की थी। कृष्णभक्तों ने श्रीकृष्ण-चरित का उतना ही अंश काव्यबद्ध किया जो वृंदावन और मथुरा से संबद्ध था। वे केवल कोमल भावों के ही कवि रहे। प्रबंध के क्षेत्र में जिस बहुवस्तु-व्यापार और घटनाचक्र के प्रवर्तन की अपेक्षा होती है उससे इन्होंने पीछा छुड़ा लिया। कृष्ण की सारी लीला मुक्तक गीतों में गाई गई। अतः भक्ति के जिस क्षेत्र से शृंगारी कवियों ने संबंध जोड़ा वहाँ प्रबंध की भूमि ही नहीं मिली। कृष्णभक्ति-संप्रदायों में कीर्तन का माहात्म्य स्वीकृत था, इसके लिए गीत तो उपयुक्त थे ही, फुटकल लीला ही काम की हो भी सकती थी। गीत-पद्धति का प्रबंध से सदा विरोध रहा है, आज भी है। गीत चाहे बाह्यार्थ-निरूपक हो चाहे स्वानुभूति-प्रदर्शक, वह किसी भाव में कुछ देर तक लीन रखना चाहता है, और लीनता में गहराई चाहता है। प्रबंध में कथातत्त्व भी कुछ कुछ कुतूहल जगाए रहता है, इसी से लीनता की मात्रा सर्वत्र अधिक हो नहीं पाती। जहाँ लीनता पर विशेष दृष्टि रहेगी वहाँ मुक्तक की प्रवृत्ति अवश्य प्रधान होगी, गहरी लीनता को ही लक्ष्य करके प्रबंध-काव्यों में भी गीत रखे जाने लगे हैं, जिनके कारण प्रबंध की स्वाभाविक धारा अवरुद्ध हो जाती है। गीतों की ही गूँज के मेल में शृंगारकाल में कवित्त सवैयों का—विशेष रूप से

१ "प्रधानता शृंगार की ही रही। इससे इस काल को रस के विचार से कोई शृंगारकाल कहे तो कह सकता है।"—हिंदी-साहित्य का इतिहास, आचार्य शुक्ल-कृत, पृष्ठ २६८।

सवैयों—का अधिक चलन हुआ। कहीं कहीं प्रबंध के क्षेत्र में भी कवित्त-सवैयों की योजना कर दी गई है, जैसे नरोत्तमदास के 'सुदामा-चरित' में। पर उसमें भी संवादों और वर्णन के लिए ही इनका उपयोग हुआ, जहाँ किसी भाव की लीनता ही कवि का लक्ष्य है। कथा कहने के लिए उन्होंने दोहों का विधान किया है। बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' के उद्धव-शतक में कवित्तों में संवाद या उक्तियाँ बाँधी गई हैं, जिनमें 'गोपी-विरह' की क्रमबद्ध कथा के सहारे उक्तिविधान देखकर भ्रमवश लोग उसे प्रबंध-काव्य या अर्धखंड-काव्य कहने लगते हैं। छंद तो छंद उसका नाम भी मुक्तक-शैली की रचनाओं का है, इस पर भी ध्यान नहीं दिया जाता।

शृंगारकाल में रीतिबद्ध रचयिताओं ने लक्षण-ग्रंथ के निर्माण में हाथ लगाया। वहाँ प्रत्येक विषय का लक्ष्य फुटकल रूप में ही प्रस्तुत हो सकता था। यह कहा जा चुका है कि ये कवि लक्षण-शास्त्र का निर्माण करनेवाले आचार्य नहीं थे। लक्षण के निरूपकों ने स्वतः अपनी कृति से ही लक्षण-ग्रंथ भरे हैं, ऐसी प्रवृत्ति संस्कृत-साहित्य में कम थी। लक्ष्य पहले, लक्षण पीछे होता है। संस्कृत में इसी से लक्षणों के उदाहरण प्रायः विभिन्न कवियों या काव्यों से चुने गए हैं। ग्रंथकार का उदाहरण कल्पित ही होता है, वह प्रायः 'यथा ममैव' ही होता है, दूसरे की रचना उद्धृत कर देने के उपरांत अपनी भी रख दी जाती है। सच विचारिए तो लक्षण-निरूपक आचार्य प्रायः कवि-कर्म से विरत रहता है। भरत मुनि, भामह, वामन, रुद्रट, आनंदवर्धन, धनंजय, अभिनवगुप्त, कुंतक, मम्मट, रुय्यक, विश्वनाथ आदि आचार्य ही थे; प्रायः कवि-कर्म से विरत। दंडी, राजशेखर, पंडितराज जगन्नाथ आदि अवश्य कवि-कर्म में भी निरत हुए। मम्मटाचार्य ने 'काव्यप्रकाश' के दोष-प्रकरण में बड़े बड़े कवियों के उदाहरण दिए हैं। इससे चिढ़कर कुछ लोगों द्वारा कसौटी पर कसने के लिए उनकी रचना खोजी जाने लगी तो ग्रंथ के मंगलाचरण के अतिरिक्त कुछ भी हाथ न लगा। सारा रोष उसी पर प्रकट किया गया। अतः स्पष्ट है कि कवि-कर्म और आचार्य-कर्म में भेद करके संस्कृत के शास्त्रकर्ता चले हैं। हिंदी में उसकी चिंता नहीं। लक्ष्य के पीछे लक्षण न चलकर लक्षण के पीछे लक्ष्य चलने लगा। उदाहरण में अपनी ही कृति गढ़-गढ़कर दी जाने लगी। जहाँ कवि किसी चमत्कार में रम जाता वहाँ उदाहरणों का तांता लग जाता—एक दो, तीन की गिनती चलने लगती। श्रीपति के 'काव्य सरोज' में ही दूसरों के कुछ

उदाहरण देने का प्रयास है, उन्होंने दोष-प्रकरण में अपनी रचना न देकर केशवदासजी की रचनाएँ उद्धृत की हैं। ये लोग लक्षण-ग्रंथ के ही अनुगमन पर न लिखते होते तो कवि-कर्म कुछ उच्च आदर्श ग्रहण करता, कदाचित् मुक्तक से प्रबंध की हानि कुछ जगती। रीति से पीछा छुड़ानेवालों ने अवश्य प्रबंध की ओर भी दृष्टि दिखलाई। पर श्रीकृष्णलीला का वृंदावनवाला वृत्त इसके लिए नहीं लिया गया। यह मुक्तक के आगे यदि बहुत बढ़ सकता था तो निबंध तक, भक्ति की रचना में दानलीला, मानलीला, रासलीला आदि के वर्णनात्मक प्रसंग पद्य-निबंध भर कहे जा सकते हैं। प्रबंध के लिए घटनाचक्र चाहिए, वह कृष्ण-जीवन के इस अंश में है ही नहीं। जहाँ इतने ही वृत्त को लेकर प्रबंध-काव्य लिखने की वृत्ति स्फुरित हुई है वहाँ प्रबंधधारा अनवच्छिन्न नहीं रह सकी है, विस्तार करने के लिए अनेक वर्णनों की योजना करनी पड़ी है। इसी से प्रबंध के लिए श्रीकृष्ण का उत्तर-जीवन ही उपयुक्त दिखाई पड़ा। उदाहरणार्थ आलम ने नरोत्तमदास की अनुकृति पर 'सुदामा-चरित्र' लिखा और रुक्मिणी-परिणय का वृत्त लेकर 'श्याम-सनेही' खंडकाव्य प्रस्तुत किया। पर प्रबंध की विस्तृत अर्थभूमि यहाँ भी नहीं थी, इसी से प्राकृतकाल की प्रसिद्ध कथा 'माधवानल-कामकंदला' पर छोटे बड़े कई प्रबंध-काव्य निर्मित हुए। इसी कथा का अत्यधिक विस्तार करके बोधा ने 'विरह-वारीश' की रचना की। फिर भी इन रीतिमुक्त कवियों की भी अधिकांश रचना मुक्तक ही है। इन मुक्तक रचनाओं से हिंदी का एक लाभ भी हुआ। शृंगार के किसी भी अवयव के अत्यंत मधुर और सरस उदाहरण उपलब्ध हो गए। यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि संस्कृत-साहित्य में भी शृंगार के अंगोपांग की इतनी अधिक और इतनी सरस रचनाएँ न मिलेंगी।

पर इन उक्तियों में अधिकतर भिन्नता न होकर एकरूपता पाई जाती है। कारण भी स्पष्ट है। अधिकतर कवीश्वर लक्षण-ग्रंथ-प्रणेता थे। प्रत्येक विषय पर बँधी-बँधाई उक्तियाँ सब कहते थे, इसी से एकरूप उक्तियों का ढेर लग गया। व्यक्ति-वैशिष्ट्य का जैसा विकास अपेक्षित था वह न हो सका, वह विशेषता कविराज न ला सके जिसके द्वारा प्रत्येक की रचना पृथक् की जा सकती। रीतिबद्ध कवियों की रचना में से यदि 'छाप' निकाल दी जाय तो स्मृति-शक्ति के आधार पर भले

ही कुछ पार्थक्य किया जा सके अन्यथा व्यक्ति-वैशिष्ट्य के आधार पर भेद करना कठिन ही नहीं, असंभव है। प्राचीन संग्रहों में जो किसी एक कवि का छंद किसी दूसरे कवि के नाम पर चढ़ गया है उसका कारण यही है। पुराने संग्रहों का बहुलांश स्मृति के भरोसे संकलित होता था। स्मृति भला कहाँ तक साथ देती। 'शिवसिंहसरोज', 'सुधासर', 'शृंगार-संग्रह' आदि में इसके सैकड़ों प्रमाण मिलते हैं। मैं प्रमाणित कर चुका हूँ कि हिंदी में 'शिवाबावनी', 'छत्रसालदशक' नाम की पोथियाँ किस प्रकार अधिकतर दूसरे कवियों की कृति से सज-धजकर 'भूषण' के नाम पर आधुनिक संग्रहकर्ताओं की कृपा से चल पड़ी हैं और शिवाजी के दरबार में 'भूषण' की उपस्थिति संदिग्ध बतानेवालों के लिए सहायक का काम कर गई हैं। रीतिबद्ध कवियों में बिहारी, पद्माकर, मतिराम आदि कुछ गिने चुने कवियों को ही भाषा-भेद से छाँटा जा सकता है। बिहारी के दोहों की बनावट उन्हें साधारण रचनाओं से पृथक् करती है, पर रसलीन, मतिराम आदि के कितने ही अच्छे-अच्छे दोहे बिहारी-सतसई में घुस गए हैं, जिन्हें 'रत्नाकर' जी ने 'बिहारी-रत्नाकर' में चुन-चुनकर पृथक् किया। रीतिबद्ध रचयिताओं की अपेक्षा रीतिमुक्त या स्वच्छंद कवियों की कृति में व्यक्ति-वैशिष्ट्य का कुछ विकास अवश्य स्पष्ट दिखाई देता है, इसी से इन्हें दूसरों से पृथक् करने में कुछ सरलता होती है। 'घनआनंद' की विरोध की प्रवृत्ति उन्हें औरों से पृथक् करती है। लोकोक्ति-विधान की विशेषता रीतिमुक्त स्वच्छंद 'ठाकुर' को इसी नाम के अन्य दो कवियों से पृथक् करती है, प्रेम के वैषम्य का चटक-मटक के साथ उल्लेख करनेवाले 'बोधा' फूलपत्ती, पक्षी आदि की सूची पेश करनेवाले 'बोधा' से भिन्न हैं। शृंगार-काल की स्वच्छंद काव्यधारा का कुछ महत्त्व इसी से सूचित होता है। पर इन कवियों का भी काव्यार्थ (वर्ण्य) एकरूप ही है, इसे स्मरण रखना चाहिए। इसी से जहाँ स्वकीय रंग कुछ फीका पड़ गया है वहाँ इनकी रचनाएँ भी एकरूप हो गई हैं।

स्वच्छंद धारा

स्वच्छंद का अर्थ है बाह्य बंधन अर्थात् रीति के बंधन से मुक्त। इस धारा के कवि मनोमत वेग के प्रवाह में काव्य रचते थे। इसलिए इनकी रचनाओं में

प्रेम के जिस रूप की स्वीकृति थी वह जीवनगत बंधनों के त्याग का भी संकेत देनेवाला था। रीतिबद्ध रचयिता नायक-नायिका के प्रेम की जो चर्चा करते थे उसमें कहीं कहीं कथनशैली की विशेषता के भी दर्शन अवश्य होते थे, पर उनमें न तो प्रेम के जीवनगत स्वच्छंद रूप के दर्शन कहीं होते हैं और न काव्य-पद्धति की साहित्यिक स्वच्छंदता के ही। प्रेम का बाह्य पक्ष ही रीतिबद्ध रचना में दिखाई देता है। यह बाह्य पक्ष भी बँधा हुआ है अर्थात् साहित्य की परंपरा में प्रेम-व्यापार के जो स्वरूप निश्चित कर दिए गए उनसे आगे इनकी दृष्टि मार्ग न पा सकी। बाह्य पक्ष की रमणीयता के दर्शन के हेतु भी अंतर्दृष्टि की व्याप्ति और सूक्ष्मता अपेक्षित होती है। यह अंतर्दृष्टि रीतिबद्ध रचनाओं में मंद पड़ गई थी। कुछ चुने हुए दृश्यों को ही देखने दिखाने में जैसे स्थूल दृष्टि पथरा जाती है वैसे इन व्यापारों में अंतर्दृष्टि भी सतत संलग्न रहकर मंद पड़ जाती है। नायिका-भेद में नायिकाओं के संकेतस्थलों, सौतिनों के ईर्ष्या-कलह, लघु-मध्यम-गुरु मान आदि के कवि-समय-सिद्ध व्यापार ही आते रहे। प्रेम का मन इतने से ही संतुष्ट हो जाता था कि "जौ चाहियै संग सजन तौ धरक नरक हू की न"। ये प्रिय के संग का, शरीर-संबंध का, ही सुख चाहते थे, मानस-संसर्ग की रमणीयता इनमें नहीं थी। ये प्रिय के मन की रमणीयता देखने के या अपने मन की रमणीयता दिखाने के मनोरथी नहीं थे, प्रिय के तन की शोभा देखने और अपनी शारीरिक उछलकूद की मुद्राएँ दिखाने के ही अभिलाषी अधिक थे। बिहारी आदि में मानस-लोक की रमणीयता के दर्शन यत्र तत्र ही होते हैं। बिहारी ऐसे कवियों में जो इस प्रकार के स्थल दिखाई पड़ते हैं वह भी रीति के लक्षणों का अनुधावन सर्वत्र न करने के कारण। अनुधावकों की रचना में यह विशेषता और भी क्षीण है। बिहारी ने प्रेम की जिस चरमावस्था का निरूपण इस दोहे में किया है वह लक्षणकारों में नहीं मिलती—

पिय कै ध्यान गही गही रही वही ह्वै नारि।
आपु आपु ही आरसी लखि रीझति रिझवारि॥

प्रेम की यह वह चरम अवस्था है जिसमें पहुँचकर प्रेमी या प्रेमिका स्वयम् प्रिय हो जाती है। ज्ञान के क्षेत्र में जो स्थिति ज्ञाता और ज्ञेय की होती है और भक्ति के क्षेत्र में जो स्थिति उपासक और उपास्य की होती है, ठीक वही स्थिति प्रेम के क्षेत्र में प्रेमी और प्रिय की चरमावस्था में होती है। रामकृष्ण परमहंस के

संबंध में प्रसिद्ध है कि वे उस माला-फूल को, जिसे पूजक काली की पूजा के लिए ले आते, अपने ऊपर चढ़ा लिया करते थे। तात्पर्य यह कि ज्ञान, भक्ति और प्रेम की चरमावस्था एक ही निर्दिष्ट होती है। बिहारी की सतसई में प्रेम की उच्चभूमि के दर्शन वहाँ होते हैं जहाँ नायिका कभी प्रिय के द्वारा उड़ाई पतंग की छाया के पीछे-पीछे दौड़ती दिखाई पड़ती है, मरगजी माला भी गले में डाले फूली घूमती है, प्रिय के नगारे को सुनने पर आया जान लौटकर फिर हरा कर लेती है। पर ऐसे उदाहरण रीतिबद्ध कवियों में ढूँढने से ही मिलते हैं। अधिकतर तो सौतों की असूया, मान के विविध रूप, हावों की भावभंगी, खंडिता की व्यंग्यभरी उक्तियाँ ही हैं। विपरीत रति, सुरतांत आदि के बँधे बँधाए और असंस्कृत वर्णनों से इनकी रचनाएँ यदि भरी नहीं हैं तो शून्य भी नहीं हैं। वस्तुतः रीतिबद्ध कवि प्रेम-मार्ग की वक्रता, उसकी चातुरी, उसके बुद्धि-विशिष्ट रूप का ही शृंगार करते रहे। पर रीतिमुक्त कवियों ने स्पष्ट घोषणा की कि प्रेम का मार्ग सरल है, इसमें वक्रता का नाम नहीं। चतुराई का लेश भी इसमें घातक होगा—

अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँचे चलैं तजि आपनपौ झिझकैं कपटी जे निसाँक नहीं॥

रीतिबद्ध कवियों ने दूती, सखी आदि को बीच में डालकर प्रेम का लंबा-चौड़ा प्रपंच खड़ा किया है। गुरुजनों के बीच प्रेम के संकेतों का विस्तार से उल्लेख किया है। लोकभय या लोकलाज की आड़ में रखकर प्रेम में बहुत से बँधे-बँधाए खेल दिखलाए हैं। संकेत की लुकाछिपी की लीलाएँ, गुप्ता की गोपन विधियाँ, विदग्धा के विदग्धालाप, अभिसारिका की साज-सज्जा, छल-कपट से भरे खिलवाड़ में ही मनोरंजन की सामग्री विशेष खोजी है। ऐसी बंधन-मय प्रेमलीला रीतिमुक्त कवियों को नहीं रुच सकती थी। ये लोकमत या लोकलाज का तिरस्कार करके साहस-पूर्वक प्रिय की एकनिष्ठता में लीन होनेवाले थे। इसी से इन खेल-तमाशों से उन्होंने अपने को अलग रखा है। श्रीकृष्ण और राधा या गोपियों का जैसा उन्मुक्त जीवन था वैसा ही बाधा-बंधन-रहित सरल-सीधा प्रेममार्ग इन स्वच्छंद कवियों का भी था। इसी बात की एक बात यह कि ये प्रेम में बुद्धि की कतरब्योंत एकदम नहीं चाहते थे। प्रेम शुद्ध हृदय की भावधारा है, ये हृदय को ही सामने करनेवाले

और हृदय को ही प्रभावित करनेवाले भी थे। हृदय की रीझ ही इनके यहाँ रानी है, बुद्धि तो उसकी दासी—

रीझ सुजान सची पटरानी बची बुधि बापुरी ह्वै करि दासी।

प्रेम के स्वच्छंद रूप के ग्रहण से ही अंतरंग और बहिरंग सखियों का विधान यहाँ नहीं। प्रेमी अपनी पुकार स्वतः करता है। विरहनिवेदन के लिए दूती और उपालंभ के लिए सखी की योजना अनपेक्षित समझी गई। इसमें बंधन तो था ही, मध्यस्थ के कारण प्रिय के प्रेम की प्राप्ति निर्बाध नहीं हो सकती थी। दूती या सखी यदि इनके यहाँ कभी आ भी गई तो उसे अपनी बुद्धि का व्यवसाय दिखाने की आवश्यकता नहीं, वह केवल प्रेमी की शब्दावली दुहरा सकती है, अपने पक्ष-युक्ती का उपयोग करने की अपेक्षा नहीं। वह प्रेमी के ही मुख से बोले तो बोले, अपना मुँह न खोले। अतः यहाँ ऐसे तर्कों की आवश्यकता नहीं—

ताके तन ताप की कहूँ मैं कहा बात, मेरे
गात ही छुए तें तुम्हें ताप चढ़ि आवैगी।—पद्माकर

सच पूछिए तो यहाँ दूती की आवश्यकता ही नहीं—

जान प्यारे जीउब कहा लाजऐ सँदेसो लीजिए,
आसौ सम कीजियै जु कान तिहि काल हैं।
नेह भीजी बातें रसना पै उर-आँच लागें,
जागैं घनआनँद ज्यौं पुंजनि मसाल हैं।

कोई इन विरहाग्नि के तप्त संदेशों को सुन नहीं सकता, जीभ पर भी ये विरह की तप्त बातें नहीं लाई जा सकतीं। हृदय की आँच से ये बातें (वार्ता-बत्ती) स्नेहयुक्त होने के कारण प्रज्वलित हो जाती हैं। इन उक्तियों का रीतिबद्ध कवियों की ऊहात्मक उक्तियों से पार्थक्य समझ लेना चाहिए। रीतिमुक्त कवियों की अधिकतर उक्तियाँ स्वानुभूति-निरूपिणी हैं। वेदना की विवृति के लिए उनके वर्णन रीतिबद्ध वर्णनों की भाँति अनुमान के सहारे नाप-जोख करते नहीं चलते। ये विरही अपनी आग से स्वयम् ही भस्म होते रहते हैं, दूसरों को राख नहीं करते। हाँ, कभी कभी दूती और सखी के संबंध में इतना अवश्य कह देते हैं कि विरह की अग्नि से भरी बातें दूसरे सुन न सकेंगे, पर यह कभी कहने या कहलाने नहीं जाते कि—

'शंकर' नदी-नद नदीसन के नीरन की
भाप बन अंबर तें ऊँची चढ़ जायगी।
झारैंगे अँगारे ये तरनि तारे तारापति
या विधि खमंडल में आग मढ़ जायगी।
दोनों ओर छोरन लौं पल में पिघलकर,
घूम घूम धरनी धुरी सी बढ़ जायगी।
काहू विधि विधि की बनावट बचैगी नाहिं,
जो पै वा वियोगिनी की आह कढ़ जायगी।

इनके यहाँ माघ मास में सारी सृष्टि को कँपा, मौत को भी झुलसानेवाली लूएँ नहीं चलतीं, जाड़े में सखियाँ गीले वस्त्र पहनकर इन विरहिणियों को देखने नहीं आतीं, छाती पर गुलाब जल छिड़कर उसके तवे पर गिरे पानी की भाँति छन-छन करके भाप नहीं बनता, साँस के उच्छ्वास से घर और दीवारें नहीं सुलगतीं। अपनी आह या वेदना की ज्वाला से ये स्वयम् जलते-भुनते रहते हैं, सारी सृष्टि को भस्म करने के लिए रुद्र का तीसरा नेत्र कभी नहीं खोलते या खुलवाते। इनके विरह-ताप की सीमा इन्हीं तक है। ये उड़ान भरनेवाले पक्षी नहीं, बैठकर वेदना की पुकार मचानेवाले पपीहे हैं। इनके ताप से सृष्टि भस्म नहीं होती, कभी-कभी द्रवीभूत अवश्य हो जाती है। पपीहा इनकी पुकार की समानुभूति में पी पी रटता है, बादल इनके ताप से पिघलकर आँसू गिराते हैं, पवन इनके रोदन के स्वर में स्वर मिलाता है—

विकल विषाद भरे ताही की तरफ तकि,
दामिनी हू लहकि बहकि यौं अर्यौ करै।
जीवन-अधार-घन-पूरित पुकारनि सों,
आरत पपीहा नित कूकनि कर्यौ करै।
अथिर उदेग-गति देखि कै आनंदघन,
पौन विहर्यौ सो अनमोहित रर्यौ करै।
यूँ हैं न परति मेरे जान जानप्यारी! तेरे,
विरही को हेरि मेघ आँसुनि भर्यौ करै।

इसका वास्तविक हेतु यह है कि इन मनस्वियों ने प्रेम को स्वच्छंदता के साथ इसका अनुगमन नहीं, उदात्त स्वरूप ग्रहण किया। ये चातुर्य के चक्कर में पिसने-वाले प्राणी नहीं थे, प्रेम-प्यास की ऊँची तान छेड़नेवाले, घनआनंद की ऊँचाई तक उड़नेवाले चातक थे। इसी से इनका प्रेम एकनिष्ठ था। इस एकनिष्ठता ने इन्हें प्रेम की उस भूमिका में पहुँचा दिया जहाँ पहुँचकर प्रेम केवल प्रिय को चाहनेवाला ही रह जाता है, प्रिय भी प्रेमी को चाहता है या नहीं इसकी चिंता नहीं होती। यहाँ तो प्रिय की ओर से तिरस्कृत होने पर भी प्रेमी उसे चाहता ही रहता है। तुलसीदासजी ने चातक के इस एकांगी प्रेम की व्यंजना और महिमा का विधान अपनी दोहावली के अंतर्गत 'चातक-चौंतीसी' में किया है, प्रेम का यही उदात्त रूप इनमें भी दिखाई देता है। चातक वज्र गिराने पर भी बादल को ध्यान करना नहीं छोड़ता—

उपल बरसि गरजत तरजि, डारत कुलिस कठोर।
चितव कि चातक मेघ तजि कबहुँ दूसरी ओर॥

प्रेम के इस उदात्त स्वरूप तक पहुँचने के लिए कुछ सोपानों की योजना होती है। पहले किसी का रूप नेत्रों में बसा, किसी के क्रिया-कलाप भाने और खींचने लगे, मन हृदय में प्रेम की प्रतिष्ठा हो गई। जब तक प्रेम आकर्षण के इस प्रथम सोपान पर रहता है तब तक वह आकर्षक के दर्शन, सान्निध्य, संलाप तक ही रहता है। तब तक प्रिय के दर्शनादि की उपलब्धि की ही आकांक्षा रहती है। पर इसके अनंतर वह उसके हृदय की खोज में व्याप्त होता है। वस्तु-विशिष्ट प्रेम पहली सीढ़ी तक होता है, पर आत्म-विशिष्ट प्रेम दूसरी सीढ़ी पर भी चाव के साथ, जिज्ञासा के सहारे अपने पैर रखता है। वह दूसरी सीढ़ी पर चढ़ जाता है, जहाँ वह अपने को प्रिय के लिए अर्पित कर देता है। यदि प्रिय का हृदय उसे नहीं मिलता, प्रिय उससे विमुख भी हो जाता है तो भी वह प्रेम की इस सीढ़ी से उतर नहीं आता, आगे ही बढ़ता है। आनंद न सही, पर वेदना सहने का पूरा रस इसी सीढ़ी पर वह चखता है, हार मानकर वहीं बैठ नहीं जाता। प्रेम की एकनिष्ठता न उसे बैठने देती है, न लौटने। वास्तविक प्रेम जिसके प्रति हो उसके उसके अनुकूल या प्रतिकूल होने पर भी बना रहेगा। प्रेम सम ही रहे या विषम हो जाय, प्रेमी की ओर से उसमें कमी नहीं होती। चेतन प्रिय से प्रेम का संबंध जोड़नेवाला प्रेमी प्रिय के

[illegible] का अनुभव करता है वह सचमुच बड़ा मार्मिक होता है। [illegible] में भी संयोग और वियोग की चरम दशा 'बिछुरनि मीन की औ मिलनि [illegible]' के द्वारा घोषित की जाती थी। प्रेम में मर मिटना यहीं [illegible] है। जिसे सहने का साहस उनकी शारीरिक सुकुमारता नहीं कठोर [illegible] नहीं होता, पर रीतिमुक्त कवि प्रेम में मर [illegible] नहीं, जड़ता का लक्षण मानते हैं, चेतन तो साहसपूर्वक जीता है।

हीन भएँ जल मीन अधीन कहा कछु मो अकुलानि समानै।
नीर सनेही को लाय कलंक निरास ह्वै कायर त्यागत प्रानै।
प्रीति की रीति सु क्यों समुझै जड़ मीत के पानि परें को प्रमानै।
या मन की जु दसा घनआनँद जीव की जीवनि जान ही जानै।

[illegible] मन की दशा का अनुभव करनेवाला भी है; मीन [illegible] प्रेम का अनुभव करनेवाला नहीं है। मछली तुरंत प्राण त्याग देती है, पर [illegible] साहसपूर्वक वेदना सहता है। इसलिए इन दोनों में समता कैसी। यह बात [illegible] कही गई है—

[illegible] बिसवास गनै बरु तौ यह बापुरो मीन-तरयो तरसै।
[illegible] न सहारि सकै यह तेज तवै बिरहै बरसै।
[illegible] अनोखी दसा मति आवरी बावरी ह्वै थरसै।
बिछुरें मिलें मीन-पतंग-दसा कहा मो जिय की गति को परसै।

[illegible] की अभिव्यक्ति के लिए ही रीतिमुक्त कवि अधिकतर प्रेम [illegible] के अनुसार चुनते हैं। प्रेम की यह विषमता उनमें कहीं से आई। भारतीय [illegible] और श्रव्य काव्य के प्राचीन संस्कृत-ग्रंथों में प्रेम के [illegible] प्रेम का उद्भव दोनों पक्षों में एक सा दिखाया गया है। [illegible] ने राम और सीता में, कालिदास ने दुष्यंत और शकुंतला में, बाण ने [illegible] और कादंबरी में सम प्रेम की ही प्रतिष्ठा की है। हिंदी में विद्यापति ने भी राधा और कृष्ण का प्रेम बहुत कुछ सम ही रखा, पर सूरदासजी तक आते-आते प्रेम में वैषम्य का आरंभ हो गया। सूरदास आदि कृष्णभक्ति-शाखा के [illegible] कवियों में इस विषमता की स्थिति अधिक नहीं हुई। श्रीकृष्ण को भी

गोपियों के प्रेम में विकल दिखलाकर समता की गरज़ बहुत कुछ कर ली गई। पर आगे के कवियों ने श्रीकृष्ण का आलंबन-पक्ष उतना दिखलाया ही नहीं। फल यह हुआ कि आगे की रचना में नायक का पक्ष दबने लगा। रीतिबद्ध रचना में साफ दिखाई देता है कि संयोग-पक्ष में नायिका के रूप-वर्णन की योजना नायक की आँख के रूप होती है, पर विरह-वर्णन में नायिका की विरह-दशा का ही साधारणतया वर्णन किया जाता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि संयोग पक्ष में बहिर्वृत्ति की प्रधानता होती है और 'वियोग-पक्ष' में अंतर्वृत्ति की। इस प्रकार प्रेम के क्षेत्र में जहाँ तक हृदय का संबंध है शृंगारकाल में यह विषमता व्यापक हो गई। फिर भी रीतिबद्ध रचना में विषमता का बढ़ा-चढ़ा रूप उतना नहीं है, पर स्वच्छंद धारा के कवियों में यह पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ है। निश्चय ही यह सूफी कवियों का प्रभाव है। फारसी साहित्य में प्रेम का वैषम्य स्वीकृत है और उर्दू में उस परंपरा का निर्वाह आज तक हो रहा है। पिछले काल के कृष्णभक्त कवि और स्वच्छंद धारा के रीतिमुक्त कवि सूफी संतों और फारसी-साहित्य की प्रवृत्ति से प्रभावित हुए हैं, यह असंदिग्ध है। कृष्ण-भक्त कवियों में जो प्रेम का वैषम्य दिखाई देता है उस पर भी विचार कर लेना चाहिए। महाभारत के कृष्ण-प्रेम में वैषम्य की विवृति नहीं है, पर श्रीमद्भागवत में इसकी विधानता स्पष्ट लक्षित होती है। उपासक की भक्ति में दीनता और उपास्य के विरह में आकुल होने के प्रयोजन की सिद्धि के निमित्त ही प्रेम-लक्षणा भक्ति के अनुकूल यह विस्तार हुआ है। ब्रह्म की ओर आत्मा के आकृष्ट होने के आदर्श के कारण यह विषमता सामने लाई गई है अर्थात् उद्धव-ऐसे ज्ञान के अहंकार में चूर व्यक्ति को प्रेमयोग या भक्तियोग की शिक्षा देने के निमित्त यह योजना की गई है। क्योंकि भक्ति का प्रथम सोपान है अहम् का लोप, आत्म-विस्मृति। अतः कृष्णभक्ति में प्रेम वैषम्य का प्रचार श्रीमद्भागवत, ब्रह्मवैवर्तपुराण आदि के प्रसार के साथ ही हुआ। प्रेम के वैषम्य और भक्ति की विषमता में अंतर है। प्रेम में प्रिय पक्ष में निष्ठुरता, कठोरता, क्रूरता आदि का आरोप होता है, पर भक्ति में नहीं। भक्ति के आलंबन भगवान् के जिस रूप की कल्पना इस क्षेत्र में हुई वह भगवान् में हृदयपक्ष या करुणा के अत्यधिक आरोप को ही लेकर हुई। अतः भक्ति के क्षेत्र में क्रूरता का अधिक आरोप प्रेम-लक्षणा भक्ति में शृंगार का अवयव

आध्यात्मिक आधार पर ही हुआ। गोपियों की भक्ति के साथ-साथ शृंगार का दृष्टांत [illegible] पर ही आगे श्रीकृष्ण की निष्ठुरता आदि का उल्लेख हो चला। भागवत में यह वर्णन [illegible] के रूप में प्रकट हुआ है। कृष्णभक्तों ने भ्रमरगीत के [illegible] का अधिक विस्तार किया। भ्रमर के व्याज से श्रीकृष्ण छलिया, कपटी, [illegible] आदि कहे गए, यह भक्ति में माधुर्य भाव के ही कारण। भागवत में वर्णित [illegible] कृष्ण-शाखा में सखी-संप्रदाय की उद्भावना का आदर्श हो गया। [illegible] गोपी-वेश ही धारण करके लोटते थे, पर इधर पुरुषों ने भी सखी या गोपी-भाव धारण करना आरंभ किया। नारी की उपासना तो गोपीरूप में स्वाभाविक हो सकती है, पर पुरुषों का गोपी-वेश बहुतों को प्राकृतिक नहीं प्रतीत होता। गोपियों में इस भाव का उदय अत्यंत सान्निध्य के ही कारण प्रदर्शित किया गया है। ज्ञान के द्वारा ब्रह्म ज्ञेय ही था, प्रेम के द्वारा वह प्रेय बनाया गया। [illegible] भी विधान प्रेमतत्त्व की योजना के द्वारा भक्ति में ही हुई। ज्ञान के क्षेत्र में [illegible] हो सकता था। ज्ञान ने ब्रह्म को जाना, पर उसको कोई [illegible] न कर सका। इसी से वह उसे निर्विकल्प, निराकार, निर्गुण आदि [illegible] पर भक्ति की संतुष्टि उससे न हो सकी, उसने उसे साकार और [illegible] कर दिया। ज्ञान 'नेति नेति' कहता रहा, पर भक्ति ने 'सर्वं खल्विदम्' का सहारा लिया। वेदांत (अद्वैतवाद) भी तो विवर्तवाद, दृष्टिसृष्टिवाद, प्रतिबिंबवाद आदि [illegible] अजातवाद और अविद्यावाद की शरण गया। उसे भी स्वीकार करना पड़ा कि जो जैसा है वह वैसा ही है।

[illegible] ने रामभक्ति का जो आदर्श चातक की भावना द्वारा प्रतिष्ठित किया [illegible] चातक के पक्ष का निरूपण विस्तार से है। वहाँ बादल को उदार, कृपालु आदि रूप में ही अधिकतर प्रदर्शित किया गया है। केवल कहीं कहीं [illegible] का निदर्शन प्रेमी-हृदय की उच्चता और दृढ़ता का प्रतिपादन करने के लिए [illegible] है। कृष्णभक्ति और रामभक्ति के स्वरूप में बड़ा भेद था। [illegible] और उपासक के सेव्य और सेवक-भावना को दृढ़ [illegible]। [illegible] गोसाईंजी ने स्पष्ट शब्दों में काकभुशुंडि के मुँह से कहलाया है

सेवक-सेव्य-भाव बिनु, भव न तरिय उरगारि।

पर कृष्णभक्तों में प्रेम-लक्षणा भक्ति की उपासना चली, 'परानुरक्तिरीश्वरे' का प्राधान्य हुआ। शांत और दास्य भाव के बदले सख्य, वात्सल्य और माधुर्य भाव की आनन्दातिरेक उपासना का प्रचलन प्रधान अंग हुआ। दास्य भाव इसी में अंतर्भुक्त हो गया, साधना की चरम सीमा पर पहुँचकर उपास्य-उपासक में कांतभाव का आरोप भी हुआ। यह भक्त के ऐकांतिक प्रेम के द्वारा अलौकिक पद तक पहुँचने के कारण ही हुआ है। भक्तों द्वारा वर्णित कृष्णलीला के रूप जब तक यह अलौकिक प्रेमलक्षणा भक्ति की सूचना देते हैं तभी तक ठीक है, पर गोपियों की उपालंभ-भावना का विस्तार से वर्णन करने की ओर प्रेमलक्षणा भक्ति की दिशा से अलग हुई है। [illegible] इस स्वरूप ने शृंगार के क्षेत्र का कोना कोना छान डालने की ओर अवश्य [illegible] की। प्रेम के अधिक आरोप होने के कारण माधुर्य भाव में [illegible] और कुछ न रह गया। इन्होंने उसपर लौकिक स्वरूप इतना अधिक आरोपित कर दिया कि इनकी रचना और शृंगारी कवियों की मिल गई।

यह सब होते हुए भी स्वच्छंद कवियों की कृति में यह वैषम्य कृष्णभक्तों की रचना से ही सीधे उतर आया हो ऐसा प्रतीत नहीं होता। भक्ति की भावना में प्रेमगत वैषम्य भक्ति की ऊँची और गहरी अनुभूति व्यक्त करने के लिए निर्धारित है, प्रिय की वास्तविक कठोरता उनका अभिप्राय नहीं। पर स्वच्छंद धारा में प्रिय की वास्तविक कठोरता का वर्णन विस्तार के साथ और प्रतिपक्ष रूप में क्योंकर है। यह निश्चय ही फारसी की कविता का प्रभाव है, जहाँ प्रिय की कठोरता इसी रूप में की जाती है। एक पक्ष तटस्थ रहता है और दूसरा चातुर मन से मत्त। संस्कृत-कवियों के विरह में इस प्रकार का [illegible] प्रिय-पक्ष नहीं है। इसलिए इस कठोरता या उदासीनता का मूल स्रोत फारसी की काव्यधारा ही है जहाँ प्रधान काव्य-वस्तु (थीम) यही है और जो उर्दू की रचना पर अपना दीर्घकालीन प्रभाव डाल चुकी है। हिंदी के बहुत से मध्यकालीन कवि इस विषमता के वर्णन में लगे। बिहारी पर भी इसका प्रभाव पड़ा था, रसनिधि की रचनाओं में तो शब्दावली तक उर्दू की ज्यों की त्यों उठाकर रख दी गई है। शृंगार के साथ फारसी या उर्दू की रचना में कुछ वीभत्स व्यापार भी लगे रहते हैं। भारतीय परंपरा में जुगुप्साव्यंजक व्यापारों का ग्रहण केवल वियोग-पक्ष में ही विरह की दस दशाओं के अंतर्गत व्याधि, मरण आदि में हो सकता है (व्याधिर्मरणजुगुप्सा: संयोगे वर्ज्याः—रसतरंगिणी)। पर

[illegible] भी [illegible], मांस-मवाद का वर्णन कहीं नहीं दिखाई देता। यहाँ [illegible] जुगुप्साव्यंजक व्यापार भी देखे गए हैं। रसनिधि ने ऐसे [illegible] ग्रहण कर लिए हैं। उर्दू रचना की इस विकृति के आकर्षण [illegible], अच्छे अच्छे नए कवियों में भी यही कही दिखाई देता है। प्रसाद [illegible] अनुभव चरण में (आँसू) में इसी [illegible]। कुछ पाश्चात्यमन्य हिंदी काव्य की मीमांसा में विदेशी प्रभाव की चर्चा [illegible] करते हैं, उन्हें भारतीय और विदेशी काव्यपरंपरा के यथार्थ स्वरूप का अनुशीलन करना चाहिए।

[illegible] स्वरूप का निरूपण करने के लिए प्रीति-वैषमता की स्वीकृति [illegible] वियोग की प्रधानता आवश्यक थी। रीतिबद्ध काव्य-रचना में वियोग [illegible] के लिए तो आते ही थे, वस्तुव्यंजना और रूप को [illegible] के लिए भी गृहीत होते थे। संयोग और विप्रलंभ शृंगार में प्रेमी के पक्ष [illegible] है कि संयोग में प्रेमी की वृत्ति बहिर्मुख रहती है और वियोग में अंतर्मुख। इसका हेतु भी स्पष्ट है। संयोग में प्रिय सामने रहता है [illegible] रूप का निरीक्षण, उसकी मुद्राओं का अवलोकन, उसके संलाप का सुख [illegible] के लिए प्रेमी प्रिय की ओर ही देखता है, उसके चतुर्दिक् उसकी दृष्टि [illegible] जाती है। सारा संसार उसे प्रेममय, आनंदमय दिखाई [illegible] में [illegible] द्वारा [illegible] की प्राकृतिक सामग्री भी उद्दीपन के [illegible] यही है। पर वियोग में प्रिय के संमुख न [illegible] वियोगी अपनी सारी वृत्तियों को समेटकर अंतर्मुख हो जाता है। संयोग [illegible] विस्तार करता था, पर वियोग में उसी से विचार, चिंतन [illegible] है। सुख, हर्ष, उल्लास आदि आनंदमयी वृत्तियाँ निष्कामगर्भा होती हैं, [illegible] बाहर उनके पड़ती हैं; पर विषाद, करुणा आदि दुःख- [illegible] होती हैं, इसी से उनमें ठहराव होता है, बाहर से [illegible] विरह [illegible] भीतर बैठ जाता है। यही कारण है कि अंत- [illegible] पर ही इन कवियों की दृष्टि जमी दिखाई देती है। पर इन कवियों [illegible] रीतिबद्ध कवियों से विलक्षण भी है। यहाँ संयोग में [illegible] नहीं छोड़ता—'यह कैसो संयोग न जानि परै जु वियोग न क्यों हूँ

बिछोहत है' (घनआनंद)। संयोग में वियोग की खटक लगी रहती है। प्रेमी यह समझकर उद्विग्न रहता है कि कहीं वियोग न हो जाय—'अनोखी हिलग दैया ! बिछुरें तो मिल्यौ चाहै, मिलेहू में मारै जारै खरक बिछोह की' (घनआनंद)। इसी हेतु इन विरहियों को न संयोग में शांति मिलती है न वियोग में। ये वस्तुतः प्रेम की तृषा बढ़ानेवाले हैं—'प्रेम-तृषा बाढ़ति भली घटै घटैगी कानि' (बोद्ध-बली)। रीतिबद्ध कवियों में न तो वियोग की यह चरमावस्था कहीं मिलेगी और न उसके स्वरूप का आभास ही। इसलिए ये स्वच्छंद कवि अपनी इस विशिष्ट वियोग-भावना के कारण उनसे पृथक् हो जाते हैं। इनकी प्रेम की पीर 'बलवती' है; उसे 'ताकने' के लिए 'हिय-आँखिन' की आवश्यकता पड़ती है।[1]

प्रेम की पीर सूफी कवियों का प्रतिपाद्य विषय है। अतः स्वच्छंद कवियों ने प्रेम की यह पीर फारसी-काव्यधारा की वेदना की विवृति के साथ सूफी कवियों से ही ली है, इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता। सूफियों का विरह-वर्णन प्रसिद्ध है। जायसी ने 'पदमावत' में भी प्रेम की पीर का महत्त्व प्रतिपादित किया है। सूफी अपनी सांप्रदायिक भावना के अनुसार सारी सृष्टि में विरह के दर्शन करता है, 'रतन-सेन' को विरह के बाणों से बिद्ध मानता है, पशु पक्षी के रंग और पंख उसे विरह की बाणावली दिखाई देते हैं, सारी सृष्टि उसे परमपुरुष के वियोग में कलपती जान पड़ती है। सूफियों के विरह और भारतीय भक्ति-मार्ग के विरह में भेद है। सूफियों का विरह यदि शाश्वत नहीं है तो जीवन में अनिवार्य अवश्य है, कभी कभी बेहोशी में ही संयोग-सुख क्षण भर के लिए मिल सकता है। पर भारतीय भक्त का विरह ऐसा नहीं है। इसका कारण सूफियों के ब्रह्म की निर्गुण निराकार-भावना है। भक्तिमार्ग ने तो निर्गुण को ज्ञान-क्षेत्र के लिए छोड़कर उपासना में उसका सगुण-रूप ही ग्रहण किया है। इसी से भारतीय भक्त को विरह वेदना में निरंतर तपते रहने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इन स्वच्छंद कवियों ने फारसी-काव्य-गत वेदना की विवृति के साथ इस 'प्रेम-पीर' का स्वागत किया। इनकी रचना में वियोग के आधिक्य का कारण यही है। लौकिक पक्ष में इनका विरह-निवेदन फारसी-काव्य की वेदना की विवृति से प्रभावित है और अलौकिक पक्ष में सूफियों

१. समुझै कविता घनआनंद की हिय-आँखिन प्रेम की पीर तकी।

— घनआनंद कवित्त।

की प्रेम-पीर से। कृष्णभक्ति के अंतर्गत विरह की पुकार का अवकाश पाकर ये कवि कृष्ण और गोपियों की विरह-दशा की ओर स्वभावतः उन्मुख हुए। इसी से सूफियों की भाँति रहस्यदर्शिता के आख्यान की व्यापक वृत्ति इनमें नहीं रह गई। निर्गुण का त्याग कर सगुण की ओर प्रवृत्त हो जाने से इनमें रहस्य को पूर्ण विस्तार न पा सकी। भारतीय भक्तिमार्ग अपने प्रकृत रूप में रहस्यदर्शी नहीं रहा—उसे रहस्य, गुह्य, गोप्य आदि की आवश्यकता नहीं थी। ब्रह्म का सगुण रूप सामने रहने से धारणा ही ऐसी हो सकी है, भले ही सगुण की कामना के मूल में रहस्य हो, पर भक्तिसाधना में यह नहीं रहा। पर बाद में सखीभाव की उपासना का प्रचार होने पर रहस्य भी थोड़ा बहुत इन भक्तों में अवश्य आ गया है। 'यह रहस्यभावना सूफी भावना से प्रभावित है या स्वगत विकास है'—इस विवाद में पड़ना अप्रासंगिक होगा। स्वच्छंद कवियों में सूफियों के संपर्क और प्रभाव के कारण कहीं-कहीं रहस्य की झलक भर मिलती है। अपनी भावना से मेल खाती हुई इन कवियों की वृत्ति कृष्णभक्ति-भावना में लीन हुई। बात यह थी कि इन कवि पहले ही अपने व्यक्तिगत जीवन के प्रेम की एकांतिकता के उपासक हुए। प्रिय की ओर से प्रेम की स्वीकृति उचित मात्रा में न पाकर, या इसमें किसी प्रकार की लौकिक बाधा खड़ी हो जाने के कारण, ये संसार से विरक्त हो गए। ऐसी दशा में इनके लिए दो ही मार्ग थे। या तो ये निर्गुण-संप्रदाय का अनुगमन करते या सगुण-संप्रदाय में दीक्षित होते। निर्गुण में रूप की संभावना न होने के कारण उसकी उपासना इनके 'चित्त के लिए आनंदप्रद नहीं हो सकती थी', अतः इन्होंने सगुण में अपनी स्वच्छंद वृत्ति लीन की। रसखानि और घनआनंद दोनों ने ही प्रेममार्ग या भक्तिमार्ग की इस विशेषता का उत्कीर्तन किया है—

आनँद-अनुभव होत नहिं बिना प्रेम जग जान।
कै वह बिषयानंद कै ब्रह्मानंद बखान॥—(रसखानि)

ज्ञानमार्ग से उत्कृष्ट बताते हुए घनआनंद ने भक्तिमार्ग या प्रेमाभक्ति की यही विशेषता बताई है कि योगियों का योग या विषयानंद इसमें पर्यवसित या तिरोहित हो जाता है—

ज्ञान हू तें आगे जाकी पदवी परम ऊँची,
रस उपजावै तामैं जोगी भोग जात ग्वै।

जान 'घनआनँद' अनोखो यह प्रेमपंथ,
भूले तें चलत, रहैं सुधि के थकित ह्वै।

कृष्ण-भक्ति की ओर इनके आकृष्ट होने और उसमें लीन हो जाने का वास्तविक कारण यही था। इन्हें शुद्ध भक्त न मानकर प्रेमोन्मत्त कवि ही मानने का वास्तविक कारण यही है। रीतिबद्ध 'बिहारी' निम्बार्क (राधावल्लभ) संप्रदाय में दीक्षित थे। अपनी 'सतसई' के आरंभ में राधा से बाधा-हरण करने की प्रार्थना करके इन्होंने अपना संप्रदाय व्यक्त भी कर दिया है। पर ये भक्तों की श्रेणी में नहीं बैठाए गए। इसका कारण यही है कि उनकी रचना भक्त कवियों की-सी नहीं है। घनआनंद ने अंत में भक्ति-संप्रदाय में दीक्षा ले ली थी, पर लौकिक प्रेम का 'सुजान' नाम वे भूल न सके। श्रीकृष्ण का 'सुजान', जान, जानराय आदि विशेषण रखकर वे उनकी प्रेममयी गाथा निरंतर गाते रहे। इन स्वच्छंद कवियों को अपनी अभिव्यक्ति के लिए कृष्णलीला सामग्री का काम करने लगी। रीतिबद्ध कवियों ने कृष्णलीला के प्रसंग बराबर लिए हैं, पर वे भक्त नहीं माने जाते, न माने जा सकते हैं। 'आगे के सुकवि रीझिहैं तौ कविताई न तु राधिका-कन्हाई-सुमिरन को बहानो है' लिखने वालों में कोई भक्त नहीं माना जा सकता। इन स्वच्छंद कवियों ने हृदय के योग के साथ भक्ति की रचनाएँ की हैं। ये साधन के रूप में ही कृष्णलीला का उपयोग करते थे। कृष्णभक्तों की भक्ति-भावना परिमित, रागात्मिक या अनन्य दिखाई देती है। श्रीकृष्ण से आगे वे प्रायः नहीं बढ़े। इन प्रेमोन्मत्त गायकों ने उदारतापूर्वक अन्य देवी देवताओं का भी स्मरण किया। यदि कहा जाय कि यह उदारता भक्ति का लक्षण है तो इतना कहना कि 'रहीम' ने अपनी भक्ति भावना उदार रखी है, पर वे भक्त कवि नहीं माने जाते। 'सेनापति' रामोपासक थे, राम की कथा के साथ इन्होंने कृष्ण-कथा भी 'कवित्त-रत्नाकर' में संनिविष्ट की है; पर वे भक्त नहीं, शृंगारी कवि ही स्वीकृत हैं। इसलिए रसखानि, आलम, शेख, घनआनंद आदि को शुद्ध भक्त कहने में हिचक होती है। सूरदास या अन्य भक्त कवि जैसे पद के अंत में 'सूर के प्रभु', 'सूर के स्वामी', 'परमानंद के प्रभु', 'कृष्ण के स्वामी' आदि पदावली का उपयोग करते हैं, वह प्रवृत्ति भी इन कवियों में नहीं दिखाई देती। पद्माकर, मतिराम, देव आदि की जैसी उक्तियाँ हैं वैसी ही इनकी भी हैं। यदि बिना भक्त कहे संतोष न होता हो तो भिन्न विभाजन के लिए यह बात ध्यान में रखनी होगी कि इनकी रचना के प्रायः तीन रूप हैं। प्रथम खंड में इनकी कोरी रीतिबद्ध रचना की ओर झुकाव दिखाई देता है, जिसमें इनकी ऐसी रचनाएँ आती हैं जिनमें इन्होंने काव्यक्षेत्र में अपनी प्रतिभा का परिचय मात्र दिया है। दूसरे खंड में इन्होंने रीतिबद्ध रचना का त्याग कर दिया है और स्वच्छंद रूप से प्रेम के पवित्र क्षेत्र में पदार्पण किया है। तीसरे खंड में इनकी रचनाएँ भक्तिपरक हो गई हैं। इन कवियों का लक्ष्य प्रेमसाधना ही है, भक्ति नहीं है। सबसे अधिक विरोध 'रसखान' के संबंध में उठाया जाता है। पर 'रसखानि' ने स्वयम् प्रेम को साध्य कहा है—

जेहि पाएँ बैकुंठ अरु हरिहूँ को नहिं चाहि।
सोइ अलौकिक सुद्ध सुभ सरस सुप्रेम कहाहि॥

वल्लभाचार्यजी ने हृदय के संस्कार और विकास की दृष्टि से भक्ति को साध्य अवश्य कहा है, पर ईश्वर-भक्ति को ही, यह नहीं भूलना चाहिए। पर 'रसखानि' स्पष्ट कहते हैं—

इक अंगी बिनु कारनहिं, इकरस सदा समान।
गनै प्रियहि सर्वस्व जो, सोई प्रेम प्रमान॥

वल्लभाचार्यजी के अनुसार भगवद्भक्ति या अलौकिक प्रेम ही साध्य हो सकता है, उसे ही एकांगी, निर्हेतुक, एकरस होना चाहिए। पर 'रसखानि' लौकिक प्रेम में भी इसे स्वीकार करते हैं। तात्पर्य यह कि जिस प्रकार वे रीति से अपने को स्वच्छंद रखते थे उसी प्रकार भक्ति की सांप्रदायिक नीति से भी। अतः वे भक्तिमार्गी कृष्णभक्तों, प्रेममार्गी सूफियों, रीतिमार्गी कवियों—सबसे पृथक् स्वच्छंदमार्गी प्रेमोन्मत्त गायक थे। कोई इन्हें इनकी भक्तिविषयक रचना के कारण भक्त कहना चाहे तो कहे, पर इतने 'व्यतिरेक' के साथ कहे कि ये स्वच्छंद प्रेममार्गी भक्त थे, तो कोई बाधा नहीं है। स्वच्छंदता इनका निजी लक्षण है। यही कारण है कि इन्होंने काव्यशैली की दृष्टि से भी भक्तों से अलगाव-भेद सूचित किया। कृष्णभक्तों की अधिकतर रचनाएँ गीत में ही मिलती हैं। काव्य की प्राचीन कवित्त-सवैया-वाली शैली में उन्होंने पूरी आस्था नहीं दिखाई। भक्त्युपासना के साधन के लिए राग-रागनियों के अनुकूल पदरचना करनेवाले गीत ही उन्हें अधिक रुचे हैं। इन स्वच्छंद कवियों की कुछ रचनाएँ पद की भी अवश्य हैं; पर इनकी एक प्रकार से

प्रकृति-बोधिनी कृति कवित्त-सवैयों में ही है—बीच-बीच में दोहे, सोरठे और छप्पय भी आ गए हैं, यह दूसरी बात है। इनके स्वच्छंद प्रेममय कवि-पक्ष के अनुकूल इस तर्क की उपेक्षा नहीं की जा सकती। 'रसखान' ने भी भक्तों की 'नीति-रीति' का त्याग कर दिया है।

कृष्णभक्त कवियों में प्रबंध-रचना का स्फुरण नहीं हुआ। रीतिबद्ध शृंगार की रचना करनेवाले भी प्रबंध की ओर उन्मुख नहीं हुए। भक्तिकाल के भीतर सूफी प्रेममार्गी कवि मसनवी प्रेमकथा के द्वारा अपना साम्प्रदायिक प्रेम-मार्ग व्यक्त करते थे। इन स्वच्छंद कवियों ने भक्ति और रीति दोनों की साम्प्रदायिकता से पृथक् रहने का प्रयास किया। अतः इनका प्रेम-प्रबंधों की ओर मुड़ना स्वाभाविक था। 'आलम' ने माधवानल-कामकंदला, सुदामाचरित्र और श्यामसनेही नामक तीन प्रबंध-काव्य प्रस्तुत किए। पहले में कामकंदला नाम्नी वेश्या के प्रति माधवानल नामक प्रेमोन्मत्त व्यक्ति की प्रीति काव्यबद्ध की गई है। दूसरे में सुदामा के प्रति श्रीकृष्ण के निःस्वार्थ प्रेम का वर्णन है। तीसरे में रुक्मिणी के प्रेम और परिणय की कथा है। इस प्रकार प्रेम के विविध रूपों को काव्यबद्ध करके 'आलम' ने अपने स्वच्छंद प्रेमपंथ का प्रमाण दे दिया है। न तो 'सुदामाचरित्र' की चर्चा चलानेवाले नरोत्तमदास भक्त कवियों की श्रेणी में गिने जाते हैं और न 'रामचंद्रचंद्रिका' का 'प्रकाश' करनेवाले केशवदास भी भक्तशिरोमणि ही माने जाते हैं—यद्यपि 'राम' दोनों ही हैं। अतः श्रीकृष्णविषयक रचना से ही किसी को भक्तों की मंडली में बिठा देना बहुत स्थूल लक्षण लेकर काव्येतिहास का विवेचन करने बैठना है। 'माधवानलकामकंदला' प्राकृत-काल की कदाचित् कल्पित कथा है, जिसमें थोड़ी-सी विक्रमादित्य की ऐतिहासिक कथा भी जुड़ी है। यह कथा मूल में प्राकृत की रही होगी, संस्कृत में इसका प्राकृत से अनुवाद हुआ होगा—वैसे ही जैसे गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' का संस्कृत में संक्षेप हुआ। इसके प्राकृत-रूप का प्रमाण यह है कि संस्कृत में इसके जो अनुवाद हुए, उनमें भी प्राकृत की गाथाएँ ज्यों की त्यों रखी हुई हैं। इस प्रकार प्राचीन काल में संस्कृत में जो प्रेमकथाएँ कल्पित वृत्त लेकर गद्य में लिखी जाती थीं उन्हीं की परंपरा में प्राकृत काल की ये रचनाएँ भी हैं। जैसे प्राकृत और अपभ्रंश की और बहुत-सी सामग्री लुप्त हो गई वैसे ही यह कथा भी अपने मूल रूप में। यही 'माधवानलकामकंदला' शुद्ध भारतीय प्रेम-कथाओं की

परंपरा में दिखाई पड़ती है। सूफी प्रेमकाव्यों में कल्पित कथाओं पर, या कहीं-कहीं कुछ ऐतिहासिक आधार से भी युक्त होकर, जैसी रहस्यमयी कृतियाँ लिखी गईं उनसे यह सर्वथा भिन्न है। 'बोधा' ने भी माधवानलकामकंदला-चरित्र या 'विरह वारीश' प्रस्तुत किया, पर उसमें भी सूफी प्रेमाख्यानों की भाँति रहस्यदर्शी पद्य का समावेश नहीं है। अर्थात् कोई समासोक्ति, अन्योक्ति या अन्यापदेश (एलेगरी) नहीं है—भले ही उसमें सूफी 'इश्क-मजाजी' और 'इश्क-हकीकी' की चर्चा हो पर काव्य-वस्तु में अध्यवसान का विधान नहीं हुआ है। इस प्रकार स्वच्छंद प्रेम के रूपों के ग्रहण द्वारा इस काव्य-धारा में प्रबंध की प्रवृत्ति के स्फुरण का भी संकेत मिलता है, जो रीतिबद्ध कवियों के यहाँ किसी प्रकार भी नहीं पाया जाता। 'आलम' के अन्य ग्रंथ पौराणिक या प्रख्यात वृत्त लेकर चले हैं। उनमें भी प्रेम के स्वच्छंद और व्यापक रूप के ग्रहण का आभास स्पष्ट है।

रीति की शृंखला में बँधे रहने से कवियों ने प्रकृति की ओर से भी अपनी दृष्टि हटा ली थी। भक्तों ने भी प्रकृति का कोई स्वच्छ उपयोग नहीं किया। प्रकृति को अपनी दृष्टि से देखने और उद्दीपन के बंधन को तोड़कर चलने का प्रयास नहीं दिखाई देता। सेनापति की रचना में प्रकृति कहीं-कहीं उद्दीपन के बंधन से मुक्त अवश्य मिल जाती है। गुमान मिश्र का 'कृष्णचंद्रिका' नामक प्रबंध-काव्य इस दृष्टि से विशेष ध्यान देने योग्य है, पर उधर किसी समीक्षक की दृष्टि अभी नहीं गई है। नंददास, भवभूति आदि पुराने संस्कृत-कवियों की भाँति उक्त प्रबंध-काव्य में गुमान ने प्रकृति के खुले दर्शन कराए हैं। गुमान के भाई खुमान का अप्रकाशित 'कृष्णायन' भी इस दृष्टि से ध्यान देने योग्य है। प्रकृति के खुले मैदान (महोबा, बुंदेलखंड) में रहनेवाले इन कवियों की सहृदयता प्रशंसनीय है। पूर्वोक्त स्वच्छंद कवियों में प्रकृति-दर्शन की स्वच्छंद आँख भी जगी है। इनके यहाँ प्रकृति उद्दीपन के पाश से मुक्त दिखाई पड़ती है। रीति का व्यवहार अधिक होने का दुष्परिणाम जो होना चाहिए था वही हुआ—कवियों ने अपनी काव्यदृष्टि खो दी; प्रकृति को अपनी दृष्टि से निरीक्षण करना वे भूल बैठे। कुछ कवियों ने परंपरा का तिरस्कार करके वसंत में मयूर का नृत्य अवश्य दिखाया और वर्षा में कोकिल-रव अवश्य ठोका, पर इससे आगे वे भी कुछ न कर सके। प्रकृति का वर्णन करते हुए स्वच्छंद-प्रेम विशारद 'द्विजदेव' ही ऐसे दिखाई पड़ते हैं जो प्रकृति-दर्शन के लिए अपनी

दृष्टि स्वच्छंद करके बाहर निकले हैं। शास्त्र-दृष्टि से काम न लेकर उन्होंने आत्म-दृष्टि का पूरा उपयोग किया। 'विरह-वारीश' में बोधा ने भी प्रकृति का वर्णन कुछ तो शास्त्रबद्ध और कुछ स्वच्छंद-शैली पर रखा है। अतः इन कवियों को स्व-च्छंदता से यथार्थ वस्तु-दृष्टि सामने करने का पूर्ण प्रयोग किया है, इसमें सन्देह नहीं रह जाता। प्रकृति इन्हें कैसी दिखाई पड़ी, इसका विचार यहाँ अपेक्षित नहीं।

स्वच्छंद दृष्टि से देश के आनंदोल्लास में भी इन कवियों ने मनोयोग किया। वसंत-वर्णन के अंतर्गत होली के त्योहार का उल्लेख करने के आगे रीतिबद्ध कवि नहीं बढ़े। गुलाल की गर्द और केसर की कीच तक ही वे रह गए। इन त्योहारों का चित्र उपस्थित करने की ओर इनकी दृष्टि स्वाभाविकता के साथ प्रवर्तित न हुई। 'ठाकुर' ने अपनी रचना में बुंदेलखंड के आनंदोल्लासमय जीवन के कुछ चित्र रखकर देश के इस सांस्कृतिक वैभव की ओर भी लोगों की दृष्टि खींची। हम तो अपने नागरिक जीवन के अभिमान में अपना प्राचीन संस्कार भी खोते जा रहे हैं! नगरों में त्योहारों का वह उल्लासमय रूप सामने नहीं आता जो भारत के जीवन का प्राण रहा है। गाँवों में इस दृष्टि से अपने जीवन का रूप अच्छा और स्वाभाविक दिखाई देता है। जो प्रांत या प्रदेश नागरिक जीवन की संकीर्णता से दूर या विच्छिन्न हैं उनमें अब भी देश की इस संस्कृति के बड़े भव्य दर्शन होते हैं। बुंदेलखंड में हमारा जीवन-संघ अपने प्राचीन रूप में अब भी बहुत-कुछ सुरक्षित है। 'ठाकुर' कवि ने उस उल्लासमय जीवन में से अखती, गनगौर, वटप बिजी (मरम-दाई), होली आदि के बड़े ही [illegible] चित्र सामने किए हैं। रीतिबद्ध कवियों में से किसी-किसी ने बुंदेलखंड से संबद्ध होने के कारण 'गनगौर' का उल्लेख भर कर दिया है, जैसे पद्माकर ने; पर उसका चित्र उपस्थित करने की अभिरुचि नहीं दिखाई देती। काव्यशास्त्र में इन त्योहारों का उल्लेख तो है नहीं, फिर रीतिबद्ध कवि इनका अभिनंदन करने क्यों दौड़ते।

स्वच्छंद कवियों ने इसी से रीति की रचना आरम्भ में स्वीकृत करके भी त्याग दी। उसका जितना अंश उन्होंने लिया वह भी परिमित है; कुछ चुने हुए प्रसंग ही अधिक हैं। नेत्रव्यापार की कुछ उक्तियाँ सभी कवियों में पाई जाती हैं। भक्त, रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त—सभी कवियों ने नेत्रों पर उक्तियाँ बाँधी हैं। 'सूरसागर' में तो इस प्रकार की उक्तियाँ भरी पड़ी हैं। यदि कोई चाहे तो नेत्रों

की उक्तियों का हिंदी के पुराने कवियों के काव्य से बहुत बड़ा संग्रह कर सकता है। एक सूक्ति-संग्रह निकला भी है, पर उसमें भी चमत्कारातिशय-युक्त रच-नाएँ ही संकलित की गई हैं। नेत्रों की इन उक्तियों को हम रीतिबद्ध रचना के अंतर्गत नहीं ले जा सकते। खंडिता की उक्तियाँ भी इन कवियों में पाई जाती हैं। बिहारी की भी कोई एक-निष्ठ रचना खंडिता की उक्तियों से मिश्रित हुई है। रसखान, आलम, ठाकुर, घनआनंद—सबमें खंडिता की उक्तियाँ मिलती हैं। इसके हेतु का विचार करना भी आवश्यक है। बात यह है कि जो कवि स्वच्छंद थे, उन्होंने तो उर्दू या फारसी की तरह प्रेमिका के रकीबों और माशूकों के झगड़ों को खंडिता के दरबार में पेश किया। भारतीय परंपरा में इन्हें खंडिता ही सबसे मेल खानेवाली दिखाई पड़ी। भौंरों की क्रीड़ा में विशेष संलग्न होने का कारण इनकी कविता में जो दरबारी दंगल ही प्रतीत होता है। स्वच्छंद कवियों ने इतना ग्रहण इसी से किया कि प्रेमवैषम्य के लिए उन्हें भी भारतीय काव्य-क्षेत्र में यही बात अनुकूल दिखाई पड़ी। फारसी-ढंग का प्रेम ये पूरी स्वच्छंदता से अभिव्यक्त होकर दिखा नहीं सकते थे, प्रेम की संकीर्णता पर भी इनकी दृष्टि आरम्भ से ही थी, अतः रीतिबद्ध कवियों का नया काव्यार्थ इन्हें अपनाने का जान पड़ा। पर खंडिता की इनकी उक्तियों में भेद है। वस्तुतः नायिका-भेद के भीतर परकीयादि और खंडिता के रूप में अंतर दिखाई पड़ता है। खंडिता में अधिकतर सपत्नी के संभोग से उपलक्ष्य नायक के शरीर पर के चिह्नों पर ही विशेष दृष्टि रहती है और वह भी गिने-गिनाए चिह्नों पर। जैसे—भाल पर महावर का चिह्न, अधरों में पान की पीक, अधरों में अंजन, छाती पर चोली की माला आदि। रीतिबद्ध कवियों ने इन विशेष चिह्नों की उद्धरणी पर ही विशेष ध्यान दिया है; खंडिता के हृद्गत भावों पर उनकी दृष्टि प्रायः नहीं जमती है।

घनआनंदादि में भी नायकानायिकों की कठोरता या कोमलता को ही उन्होंने लक्ष्य किया, उक्ति के साथ जिसप्रकार हृदय सामने न आ सका; पर स्वच्छंद कवियों ने खंडिता के चिह्नों की उद्धरणी पर ध्यान न देकर उसका हृदय दिखलाने का प्रयास किया है। उक्ति खंडिता की ही है, इसके लिए किसी एक चिह्न का संकेत करके वे भाव के विधान में लग गए। पर इस प्रकार की उक्तियों में भी उनका मन नहीं रम सकता था, अतः उन्होंने इनका भी त्याग कर दिया। सूरदास ये

विपरीत रति आदि की कुरुचिपूर्ण रचनाएँ स्वच्छंद कवियों की रचना में प्रायः नहीं मिलतीं। जहाँ मिलती हैं वहाँ उनकी आरंभिक रचना के रूप में, जब उन्होंने हाथ आजमाने के लिए रीतिबद्ध रचना की सर्वथा स्वीकृत की थी। बाद में ऐसी रचना की उन्होंने पूर्ण उपेक्षा की। 'बोधा' में ही कुछ बाजारू रंग-ढंग कहीं-कहीं मिलता है। यह उनपर फारसी की रचना का आरंभिक प्रभाव है। रीतिबद्ध लक्षणकारों में जो स्थिति 'रसनिधि' की है, भक्तों में जो रूप 'कुंदनशाह' का है, वैसा ही स्वच्छंद कवियों में 'बोधा' को समझना चाहिए। वे आत्मविस्मृत होकर बाजारू रंग में रंग गए हैं। कुशल हुई कि 'बोधा' ने अपनी सारी रचना इसी प्रकार की नहीं रखी। घनआनंद, ठाकुर आदि ने तो विदेशी रंग-ढंग ग्रहण करने की पद्धति बताई। विदेशीपन इनकी काव्यधारा में घुल गया। 'बिहारी' ने भी रसानुभूति की अपेक्षा विदेशीपन को बड़े कठकोने से पोंछा है, वीभत्स व्यापार कहीं ग्रहण नहीं किया।

स्वच्छंद कवियों ने अपना वैभव केवल हृदय की उदारता और प्रेम के निर्मल रूप में ही नहीं दिखलाया, भाषा और अभिव्यंजन शैली में भी दिखलाया। रीतिबद्ध रचना प्रचुर परिमाण में हुई, हिंदी का भांडार सुंदर उक्तियों और रमणीक प्रसंगों से भर गया। किसी काव्यांग के उदाहरण की कमी नहीं रह गई, एक से एक रचना छाँटकर निकाली जा सकती है— भले ही वे रचनाएँ प्रायः एक ही प्रकार की हों; पर उनमें कवि की क्षमता के तारतम्य के अनुसार उत्कर्ष भी अवश्य दिखाई देता है। यह सब होने पर भी भाषा का परिष्कार उनके द्वारा वैसा न हुआ जैसा होना चाहिए था। बिहारी, मतिराम, पद्माकर-ऐसे दो-चार कवियों को छोड़ दें तो रीतिबद्ध रचना करनेवालों में भाषा की सफाई के दर्शन न हो सकेंगे। भूषण, देव आदि बड़े उत्कृष्ट कवि थे; पर शब्दों का अंग-भंग इन्होंने पर्याप्त किया है। कवियों ने न तो प्राकृत, अपभ्रंश आदि के पुराने शब्दों को ही जो ब्रजभाषा की बोलचाल से उठ गए थे—छाँटकर पृथक् किया और न रूप की एकता का ही विचार किया। पश्चिमी ब्रजभाषा और पूर्वी अवधी की पदावली का ऐसा घालमेल हुआ कि ब्रजभाषा का व्याकरण प्रस्तुत करनेवाले अब उनके पृथक्-पृथक् रूपों का भेद ही नहीं कर पाते—एक ही लाठी से सबको हाँकने लगते हैं। पूर्वी और पश्चिमी प्रयोगों में भेद है। 'सुघर' शब्द ब्रज में 'चतुर' अर्थ में आता

है, अवधी में 'सुंदर' अर्थ में। पछाँह में 'सुठि' चलता है 'सुंदर' के अर्थ में, पर पूरब में 'चाल' के अर्थ में। 'हेरना' पछाँह में 'देखने' को कहते हैं, पूरब में 'खोजने' को। पर इन सब प्रयोगों का ऐसा एकीकरण हो गया कि भेद करना सचमुच बहुतों के लिए कठिन है। देशी ही नहीं, विदेशी शब्दों की भी आकृति बदल गई। पर स्वच्छंद कवियों में यह बात नहीं दिखाई देती, यह बड़े आश्चर्य की बात है। इन्होंने न भाषा का अंगभंग ही किया है और न प्रयोगों को बिगाड़ा ही। रसखानि और घनआनंद ने तो ब्रजभाषा का ऐसा स्वच्छ और ठीक रूप प्रस्तुत किया कि उनके आधार पर भाषा का पूरा व्याकरण बन सकता है। 'दास' जी ने ब्रजभाषा का ज्ञान प्राप्त करने के लिए जिन कवियों की तालिका उपस्थित की है उन सबकी भाषा का अध्ययन करने पर उसी भाषा का ज्ञान होगा जिसमें ब्रज और अवधी दोनों का मेल है। इस प्रकार के मेल से बनी भाषा ही ब्रजभाषा रह गई। 'ब्रज' काव्य की भाषा थी, इसलिए उसमें सब प्रकार के प्रयोग मिला दिए गए। काव्य-भाषा के लिए कुछ विस्तार अपेक्षित भी है, पर भाषागत भेद बना रहना भी आवश्यक है; सब भाषाओं की प्रकृति का तिरस्कार ठीक नहीं जान पड़ता। रसखानि और घनआनंद में ब्रजभाषा का खरा रूप ही रूप रहा, बिहारी ने भी उसका मूल साहित्यिक रूप सुरक्षित रहने दिया। दो-चार प्रयोग अलंकार छंद आदि की विवशता के कारण इधर-उधर के पूरब के भी आ गए हैं, पर वे सरलता से पहचाने जा सकते हैं।

जब शैली की ओर आते हैं तो स्पष्ट दिखाई देता है कि उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, अत्युक्ति आदि की लड़ी बाँधनेवालों की अपेक्षा इनकी व्यंजना-पद्धति बड़ी ही मार्मिक है। घनआनंद ने तो ऐसे ऐसे पथों से भावना को ले जाने का प्रयत्न किया है जिनपर पुराने कवि तो गए ही नहीं, नए कवि भी जाने का साहस कम करते हैं—

(१) मो से अनपहचान को पहचानै हरि कौन।
कृपा-कान मधि-नैन ज्यौं त्यौं पुकार मधि-मौन॥

जानी 'पुकार मौन में' है तो उधर नैनों में 'कृपा के कान' लगे हुए हैं।

(२) लिखि राख्यौ चित्र यौं प्रवाह रूपी नैननि पै,
लही न परनि गति उलटि अनेरे की।

रूप को चरित्र है घनआनंद जान प्यारी,
ये किधौं विचित्रताई मो चित-चितेरे की ।

'रंग से बना' चित्र प्रवाह में न तो स्थिर रह सकता है और न उसका रंग ही धुले बिना बच सकता है, पर यहाँ नेत्रों के प्रवाह में ही प्रिय का चित्र बना हुआ है। ऐसी विलक्षण स्थिति का कारण प्रिय का सौंदर्य है अथवा प्रेमी का मन, कुछ कहा नहीं जा सकता। आब्जेक्टिविटी (ऑब्जेक्टिविटी) इसका हेतु है अथवा सब्जेक्टिविटी (सब्जेक्टिविटी), कौन जाने !

इन्होंने भी अलंकृत शैली का व्यवहार बराबर किया है, पर पांडित्य-प्रदर्शन के लिए कभी नहीं; हृदय की स्थिति का रूप या भाव देने के लिए। वस्तुतः ये सुंदरता के भेदों—रमणीयता की विविध स्थितियों—से पूर्णतया अभिज्ञ थे। 'जग की कविताई' से इनकी कविता इसी से पृथक् थी। प्रेम की विषमता के निरूपण के लिए घनआनंद ने 'विरोधाभास' का बहुत सहारा लिया है, पर भाषा की मुहावरेदानी में कहीं बल नहीं पड़ने पाया है—

देखिये दसा असाध अँखियाँ निपेटनि की,
भसमी बिथा पै नित लंघन करति हैं ।

आँखें स्वभाव से ही निपेटनी (भुक्खड़) हैं, उस पर 'भसमी व्यथा' (भस्मक रोग) उत्पन्न हो गई है, जिसमें जो खाया जाता है वह भी भस्म हो जाता है; सब खाते रहने पर भी, अधिक मात्रा में खा लेने पर भी पेट नहीं भरता तब भी इन्हें लंघन करना पड़ रहा है। किंतु 'भसमी बिथा' में घनआनंद ने जो आयुर्वेद की जानकारी का पता दिया है उसकी 'वाहवाही' का फालतू प्रयास यदि छोड़ भी दिया जाय तो भी 'भसमी बिथा' अपने दूसरे अर्थ को व्यक्त करने में असमर्थ नहीं है। 'विरोधाभास' के अधिक प्रयोग से घनआनंद की सारी रचना भरी पड़ी है। साहसपूर्वक यह कहा जा सकता है कि जिस पुस्तक में कहीं भी यह प्रवृत्ति न दिखाई दे उसे बेखटके घनआनंद की कृति से पृथक् कहा जा सकता है और जहाँ यह प्रवृत्ति दिखाई दे उसे निःसंकोच इनकी कृति घोषित किया जा सकता है। इस 'अन्वयव्यतिरेक' से इनकी कृतियों के छाँटने में पूरी सहायता मिल सकती है। 'विरोध' वस्तुतः आर्थ और शाब्द दोनों प्रकार का होता है। अर्थगत विरोध तो इनमें है ही पर विरोध की प्रवृत्ति प्रकृतिस्थ होने से शाब्द 'विरोध' भी कहीं-कहीं

दिखाई देता है, पर केशवदास जी के 'विरोध' की भाँति उसका विनियोग पांडित्य प्रदर्शित करने के लिए नहीं है। 'विरोध' की ओर यदि ऐसे स्थलों पर ध्यान न भी जाय तो भी सामान्य अर्थ में कोई बाधा नहीं पड़ती। जैसे, 'दईमारी दुरो हम आप ही निरदई'। यहाँ 'निरदई' का अर्थ 'निर्दय' तो है ही साथ ही 'दईमारी' के साहचर्य से 'निर-दई' भी है; पर 'निर + दई' पर दृष्टि न भी पड़े तो भी अर्थ में कोई व्याघात नहीं पड़ता।

भाषा के विचार से तो रीतिबद्ध कवियों में से बहुत कम इनकी तुलना में टिक सकेंगे। घनआनंद और ठाकुर ने व्रजभाषा को बहुत शक्ति दी है। वाग्योग का ऐसा विधान शब्दों का मनमाना और निरर्थ प्रयोग करनेवालों ने कहाँ। लोकोक्तियों का जैसा विनियोग ठाकुर ने किया है हिंदी के दूसरे कवि ने नहीं। घनआनंद की रचना में तो भाषा स्थान स्थान पर अर्थ की संपत्ति से समृद्ध होकर सामने आती है। वाक्यध्वनि, पदध्वनि तो दूर रहे, इन्होंने पदांशध्वनि से भी जगह जगह काम लिया है। एक दो उदाहरण पर्याप्त होगा—

मेरो मनोरथहू बहिये अरु है मो मनोरथ पूरनकारी ।

यहाँ 'मनोरथ' का श्लेष-बल से 'मन का रथ' अर्थ व्यक्त करके कवि ने केवल 'हू' से बहुत बड़ी व्यंजना की है। 'हू' का अर्थ है कि "हे कृष्ण, जिस प्रकार आपने अर्जुन का रथ वहन किया था उसी प्रकार मेरा मनोरथ भी वहन कीजिए, क्योंकि आप 'जनार्दन' ठहरे।" इन्होंने शब्द भी गढ़े हैं— जैसे, 'दिनदानी' के तौर पर 'दिनहीन'।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि घनआनंदजी व्रजभाषा के तो पूरे जानकार थे ही, भाषा की गति को भी भाव के अनुकूल मोड़ सकते थे। ये 'व्रजभाषा-प्रवीण' और 'भाषा-प्रवीण' दोनों ही थे।

आनंदघन

आनंद, आनंदघन और घनआनंद ये तीन नाम बहुत दिनों तक एक ही नाम के समझे जाते थे। हिंदी में संगीत के रागों के संग्रह ग्रंथ 'राग-कल्पद्रुम' में 'आनंद' और 'आनंदघन' का अभेद स्वीकृत है। डाक्टर ग्रियर्सन ने 'दि माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आव् हिंदुस्तान' (पृष्ठ ६६, संख्या ३४७) में अनुमान लगाया है कि आनंद और आनंदघन संभवतः एक ही हैं। पर नागरीप्रचारिणी

सभा (काशी) की खोज के वार्षिक विवरणों में आनंद और आनंदघन को एक माना गया है। बहुत दिनों तक तो इसका पता ही न था कि 'आनंद' कौन हैं, कहाँ के रहनेवाले हैं और इनका समय क्या है। इन्होंने कामविज्ञान पर 'कोकमंजरी' लिखी है, जो इतनी फैली कि उसके अनेक रूप हो गए। इधर की 'खोज' में उनकी ऐसी प्रतिलिपियाँ मिली हैं जिनमें इनके वंश, स्थान और समय का भी स्पष्ट उल्लेख है--

कायथ-कुल आनंद कवि बासी कोट हिसार।
कोककला इहि रुचि करन जिन यह कियो बिचार॥
रितु बसंत संबत सरस सोरह सै अरु साठ।
कोकमंजरी यह करी धर्म कर्म करि पाठ॥
—(खोज, १९२३-२० बी)।

अथवा

रितु बसंत संबत सत सोरह आगत साठ।
कोकमंजरी यह करी करम धरम कै पाठ॥
—(खोज, १९२६-२० एफ)।

इस प्रकार 'आनंद' विक्रम की सत्रहवीं शती के तृतीय चरण में वर्तमान थे। उधर 'साहित्य-भूषण' के निर्माता श्रीमहावीरप्रसाद ने, जिनके आधार पर डाक्टर ग्रियर्सन ने आनंदघन का जीवनवृत्त दिया है, आनंदघन (या घनआनंद) को कायस्थ-कुल का तो अवश्य बतलाया है पर वे इन्हें दिल्ली के मुगल बादशाह मुहम्मदशाह रँगीले का मुंशी भी कहते हैं। साथ ही यह भी सूचित करते हैं कि अंत में ये वृंदावन चले गए थे और नादिरशाह ने जब मथुरा पर अधिकार किया तो ये मारे गए (दि माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आव् हिंदुस्तान, पृष्ठ ९२, संख्या ३४७)। मुहम्मदशाह का राज्यकाल सं० १७७६ से १८०५ तक था और भारत पर नादिरशाह का आक्रमण सं० १७९६ में हुआ। इस प्रकार इनका काव्य-काल विक्रम की अठारहवीं शती का चतुर्थ चरण ठहरता है। इससे दोनों के समयों में सौ-सवा सौ वर्षों का अंतर है। शिवसिंह सेंगर ने अपने 'सरोज' में 'आनंदघन कवि दिल्लीवाले' का समय सं० १७१५ दिया है (सप्तम संस्करण, पृष्ठ ३८०)। 'सरोज' का यह समय कवि का वर्तमान-काल ही है, जन्म काल नहीं,

जैसा हम सिद्ध कर चुके हैं (देखिए 'हिंदुस्तानी', भाग १३, अंक १; अप्रैल, १९४३ में मेरा 'शिवसिंहसरोज के सन्-संवत्' शीर्षक लेख)। इस प्रकार भी दोनों के समय में ५० वर्षों का अंतर पड़ता है। दोनों की रचनाओं में तो भाषा-भाव-विधान का नहीं, आकाश-पाताल का अंतर है। इसलिए 'आनंद' और 'आनंदघन' दोनों पृथक् कवि हैं।

'आनंदघन' भी क्या एक ही थे? 'मिश्रबंधु-विनोद' में उक्त दिल्लीवाले 'आनंदघन' के अतिरिक्त १७७० संख्या पर एक दूसरे 'आनंदघन' का विवरण इस प्रकार दिया है—'आनंदघन, ग्रंथ—आनंदघन-बहत्तरी-स्तवावली, रचनाकाल—१७०५; विवरण—यशोविजय के समसामयिक थे।' किंतु श्रीक्षितिमोहनजी सेन ने 'वीणा' (नवंबर, १९३८) में 'जैनमर्मी आनंदघन' शीर्षक सचित्र लेख लिखकर वृंदावन के 'आनंदघन' और 'जैनमर्मी आनंदघन' के एक होने की संभावना प्रकट की है। 'सरोज' में भी एक कवि 'आनंदघन' नाम के और उल्लिखित हैं, जिनका समय सं० १६६० दिया गया है (पृष्ठ ४१३)। इन 'घन-आनंद' और 'जैनमर्मी आनंदघन' के अभेद की भी संभावना श्रीमती ज्ञानवती त्रिवेदी द्वारा 'पत्रमंजरी' नामक समीक्षा-पुस्तक में की गई है (पृष्ठ ११)। इसलिए इन सब पर विचार करने की अपेक्षा जान पड़ती है। 'सरोज' में दिल्लीवाले 'आनंदघन' के दो सवैये उदाहरण-स्वरूप दिए गए हैं (पृष्ठ १९-२२); एक है 'आगु ही तें' बनीकवाला सवैया (देखिए आगे) और दूसरा यह है—

नेह भरे सुधि भूलि तुम्हैं फिरि भूलि न मो मन भूलि बिसैहै।
एक को आँक बनावत मेटत पोथिय काँख लिये दिन जैहै।
साँची कहौं जगजानि मोहिं कहा की सौं प्रीतम की गति तोहि दुहैहै।
या मन की कहा आठि-गाँस अजासुत कैहौं कुकाजी सों धौंहै सिखैहै।

यह सवैया न तो 'आनंदघन' या 'घनआनंद' के नाम से अब तक और कहीं मिला है और न इसमें कवि के नाम की छाप ही है। हाँ, वृद्धजनों ने 'केशव-पुत्र-वधू' के संबंध में जो कथा सुनी थी वही इस सवैये में वर्णित है। कहते हैं कि जब 'ओड़छा' के कवि केशवदासजी ने 'रसिकप्रिया' की रचना की तब उसे पढ़कर उनके समाज विषय वासना में ऐसे लगे कि केशव को 'विज्ञान-गीता' ('प्रबोध चंद्रोदय' नाटक का भावानुवाद) की रचना करनी पड़ी। इसे पढ़कर उन्हें प्रबोधोदय हो

गया। वे दर्शन के अंत काल में इनके घूमा करते थे और 'एकमेवाद्वितीयम्' की ही चर्चा में लीन रहते थे। शाक होने के कारण घर में बकरा भी पाला गया था। केशव की पुत्रवधू थी कलावती। अजासुत ने अकस्मात उसे आते जाते देख कर अपनी 'बोली-बानी' में कंठ खोला तो उसने ककाजी (केशवदासजी) को सुनाते हुए ऐसी रचना पढ़ी जिसमें कहा गया था कि ऐ बकरे तू काकाजी से कहकर मुझे भी अध्यात्मविद्या की शिक्षा दिला दो, जिससे मुझे भी वैराग्य हो जाय. तेरी भी बड़ी गति हो और मेरे पतिव्रत की हुई। इसे केशवदासजी ने सुन लिया और अपने पुत्र को पुनः गार्हस्थ्य-धर्म में संलग्न कराया।

'मिश्रबंधु-विनोद' में ३३५ संख्या पर केशव-पुत्रवधू का उल्लेख है—"रचना-काल १६६० के पूर्व, विवरण—इनकी कविता 'सारसंग्रह' में है।" 'सारसंग्रह' का विवरण भूमिका में यों दिया है—"संवत् १८०० का बना हुआ काव्य द्वारा संगृहीत सारसंग्रह, पंडित युगलकिशोर मिश्र के पुस्तकालय में है। इसमें प्रायः १५० कवियों की रचनाएँ पाई जाती हैं।" 'विनोद' में 'केशव-पुत्रवधू' की रचना का कोई उदाहरण नहीं है। पर काशी नागरीप्रचारिणी सभा के आर्यभाषा-पुस्तकालय के हस्तलेख-संग्रह (संख्या ८५६) के १२५ वें पन्ने पर यही एक सवैया केशव पुत्रवधू के नाम पर दिया गया है। केवल एक ही उदाहरण है। अतः यह 'आनंदघन' या 'घनआनंद' की रचना नहीं है। भूल से उनके नाम चढ़ गई है। अब 'सरोज' (पृष्ठ ८३) में 'घनआनंद' के नाम पर उद्धृत रचना देखिए—

गाइहौं देवी गनेस महेस दिनेसहि पूजत ही फल पाइहौं।
पाइहौं पावन तीरथ-नीर सु नेकु जहाँ हरि को चित लाइहौं।
लाइहौं आछे द्विजातिन को धन गोधन-दान करौं चरचाइहौं।
चाइ अनेकन सों सजनी घनआनँद मीतहि कंठ लगाइहौं।

यह सवैया भी अन्यत्र 'आनंदघन' या 'घनआनंद' के नाम से नहीं मिलता। इसमें 'घनआनंद' नाम है अवश्य, पर 'आनंदघन' और 'घनआनंद' शब्द देखकर ही किसी छंद को 'आनंदघन' या 'घनआनंद' की रचना मान लेने से बहुत धोखा खाना पड़ता है, यह भी समझ रखिए। ब्रज के भक्त कवियों ने इन नामों का व्यवहार श्रीकृष्ण के लिए बराबर किया है। पर इस सवैये में 'घनआनंद' का

अर्थ 'श्रीकृष्ण' है, ऐसा भी नहीं जान पड़ता। यह तो किसी विरहिणी की उक्ति जान पड़ती है। विरहिणी पंचदेवोपासना करने का फल प्रिय का संयोग-सुख-लाभ मानकर उन देवों की वंदनादि करने का अभिलाष व्यक्त कर रही है। 'हरि' (विष्णु = श्रीकृष्ण) को चित्त में लाने से तीर्थ का पवित्र जल प्राप्त हो जाने की बात आई है। कहा गया है कि दान करने पर 'मीत' कंठ लगाने को मिलेगा। इसमें यह 'मीत' 'हरि' या श्रीकृष्ण नहीं है। यह तो रीतिबद्ध रचना करनेवाले किसी कविंद की कृति जान पड़ती है, सिंहावलोकन या मुक्तपदग्राह्य का चमत्कार ही इसमें मुख्य है, सो भी चौथे चरण तक पहुँचते पहुँचते भंग हो गया है। 'चाइ' के बदले 'लाइहौं' होना चाहिए था। इसलिए यह रीतिमुक्त प्रसिद्ध कवि 'घनआनंद' की कृति नहीं ठहरती। कहीं 'घनआनंद' विशेषण न हो। जो कुछ भी हो इस संबंध में सवैया है संदिग्ध ही।

अब जैन 'आनंदघन' और वृंदावनवासी 'आनंदघन' की अभिन्नता का विचार कीजिए। जैन 'आनंदघन' (महात्मा लाभानंदजी) का समय भी सत्रहवीं शती विक्रमी का उत्तरार्ध है। इनकी 'चौबीसी' की कई पंक्तियाँ समयसुंदर (सं० १६७२), जिनराज सूरि (सं० १६७८), सकलचंद (सं० १६४०) और प्रीतिविमल (सं० १६७१) के जिन-स्तवनादि ग्रंथों में आए चरणों से मिलती हैं (देखिए श्रीमहावीर जैन विद्यालय के 'रजत-महोत्सव-ग्रंथ' में प्रकाशित 'अध्यात्मी आनंदघन अने श्रीयशोविजय' शीर्षक लेख)। इससे 'चौबीसी' का समय सं० १६५८ के अनंतर ही ठहरता है। इनकी प्रशंसा लिखनेवाले श्रीयशोविजय ने सं० १६८८ में दीक्षा ली तथा सं० १७४३ में स्वर्गवास हुआ। इससे १७०० के आसपास ये अवश्य थे। इधर वृंदावनवासी आनंदघनजी को 'भुवनदीपिका' में कृष्णगढ़ के राजकवि जयलाल ने नागरीदासजी का सम-सामयिक समझा है और उनके सत्संग की चर्चा की है—

१—आनँदघन हरिदास आदि संतन सब सुनि सुनि।
२—आनँदघन हरिदास आदि सों संत-सभा मधि।
३—आनँदघन को संग करत तन मन कों वारची।

—देखिए 'नागरसमुच्चय'।

श्रीनागरीदासजी के जीवनचरित में बाबू राधाकृष्णदासजी ने लिखा है कि "हमारे यहाँ एक अत्यंत प्राचीन चित्र है जिसमें नागरीदासजी और घनआनंदजी

एक साथ विराजते हैं।" (राधाकृष्णदास-ग्रंथावली, पृष्ठ १०२)। इससे भी पता चलता है कि घनआनंदजी और नागरीदासजी समसामयिक थे। कदाचित् इसी से इनके प्रतिबिंब का उल्लेख भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के 'सुजानशतक' के आरंभ में है। चित्र चिपकाने के लिए चौकोर स्थान बनाकर उसके ऊपर नीचे छापा गया है—"यह चित्र श्रीघनआनंदजी का है, जिसे श्रीमहाराजकुमार श्रीकृष्णदेवशरण सिंह ने अपने हस्तकमल से उनके लिखे हुए चित्र से छाया का चित्र बनाया है।"

'नागरीदासजी' नाम के चार महात्मा हुए हैं। राधाकृष्णदासजी ने चौथे नागरीदासजी के साथ, जो सावंतसिंह के नाम से प्रसिद्ध थे, आनंदघनजी के संबंध की चर्चा की है। इन नागरीदासजी का कविता-काल सं० १७८० से १८१९ तक माना जाता है (देखिए शुक्लजी का 'हिंदी-साहित्य का इतिहास' संशोधित और प्रवर्धित संस्करण, सं० १९९६, पृष्ठ ३४८)। इससे वृंदावनवासी आनंदघनजी का समय अठारहवीं शती का उत्तरार्ध ठहरता है। इसलिए 'जैन आनंदघन' और वृंदावनवासी 'आनंदघन' के समय में सौ सौ वर्षों का अंतर है। अतः इनके एक ही होने की संभावना नहीं है।

घनआनंद मुगल सम्राट् मुहम्मदशाह रँगीले के मुंशी थे। इस संबंध को छोड़िए कि ये उनके 'खास कलम' (प्राइवेट सेक्रेटरी) थे या दरबार के 'मीर मुंशी'। कहा जाता है कि सदारँगीले के दरबार की 'सुजान' नामक वेश्या पर ये आसक्त हो गए थे। अन्य दरबारी लोग इस बात के आधार पर षड्यंत्र करके इन्हें दिल्ली से निष्कासित कराने के हेतु बने। दरबारियों ने बादशाह से एक दिन कह दिया कि मुंशीजी गाते बहुत अच्छा हैं। फिर क्या था बादशाह ने इनका गाना सुनने की हठ पकड़ ली। पर ये नम्रतावश गाना सुनाने में अपनी अशक्ति का ही निवेदन करते रहे। अंत में उन षड्यंत्रकारियों ने बादशाह से चुपके चुपके यह कहा कि ये यों न गाएँगे, यदि 'सुजान' बुलाई जाय जिस पर ये आसक्त हैं तभी गाना सुनाएँगे। 'सुजान' बुलाई गई और इन्होंने उसकी ओर उन्मुख होकर सचमुच गाया और ऐसा गाया कि सारा दरबार मंत्रमुग्ध हो गया। बादशाह ने गान का रस लूटने के अनंतर जो होश सँभाला तो इनकी इस गुस्ताखी पर बहुत अप्रसन्न हुआ कि इन्होंने वेश्या का मान बादशाह से अधिक किया।

फलस्वरूप उसने इन्हें देशनिकाले का दंड दिया। कहा जाता है कि ये 'सुजान' के निकट गए और उससे भी साथ देने को कहा पर उसने साथ चलना अस्वीकार कर दिया। अतः ये वृंदावन चले गए और वहाँ निंबार्क-संप्रदाय में दीक्षित हो गए। पर 'सुजान' नाम इन्होंने कभी नहीं त्यागा। भगवद्भक्ति में इस शब्द का व्यवहार श्रीकृष्ण और श्रीराधिका के लिए अपनी रचना में बराबर करते रहे। अंत में कहा जाता है कि मथुरा पर होनेवाले नादिरशाह के हमले में ये मारे गए।

इतिहास में मथुरा पर नादिरशाह के हमले की चर्चा नहीं है। अहमदशाह अब्दाली या दुर्रानी के हमले की ही बात आई है। यद्यपि पहले नागरीदासजी के जीवनचरित में बाबू राधाकृष्णदासजी ने यह संकेत किया कि हमला दुर्रानी का था। मेरे शिष्य स्वर्गीय विद्याधर पाठक ने बड़े परिश्रम से इस भ्रांति का निराकरण करने की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया। इसके अनंतर श्रीज्ञानवती त्रिवेदी ने 'घनआनंद' नामक पुस्तक में यह भली भाँति सिद्ध कर दिया कि यह हमला अब्दाली का ही हो सकता है। सं० १८४६ के लिखे कृष्णभक्ति-विषयक एक पद-संग्रह में इस हमले का उल्लेख इस प्रकार है—'श्रीवृंदावन के मंदिर मलेच्छनि मारे जो उतपात भयो ताको हेत जो रसिकनि के विचार में आयो सो लिख्यो है।' उत्पात का कारण पूजा में त्रुटि बतलाया गया है। रघुराजसिंहजू देव की 'रामरसिकावली' में दी हुई घनआनंद की कथा में यह 'बात' कुछ मिलती है। श्रीवृंदावनदासजी ने इसका संकेत अपनी 'श्रीकृष्ण-विवाह उत्कंठा-बेली' में इस प्रकार किया है—

> जमन कछू संका दई ब्रजजन भए उदास।
> ता समयें घनि वहाँ तें कियौ कुंजनद बास॥

(खोज, १९१७—१४ एफ्)।

अब इधर जो नवीन सामग्री प्राप्त हुई है उससे इसी की पुष्टि होती जाती है कि घनआनंदजी का निधन मथुरा में ही हुआ और ये नादिरशाह के आक्रमण में न मारे जाकर अहमदशाह के आक्रमण में ही मारे गए। अब्दाली ने एक बार सन् १७५७ (सं० १८१३) और दूसरी बार सन् १७६१ (सं० १८१८) में मथुरा पर आक्रमण किया था। घनआनंदजी का निधन दूसरी बार के आक्रमण में हुआ था।

नादिरशाह के आक्रमण के अनंतर तो वे जीवित थे। यह इन्हीं के कथन द्वारा सिद्ध है। इधर आनंदघनजी के ग्रंथों के जो वृहत् संग्रह प्राप्त हुए हैं उनमें एक 'मुरलिका-मोद' भी है। इसके अंत में वे स्वयम् लिखते हैं—

गोपमास संक्रान्त-पख सुचि।
संवतसर अठानवे अति रुचि।

यह 'संवतसर अठानवे' १७९८ है। नादिरशाह का भारत पर आक्रमण सं० १७९६ में हुआ और दिल्ली तक ही परिमित रहा। संवत् १७९८ में आनंदघनजी ग्रंथ की रचना कर रहे हैं अर्थात् उसके दो वर्षों के अनंतर भी जीवित हैं। इस प्रकार अब यह निश्चित हो गया कि ये सं० १७९६ में नहीं मारे गए। इनकी मृत्यु या हत्या नादिरशाही में कदापि नहीं हुई। पर ये अब्दाली के दोनों आक्रमणों में से पहले में मारे गए या दूसरे में इसका निश्चय कर लेना चाहिए। सं० १८१२ में आनंदघनजी कृष्णगढ़ के महाराज सावंतसिंह नागरीदास के साथ 'ब्रजाई' रहते थे। "जब वृंदावन से महाराज नागरीदासजी और घनानंद कृष्णगढ़ आए थे तब पहले जयपुर आए और श्रीगोविंद के दर्शनों को गए थे। वहाँ श्रीगोविंददेव के सान्निध्य में आनंदघनजी ने कीर्तन गाए। उस समय जयपुर के महाराज भी दर्शनों को आए थे सो जयपुर महाराज ने उनके कवित्तों की बड़ी प्रशंसा की। तब आनंदघन जी ने कहा कि तुम प्रशंसा करनेवाले कौन? हमारे कीर्तनों की प्रशंसा करें तो श्री गोवर्धनजी करें। यह कहकर वहाँ से विदा हुए और नागरीदासजी से कहा हम ऐसे देश में अब नहीं चलेंगे पीछे ही जायँगे सो पीछे ही मथुरा चल गए और यह भी सुना जाता है कि मथुरा में कतलेआम करनेवालों से कहा कि मेरे तलवार के घाव बहुत धीरे-धीरे बहुत देर तक दो। इनको ज्यों-ज्यों तलवार के घाव लगते गए त्यों-त्यों यह भजन में लोटते रहे, ऐसे देह त्याग किया।"—(राधाकृष्णदास-ग्रंथावली, पृष्ठ १७५)।

अब तो नागरीदास और घनआनंद के प्रस्थान का समय 'नागरसमुच्चय' में कवीश्वर जवाहिरलाल ने यह दिया है—

अठारह सै ऊपरै संवत् तेरह जान।
चैत्र कृष्ण तिथि द्वादशी ब्रज तैं कियो पयान॥

चैत्र कृष्ण अमावस्या को संवत् १८१३ समाप्त हो जाता है और चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से संवत् १८१४ का आरंभ होता है। अब्दाली का सन् १७५७ में कत्लेआम १ मार्च से ६ मार्च तक हुआ था। 'इंडियन एफिमेरिज' के अनुसार यह समय फाल्गुन शुक्ल दशमी से चैत्र कृष्ण प्रतिपदा तक पड़ता है। इसलिए घन-आनंदजी इस आक्रमण में नहीं मारे गए। अब्दाली का हमला सं० १८१३ में हुआ था, सं० १८१४ में नहीं इसका प्रमाण 'खोज' के एक विवरण में मिलता है।

बाबा किशोरीशरणदासजी की 'हरिकलाबेलि' के विवरण में लिखा है—"काबुल वा कंधार का रहनेवाला एक कलंदरशाह मुसलमानों की एक फौज लेकर पहली बार सं० १८१३ में और दूसरी बार सं० १८१७ में ब्रज पर चढ़ आया था।"—(त्रैवार्षिक खोज-विवरण, १९१२-१४-१९१६ के)

इस 'हरिकलाबेलि' के आरंभ में ही लिखा है—

ठारह सै तेरहौं बरष हरि यह करी।
जमन बिगार्यो देस बिपति गाढ़ी परी।
तब मन चिंता बाढ़ि साधु चमन करै।
हरिहीं मनहुँ सिष्टि-संघार काल आयुध धरै॥ १॥
दोहा—भाजि भाजि कोउ छूटे तब मन उपज्यो सोच।
कहाँ नाथ तुम जन हते, भए कौन बिधि पोच॥ २॥
बार बार सोचत यही मन अति चौराइ।
संत करे सब जमन नै यह दुख सह्यो न जाइ॥ ३॥
सहर फरूखाबाद जहँ गए सुरधुनी पास।
चैत्रसुदी एकादसी तहाँ भयो इक रास॥ ४॥
तीन पहर रजनी गई वे कवि कीयो गान।
तहाँ एक कौतुक भयो जाकौ करौं बखान॥ ५॥
आनँदघन को ध्यान इक भायो खुलि गए नैन।
सुनत महा बिह्वल भयो मन नहिँ पायो चैन॥ ६॥
ऐसेहू हरि-संत-जन मारे जमननि आइ।
यह अति देखि हियो भयो लोनो सोच दबाइ॥ ७॥

आनंदघनजी का हवाल किसी ठीक न था। सुनकर वृंदावनदासजी विह्वल हो गए, उनके चित्त में स्थिरता नहीं रही। ऐसे हवाल के निमित्त आनंदघनजी के समान हरि-संत-जनों को यवनों ने मार डाला। पर कब? क्या संवत् १८१६ में? न संवत् १८१७ में। इन दोनों के आरम्भ में ही कहना है कि इन या इन पाठकों ने ऐसे-ऐसे संत मार डाले गए। लेखक ने आगे चलकर सं० १८१७ में दूसरे आक्रमण का उल्लेख किया है। सं० १८१६ में तो वह फर्रुखाबाद में गंगा के किनारे था। सं० १८१७ में तो उसने आनंदघनजी के शव को प्रत्यक्ष अपनी आँखों देखा था। महात्मा आनंदघनजी की 'ब्रजरज' में मिलने की इच्छा थी। उनकी यह साध पूरी हुई। उनके बाद पर आँसू बहाता हुआ कवि संवत् १८१७ में आषाढ़ बदी रविवार को कहता है—

बिरह सों मार्यौ तन निकास्यौ मन साँचौ पन,
धन्य आनंदघन मुख गाई सोई करी है।
प्यारो ब्रजनाथ कुँवर धन्य धन्य तुमहूँ कौ,
कहा दीनों प्रभु यह जग में बिसारी है।
गाढ़ौ ब्रज उपासी जिन देह अंत पूरी पारी,
रज की अभिलाष सो तहाँ ही देह धरी है।
वृंदावन हित रूप तुमहु हरि बढ़ाई भूरि,
ऐसे साँचौ निष्ठा जन हू की अंक परी है॥ १७७॥

हरि तो 'धूल ही उड़ाते रहे', पर भक्त की निष्ठा तो सत्य निकली कि शरीर ब्रजरज में ही मिला, खड्गजड़ कट-कट होकर।

मुहम्मदशाह रँगीले और उसके अमीर-उमरावों ने पतन की किस सीमा तक मुगलवंश को पहुँचा दिया था, इसका भी स्पष्ट उल्लेख है—

बीते पातसाहि ऊकयौ सूबनि अनसूब चूकयौ
बहुत दिन निजाम कुकयौ काबिल हटेरे कियैं।
वेश्या मदपान करि छकि गए अमीर जेते
रज-तम को भार काढ़ी बूढ़े को बिलोकियैं।
दिल्ली भई बिल्ली कहैं, कुत्ता बैठि छूटी
भूल्यौ मुहम्मदशाह पहिलै अब काह कोकियैं।

बाबर हिमायूँ को चलाऊ अब बंस भयौ
ताको यह फैल्यौ साफ पतन करम ठोंकियै।

आनंदघनजी की हत्या का प्रत्यक्षदर्शी यह महात्मा जो कुछ कह रहा है उसे सत्य मानकर हिंदीवालों को अपनी 'नादिरशाही' त्याग देनी चाहिए। 'हरिकलावेलि' का निर्माणकाल यह है—

ठारह सै सत्रहौं बर्ष गत जानियै।
साढ़ बदी हरि बासर बैस बखानियै॥

अब 'मुहम्मदशाह' और 'सुजान' का भी कुछ विचार कीजिए। आनंदघन-ग्रंथावली में 'आनंदघन' के नाम पर जो रचनाएँ दी गई हैं उनमें 'ब्रजभाषा' के अतिरिक्त पूरबी, बंगाली, पंजाबी, राजस्थानी (कहीं कहीं गुजराती-मिश्रित) कई भाषाओं का प्रयोग है, पर प्राधान्य पंजाबी का ही है। 'आनंदघन' की 'इश्कलता' पंजाबी में है, बीच बीच में दो-ढाई ब्रजभाषा में भी ऐसे हैं। मुहम्मदशाह के भी, जो सदारँगीले के नाम से रचना करता था, बहुत से पद पंजाबी में हैं और राग-कल्पद्रुम में संगृहीत हैं। प्रश्न होता है कि क्या 'सुजान' भी कुछ गाने या लिख-जोड़ती थी। 'सुधासर' नाम के संग्रह में घनआनंद का यह सवैया—

आपुही तें मन हेरि हँसे तिरछे करि नैनन नेह के चाव में।
हाय दई सु बिसारि दई सुधि कैसे करौं सु कहौ कित जाउँ मैं।
मीत सुजान अनीति कहा यह ऐसी न चाहिए प्रीति के भाव में।
मोहन मूरति देखिबे कौं तरसावत हौ बसि एक ही गाँव में।

किसी 'सुजान' के नाम पर चढ़ा हुआ है। शृंगार-संग्रह में इसे घनआनंद के नाम पर ही दिया गया है। सुजान की अन्य जो रचनाएँ भी वहीं से नीचे उद्धृत की जाती हैं—

कवित्त

पहिलें तौ नैनन सों नैनन मिलाय, फिरि
सैनन चलाय हरि लीनौ चित चाय चाय।
अब क्यौं कहत गुरु लोगन की संक मोहिं,
मारत निसंक काम बाणौं कहौं जाय हाय।

ए रे निरदई कान्ह 'कहत सुजान' सो मों
तेरे बिन देखें आँखें रहैं अरु लाय जाय।
दूर जो बसाय तौ परेखो हू न आय,
अरे निकट बसाय प्रीत मिलत न हाय हाय।

सवैया

बेद हू चारि की बात कों बाँचि पुरान अठारह अंग में धारे।
चित्र हू आप लिखै समझै कबितान की रीति में बुद्धि ले पारे।
राग कों आदि लिखी चतुराई 'सुजान कहै' सब याही के सारे।
हींनता होय जो हिम्मत की तो प्रवीनता लै कहा कूप में डारे।

—सुधाकर, पृष्ठ १६४ (खोज-विभाग, 'सभा')।

क्या 'सुजान' ने यह हिम्मत उस समय दिखाई थी जब 'घनआनंद' शाही दरबार से माला गाते बहुत्त रहे थे ? सुजान ही जाने।

इधर मुझे अलवर राज्य से प्राचीन कवियों का एक संग्रह मिला है जिसमें घनआनंद के कवित्तों के संग्रह के अनंतर 'अथ सुजान के कवित्त' शीर्षक से 'सुजान' के ग्यारह कवित्त दिए हुए हैं, जिनमें एक तो 'पहिले ही नैनन' प्रतीक वाला है और शेष ये हैं—

मन मेरो तुमैं यह लागि चुक्यौ अब कोउ कछु किन कैसी करौ।
वह मूरत मोहनी रंगभरी सु दया धरि चित्त हिलैबौ करौ।
यह बीनती मेरी सुजान कहै चित दै इतनी सुनि लैबो करौ।
कबहूँ जिय आवै तबै सुनि प्यारे मया करिकै इत ऐबौ करौ॥
हेतपगी रसभीनी चितौनि चितै हम त्यों अँखियान में आवत।
रूप सलौनो दिखाय महा हिय में अति आनँद को घन छावत।
सुजान पै सीख लगे तुम ही सों सु क्यों निरमोही कहा तन तावत।
मोहनी डारि कै मोहन जू वह मोहनी मूरत क्यों न दिखावत॥
तेरी छबि मोहनी ने मेरो मन मोहि लीनो,
चित दै इतौक यह बात न बिसारि जा।
तोहि बिन देखें मोहि कल न परत हाय,
है करि दिखाई पीर बिरह की टारि जा।

कहत सुजान कान्ह रूप के निधान वह
मूरत किसोर मेरी आँखिन में धरि जा।
का भौ यह लाल तेरो जो पै यह बात साजी,
सब बाहि बाजी तो नजरबाजी करि जा।
तुम्हरे बिरह तें बिकल दिनरात गोपी,
रही मुरझाय कबहूँ न देखी हँसती।
कोलाहल केलि जहाँ जहाँ कीन्हो तहाँ रचो,
कीन्हो वा कालिंदी-कूल कुंज-द्वार बसती।
रावरे रहत है लहत सब ठौर दिल,
अब इन्हैं नायिका है जानमई लसती।
मेरे लेखें यह ब्रज ऊजर सुजानराय,
जिहीं ओर बसै कान्ह तिहीं ओर बसती॥
ऐसी जो कसाई पहिले ही बनि आई ही तो,
तैसे हिलमिल काहे नेह भीजियतु है।
आपनो जौ मन फेरि लीनो मेरे लालन तो,
आगे को मन क्यों न फेरि दीजियतु है।
तुम तो सुजान कान प्रान को न चिंता तुम्हें,
नाहक पराये तन ऐसे छीजियतु है।
बिना प्रीति प्यारे कोऊ काहू को परेखो करै,
प्रीत ही को प्रीतम परेखो कीजियतु है॥
सीख सुनै नहिं मो मन नैक सु तौ तन देखि कै ऐसो लुभानो।
लाज तजी कुलकान तजी सब लोक चवाई में नावँ धरानो।
सुजान कहै सुनि मोहन बालम मोहनी सी पढ़ि डारी है मानो।
नेह लगाय कै पीठ न दीजियै हाथ इती बिनती पर आनो॥
तुम्हरो लखि रूप किसोर सुनो तरसौ मन क्यों मुरझाइये जू।
बिन देखें तुम्हैं यों सुजान कहै बिरहानल में तन ताइये जू।
कबहूँ इन आँखिन को वह मोहनी मूरत लाल दिखाइये जू।
मन भावै तबै रुचि सों सुनि प्यारे मया करिकै इत आइये जू॥

कौन कही करियौ छिन आपतें औ करयौ सौ कछू न बिसरावत ।
नंदकिसोर निहारि सरूप लखें बिन नैन खरे अकुलावत ।
मान परे नरमैं सुरकैं निसबासर मैन महा तन लावत ।
मोहनी मूरत कौं हरसाय सुजान कहीं इत क्यौं नहीं आवत ॥

सुकाय सरीर अधीन करें दृगनीर की बूँद कौ माला फिरावै ।
नेह की सेली बियोग जटा किये आह की सींगी सु पूरि सजावै ।
प्रेम की आग मैं डाढ़े जरै सुधि भारी लै आपनी देह चिरावै ।
सुजान कहै कहा कोउ करौ पै बियोगी के भेद कौं जोगी न पावै ॥

एकन सौं जागी रात एकन सौं करी बात
एक आधी रात एक प्रात उठि जातीं हैं ।
एकन सौं मनौ हौ अवधि एक झाँकि जात
एक देखैं बैठी बाट भोरी हू न खाती हैं ।
जोई मन भावै सोई करौ जू सुजान कहै
तिहारे निहारे हम नाहिं अनखाती हैं ।
हमकौं दिखावौ पिय कौन सी है नीकी तिय
अँखियाँ तिहारी लाल जाके रंग राती हैं ॥

इन छंदों से कई तथ्यों की उपलब्धि हो सकती है । एक तो यह कि 'सुजान' नाम से रचना करनेवाले का नाम 'सुजानराइ' है । 'राइ' शब्द से यह कल्पना की जा सकती है कि यह कहीं 'प्रवीनराइ' की भाँति ही न हो । यह सत्य हो तो 'प्रवीनराइ' की भाँति 'सुजानराइ' किसी 'पातुर' का नाम है । इसमें जितनी अभिव्यक्ति है नायिका, प्रेमिका या गोपी की ओर से है यह भी ध्यान देने योग्य है । दूसरे सवैये में 'आनँद को घन' अर्थात् 'आनंदघन' से इस 'सुजान' को जोड़ता है । 'सुजान' का प्रेम जिसके प्रति है वह 'किसोर' है इसपर भी ध्यान जाता है क्योंकि प्रिय के 'वय' के लिए सर्वत्र 'किसोर' पद ही व्यवहृत है । ये सब घनआनंद के रूपवान होने का भी संकेत करते हैं यदि इन सबका संबंध उन्हीं से जुड़े ।

उक्त संग्रह में 'घनआनंद' के कवित्तों में 'सुजानराइ' का 'ऐसो जो हसौंहे' प्रतीकवाला कवित्त भी धरा हुआ है । घनआनंद की हो रचना सुजान के नाम नहीं चढ़ गई, सुजान की रचना भी उनके नाम चढ़ती रही है ।

'राग-कल्पद्रुम' में 'सुजान' के चार पद हैं (प्रथम भाग, पृष्ठ १०७, २४०, २६४; द्वितीय, ३१८) जिनमें से दो में तो 'प्रभु सुजान' छाप है, एक में 'महाराज बहादुर' से मुश्किल आसान करने की आरजू है और एक यह है—

सिफतमणि अल्ला नबीयमणि महम्मद, दोर जगमणि,
चार दिशा मासूम पैगंबरमणि मुरतजा अली जीन ।
बासरमणि दिनकर, रजनीमणि चंद्र, तारनमणि ध्रुव,
मलाइकनमणि जबराईल, यह सब जगत में लीनी मान ।
पातालमणि शेष, शेषमणि सबलो अवनिमणि नाभ,
नाभमणि करस, करसमणि कुरस, लोहमणि कलमा,
तुरंगनमणि बुराक, गजनमणि ऐरावत, गाजनमणि
इंद्र, गिरनमणि सुमेर, पंडितनमणि मदन ।
किताबनमणि कुरान, दीनमणि कलमा, अक्षरनमणि
आदम कामनमणि हवा रागनमणि भैरो भाषामणि
व्रज की, जोतिमणि दीपक, दीपकमणि नार दोजख
शीतल भयो मिहिस्त चौथो भाग 'सुजान' अस्तुति कीनी ।

—राग-कल्पद्रुम प्रथम भाग, पृष्ठ २६४ ।

जान तो यही पड़ता है कि मुहम्मदशाह के दरबार में कोई 'सुजान' (वेश्या) इसे पढ़ या गा रही है । तो क्या 'सुजान' अपनी नर्तन-कौशल-गीति की है ? होली में कन्हैया बनने का हौसला पूरा करनेवाले सदारंगीले ने 'अपनी वेश्याओं' के नाम भी तो दे ही रखे थे ।

'सुजान' कोई 'तिया' थी इसका पता सुजान-हित का छंद २०३ देगा । अब इसीलिए मुहम्मदशाह के साथ भी 'सुजान' कही है—

किरपा करो रे मो मन सइयाँ तन मन धन
नौछावर करहूँ पइहूँ पइयाँ ।
मुहम्मद सा 'सुजान' अब काहे भाग हमारे जागे
लेहु बलैया सुरजन सइयाँ ॥

—राग-कल्पद्रुम, प्रथम भाग, पृष्ठ १०७ ।

'राग-कल्पद्रुम' में यह रचना मुहम्मदशाह की ही बताई गई है, पर वह कह रहा है कि रचना उनके किसी दरबारी की है। अब 'सुजान' शब्द 'मुहम्मद शाह' का विशेषण है या पृथक् इसे कौन बताए। हाँ 'कोई' कुछ कह दे तो कह दे, अन्यथा अनुमान का भरोसा ही कितना!

इधर मुझे जो दूसरी नवीन उपलब्धि हुई वह 'घनआनंद' पर किसी अज्ञात रचयिता के भड़ौए हैं। कहा जाता है कि ये संवत् १८१७ विक्रमीय में संगृहीत 'अज्ञ कवित्त' नामक संग्रह में के हैं। इनसे और कई बातों के अतिरिक्त 'सुजान' का 'हुर-किनी' और 'तुरकिनी' होना सिद्ध हो जाता है—

"अथ आनंदघन महा ००००० हो। सु जस की कटा में आयो। परंतु अपजस याकौ थिर है। ताकौ बर्नन—

कबहुँक सुजान में लुबनौ तिहि आनँद कौं तब हौं सरतौ।
तब रैं गहौ बैहुक अंगन पै निज देह तिहाँ रस सौं भरतौ।
कहुँ यौं कि कै आगनि मो गहतौ तब हौं इन हाथन सौं भरतौ।
वह ईस कहौ घनआनँद कों जो सुजान-इजार कौ यूँ करतौ॥

करै गुरनिंदा बहु हुरकिनी को बंदा महा
निरघिनी गंदा खान पान ना कौ नान है।
बैन कौं सुरावै ताकौ मजमून लावै कूर
कविता बनावै गावै रिजौकौ सो तान है।
सुरा-घट-साखी देह माँस ही सों पोखी, बिप्र
गौपन को लोपी रूप धरे अभिमान है।
पाप को अयन करै अगम-गमन ऐसौ
सुहिया अनंदघन आनद जहान है॥
डफरी बजावै ढौंम ढाढ़ी सम गावै काहू
तुरकैं रिझावै तब पावै भूठौ नाम है।
हुरकिनी सुजान तुरकिनी को सेवक है
भजि राम नाम याकौं पूजै काम धाम है।
... ...
लोहा ज्यौं लगाम जैसे घनजी को थाम है।

धौंसैं अकुंठा संग गायौ ८० मुद्रा ८०
अस्तुता अनंदघन मुंहा सरनात है॥
मुंहन अनंदघन कहाँ बिहारी भाँ यौं
राज को आसन होतो गावै मोहिं गवैया।
मा गुरु को पीकदान कहियौं, सुजान प्यारी
हुरकिनी तुरकिनी मुझे सुख पावैगा।
बाती को इजार दुपट्टी को पेशवाज और
देहुगी रुमाल ताको पगड़ी बनावैगी।
पनिया-मानेगृह जो जायौ गरीब-निवाज
भरि बहीं मां मन पलिंग पर आवैगी॥"

भड़ौए के रचयिता महाशय घनआनंद से बहुत ही चिढ़े हैं। 'गुरु' 'पीकदान' आदि बनाने के अभिप्राय की कल्पना में भड़ौआपन भरपूर है, पर अन्यत्र तो गाली-गलौज है। फिर भी इसमें घनआनंद के वृत्त संबंधी तथ्यों के कुछ कण तो मिल ही सकते हैं।

जैन और वृंदावनवासी आनंदघन के अतिरिक्त एक तीसरे आनंदघन भी हैं। ये तीसरे आनंदघन नंदगाँव के थे। श्री चैतन्य महाप्रभु के जीवनवृत्त से प्रकट है कि वे संवत् १५७२ में नंदगाँव गए थे। उस समय उन्होंने नंदगाँव के मंदिर में भगवद्दर्शन किए थे। उस मंदिर में श्रीनंदबाबा, श्रीयशोदा, श्रीबलराम और श्रीकृष्ण के विग्रह थे। इन विग्रहों की स्थापना श्रीआनंदघनजी ने की थी। ये विग्रह श्रीनंदीश्वर पर्वत से प्रकट हुए कहे जाते हैं और प्रकट करनेवाले श्रीआनंदघनजी ही थे। आनंदघनजी श्रीचैतन्यदेवजी से मिले थे अर्थात् उस समय वर्तमान थे। इस प्रकार नंदगाँववासी आनंदघनजी का स्थिति-काल विक्रम की सोलहवीं शती का उत्तरार्ध ठहरता है। ये वल्लभकुलोद्भव शुद्ध भक्त थे। इनके रचे कई पद हैं जो नंदगाँव के मंदिर में समय समय पर गाए जाते हैं।

इस प्रकार तीनों आनंदघनों का उपस्थिति-काल निम्नलिखित हुआ—

नंदगाँववासी आनंदघन	सोलहवीं शती का उत्तरार्ध
जैन आनंदघन	सत्रहवीं शती का उत्तरार्ध
वृंदावनवासी आनंदघन	अठारहवीं शती का उत्तरार्ध

नंदगाँव के आनंदघन 'सहार' गाँव के थे। यह गाँव 'कोसीकलाँ' (मथुरा) के निकट है और आनंदघनजी के कुलवाले अब भी वहीं रहते हैं। नंदगाँव के मंदिर के अधिकारी इन्हीं के वंशज हैं। आनंदघनजी के वंशजों का वृक्ष यों है—

आनंदघन
- भगतिया
  - मुरलीमनोहर
  - रामचौबेजी
  - हरिदास
- तिलकिया
- कोकिलिया

नंदबाबा की सेवा का भार भगतिया के कुल तीनों वंशजों पर है। तिलकिया के वंशज मनसादेवी के मंदिर के अधिकारी हैं। कोकिलिया के वंशज श्रीयशोदा-नंदन की सेवा में रहते हैं। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि हिंदी में जो कवित्त सवैये और पद आदि रचनाएँ प्राप्त हैं वे वृंदावनवासी आनंदघन की हैं। ये अपनी छाप आनंदघन और घनआनंद दोनों रखते थे। कदाचित् इनका नाम घनानंद था। इससे यह सिद्ध है कि जैन आनंदघन की रचनाओं को छोड़कर हिंदी में इस नाम से प्रचलित रचनाएँ एक ही व्यक्ति की हैं। अतः उनका विचार इसी दृष्टि से होना चाहिए।

कृतियाँ

अब घनआनंद की कृतियों का विचार कीजिए। 'घनआनंद आनंदघन' की कृतियों के हस्तलेख नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा की गई 'खोज' में संवत् २००० तक इस प्रकार विवृत किए गए हैं—

१ घनआनंद-कवित्त—(००–७६)।
२ आनंदघन के कवित्त—(६–१३४, २६–११ ए)
३ कवित्त—(२६–११६ बी)
४ स्फुट कवित्त—(३२–७ सी)
५ आनंदघनजू के कवित्त—(४१–१० ख)

६ सुजानहित—(१२–४ बी)
७ सुजानहित-प्रबंध—(२१–११४ बी)
८ कृपाकंद-निबंध—(२–४६)
९ वियोगवेलि—(१७–८ डी, २६–११६ बी)
१० इश्कलता (१२–४६, ३२–७ ए)
११ यमुनायश—(४१–१० क)
१२ आनंदघनजू की पदावली—(२३–११ बी, दि० ३१–६)
१३ प्रीतिपावस—(१७–८ ए; २६–११६ ए)
१४ सुजानविनोद—(२३–१४)
१५ कवित्त-संग्रह (३२–७ बी)
१६ रसकेलिवल्ली—(००–७६)
१७ वृंदावन-सत—(३२–७ डी)।

इनमें से 'वृंदावन-सत' तो श्रीहरिदासजी की 'शिष्य परंपरा में माधवमुदित के पुत्र भगवतमुदित की रचना है। इन्होंने स्पष्ट लिखा है—

श्रीमाधौमुदित अनन्य हंस जिन हरि-जस गायौ।
तिनकौ हौं निज दास हुलसि-जस जिन तें पायौ।

इनकी छाप थी 'भगवंत', पर 'आनंदघन' पद के जैसे आने से धोखा दिया गया है 'खोज' के साहित्य-निरीक्षक को भी। निम्नलिखित दोहे में इसने 'आनंदघन' को पकड़, 'भगवंत' को भूल ही गया, उनकी विनती पर भी ध्यान न दिया—

यह विनती 'भगवंत' की सुनहु रसिक दै चित्त।
अपनो भोरी जानि कै दया करहुगे नित्त।
वृंदावन आनंदघन, अति रस सौं रसवंत।
[illegible] प्रिय अरज हौं, यह विनती 'भगवंत'॥

रचना संवत् १७०७ की है और 'आनंदघन' के काव्यकाल से लगभग पचास वर्ष पहले की है—

'संवत सत्रह सै साल सम सात बरस है आनि।'

'रसकेलिवल्ली' का नाम तो सुना सुनाया ही है। 'कवित्त-संग्रह' और 'सुजान-विनोद' भी तत्कालीन नूतन संग्रह हैं। इनमें कुछ छंद अन्य भी मिलते हैं जो

'घनआनंद-कबित्त' अथवा 'सुजानहित' में नहीं है। संख्या १ से ४ तक के सभी हस्तलेख 'घनआनंद-कबित्त' ही हैं, जिनका संग्रह 'ब्रजनाथ' नाम के सज्जन ने किया था। इन्होंने संग्रह के आदि और अंत में 'घनआनंद' और उनकी रचना की प्रशस्ति भी लिखी है। ये कदाचित् 'घनआनंद' के ही संप्रदाय के कोई भक्त जान पड़ते हैं। 'शिवसिंहसरोज' में 'रागमाला' के कर्ता ब्रजनाथ का उल्लेख है, जिन्होंने राग-रागिनियों के स्वरूप का भेद दोहों में कहा है। रचना देखने से कोई भक्त ही जान पड़ते हैं. इनका कविताकाल सं० १७८० (जन्मकाल नहीं, जैसा 'मिश्रबंधु-विनोद' में माना गया है) है। यदि ये वे ही ब्रजनाथ हों तो 'घनआनंद' के समसामयिक ठहरते हैं। इसलिए 'घनआनंद-कबित्त', जो कवि के ५०० छंदों का संकलन है, सबसे प्राचीन संग्रह ठहरता है। इस संग्रह में कुल ५०५ छंद हैं। बीच में दो सोरठे और तीन दोहे भी हैं जिनकी संख्या हस्तलेख में पृथक् नहीं गिनी गई है। प्राचीन काल में मनहरण, घनाक्षरी, सवैया-झूलना सबकी संज्ञा कबित्त थी। तुलसीदासजी की कवितावली में भी कवित्त शब्द का ऐसा ही अर्थ लिया गया है। इस संग्रह में कवित्त शब्द इसी अर्थ का बोधक है। आरंभ में २ तथा अंत में ६ कुल ८ छंद ब्रजनाथ के हैं और घनआनंद की प्रशंसा में लिखे गए हैं।

संख्या ५ का ग्रंथ 'सुजानहित' ही है, जो म्युनिसिपल म्यूजियम, इलाहाबाद में सुरक्षित है। 'सुजानहित' या 'सुजानहित-प्रबंध' भी कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं है, कवि के ५०० छंदों का नूतन क्रम से संग्रह है। इसके हस्तलेख दो प्रकार के मिलते हैं। एक प्रकार के हस्तलेखों में ४४८ छंद हैं, दोहा-सोरठों की गणना नहीं की गई है। उन्हें भी गिन लेने से ४५४ छंद होते हैं। दूसरे प्रकार के हस्तलेखों में लगभग ५०० छंदसंख्या मिलती है और दोहों की गिनती कर लेने से ५०४ छंद हैं। ऐसा जान पड़ता है कि पहले प्रकार के हस्तलेखों की परंपरा किसी अधूरी प्रति के आधार पर चल पड़ी है। 'घनआनंद-कबित्त' और 'सुजानहित' में बहुत थोड़े छंदों का अंतर है। एक तो 'घनआनंद-कबित्त' में 'कृपाकंद-निबंध' के बहुत से छंद हैं, दूसरे 'दानलीला' का सारा प्रसंग भी उसमें जुड़ा हुआ है। दोनों का मिलान करने से पता चलता है कि 'घनआनंद-कबित्त' की कोई अस्त व्यस्त प्रति ही सामने रखकर 'सुजानहित' संकलित हुआ है। इसलिए यह बाद का किया

हुआ संग्रह जान पड़ता है. इसके संग्रहकर्ता कौन थे ? पता नहीं। पर पुस्तक के नाम से संकेत मिलता है कि वे श्रीहितहरिवंश के संप्रदाय के हो सकते हैं। राधावल्लभी या हितहरिवंश के संप्रदाय के भक्तों और उनकी रचनाओं के नामों के आदि अंत में 'हित' शब्द जोड़ने का चलन है—हितचौरासी, हितध्रुवदास, हित-शृंगारलीला, सेवकहित, परमानंदहित, चंद्रहित आदि।

'कृपाकंद-निबंध' की पहले केवल एक ही प्रति मिली थी। छतरपुरवाले बृहत् ग्रंथ में भी इसका संकलन है। 'ब्रजमाधुरीसार' का 'कृपाकंद' यही है। रोमी अक्षरों की कृपा से 'कृपाकांड' का कांड उपस्थित हुआ। यह व्यवस्थित ग्रंथ है और 'कृपा के कंद' (कवित्त—'कहूँ ऐसे मन-चातक भए जे कृपाकंद को', छंद ५२) श्रीकृष्ण की कृपा के माहात्म्य पर लिखा गया है। 'वियोगबेलि' की कई हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं। इसी का प्रकाशन श्रीकाशीप्रसादजी जायसवाल ने 'विरहलीला' के नाम से काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा कराया था। इसका संग्रह भी छतरपुरवाले ग्रंथ में था। पर कुछ लोगों का यह समझना भ्रम है कि रचना ब्रजी बोली की है। भाषा इसकी ब्रज ही है, पर छंद है फारसी का।

'आनंदघनजू की पदावली' के दो हस्तलेख मिलते हैं। दोनों एक ही हैं। यह भी संकलन ही है। किसी निश्चित क्रम से 'आरंभिक पद' नहीं रखे गए हैं, अंत में कुछ शीर्षक बाँधकर एक प्रकार के पदों को एक स्थल पर अवश्य एकत्र कर दिया गया है। गान के पद कहीं छोटे कहीं बड़े हैं। कहीं कहीं पद अधूरे ही हैं। 'ब्रजमाधुरीसार' में जिस 'बानी' की चर्चा हुई है वह यही पदावली है। 'इश्कलता' की दो प्रतियाँ हैं और 'खोज' के विवरणपत्रों का मिलान करने से एक संख्या का अंतर पड़ता है। दूसरी प्रति नहीं मिली, अतः उसका पता नहीं चला। 'यमुना-यश' की एक ही प्रति है। 'प्रीति-पावस' की एक प्रति श्रीदेवकीनंदनाचार्य पुस्तकालय (कामवन) में भी पहले थी, पर संप्रति उसका पता नहीं चला। दोनों प्रतियों में कोई अंतर नहीं है।

इनके अतिरिक्त अनेक कवित्त-संग्रहों और पद-संग्रहों में भी 'घनआनंद' छाप के छंद और 'आनंदघन' छाप के पद मिलते हैं। 'खोज' के अतिरिक्त 'मिश्रबंधु-विनोद' में छतरपुर राजपुस्तकालय के बृहत् ग्रंथ का विवरण यों दिया गया है—"५७९ बड़े पृष्ठों का एक भारी ग्रंथ संवत् १८८३ का लिखा हुआ दरबार छतरपुर

के पुस्तकालय में देखने को मिला, जिसमें १८११ विविध छंदों तथा १०५५ पदों द्वारा निम्नलिखित विषय वर्णित हैं—प्रियाप्रसाद, व्रजव्योहार, वियोगबेलि, कृपाकंदनिबंध, गिरिगाथा, भावनाप्रकाश, गोकुलविनोद, व्रजप्रसाद, धामचमत्कार, कृष्णकौमुदी, नाममाधुरी, वृंदावनमुद्रा, प्रेमपत्रिका, व्रजवर्णन, रसवसंत, अनुभवचंद्रिका, रंगबधाई, परमहंसवंशावली और पद।" (—मिश्रबंधुविनोद, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ५७४)

'घनआनंद और आनंदघन' नामक ग्रंथ का प्रकाशन होने के अनंतर 'निंबार्क-माधुरी' के संपादक श्रीबिहारीशरणजी ने मुझे घनआनंद या आनंदघन के एक हस्तलेख का पता दिया और मैं वृंदावन पहुँचा। हस्तलेख की प्रतिलिपि करने पर निम्नलिखित ग्रंथों का पता चला—

१ प्रेमसरोवर
२ व्रजविलास
३ सरसवसंत *
४ अनुभवचंद्रिका †
५ रंगबधाई †
६ प्रेमपद्धति
७ कृपाकंदनिबंध * †
८ वृषभानुपुर-सुषमा
९ गोकुलगीत
१० नाममाधुरी †
११ गिरिपूजन
१२ यमुनायश *
१३ विचारसार
१४ प्रीतिपावस *
१५ दानघटा *
१६ इश्कलता *
१७ भावनाप्रकाश †
१८ कृष्णकौमुदी †
१९ धामचमत्कार †
२० प्रियाप्रसाद †
२१ वृंदावनमुद्रा †
२२ व्रजस्वरूप
२३ गोकुलचरित्र
२४ प्रेमपहेली
२५ रसनायश
२६ छंदाष्टक
२७ त्रिभंगी छंद
२८ गोकुलविनोद †
२९ व्रजप्रसाद †
३० मुरलिकामोद
३१ वियोगबेलि * †
३२ प्रेमपत्रिका * †
३३ मनोरथमंजरी
३४ पद * †

उक्त सूची में जिन पर 'तारा' (*) चिह्न लगा है वे ग्रंथ 'घनआनंद और आनंदघन' नामक संग्रह में मैंने प्रकाशित कराए थे। जिनपर कटार (†) का चिह्न है वे ग्रंथ छतरपुरवाले संग्रह में भी संकलित हैं। शेष पंद्रह ग्रंथ इससे अधिक हैं। इस संग्रह के प्राप्त हो जाने के अनंतर मेरे मित्र श्री० केसरीनारायणजी शुक्ल को लंदन-ग्रंथागार के हस्तलेख-विभाग में दूसरी ही प्रति मिली जिसमें निम्नलिखित ग्रंथों का संग्रह है—

१ प्रियाप्रसाद-प्रबंध * †
२ व्रजव्योहार *
३ वियोगबेलि * †
४ कृपाकंदनिबंध * †
५ गिरिगाथा *
६ भावनाप्रकाश * †
७ गोकुलविनोद
८ व्रजप्रसाद * †
९ धामचमत्कार * †
१० कृष्णकौमुदी * †
११ नाममाधुरी * †
१२ वृंदावनमुद्रा * †
१३ पदावली * †
१४ कवित्त-संग्रह
१५ प्रेम-पत्रिका * †
१६ रसवसंत * †
१७ अनुभवचंद्रिका * †
१८ रंगबधाई * †
१९ परमहंस-वंशावली * †
२० मुरलिकामोद †
२१ गोकुलचरित †
२२ मनोरलास-प्रबंध †
२३ व्रजस्वरूप †

जिनपर तारा (*) लगा है वे छतरपुरवाले संग्रह में संकलित हैं और जिन पर कटार (†) का चिह्न है वे वृंदावनवाले संग्रह में हैं। सब मिलाकर घनआनंदकी भी निम्नलिखित कृतियाँ अब तक हिंदी में ज्ञात हो सकी हैं—

१ सुजानहित
२ कृपाकंदनिबंध
३ वियोगबेलि
४ इश्कलता
५ यमुनायश
६ प्रीतिपावस
७ प्रेमपत्रिका
८ प्रेमसरोवर
९ व्रजविलास
१० सरसवसंत
११ अनुभवचंद्रिका
१२ रंगबधाई
१३ प्रेमपद्धति
१४ वृषभानुपुर-सुषमा

१५	गोकुलगीत	२८	रसनायश
१६	नाममाधुरी	२९	गोकुलविनोद
१७	गिरिपूजन	३०	ब्रजप्रसाद
१८	विचारसार	३१	मुरलिकामोद
१९	दानघटा	३२	मनोरथमंजरी
२०	भावनाप्रकाश	३३	ब्रजव्यवहार
२१	कृष्णकौमुदी	३४	गिरिगाथा
२२	धामचमत्कार	३५	ब्रजवर्णन
२३	प्रियाप्रसाद	३६	छंदाष्टक
२४	वृंदावनमुद्रा	३७	त्रिभंगी छंद
२५	ब्रजस्वरूप	३८	कवित्त-संग्रह
२६	गोकुलचरित्र	३९	स्फुट
२७	प्रेमपहेली	४०	पदावली

४१ परमहंस-वंशावली

'ब्रजवर्णन' का पता केवल छतरपुरवाले हस्तलेख से चलता है। अभी तक यह प्राप्त नहीं है। यदि यह 'ब्रजस्वरूप' ही हो तो घनआनंद के सभी ग्रंथ प्राप्त हो गए। छंदाष्टक, त्रिभंगी छंद, कवित्त-संग्रह, स्फुट वस्तुतः कोई स्वतंत्र कृतियाँ नहीं हैं। 'दानघटा' वही है जो 'घनआनंद-कवित्त' में संख्या ४०१ से ४३४ तक संगृहीत है। परमहंस-वंशावली में 'घनआनंद' ने अपनी गुरुपरंपरा का उल्लेख किया है। हिंदी की इन कृतियों के अतिरिक्त 'बिहार उड़ीसा रिसर्च जरनल' के आधार पर घनआनंद की एक फारसी मसनवी का भी पता चलता है, पर वह अभी तक उपलब्ध नहीं है।

संप्रदाय

परमहंसवंशावली प्राप्त हो जाने से 'घनआनंद' के संप्रदाय के संबंध में कोई संदेह नहीं रह जाता। कहा जाता है कि 'नामूला तु जनश्रुतिः'—जनता में प्रचलित अनुश्रुति निराधार नहीं होती। पहले से ही प्रसिद्ध है कि घनआनंद ने निंबार्क-संप्रदाय में दीक्षा ली थी। इस परमहंस-वंशावली से यही प्रमाणित हो जाता है।

इनकी गुरु-परंपरा का उल्लेख इस क्रम से है—नारायण→सनकादि→निंबादित्य→श्रीनिवासाचार्य→विश्वाचार्य→पुरुषोत्तमाचार्य→विलासाचार्य→स्वरूपाचार्य→माधवाचार्य→बलभद्राचार्य→पद्माचार्य→श्यामाचार्य→गोपालाचार्य→कृपाचार्य→देवाचार्य→सुंदरभट्ट→पद्मनाभभट्ट→उपेंद्रभट्ट→रामचंद्रभट्ट→वामनभट्ट→कृष्णभट्ट→पद्माकरभट्ट→श्रवणभट्ट→भूरिभट्ट→माधवभट्ट→श्यामभट्ट→गोपालभट्ट→बलभद्रभट्ट→गोपीनाथभट्ट→केशवभट्ट→गांगलभट्ट→श्री केशव (काश्मीरी)→श्रीभट्ट→हरिव्यास→परमानंद (परशुराम)→हरिवंशी→नारायणदेव→वृंदावन (देव)।

ऊपर यह दिखाया जा चुका है कि घनआनंद का निधन-संवत् १८१७ है। इनका जन्म कब हुआ था और वृंदावन कब पहुँचे इसका संकेत कुछ भी नहीं मिलता। इतिहास-ग्रंथों में इनका जन्म-संवत् अनुमान के सहारे १७४६ माना गया है। परमहंस वंश के निंबार्क-संप्रदायाचार्य श्रीवृंदावनदेव का समय सं० १७५४ से १८०० तक है। उनसे दीक्षा लेना अधिक से अधिक १७५६ ही तक संभव हो सकता है। यदि इस अनुमित जन्मकाल ठीक माना जाय तो यह भी मानना पड़ेगा कि इनकी वय दीक्षा के समय ११ वर्ष की थी, जो इनके जीवनवृत्त को देखते असंभव है। वृंदावन पहुँचने के समय इनकी वय ४५-५० की अवश्य माननी पड़ेगी। अतः इनका जन्म-संवत् १७३० के आसपास संभाव्य है।

परमहंस-वंशावली से पता चलता है कि किन्हीं शील से इन्हें परंपरा की रीति का ज्ञान हुआ। जिज्ञासा होती है कि ये शील कौन थे। मंडन कवि कृत 'जयशाह-सुजस-प्रकाश' की भूमिका में उसके संपादक विद्याभूषण श्रीमन्मोहनदासजी लिखते हैं—"इस समय जयपुर के श्रीनिंबार्कीय मठ-मंदिरों का प्रबंध श्रीवृंदावनदेवाचार्यजी महाराज के शिष्य प्रकांड विद्वान् कश्मीरी शील के अधिकार में रहा।" 'इस समय' का तात्पर्य है श्रीवृंदावनदेवाचार्य के अनंतर अर्थात् सं० १८०० के पश्चात् से १८६० तक। वहीं वे लिखते हैं—"इनके पश्चात् १८६० सावन सुदी १३ तक महाराज प्रतापसिंहजी ने राज्य किया। इस ६० वर्ष के समय में श्रीवृंदावनदेवाचार्यजी के पश्चात् १८३४ तक श्रीगोविंददेवाचार्यजी और १८४९ तक श्रीगोविंदशरणदेवाचार्यजी महाराज आचार्य-पीठासीन हुए।" श्रीगोविंददेवाचार्य

के समय सं० १८०० से १८१४ तक श्रीजयरामजी शैव और श्रीब्रजानंदजी भी मठ-मंदिरों का प्रबंध देखते थे। घनआनंद का निधन-संवत् १८१७ है। इसलिए श्रीगोविंददेवजी के समय में ये वर्तमान थे। 'श्रीसनकादि गुन' का इनके नाम से एक पद मिलता है जिसमें श्रीगोविंददेवजी का नाम भी इन्होंने लिया है—

भजि भजि भजि भजि श्रीहरिव्यास।
जो चाहौ हरिपद को बास॥

हंसरूप नारायन स्वामी। सनकादिक नारद निहकामी।
निंबादित्य निंबाकाचारज। अखिल विस्व के कारज सारज।
पुरुषोत्तम बिलास निजरूप। श्रीआचारजवर परम अनूप।
श्रीमाधव बलभद्र भजौ मन। पद्म स्याम गोपाल प्रेमघन।
कृपाचार्य श्रीदेवाचारज। चरन-सरन सुंदरभट आरज।
पद्मनाभ उपइंद्र रामचँद। वामन कृष्णभट्ट आनँदकँद।
पद्माकर श्रवनेस भूरिभट। तिनको सुजस सकल जग परगट।
माधव स्याम भट्ट गोपाल। श्रीबलभद्र जु दीनदयाल।
गोपीनाथ केसव भट मंगल। सुमिरत भाजै सकल अमंगल।
कासमीरि केसव दिगविजै गुर। जिनको कथा सकल जग परचुर।
जय प्रभु जय श्रीभट सुखसागर। श्रीहरिव्यास त्रिलोक उजागर।
परसुराम सुखधाम महाप्रभु। श्रीहरिवंस हंस ईस्वर बिभु।
श्रीनारायनदेव आप हरि। उचरत नाम पाप भाजैं डरि।
श्रीवृंदावनदेव सनातन। चातक-रसिकन को आनँदघन।
जो यह श्रीसनकादि धुनि गावै। श्रीगोविंददेव-पद पावै॥

श्रीवृंदावनदेवजी को 'चातक-रसिकों का आनंदघन' इस पद के कारण कहते हैं। साथ ही अपने समय के पीठाधीश श्रीगोविंददेव का नाम भी लेते हैं। श्रीनिंबार्कशरणदेवजी के समय में यह पद नहीं लिखा गया। अन्यथा उनका नाम भी इसमें सन्निविष्ट होता। ऊपर श्रीजयराम शैव के साथ ब्रजानंदजी का नाम भी आया है। घनआनंदजी के कवित्तों के संग्रह-कर्ता 'ब्रजनाथ' यही ब्रजानंदजी तो नहीं हैं? एक ब्रजनाथ भट्ट और हैं जो उस समय जयपुर के प्रसिद्ध रागकारकर्ता

थे। ये भी घनआनंद के समसामयिक थे और निंबार्क-संप्रदाय की गद्दी के संबंध में हुए मतभेद में योग दे रहे थे।

इन्होंने निंबार्क-संप्रदाय के अनुकूल 'बधाई' का पद भी लिखा है—

चिरजीवौ हंस गोपाल रसिकवर।
जुग जुग भक्ति प्रचार करैं प्रभु धरि अनेक अवतार बिमल बर।
अटल राज भुवमंडल पायौ सनकादिक गुरु नंद-कुँवरवर।
भवसागर-तारन दृढ़ नौका आनँदघन गावै चरन-कमल धर।

निंबार्क-संप्रदाय के प्रवर्तक श्रीहंस भगवान् माने जाते हैं। इसी से इस संप्रदाय के आचार्य 'परमहंस-वंश' के कहे जाते हैं।

निंबार्क-संप्रदाय में उपासना का भाव 'माधुर्य' माना जाता है। यह 'सनकादि-संप्रदाय' कहलाता है और इसका दार्शनिक मत 'द्वैताद्वैत' है। इस संप्रदाय में 'सखी-भाव' की उपासना चलती है। 'मधुरभाव' की उपासना करनेवाले महात्माओं के, जो साधना के अनेक सोपान पार कर इस भाव में लीन हो जाते हैं, सांप्रदायिक नाम भी उनके सिद्ध गुरुओं द्वारा रख दिए जाते हैं। निंबार्क-संप्रदाय की गद्दी पर आसीन होनेवाले सभी आचार्यों के सांप्रदायिक नाम थे और वे अपने अंतरंग परिकर में इसी नाम से अभिहित होते रहे हैं। ऐसे नाम साधना की ऊँची भूमिका में पहुँचने पर ही प्राप्त होते हैं। 'नागरी-समुच्चय' में जो कुछ 'आनंदघन' के संबंध में श्री राधाकृष्णदास ने दिया है उसमें 'आनंदघन' भी महात्मा कोटि में माने जाते थे। प्रेमसाधना का उत्कर्ष पथ पार कर ये सच्चे साधकों, सिद्धों को पीछे छोड़ 'सुजानों' की कोटि में पहुँच गए थे। अतः संप्रदाय में इनका सखीनाम का नामकरण हो गया था। यों तो निंबार्क-संप्रदाय के जितने आचार्य हुए हैं साधनागत उन सभी के सखीनाम थे, पर यहाँ निंबार्क-संप्रदाय के अत्यंत प्रसिद्ध आचार्य हरिव्यासदेवजी से घनआनंद के गुरु श्री वृंदावनदेव तक प्रत्येक आचार्य के सखीनाम दिए जाते हैं। अपनी परमहंस-वंशावली में घनआनंदजी ने अन्य आचार्यों का तो प्रसिद्ध नाम ही दिया है किंतु परशुरामाचार्य का इन्होंने सखी नाम लिया है। वे लिखते हैं—

जिनके पाट बिराजि कै परमानंद श्रीमान।
पदवी कौं पदवी भई मुनिवर कृपानिधान।

यहाँ 'इनका' परशुरामाचार्य भी सखीनाम है। इनका लोक-व्यवहार का नाम उन्होंने अपनी 'मोहनानंद पुंज' में स्पष्ट किया है—

परसुराम सुखधाम महाप्रभु। श्रीहरिवंशहंस ईश्वर विभु॥

जिन्हें इस बात का पता न होगा वे 'परमानिधि' को अपपाठ या अपपाठ मानेंगे और यह अनुमान करेंगे कि हो न हो 'परमानिधि' के स्थान पर मूल में 'परसुराम' ही रहा होगा। 'परमानिधि' के बदले 'परसुराम' छंद में ठीक बैठ जाता है। प्रश्न हो सकता है कि ऐसा उन्होंने क्यों किया। इसका उत्तर सरल नहीं है। पर यह अवश्य कहा जा सकता है कि 'परमहंस-वंशावली' का प्रयोग संप्रदाय के ही लोगों के लिए है। उन्होंने कहा भी है कि यह 'गुरुमुखी' लोगों के लिए है,—

परमहंस-वंसावली रची साखी श्रुति साथ।
कंठ धारिहैं गुरमुखी सुखदाई समुदाय॥

इसीसे एक स्थान पर यह 'रहस्यमंजरी' नाम भी दे दिया जिससे अंतरंग-मंडल के लोगों को यह संकेत मिल जाय कि लेखक का उसमें भी प्रवेश है।

अब आचार्यों के सखीनाम सुनिए—

श्रीहरिव्यासदेव	...	हरिप्रिया सखी।
श्रीपरसुरामदेव	...	परम सहेली।
श्रीहरिवंशदेव	...	हित अलबेली।
श्रीनारायणदेव	...	नित्य नवेली।
श्रीवृंदावनदेव	...	मनमंजरी।

संप्रति घनआनंदजी के सखीनाम का पता न संप्रदायवालों को है, न साहित्यवालों को, पर इनकी नवीन प्राप्त दो पुस्तकों से इनके सखीनाम का संकेत मिलता है 'वृषभानुपुरसुषमा वर्णन' में स्पष्ट कहा गया है :—

मोको नावँ बहुगुनी मेरो। बरसाने ही सुंदर खेरो॥

यह नाम स्वयं श्रीराधा ने रखा है—

राधा नावँ बहुगुनी राख्यौ। सोई अरथ हिये अभिलाख्यौ॥

'बहुगुनी' की कला कब प्रदीप होती है इसे भी जान लीजिए—

प्रेमनि विवस होत जब जानौ। तब बहुगुनी कला चख आनौ॥
बाढ़ति सुरंग साथ कछु बोलौं। प्रेमपहेली आखरनि खोलौं॥
दुरौ बात हू उघरि परै जब। सो सुख कह्यौ न परत कछू तब॥

'प्रियाप्रसाद' में भी यह नाम श्रीराधा का रखा हुआ कहा गया है—

राधा धर्यौ बहुगुनी नाऊँ। टहलि अमित रहौं सुनाऊँ जाऊँ॥

'बहुगुनी' सदा श्रीराधा के साथ रहती है अथवा श्रीराधा 'बहुगुनी' का साथ नहीं छोड़ती। 'बहुगुनी' तान-गान में प्रवीण है, श्रीराधा के चित्त को यह अपने इस गुण से रिझाया भी तो करती है—

राधा सँग ठौ सब समै रहति बहुगुनी-संग।
तान रमन-गुन-गान की लै अलापनि रंग॥
राधा अमल सुहाग के ललित रँगीले गीत।
रागनि भीजी बहुगुनी रिझवति राधा-मीत॥

घनआनंद जी संगीत के बहुत अच्छे जानकार थे, जनश्रुति में यह प्रसिद्ध है। किशनगढ़ में प्राप्त चित्र में इनकी प्रशस्ति में 'गानकला में अति कुशल' लिखा है। चित्र में वे सितार लिए वीरासन से बैठे हैं। राग-रागिनियों में इनके सहस्राधिक पद मिलते हैं और कविता में कहीं कहीं मृदंग उनका ज्ञान पड़ता है। ऐसे ढंग से पदावली रची गई है।

संपादक की कुछ प्रमुख कृतियाँ

वाङ्मय-विमर्श
बिहारी
हिंदी में नाट्य-साहित्य का विकास
काव्यांग-कौमुदी
हिंदी का सामयिक साहित्य
हिंदी-साहित्य का अतीत
तुलसी-मंजरी
प्रसाद
भूषण-ग्रंथावली
पद्माकर-पंचामृत
घनआनंद-कवित्त
कवितावली
रसखानि
केशव-ग्रंथावली
दास-ग्रंथावली (अप्रकाशित)
ग्वाल-ग्रंथावली "
बोधा "
आलम "
ठाकुर "
सूरसागर (सटिप्पण) "

घनआनंद

प्रशस्ति

सवैया

नेही महा ब्रजभाषा-प्रबीन औ सुंदरतानि के भेद कौं जानै।
जोग-बियोग की रीति मैं कोबिद, भावना-भेद-स्वरूप कौं ठानै।
चाह के रंग मैं भीज्यौ हियौ, बिछुरैं मिलैं प्रीतम सांति न मानै।
भाषा-प्रबीन, सुछंद सदा रहै सो घन जू के कबित्त बखानै ॥ १ ॥

प्रेम सदा अति ऊँचो लहै सु कहै इहि भाँति की बात छकी।
सुनि कै सब के मन लालच दौरै, पै बौरे लखैं सब बुद्धि-चकी।
जग की कबिताई के धोखें रहैं, ह्याँ प्रबीनन की मति जाति जकी।
समुझै कबिता घनआनँद की हिय-आँखिन नेह की पीर तकी ॥ २ ॥

कबित्त

नेह-मकरंद-भरे कैधौं अरबिंद-बृंद,
बिकसत लसत सफल भाय ही के हैं।
कैधौं सुबरन के कलस ये सुधा सौं भरे,
स्वाद पाएँ लगत सवाद सब फीके हैं।
कैधौं अदभुत जलधर 'रसनाथ' कहै,
नव-रस-रंग बरसत अति नीके हैं।
चोर चित्त-बित्त के कि कोऊ बरजोर हियैं,
कैधौं बिलसत ये कबित्त घन जी के हैं ॥ ३ ॥

प्रगटैं सुमन सुबरन स्वाति-जल जैसे,
बसे छंद-बंद-प्रीति सुकवि-अधार हैं।
सुंदर बिमल बहु अरथ-निधान देखौ,
आचरज-नेह-भरे झलकैं अपार हैं।

कहूँ 'ब्रजनाथ' बहु जतननि आए हाथ,
बरनौं कहा लौं ये तौ परम सुढार हैं।
ए जू सुनौं मिल चित्त-गुन मैं पिरोय इन्हें,
राखौ कंठ मुकता-कवित्त करि हार हैं ॥ ४ ॥

सवैया

स्वाद महा खर दाखनि चाखत ज्यौं जग-नैननि रोग बढ़ावै ।
ज्यौं उलूका-गन-रूप निहारत चंद बढ़ै, हिय रोष जगावै ।
चित्र-विचित्र के भेद अगाहन ज्यौं दृगअंध न काहू सुहावै ।
त्यौं घनआनँद-बानि अजानत मूढ़ सुजाननि आनि मनावै ॥ ५ ॥
कोटि विषै करि ओट महा नहिं नेह की चोटहिं जो पहचानैं ।
बात के गूढ़ न भेदन जानत मूढ़ सठ हठि बादन ठानैं ।
चाह-प्रवाह अथाह परे नहिं आप ही आप विचच्छन मानैं ।
पूँछ-विषान बिना पसु जो सु कहा घनआनँद-बानी बखानैं ॥ ६ ॥
बिनती कर जोरि कै बात कहौं जो सुनौं मन-कान दै हेत सौं जू ।
कविता घनआनँद की न सुनौ पहचान नहीं उहि खेत सौं जू ।
जु पढ़ै बिन क्यौं हूँ रह्यौ न परै तौ पढ़ौ चित मैं करि चेत सौं जू ।
[रस-स्वादहि पाय बिचार बढ़ाय रहौ रमि कै हिय नेह सौं जू] ॥ ७ ॥

—ब्रजनाथ ।

सुजानहित

सवैया

रूपनिधान सुजान सखी जब तें इन नैननि नेकु निहारे ।
दीठि थकी अनुराग-छकी मति लाज के साज-समाज बिसारे ।
एक अचंभौ भयौ घनआनँद हैं नित ही पल-पाट उघारे ।
टारैं टरैं नहीं तारे कहूँ सु लगे मनमोहन-मोह के तारे ॥ १ ॥

आँखि ही मेरी पै चेरी भईं लखि फेरी फिरैं न सुजान की फेरी ।
रूप-छकी, तित ही बिथकीं, अब ऐसी अनेरी पत्याति न नेरी ।
प्रान लै साथ परीं पर-हाथ बिकानि की बानि पै कानि बखेरी ।
पायनि पारि भई घनआनँद चायनि बावरी प्रीति की बेरी ॥ २ ॥

रूपनिधान सुजान लखैं बिन आँखिन दीठि हि पीठि दई है ।
ऊखिल ज्यौं खरकै पुतरीन मैं, सूल की मूल सलाक भई है ।
ठौर कहूँ न लहै ठहरानि की मूँदें महा अकुलानिमई है ।
बूझत क्यौं घनआनँद सोचि, दई बिधि ब्याधि असाधि नई है ॥ ३ ॥

हीन भएँ जल मीन अधीन कहा कछु मो अकुलानि समानैं ।
नीर सनेही कौं लाय कलंक निरास ह्वै कायर त्यागत प्रानैं ।
प्रीति की रीति सु क्यौं समुझै जड़ मीत के पानि परें कों प्रमानैं ।
या मन की जु दसा घनआनँद जीव की जीवनि जान ही जानैं ॥ ४ ॥

पाठांतर—१—नेकु–नीके । २—दीठि–दीठ को (रा०)। ४—नीर०—नीर सनेह । रीति–नीति (प्रयाग)। पानि–पानैं (छंदसा)।

शब्दार्थ—[१] तारे=पुतलियाँ । तारे=ताले । [२] अनेरी=विलक्षण । नेरी=थोड़ा भी । [३] ऊखिल=पराया, अपरिचित । सलाक=शलाका, सलाई (अंजन लगानेवाली)। ज्यौं=जो । [४] समानैं=सम, तुल्य । पानि=

मेरोई जीव जौ मारत मोहिं तौ प्यारे कहा तुम सौं कहनो है ।
आँखिन हूँ पहचानि तजौ कछु ऐसोई भागनि कौ लहनो है ।
आस निहारियै हौं घनआनँद कैसें उदास भए रहनो है ।
जान है होत इतै पै अजान जौ तौ बिन पावक हौं दहनो है ॥ ५ ॥

आस लगाय उदास भए सु करी जग मैं उपहास-कहानी ।
एक बिसास की टेक गहाय कहौ अब जौ नट और ही ठानी ।
एहो सुजान सनेही कहाय दई किन बोरत हौ बिन पानी ।
यौं अधरें घनआनँद हाय कै हाय परी पहचानी पुरानी ॥ ६ ॥

मीत सुजान अनीति करौ जिन हाहा न हूजियै मोहि अमोही ।
डीठि कौ और कहूँ नहिं ठौर फिरी दृग रावरे रूप की दोही ।
एक बिसास की टेक गहे लगि आस रहे बसि प्रान-बटोही ।
हौ घनआनँद जीवनमूल दई कित प्यासनि मारत मोही ॥ ७ ॥

पहिलें घनआनँद सींचि सुजान कहीं बतियाँ अति प्यार-पगी ।
अब लाय बियोग की लाय बलाय बढ़ाय बिसास-दगानि दगी ।
अँखियाँ दुखियानि कुबानि परी न कहूँ लगैं कौन घरी सु लगी ।
मति दौरि थकी न लहै ठिक ठौर अमोही के मोह-मिठास ठगी ॥ ८ ॥

हित भूलि न आवति है सुधि क्यौं हूँ सु यौं हूँ हमैं सुधि कीजत है ।
चित भूल तौ भूलत नाहिं सुजान जु चंचल ज्यौं कछु धीजत है ।
इहि आस की पासनि कंठ तें फेरि कै घेरि उसासनि लीजत है ?
अब देखियै कौ लौं घिरैं घनआनँद आस को दाव सो दीजत है ॥ ९ ॥

५—जौ तौ—जौ जौ । ८—बियोग०—बियोग बलाय कै लाय (काशि०) । ९—भूल—भूलि (रत्ना०) ।

हाय । प्रमानैं = प्रमाणित करता है । जान = सुजान । [५] जान = सुजान ; चतुर । [६] उधरें = उठ गए । [७] दोही = दुहाई । [८] बियोग० = बियोगाग्नि । बिसास = विश्वासघात । परी० = पड़ी लग गई, कैसा समय आया । [९] ज्यौं = जो । धीजत है = स्थिर होता है । पास = पाश, फंदा ।

मूरति स्याम सुजान लखैं जिय जो गति होति सु कासौं कहौं ।
नित चुंबक-लोह लौं चायनि च्वै चुहटै न छुटै नहिं जेतो गहौं ।
बिन काज या लाज-समाज के साजनि क्यौं घनआनँद देह दहौं ।
उर आवत यौं छबि-छाँह ज्यौं हौं ब्रजछैल की गैल सदाई रहौं ॥१०॥

मन-पारद कूप लौं रूप चहै उमहै सु रहै नहिं जेतो गहौं ।
गुन-गाढ़नि जाय परै अकुलाय मनोज के ओजनि सूल सहौं ।
घनआनँद चेटक-धूम मैं प्रान घुटैं न छुटैं गति कासौं कहौं ।
उर आवत यौं छबि-छाँह ज्यौं हौं ब्रजछैल की गैल सदाई रहौं ॥११॥

मुख हेरि न हेरति रंक मयंक सु पंकज छीवति हाथ न हौं ।
जिहि चातक आयौ अचानक ही घनआनँद बात सु कासौं कहौं ।
अब तौ सपने-निधि लौं न लहौं अपने चित चेटक आँच दहौं ।
उर आवत यौं छबि-छाँह ज्यौं हौं ब्रजछैल की गैल सदाई रहौं ॥१२॥

रससागर नागर स्याम लखैं अभिलाषनि-धार-मँझार बहौं ।
सु न सूझत धीर को तीर कहूँ पचि हारि कै लाज-सिवार गहौं ।
घनआनँद एक अचंभो बड़ो गुन हाथ हूँ बूड़ति कासौं कहौं ।
उर आवत यौं छबि-छाँह ज्यौं हौं ब्रजछैल की गैल सदाई रहौं ॥१३॥

सजनी रजनी-दिन देखैं बिना दुख पागि उदेग की आगि दहौं ।
अँसुवा हिय पै बिष-धार परैं उठि स्वास भरैं सुठि आस गहौं ।
घनआनँद नीर समीर बिना बुझिबे को न और उपाय लहौं ।
उर आवत यौं छबि-छाँह ज्यौं हौं ब्रजछैल की गैल सदाई रहौं ॥१४॥

दुख-धूम की धुँधरि मैं घनआनँद जौ यह जीव घिर्‌यौ घुटिहै ।
मनभावन मीत सुजान सौं नातौ लग्यौ तनकौ न तऊ टुटिहै ।

१२—हेरि न—हेरत (भदा०) । लहौं—लहैं (प्रयाग) १४—उठि—सुठि । सुधि—सुचि (काशी०) । नीर—तीर । १५—न तऊ—तनकऊ (प्रयाग) । जीवन—

प्रान = जीवन । दाव = दावाग्नि । [१०] चुहटै = चिपटा है । छुटै० = छूटता नहीं । [११] पारद = पारा । कूप = कुप्पी । गाढ़ = गड्ढा । चेटक = जादू । [१२] छीवति न = छूती नहीं । [१३] गुन : डोर, रस्सी । [१४] सुठि = सुंदर । [१५] तनकौ = थोड़ा भी । धन = कन्या, प्रेमिका । ढरि = ढलकर ।

धन जीबन प्रान को ध्यान रह्यौ, इक सोच बच्यौ उर सोऊ लुटिहै ।
बुरि आस को पास उसास-गरैं जु परी सु मरें हू कहा छुटिहै ॥१५॥

अँगुरीन लौं जाय भुलाय तहीं फिरि आय लुभाय रहै तरवा ।
चपि चायनि चूर ह्वै एड़िनि त्यौं धपि धाय छकै छवि छाय छवा ।
घनआनँद यौं रस-रीझनि भीजि कहूँ बिसराम बिलोक्यौ न वा ।
अलबेली सुजान के पायनि-पानि पर्यौ न टर्यौ मन मेरो झवा ॥१६॥

रस-आरस भोय उठी कछु सोय लगीं लसैं पीक-पगी पलकैं ।
घनआनँद ओप बढ़ी मुख औरै सु फैलि फबीं सुथरी अलकैं ।
अँगराति जम्हाति लजाति लखैं अँग अंग अनंग दिपैं झलकैं ।
अधरानि मैं आधियै बात धरैं लड़कानि की आनि परैं छलकैं ॥१७॥

बंक बिसाल रँगीले रसाल छबीले कटाछ-कलानि मैं पंडित ।
साँवल सेत निकाई-निकेत हियौ हरि लेत हैं आरस-मंडित ।
बेधि कै प्रान करैं फिरि दान सुजान खरे भरे नेह अखंडित ।
आनँद-आसव-घूमरे नैन मनोज के चोजनि ओज प्रचंडित ॥१८॥

देखि धौं आरसी लै बलि नेकु लसी है गुराई मैं कैसी ललाई ।
मानौ उदोत दिवाकर की दुति पूरन चंदहि भेंटन आई ।
फूलत कंज कुमोद लखैं घनआनँद रूप अनूप निकाई ।
तो मुख लाल गुलालहिं लाय कै सौतिन के हिय होरी लगाई ॥१९॥

जीवांत (राम), जोवांत (प्रयाग)। १६-तरवा—'तरवौं' आदि तुकांत (प्रयाग)।
१७-फबीं—भवीं। लसैं—लगैं (राम)। १८-रँगीले—भाँति (कवि०)।
हियौ—हियैं (राम)। १९-भेंटन-भेषन (कवित्त)। लखैं—बिथैं (कवि०)।

पास = फंदा। [१६] धपि = शीघ्रता से। छुवा = पैरों का डलना। पायनि० = पैरों के हाथ में पड़ा हुआ (वश में होकर)। झवा = पैर की मैल रगड़कर निकालनेवाला ईंट का टुकड़ा, झाँवा। [१७] रस-आरस = आनंद में लीन होने से उत्पन्न आलस्य। सुथरी = सुंदर, मनोहर। लड़कानि = मस्ती, ललक। [१८] आनँद० = आनंद की मदिरा पीकर मत्त। चोज = मस्ती। [१९] लाल =

रूप धरे धुनि लौं घनआनँद सूछम सूझ की दीठि सु मानौ ।
लोचन लैन लगानि के संग अनंग अचंभे की मूरति मानौ ।
है किधौं नाहिं लगी अलगी अँग लखौ न परै कछि क्यौं हूँ प्रमानौ ।
तो कटि-भेदहि किंकिनि जानति तेरी सौं प्यारी सुजान हौं जानौ ॥२०॥

क्यौं हँसि हेरि हर्यौ हियरा अरु क्यौं हित कै चित चाह बढ़ाई ।
काहे कौं बोलि सुधासने बैननि चैननि मैन-निसैन चढ़ाई ।
सो सुधि मो हिय मैं घनआनँद सालति क्यौं हूँ कढ़ै न कढ़ाई ।
मीत सुजान अनीति की पाटी इतै पै न जानियै कौनें पढ़ाई ॥२१॥

गुन बाँधि लियौ हिय हेरत ही फिरि खेल कियौ अति ही उरझै ।
गसि गौ कसि प्रीति के फंदनि मैं घनआनँद छंदनि क्यौं सुरझै ।
सुधि लेत न भूलि हू ताकौ सुजान सु जानि सकौं न दुरी गुरझै ।
अब याही परेखैं उदेग-भर्यौ दुख-ज्वाल-पर्यौ जु हियौ मुरझै ॥२२॥

रूप के भारनि होति है सौंहीं लजौंहीं हियें दीठि सुजान यौं झूली ।
लागियै जानि न लागी कहूँ निसि, पागी नहीं पलकौ गनि भूली ।
ऐंठियै जू हिय पैठति आजु कहा उपमा कहियै समतूली ।
आए हौ भोर भए घनआनँद आँखिन साँझ लौं साँझ सौं फूली ॥२३॥

कवित्त

प्रीतम सुजान मेरे हित के निधान कहौ,
कैसें रहैं प्रान जौ अनखि अरसायहौ ।
तुम तौ उदार दीन हीन आनि पर्यौ द्वार,
सुनियै पुकार याहि कौं लौं तरसायहौ ।

प्रिय। [२०] रूप० = ध्वनि के रूप की भाँति सूक्ष्म या अलक्ष्यरूप धारण किए हुए है। सूझ० = बुद्धि की दृष्टि से, मानस नेत्रों से। नांगी = उसकी नाप; फैलाव। भेद = रहस्य। हौं जानौ = मेरी समझ में ऐसा ही आता है। [२१] मैन-निसैन = कामना की सीढ़ियों पर। [२२] छंदनि = छल-कपट से। दुरी० = छिपी गाँठ को। परेखैं = पछतावे में। उरझै = उलझता है। [२३] झूलौ = झूली हुई है। समतूली = योग्य, तुल्य। साँझ० = अर्थात आँखें

चातक है रावरो अनोखे-मोह-आवरो,
सुजान-रूप-बावरो बदन-दरसावहीं ।
बिरह नसाय दया हियै मैं बसाय आय,
हाय कब आनँद को घन बरसावहीं ॥ २४ ॥

निरखि सुजान प्यारे रावरो रुचिर रूप,
बावरो भयौ है मन मेरो न सिखै सुनै ।
मति अति छाकी गति थाकी रतिरस भीजि,
रीझ की उमिल घनआनँद रह्यौ उनै ।
नैन बैन चित-चैन है न मेरे बस, मेरी
दसा अचिरज देखौ बुद्धि गहै गुनै ।
नेह लाय रूखे अब कैसैं दुरिअत हाय,
चंद हा कै चाय ज्यौं चकोर चिनगी चुनै ॥ २५ ॥

तरसि तरसि प्रान जान-मनि-दरस कौं,
उमहि उमहि आनि आँखिनि बसत हैं ।
बिषम बिरह के बिसिख हियैं घायल ह्वै,
गहबर घूमि घूमि सोचनि ससत हैं ।
निसिदिन लालसा लपेटे ही रहत लोभी,
मुरझि अनोखी उरझनि मैं गसत हैं ।
सुमिरि सुमिरि घनआनँद मिलन-सुख,
करनि सौं आसा-पट कटि लै कसत हैं ॥ २६ ॥

काहू कंजमुखी के मधुप ह्वै लुभाने जानैं,
फूले रस-भूले घनआनँद अनत हौ ।

२५--सिखै–सिखै (राम)। २६--लोभी–लोनी।

आता है ; [२४] अनोखे० = प्राण के विलक्षण प्रेम के कारण व्याकुल। [२५] सिखै = सीख भी। उमिल = उद्वेलना, वर्षा। उनै = छाया हुआ। गुनै = गुण ; रस्सी। [२६] ससत है = दम घुट रहा है। गसत है = अंतर्लग्न

कैसें सुधि आवै बिसरे हू हौ हमारे जन्हैं,
भए नेह पागयौ अनुराग्यौ है मन नहीं ।
कहा करौं जो तैं निकसति न निगोड़ी आस,
कौनैं समझी ही ऐसी धनिहै बनत हौ ।
सुंदर सुजान बिन दिन इन तम सम,
बीतें सबी तारनि कौं तारनि गनत ही ॥ २७ ॥

एड़ी तैं सिखा लौं है अनूठियै अंगेट आछी,
रोम रोम नेह की निकाई मैं रही री सनि ।
सहज सुरुचि देखैं दबि जाहिं सबै बाम,
बिन ही सिंगार और बानिक बिराजै बनि ।
गति लै चलनि लसैं बतियानि दसु दाँनि,
बरसति अंगरंग-माधुरी अथन छनि ।
हँसनि-लसनि घनआनँद जुन्हाई छाय,
लागैं चौंध चेटक अमेट-ओपी भौंहैं तनि ॥ २८ ॥

रतिरंग-राते स्रांति-पागे रैन-जागे नैन,
लागेई आवत घूमि घूमि छबि के छके ।
सहज बिलोल परे केलि की कलोलनि मैं,
कबहूँ उघरि रहैं कबहूँ जके थके ।
नीकी पलकनि पीक-लीक-झलकनि सोहै,
रस-चलकनि उनमदि न कहूँ सके ।
सुखद सुजान घनआनँद पोखन प्रान,
अचिरजखानि उघरैं हू लाज सौं ढके ॥ २९ ॥

गसत–फँसत (प्रथम)। २८--हौं–है (राम)।

होता है। करनि = हाथ से। [२७] सबी = तमिस्रा, रात। तारनि० = आँखों से तारों को गिनते हुए। [२८] अंगेट = अंगयष्टि। चेटक = जादू। अमेट० = सुभाव से चमकीली। [२९] झलकनि = उफान, प्रवाह।

अनखि चढ़े अनोखी चित्त चढ़ि उतरै न,
मन-मग मूँदै जाको बेह सब ओर तें ।
कंचिरी सुठौन कौन रंग भीनी हौं न जानौं,
लाड़िनि सु लसि हुलसनि मति चोरतें ।
बड़े सैन-मतवारे नैनन के बीच परी,
खरियै निडर डरी रहै रूप-जोर तें ।
सहज बनो है घनआनँद नवेली नाक,
अलबेली नथ सौं सुहाग की मरोर तें ॥ ३० ॥

केलि की कलानिधान सुंदरि महा सुजान,
आन न समान छबि-छाँह पै छिपैयै सौंनि ।
माधुरी-मुदित मुख उदित सुसील भाल,
चंचल बिसाल नैन लाज-भीजियै चितौनि ।
पिय - अंग - संग घनआनँद उमंग हिय,
सुरति - तरंग रस - बिबस उर - मिलौनि ।
झुकनि अलक, आधी खुलनि पलक, स्रम,
स्वेदहि झलक भरि ललक सिथिल हौनि ॥ ३१ ॥

अंग अंग स्याम-रंग-रस की तरंग उठै,
अति गहराई हिय प्रेम-उफनानि की ।
उमगनि भरी पूर-पानिप-सुढार ढरी,
मीठी धुनि करै ताप हरै अँखियानि की ।
महाछबि-तीर तीर गए मैं न ठहरयौ जाय,
मोहनता-निधि बिधि पूरमी पै आनि की ।
भान की दुलारी घनआनँद जीवन-प्यारी,
बृंदावन-सोभा सीवँ सुख-सरसानि की ॥ ३२ ॥

३०—जोर—डोर (राम) । ३२—गहराई—गहराव ।

[३०] बेह=छिद्र । ठौन = स्थिति, मुद्रा । मति० = बुद्धि को चुराती हुई । अलबेली = बेढंगी । [३१] सौंनि = सोने (कुंदन) का लाल वर्ण । लाज० = लज्जा से युक्त । [३२] पूर = प्रवाह । पानिप = जल ; शोभा । आनि = लाकर । भान = वृष

सवैया

जा मुख हाँसी लसी घनआनँद कैसें सुहाति बसी तहाँ गाँसी ।
प्यास हितै हनियै न हितू हँसि बोलन को कित कीजत हाँसी ।
पोषि रमै जिय मोहन क्यौं मुनि नाँधि है हारत दीप की फाँसी ।
हाहा सुजान अचंभो अयान जु भेदि कै गाँसहि बेधति गाँसी ॥ ३३ ॥

रीझि बिकाई निकाई पै रीझि थकी गति हेरनि हेरत की मति ।
जोबन घूमरे नैन लखैं मति-बौरी भई बलि वारि कै मोमति ।
बानी बिलासनि मुसकानि मैं अनचाहनि-चाह जिवावति है हनि ।
जान के जी की न जानि परै घनआनँद या हू तें हानि कहा अति ॥ ३४ ॥

ओट न मानति चाह-भरी उघरी ही रहै अति लाग-लपेटी ।
ढीठि भई मिलि ईठि सुजान न देहि रगै गाँठि जु छोरि सहेटी ।
मेरी हि मोहि कुचैन करै घनआनँद रोगिनि लौं रहै लेटी ।
आँखी बड़ी इतरानि लगी मुँह नेकौ अघाति न आँखि निपेटी ॥ ३५ ॥

तब ती छबि पीवत जीवत हे अब सोचन लोचन जात जरे ।
हिय-पोष के तोष जु प्रान पले बिललात सु यौं दुख-दोष-भरे ।
घनआनँद प्यारे सुजान बिना सब ही सुख-साज-समाज टरे ।
तब हार पहार से लागत हे अब आनि कै बीच पहार परे ॥ ३६ ॥

३३—अयान—अजान । जु—जो (राम) । ३६—हिय—हित ।

भानु (राधा के पिता) । ज्यारी = जिलानेवाली । [३३] गाँसी = गाँसने की चाल । भेद० = हृदय से पीड़ा को गाँठ काटकर भाले की नोक चुभ रही है । [३४] रीझि० = स्वयं रीझ ही उस सौंदर्य पर रीझकर बिक गई । थकी० = उसके देखने की गति (ढंग) देखकर मेरी मति रुक गई । घूमरे = मतवाले । मोमति० = अपनपन्य को निछावर करके ; अन० = न चाहनेवालों की चाह मारकर भी जिला रही है । जान० = जान (सुजान ; जी) के जी की बात नहीं समझ पड़ती । [३५] ओट = परदा । चाह = उत्कट इच्छा । लाग = लगाव । लपेटी = घुसकर । निपेटी = भुक्खड़ । [३६] हिय० = हृदय का पोषण ।

चाह-चहयौ चित चाक-चहयौ सो फिरै निज ही दृग नेकु न धीजै ।
नैकु थकै छबि-पान छकै घनआनँद लाज सों रीझनि भीजै ।
मोह मैं बावरो ह्वै बुधि बावरी सीख सुनै न दसा-दुख छीजै ।
देह दहै न रहै सुधि गेह की भूलि हू नेह को नाँव न लीजै ॥३७॥

पहलें अपनाय सुजान सनेह सों क्यौं फिरि तेह कै तोरियै जू ।
निरधार अधार दै धार-मँझार दई गहि बाँह न बोरियै जू ।
घनआनँद आपने चातिक कों गुन-बाँधिलै मोह न छोरियै जू ।
रस प्याय कै ज्याय बढ़ाय कै आस बिसास मैं यौं बिष घोरियै जू ॥३८॥

रति-साँचे ढरी अछवाई भरी पिछुरनि मुराहयौ पेखि पगै ।
छबि घूमि घुरै न मुरै मुरवान सों लोभ-ललो रस भूमि खगै ।
घनआनँद एँड़िनि आनि मिड़ै तरवानि मरै न भरै न डगै ।
मन मेरो महावर पायनि ज्यौं तुव पायनि लागि न हाथ लगै ॥३९॥

कवित्त

मोरै लाज-डाभै सु छुटावै धाम-कामै,
बिसरावै बिसरामै सुधि सोधनि सयान की ।
चेटक लगावै मैन-आगिहि जगावै प्रान
पैठि अकुलावै टेक मेटति गुमान की ।
धुनि मैं बतावै मौन, थकनि भ्रमावै गौन,
हौं न जानौं कौन बिधि साँची तीखी तान की ।
मुँह लागी गाजै घनआनँद बिराजै आज,
बाजै बन बंसी स्यामसुंदर सुजान की ॥४०॥

जू-सु । सु सौं–सदा । धार–भीत (राम) । ४०–टेक–पेक ।

[३७] न धीजै = ठहरता ही नहीं । बावरी = व्याकुल । दसा० = मेरी दशा दिनोंदिन दुःख से क्षीण होती जाती है । [३८] तेह = रोष । गुन = गुण; डोर । बाँधिलै = बँधे हुए को । बिसास = विश्वास । [३९] अछवाई = अच्छाई, सुंदरता । मुरवा = एड़ी के ऊपर चारों ओर का घेरा । खगै = लीन हो जाता है । मिड़ै = चिपक जाता है । भरै = समय काटता है । [४०] धाम = घर । चेटक = जादू । मैन = काम । धुनि० = ध्वनि में मौन को

सवैया

रावरे रूप की रीति अनूप नयो नयो लागत ज्यौं ज्यौं निहारियै ।
त्यौं इन आँखिन बानि अनोखी अघानि कहूँ नहिं आन तिहारियै ।
एक ही जीव हुतौ सु तौ वारयौ सुजान सकोच औ सोच सहारियै ।
रोकी रहै न, दहै घनआनँद बावरी रीझ के हाथनि हारियै ॥४१॥

रूप लुभाय लगी तब तौ अब लागनि नाहिं सुभाय निमेखैं ।
जो रग-रंग अभंग लगी सु रगी नहिं पेखियै लाखनि लेखैं ।
हौं घनआनँद एहो सुजान नऊ ये दईं दुखदाई परेखैं ।
आखिन आपनी आँखि न देख्यौ कियौ अपनो सपनेऊ न देखैं ॥४२॥

पीर की भीर अधीर भईं अँखियाँ ढुरिबौ उमगौ झरना लौं ।
रोकि रह्यौ उर-मैड़ महा इन टेक गह्यौ जु गह्यौ सु दह्यौ हौं ।
भीजि बहैं चिय-धार परैं हिय आँसुनि सौं पजरै बिरहा हौं ।
आनँद के घन मीत सुजान हौ प्रीति मैं कानी अनीति कहा गौं ॥४३॥

फैलि परी धर अंबर पूरि मरीचिनि-बीचिनि-संग हिलोरति ।
भौंर-भरी उफनाति खरी सु उपाव की नाव तरेरति तोरति ।
क्यौं बचियै बचियै घनआनँद बैठि रहै घर पैठि ढँढोरति ।
जोन्ह मलै के पयोनिधि लौं बढ़ि बैरिनि आज बियोगिनि बोरति ॥४४॥

४२–निमेखैं–'निमेखैं' आदि । दुखदाई–दुखदाई (राम) । ४४–परी–रही ।

जाने का संकेत करती है, उसे सुननेवाला मौन साधने को विवश होता है । थकनि० = उसकी गति गौन (चलने) का इंगित करती है । [४१] आन = शपथ । सहारियै = सहारा दीजिए । [४२] दुखदाई = दुखियाँ । आँखिन० = आँखों ने अपनी आँखें देख लीं (अपने ज्ञान की पहुँच से असंभव कार्य भी संभव कर लिया) पर मैंने अपना किया स्वप्न में भी (भूलकर भी) नहीं देखा । [४३] उर० = उस प्रवाह को रोकने के लिए छाती की जो मेड़ थी वह भी बह गई, छाती फट गई । हौं = अग्नि । गौं = घात । [४४] धर० = पृथ्वी से आकाश तक । मरीचि० = किरणों की लहरें । तरेरना = थपेड़ा देना ।

कबित्त

आई है दिवारी पाले काजनि जिवारी प्यारी,
खेलैं मिलि जूवा पैंज परैं दाव आवहीं ।
हारहि हमारि जीति मौन-धन लच्छिन सों,
चौंप-चढ़े नैन चैन-चुहल मचावहीं ।
रंग सरसावैं - धरसावैं घनआनँद-
उमंग-ओपे अंगनि अनंग उमगावहीं ।
दियरा जगाय जागैं पिय पाय तिय रागैं,
हियरा जगाय हम जोगहि जगावहीं ॥ ४५ ॥

सवैया

प्रान-पखेरू परे तरफैं लखि रूप-चुगो जु फँदे गुन-गाथन ।
क्यौं हूँ नियै हित पालि सुजान दसा बिन संजोग-बियोग के हाथन ।
मालत तान समान हियैं सु लहै घनआनँद जो सुख साथन ।
देहु जिवाय दई मुखचंद लग्यौ अब आँखि-चकोरन आथन ॥४६॥
रंग लियौ अबलानि के अंग तें च्याय कियौ चित चैन को चोवा ।
और गनै सुख सोंधे अनेक मचाय दियौ घनआनँद दोवा ।
प्रान-अबीरहि फेंट भरैं अति छाक्यौ फिरै गति को गति खोवा ।
स्याम सुजान बिना सजनी ब्रज यौं बिरहा भयौ फाग बिगोवा ॥४७॥
रूप-चमूप सज्यौ दल देखि भज्यौ तजि देसहिं धीर-मवासी ।
नैन मिलैं उर के पुर पैठत लाज लुटी न छुटी तिनका सी ।
प्रेम-दुहाई फिरी घनआनँद बाँधि लिये कुल-नेम गढ़ासी ।
रीझ सुजान सची पटरानी बची बुधि बापुरी ह्वै करि दासी ॥४८॥

४५—आवहीं—पावहीं । नैन—नैन । (राम) । ४८—चढ़ी ही (प्रयाग) ।

ईछति = ध्यान देकर हँसती है । [४५] पाले = सनपाट । जिवारी = जिलानेवाली । पैंज = प्रतिज्ञा । हार = माला ; पराजय । दियरा = दीप और ... दीपक जगाकर जागते हैं, पर हम हृदय को (प्रेमसाधना में) जगाकर योग (संयोग) जगाते हैं उसे सिद्ध कर रहे हैं । [४६] चुगो = चारा । साथन लग्यौ = पक्ष होने लगा । [४७] चोवा = ... बिगोवा = विनाश । [४८] मवासी = गढ़पति । गढ़ासी = विध्वंस करनेवाले । सची = बनाई ।

कबित्त

आसहि अकास-मधि अवधि-गुनै बढ़ाय,
ओपनि चढ़ाय दीनौ कीनौ खेल सो यहै ।
निपट कठोर एहो ऐंचत न आप-ओर,
लाड़िले सुजान सों दुहेली दसा को कहै ।
अचिरजमई मोहिं भई घनआनँद यौं,
हाथ साथ लग्यौ पै समीप न कहूँ लहै ।
बिरह-समीर की झकोरनि अधीर, नेह-
नीर भीज्यौ जीव तऊ गुड़ी लौं उड़्यौ रहै ॥ ४९ ॥
बिरह-दवागिनि उठी है तन-बन-बीच,
जतन सलिल के सु कैसें सींचियै परे ।
अंतर-पुड़ाई फटे भटकत माँस-साँस,
आस-लोभ-लता हू उदेग-झर सों जरे ।
दुख-धूम-धुँधर में घिरे घुटैं प्रान-खग,
अब लौं बचे हैं जो सुजान तनको दरे ।
बरसि दरस घनआनँद अरस छाँड़ि,
सरस परस दै दहनि सब ही हरै ॥ ५० ॥
जल-बूड़ी जरै दीठि पार हू न सूझ करै,
अमी पियें मरैं माहिं अचिरज अति है ।
चीर सों न रुकैं, बानी चित थिरा थकैं,
ढरि परैं न निगाहैं थकैं थकी भूतगति है ।
खुलैं भारे लगैं आँखैं तारों त्यौं न परैं पिय,
नींद-भरी अबौं इन्हैं अनोखियै रति है ।
गुन बँधे कुल छूटैं आपौ नं उदेग लूटैं,
सब जुरैं दृग छूटैं आनँद बिपति है ॥ ५१ ॥

५०—हरै—दरै (राम) ।

[४९] गुनै = डोर को । दुहेली = दुःखमयी । [५०] पुड़ाई = दृढ़ता ; पुष्टता । झर = ज्वाला । अरस = आलस्य ; नीरसता । [५१] भूतगति = भूत का सा

रूप-गुन-मद-उनमद नेह-तेह-भरे,
छल-बल-आतुरी चटक-चातुरी पढ़े।
घूमत गुमत अरबीले न मुरत नैंकौ,
आनन मों खेलैं अलबेल लाड़ के बढ़े।
मीन-कंज-खंजन-कुरंग-मान-भंग करैं,
साँचे घनआनँद सुखौं सकोच सौं मढ़े।
पैने नैन तेरे से न हेरे मैं अनेरे कहूँ,
पानी चढ़े काती लिये छाती पै रहैं अड़े ॥ ५२ ॥

अंजन गंजन दीठि, मंजन मलोल करैं,
रंजन-समाज-साज सजैं पर-पीर कौं।
भूषन दगान, गुन दूषन लगत गात,
पूषन मुकुर, अंग सोखैं संग भीर कौं।
जीवौ विष-ज्वाल जीतैं, बोलैं घनआनँद यौं,
बन मीन कौन है धरैया अब धीर कौं।
रंग-रस-बरस सुजान के दरस बिन,
तीर तें सरस यहै परस समीर कौं ॥ ५३ ॥

बहुत दिनान के अवधि-आस-पास परे,
खरे अरबरनि भरे हैं उठि जान कौं।
कहि कहि आवन छबीले मनभावन कौ,
गहि गहि राखति ही दै दै सनमान कौं।

५२—नेकौ-यहाँ है (र ०)। सौं—मैं (प्रयाग)। ५४—(राम) में नहीं है।

व्यापार, विलक्षण बात। गुन=गुण; डोर। [५२] तेह=रोष। अरबीले=अड़नेवाले। अनेरे=अत्याचारी, दुष्ट। [५३] मंजन=मार्जन, स्नान। रंजन=प्रसन्न करनेवाले व्यापार। [५४] आस०=आशा के फंदे में। खरे०=अति हड़बड़ी में। पत्यानि=विश्वास। न घिरत=निकट नहीं, पकड़े नहीं जा सकते। निदान=अंत में। अधर०=ओठों पर आ लगे हैं। पयान=प्रयाण।

झूठी बतियानि की पत्यानि तें उदास ह्वै कै,
अब न घिरत घनआनँद निदान कौं।
अधर लगे हैं आनि करिकै पयान प्रान,
चाहत चलन ये सँदेसो लै सुजान कौं ॥ ५४ ॥

सवैया

जोरि कै औरिक आननि भावते संग लियें अँखियानि मैं आवत।
भीजि कटाछनि सौं घनआनँद हाय महारस सौं बरसावत।
आह भगैं फिरि या जिय की गति जीवन जीवन ह्वै जु जनावत।
मीन सुजान अनूठियै रीति जिवाय कै मारत मारि जिवावत ॥५५॥
लालनि भाति भरे अभिलाषनि कै पल पाछे पंथ निहारैं।
लाड़िली आवनि चाहसा लागि न लागत हैं मन मैं पल धारैं।
यौं रस भीजे रहैं घनआनँद रीझे सुजान सुरूप निहारैं।
चायनि बावरे नैन कबै अँसुवान सौं रावरे पाय पखारैं ॥५६॥
औसर भाग जगे सजनी दिन कोटिक या रजनी पर वारें।
नेहनिधान सुजान मनौबन औचक ही उर-बीच पधारे।
सोनिन तैं पिय पाय इकौसैं भरे भुज मोच-सकोच निवारे।
नैननि दीठि जगी घनआनँद सौं जिनि लै पल-पाट उघारे ॥५७॥

कवित्त

दरसन-आसा-ललक-ढुलकनि पूरि,
पलकनि लागौ लगि आवनि अरबरी।
सुंदर सुजान मुखचंद कों उदै बिलोकि,
लोचन-चकोर सेये आरति-परब री।
अंग-अंग-अंतर-उमंग-रंग भोर भारी,
चाढ़ी चोप चुहल की हिय में हरबरी।

५७ नेहनिधान—रूपनिधान ([illegible])। दीठि—दिस (राम)।

[५५] भीजि=सरस। [५६] पल=प्रतीक्षा। [५७] इकौसैं=अकेले, एकांत में। [५८] अरबरी=व्याकुलता। आरति=दुःख; परब=पुण्यकाल; उत्सव।

बूड़ि बूड़ि तरैं औधि-थाह घनआनँद यौं,
जीव सूक्यौ जाय ज्यौं ज्यौं भीजत सरबरी ॥ ५८ ॥
बैस की निकाई सोई रितु सुखदाई, तामैं
तरुनाई उलहत मदन मयमंत है ।
अंग अंग रंग-भरे दल फल फूल राजैं,
सौरभ सुरस मधुराई को न अंत है ।
मोहन-मधुप क्यौं न लटू ह्वै लुभाय भटू,
प्रीति को तिलक भाल धरे भागवंत है ।
सोभित सुजान घनआनँद सुहाग-सींच्यौ,
तेरे तन-बन सदा बसत बसंत है ॥ ५९ ॥
ललित तमालनि सौं वलित नवेली बेलि,
केलि-रस झेलि हँसैं लसी सुखसार है ।
मधुर विनोद स्वेद-जलकन मकरंद,
मलय समीर सोई भोग-उदगार है ।
बन की बनक देखैं कठिन बनी है आनि,
बनमाली दूर आली सुनैं को पुकार है ।
बिन घनआनँद सुजान अंग धीरे परि,
फूलन बसंत हमैं होत पतझार है ॥ ६० ॥
देखैं अनदेखनि-प्रतीति पेखियति प्यारे,
नीठि न परत जानि दीठि किधौं छल है ।
दीपति-समीप की बिछोह माहिं जोतियत,
आरसी-दरस लौं परम ध्यान जल है ।
बिरह अटपटी दसा सौं चटपटी-बीच,
बूड़त बिचारो जीव थाह क्यौं हूँ न लहै ।

हरबरी = हड़बड़ी, उतावली । भीजत = भीगती है । सरबरी = शर्वरी, रात ।
[५९] बैस = (वयस्) उम्र । [६०] झेलि = भोग करके, भोग करके ।

कहा कहौं आनँद के घन जानराय हौ जू,
मिलें हूँ तिहारे अनमिले की कुमत है ॥ ६१ ॥
तू ही गति मेरे मति नौछावरि करौं, तेरे
रूप हेरैं चोप-कूप गिरी लेज लाज की ।
सुनि हौ सुजान आन तेरीयै पखेरू-प्रान,
प्रीति-सिंधु परे आस तो हित जहाज की ।
कीजै मनभाई हमैं कहि मैं जताई, तेरे
हाथ ही बड़ाई घनआनँद सु काज की ।
हाहा दीन जानि याकी बिनती लीजियै मानि,
दीजै आनि औषदि बियोग-रोगराज की ॥ ६२ ॥

सवैया

ह्वै निसवादिल आग लगौ मन तेरे सुभाय मिठासहि पागैं ।
आन दै जान कहौं तुव आनन लागि न आन सौं लोचन लागैं ।
चैन मैं सैन करैं मन आरति भावते भाग जौ तो मिलि जागैं ।
रंग रचे सुठि संग सचैं घनआनँद आंगन क्यौं सुख त्यागैं ॥६३॥

कवित्त

मन सौं चिन्हारिहि बिसारि पल टारैं नाहिं,
इक टक जोहिबे को जक लागियै रहै ।
देखि देखि सुख सौंध हँसि परैं रोम रोम,
चौंकि चकि चाहनि मैं चिता पागियै रहै ।
तोरि लाज-साकरैं सिरैं हूँ सोभा-साकरैं,
सु क्यौं हूँ न निकास आस-पास खागियै रहै ।

६४-परे आली । सुजान–मुकुंद

पतझार = पतझड़; प्रतिष्ठा की हानि । [६१] नीठि = कठिनता से । दीठ = (दृष्ट) प्रत्यक्ष, सत्य । छल = भ्रांति । अनमिले० = न मिलने का ही धोखा होता है, मिलने में भी पृथक् रहते हैं । [६२] लेज = रस्सी । [६३] निसवादिल = स्वादहीन । सुठि = सुंदर । [६४] साँकरैं = शृंखलाएँ । साँकरैं =

ऐसी कछु बानि चाह-चावरे दृगनि परी,
रूप-सुजान लोनाई लागियै रहै ॥ ६४ ॥
पल-दल-संपुट मैं मूँदें मन मोद मानैं,
आस-अभिलाखनि है होत अँगिराई है ।
है सनेह बीच एक अदभुत रूप कैसें,
लसत सु तैसें अंबुरुज अधिकाई है ।
बाहिर तें रूप-मकरंद-पान करै पुनि,
वहै भूलभुलि हेरि को मति हिराई है ।
नयोई रसिक घनआनँद सुजान यह,
किधौं प्यारी तेरे नैन-सैन की निकाई है ॥ ६५ ॥

सवैया

हिम-कमनैं हँसियै उर अनूठियै [illegible] जागति जोति महा ।
अनबोलनि पै बलि कीजियै बोलनि सु बोलनि की कहियै धौं कहा ।
नगिहारनि हेरि न हारनि ढीठि ज्यौं पीठि दियैं मुसुकात तहा ।
घनआनँद प्यारी सुजान है कौन अहा सुनियै यह बात कहा ॥६६॥

कवित्त

घर-बानि ठ्यौंगिबे कौं सुंदर सुजान जू कौ,
लाख लाख बिधि सों मिलन अभिलाखियै ।
याते हिम-रस-भीनी कलि. गलि गाँस भीनी,
बानि भीनि आली भाँति पाँति [illegible] राखियै ।
भाग जागैं जो कहूँ बिलोकैं घनआनँद कौ,
तौ दिन द्वा छाकनि कै लोचन हो सालियै ।

६५—पुनि—पुन (राम)। ६६—नह—हैन (राम)।

संकट में। आस० — आशा का फंदा पड़ा रहता है। [६५] अँगिराई = अँगों का सँकरापन। भूलभुलि = भूल की सी दशा, विस्मरण बात। [६६] अह = उमंग। नगिहारनि = (आप का मुख) न देखना। [६७] गाँस० = छोटी

भूलै सुधि सातौं दसा-बिबस गिरत गातौं,
रीझि बावरे है तब औरै कछू भाखियै ॥ ६७ ॥
सपने कौ संपति लौं भई है सलोनमई,
मीत को मिलन-मोद जानौं न कहाँ गयौ ।
जकौ है थको ह्यौं उड़ताई पाग आगि पौर,
धीर कैसें धरौं मन सो धन कहाँ गयौ ।
हाय हाय अंगन की हीनता कहाँ लौं कहौं,
गए न लगेई संग रंग हू जहाँ गयौ ।
राखे आप ऊपर सुजान घनआनँद पै,
पहँ कै फटत क्यौं न हिये फाटि नाँ गयौ ॥ ६८ ॥
रावरे गुननि बाँधि लियौ हियौ जान प्यारे,
इते पै अचंभो छोरि दीनी जु सुरति है ।
उघरि नचाय आपु चाय मैं रचाय हाथ,
कर्यौ करि बचाय दौरि यौं करि दुरति है ।
तुम हूँ तें न्यारी है तिहारी प्रीति-रीति जानी,
ढीलेहू परे तें गरैं गाँठि सी घुरति है ।
कैसें घनआनँद अनोखनि लगौ [illegible],
लखनि लिलार कौ परेखनि गुरति है ॥ ६९ ॥
पीठि घनआनँद सुजान प्यारी परजंक,
धरै धन अंक तऊ मन रंकगति है ।
भूखन उतारि अंग संगति सम्हारि, नारि,
काँच के बिचार सौं अमोल आभा अति है ।
ठौर ठौर लै लै राखैं औरै और अभिलाखैं,
बचन न भाखें तेई जानैं दसा अति है ।

६९—बचाय—नचाय (प्रताप)। तें गरैं—पै हियैं। लिलार—लिसार (राम)।

फाँस। सुधि० = पाँचों ज्ञानेंद्रियाँ, मन और बुद्धि। [६८] कहाँ = खो गया, कहाँ चला गया। पहँ = पो। [६९] जानी = समझी। लिलार = माथा,

मोह-मद-छाके घूमैं रीझि भीजि रस झूमैं,
गहैं चाहि रहैं चूमैं अहा कहा रति है ॥७०॥
हित कै हँकारौ नौं हुलासनि सहित धावैं,
अनखि निहारौ तौ बिचारौ न कछू कहै।
पालयौ प्यार को निहारौ तुम हौ नीकैं निहारी,
हाहा जनि टारौ याहि हारौ दूसरौ न है।
आनँद के घन हौ सुजान प्रान दियैं कहौं,
मान दै न कीजै मान, दान दीजियै यहै।
देखैं रूप रावरो भयौ है जीव बावरो,
उमंगनि उतावरो ह्वै अंगनि परयौ दहै ॥७१॥

सवैया

सुख-साहनि-चाह-उमाहन को घनआनँद लाग्यौ रहै ई मरै।
मनभावन मीत सुजान-सँजोग बने बिन कैसें वियोग टरै।
कबहूँ जौ दई-गति सौं सपनो सो लखौं तौ मनोरथ-भीर भरै।
मिलि हू न मिलाप मिलै तनकौ उर की गति क्यौं करि ध्यौरि परै ॥७२॥
ऐ मन मेरे कहा गयो तैं तजि दीन चल्यौ जु अयान ह्वै भो सौं।
ल्याई न काहुवै आँखि तरें हौं कहै कबहूँ करि तेरो भरोसो।
मीत सुजान मिल्यौ जु भली भई रावरे मोसौं भरयौ कित रोसो।
सोचत हौं जिय मैं अपने सपने न लहौं घनआनँद दोसो ॥७३॥
आपु अनंग न संग को रंग भरयौ रिस आनि कै अंग पजारत।
रावरे चैन को ऐन हियो है सु रैनदिना यह मैन उजारत।
और अनीति कहाँ लौं कहौं घनआनँद जो कछू आपदा पारत।
कैसें सुहाति सुजान तुम्हैं हित मानि दई कोऊ ऐसैं बिसारत ॥७४॥

७१—बीर भीज। ७६—अहै—करी।

भाग्य। [७०] घन = धन्या, प्रिया। भीजी = भिनी हुई। [७१] आन = शपथ। मान० = प्रेमी का आदर करके उससे रूठिए मत। [७२] भरै = भरती ही। भीर = भीड़, मेला। [७४] आपुन = आँखों की सी बनावट काम में नहीं,

रीझि तिहारी न बूझि परै अहो बूझति हैं कहा रीझत काहैं।
बूझि कै रीझत हौ जु सुजान किधौं बिन बूझ की रीझ सराहैं।
रीझ न बूझी तऊ मन रीझत बूझि न रीझे हू और निबाहैं।
सोचनि जूझत मूझत ज्यौं घनआनँद रीझ औ बूझहि चाहैं ॥७५॥

कवित्त

लहकि लहकि आवै ज्यौं ज्यौं पुरवाई पौन,
दहकि दहकि त्यौं त्यौं तन ताँवरे तचै।
बहकि बहकि जात बदरा बिलोकैं हियो,
गहकि गहकि गहबरनि गरैं मचै।
चहकि चहकि डारैं चपला चखनि चाहैं,
कैसें घनआनँद सुजान बिन ज्यौं बचै।
महकि महकि मारैं पावस-प्रसून-बास,
आसनि उसास दैया कौ लौं रहियै अचै ॥७६॥
ललित उमंग-बेली आलवाल-अंतर तैं,
आनँद के घन सींचौं रोम रोम ह्वै चढ़ी।
आनन-उमाह-चाह छायौ सु उछाह-रंग,
अंग अंग फूलनि दुकूलनि परै कढ़ी।
भोलनि बधाई दौरि दौरि कै छबीले दृग,
दसा सुभ सगुनौती नीकैं इन है पढ़ी।
कंचुकी तरकि मिलै सरकि उरज, भुज
फरकि सुजान चोप-चुहल मढ़ी मढ़ी ॥७७॥

७६—गरैं—हिनै (राम)।

यह अनंग है। ऐन = घर। [७५] बूझ = बुद्धि। मूझत = बेसुध होता है। [७६] ताँवरे = ताप से। गहबरनि = व्याकुलता। चहकि० = उजला देती है। अचै = पीकर। [७७] सगुनौती = अर्थात् मंगलपाठ। [७८] कौंधा = चमक,

सवैया

घनआनँद जीवनमूल सुजान की कौंधनि हूँ न कहूँ दरसैं ।
सु न जानियै धौं कित छाय रहे दृग चातक प्रान तपै तरसैं ।
बिन पावस तौ इन्हैं थ्यावस हो न सु क्यौं करि ये अब सो परसैं ।
बदरा बरसै रितु मैं घिरि कै नितहीं अँखियाँ उघरी बरसैं ॥७८॥

लहौं जान पिया नहिं लाभन प्रान पै वारिबे की अभिलाष भरौं ।
सु कहौं किहि भाँति अनोखियै पीर अधीर ह्वै नैननि नीर भरौं ।
घनआनँद कीजै बिचार कहा मन रंक लौं सोच-सकोच ररौं ।
चित-चोपनि चाह के चौचँद मैं हहराय हिराय कै हारि परौं ॥७९॥

कवित्त

कोऊ मुँह मोरौ जोरौ कोटिक चवाई क्यौं न,
तोरौ भय ओऊ करि भागौं मेरौ को सुनै ।
नेह-रस-हीन राग अंतर मलीन-लोभ,
दोष ही मैं रहैं भई कौन भाँति के गुनै ।
रूप-उजियारे जान प्यारे पर प्रान वारे,
आँखिन के तारे न्यारे कैसैं धौं करौं उनै ।
हरैं सदाँ टेक एक यहै घनआनँद जौ,
निंदक अनेक सीस स्वामिनि परे धुनै ॥८०॥

नीके नैन पैन आप चैन पाय लाज हू को,
सोभा के समाज हेरैं हिय सियरात है ।
प्यारी मेरी सहज लड़ैली अरबीली मूर्ति,
तेरो अंग-अंग लहैं लाडौ लड़कात है ।
रूप-मद-छाके तैं गँवैली गरबीली न्यारि,
सौंहैं नाके कर्यौ उमगनि उमहात है ।

७८—तन—दृग (राम) । ७९—घर—घा । दिवै०—दृष्टि पिय मोहि न नै थ्यौं (राम) ।

ध्वलक । थ्यावस = स्थिरता, धैर्य । [७९] चौचँद = शोर । [८०] चवाई = बदनामी करनेवाले । सीस = माथा । [८१] अरबीली = हठी । लाडौ = प्यार

आनँद के घन सौं न कीजै मान जान प्यारी,
लाल हिये पिये सौं न मानै यौं ही जात है ॥८१॥

सोभा को निकेत नैन भावत निकाम जाहि,
ताके सुख हेत मनिकेत रसकेत है ।
सकल कलनि सिरमौर ठौर और जाकी,
राखैं चख-दौर और थाकैं चित-चेत है ।
राधा-पद-अंकित बिराजै रही मही महा,
श्रीपति-निवास हू तैं दीपति उपेत है ।
मधुर बिनोद जहाँ आनँद-पयोद-भार,
रसिक पपीहा प्रान प्यासनि समेत है ॥८२॥

सवैया

तेरी निकाई निहारि छकैं छबि हू को अनूपम रूप कढ्यौ है ।
इति ह्वै दीठि पै नीठि कटाछनि आय मनोज को चोज पढ्यौ है ॥
आनँद के घन राग सौं पागि सुजान सुहागहिं भाग बढ्यौ है ।
लाड़ तें लाड़िली होति है और पै तो तन लाड़हि लाड़ चढ्यौ है ॥८३॥

छूटे घटा पहुँचा पिये ज्यौं गहि काहूँ कहै जो कलापिन कूकैं ।
सांगी समीर नगीर रहैं भरकैं चपला पल में फिरि ढूकैं ।
एहो सुजान तुम्हैं लगे आज सु पावस ज्यौं नहिं थ्यावस सूकैं ।
ह्वै घनआनँद जीवनमूल धरौं जिय मैं किन चातिक चूकैं ॥८४॥

अंजन स्याम हौ ताकियौ करै निसि प्रान लखे मुख-ज्यौं रंग-चायनि ।
औरी सिंगार सदा घनआनँद चाहैं सनाह ज्यौं आपने दायनि ।

८२ नैन-जोर (...) ; दौर-ठौर (...) । ८३—सुहागहिं—सुहागनि (...) । ८४—ज्यौं—पै (राम) ।

सी बहक जाती है । गँवैली = गाँव की रहनेवाली । [८२] ताके० = रसमय कामदेव उसी के सुख के लिए है । राखैं० = नेत्र उसे ही देखते हैं । उपेत=युक्त । [८३] चोज = उमंग । [८४] कलापी = मयूर । चहकैं = उछलती हैं । ढूकैं =

तू अलबेली सरूप की रासि सुजान बिराजति सोहै सुभायनि ।
ऐ परि नाच कै साँच छकौं जु लटू भयौ लाग्यौ फिरै सुख पायनि ॥८५॥

मो दृग-तारनि जौ पै तिहारो निहारिबोई है महासुख-कारी ।
तौ पै कहा हो हठीले सुजान पै चाहौं परे तुम नेकौं न चाही ।
रावरी बानि अनोखियै जानि कै प्रान रचे तिहि रंग सराही ।
कै बिपरीति मिलौ घनआनँद या बिधि आपनी रीति निबाही ॥८६॥

कबित्त

ऊतर सँदेसो मिलैं नेकु मानि लीजत हौ,
तेहू को अँदेसो अब रह्यौ दुर पूरि कै ।
बढ़ी है उदेग-आगि जीजै कौन आस लागि,
रोम रोम पीर पागि डारो हियो चूरि कै ।
निपट कठोर कियौ हियो मोह मोहि दियौ,
जान प्यारे मेरे जाय मारौ किन दूरि कै ।
तरफौं बिसूरि कै बिथा न टरै सूरि कै,
उहाँ रहौ सरसै घनआनँद यौं भूरि कै ॥८७॥

सवैया

मिहँदी लगि पायनि रंग अहै मुठि सौंधि सु अंगनि संग बसै ।
हकनाइयै कोक पढ़ै, मुसकाइ सिखावति हू रसिकाई रसै ।
घनआनँद रूप-अनूप-भरी हित-फंदनि मैं गुन-ग्राम गसै ।
सब भाँति सुजान समान न आन कहा कहौं आपु तें आपु लसै ॥८८॥

८८—लगि—रँग । हकनाइयै—हकनाई पै । गसै—बसै (प्र०) ।

बेल्का, लुक । श्यावस = धैर्य । [८५] लौर = चितवन । ऐ परि = ऐ परि = फिर भी । [८६] चाहौं = चाह में पड़े हैं । [८७] नेरे = निकट (अनुकूल) होकर फिर दूर (प्रतिकूल) होकर । [८८] मुठि = सुंदर, उत्कृष्ट । सौंधो = सुगंध, इत्र आदि । कोक = कोकशास्त्र के निर्माता । मुसकाई = चतुरता ।

कबित्त

कौन की सुजस-जोन्ह अमल अपूरब को,
जग मैं उदोत देखियत दिनरैन है ।
जाकी जोति जागैं रस पागैं ही चकोर-नैन,
बुध कबि मित्र को पोखै मन चैन है ।
नेह-निधि बाढ़यौ घनआनँद गुननि सुनि,
अचिरज-ऐन जो निहारैं मन मैं न है ।
बिरह बिदारि औ निदारि दुख-तम कंद,
सींचिगो स्रवन कोहि सुधा-सने बैन है ॥८९॥

मोहिं हीनि-कारन हौ दुख-तम-दारन हौ,
प्रीति-पन-पारन हो कहौं धौं कहाँ जसै ।
लोचननि तारे अचिरज-भारे जान प्यारे,
तुम हो सँ पियै या तिहारे रूप के रसै ।
बात अटपटी बढ़ी चाह-चटपटी रहै,
भटभटी लागै जौ पै बीच अहनी बसै ।
लै लै प्रान वारौं इक टक धारौं यों बिचारौं,
हाहा घनआनँद निहारौं दीन को दसै ॥९०॥

जैसो घट सोधौं पै न पाऊँ कहूँ आदि सो धौं,
जो धौं जीव जारै अटपटी गति दाह की ।
धूम कौ न धरै, ताप सारो परै ज्यों ज्यों जरै,
ढरै नैन नीर नीर ! हरै मति आह की ।
जतन बुझै हैं सब जाकी झर आगैं, अब
कबहूँ न दबै भरी भभक उमाह की ।

८९—मन—महूँ (प्र०) ।

[८९] अपूरब = पूर्व की दिशा; चाँदनी । बुध = ग्रह; पंडित । कबि = शुक्र; काव्यकर्ता । मित्र = सूर्य; सखा । निधि = समुद्र । [९०] भटभटी = देखते हुए भी न दिखाई पड़ना । [९१] घट = शरीर । बीर = हे सखी ।

जब तें निहारे घनआनँद सुजान प्यारे,
तब तें अनोखी आगि लागि रही चाह की ॥ ६१ ॥

अवधि सिराएँ ताप-तपे हैं कलमलाय,
आपु चाय-चावरे उमाहि उफनात हैं ।
दरस-तुखारे चैन-चाँखत बिचारे हारे,
आँखिन के मारे आय नहीं अकुलात हैं ।
इते पै अमोही घनआनँद कसाई, दर
सोचनि समाय कै थहरि ठहरात हैं ।
जानि अनखौंहीं बानि लाड़िले सुजान की सु,
करि हूँ पयान प्रान फेरि फिरि जात हैं ॥ ६२ ॥

साहस सथान आन नाकस तुम्हैं सुजान,
नय ही सबनि तजौं अब हौं कहा तजौं ।
रावरेई राखे प्रान रहैं, पै रहै निदान,
यौं ही इन काज लाज बिन हूँ खरी लजौं ।
ऐसो कै बिसारी गौं निहारी न बिचारी परै,
आनँद के घन हौ अमोही जौ डरी भजौं ।
कौन बिधि कीजै कैसैं जीजै सो बताय दीजै,
हाहा हौं बिसासी दूरि भाजत तऊ भजौं ॥ ६३ ॥

घेरयौ घट आय अंतराय-पटनि-पट पै,
ता मधि उजारे प्यारे फानुस के दीप हौ ।
लोचन-पतंग संग तजै न तऊ सुजान,
प्रान-हंस राखिबे कौं भरे ध्यान-सीप हौ ।

६२—दर—डर । ६४—भरे-भरे (राम)।

मति० = 'आह' करने की चेतना । झार = ज्वाला । उमाह = उमंग । [६२] सिराएँ = बीत जाने पर ; ठंढा पड़ने पर । अनखौंहीं = रूठनेवाली । [६३] सथान = चतुरता । निदान = अंत में । गौं = घात । बिसासी = विश्वासघाती । भाजत = भागते हो । भजौं = भजता हूँ । [६४] घट = शरीर ; फानूस

ऐसे कहौ कैसैं घनआनँद बताऊँ दूरि,
मन-सिंघासन बैठे सुरत-महीप हौ ।
दीठि-आगें डोलौ जो न बोलौ कहा बस लागै,
मोहि तौ बियोग हू मैं दीसत समीप हौ ॥ ६४ ॥

सवैया

मीठे महा गरुवे गुनरासि हौ हूजत क्यौं करुवे गहि रोसनि ।
आकुल ज्यौं तकियै लखियै कहि हाहा हहा न रुखियै रोसनि ।
ताहीं सौं अनखानि कहा घनआनँद जो भिजई है भरोसनि ।
वारियैं कोरिक प्रान सुजान हौ पै परि यौं मरिसैगो मसोसनि ॥ ६५ ॥

हित-भूलनि पै चित भूलि रहै कहा भूलि हू तो कै न जानत हौ ।
उहि भूलनि संग लगी सुधि है जु सुजान सदा उर आनत हौ ।
घनआनँद सोऊ न भूलन क्यौं जु पै भूलन ही कौं ठिक ठानत हौ ।
तब भूलि कै लैहौ कछू सुधि तौ चित दै इतनौ किन मानत हौ ॥ ६६ ॥

कवित्त

रूप की उमिल आछे आनन पै नई नई,
तैसी तरुनई तेह-ओपी भरनई है ।
उपटि अनंग-रंग की तरंग अंग अंग,
भूषन-बसन भरि आभा फैलि गई है ।
महारस-भौंर परैं लोचन अधीर तरैं,
ओछी ओक धरैं प्यास-पीर-सरसई है ।

६७—उपटि—उलटि । ओछी—आछी (राम)।

की डोरी । अंतराय = विघ्न । पटनि० = वस्त्र पर वस्त्र का के चपेटे वस्त्र । फानुस = फानूस । पतंग = फतिंगा । सुरत० = स्मृति के शासक । [६५] मीठे = मधुर ; प्रिय । करुवे = कड़वे ; विमुख । त्यौं = ओर । भिजई = सरस की । पै परि = फिर भी । [६६] भूलि रहै = मगन हो रहे हैं । सुधि० = ध्यान मेरे भूलने में अपनी चेतना लगाए हुए हैं, अतः मेरी सुध देना चाहने वाले के मन पर चढ़ी रहती है । सोऊ० = यदि भूलने का ही निश्चय कर लिया है तो मेरे

कैसें घनआनँद सुजान प्यारी छबि कहौं,
दीठि तौ चकित औ थकित मति भई है ॥ ९७ ॥
नीकी नासापुट ही की रचनि अचंभे-भरी
भूलि कै रुचनि मौंन क्यों हूँ मन तें मुरै ।
रूप-लाडु जोबन-सकर चोप-चटक सौं,
अनखि अनोखी नाभ गावै लैं मिहीं सुरै ।
सहज हँसौंहीं छबि फबति रँगीले मुख,
दसननि जोतिजाल मोतीमाल सौं ढरै ।
सरस सुजान घनआनँद भिजावै प्रान,
सरसौंही सोभा जग आनि मान पै मुरै ॥ ९८ ॥
अलस भर्यौ है लगि तुम्हें और ढौरन तें,
सुलग्यौ करत ऐसी गति लागी मो हियें ।
क्यों हूँ न परत गह्यौ रह्यौ गहि एक टेक,
आनँद के घन आप अधिक अमोहियें ।
खरक दुहेली हौं असूझ रूप रावरे की,
दीठि पाय काँटौ कढ़ै कौन बिधि टोहियें ।
जब तें सुजान प्रानप्यारे पुतरीनि तारे,
आँखिन बसे हौ तब सूनो जग जोहियें ॥ ९९ ॥

सवैया

दृग छाकत हैं छबि ताकत हीं मृगनैनी जबै मधुपान छकै ।
घनआनँद भीजि हँसै सु लसै झुकि झूमति घूमति औंकि चकै ।

९८—जोबन–जीवन (रास)। ९९—लोग–लो [illegible] (प्र०)।

भूलने को ही क्यों नहीं भूल जाते। भूलि कै = भूले भटके। [९७] उमगिन = उमड़ाव। नेह = नागरपन। उपटि = उभर कर। आंखी = छोटी। चोक = चखकी। [९८] न मुरै = हटता नहीं। मिहीं० = मंद मधुर स्वर से। ढरै = ढल आता है। मुरै = मुद्रा के साथ मुड़ता है। [९९] सुलग्यौ० = सुलगता (जलता) रहता है; ऐसी आँच लगती है। खरक = खटक। दुहेली = दुःखद। दीठि० =

पलें खोलि ढकै लगि जात जकै न सम्हारि सकै ललकै उर धकै ।
अलबेली सुजान के कौतुक पै अति रीझि इकौंसी है लाज थकै ॥ १०० ॥

कवित्त

जब तें निहारे इन आँखिन सुजान प्यारे,
तब तें गही है उर आन देखिबे की आन ।
रस-भीजे बैननि सुभाय कै रचे हैं तहाँ,
मधु-मकरंद-सुधा नादौ न सुनत कान ।
प्रानप्यारी ज्यारी घनआनँद गुननि कथा,
रसना रसीली निसिबासर करत गान ।
अंग अंग मेरे उन ही के संग रंग रँगे,
मन-सिंघासन पै बिराजै तिन ही को ध्यान ॥ १०१ ॥

सवैया

पानिप-मोती मिलाय गुही गुन-पाट गुही सु जु ही अभिलाखी ।
नेह के सुभाय के रंग भरी हित-जोति खरी न परै कछु भाखी ।
चाह लै बाँधी है प्रीति की गाँठि सु है घनआनँद जीवन साखी ।
नैनन पानि बिराजति जान जू रावरे रूप अनूप की राखी ॥ १०२ ॥
सोभा-सुमेर की संधि-तटी किधौं भान-मवास गढ़ाभ की घाटी ।
कै रसराज-नवाब को मारग बेनी बिहार सौं यौं दृग दाटी ।

१००–मधु–सुधि (काँ०)। १०१–इन–ईन (प्र०)। १०२–जीवन–जोवन (काँ०)।

दृष्टि रहते भी काँटा कैसे टटोल सकूँ, क्योंकि आप के रूप की खटक असूझ जो है। [१००] मधु = शराब। भीजि = मस्त होकर पढ़ने पर। ललकै = लहरों में उमंगित होती है। इकौंसी = अकेली। [१०१] आन = अन्य। आन = शपथ। ज्यारी = जिलानेवाली। [१०२] पानिप = शोभा। गुन = गुण; डोर। पाट = रेशम। जी = स्मृति। चाह = इच्छा। नैननि० = नेत्रों के हाथ में। राखी = रक्षा का

काम-कलाधर ओपि दई मनौ प्रीतम-प्यार-पढ़ावन-पाटी ।
जान की पीठि लसैं घनआनँद आनन आन तें होति उचाटी ॥१०३॥

ढिग बैठेहू पैठि रहै उर मैं धरकै सरकै दुख दोहतु है ।
दृग-आगे तें बैरी कहूँ टरै न जग-जोहनि-अंतर जोहतु है ।
घनआनँद मीत सुजान मिलें बसि बीच तऊ मति मोहतु है ।
यह कैसो सँजोग न बूझि परै जु बियोग न क्यौं हूँ बिछोहतु है ॥१०४॥

कबित्त

गाहैं एक टेक टारि बौने हैं बिबेक सब,
कौन प्यास-पीर-पूरे नीरहिं रितौत हैं ।
कैसें कही जाय हेलो इनकी दुहेली दसा,
जैसें ये बियोगी निसिबासर बितौत हैं ।
कहिबे कौं मेरे पै अनेरे घेरे जाहिं नाहिं,
आँखि हा अभोही मोहि नेकौ न हितौत हैं ।
जब तें निहारे घनआनँद सुजान प्यारे,
तब तें अनोखे नैन काहू न चितौत हैं ॥१०५॥

तैं मुँह लगाई तातें मोहिं मौन ही की कथा,
रसना के उर एकरस रही बसि है ।

१०३–सचितटी–सिखुटी। फिरैं॰–सोभित मान-मयास की (राम)। हटी–हाटी। ओपि–कोपि (कोक॰)। १०४–धरकै॰–घर कै दुख को सुख। जग॰–जगि। मति–मन (राम)। १०५–नैन॰–दृग आदि।

कोश। [१०३] सुमेरु = पहाड़; मेरुदंड। संचितटी = संचितपक्ष। मयास = पहाड़ी किला। गड़ास = गड़न। रसराज = शृंगार; जलराशि। बिहार॰–हिलने से। राटी = प्रतीत होती है। ओपि॰ = घोटकर चमकाई। पाटी = पट्टी, पटिया। आन = अन्य। उचाटी = उच्चाटन। [१०४] ढिग = पास। जोहनि॰ = देखने के समय बीच में से झाँकता रहता है। [१०५] रितौत = खाली करते हैं, (आँसू) टपकाते हैं। हेलो = हे सखी। दुहेली = दुखद। अनेरे = विलक्षण, अपरिचित।

तेरी सोई जान सोई जानै जिन जोही छबि,
क्यौं धौं इन नैनन तें नींद गई नसि है ।
छोरि छोरि हारे जे जे भूषन बिदूषन से,
तहाँ तहाँ लगि लोभी मन गयो गसि है ।
आरस-रमीलो घनआनँद सुजान प्यारी,
ढीलो दसा ही सौं मेरो मति लोनी कसि है ॥१०६॥

चलदल-पात की प्रभा को है निपात जातैं,
पातें बाय भावरी उसास काँपिबो करै ।
मोरे सिर गुन मैं बिराजै बीचि आभा पेन,
नैन हेरैं हेरनि हिये मैं भूख लै भरै ।
नेको सनमुख भएँ दीजै गथ तन पीठि,
नीठि हाथ लागै मन पायन कहूँ परै ।
ताकें सौं उदर घनआनँद सुजान प्यारी,
बोली उपमानि को गरूर औरै ज्यौं गरै ॥१०७॥

बेध्यौ है बिसासी मोह गाँसी नेकु हाँसी ही मैं,
घूमि घूमि घनो मेरो मरम महा पिराय ।
हित न सलाय क्यौं हूँ धाय हाय कहा करौं,
जरौं बिषब्याल पै न काल कैसें हूँ निराय ।
जीवन की मूरि जाहि मान्यौ छिन भूरि करो,
ग्यारी बिपरीति दई गई हेरि ज्यौं हिराय ।
हे री घनआनँद सुजान बैरी पै है परसौ,
है री अब ऊतर यौं धीर हू चल्यौ सिराय ॥१०८॥

१०७–थोरि–थिर (राम)। १०८–हित–होत।

* हितौत = हित नहीं करते, अनुकूल नहीं रहते। [१०६] सोई = सोई हुई। सोई = वही। गसि गयो = चिपट गया। [१०७] चलदल॰ = पीपल का पत्ता, जिसकी उपमा पेट से दी जाती है। निपात = पतन। बाय = वायु। बीचि = लहर; चंचलता। पेन = भरपूर। पीठि देना = विमुख होना। नीठि = कठिनाई से। सौं = सेर। [१०८] मरम = मर्मस्थल। न निराय =

सवैया

जिन ही बरुनीन सौं बेध्यौ हियौ तिन ही दृग-हाथ सिखावत हौ ।
विष-ओए कटाछिन ही हँसि दै जु सुजान सुधाहिं पिवावत हौ ।
अनखौंहें रहौ जु अनोखे अजौं रस मैं अब रोग दिवावत हौ ।
घनआनँद चूकौ न दाय कहूँ फिरि आगन चाव जिवावत हौ ॥१०९॥

उर आवत हैं अपने कर हैं यह बैनी बिसाल सौं नाके कसौं ।
अति दीन ह्वै नीचियै दीठि किये अनखौंहि सुभाय के पास बसौं ।
घनआनँद यौं बहु भाँतिनि ह्वाँ सुखदान सुजान-समीप बसौं ।
हित-चायनि च्वै चित चाहत नैं नित पायनि ऊपर सीस घसौं ॥११०॥

सौंच के सान-धरे सुर-बान पैं कूदैं बिना ही कमान सौं जोटैं ।
दीसैं जहाँ के तहाँ सु चलैं अति चूकति है मति या अख-ओटैं ।
घाय को चाव भरैं घनआनँद चाइनि लै उर आइनि ओटैं ।
प्रान सुजान के गान-बिंधे घट लोटैं परे लगि तान की चोटैं ॥१११॥

रावरी रूप की रीति नई यह जोहन रावरे लै नहिं गोहन ।
जान न देत कहूँ कबहूँ तिन संग है हौ करि गोंहि को दोहन ।
सूझ सबै जु हरै घनआनँद बूझि परै न महा मति-मोहन ।
देखौ कहा जौ न दीसौ इतै पर हाहा सुजान तिहारियै सौंहन ॥११२॥

११०—बिसाल—बिलास । कसौं—गसौं (राम) । नै—मैं (काफ०) ।
११२—रावरी रावरे (राम) । मति—मन (काफ०) ।

निकट नहीं आता । पैंहे०=पीछे पड़ा । धिराय=धीरे धीरे, धैर्यपूर्वक । [१०९] जिन०=जिन्हीं नेत्रों के हाथ से मेरा कष्ट हृदय सिखाते हैं, उन्हीं नेत्रों को देखकर चित्त प्रसन्न होता है । विष०=विषयुक्त । अजौं=अब भी । [११०] नै=झुककर । [१११] सुर०=स्वररूपी बाण । जोट=प्रति-पक्षी पर । चाह=उत्कंठा । [११२] गोहन=साथ । दीठि०=दृष्टि को

कवित्त

मोहिं दुख-दोष दोखैं तोहि तोखैं पोखैं सुख,
चिंता मोहिं चूरि तोहिं राखै निधरक है ।
स्वाद कैं जगावैं मोहिं बिहँसावैं रुवावैं तोहि,
तेरैं भूल भरैं मोहिं सालै ज्यौं करक है ।
तोहि चैन-चाँदनी मैं सरसै हरष-सुधा,
मोहिं जारैं आरैं है बिषाद को अरक है ।
कहूँ घनआनँद घमँडि उघरत कहूँ,
नेह की बिषमता सुजान अतरक है ॥११३॥

सवैया

जोबन-रूप-अनूप-सरीर सौं अंगहि अंग लसै गुन-ऐंठी ।
चातुरी-चोख मनोज के चोजनि घूँघरियारियै उठ अमैंठी ।
सूझै न चाहै कहूँ घनआनंद सोहै सुजान गुमान-गरैंठी ।
पैठत प्रान रुखौ अनखौंहौं सु नाक चढ़ाएई डोलत ऐंठी ॥११४॥
गोरे हँडा पहुँचानि बिलोकत रीझि रँग्यौ लपटाय गयौ है ।
पानिनि की पहुँचीनि लखैं पुनि आभा-तरंगनि संग रयौ है ।
लालमनीनि हिबैलैं बनी छवि-रूप-मनी सु पलोन छयौ है ।
चोरु चुरीनि पितैं घनआनँद चित्त सुजान के पानि भयौ है ॥११५॥

११३—दोखै—दोषै । तोहि०—तोसि सुख तोहि मोहि । मोहिं०—चिंता चिता ।
चारैं—मारैं (राम) । ११५—पुनि—हुन (राम) । रयौ—छयौ (काफ०) ।

दुःख देता है । सौंहन=शपथें । [११३] रुवाय=रुलाकर । करक=कसक, टीस । अरक=अर्क, सूर्य । अतरक=अतर्क्य । [११४] गुन=गुण; डोर । चोख=फुरती । ऊठ=उठान । अमैंठी=अमेठी हुई । गरैंठी=ऐंठी । ऐंठी=(प्राकृत ऐंठा) चंचल । [११५] गोरे=गौर । हँडा=बाहु । पहुँचा=कलाई । पहुँची=एक गहना । रयौ=लीन हो गया । हिबैलैं=पचेली ।

कबित्त

प्रेम को पयोनिधि अपार हेरि कै बिचार,
बापुरो हहरि वार ही तैं फिरि आयौ है ।
ताकौ कोऊ तरल तरंग-संग छूट्यौ कन,
पूरि लोकलोकनि उमंडि उफनायौ है ।
सोई घनआनँद सुजान लागि हेत होत,
ऐसैं मथि मन पै सरूप ठहरायौ है ।
ताहि एकरस ह्वै बिबस अवगाहैं दोऊ,
नेही हरि-राधा जिन्हैं हेरैं सरसायौ है ॥११६॥

लालसा ललित मुख-सुखमा निहारिबे की,
बरनी परै न ज्यौं भरी है नैन हाय कै ।
ठौर के सँकोच दीठि हू कौं छलि सोच नाइयौ,
बिना तुम्हैं कहौ और कहाँ रहै जाय कै ।
मानिक-निकाई नोंकें हेरियै सुजान हौ जू,
कीजियै कहा धौं सोच दीजियै बताय कै ।
एक ठाँवँ दुहुनि बसैंये सरसैंये सुख,
हाहा घनआनँद सुरस बरसाय कै ॥११७॥

सोभा-लोभ लागि अंग-रंग-संग प्रीति पागि,
जागि जागि नेकौ न निमेष टेक तैं टरी ।
बोलनि चितौनि चाल डोलनि कपोलनि सौं,
चाहि चाहि रंक ज्यौं सु संपति हियें धरी ।
ऐसैं ही मैं सहज बिरह कित हू तैं आय,
बावरे-सुभाय-बस कुटिलाई है करी ।

११६—पयोदधि—महोदधि । उमंडि—उमगि । हेरैं—देखें । ११७—सोच—सोइब । सरसैयै—सुख—दुख फैलें (राम) । ११८—कपोलनि—कलोलनि ।

[११६] वार=इस ओर का तट किनारा । सरूप=प्रेम का रूप । [११७] सुरस=प्रेम ; आनंद, प्रेम । [११८] प्रानदान = जीवनदायिनी ।

अब घनआनँद सुजान प्रानदान भेटौं,
बिधि बुधिआगर पै चाहत बढ़ै घरी ॥११८॥
आनन के प्रान प्यारे सुंदर सुजान सुनौ,
कान धरि बात, नेकु मेरी ओर चाहियै ।
रूप दरसाय चोप चाय सरसाय हाय,
ल्याए करि हाँसी मैं बिसास हरि ता हियै ।
भीजे घनआनँद बिराजौ निधरक तुम,
याहि चिंता-चिता-बीच ऐसैं अब दाहियै ।
सब बिधि लायक नवल नेही नायक हौ,
कहाँ लौं रसीले गुनगननि सराहियै ॥११९॥

सवैया

देखि सुजान छके घनआनँद डीठि भए सु न नीठि सकोचत ।
चाह के दाह भरे कित तैं नित पीर अधीर ह्वै नीरद मोचत ।
लोभी तऊ अकुलाय कै प्यासनि रूप के पानिप-लेस कौं लोचत ।
नैन असोचनि की गति हेरि कै बीतत यौं निसिबासर सोचत ॥१२०॥
तेरे बिना ही बनाव कौ बानिक जोतै सची-रति-रूप-अलापन ।
को कबि सो छबि कौं बरनै रचि राखनि अंग सिंगार-कलापन ।
कान ह्वै तान कौ रूप दिखावति जान जबै कछु लागि अलापन ।
नाचहिं भाव के भेद बतावत, है घनआनँद भौंह-चलापन ॥१२१॥

कबित्त

मोहिं मेरे जिय की जनायबौ अजानता है,
जानराय जानत हौ सकल-कला-प्रवीन ।
औगुन बिचारौ जौ पै तौ गुन कहा निहारौ,
आप ज्यौं निहारौ पन पारौ जू सँभारौ दीन ।

११६—सहज—सहद । १२०—छके—छए (रामा) ।

[११९] भीजे=सरस, सुखी । [१२०] नीठ=कठिनाई से भी । नीरद=आँसुओं की अश्रुवृष्टि । पानिप=पानी ; शोभा । [१२१] बनाव=सजावट । सची=इंद्राणी । अलापन=उन्मत्तता ; कलापन=समूह । चलापन=चंचलता ।

जतन कहा बनाऊँ तुम ही तें तुम्हैं पाऊँ,
रावरोई गुन गाऊँ बावरे लौं हितलीन ।
रहौं लागि आस घनआनँद मिलन-प्यास,
अहो रसरासि ज्याय लीजै हरि निज मीन ॥१२२॥

सब बिधि लायक असेष सुखदायक हौ,
तुम ही पै बनै बेसम्हारनि सम्हारिबो ।
निघटत नाहिं मो बड़ाई, उघटत क्यौं हूँ,
रावरी बड़ाई आहि ओतिपन पारिबो ।
अहो घनआनँद सुजान एक टेक ही औं,
चातक बिचारे को है जीवन बिचारिबो ।
यातें निसदिन रस बरस हरस और,
टक अंक लाय सोभा करत निहारिबो ॥१२३॥

नेही-सिरमौर एक तुम ही लौं मेरी दौर,
नाहि और ठौर, काहि साँकरे सम्हारिये ।
दरसन-प्यास दीजै भावतें सुजान, रहै
आसा लागि प्रान आन बोलत लिहारिये ।
गुनमाला फेरौं, निगुनी ह्वै नित हित हेरौं,
बिरह - अधीर ढेरौं पीरहि निवारिये ।
घन तन ताको जो है काचो सा तौ आहि पाको,
आनँद के घन प्रीति-माको न बिगारिये ॥१२४॥

मेरी मति बावरी ह्वै जाय जानराय प्यारे,
रावरे सुभाय के रसीले गुन गाय गाय ।

१२२—बनाऊं—बनाऊँ । गुन—गन । १२३—रस०—सब रस दरनाएँ और (राम)। १२४—हौ—है । पाको—पको (प्रा०) ।

[१२२] अजानता=अज्ञान । जानराय=ज्ञानियों में श्रेष्ठ । रसरासि=आनंद की राशि; समुद्र । [१२३] निघटत० =घटती नहीं । उघटत=कहने से । ओतनि = सीमा । [१२४] साँकरे=संकट में । आन=दुहाई । माको=समूह; जपमाला ।

देखन के चाय प्रान आँखिन मैं झाँकैं आय,
हारौं पछताय पै निगोड़े चलैं धाय धाय ।
बिरह-बिषाद छाय आँसुन को झर लाय,
मारै सुरझाय मैन-तावरेन ताय ताय ।
ऐसें घनआनँद बिहाय न बसाय हाय,
धीरज बिलाय बिललात फिरौं हाय हाय ॥१२५॥

नैनन मैं लागै, बैन-ऐन चैन मों कलोलैं,
गैन-संग डोलैं पै न परस-पसास है ।
हेरति हिराऊँ, एक ठौर हू न रहैं ठावैं,
झुरि मुरझावैं नीर ऐसी पीर को सहै ।
पाय न परति मात ज्ञान पैठि करै घात,
जानराय प्यारे को नवेसो रस-रोस है ।
आपने किये की छाँह बैठियै आस्त्राने जग,
वे तो घनआनँद मों देखन ही दोस है ॥१२६॥

रूप-मतवारी घनआनँद सुजान प्यारी,
घूमरे कटाछनि घूम करैं कौन पै फिरैं ।
नाच की नटक लसै अंगनि मटक-रंग,
लाड़िली लटक-संग लोयन लगौ फिरैं ।
अभिनै-निकाई निरखत ही चिकाई मानि,
गति झूली डोलै सुधि सोधौ न लहौं हिरैं ।

१२५—करौं—फिरौं (राम) । १२६—पैठि—पैठ । हौ—है (राम) । १२७—मत-वारी—मतवारो । प्यारी—प्यारो (प्रा०) । मटक—नटक । अभिनै—अभिनय (का०) ।

झर = झोर । झाकी=क्यारि । [१२५] निगोड़े = बुरे (गाली), पैर से हीन । तावरेन = ताप, ज्वर । न बसाय – बस नहीं चलता । [१२६] ऐन = घर । गैन = गमन । परस० = स्पर्श की निकटता । ठार=हे सखी । पाय०=समझ में नहीं आती । आस्त्रा० = शास्त्रों में लेटकर, पसरकर । [१२७] घूमरे = मस्त । अभिनै = अभिनय, नाट्य । सोधौ = खोज भी । कनाचकें = दुर्बल ।

हाते सरसानि तऊँ पूरे चोप-चाह-पूरे,
पाँसड़े लौं प्रान रीझि ह्वै कनावड़े गिरैं ॥१२७॥

अंग अंग छाई है उदेग-मुरझानि महा,
साँस जैसी आखौ गिरि हू तैं गरुवौ लगै।
सुंदर सुजान प्रान प्यारे के निहारे बिन,
दीठि तौ अदीठि सी उजार घरुवौ लगै।
जोबन-सरूप-गुन सूल से सलत गात,
तूल तिनका लौं ह्वै गुमान हरुवौ लगै।
और जे सवाद घनआनँद बिचारि कौन,
बिरह-बिषम-जुर जीवो करुवौ लगै ॥१२८॥

जे दृग सिराए घनआनँद दरस-रस,
ते अब अमोही दुख-ज्वाल जारियत हैं।
तोसे हित-पोखे नित जेई प्रान राखि साथ,
तेई कै अनाथ यौं अकेले मारियत हैं।
कौन कौन ध्यान को परेखौ उर आनियै हो,
बान प्यारे कैसैं बिधि-अंक टारियत हैं।
चाहतौ लौं तिहारो भाँति द्वार पै बिराजि रही,
हेरि हेरि आँसुन-समूह ढारियत हैं ॥१२९॥

गोकुल-नरेस नंद-बंस को प्रसंस चंद,
सोभा-सुखकंद प्रेम-अमिय-निवास है।
सो नित चकोर-चोप तो हित भरयौ ही रहै,
सुनिहै सुजान कौन माधुरी-बिलास है।

१२८—मुरझानि—उरझानि; बिषम—बिहाद (राम)। १२९—अंक—आंक (प्रयाग, कांक०)।

[१२८] सलत=चुभते हैं। तूल=रुई। हरुवौ=हलका। [१२९] सिराए=शीतल हुए। परेखौ=पछतावा। बिधि०=भाग्य में ब्रह्मा के लिखे अक्षर।

उचित जु होइ ऐसैं मेरे मन आई,
जैसैं बादरी घनआनँद सुरंग-झर आस है।
जगत मैं जोति एक कीरति की होति है पै,
तो तैं राधे कीरति के कुल को प्रकास है ॥१३०॥

सवैया

फल होत दियैं सम कै अधिकै बरनैं कबि कोबिद यौं सब ही।
बिपरीति लखी यह रीति सही, परतीति-गही मति मोह बही।
उत कौं घनआनँद यौं है यहाँ, इत कौ जु सुजान परी सु सही।
दुख दै सुख पावत हौ तुम तौ चित के अरपैं हम चिंत लही ॥१३१॥

नैन कहैं सुनि रे मन! कान दै क्यौं इतनो गुन मेटि दयौ है।
सुंदर प्यारे सुजान को मंदिर पावरे तू हम ही तैं भयौ है।
लोभी तिन्हैं तनकौ न दिखावत ऐसो महामद छाकि गयौ है।
कीजियै जू घनआनँद आय कै पाय परौं यह न्याय नयौ है ॥१३२॥

नाच नचै ह्वै लग्यौ फिरै पायनि चायनि चाहि लड़ीलियै डोलनि।
त्यौं सुर-राँग-सवाद सनैं मन फूलियै लागति बैन की बोलनि।
नेकु हँसैं सु कपोलनि चंदनि चेरो करैं दुति-दंत-अमोलनि।
ऐसी सुजान लखैं घनआनँद नैन परैं रस-मैन-कलोलनि ॥१३३॥

मादिक रूप रसीले सुजान को पान कियैं छिनकौं न छकै को।
भूल कौं सौंपि सबै जु सनैं सुधि काहू को कानि कनौड़न कै को।

१३०—चंद—मंद। सो—जो। सुनिहै—सुनियै। बिलास—बिलास; उचित—उदित। जु होइ—जन्हाई (राम)। बादरी—बारी (कांक०, प्रयाग)। तो तैं०—राधिका तौ (राम)। १३१—यौं—बनी (राम)। १३२—गुन—मन (कांक०)। १३३—मन—मत (प्रयाग)।

[१३०] झर=झड़ी। कीरति कें०=कीर्ति (राधिका की माता का नाम) का वंश प्रकाशित है। [१३१] सम०=बराबर या अधिक। [१३२] तनकौ०=उनहें मन में ही छिपा रक्खा है। [१३३] लड़ीलियै=सुहानेवाली। [१३४] मादिक=मदिरा। न छकै०=कौन मस्त नहीं हो जाता। कानि कै को कनौड़न=

आननि वारि निवारि कै लाजहिं ऐसी बनै बिन काज, सकै को ।
बावरे लोगन सौं घनआनँद रीझनि भीजि कै खीजि बकै को ॥१३४॥
जान प्रबीन के हाथ की बीन है मो चित-राग-भर्यौ निज राजै ।
सो सुर साँच कहूँ भरि छाइल ज्यौं ही बजावै लियें मन बाजै ।
भावती मीड़ मरोर हियें घनआनँद सौगुने रंग सौं गाजै ।
प्यार सौं तार सु एँचि कै तोरत क्यौं, सुघराई लाजन लाजै ॥१३५॥

कबित्त

पीरी परि देह छीनी राजत सनेह-भीनी,
कीनो है अनंग अंग अंग रंग-बोरी सी ।
नैन पिचकारी ज्यौं चल्यौई करैं दिनरैन,
बगराए बारनि फिरति झकझोरी सी ।
कहाँ लौं बखानौं घनआनँद दुहेली दसा,
फागमई भई जान प्यारे वह भोरी सी ।
तिहारे निहारे बिन प्राननि करत होरा,
बिरह-अँगारनि मगरि हिय होरी सी ॥१३६॥
चोप चाह चाँचरि, चुहल चोख चटकोलो,
अटक निवारैं टारैं कुलकानि-काँचि कै ।
बात लौं अनूठी भरैं चेटक चितौनि-मूठी,
घूँघरि चिलक-चौंधि बाँधि कौंध सौं टिकै ।
भीजै घनआनँद सुजान के खिलार रंग,
नैसिक निहारैं जिनकौं निकाई पै बिकै ।

१३५—लाजन-लाजत (राम)। १३६—पीरी-परी (राम)। अंग अंग—मानो अंग (बाबू०)।

मर्यादा का विचार करके कौन बकता है। सकै०=कौन सँभाल सकता है। [१३५] राग=प्रेम; गान। सुघराई=चतुरता की। [१३६] दुहेली=कष्टमयी। होरा=होरा, लपट में भुना अनाज का हरा पौधा। मगरि=जला कर। [१३७] चाँचरि=चर्चरी राग, होली का गान। चेटक=जादूगरी।

रूप-मसलैनी सु नवेली एरी मेरी आँखें,
ताकि झाकि मार दुरिहाईं न कहूँ छिकैं ॥१३७॥
सुंदर सुजान प्रानप्यारे महा कोमल हौ,
दीन के दरद कौं दैया दुखनि कहा दरौ ।
सुजस-सबंक हौ पै लागत कलंक बड़ो,
बापुरे चकोर कौं जौ त्यागिबोई आदरौ ।
मेरो दोष देखौ तौ परेखौ है अलसैं ए जू,
सोन डोलै निधि कैसें बूझियत गादरौ ।
भावक बिचारो घनआनँद पुकार जानैं,
मूँदि क्यौं सकत है बिथरि गएँ बादरौ ॥१३८॥

सवैया

सोए हैं अंगनि अंग समोए सु भोए अनंग के रंग निसंकौं करि ।
केलि-कला-रस-आरस-आसव-पान-छके घनआनँद यौं करि ।
पै मनसा मधि उज्ज्वल पागत लागत अंकनि जागत ज्यौं फरि ।
ऐसैं सुजान बिलास-निधान हौ सोएँ जगे काहि न्योंबिये क्यौं करि ॥१३९॥
कहियै किहिं भाँति मुसा गजनी भनि ताकी कथा रसनाहि दहै ।
अरु जौ हिय ही मधि घूँटि रहौं तौ दुखी जिय क्यौं करि ताहि सहै ।

१३७—चेतक—चेटक। मोच—बाँध (सभा)। १३८—मेरो—मेरे। अलसैं—अलसौ (राम)। डोलै—डोलै (प्रयाग)। १३९—सो०—ऐस निसा। अंगनि—अंगनि (राम)। जगे—जपै (बाबू०)।

घूँघरि=घुंघ। चिलक=चमक दमक। दुरिहाईं=दौड़ी खेलनेवाली। न छिकै=छिकती नहीं। [१३८] डोलै=निमित्त। निधि=समुद्र। गादरौ=शिथिल। मूँदि०=बादलों के हट जाने पर भी वह अपने नेत्र बंद न करेगा, उनके दर्शन के लोभ में खोले रहेगा या हट जानेवाले बादलों को नेत्रों में कब तक बंद किए रह सकता है। [१३९] निसंकौं करि=निश्चित होकर या स्वी करि=काम के रंग से भीगे। सोएँ०=सोने में भी जगे रहते हैं। [१४०]

घनआनँद जान न कान करैं इत के हित की कित कोऊ कहै ।
उत ऊतर-पायँ लगी मिहँदी सु कहा लगि धीरज हाथ रहै ॥१४०॥

कोऊ न देखै न काहू दिखावत आपनो आनन जान अमैंड़े ।
बैठि सभा मधि न्यारे रहैं, पुनि रीझत चेटक लौं दृग-पैंड़े ।
कौन पत्याय कहै घनआनँद हैं सब सूधे सयान सौं हेंड़े ।
रूप अनूपम को पुर दूरि, सु बावरे नैनन के मग बैंड़े ॥१४१॥

नैन किये अति आरति-ऐन सु रैनिदिना चित-चोप बिसेखैं ।
नीके सुधानिधि-रूप लख्यौ रचि आगि चुगै सब त्यागि परेखैं ।
जैसें सुजान लखैं घनआनँद नेह न आन हियैं अवरेखैं ।
ऐसैं उजागर हैं जग मैं परि चंदहि एक चकोरहि देखैं ॥१४२॥

कबित्त

नेही की बिलोकनि बिलोय सार सोधि लेइ,
रूपौ रिझवार जानि फादै गुन दम के ।
चाइ सिर चढ़त बढ़त अति लाड़िलो है,
कैसें गनै बनै जेउब औटपाय तम के ।
खेल अलबेले हियो मूँदैं घनआनँद यौं,
जान प्यारे मतवारे भारे सुगरब के ।
कहिबे कौं कोउ किन देखौ न परेखौ, वे तौ
चाँदनी के चोर मोरपच्छ-अच्छ सब के ॥१४३॥

१४२—ऐसैं—असैं (कवि०)। १४३—जेउब—जम (प्रयाग)।

ऊतर० = उत्तर के पैर में मेहँदी लगी है, उत्तर नहीं देते। [१४१] अमैंड़े = मर्यादा न माननेवाले। चेटक = जादू। बैंड़े = टेढ़े। [१४२] न अवरेखैं = नहीं ले आता। उजागर = प्रकाशपिंड। [१४३] बिलोय = मथकर। चाइ = उत्कंठा। औटपाय = उपद्रव। परेखौ = फल। चाँदनी० = उजाले में चोरी कर लेनेवाले। मोरपच्छ० = सब के नेत्र मोरपंखों की सी आँखें हो जाते हैं, बेकाम।

सवैया

साँवरे छैल की आछी अँगेट पै काम करोरिक वारियै जोहि कै ।
नैननि बेधि रँगीले गुनै गसि माल रचै मन-मानिक पोहि कै ।
फागु के चाय चुए भरि भाय सौं हाय रह्यौ घनआनँद सोहि कै ।
नैसिक हेरिगै मेरियै सौंहैं सु एरी सुजान यौं फेरियै मोहि कै ॥१४४॥

बिन बूझ अबूझ बिरंचि की बेस सनेह न लागनि गैल गई ।
जिन बावरी रोग-बियोग-भरी रचि ये हम कौं हम-जोग दई ।
घनआनँद मीत सुजान लखैं अभिलाषनि लालनि भाँति रई ।
मुख माधुरी-पान कौं आतुर पै अखियाँ दुखियाँ कित भोरी भई ॥१४५॥

आतुर ह्वै रस-आतुर होहु न बात सयान की जान क्यौं चूकै ।
ऐसी अठानिनि ठानत हौ कित, धीर धरौ न, परौ ढिग ढूकै ।
देखि जियौ, न छियौ घनआनँद साँवरे अंग सुजान-बधू कै ।
चोली-चुनावट-चीन्हैं चुभैं चपि होत उजागर दाग ब्रजू के ॥१४६॥

कबित्त

गाँसनि गसीले सुरसीले गरुवाई भरे,
जकरि पकरि और औरनि तें छोरो हौं ।
मोहन महा दरारे, सोहन मिठास भारे,
जोहन परनि पैठि बैठि उर भोरी हौं ।

१४४—अँगेट—अँगेठ (कवि०, प्रयाग)। फागु—दाय। सु एरी—कहारे। १४५—रचि०—रचे सपनेहूँ (राम)। रई—दई। कित—कति (प्रयाग)। ढिग—छिन (राम)। दाग—पंच (कवि०, प्रयाग); होत (कवित्त)।

[१४४] अँगेट = अंगदीप्ति। गुनै० = गुणरूपी डोर से गूँथ करके। नैसिक = थोड़ा। सौंहैं = सामने। [१४५] बेस = प्रिय का वेश रूप। तम० = अंधकारमय। रई = युक्त हुई। [१४६] अठान = अकरणीय। परौ० = घात मत लगाओ। न छियौ = छुओ मत। ब्रजू = एक औजार जिससे बेलबूटे बनाते हैं या चुनावट डालते हैं। उसके कोमल शरीर पर चोली में बने ब्रजू

नेहनिधि लाड़िले नवेली रीति रावरी है,
तोर आएँ बिरह-गहर लै भकोरी हौं।
तरिबो सुन्यौ हो गुन गहैं घनआनँद पै,
जान प्यारे गुननि तिहारे गहैं बोरी हौं ॥१४७॥

सवैया

बात अनोखी कहा कहियै सुनि पैठे मरै न करै कछु कीबो।
देखत देखत सूझि परै नहिं बूझत बूझत बौरई लीबो।
एहो सुजान दुहेली दसा दुख हाथ लगे हू न छीजत छीबो।
है घनआनंद सोच महा मरिबो अनमीच बिना जिय जीबो ॥१४८॥

कवित्त

तेरी अनमाननि हौ मेरे मन मानि रही,
लोचन निहारैं हेरि सौंहैं न निहारिबो।
कोरि कोरि आदर को करत निरादर है,
सुधा तैं मधुर महा रुखि झिझकारिबो।
जीवन को ब्यारी घनआनँद सुजान प्यारी,
जीव जीति-लाहौ लहै तेरे हठि हारिबो।
रूखी रूखी बातनि है सरसै सनेह सुधि,
हिये तैं टरै न ये अमाति कर टारिबो ॥१४९॥

१४७—सु रसांल—आगहर (राम)। १४८—बात—बाट। लीबे—लीज (राम) छीबो—छीमो (काशी)।

के दाग भी उभड़ आते हैं। [१४७] तरिबो=तरकर हृदय में घँसकर। गहर=गहराई। [१४८] बौरई=पागलपन। दुख॰=छूने में दुःख मिलता है पर छूना कम नहीं होता, कष्ट पाकर भी मन उधर से नहीं मुड़ता। अनमीच=बिना मृत्यु के। [१४९] अन॰=न मानना। जीति॰=जीत का लाभ। सुधि=उत्कंठा या स्मरण। झिझ॰=झुँझलाकर।

सवैया

रूप छक्यौ तुम्हैं देखि सुजान थक्यौ तजि लाज-समाजन को दम।
मोहि लियौ हँसि जोहि छबीले कहौं अति प्यार-पगी बतियाँ जब।
सोच-बिचार के साज टरे घनआनँद रीझनि भीजि रह्यौ तब।
आस-भर्यौ नहि द्वार पर्यौ जिय या घर आय कै जाय कहाँ अब ॥१५०॥

कवित्त

आरति के ऐन, औसरैन राजैं नेही नैन,
चढ़े चोप लागैं भाजैं दीठि दीठि ज्यौं अनूक।
पूरे पन-राचे लाकि पाकि चूर मत्त काचे,
नाचे साँच आँच के टरैं न टेक तैं कहूक।
रूप-उजियारे जान प्यारे हूँ निहारैं जिन,
भीजे घनआनँद कनौड़-पुंज लाय ऊक।
नेमी अंग हौंस भएँ चाहैं जिन रीस करैं,
ऐसैं अरबरैं ज्यौं चकोर होन कौं उलूक ॥१५१॥

ललित लसौंहीं सु हसौंहीं नेकु सौंही भएँ,
त्यौं ही रहि गईं यौं हौ डाकसि न डीठि है।
रूठ पटरानी प्रान पैठिबे कौं फिरि बैठे,
देखौ बिन बोलनि मैं रस की बसीठि है।
सुख सनमान देति सुरि दीलैं कौनैं मान,
जान प्यारी बिरचैं हैं वाचनि-मजीठि है।
मन दै मनाऊँ सो न पाऊँ घनआनँद पै,
मोहि यौं बिमन करै एरी तेरी पीठि है ॥१५२॥

१५०—जोहि—हेरि (राम)। या—वा (काशि॰)। १५१—टेक—टक (राम)। लाभ—लाख (प्रयाग) १५२—बोलनि—बोलिबे (प्रकाश)।

[१५०] दम=दबाव। [१५१] दीठि ज्यौं=प्रिय की ओर। मत्त॰=कच्चे मत (सिद्धांत)। नाचे=नचाए। कनौड़=संकोच। ऊक=लूक। रीस=बराबरी। अरबरैं=हड़बड़ी मचाते हैं। [१५२] बसीठि=दूतत्व। बिरचैं॰=विमुख होने

सवैया

मृदु मूरति लाड़-दुलार-भरी अँग अंग बिराजति रंगमई ।
घनआनँद जोबन-मानो दसा छबि सौकन ही मति छाक छई ।
बसि प्रान सलोनी सुजान सदा चित पै हित-हेरनि-छाप दई ।
यह रूप की रासि लखी तब तें सखी आँखिन कौं हठतार भई ॥१५३॥

कवित्त

माधुरी गहर उठै लहर-लुनाई जहाँ,
कहाँ लौं अनूप रूप-पानिप निहारियै ।
आरसी लौं भ्रम दीजै मूक कौं असूक कीजै,
आछे अंग हेरि फेरि आगे न निहारियै ।
मोहनी की खानि है सुभाय ही हँसनि जाकी,
लाड़िली लसनि मानौ मानिनि तें प्यारियै ।
रीझौं रीझि भीजैं घनआनँद सुजान महा,
वारियै कहा सकोच मोचन ही हारियै ॥१५४॥
रसहि बिबाय प्यासे प्राननि जिवाय राखै,
लाज सौं लपेटी लसै उघरि हितौन की ।
निपट नवेली नेह-मेली लाड़-अलबेली,
मोह-हरहरी भरी बिरह-बितौन की ।
लोने लोने कोने लूबे छबीली अँखियानि के सु,
रंचकौ न चूकै घात औसर-चितौन की ।
प्यारी घनआनँद बरसि मेरो जान तेरी,
हियो सुख सींचै गति तिरछी चितौन की ॥१५५॥

१५४—आगे न—आपनो (कॉके०) ।

पर भी मजीठ का सा न मिटनेवाला रंग (प्रेम) रंग रहे । [१५३] छाक = नशा । हठतार = हठपूर्वक देखने का तार, सिलसिला, टकटकी । [१५४] गहर = गहराई, गंभीरता । पानिप=पानी; शोभा । [१५५] उघरि० = प्रेम का उद्घाटन । भरी० = विरह दूर करने में लगी हुई । लोने = सुंदर । औसर० = अवसर को

सोभा-सरसीली सुभ सील सौं लसीली,
सुरसीली हँसि हेरैं हरै बिरह-तपति है ।
अति ही सुजान प्रान-पुंज-दान बोलनि मैं,
देखौ चैन-पूरी प्रीति-नीति कौ थपति है ।
जाके गुन बँधैं मन छूटैं और औरनि तें,
सहज मिठास लीजै स्वादनि-सँपति है ।
पानिप अपार घनआनँद उकति ओछी,
जतन-जुगति जोन्ह कौन पै नपति है ॥१५६॥
आए परदेस जान प्यारे संग लै सँदेस,
मो मन अँदेस आली आँसुनि हँधे गरै ।
मोरनि की कूक सुनि उठति हिये मैं हूक,
चूकैं नहीं चातिक करेजो काढ़िबे अरै ।
दामिनी की कौंध लखि चौंधनि भरत चख,
अंग अंग सीरियौ समीर परसैं जरै ।
फेरि घूँटि मारै चहुँघा तें घनआनँद यौं,
बादर अडबरनि डाँवाँडोल ज्यौं करै ॥१५७॥
जान प्यारे नागर अनूप गुन-आगर,
उजागर सुजागर बिलास-रसमसे हौ ।
नवल-सनेह-साने आरसनि सरसाने,
सिथिल बनाय भाने अंग अंग लसे हौ ।
छबि-निखरे हू खरे नीकेई लगत मोहिं,
आनँद के घन चूर गाँसनि सौं गसे हौ ।

१५६—ओरनि—औरनि (राम) । १५७—बादर०—बादरनि आडंबर (कॉके०, प्रयाग) ।

ठीक ठीक बिताने की चाल । [१५६] सील = विनम्रता; शालीनता । स्वादनि० = स्वादों का ऐश्वर्य । पानिप = पानी; शोभा । उकति० = उक्ति के छोटे आकार में उसके अपार सौंदर्य को भर सकना असंभव है । [१५७] हूकैं = पीड़ाएँ । करेजो० = कलेजा निकालने पर अड़े हुए । अडंबर = बादल में सूर्यकिरणों से

भोर भएँ आए, भाँति भाँति मेरे मन भाए,
एहो घरबसे राति कौन घर बसे हौ ॥१५८॥
तिन हूँ तें हरई भई है गुरुजन आगेँ,
पुरजन-पुंज मैं कहानी सौं धौं कौन काज ।
तो हित बोहित जानि मोहित बिहंग मन,
आसा-गुन बँध्यौ हेरि नेहू को सरितराज ।
कीजै कहा ऐसी अब अति ही अनैसी बात,
हाहा घनआनँद अमैंड़नि के सिरताज ।
सुंदर सुजान हूँ सुहाई पै न आई तोहि,
एहो निरमोही नैकौं लाज हू तजैं को लाज ॥१५९॥

सवैया

प्रान परे निरमोही के पानि सु जानि परै वाकी नाहीं न हाँ है ।
कै अपने सपने हूँ न सोचत, मो चित ऊखिल ही लौं तहाँ है ।
ये मड़रात तऊ घनआनँद जीवनमूरति जान जहाँ है ।
हाय दई न बसाय बिसासी सौं ठौर-रहन कौं ठौर कहाँ है ॥१६०॥
जान सजीवन-प्रान लखैं बिन आतुर आँखिन आवत आधे ।
लोग चवाई सबै निरदई अति यान से बैन अयान सौं साधे ।
को समझै मन की घनआनँद औरई बेदन औरई नाधे ।
पीर-भरयौ जिय धीर धरै नहिं कैसें रहै जल जाल के बाँधे ॥१६१॥

१५८—उजगर०—हो जगत—उजागर । राति—आज (राम) ।
१६१—आल—लाल (सौं०) ।

कृपा । [१५८] सुजागर = सचेत, सुजान । रससमे = रस में मग्न । घरबसे = कपपति । [१५९] हरई = हलकापन । हित = प्रेम । बोहित = जहाज । मोहित = मुग्ध । सरितराज = समुद्र । अमैंड़ = मर्यादा को न माननेवाला । [१६०] पानि० = हाथ में, वश में । कै० = अपने वश में करके या अपने किए को । ऊखिल = अपरिचित, अनमनी । [१६१] आधे = आधे होकर । चवाई = बदनामी करनेवाले । औरई० = पागलपन में हाथ रखी है (निबंधन

कबित्त

रूप-गुन-आगरि नवेली नेह-नागरि तू,
रचना अनूपम बनाई कौन बिधि है ।
चलनि चितौनि बंक भौंहनि चपल हौंनि,
बोलनि रसाल मैन-मंत्र हू की सिधि है ।
अंग अंग केलि-कला-संपति-बिलास घन-
आनँद उज्यारी-मुख सुख-रंग-रिधि है ।
जब जब देखियै नई सी पुनि पेखियै यौं,
जानि परी जान प्यारी निकाई की निधि है ॥१६२॥
अघट घटाई भरयौ निपट निघरघट,
भो पट क्यौं रावरो बड़ाई लौं निघटिहै ।
नीकें करि देख्यौ न परेख्यौ उर आनौ, मानौं,
जान प्यारे पूरौ पैज हाहा कैसें हटिहै ।
दानी मनमानी दीन-दारिद-दलन ह्वै कै,
अति ही अचंभो जौं कचाई-तन डटिहै ।
जियैगौ पियैगौ रस कोऊ दुखी चातिक ज्यौं,
आनँद के घन कौ कहौ धौं कहा घटिहै ॥१६३॥
आँखैं जो न देखैं तौ कहा हैं कछु देखति ये,
ऐसी दुखहाइनि की दसा आय देखियै ।
प्रानन के प्यारे जान रूप-उजियारे, बिना
मिलन मिहारे इन्हैं कौन लेखैं लेखियै ।
नीर-न्यारे मीन औ चकोर चंदहीन हैं तें,
अति ही अधीन दीन गति मति पेखियै ।

१६३—दान०—दामन पै आनि दया हियहू लगो । जियैगो०—जिन लेत लागो एक तेरो आस (संग्रह) । निघटिहै—निपटैहै (राम) ।

देखना) । [१६२] बिधि = ब्रह्मा; रीति । रिधि = ऋद्धि; ऐश्वर्य । सिधि = सफलता । [१६३] अघट० = न घटनेवाली तुच्छता से युक्त । निघरघट = ढीठ । परेखौ =

हौ जू घनआनँद दुलारे रसभरे भारे,
चाखिक विचारे सौं न चूकनि परेखियै ॥१६४॥

जान प्यारे जहाँ हौ तहाँ हैं मेरे प्रान संग,
जीवौ कछू भ्रम ही सो मानि लेखियत है ।
सुनिबो देखिबो स्वाद आदि दै धरम जेते,
सपने मैं होत जो विचार कीजियत है ।
रावरे सनेह यौं अदेह कीनी लानी जानि,
आनँद के घन पै अचंभे भीजियत है ।
जाकी गति मति औ सुरति सब हारिवे जू,
ताहि कहौ कैसें यौं बिसारि दीजियत है ॥१६५॥

मदन-उज्यारी रूप-जगमगी जान प्यारी,
रति पै रतीक आभा है न रोम-रोस की ।
चीकने चिहुर नीके आनन बिथुरि रहे,
कहा कहौं सोभा भाग-भरे भाल सीस की ।
बीच बीच मंजुल मरीचि-रुचि फैलि फबी,
कांति-सनी उपमा लसति बिसे बीस की ।
मानौ घनआनँद सिंगार-रस सौं भँवारी,
चिक मैं बिलोकति बदनि रजनीस की ॥१६६॥

मीत मनभावन रिझावन कौं जान प्यारी,
आई घनआनँद उमड़ि आछी बनि है ।
मंजन कै अंजन दै भूषन-बसन साजि,
राजि रही भृकुटी जुदाई धंक तनि है ।

१६६–भाग-पुग (राम)।

सेद। तन=ओर। [१६४] न चूकनि०=चूक मैं जानकर परीक्षा मत-लीजिए अथवा चातक की भूलों का बुरा न मानिए [१६५] जीवौ०=अपने जीने को भ्रम समझता हूँ, मेरे जीवन तो आप हैं। धरम=शरीर के धर्म। अदेह=देहाध्यास शून्य। [१६६] रोस=बराबरी। चिहुर=चिकुर, केश।

अंग अंग नूतन निकाई-उफिलनि छाई,
मौन भरे चली सोभा नदी की उफनि है ।
देखनि दुलार-भोई बोलनि सुधा-समोई,
मुख को सुबास स्वास निसरति सनि है ॥१६७॥

सवैया

भावते के रस-रूपहि सोधि लै, नीकें भरयौ उर के कनरौटी ।
रोमहि रोम सुजान बिराजत मोचि तचैं मति की मति औटी ।
प्रेम नगी न फरै सु कहा, घनआनँद नेम-गली-गति खोटी ।
मीन मराल सरोवर तो मन, तैं पिय को हिय कीनौ कसौटी ॥१६८॥

कवित्त

आसा-गुन बाँधि कै भरोसो-सिल धरि छाती,
पूरे पन-सिंधु मैं न बूड़त सकायहौं ।
दोह दुख-दव हिय जारि उर अंतर,
निरंतर यौं रोम रोम त्रासनि तचायहौं ।
लाख लाख भाँतिन की दुसह दसानि जानि,
साहस सम्हारि सिर आरे लौं चलायहौं ।
ऐसें घनआनँद गही है टेक मन माहिं,
एरे निरदई तोहि दया उपजायहौं ॥१६९॥

सवैया

अंतर-आँच उसास तचै अति, अंग उसीजै उदेग की आवस ।
ज्यौ कहलाय मसोसनि ऊमस क्यौं हूँ कहूँ सु धरै नहीं थ्यावस ।
नैन उघारि हिये बरसैं घनआनँद छाई अनोखियै पावस ।
जीवनिमूरति जान को आनन है बिन हेरैं सदाई अमावस ॥१७०॥

१६७–छाई–भाई (का०,०)। १६९–दोइ०–दुख-दव हिय जारि अतर उदेग आँच। निरंतर०–रोम रोम त्रासनि निरंतर। सम्हारि–सहारि। गही–गहौ (कवित्त)।
१७०–नैन उघारि हिये (का०,०)।

[१६७] उमड़ि=घिरकर, सजकर। मंजन=मार्जन, स्नान। उफिलनि=उफान। [१६८] कनरौटी=कजली रखने का पात्र। [१६९] न सकायहौं=न डरूँगा। [१७०]

जान के रूप लुभाय कै नैननि बेचि करी अधबीच ही लौंडी ।
फैलि गई घर बाहिर बात सु नीकैं भई इन काज कनौंड़ी ।
क्यौं करि थाह लहौं घनआनँद चाह-नदी तट ही अति औंड़ी ।
हाय दई न बिसासी सुनै कछु, है जग बाजति नेह की डौंड़ी ।।१७१।।

दोहा

जानराय ! जानत सबैं, अंतरगत की बात ।
क्यौं अजान लौं करत फिरि, मो घायल पर घात ।। १७२ ।।

सवैया

आनन की सुघराई कहा कहौं जैसी बिराजनि है जिहि औसर ।
चंद तौ मंद मलीन मरोरत एक हू रंग न दाजियै जौ सर ।
नैन अन्यारे तिरौछी चितौनि मैं हारि गिरैं रतिभौनम कौ सर ।
जान हियैं घनआनँद सौं हँसि फैलि फबै सु चँबेली कौ चौसर ।।१७३।।
घूँघट काढ़ि जौ लाज सकेलति लाजहि लाजति है बिन काजनि ।
नैनसिन-बैभनि मैं तिहि ऐन सु होत कहाउथ सजे पट-साजनि ।
सील की मूरति जान रची बिधि तोहि अचंभे-भरी छबि-छाजनि ।
देखत देखत डीसि परै नहिं यौं बरसैं घनआनँद आजनि ।।१७४।।
आछु-असी लहकै महकै अँग रूपलता लगि डीठि-झकोरैं ।
हास-बिलास-भरे रसकंद सु आनन ज्यौं चख होत चकोरैं ।

१७१—कानि-बाद (कॉक०) । है जग०—है जग बाजत (कॉक०) । लहौं—लहै (कॉबम) । १७३—सुघराई—सुघराई (राम०) । कै—कै (कॉक०, प्रयाग) । १७४—तिहि—अति (कॉक०) ।

भापस = धाँस, भाप । कहलाय = गरमी से व्याकुल होता है । ध्याबस = स्थिरता, धैर्य । [१७१] कनौंड़ी = दबैल, बदनाम । औंड़ी = गहरी । डौंड़ी = डुग्गी । [१७२] अंतरगत = मन । [१७३] सुघराई = बनावट की सफाई । सर = समता । रति = काम का बाना । चौसर = चार लड़ों की माला । [१७४] सकेलति = समेटती है । ऐन = घर । काजनि = कार्य ;

मौन मली कहि कौन सकै घनआनँद जान सु नाक सकोरैं ।
दीठ बिलोपई झारति है हिय, मोहति डोहति प्यारी झकोरैं ।।१७५।।

कवित्त

रूप-गुन-ऐंठी सु अमैंठी उर पैठी बैठी,
लाड़नि निरैठी, मनि बोलनि हरैं हरी ।
जोबन-गहेली अलबेली अति ही नवेली,
हेली है सुरति बेली आँचर दरैं टरी ।
परम सुजान भोरी बातनि लुभाए प्रान,
भावति न आन बेई हियरा अरैं अरी ।
फंद सी हँसनि घनआनँद दृगनि गरैं,
मुख मुसकनि मंद अधरनि परैं परी ।।१७६।।

सवैया

लै ही रहे हौ सदा मन और को दैबो न जानत जान दुलारे ।
देख्यौ न है सपने हूँ कहूँ दुख, त्यागे सकोच औ सोच सुखारे ।
कैसो सँजोग बियोग धौं आहि ! फिरौं घनआनँद ह्वै मतवारे ।
मो गति बूझि परै तब ही जब होहु घरीक हू आप तैं न्यारे ।।१७७।।
खोय दई सुधि, सोय गई सुधि, रोय हँसै उनमाद जग्यौ है ।
मौन गहै, चकि चाकि रहै, चलि बात कहै तैं न दाह दग्यौ है ।
जानि परै नहिं जान ! तुम्हैं लखि ताहि कहा कछु आहि खग्यौ है ।
मोहनि ही पचियै घनआनँद हेल पग्यौ किधौं प्रेत लग्यौ है ।।१७८।।

कवित्त

घेर-घबरानी उबरानी ही रहति घन-
आनँद आरति-राती साधनि मरति हैं ।

१७५—झकोरैं—झकोरि (प्रयाग) । १७६—निरैठी गरैठी (कॉक०) । बेली—बौरी (राम) । १७७—औ सोच—असोच (कॉक०, प्रयाग) । १७८—मौन—मान (प्रयाग) । चाकि—चौंकि (कॉक०, प्रयाग) । तैं न—तन (कॉबम) । दाह—दाग । (कॉक०) ।

लगा । [१७५] लहकै = हिलती है । डोहति = टटोलती है । झकोरैं = आलिंगन (की मुद्रा) । [१७६] निरैठी = मस्त । हरैं = धीरे से । [१७७]

जीवनअधार जान-रूप के अधार बिन,
ब्याकुल बिकार-भरी खरी सु जरति हैं।
अतन-जतन तें अनखि अरसानी बीर,
प्यारी पीर-भीर क्यौं हूँ धीर न धरति हैं।
देखियै दसा असाध अँखियाँ निपेटनि की,
भसमी बिथा पै नित लंघन करति हैं ॥१७९॥
चारु चामीकर चंद चपला चंपक ओप,
केसरि-चटक कौन लेखे लखियति है।
उपमा बिचारी न निहारी जाति जान प्यारी
रूप की निकाई औरैं अवरेखियति है।
सरस-सनेह-भरी राजति रवौंनी स्यामा,
तरुनाई-तेज-अरुनाई पेखियति है।
मंडित अखंड घनआनँद उजास लियैं,
तेरे तन दीपति दिवारी देखियति है ॥१८०॥

सवैया

रूप-सिंगार दिवारी कियैं नित जोबन छाकि न सूधे निहारै।
नैननि मैन छलैं चित लै चित-चाव भरयौ निज दाव बिचारै।
जीति ही को चसको घनआनँद चेटक जान सबान बिसारै।
जीय पियारो परयौ अति सोचनि हारि रहयौ सु कहा फिरि हारै ॥१८१॥

१७९-अरसानी—उरसानी (कवि०, प्रयाग)। अधार—अहार (कवि०, प्रयाग)। १८०-चंपक—चपक (मनो०)। जाति—नाहिं (कवित्त)। १८१-चित—चित (कवित्त)। दिवारी दिवारै (का०प्र०)।

ग्यौ न जाने। [१७८] चाहि० = लगा हुआ है। [१७९] अतन = कामो-पचार से। निपेटिनि = पेटू। भसमी० = अधिक करनेवाली पीड़ा; भस्मक रोग, जिसके होने से खाया हुआ शीघ्र पच जाता है और चाहे जितना खाया जाय तृप्ति नहीं होती। [१८०] चामीकर = सोना। चटक = रंग। अवरेखियति० = उतराई जाती है। रवौंनी = (रमनी) रमानेवाली अथवा (रवानी) तेजी। [१८१]

कवित्त

बिकच नलिन लखैं सकुचि मलिन होति,
ऐसी कछू आँखिन अनोखी उरझनि है।
सौरभ-समीर आएँ बहकि दहकि जाय,
राग-भरे हिय मैं बिराग-मुरझनि है।
जहाँ जानप्यारी-रूप-गुन को न दीप लहै,
तहाँ मेरे ज्यौं परै बिषाद-गुरझनि है।
हाय अटपटी दसा निपट चटपटी सौं,
क्यौं हूँ घनआनँद न सूझै सुरझनि है ॥१८२॥
तब हौं सहाय हाय कैसें धौं सुहाई ऐसी,
सब सुख संग लै बियोग-दुख दै चले।
साँचे रस-रंग अंग-अंगनि अनंग सौंपि,
अंतर मैं बिषम बिषाद-बेलि बै चले।
क्यौं धौं ये निगोड़े प्रान जान घनआनँद के
गौहन न लागे जब वे करि बिजै चले।
अति ही अधीर भई पीर-भीर घेरि लई,
हेली मनभावन अकेली मोहिं कै चले ॥१८३॥
रोम रोम रसना ह्वै लहै जौ गिरा के गुन,
तऊ जान प्यारी ! निबरै न मैन-आरतैं।
ऐसे हितहीन पै दया न आई दई तोहि,
बिष-बोरे बिषम बियोग-सर मारतैं।

१८२-लखैं—देखैं (मनो०)।

खिलना = कीड़ों का खिल पड़ना। चेटक = जादू। हारि० = मुग्ध हो रहा है। [१८२] बिकच = खिला हुआ। बिराग = उदासी की मुरझाहट। रूप = सौंदर्य; चाँदी। गुन = गुण; बत्ती। गुरझनि = गाँठ। चटपटी = बेग। [१८३] कै = छोड़कर। गौहन = साथ। हेली = क्रीड़ासखि या हे अली। [१८४] मैन० =

दरस-सुरस-प्यास भाँवरे भरत रहौं,
फेरियै निरास मोहिं क्यौं धौं पौंडश द्वार तैं ।
जीवनअधार घनआनँद उदार महा,
कैसैं अनसुनी करौ चातिक-पुकार तैं ।।१८४।।

सवैया

पानिप-पूरी खरी निखरी, रस-रासि-निकाई की नाँवहि रोपैं ।
लाज-लड़ी बड़ी सील-गसीली सुभाय हँसीली चितै चित लोपैं ।
अंजन-आँजित-सी घनआनँद मंजु महा उपमानि हूँ ओपैं ।
तेरी सौं प्यारी सुजान सो आँखिन देखि रे आँखि न आवति मोपैं ।।१८५।।

कवित्त

कंज-काँच-घटी तैं सचन चाख्यौ आसव लैं,
अधर-पियालैं पूरि रासरसि महेत है ।
रूप-मतवारी घनआनँद सुजान प्यारी,
कानन हूँ प्रानन पिवाय पोषै चेत है ।
छकेई रहत रैनिदौस प्रेम-प्यास-आस,
कीनी नेम-धरम-कहानी अपचेत है ।
ऐसे रस-बस क्यौं न मोपैं और स्वाद कहौ,
रोम रोम आस्वोई करत मीनकेत है ।।१८६।।

चातिक चुहल चहुँ ओर चाहै स्वाति ही कौं,
सूरे पन-पूरे जिन्हैं विष सम अमी है ।
प्रफुलित होत भान के उदोत कंज-पुंज,
ता बिन बिचारनि हीं जोति-जाल तमी है ।

१८४—लई—लहौं (प्रयाग)। गुन—मन (प्रयाग)। तैं—कौं (कॉक०, प्रयाग)।
१८५—सी—सी (कॉक०, प्रयाग)।

काम-लालसाएँ। निनदीन = दिनदिन दीन। [१८५] पानिप = शोभा। ओपैं = चमकाली हैं। [१८६] आसव = शराब। उपचेत = उत्पन्न। मीनकेत = काम-

चाहौ अनचाहौ जान प्यारे पै अनंदघन,
प्रीति-रीति विषम सु रोम रोम रमी है ।
मोहिं तुम एक, तुम्हैं मो सम अनेक आहिं,
कहा कछू चंदहि चकोरन की कमी है ।।१८७।।

रिसभरी भोरिबे कौं ऐसी सुनी प्रीति-रीति,
नायक रसीलो बिनै बिनती महा करै ।
चोप चाय दायनि सौं अमित उपायनि सौं,
ज्यौं ही धनै त्यौं हीं लगि प्रापति लहा करै ।
मीन जलहीन लौं अधीन ह्वै अनंदघन,
जान प्यारी पायनि पै कब को ढहा करै ।
दई नई टेक तोहि टारैं न टरति नेकौं,
हारयौ सब भाँति जो बिचारौ सो कहा करै ।।१८८।।

सवैया

जीवन हौ जिय की गति जानत जान! कहा कहि बात जनैयै ।
जो कछु है सुख संपति सौंज सु नैसिक हौ हँसि दैन मैं दैयै ।
आनँद के घन! लागै अचंभो पपीहा-पुकार तैं क्यौं बरसैयै ।
प्रीतिपगी अँखियानि दिखाय कै हाय अनीति सु दीठि छिपैयै ।।१८९।।

कवित्त

चोप चाह चावनि चकोर भयौ चाहत हौं,
सुषमा-प्रकास मुख-सुधाधर पूरे कौ ।
कहा कहौं कौन कौन बिधि की बँधनि बँध्यौ,
सुकरयौ न उकरयौ बनाव लखि जूरे कौ ।

१८८—टारैं—टरै (कॉक०, प्रयाग)। १८९—गति—सब (कॉक्स)।
सु—जु (प्रयाग)।

देख। [१८७] अमी = अमृत। तमी = रात्रि। [१८८] दाय = दावँ। लहा = लाभ। [१८९] सौंज = सामग्री। नैसिक = थोड़ा।

जाही जाही अंग परयौ ताही गरि गरि सरयौ,
  हरयौ बल बापुरे अनंग-दल-चूरे को ।
अब बिन देखें जान प्यारे यौं घनआनँद,
  मेरो मन भयौ भट्ट ! पान है बघूरे को ॥१९०॥

दोहा

मोही मोह जनाय कै, अहे अमोही ! जोहि ।
सो हौ मोहि सौं कठिन, क्यों करि सोहौ तोहि ॥१९१॥

सवैया

उर-भौन मैं मौन को घूँघट कै दुरि बैठी बिराजति बात-बनी ।
मृदु मंजु पदारथ भूषन सों सु लसैं हुलसैं रस-रूप-मनी ।
रसना-अली कान गली मधि ह्वै पधरावति लै चित-सेज ठनी ।
घनआनँद बूझनि-अंक बसै बिलसै रिझवार सुजान-धनी ॥१९२॥

कवित्त

याहि आगैं आपन को आसा उर आय बसै,
  चाहै निरबाहैं नित हित-कुसरात कौं ।
हेरी यह बैरी पैरी उपरयौ बियोगनि पै,
  औछौ जरि गयौ गोवैं कहा भेद-बात कौं ।
मधुर सरूप याहि देखियै घनआनँद,
  पोखैं जानप्यारे-संग रंग-मनजात कौं ।

१९०—बापनि—बापुरे (कां०, प्रयाग)। गरि०—गरि गरि सरयौ (प्रयाग); रंग अंग रंगदौ (कां०)। १९२—बनी—मनी (प्रयाग); मधि—मग (कां०, प्रयाग)। पध०—पग धारति (कां०)। १९३—भेद—बेद (कां०)। सँजोय—सजाय (कवित्त)।

[१९०] सुरयौ=भली भाँति जल गया। गरि०=गलकर चुक गया या गल गलकर तब निकला; बघूरे=बवंडर। [१९१] मोही=मोहित किया। जोहि=देखकर। सो ही=वह मेरा प्रेम-प्रदर्शक हृदय। मोही=मुझसे कठोर हो गया। सोही=यह बात तुम्हें कैसे फबती है। [१९२] बनी=दुलहिन। पदारथ=रत्न; पद का अर्थ। बूझनि=बुद्धि, मति। [१९३] कुसरात=कुशल। पैरी=बदनामी करने योग्य। बियोगनि=नष्ट करने के लिए।

साँझ सही साधनि सँजोगहि सँजोय देत,
  लाग्यौ रहै गोहन ही प्रात प्रान-घात कौं ॥१९३॥
बिष कै बिसारयौ तन, कै बिसासी आपचारयौ,
  जान्यौ तुम्हें मन ! कै सनेह कछु खेल सो ।
अब ताकी ख्याल मैं पजारिबो रे भली भाँति,
  नीकें सहि, अलह-उदेग-दुख सेल सो ।
भाग उड़ि तुरत परेखे मैं सफल सुख,
  परयौ आय औचक बियोग बैरी डेल सो ।
रुचि ही के राजा जान प्यारे यौं घनआनँद,
  होत कहा हेरें रंक ! मानि लीनो मेल सो ॥१९४॥
सूझै नहीं सुरझि उरझि नेह-गुरझनि,
  सुरझि सुरझि निसिदिन डाँवाडोल है ।
आह की न थाह दैया कठिन भयो निबाह,
  चाह के प्रवाह घेरयो दारुन कलोल है ।
ऐ तौ जान प्यारे निधरक हैं घनआनँद,
  तिनको भी गूढ़ गति मूढ़मति को लहै ।
आगैं न बिचारयौ अब पाछैं पछिताएँ कहा,
  मान मेरे जियरा बनो को कैसो मोल है ॥१९५॥
अंतर उदेग-दाह, आँखिन प्रवाह-आँसू,
  देखी अटपटी चाह भीजनि दहनि है ।
सोयबो न जागिबो हो, हँसिबो न रोयबो हू,
  खोय खोय आप ही मैं चेटक-लहनि है ।

१९४—बिसारयौ—बिगारयौ (प्रयाग)। तन—यह (कां०, प्रयाग); आपचारयौ—आपचारी (कां०, प्रयाग)। सांझ—सांत (कवित्त)।

मनजात=काम। सही=सम्मुख, ठीक। [१९४] बिसारयौ=भूले गए; बिसारत बनाया। आपचारयौ=मनमानी। सेल=बरछी। डेल=ढेला। [१९५] आह को='आह' करने को; अपने आन की, हियाव

जान प्यारे प्रानन बसत पै अनंदघन,
बिरह-बिषम-दसा मूक लौं कहनि है।
जीवन मरन, जीव मीच बिना बन्यौ आय,
हाय कौन बिधि रची नेही की रहनि है ॥१९६॥
डगमगी डगनि-धरनि छबि ही के भार,
ढरनि छबीलें उर आछी बनमाल की।
सुंदर बदन पर कोटिक मदन वारौं,
चित चुभी चितवनि लोचन बिसाल की।
कालिह इहि गली अली निकसे औचक आय,
कहा कहौं अटक भटक तिहि काल की।
भिजई हौं रोम रोम आनँद के घन छाय,
बसी मेरी आँखिन मैं आवनि गुपाल की ॥१९७॥

सवैया

नेहनिधान सुजान-समीप तौ सींचति ही हियरा सियराई।
सोई किधौं अब और भई, दई हेरत ही मति जाति हिराई।
है बिपरीति महा घनआनँद अंबर तें धर कौं झर आई।
जारति अंग अनंग की आँचनि जोन्ह नहीं सु नई अगिलाई ॥१९८॥

कवित्त

चाहत ही रीझी आलसानि भीजि सुख सींझी,
अंग-अंग-रंग-संग भाव भरि भ्वै गईं।
रैनिद्यौस जागौं ऐसो लागौं जु कहूँ न लागौं,
पल अनुरागौं पागौं चंचलता च्वै गईं।
हित की कनौड़ी लौंड़ी भईं ये अनंदघन,
फिरैं क्यौं पिछौंड़ी नेह-मग ढग ह्वै गईं।

१९७—निकसे०—निकस्यौ अचानक है (राम)।

की। बनी = वणिज। [१९६] चेटक = जादू। [१९७] ढरनि = हिलना। बनमाला = लंबी माला। [१९८] ही = थी। झर = ज्वाला। अगिलाई =

माधुरी-निधान प्रान-प्यारो जान प्यारो तेरो
रूप-रस चाखें आँखैं मधुमाखी ह्वै गईं ॥१९९॥
आँखैं रूप-रस चाखैं चाहैं उर मांझ राखैं,
लोभ-लागी लाखौं अभिलाखैं निवरैं नहीं।
तोहि जैसी भाँति लसै, बरनियो मन बसै,
बानी गुन गसै, मति-गति निथकै नहीं।
जान प्यारी सुधि है अतुल्यौ बिचारि जाय,
माधुरी-निधान तेरी नैसुक सुहाचहीं।
क्यौं करि अनंदघन लहियै सँजोग-सुख,
लालसानि भीजि रीझि बावरे न परैं कहीं ॥२००॥
जो कछू निहारैं नैन, कैसे सो बखानैं बैन,
बिना देखें कहैं तौ कहा तिन्हैं प्रतीति है।
रूप के सवाद-भानै बापुरे अबोल कानै,
बिधि बुधिहीनै कौ अनैसो यह रीति है।
सुख दुख साखी मिलें बिछुरें अनंदघन,
जान प्रानप्यारे सौं नवेली इन्हैं प्रीति है।
औरहि न चाहैं पन पूरो नित लौं निबाहैं,
हारें हेरि आपौ, जीति हारैं नेह-नीति है ॥२०१॥

सवैया

चंद चकोर की चाह करै, घनआनँद स्वाति पपीहा कौं धावै।
त्यौं त्रसरेनि के ऐन बसै रवि, मीन पै दीन ह्वै सागर आवै।
मोसौं तुम्हैं सुनौ जान कृपानिधि! नेह निबाहिबो यौं छबि पावै।
ज्यौं अपनी रुचि राचि कुबेर सु रंकहि लै निज अंक बसावै ॥२०२॥

१९९—रीझी—भीजे (कोष०)।

अभिदाह। [१९९] चाहत = देखते ही। कनौड़ी = दबैल। [२००] निवरैं० = समाप्त नहीं होतीं। सुहाचहीं = सुख का देखना, दर्शन। [२०१] सुख = संयोग और वियोग के साक्षी क्रमशः सुख और दुःख ही हैं। [२०२]

ज्यौं बुधि सौं सुघराई रचै कोऊ, सारदा कौं कबिताई सिखावै ।
मूरतिवंत महालछमी-उर पौन-दृगा रचि लै पहिरावै ।
रागबधू-चित-चोरन के हित मोहि सुधारि कै तानहिं गावै ।
त्यौं ही सुजान लियें घनआनँद गो जिय बौरई-भाँति रिझावै ॥२०३॥

कबित्त

नैनन मैं लागै जाय, जागै सु करेजे बीच,
या बस ह्वै जीब धीर होत लोटपोट है ।
रोम रोम पूरि पीर, ब्याकुल सरीर महा
घूमै मति गति-आँखैं, प्यास की न ओट है ।
घालत सजीवन - सुजान - दृग - ढाबन नैं,
प्यारी अनियारैं रुचि रखवारी ओट है ।
जब जब आवै तब तब अति भावै आवै,
अहा कहा बिषम कटाच्छ-सर-चोट है ॥२०४॥

सीस लाय, दृग छुवाय, हियें पै बसाय राखौं,
इतै मान माग आवै आननि मैं लै धरौं ।
हेरि हेरि चूमि चूमि सोभा छकि घूमि घूमि,
परसि कपालनि सौं मंजन कियौ करौं ।
केलि-कला-कंदिर बिलास-निधि-मंदिर ये,
इन ही के बल हौं मनोज-सिंधु कौं तरौं ।
यातें घनआनँद सुजान प्यारी रीझि भीजि,
उमगि उमगि बेर बेर तेरे पा परौं ॥२०५॥

२०३—रचै-रचे (का०, प्र०म०)। कबिताई—कबराई (कवि०)।
२०४—दृग—हेत (का०)। आ०ैं० मन भावै (कवित्त)।

[illegible] = [illegible], [illegible]; पुराणों में यह मर्ग की पत्नी है। पौन = अयन, [illegible]। [२०३] बुधि = बुद्धि की सहायता। सुघराई = चतुरता। पौन = आँख की पुतली। बौरई = बावलेपन का ढंग। [२०४] गति० = मार्ग पाने की आशा से। ओट = (बुद्धि) कमी। रुचि = कांति। [२०५] दृगै० = इतनी अधिक

पाती-मधि छाती-छत लिखि न लिखाए जाहिं,
काती लै बिरह घाती कीने जैसे हाल हैं ।
आँगुरी बहकि तहीं पाँगुरी निबलकि होति,
ताती राती दसनि कै जाल ज्वाल-माल हैं ।
जान प्यारे जौन कहूँ दीजियै सँदेसो तौन,
भला मम कीजियै जु कान तिहि काल हैं ।
नेह-भाजी बतौं रसना पै उर-आँच लागैं,
जागैं घनआनँद ज्यौं पुंजनि-मसाल हैं ॥२०६॥

सवैया

कंत रमैं उर-अंतर मैं सु लहै नहीं क्यौं सुखरासि निरंतर ।
दंत रहैं गहैं आँगुरी ते जु बियोग के तेह तचे परतंतर ।
जो दुख देखति हौं घनआनँद रैन-दिना बिन जान सुतंतर ।
जानै बेई दिन-राति, बखानैं तें जाय परै दिन-राति कौ अंतर ॥२०७॥

कबित्त

रसिक-सिरोमनि सुजान सुधानिधि हू की,
रसना रसैबे कौं रसीली रसधाम है ।
जीवन बरसिबे कलंदर्बन [illegible] पै,
चातिक तें कोटिगुनौ जक आठौ जाम है ।
आरति पराई सोई जानै न बखानै बनै,
देखैं दसा औरै बिसरत बिसराम है ।

२०६—लिखाए—लिखाए (का०, प्र०म०) । बहकि—बहकि (वही) ।
[illegible] ([illegible]) ।

[illegible] असमर्थता है। जैसे = [illegible]। [२०६] पाँगुरी = पंगु। राती = [illegible]; लाल। रसना = [illegible]; भला। नेह = प्रेम; तेल। बातें = बातें, [illegible]। [२०७] तेह = [illegible]। परतंतर = पराधीन [illegible] = दिन और रात का सा भेद पड़ जाता है। अनुभव और कथन की स्थितियों में इतना अंतर पड़ जाता है कि दोनों विपरीत सी लगने लगतीं

साधा तन हेरिबै निबेरिबै सु बाधा बारि,
आनन आधार लिन्हैं राधा राधा नाम है ॥२०८॥

हिय मैं जु आरति सु आरति उजारति है,
भारति मरोरें जिय डारति कहा करौं।
रसना पुकारि कै विचारी पचि हारि रहै,
कहै कैसैं अकह, उदेग-रँधियै मरौं।
हाय कौन वेदनि विरंचि मेरे बाँट कीनी,
निघटि परौं न क्यौं हूँ ऐसी विधि हौं गरौं।
आनँद के घन हौ सजीवन सुजान देखौ,
सीरी परि सोचनि अचंभै सौं जरौं बरौं ॥२०९॥

मुख देखैं गौहन लगे फिरैं चकोर मोर,
छूटे बार हेरि कै पपीहा-पुंज छावहीं।
गति हेरि घायनि सौं पावन-परन कौंजैं,
रसलोभी बिबस मराल-जाल धावहीं।
यातें मन होय प्रान संपुट मैं गोय राखौं,
ऐसें हैं बिगोदे नैन कैसैं चैन पावहीं।
सौंचिथै घनआनँद जान प्यारे कैसें जानौ,
दुसह दसा की बातें बरनी न आवहीं ॥२१०॥

अंग-अंग-आभा-मय द्रवनि स्रवनि ह्वै कै,
रचि मचि लीनो साँचो रंगनि घनेरे को।
हँसनि लसनि ताकी बोलनि चितौनि चाल,
मूरति रसाल रोम-रोम-छबि-हेरे को।

२०८—रसपाम—तुलभ न (राम)। दै—मै (राम)। २०९—हेरिबे—हाँबके (राम)। २१०—गौ०—लगे हैं फिरैं गौर-मोर (राम)। कौंजैं—काजै (राम)।

है। [२०८] रसैबे = रसमय करने के लिए। साधा = साध, उत्कंठा। [२०९] निघटि० = घटती तो हूँ पर समाप्त नहीं हो जाती। जरौं = चिन काढ़ती हूँ।

लिखि राख्यौ चित्र यौं प्रवाहरूपी नैननि पै,
लही न परसि गति उलट फेरे की।
रूप को चरित्र है अनंदघन जान प्यारी,
अकि धौं विचित्रताई मो चित-चितेरे की ॥२११॥

सवैया

पाप के पुंज सकेलि सु कौन धौं आन घरी मैं विरंचि बनाई।
रूप की लोभनि रीझि भिजाय कै हाय इतै पै सुजान मिलाई।
क्यौं घनआनँद धीर धरै विन पाँख निगोड़ी मरै अकुलाई।
प्यास-भरी बरसैं तरसैं मुख देखन कौं अँखियाँ दुखदाई ॥२१२॥

कवित्त

लाखा-कुल टूटै ह्वै रँगीली अभिलाषा भरि,
परि है पखान बीच घसनि घनी सहै।
सोच सूखी इते मान कानि के सलिल बूड़ै,
घुरि जाय आयनि ही हाय गति को कहै।
तऊ दुखदाई देखौ छिदनि सलाकनि सौं,
प्रेम की परख ऐसी कठिन महा अहै।
चित-मनसा लौं बारी जिहैंदी अनंदघन,
ज्यौं जान प्यारी नेकु पावनि लग्यौ चहै ॥२१३॥

सवैया

साधनि हौ भरियै भरियैं, अपराधनि बाधनि कै गन छावत।
देखौं कहा? सपनें हूँ न देखन नैन यौं बैरिनि नींद न लावत।

२११—दरसि-छबि (कोक०)। मूरति—सूरति (कोक०)। अकि—ऐकि (कोक०)। २१२—आन—और (कोक०, प्रयाग)। दुखदाई—दुखदाइ (कोक०)। २१४—गन—गुन। सपनें—सपनो (राम)। नवौं—परै (कोक०)। ...—नव (कोक०, प्रयाग)।

[२१०] गौहन = साथ। गोय० = छिपा लें। [२११] साँचो = सामग्री। फेरे = विलक्षण। [२१२] आन = अन्य, दूसरी। [२१३] पखान = पत्थर, पक्ष। [२१४] अपराधनि = अपराधों से बाधा का जाल फैलाते हैं, अपराध

जौ कहूँ जान लखैं घनआनँद तौ तन नेकु न औसर पावत ।
कौन बियोग-भरे अँसुवा, जु सँजोग मैं आगेई देखन धावत ॥२१४॥

कवित्त

रहि न सकत, सनकत नैन-बान-बिधे,
हूलै हू पै बिषम बिषाद-जुर लू चरै ।
सूरे घन-पूरे हेत-खेत तैं टरैं न कहूँ,
प्रीति-चोप चापुरे भए हैं छवि कूबरे ।
संकट-समूह मैं निवारे घिरे घूटैं सदा,
जानौ न परत जान ! कैसैं प्रान ऊबरे ।
नेही दुखियानि की यहै रति अनंदघन,
चिंता मुसक्यानि सहैं न्याय रहैं दूबरे ॥२१५॥

दसन-बसन ओली भरियै रहै गुलाल,
हँसनि-लसनि त्यौं कपूर सरस्यौ करै ।
साँसनि सुगंध सोंधे कोरिक समोय धरै,
अंग अंग रूप रंग-रस बरस्यौ करै ।
जान प्यारी ! तो तन अनंदघन-हित नित,
अमित सुहाग-भाग, फाग दरस्यौ करै ।
इतै पै नवेली लाज अरस्यौ करै जु, प्यारी
मन फगुवा दै, गारी हू कौं तरस्यौ करै ॥२१६॥

सुखनि समाज साज सजे नित सेवैं सदा,
जित नित नए हित-फंदनि नसत हौ ।
दुख-तम-पुंजनि पठाय दै चकोरनि पै,
सुधाधर जान प्यारे ! भलें ही लसत हौ ।

२१५—तैं टरैं—मैं लरै । चापुरे—चावरे । यहै—ऐसी (काशि०) ।
२१६—जु—सु (काशि०) ।

की भाँति लिखने में बाधक बन जाते हैं । [२१५] हेत०=प्रेम का रणक्षेत्र
[२१६] दसन=होंठ । ओली=झोली । हित=निमित्त । फगुवा=होली

जीव सोच सूखै गति सुमिरें अनंदघन,
कितहूँ उघरि कहूँ घुरि कै रमत हौ ।
उजरनि बसी है हमारी अँखियानि देखौ,
सुबस सुदेस जहाँ भावते बसत हौ ॥२१७॥

तपति उसास, आँधि रूँधियै कहाँ लौं दैया,
बात बूझैं सैननि ही ऊतर उचारियै ।
उड़ि चल्यौ रंग कैसैं राखियै कलंकी मुख,
अनलखैं कहाँ लौं न घूँघट उघारियै ।
लागि बरि छार ह्वै न जाय हाय ऐसी बैस,
चित-चढ़ी मूरति सुजान क्यौं उतारियै ।
कठिन कुदाय आय घिरी हौं अनंदघन,
रावरी बसाय तौ बसाय न उजारियै ॥२१८॥

कहाँ एतो पानिप बिचारी पिचकारी धरै,
आँसू-नदी नैननि उमगियै रहति है ।
कहाँ ऐसी राँचनि हरदि केसू केसरि मैं,
जैसी पियराई गात पगियै रहति है ।
चाँचरि-चोप हू सु तौ औसर ही माचति, पै
चिंता की चुहल चित्त लगियै रहति है ।
तपनि-बुझावनि अनंदघन जान बिन,
होरी सी हमारे हियैं लगियै रहति है ॥२१९॥

२१७—समाज—समान (काशि०) । एतो—इतो (प्रयाग०) । चोप०—चोप ही हू (काशि०, प्रयाग) । चुहल—जहल (कवित्त) । लगियै—जागियै (राम) ।

का उपहार । [२१७] हित=प्रेम के फंदे फेंका करते हैं । दै=देकर (भेजकर) ।
उघरि=उचटकर, पृथक होकर । घुरि=घुलकर, भली भाँति मिलकर । [२१८]
बैस=(वयस्) उम्र । रावरी०=यदि आप का वश चले, आप कर सकें तो ।
[२१९] केसू=किंशुक के फूल । चाँचरि=(चर्चरी) वसंत के गाने ।

सवैया

अकुलानि के पानि परयौ दिनराति सु ज्यौं छिनकौ न कहूँ बहरै ।
फिरिबोई करै चित चेटक चाक लौं धीरज को ठिक क्यौं ठहरै ।
भए कागद-नाव उपाव सबै घनआनँद नेह-नदी-गहरै ।
बिन जान सजीवन कौन हरै सजनी बिरहा-बिष की लहरै ।।२२०।।

कवित्त

रातिद्यौस कटक सजे ही रहै दहै दुख,
कहा कहौं गति या वियोग बजमारे की ।
लियौ घेरि औचक अकेलो कै बिचारो जीव,
कछु न बसाति यौं उपाव-बल-हारे की ।
जान प्यारे लागौ न गुहार तौ जुहार करि,
जूझिहै निकसि टेक गहैं पनधारे की ।
हेत-खेत-धूरि चूर चूर ह्वै मिलैगो, तब
चलैगी कहानी घनआनँद तिहारे की ।।२२१।।

हाहा करि हारी नैनिहारी लखियै महा री,
मो हू सौं भिखारी मानैं तनकौ नहीं कहैं ।
साधि कै समाधि मो अराधति हैं काहि दैया,
अरहि पखारि आँसु निठुर करै न हूँ ।
प्रानपति-प्यारि जो जानैं तौ सुजान प्यारी,
नाहीं न धरैये नाधैं एतिसौं कहूय हूँ ।
राकानिसि आली ब्यालौ भई घनआनँद कौं,
हरि चल्यौ चंदा पै न हरी चंदगुन हूँ ।।२२२।।

२२०—छिनकौ—छिन कहीं । कौ ठिक—कौ ठिक (का०) । २२१—रातिद्यौ—ऐसे ही (राम) । कहा कहौं—कहा कहूँ (ना०, प्रयाग) । हारै—हारे (का०) । हूँ—हूँ (प्रयाग) ।

चहल = चहलपहल या कीच । [२२०] चेटक = कलौंदा । ठिक ठहरना = ठिकाने लगना । [२२१] वजमारा = वज्र के मारे भी जो न मरे (गाली) । जुहार० = सहायता के लिए चिल्लाकर । तिहारे० = तुम्हारे के लिए का । [२२२] नैनिहारी =

जान प्यारी ! हौं तौ अपराधनि सौं पूरन हौं,
कहा कहौं ऐसी गति, आपहू गरो हवयौ ।
सेइ मरें सुधा तौ सुभाय के मिठास, ताकी
आसा लै दहनि, मैं चरन-कंज सौं दुकयौ ।
हतै पै जो रोष कै रमाति हियो पोढ़ौ करौ,
तौ न कहूँ ठौर ओवे हू को भरोसो चुक्यौ ।
एमें सोच-आँचनि अनंदघन सुखनिधि,
लपट कढ़ै न नेकौ हाहा जान क्यौं फुक्यौ ।।२२३।।

सुधा तें स्रवत बिष, फूल मैं जमत सूल,
तम उगिलत चंद, भई नई रीति है ।
जल जारैं अंग, और राग करैं सुरभंग,
संपति बिपति पारै, बड़ी बिपरीति है ।
महागुन गहैं दोषैं, औषदि हू रोग पोषैं,
ऐसैं जान ! रस माहिं बिरस अनीति है ।
दिनन को फेर मोहि, तुम मन फेरि डारयौ,
अहो घनआनँद ! न जानौं कैसें बीतिहै ।।२२४।।

२२३ तेरो—एती (का०, प्रयाग) । सेइ०—सोप मरे (कवित्त) । सौं—स्यौं (कवि०, प्रयाग) । दुकयौ—ढुक्यौ (प्रयाग) । ठौर—ठैर (सभा) । जंदे०—जो को है हू (कालजी) । २२४—गहैं—साधैं (कौक०) । एहो—अहो । कैसैं—कैसी (राम) । २२५ मान—पोन (राम) । बिषम-विष-अनुरंग (कवित्त) । नक—नल (राम) । नै—न्यौं (का०, प्रयाग) ।

न देखना [या 'निहारना' को सकर्मक मानें तो न देखा] । हैं = हाँ । हरि० = रात बीत चली । हरी० — चंद्र गुणवाली होकर भी न हरी (चंद्रमा से ही तुलना सीख लेती) । [२२३] मरे० = यदि तेरी स्वाभाविक माधुरी की इच्छा करूँ तो वह सुधा ही मारे डाल रही है । यदि (शीतलता के लिए) चरण-कमलों में छिपना चाहूँ तो उनकी आशा जलाती है । उनके प्राप्त होने की भी संभावना नहीं । रोष = जोश, साहस । [२२४] बिरस = नीरसता ।

गरल गुमान की गरावनि दुला को पान।
करि करि, सौंस रैनि प्रान पट घोटियो।
हेत-खेत-धूरि चूरि चूरि भोस पायें राखि,
विषम उदेग-थान-आग उर औंटियो।
जान प्यारे सौं न मन आनैं तौ अनंदघन,
भूलि, तू न सुमिरि परेखें चक चोटियो।
जिन्हें यौं सिराति छाती तोहि वै लगति ताती,
तेरे बाँटे आयौ है अँगारनि पै लोटियो ॥२२५॥

बिकल बिषाद-भरे ताही की तरफ तकि,
दामिनी हूँ लहकि बहकि यौं जर्यौ करै।
जीवन-अधार-घन धूरनि पुकारनि लौं,
आरत पपीहा तिन कूकनि कर्यौ करै।
अथिर उदेग-गति देखि कै अनंदघन,
पौन बिडर्यौ सो बन-बीथिनि भर्यौ करै।
सूँड़ें न परति मेरे जान जान प्यारी! तेरे,
बिरही कौं हेरि मेघ आँसुनि झर्यौ करै ॥२२६॥

सवैया

पलकौं कलपै कलपौं पलकै सम होत सँजोग बियोग दुहूँ।
बिपरीति-भरी हित-रीति खरी समझी न परै समझैं कहु हूँ।
घनआनँद जान सजीवन सौं, कहियै सो समै लहियै न कहूँ।
तिन हेरें अँधेरें ई ऐसें लखें, बिन सूझ तें पूर्यो अबूझ कुहूँ ॥२२७॥

तीछन ईछन बान बखान सों पैनी दसान लै सान चढ़ावत।
प्रानन प्यासे, भरे अति पानिप, मायल घायल चोप बढ़ावत।

२२६—पुकार०—पुकार धुनि (ठाकु०, प्रयाग)। २२७—तिन—तिन (राम)। २२८—दसान—दमाहि (प्रयाग); दमादि (ठाकु०)। प्यासे—प्यारे। चढ़ावत

[२२५] गरावनि=गलानेवाली। पायें०=हठकर। उर०=छाती पर सहना। परेखें=कटाक्ष से घायल होने का पछतावा। [२२६] बिडर्यौ=भय खाया सा होकर। [२२७] पलकौं०=संयोग में कल्प भी पल के समान शीघ्र बीतता था। कुहूँ=

यौं घनआनँद छावत भावत जान-सजीवन-ओर तें आवत।
लोग हैं लागि कवित्त बनावत मोहिं तौ मेरे कवित्त बनावत ॥२२८॥

चलि आई सदा रसरीति यहै, किधौं मो निरमोही को मोह नयौ।
घनआनँद प्रान हरैं हँसि जान, न जानि परै उघर्यौ उनयौ।
चित चाह-निबाह को भार रह्यौ, हिय कै नित ही दुख-दाह दयौ।
उर आस बिसासन त्रास तजैं बसि एक ही गाम बिदेस भयौ ॥२२९॥

कबित्त

मोरचंद्रिका मौं मन देखन कौं धरे रहैं,
सूछम अगाध-रूप-साध उर आनहीं।
जाहि सूझ तिन हूँ सौं देखि बूझौ ऐसी दसा,
ताहि तें बिचारै जड़ कैसें पहचानहीं।
जान प्रानप्यारे के बिलोकैं अबिलोकिबे कौं,
हरष-बिषाद-स्वाद-बाद अनुमानहीं।
चाह मीठी पीर जिन्हें उठति अनंदघन,
तेई आँखैं सास्नैं और पाँखैं कहा जानहीं ॥२३०॥

रति-सुख-स्वेद-ओप्यौ आनन बिलोकि प्यारी,
प्रानन्नि सिहाय मोह-मादिक मदा छकै।
पीतपट-छोर लै लै ढोरत समीर धीर,
चुंबन कौ आमिनि लुभाय रहि ना सकै।
परसि सरस बिधि कोचर चिबुक र्यौं हा,
कंपित करनि ढेलि-चाव-दावैं हौ सकै।

चढ़ावत (कवित्त)। २३०—रहैं—रहैं (ठाकु०, प्रयाग)। तिन०—तेन हूँ सौं देखत भूलो की (वही)। अबिलोकिबे—अवलोकिबे (ठाकु०)।

(सुज) पूरा ठीक। कुहूँ=अमावस्या। [२२८] मायल=प्रवृत्त। मेरे०=अर्थात् मेरी कविता का उद्गार स्वाभाविक है। [२२९] उनयौ=छाया। बिसासन=विश्वासघातों के भय से। [२३०] बिलोकैं०=प्रिय के देखने और न देखने को हर्ष और विषाद समझती हैं। सास्नैं०=वस्तुतः वे ही ठीक साखी हैं। अन्य

लाजनि लसौंहीं चितवनि चाहि जान प्यारी,
सौंधनि अनंदघन हाँसी सौं भरीन कै ॥२३१॥

भूलनि करी है सुधि जान है अजान भए,
खुलि मिले कपट सौं निपट रसाल हौ ।
त्यागहि आदर दीनौ मान सनमान कीनौ,
अनुचित धरि चित उचित लहा लही ।
जहाँ जब जैसें तहाँ तब तैसें नीके रहौ,
सब बिधि प्रानप्यारे हित आलबाल हौ ।
मन तुम मोह्यौ ताहि नेकु राखे रहियौ जू,
रहौ घनआनँद जू मेरे गुनमाल हौ ॥२३२॥

सवैया

जौ बहि पौन मदा घनघोर लौं चातक मोर उछाहनि फूलते ।
त्यौं घनआनँद औसर साजि मंजरानि झूलि हिंडोरनि झूलते ।
सौंघम तें हराई जु [illegible] द्रुम-अंकनि लागतीं हूँ रसमूल तें ।
तौ सजनी! नित-न्यावन जान सुजान इतै कै हित कौं सुधि भूलते ॥२३३॥

कबित्त

उठे बढ़ि भोर चंद चोर लाह लाह दोऊ,
मति-गति-छकी न लकत भलि नेह कौं ।

२३१—चाहि—चाहनि (राम)। सरस—परस (कवि०)। भर—भल (राम)। २३२—जैसें—तुम जैसें जहाँ तैसें नीके रहौ अब (राम)। जू मेरे—जा मरें (प्रसाद)। २३३—मन—नित (प्रसाद)। अंकन—अंगनि (कवि०)। इत कैन्हुँ पै (राम)।

जो मोरपंख में की भाँति हैं वा स्वर्ग की होती हैं। [२३२] खोल्यौ = खुला हुआ। सिहाय = ललचाकर होकर मादिक = मद, शराब। बोरत० = हुआ करते हैं। चिबुक = ठुड्डी। भरोन = भरना अर्थात् वृद्धि द्वारा। [२३४] भूलनि० = मुझे भूलने की ही याद है। लहन = लहना। लहा = लाभ, हित० = प्रेम के थाला। [२३३] हराई = मारी हुई। [२३४] भेद = युक्ति।

लाई पियराई और बिथा हियराई जानै,
जकै थकै बैन नैन, निदरत मेह कौं ।
दुसह दसाहि देखें सबै बिसमय होत,
खग मृग द्रुम बेली बिसरत देह कौं ।
जान घनआनँद अनोखो अतिसारी नेह,
दुहूँ दिसि बिषम रच्यौ बिरंचि बेह कौं ॥२३४॥

सवैया

मोहि न मोचकौ, जागै न आग, अनोखियै लाग सु औचिन लागी ।
देखन फूल, पै भूल भरी यह सूल रहै नित ही थिन जागी ।
चटक जान सलोनीन - मूरति रूप-अनूप महारस - पागी ।
कौन बियोग-दसा घनआनँद मो गति-सग रहै अति आगी ॥२३५॥
भाग सुजान मिले तो महासुख अंगन आय समाय रह्यौ है ।
स्वाद जगै रसरासिपगे प्रान, जानत देई न जात कह्यौ है ।
है उर एक भए बुधि कैं घनआनँद सुद्ध सनेह लह्यौ है ।
रूप-अनूप-तरंगनि चाहि तऊ चित चाह-प्रवाह बह्यौ है ॥२३६॥
अति रूप की रासि रसालियै मूरति जोहें जये दृग रीझि छकी ।
घनआनँद जान-चरित्र के रंगनि चित्र-बिचित्र दसा सौं थकी ।
अनदेखें दई जु कछू गति देखियै जीव ही जानै न क्यौंहि सकी ।
यह नेह सँदेह अदेह करै पोखि हारि बिचारि बिचारि जकी ॥२३७॥
स्याम घटा लपटी थिर बीज कि सोहै अमावस-अंक उज्यारी ।
धूम के पुंज में ज्वाल की माल सी पै दृग-सीतलता-सुखकारी ।

२३४—चाह—जान (प्रसाद)। २३५—पै—कै (कवि०)। नह—हिय (प्रसाद)। २३७—सँदेह—सनेह (कवि०)।

बेह० = (बेध) छेदने के लिए। [२३५] देखन० = प्रिय को जब तक देखती हूँ तभी तक प्रफुल्लता रहती है। पागी = सनी हुई, मिली हुई। [२३६] भाग० = संगिकर मिल गया है। [२३७] न क्यौंहि० = विवेचना करके समझ नहीं सकती। [२३८] बीज = (विद्युत्) बिजली। धूम =

कै झुकि छायौ सिंगार निहारि सुजान-तिया-तन-दीपति प्यारी ।
कैसी फबी घनआनँद चोपनि सौं पहिरी चुनि साँवरी सारी ।।२३८।।

किन जाउँ लै जान-सजीवन ! प्रान कौं आन के लेखे न छाहिँ धिजौं ।
इहि मान दसा नित ही दुख-ज्वालऽरु सोचनि लौं अन-बारि भिजौं ।
दुरि आपुन पै हू इकौस मैं मिलौं घनआनँद यौं अनखानि छिजौं ।
डर डीठि के नीठि न देखि सकौं सु अनोखियै रीझि पै रीझि खिजौं ।।२३९।।

मरिबो बिसराम गनै वह तौ यह बापुरो मीत तज्यौ तरसै ।
वह रूप छटा न सहारि सकै वह तेज तबै चितवै बरसै ।
घनआनँद कौन अनोखी दसा मति आवरी बावरी ह्वै थरसै ।
बिछुरैं मिलैं मीन-पतंग-दसा कहा मो जिय की गति कौं परसै ।।२४०।।

कवित्त

तेरे देखिबे कौं सब ही त्यौं अनदेखी करौ,
तऊ जौ न देखै तौ दिखाऊँ काहि गति रे ।
सुनि निरमोही एक तोही सौं लगाय मोही,
सोहीं कहि कैसैं ऐसी निठुराई अति रे ।
बिष सी कथानि मानि सुधा पान करौं जान !
जीवन-निधान है बिसासी मारि मति रे ।

२३८ छाहीं-छाहिँ (कवि०)। आपुन०-आप ना हू (कवित्त)। रीझि०-रीझान (कवि०)। २४०-मीच-मीत (कवित्त)। छटा न-छटानि (कवि०)। दसा-कथा (वही)।

छुऐं मैं लपटों की भाँति। सिंगार = शृंगार (कविपरंपरा में यह श्यामवर्ण माना जाता है)। [२३९] न धिजौं = नहीं समझा जाता। दुरि० = फिर भी स्वयं अपनी ही ओर से छिपकर आपसे अकेले में मिलता हूँ। डर० = दृष्टि लग जाने के भय से आप की शोभा भी भली भाँति नहीं देख पाती। अपनी इसी विलक्षण रीझ पर रीझकर खीझती रहती हूँ। [२४०] वह = मीन। यह = मेरा मन। न सहारि = सँभाल नहीं सकता। यह = मेरा मन। तपै = तपता है। आवरी = व्याकुल। थरसै = त्रस्त होती है।

जाहि जो भजै सो ताहि तजै घनआनँद क्यौं,
हित के हितून, काहू कहूँ पाई प्रीति रे ? ।।२४१।।

लगी है लगनि प्यारे पगी है सुरति तोसौं,
जगी है बिकलताई ठगी सी सदा रहौं ।
जियरा उड्यौ सो डोलै हियरा धक्योई करै,
पियराई छाई तन, सियराई दै दहौं ।
ऊनो भयो जीबो अब सूनो सब जग दीसै,
दूनो दूनो दुख एक एक छिन मैं सहौं ।
तेरे तौ न लेखो, मोहि मारत परेखो महा,
जान घनआनँद पै खोयबो लहो कहौं ।।२४२।।

कौन की सरन जैयै आपु त्यौं न काहू पैयै,
सूनो सो चितैयै जग, दैया कित कूकियै ।
लोचनि समैयै, मति हेरत हिरैयै, दृग
आँसुनि भिजैयै, ताप तैयै नल लूकियै ।
क्यौं करि चितैयै, कैसैं कहौं भौं रितैयै मन,
बिना जान प्यारे अब जीवन तें चूकियै ।
बनो है कठिन महा, मोहिं घनआनँद यौं,
मीचौ मारि गई आसरो न जित ढूकियै ।।२४३।।

अधिक बधिक तैं सुजान ! रीति रावरी है,
कपट - चुगो दै फिरि निपट करौ बुरी ।

२४१-तऊ-तौ हू (प्रभा)। जाहि०-जाहि जीन (कवि०)। कहूँ-कहू (कवित्त)। २४२-धक्यो-धक्यौई (कवि०)। सब-जग (कवि०)। पै-पौ (कवि०, प्रभा)। २४३-गति-रति (कवि०, प्रभा)। ढूंकियै-ढूकियै (प्रभा)।

[२४१] प्रीति=प्रतीति। [२४२] जियरा = जीव, प्राण। हियरा = हृदय, छाती। धक्योई० = जलता ही रहता है। दै = तापकर। खोयबो = पाने का ही भाव खोकर है, अपने को खो बैठते हैं। [२४३] आपु त्यौं = आपकी ओर उन्मुख होनेवाला किसी को नहीं पाते। रितैयै = मन कहाँ हलका करूँ।

गुननि पकरि लै, निपाँख करि छोरि देहु,
मरै न जियै, सो महा बिषम दया-छुरी।
हौं न जानौं कौन धौं दी या मैं सिद्धि स्वारथ की,
लखी क्यौं परति प्यारे अंतर-कथा दुरी।
कैसें आसा-द्रुम पै बसेरो लहै प्रान-खग,
बनक-निकाई घनआनँद नई जुरी ॥२४४॥

थिर को उजार है कै नरक को औंवा है, कि
पलकौ न थाहै अथाह है भक चाल को।
बीजुरी को बंधु किधौं दुख ही को सिंधु है, कि
महामोह-अंध दंड अतन-अलाल को।
द्रोह को दिनेस कै उजार निज देस, किधौं
आतम-कलेस है कि जंत्र सुख-साल को।
बैरी मन मेरो घनआनँद सुजान प्यारे,
कैसें हित राख्यौ जू निहारि पच्छपात को ॥२४५॥

मेरो जीव जो न हि चाहै, तू न तनको उमाहै,
मीन-जल-कथा है कि या हू तें अनैसियै।
तो बिन जो मरै, छूटि भरै, जउ कहा हरै,
भरौं नीं, न मरौं जान! हियै अवरेखियै।
पलकौ बिछोह-आगि कलपी कलप लागै,
बिलखौं सदाई, नेकु तलफनि देखियै।

२४४—मरै०—मरहि न जियै (राम)। हौं०—हौं स (श्याम); या द्वा (काशि०) बनक—बानक (प्रभाग); आनिन (काशि०)। २४५—दुख हिता। (काशि०)। मोह-धंद (काशि०)। तलफनि—तलफनि (काशि०)।

जीवन०=मरते भी तो उनके बिना जैसे नहीं। मरौं=मृत्यु भी। छूटि०=छिप सकूँ। [२४४] दुरी=गुप्त। निपाँख=पंख से हीन; पक्ष या सहायक से रहित। हौं=थी। बनक=वन की वस्तु, फँसाने का चारा; सजधज। [२४५] बवा=बैठा। औंवा=आँवाँ। भक चाल०=भयंकर। अतन०=

सूनो जग हेरौं रे असोही! कहि काहि टेरौं,
आनँद के घन ऐसी कौन लेखे लेखियै ॥२४६॥

सवैया

अनमानिबोई मन मानि रह्यौ अरु मौन हूँ सौं कछु बोलत है।
चलिहारनि ओर निहारि रहौ नट-गौहि-त्यौं अंतर खोलति है।
हित-संग महा रसरंग बढ्यौ, जडताइयै मोहन डोलति है।
घनआनँद जान पिया के हियें किलकी फिरि गांठ कलोलति है ॥२४७॥

तुम साँची कहौ हित के चित को कित भूल-भरे इत भाय परे।
कि कहूँ पहिलो परतीति-मढ़े घनआनँद छाय सुभाय ढरे।
अलि बैठो सुजान तौ को बरजै भरि पावन पाबन नैन करे।
चकि से जकि से निरखौं परखौं सुनिहौ चित हैं रग-रंग तरे ॥२४८॥

कहिये सु कहा रहिये गहि मौन, अरी सजनी उन जे जो करी।
परतीति दै कीनी अनीति महा, बिष दीनी दिखाय मिठास-डरी।
इत काहू सों मेल रह्यौ न कछू, उत मिल सी हौं सब बात टरी।
घनआनँद जान सयान को खानि मुराई दुराइ पैं है परी ॥२४९॥

अब यौं पर आवति है सजनी उन सौं सपने हूँ न बोलियै री।
अरु जौ निलजे ह्वै मिलौं तौ मिलौं, मन तें गस-गूज न खोलियै री।
दग ऐंचन कौ कछु सो है नहीं, इन मोहन भूलि न डोलियै री।
घनआनँद जान महा कपटी पिय काहूँ परेखनि छोलियै री ॥२५०॥

२४७—चलिहारनि—बलिहारनि (काशि०)। २४८—चित रंग (प्रभाग)। २४८—भरि०—भरिपाइन। २४९—मुराइ दुराइ (काशि०)। २५०—री—जू (प्रभाग) ने—ओं (काशि०)।

काल के पश्चात्ताप का दंड है। जंत्र=यंत्र। [२४६] भरौं=दिन काटती हूँ। [२४७] ढर०=मन की गाँठ के प्रति हृदय खोल रखा है। मोहन=साथ। फिरि०=रूठकर मुँह फेरे बैठी हुई। [२४८] चित को=चित्त को दाम। पावन=पैरों को। पाबन=पवित्र। [२४९] डरी=डली, टुकड़ा। मुराइ०=आलस्य से पीछे पड़ गया है। [२५०] गस=गाँस की गाँठ।

कवित्त

सुरझाने सबै अंग, रह्यौ न तनक रंग,
 बैरी सु अनंग पीर पारि जारि गयौ ना ।
दूत ये अरसीन सो सहायक समीप याके,
 महा मतवारौ कहूँ काहू तैं जु नयौ ना ।
नीके नए नीके जी के गाहक सरनि लै लै,
 बेधै मन कौं कपूत पिता-मात-मयौ ना ।
पवन - गवन - संग प्रानिन पठाएहीं तौं,
 जान घनआनँद कौ आवन जौं भयौ ना ॥२५१॥

सवैया

वारनि भौंर-कुमार भजैं, पुहुपावलि हाम-पंचकामहिं पूजति ।
पाठ कियौ करैं आठ हू जाम सु बोलनि मंजिलै कोकिला कूजति ।
वे घनआनँद रीझि-छए तकि तो छवि आन कहा अँखियान लूजति ।
ऐसी बसंत-लजावनि अंग सौं जान हू मानगई किन लूजति ॥२५२॥
अधरामृत-पान के छाक छके कर चाँपि कपोल-सवाद-पगे ।
घनआनँद भीजि रहे रिझवार, खगे सब अंग अनंग-दगे ।
करि खंडन मंडन मंडन कै निरखैं सें अखंडित लोभ लगे ।
सुखदान सुजान समान महा सु कहा कहौं आरसी भाग जगे ॥२५३॥

कवित्त

राधा नवयौवन विलास कौ बसंत जहाँ,
 अंग अंग रंगनि विकास ही कौ भौर है ।
प्यारी वनमाली घनआनँद सुजान सेवैं,
 जाहि देखि काम के हियें मैं बाढ़ि भौर है ।

२५१—भरै भायें (कांक०, प्रयाग)। तैनकु—नेकु (वही)। ... (कांक०)। २५२—अन... (प्रयाग)। २५३—... (कांक०)।

[२५१] पिता = अर्थात मन। [२५२] भजैं = सेवा करते हैं। [२५३] खगे = लगे। मंडन = कपोलपाली। [२५४] सांसन = श्वासों से।

सुरति - समाज आजैं कोकिला-कुहूक राजैं,
 सांसन अनेक सुख - सौरभ - समीर है ।
स्वेद - मकरंद औ मनोरथ मधुप - पुंज,
 मंजु वृंदावन देस जमुना के तीर है ॥२५४॥

सवैया

निमरहीन भयौ उर-मांझ अरौ, छवि रंग-भरी मुरि चाहनि की ।
तकि मोरनि त्यौं चख डोर रहे, ढरि गो हिय ढोरनि बाहनि की ।
चट दै कटि पै बटि प्रान गए, गति सौं मति मैं अवगाहनि की ।
घनआनँद जान लख्यौ जब तैं जक लागियै मोहिं कराहनि की ॥२५५॥
किधौं नेह निरोध बढ्यौ सब सौं उर आवत कौन के लाज गई ।
जिहि के भरि भार पहार ढबै, जग-मांझ भई तिन तैं हरई ।
दृग काहि लगे जु कहूँ न लगैं, मन-मानिक की अनखानि ठई ।
घनआनँद जान अचौं नहिं जानत, कैसे अनैसे ह्वै हाय दई ॥२५६॥
इन बाट परी सुधि रावरे भूलनि कैसैं उराहनो दीजियै जू ।
अब तौ सब सीस चढ़ाय लई जु कछू मन भाई सु कीजियै जू ।
घनआनँद जीवन-प्रान सुजान ! तिहारियै बातनि जीजियै जू ।
नित नीके रहौ तुम्हैं चाड़ कहा पै असीस हमारियौ लीजियै जू ॥२५७॥

२५४—... (कांक०, प्रयाग)। सुरति—सुरत (प्रयाग)। राजैं—जागैं (राम)। स्वेद-स्वाद। औ—औं (राम)। २५५—... (प्रयाग) ... (कांक०)। ढोरनि—... (कांक०)। ... (कवित्त)। २५६—किधौं—किन (प्रयाग)। नेह—नेक (कांक०)। ... (कांक०, प्रयाग)। मानिक०—... (कांक०)। ठई—लई (कांक०)। ... (कवित्त)। २५७—हमारियौ—हमारी हू (कांक०)।

[२५५] बाट० = साथ लगे। बाहु = प्रवाह। चट० = कमर को फुरती से घुमाकर। जक = रटन। [२५६] हरई = हल्कापन। अनखानि = रूठना; अन + खानि, खान से अलग। अनैसे = बुरे। [२५७] बाट = हिस्सा। चाड़ =

बधिकौ सुधि लेत, सुन्यौ, इमि कै गति रावरी क्यौं हूँ न बूझि परै ।
मति बावरी आखरी ह्वै जकि जाय, उपाय कहूँ किन सूझि परै ।
घनआनँद यौं अपनाय तजौ इन सोचनि हौं मन मूझि परै ।
दिनरैन सुजान-वियोग के बान सहै जिय पावै न जूझि दरै ॥२५८॥

कवित्त

एरे बीर पौन ! तेरो सबै ओर गौन, बारि
तो सौं और कौन, मनै ढरकौंहीं बानि दै ।
जगत के प्रान, ओछे बड़े सौं समान घन-
आनँद-निधान, सुखदान दुखियानि दै ।
जान उजियारे गुन-भारे अंत मोही प्यारे,
अब ह्वै अमोही बैठे, पीठि पहचानि दै ।
बिरह-बिथाहि मूरि, आँखिन मैं राखौं पूरि,
धूरि तिन पायनि की हा हा ! नेकु आनि दै ॥२५९॥
एक आस एकै बिसवास प्रान गहैं बास,
और पहचानि इन्हैं रही काहू सौं न है ।
चातिक लौं चाहैं घनआनँद तिहारी ओर,
आठौं जाम नाम लैं, बिसारि दीनी मौन है ।
जीवन-अधार जान सुनियै पुकार नेकु,
अनाकानी दैबो दैया प्यारे कैसो लौन है ।
नेह-निधि प्यारे गुन-भारे ह्वै न रूखे हूजै,
ऐसी तुम करौ तौ बिचारन कौं कौन है ॥२६०॥

२५८—क्यौं०—क्यौं करि। २५९—एरे—अरे (काशि०, प्रभात)। बारि—बौरि (कामता); बारि (संग्रह)। २६०—एक—एकै (संग्रह)। बिचारन—बिचारनि (काशि०, प्रभात)।

उत्कंठा। [२५८] बावरी=व्याकुल। सूझि०=सूझता आता है। न जूझि०=मर नहीं जाता। [२५९] वारि=निछावर होती हूँ। अंत=अन्यत्र या अंत में। पीठि०=पहचानकर विमुख हो गए या पहचान से विमुख हो गए। [२६०] गहैं=ठहरते हैं। कौं=के लिए।

हमैं तुम्हैं आजु लौं न अंतर हो प्रानप्यारे,
कहाँ तैं दुराव मो बैरी आड़े आनि ह्वै भयौ ।
जियरा बिचारो इन सोचनि समाय जाय,
हियरा उदेगनि उजार सम ह्वै गयौ ।
रावरे हू रंचक निहारि देखौ ज्ञानमनि,
कौन के सराप आय महादुख यौं दयौ ।
मारि डारि दीजै ऐसो बीच बीच भलो नाहिं,
बड़े रसभीनो घनआनँद रहै छयौ ॥२६१॥
अंतर गठीले मुख ढीले ढीले बैन बोलौ,
सुंदर सुजान तऊ प्रानन खरे खगौ ।
साँच की सी मूरति ह्वै आँखिन मैं पैठौ आय,
महा निरमोही मोह मौं मढ़े हियो ठगौ ।
आनँद के घन उघरे पै छल छाय लेत,
कटुताई भरे गोभ गोमहि अमी पगौ ।
चाह-मतवारो मति भई है हमारी देखौ,
कपट करे हू प्यारे लंपट भले लगौ ॥२६२॥

सवैया

सौंधे की बास उसासहि रोकति, चंदन दाहक गाहक जी को ।
नैननि बैरी सो है री गुलाल, अबीर उड़ावत धीरज ही को ।
राग बिराग धमार त्यौं धार सी, लौटि परयौ ढँग यौं सब ही को ।
रंग-रचावन जान बिना घनआनँद लागत फागुन फीको ॥२६३॥
सुनि री सजनी ! रजनी की कथा इन नैन-चकोरन ज्यौं बितई ।
मुख-चंद सुजान सजीवन को लखि पावै भई कछु रीति नई ।

२६१—निपट—निपटै (काशि०, प्रभात)। २६४—लोग—जोग (प्रभात)।

[२६१] आड़े=सामने। [२६२] खगौ=धँसते हो। उघरे=प्रकट हो। [२६३] सौंधे=सुगंधित पदार्थ। अबीर=अभ्रक का चूर्ण, बुक्का। धी—हृदय। धमार=होली के गान। धार=तलवार। [२६४] बिस०=विश्वासघातिनी (रात्रि)।

अभिलाषनि आतुरताई-घटा नव ह्वै घनआनँद आनि छई ।
सु बिहाल न जानि परी भ्रम सौं कब ह्वै बिसवासिनि बीति गई ॥२६४॥

मन जैसैं कछू तुम्हैं चाहत है सु बखानियै कैसैं सुजान हौ ही ।
इन प्राननि एक सदा गति रावरे, बावरे लौं लगियैं नित लौ ।
बुधि औ सुधि नैननि बैननि मैं करि बास निरंतर अंतर गौ ।
उघरौ जग छाय रहे घनआनँद चातिक ज्यौं तकियै अब तौ ॥२६५॥

लगियै रहै लालसा देखन की किहिं भाँति भई निसद्यौस कहै ।
करि भौंर भरी यह पीर महा बिरहा तनकौ छिन तें न हटै ।
घनआनँद जान-सँजोग-मसी, बिसमै बुधि एकहि बेर बटै ।
सपनौ सो टरै किहि सौगुनौ चेटक बाढ़त छाहत पोटि घटै ॥२६६॥

अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं ।
तहाँ साँचे चलैं तजि आपुनपौ झझकैं कपटी जे निसाँक नहीं ।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ इत एक तें दूसरो आँक नहीं ।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ लला मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं ॥२६७॥

कवित्त

कहबे मधुर लागै ताको बिष अंत भरे,
याहि देखें रस हू मैं कटुता बसति है ।
वाके एक मुख ही तें बाढ़त बिकार तन,
यह सरबंग आनि प्रानलि गसति है ।

२६५—लगियैं—जगियैं (काशि०) । २६६—पीर—पीर (प्रयाग) । २६७—इत—यहाँ (कांथा) । लला—अरी (वही) ।

[२६५] लौ=लगन । अंतर=मन । गौ=चला गया । उघरौ=प्रगट, हट गया । [२६६] बिसमै०—बुद्धि एकबारगी आश्चर्य में लीन हो जाती है । चेटक=माया । [२६७] बाँक=वक्र । निसाँक=निःशंक । आँक=अंक, चिह्न । मन=हृदय ; ४० सेर । छटाँक=थोड़ा ; सेर का सोलहवाँ भाग । 'छटाँक' को उलटा पढ़ने से 'कटाँछ' होता है अथवा छटा+अंक=शोभा की

सुंदर सुजान जू सजीवन निहारें ध्यान,
तासौं कोड़िगुनी ह्वै लहरि सरसनि है ।
पापिनि हमारी भारी साँपिनि बिना बिसारी,
बैरिनि अनोखी मोहिं डाहनि डसति है ॥२६८॥

कारी कूर कोकिला ! कहाँ को बैर काढ़ति री,
कूकि कूकि अब ही करेजो किन कोरि लै ।
पैंड़े परे पापी ये कलापी निसद्यौस ज्यौं ही,
चातक ! घातक त्यौं ही तू हू कान फोरि लै ।
आनँद के घन प्रान-जीवन सुजान बिना,
जानि कै अकेली सब घेरौ दल जोरि लै ।
जौ लौं करैं आवन बिनोद-बरसावन वे,
तौ लौं रे डरारे बजमारे घन घोरि लै ॥२६९॥

सवैया

बैरी बियोग की ऊकनि जारत, कूकि उठैं अचकाँ अधरातक ।
बेधत प्रान, बिना ही कमान सु बान से बोल सौं, कान ह्वै घातक ;
सोचनि ही पचियै पचियै कित, डोलत मो तन आइ महातक ;
वे घनआनँद जाय छये उत, पैंड़े परयौ इत पातकी चातक ॥२७०॥

कवित्त

अंतर मैं बासी पै प्रवासी को सो अंतर है,
मेरी न सुनत दैया आपनीयौ ना कहौ ;

२६८—आसी—आसी (काशि०, प्रयाग) । २७०—ऊकनि—हूकनि (कविता) ई—ई (प्रयाग) ।

झलक । [२६८] रस = रसीले अर्थात् सुखद पदार्थ । सरबंग = सर्वांग । लहरि = विष का वेग । बिसारी = विषवाली । डाहनि= जलन से डाह लगाकर । [२६९] कोरि० = खरोंचकर निकाल ले । पैंड़े० = पीछे पड़े । कलापी = मोर । घेरौ० = घेरनेवाली सेना । बजमारे=वज्र मारने-वाला ; वज्र का मारा हुआ, दुष्ट । घोरि०=गरज ले । [२७०] ऊकनि=जलन

लोचननि तारे ह्वै सुझायौ सब सूझै नाहिं,
बूझी न परति, ऐसें सोचनि कहा दही ।
हौं तौ जानराय, जानै जाहु न अजान यातें,
आनँद के घन छाय छाय उघरे रही ।
मूरति मया की हाहा सूरति दिखैये नेकु,
हमैं खोय या बिधि हो कौन धौं लहा लही ॥२७१॥

सवैया

किन को ढरि ढौ यह ढार अहो जिहिं मो तन आँखिन ढोरत हौ ।
अरसानि गही उहि बानि कछू सरसानि सों आनि निहोरत हौ ।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ तब यौं सब भाँतिन भोरत हौ ।
मन माहिं जो तोरन हो, तौ कहौ बिसवासी सनेह क्यों जोरत हौ ॥२७२॥

घनआनँद प्यारे सुजान ! सुनौ जिहिं भाँतिन हौं दुख-सूल सहौं ।
नहिं आवनि-औधि, न रावरी आस, इते पर एक सी बाट चहौं ।
यह देखि अकारन मेरी दसा कोउ बूझै तौ ऊतर कौन कहौं ।
जिय नेकु बिचारि कै देहु बताय हहा पिय ! दूरि तें पाँय गहौं ॥२७३॥

बिरहा-रवि सों घट-ब्योम तच्यौ बिजुरी सी खिवैं इकली छतियाँ ।
हिय-सागर तें दृग-मेघ भरे उघरे बरसैं दिन औ रतियाँ ।
घनआनँद जान अनोखी दसा, न लखौ धौं कैसें लिखौं पतियाँ ।
नित सावन ओटि सु बैठक मैं टपकें बरुनी तिहिं ओलतियाँ ॥२७४॥

२७१–लागी–लाग । पचासी–पचास (प्रताप) । सूझै–सूझे (राम) । २७४–इकली–इकसी (कवित्त) । नित–नित (कवि०) ओलतियाँ–ओलतियाँ (कवि०, प्रताप) ।

से । तन=ओर । तक=टकटकी । पैंड़े = पीछे पड़ा । [२७१] अंतर=मन । अंतर=पार्थक्य । जानराय = ज्ञानियों में श्रेष्ठ ; खोय=जीवन नष्ट करके । लहा= लाभ । [२७२] ढार=ढलान । मो०=मेरी ओर (अनुरागपूर्वक) देखते थे । बिसवासी=विश्वासघाती । [२७३] चहौं = देखती हूँ । [२७४] घट = शरीर । खिवैं = चमकती हैं । इक लौ=एक ही ढंग से, निरंतर ।

इत भाँवनि भाँवरें भौंर भरैं, उत चाँदनि चाहि चकोर चकैं ।
निसिबासर फूलनि-मूलनि मैं अलि, रूप को बान न क्यों हि सकैं ।
घनआनँद घूँघट-ओट भए नभ भाँवरे लौं चहुँ ओर तकैं ।
पिय के मुख कौतुक देखि सखी ! निज नैन बिसेषि सुजान छकैं ॥२७५॥

कवित्त

मोहन अनूप रूप सुंदर सुजान जू को,
ताहि चाहि मन मोहि दसा महा मोह की ।
अनोखी हिलग दैया ! बिछुरें तौ मिल्यौ चाहै,
मिलेहू मैं मारै जारै खरक बिछोह की ।
कैसें धरौं धीर बीर ! अति ही असाधि पीर,
लगन हौं रोग याहि नीके करि टोह की ।
देख्यौं अनदेखें नहीं अटक्यौ अनँदघन,
ऐसी लागि कहाँ कहा चुंबक औ लोह की ॥२७६॥

सवैया

क्यों हूँ न चैन परै, दिनरैन सु पैंडे परयौ बिरहा बजमारो ।
ज्यों तरसैं न कहूँ छिन एक हू, चाहै सुजान सजीवन प्यारो ।
ऐसो बड़ो घनआनँद बैदनि दैया उपाय तें आवै तँबारो ।
हौं ही भरौं इकलौ, कहौं कौन सौं, जा बिधि होत है साँझ सकारो ॥२७७॥

कवित्त

जोई रात प्यारे-संग बातन न जात जानी,
सोई अब कहाँ तें बहानि लिये आई है ।

२७५–पिय के–पिय री (नहीं) । कौतुक–कौतिग (कवि०) । २७६–खरक–खरक (नहीं) । अनदेखें–अनदेखे (नहीं) । २७७–इकलौ–अकेलो (कवित्त), इकलो (प्रताप) ।

ओलतियाँ=छप्पर का छोर, जहाँ से बरसात का पानी टपकता है, ओरी । [२७५] भाँवनि=भावों से भरकर । न क्यों हि०=निर्णय नहीं कर पाते । [२७६] हिलग=चाह । खरक=खटक । टोह=खोज । [२७७] तँबारो=मूर्छा । सकारो=

जोई दिन कंत-साथ जीवन को फल लाग्यौ,
सोई बिन कंत दैत अंतक दुहाई है।
इनकी तौ रही, मेरे अंग अंग और भए,
सूखी सुख-लता कोंपलनि मुरझाई है।
आली! घनआनँद सुजान सौं बिछुरि परें,
आपौ न मिलत महा बिपरीति छाई है ॥२७८॥

सवैया

जिन आँखिन रूप-चिन्हारि भई तिनकौ निन नींद हौं जागनि है।
हित-पीर सौं पूरित जो हियरा, फिरि ताहि कहा कहुँ लागनि है।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ जियराहि सदा दुख-दागनि है।
सुखमै मुखचंद बिना निरखें नख तें सिख लौं बिष-पागनि है ॥२७९॥

कवित्त

पर बस आँखिन मैं जित तित तुम्हैं देखौं,
इतै हू पै जान! भई नई बिरहामई।
बिषम उदेग-आगि लपटैं अंतर लागि,
कैसैं कहौं जैसें कछू नचनि महा दई।
फूटि फूटि टूक टूक ह्वै कै जोड़ जाय हियो,
बाँचिबो अचंभो, साँचौ निदरि करें गई।
आनँद के घन लखौं अनलखौं दुहूँ ओर,
दईमारी हारी हम आप तौ निरदई ॥२८०॥

सवैया

बिरच्यौ किहि दोष न जानि सकौं, जु गयौ मन मो तजि रोषन तें।
जिय! ता बिन यौं घन आतुर क्यौं तब तौ ननकौ बिरमायौ न तैं।

२७९—चंद्र०—रती रहा (कवित)। २८०—हिंदे०-जुरि फाटि (प्रथ)।

सवैया। [२७८] अंतक=यम। कोंपलनि=कोंपलें ही, नई नई हों। आपौ=अपनापन; आप, जल ('घन' के साहचर्य से)। [२७९] सुखमै=सुखमय। [२८०] अंतर=अंतर, मन। लपनि=ताप; निदर०=निरादर करके स्वयं भी चली गई। निरदई=निर्दय; निर+दई, दैव के शासन से परे। [२८१]

घनआनँद जान अमोही महा अपनाय हते पर त्यागि हनैं।
अधबीच परयौ दुख-जाल जरैं सठ! को सुख को हित द्वार गनैं ॥२८१॥

पूरन प्रेम को मंत्र महा पन, जा मधि सोधि सुधारि है लेख्यौ।
ताही के चारु चरित्र बिचित्रनि यौं पचि कै रचि राखि बिसेख्यौ।
ऐसो हियौ-हित-पत्र पवित्र जु आन-कथा न कहूँ अवरेख्यौ।
सो घनआनँद जान अजान लौं टूक कियौ पर बाँचि न देख्यौ ॥२८२॥

जीभ की बात जनाइये क्यौं करि जान कहाय अजाननि आगौ।
तीरन मारि कै पीर न पावत एक सौ मानत रोइबो रागौ।
ऐसी बनी घनआनँद आनि जु आन न सूझत, सो किन त्यागौ।
प्रान मरैंगे, भरैंगे बिथा, पै अमोही सौं काहू को मोह न लागौ ॥२८३॥

तोहिं तौ मेल, पै मो हित सेज सौ, परे अमोही बिछोह महा दुख।
जाहि जु लागै सु ताहि गहैगो दहैगो, परयौ लहि तू नैं सदा सुख।
एक ही टेक, न दूसरी जानति, जीवन-प्रान सुजान लियें रुख।
ऐसी लुराई तौ मेरो कहा बस, देखिहौं पीठि, दुराइहौ जो मुख ॥२८४॥

छप्पय

मही-दूध सम गनैं, हंस-बग भेद न आनैं।
कोकिल-काक न ज्ञान, काँच-मनि एक प्रमानैं।
चंदन-ढाक समान, राँग-रूपा सँग तोलैं।
बिन बिबेक गुन-दोष मूढ़-कबि ब्यौरि न बोलैं।
प्रेम-नेम, हित-चतुरई, जे न बिचारत नेकु मन।
सपने हू न बिलंबियै, छिन तिन ढिंग आनँदघन ॥२८५॥

२८३—जनाइयै उतावल (कवित्त)। २८४—रहौंगी-पै कर्यो न (कवित्त)। लुराई-लुराय (वही)। २८५—मग—सग (कवित्त)। मेम—मेम (वही)।

बिरच्यौ=उदास हो गया। को०=किस सुख के लिए दरवाजे पर चिपके रहें। [२८२] पन=प्रतिज्ञा; न अवरेख्यौ=नहीं अंकित की। [२८३] रागौ=अनुराग, बढ़कर। पीर०=पीड़ा नहीं समझता। रागौ=गाना। [२८४] सेल=बरछा (कष्टदायक)। [२८५] मही=मट्ठा। ढाक=पलाश। राँग=राँगा।

कहियै काहि जनाय हाय जो मो मधि बीतै।
जागनि बुझै दुख-ज्वाल धकै, निसिबासर ही तै।
दुसह सुजान बियोग बसौं नाहिं संजोग लिए।
बाहिर परै नहिं सकै गमै जियरा जिन को लिए।
अहो दई-रचना निरखि, रीझि खीझि मुरझौ सु मन।
ऐसी बिरंचि बिरंचि को कहा सरपौ आनंदघन ॥२८६॥

सवैया

प्यार को सो सपनो हँसि हेरनि ऐसो चितौनि कहाँ कहाँ पाई।
संक महाबिष-मोचन प्रान सुधाई-सनी मुसक्यानि-सुधाई।
यौं घनआनँद चेटक मूरति लै जल अंबर ज्वाल समाई।
कैसैं दुराइहौ जान अमोहिं, मिलाप मैं पतियौ ऊमिलताई ॥२८७॥

कबित्त

मिलत न क्यौं हूँ भरे रावरी अमिलताई,
हिये मैं फिरै बिसाल जे बिछोह-छन हैं।
प्रीतम अनेरे मेरे मूसन सबेरे प्रान,
बिष-भोग बिषम-बिसास-घात-हन हैं।
प्यार मैं पटम पूरा, सुन्यौ हू न हो सु देख्यौ,
जाग परी जान ये अगोहिन के भन हैं।
पौन को प्रवेस हो न जहाँ घनआनँद पै,
तहाँ लौं कहाँ तैं बीच परे परदन हैं ॥२८८॥

२८६–आनंद–कहा (बाँके०)। जागनि–जागै न (वही)। २८७–जल–जब (राम)। २८८–बिसाल–बिलास (बाँके०)। परदन–परम (बाँके०)।

कहियै=बताऊँ भी। बिरंचि=पंडित। खीझि=विवेक करके। [२८६] बुझै=बुझती हूँ; विचलित पड़ती हूँ। धकै=तपती हूँ। बाहिर०—सहन करता नहीं। गमै=भटकता है। सरपौ=काम निकला। [२८७] बिष—विष मिला देनेवाली; सुधाई=अमृत से ही। सुधाई=सीधापन। चेटक=मायाविनी। ऊमिलताई=अजनबीपन; रुखाई। [२८८] मिलत०=नहीं भरते (घाव)। अमिलताई=

अनाकनी-आरसी निहारिबो करौगे कौ लौं,
कहा मो चकित दसा त्यौं न दीठि डोलिहै।
मौन हू सौं देखिहौं कितेक पन पालिहौ जू,
कूक-भरी मूकता बुलाय आप बोलिहै।
जान घनआनँद! यौं मोहिं तुम्हैं पैज परी,
जानियैगो टेक टरें कौन धौं मलोलिहै।
रुई दिये रहौगे कहाँ लौं बहरायबे की,
कबहूँ तौ मेरियै पुकार कान खोलिहै ॥२८९॥

सवैया

घनआनँद जान! सुनौ चित दै हित-रीति दई तुम तौ तजि कै।
इत साहस सौं घन संकट कोटिक आप सराजन कौं साजि कै।
मन के पन पूरन पूरि रह्यौ सु भजै किन या बिधि सौं भजि कै।
यह देखि सनेह-बिदेह-दसा अंत होन हँ दीन गए लजि कै ॥२९०॥

कबित्त

रूप-उजियारे जान! प्रानन के प्यारे, कब
करौगे जुन्हैया दैया बिरह-महा-तमैं।
सुखद सुधा ल हँसि हेरनि पियाय पिय,
जियहि जिवाय, मारिहौ उदेग से समैं।
सुंदर सुदेस आँखैं चहुँघाँ चमाय, आध,
परसिदौ छबीले जैसैं हुलसि हियैं रमैं।

२८९–जानियैगो–जोहियैगो (बाँके०, प्रयाग)। मेरियै–मेरियै (प्रयाग)।
२९०–घन संकट–घन संकट (वही)। पूरन–पूरि न (वही)।

पड़े रहने की बात; अटाई (रूसना) अर्थात् कपट। छल=पाप; अनेरे=क्रूर; बिलक्षण; बिसास=विश्वासघात। पागे=डाले। [२८९] आरसी=(आदर्श) दर्पण। त्यौं=ओर। कूक-भरी०—रूप को सुनाकर मेरी मूकता (मौन) बोलेगी। पैज=प्रतिज्ञा। मलोलिहै=पछताएगा। बहरायबे की=बहकाने की; बधिर बने रहने को। [२९०] भजै०—कहाँ भागे; भजि कै—अर्थात् प्रेम करके।

ह्वै है सोऊ घरी भाग-उघरी अनंदघन,
सुरस बरसि लाल देखिहौं हरी हमैं ॥२६१॥

सवैया

किंसुक-पुंज मैं फूलि रहे सु लगी बर कौं जु वियोग सिहारैं ।
साता फिरै, न फिरै अबलानि पै, जान मनोज यौं डारत मारैं ।
ह्वै अभिलाषनि पात-निपात कढ़े हिय-सूल कलासनि-डारैं ।
है पतझार बसंत दुहूँ घनआनँद एक ही बार हमारैं ॥२६२॥
जीवनि-मूरति जान सुनौ गति, जौ जिय रावरो प्यार न पावतौ ।
संगम रंग अनंग उमंगनि झूमि न आनँद-अंबुद छावतौ ॥
लाड़िलौ जोबन रयौ अधरासव चोपनि लोभी मनै नहिं प्यावतौ ।
तौ बर-ग्राहक प्रानिनि गाहक ह्वै कै भए को परेखो न आवतौ ॥२६३॥

कवित्त

तेरी बाट हेरत हिराने औ पिराने पल,
थाके ये बिकल नैना ताहि नपि नपि रे ।
हिय मैं उदेग आगि लागि रही रातद्योस,
तोहि कौं अराधौं जोय सासौं तपि तपि रे ।
जान घनआनँद यौं दुसह दुहेली दसा-
बीच परि परि प्रान पिसे चपि चपि रे ।
जीबे तें भई उदास तऊ है मिलन-आस,
जीवहिं जिवाऊँ नाम तेरो जपि जपि रे ॥२६४॥

२६१—हिवै—हियो (कौमु०, प्रथम)। सरसहिं—सुरस (कवित्त)। २६२—सिहारैं—सिहारै (प्रथम)। कढ़ै—रहे (कौमु०)। २६३—प्यार—प्यार (कौमु०); छावतौ—छावतो (कवित्त)।

[२६१] तमैं=अंधकार को। श्रमैं—श्रम को। सुरेस=पवर्ही बरसी। भाग०=भाग्य से उद्घाटित, अंग्य ये भाग। रस=जल, आनंद। [२६२] मनोज=कामदेवरूपी हाथी। पत०—पत्तों का गिरना। डारैं=डालरूपी डाल में। [२६३] घनानँद=आनंद का बादल; घनानंद। अधरासव=होंठ का आसव (शराब)। परेखो=पछतावा। [२६४] हेरत=देखते हुए। हिराने=खो गए।

तोहिं सब गावैं एक तोही कौं बतावैं बेद,
पावैं फल ध्यावैं जैसी भावनानि भरि रे ।
जल-थल-व्यापी सदा अंतरजामी उदार,
जगत मैं नावँ जानराय रह्यौ परि रे ।
एते गुन पाय हाय कौंध घनआनँद यौं,
कैधौं मोहिं दीसयौ निरगुन ह्वौ उघरि रे ।
जौ लौं बिरहागिनि मैं करौं ही पुकार कासौं
दई गयौ तू है निरदई और हारि रे ॥२६५॥
चाँदहिं चकोर करै, सोऊ ससि देह धरै,
मनसा हू रहै, एक देखिबे कौं रहै द्वै ।
ज्ञान हूँ तें आगें जाकी पदवी परम ऊँची,
रस उपजावै तामैं भोगी भोग जात ग्वै ।
जान घनआनँद अनोखो यह प्रेम-पंथ,
भूले ते चलत, रहैं सुधि के थकित ह्वै ।
बुरो जिन मानौ जौ न जानौ कहूँ सीखि लेहु,
रसना के छाले परैं प्यारे नेह-नावँ ल्वै ॥२६६॥

२६५—ध्यावैं—भावैं (प्रथम)। कैधौं—कैधौं धौं (वही)। २६६—ह्वै—ह्वे (प्रथम)। भोगी०—भोगलाग।

पिराने=दुखने लगे। पल=पलकें। थाके=थक गए, हार गए। दुहेली=दुःख की। [२६५] जानराय=ज्ञानियों में श्रेष्ठ। निरगुन=निर्गुण (ब्रह्म); गुणहीन; आकाश। दई—दैव के शासन को न माननेवाला। [२६६] सोऊ=चकोर भी। द्वै—वे एक ही हैं केवल देखने में दो हैं, प्रेम की चरमावस्था में प्रिय और प्रेमी में अभेद हो जाता है। भोगी०=विषयी भी जिसमें डूबकर वशीभूत हो जाते हैं। विषयानंद को भूलकर प्रेमानंद में मग्न हो जाते हैं। भूले—बेहोश, प्रेममग्न। सुधि के०=सचेत होकर चलनेवाले नहीं चल सकते। कै=के ऊपर। [२६७] ध्यास पाना=प्यास को समझना ('चीर पाना' की भाँति)।

सवैया

घनआनंद जीवन-रूप सुजान हौं पावत क्यौं इतराय जहीं ।
अरु फूलि रहै कुसुमाकर से सु कहूँ पहचानि की बास नहीं ।
रसिकाई भरे अपने मन पै सपने रस आस हू पास नहीं ।
पचि कौनै बिरंचि रचे हो कहौ जु हितूनि हसौ हिय त्रास नहीं ॥२९७॥

सूने परे दृग-मीन सुजान जे ते बहुरयौ कब आय बसाइहौ ।
साँचनि ही सुरझ्यौ पिय जो हिय सो सुख सींचि उदेग नसाइहौ ।
हाय दई घनआनँद हूँ क्वार की लौं बियोग के ताप तमाइहौ ।
यहौ हँसि जिन जानौ हहा, हमैं रुखाय कहौ अब काहि हँसाइहौ ॥२९८॥

कवित्त

जहाँ तैं पधारे मेरे नैननि ही पाँव धारे,
बारे ये बिचारे प्रान पैंड़ पैंड़ पै मनौं ।
आतुर न होहु हाहा नेकु फैंट छोरि बैठौ,
मोहिं वा बिसासी को है ब्यौरौ बूझिबे घनौं ।
हाय निरदई कौं हमारी सुधि कैसैं आई,
कौन बिधि दीनी पाती दीन जानि कै भनौं ।
झूठ की सचाई छाक्यौ त्यौं हित-कचाई पाक्यौ,
ताके गुनगन घनआनँद कहा गनौं ॥२९९॥

तिन हो अपूरब सुधाधर-बदन आली,
मित्र-अंक आएँ जोति-जालनि जगत है ।
अमित कलानि ऐन रैनद्यौस एकरस,
केस-तम-संग रंग-राचनि पगत है ।

२९७—कौन—पाँच (वही)। तमाइहौ—तपाइहौ (कवित्त)। हमैं—सौंहैं (कवि०, प्रसाद)। २९९ हौ ते (कवित्त)।

कुसुमाकर=फुलवाड़ी। बास = गंध, पता। [२९८] साँचि=कर। [२९९] पैंड़=डग। झूठ०=झूठ की सच्चाई से भरपूर, झूठ ही झूठ से भरा। हित०=

सुनि जान प्यारी! घनआनँद तैं दूनो दिपै,
लोचन-चकोरनि सौं चोपनि खगत है ।
नीठि दीठि परैं लागत सो किरकिरी लौं,
तेरे आगैं चंद्रमा कलंक सौं लगत है ॥३००॥

उघारि नचे हैं, लोक-लाज तैं बचे हैं, पूरी
चोपनि रचे हैं, सुदरस-लोभी रावरे ।
थके हू थके हैं मोह-मादिक छके हैं अन-
मोल पै बिके हैं दसा, चोसैं चित चाव रे ।
औसर न सोचैं घनआनँद बिमोचैं जल,
लोचैं यहो मूरति अरबरानि आवरे ।
देखि देखि फूलैं औटि भएँ भ्रम भूलैं, देखौ
बिन देखें भए ये बियोगी दृग बावरे ॥३०१॥

सवैया

किन जोग-कथा सु वृथा ही बकौ, यह तौ तब ही अनुमानि लई ।
अपनेई सनेह ठगी, भ्रम तें प्रतिबिंबहि मूरति मानि लई ।
घनआनँद पै हू सुजान हुते, किहि गौं हठ कै सठ-हानि लई ।
अब खेत हो हेत सुभावनि को तजि आजि बचैं हम जानि लई ॥३०२॥

चूर भयौ चित पूरि परेखनि पाहौ कठोर! अजौं दुख पीसत ।
साँस हियें न समाय सकोचनि हाय इते पर बान कसीसत ।

३००—कलंक—कलंकी (कवित्त)। ३०१—भएँ०—भ्रमत हौ (कवित्त)।
३०२—जोग—लोग। बकौ—करौ (कवित्त)। खेत०—खेलत हौ (वही)।

मित्र के कच्चेपन से पूर्ण। [३००] अपूरब=अद्वितीय, पूर्वोत्तर दिशा। सुधाधर=चंद्रमा, सुधा+अधर, अमृतपूर्ण होंठ। मित्र=सूर्य; सखा, प्रेमी। कला=चंद्रमा की १६ कलाएँ; विद्या। नीठि=कठिनाई से। [३०१] मादक=शराब। चोसैं=सोखते हैं, ध्यान में लाते हैं। लोचैं=कामना करते हैं। अरबरानि=हड़-बड़ी, घबराहट। बावरे=शिथिल, दीन। [३०२] गौं=घात। सठ०=पूँजी

ओटनि चोट करौ घनआनँद नीके रहौ निसद्यौस असाँसत ।
प्रानिन बीच बसे हौ सुजान पै आँखिन दोष कहा जु न दीसत ॥३०३॥
ज्यौं बहरै न कहूँ ठहरै मन, देह सौं ब्याहि बिदेस कौ लेखौ ।
देखति जो अखियाँ दुखिया निज नींदहिं सौं सुपनै सु न देखौ ।
हौं तौ सुजान महा घनआनँद पै पहचानि कौ राखौ न रेखौ ।
हाय दई यह कौन भई गति प्रीति मिटै हूँ मिटै न परेखौ ॥३०४॥

कवित्त

रूप-धाराधर झूमि झर लायौ ब्रज पर,
पूरौ भयौ नंद कैं सभागौ परिवार कौ ।
सुजस प्रकास्यौ दुख-दारिद-तिमिर नास्यौ,
चहूँ ओर बाढ्यौ निधि मंगल अपार कौ ।
नीरस परयौ हौ सबै जगत रसौलै बिन,
आयौ घनआनँद समूह सुखसार कौ ।
जिये औ जियैंगे भाँति भाँतिन पपीहा-पुंज,
पियैंगे पियूष प्रीति-मंडन उदार कौ ॥३०५॥
कुल-उजियारी सु दुलारी जसौ कीरति की,
जाके जनमत मैया मोदनि सिहानी है ।
राधा नाम नीकौ घनआनँद अमी कौ सोत,
रंचक उचारैं रसरानी होति बानी है ।
सबै जग मंगल-निकेत भयौ याहि आगैं,
महा-प्रेम-संपति-बिलास-ठकुरानी है ।
गोकुल प्रकास्यौ ब्रजचंद कै उदोत आली,
आज देखौं भाँति भाँति रावल रवानी है ॥३०६॥

३०४—हौं—हैं (प्रताप)।

की हानि । [३०३] असाँसत=खाँचते हो । [३०४] ज्यौं०=जो बहलता नहीं । [३०५] धाराधर=बादल । सभागौ=भाग्यशाली । निधि=समुद्र । [३०६] जसौ०—माता कीर्ति की पुत्री । सिहानी=मुग्ध हो गई । रावल=राधा का

ह्वै है कौन घरी भाग-भरी पुन्य-पुंज-करी,
जरी अभिलाषनि सुजान पिय भेटिहौं ।
अमी-ऐन आनन कौ पान, प्यासे नैननि सौं
चैननि हौं करिकै, बियोग-ताप मेटिहौं ।
गाढ़े भुजदंडन के बीच उरमंडन कौं
धारि घनआनँद यौं सुखनि समेटिहौं ।
मथत मनोज सदा मो मन, पै हौं हूँ कब,
प्रानपति पास पाय तास मद फेटिहौं ॥३०७॥
सोए बहुतेरौ, मेरौ सोच हू निबेरौ हेरौ,
हौं न जानौं कब धौं उनींदे भाग ! जागौंगे ।
पीर-भरे लोचन ! अधीर हौ, पै जानत जू,
कौन घरी रूप कै रसौत जगमगौंगे ? ।
अंग अंग ! कौ लौं तुम्हैं दहैगौ अनंग कहौ,
रंग-भरी-देह जान प्यारे संग खगौंगे ।
चलौ प्रान ! पलौ, परे दूरि यौं कलमलौ क्यौं,
बिना घनआनँद कितेक दुख दगौंगे ॥३०८॥

सवैया

दृग-नीर सौं दीठिहि देहु बहाय पै वा मुख कौं अभिलाखि रही ।
रसना विष बोरि गिराहि गसौं, वह नाम सुधानिधि भाखि रही ।
घनआनँद जान-सुबैननि त्यौं रचि कान बचे रुचि साखि रही ।
निज जीवन पाय पलै कबहूँ पिय-कारन यौं जिय राखि रही ॥३०९॥

३०७—तास—ताप (कवि०)।

समान । रसरानी=आनंद के प्रवाह में मग्न । [३०७] करी=उत्कट । अमी०=अमृत का भंडार । उरमंडन=हृदय के भूषण, प्रिय । [३०८] रसौत=दारुहल्दी से बनी एक औषध जो आँख के घाव में लगाई जाती है; रसवत्, रसमयता । [३०९]

कवित्त

तुम दीनी पीठि, दीठि कीनी सनमुख याते,
तुम पैंडे परे, राखि रह्यौ यह प्रान कौं।
तुम बसौ न्यारे, यह भूलि हू न होतो होय,
तुम दुखदाई यह करै सुख-दान कौं।
सुनौ घनआनँद सुजान हौ अमोही तुम,
याकें महा मोह सो बिना न जानै आन कौं।
और सबै सहौं कछू कहौं न कहा है बस,
तुम्हैं बसौं तौ पै जौ बरजि राखौ ध्यान कौं ॥३१०॥

बिरह तपत आछे आँसुन सौं चायनि च्वै,
पायनि पखारि सीस धारि छिन छूजियै।
चूमि चूमि चोपनि लगाय लालसानि भाल,
मंजन कपोलनि कै प्रानंनि लै पूजियै।
एहो घनआनँद सुजान रावरे जू सुनौ,
रावरी सौं और हियैं मनसा न दूजियै।
निरमोही महा हौ पै मया हू बिचारि वारौ,
हाहा इन नैननि अतीत किन बूझियै ॥३११॥

चाह्यौ चित चोपनि, चितौनि मैं चिन्हारी करि,
चाह सौं जनाय हाय मोहि कै मनौ लियौ।
भोरी भोरी बातनि सुनाय जान! भोरे प्रान,
फाँसी तैं सरस हाँसी-फंद छंद सौं दियौ।
छलनि छबीले आय छाय घनआनँद यौं,
उघरे बिसासी अंत, निरदई महा हियौ।

३१०—भूलि—नेक (कवित्त)। याकें—याको (वही)। ३११—पायनि०—न्हाय धोय (कवित्त)। वारौ—भारो (संग्रह)। इन—नेक (कवित्त)।

गसौं = ग्रस्त कर दूँ, स्तब्ध कर दूँ [३१०] पैंडे=पीछे पड़े। न होतो०= दूर नहीं होता। [३११] मंजन=माँजना, रगड़ना। अतीत=अतिथि।

थारी मति, हारी गति कहाँ जाहि नाहिं ठौर,
मारन परेखो पैल्यो हितू ह्वै कहा कियौ ॥३१२॥

सवैया

अँसुवानि निहारे बियोग हरी बरषा-रितु बेलि सी बाल भई।
हिय-ओपनि चोपनि-काँपनि झालरि लाल के ऊपर छाय गई।
घनआनँद जान सदा हित झूमनि घूमनि देखियै नित नई।
बलि नेकु मया करि हेरौ हहा अबला किधौं फूलि रही तुरई ॥३१३॥

कवित्त

आरसी उसास ज्यौं तुषार तामरस ज्यौं ही,
आतप के ताप अंग-अंग नवनीत कौ।
पावक तैं पारौ कौंजौ छिये हूँ बिचारो ठौर,
बारुनी सौं सुचि जैसैं लेखौ कफ गीत कौ।
ऐसैं घनआनँद बिचार - वारपार नाहिं,
जानै एक जीव जान प्रीतम पुनीत कौ।
सूछम महा है ताकी तोल कौं कहा है,
राखि जानिबो लहा है यौं दुहेलो मन मीत कौ ॥३१४॥

सवैया

आनि लई न कछू सुधि हाय, गए करि वैरी बियोगहि सौंपनि।
जान लुभाय रहे जित ही जित चाह भई है नई चित-चौंपनि।
नाहर आय बसंत भयौ नख-केसु रतौहैं छिये हिये-सौंपनि।
क्यौं घनआनँद यौं बचियै जिय जात पिघ्यौ अनियारियै कौंपनि ॥३१५॥

३१२—मारन—मरनहू (संग्रह)। ३१३—हरी—ही हैं (कवित्त); भई (कवि०)। चोपनि—ओपनि (संग्रह)। घूमनि—झूमनि (प्रयाग)। ३१५—लुभाय—झुलाय (कवित्त)।

[३१२] छंद = छल। अंत = निदान, अंत में। [३१३] ओपनि = चमक। कौंपि=कँपकँपी। [३१४] तुषार—पाला। तामरस = कमल। बारुनी = शराब। सुचि = पवित्र। दुहेलो=कठिन खेल खेलनेवाला, कठिनाई से वश में आनेवाला। [३१५] नाहर = सिंह। केसू = किंशुक, पलाश। रतौंहैं = रागमय,

हम एक तिहारियै टेक धरैं तुम द्वैक ! अनेकन सौं भरसौ ।
हम नाम अधार जिवावन ज्यौं तुम दै बिसवास-बिषै बरसौ ।
घनआनंद मीत सुजान सुनौ नय यौं गहि क्यौं अब यौं अरसौ ।
तकि नेकु दई त्यौं दया-दिग ह्वै सु कहै किन दूर हू तैं दरसौ ॥३१६॥

[लोयनि लाल गुलाल भरे कि खरे अनुराग मौं पागि जगाए
कै रस-चाँचरि चौचँद मैं छलिया पर लैन नखच्छत छाए
भीजि रहे स्रम-नीर सुजान भरौ दृग ढीलियै लागौ सुहाए
भोर हू ऐसी खिलारिनि पै, घनआनँद का छलि छूटन पाए ॥३१७॥]

कवित्त

जाहि जीय चाहै सो तहाँ पै ताहि दाहै,
　　वाहि ढूँढ़त हौ मेरी मति गति गई खोय है ।
कहाँ कित ठौर, और रहौं तौ लहौं न ठौर,
　　घर कौं उजारि सो बसत बन गोय है ।
बनी आनि ऐसी घनआनँद अनैसी दसा,
　　जीबौ जान प्यारे बिन जागैं गयौ सोय है ।
जगत हँसत यौं जियत मोहिं तातैं नैन !
　　मेरो दुख देखि रोवौ फिरि कौन रोयहै ॥३१८॥

सवैया

घनआनँद मीत सुजान हहा सुनियै बिनती कर जोरि करैं ।
अरसाहु न नेकु रिसाहु अजू धरि ध्यानहिं दूरि तैं पाय परैं ।
मन भायौ बियोग मैं जारिबौ जौ तौ तिहारी सौं नीकैं जरैं उर भरैं ।
पै तुम्हैं मति कोऊ कहै हित-हीन, सु या दुख-सोच अमीच मरैं ॥३१९॥

चाहै—चाह (वही) । ३१८—सो—कै । गोय—जोय (वही) । ३१९—अजू-अहो (कवित्त) ।

एक से भरा । खोंद = बिराज, टेव । कौंपनि=कौंपलों से ; नोकों से । [३१६] ख्यौं=और । दया० = दया करके । [३१७] चौचँद=झगड़ा, कौतुक । का०= किस छल से छूटकर यहाँ तक आए । [३१८] जोय=देखकर । [३१९]

घनआनँद जीवन-रूप सुजान हौ प्रान पपीहा-पनैं ई पढ़े ।
दिसि चाहि दुहूँ पै अचंभो महा, कहियै कहा, सोच-प्रवाह बढ़े ।
न कहै दरसौ, बरसौ प्रिय वारि सु ये अपराध-गढ़े न कढ़े ।
कित कौं नित ही इत याहि दहौ जु रहौ चित ऊपर चाप-चढ़े ॥३२०॥

जिनकौं नित नीकैं निहारति हीं तिनकौं अँखियाँ अब रोवति हैं ।
पल-पाँवड़े पायनि चायनि सौं अँसुवान की धारनि धोवति हैं ।
घनआनँद जान सजीवनि कौं सपने बिन पाएँई खोवति हैं ।
न खुली मुँदी जानि परैं कछु ये दुखहाई जगे पर सोवति हैं ॥३२१॥

पहिलैं पहचानि जु मानि लई अब तौ सु भई दुखमूल महा ।
इत के हित बैर लियौ उत हूं, बिन ब्यौहरि-ब्यौहरि लाभ लहा ।
घनआनँद मीत सुनौ अरु उत्तर दूर तैं देहु न देहु हहा ।
तुम्हैं पाय अजू हम खोयौ सबै हमैं खोय कहौ तुम पायौ कहा ॥३२२॥

सुधि होती सुजान ! सनेह की जौ तौ कहा सुधि यौं बिसरावते जू ।
छिन जाते न बाहिर, जौ छल छाँड़ि कहै हिय भीतर आवते जू ।
घनआनँद जान न दोष तुम्हैं गुन भावते जौ गुन गावते जू ।
कहियै सु कहा अब मौन भलो नहीं खोवते जौ हमैं पावते जू ॥३२३॥

कवित्त

छाया छियैं लागति सु जागति दृगनि आय,
　　तू मरा अलग जाकी छाँहौं न दिखाति है ।
रोम रोम रही भोय रोय परौं भरौं साँस,
　　चौंकत चकत मुरझानि अधिकाति है ।

३२०—कहियै—करियै (वही) । ३२१—हा—हन (कवि०) । पित—करि (कवित्त) । न देहु—सुजान (कवि०) ।

अमीच=बिना मृत्यु के ही । [३२०] पपीहा०=चातकपन ही । [३२१] दुखहाई=दुख की मारी । जगे०=जागती हैं, पर कुछ देखती नहीं । [३२२] ब्यौहरि०=जी हरने के व्यापार में लाभ के लोभ से । [३२३] दोष०=दोष गुण से

जान प्यारी दूरि ही तैं चेटक चरित कोटि,
मति उपचारिनि की हेरत हिराति है।
तेरी गति चौगुनी कै सौगुनी जुरैल हू सौं,
लगी चलगी सी कछू बरनी न जाति है ॥३५४॥

सवैया

किहि बान ठनी, हौं सुजान मनौं गति जानि सकै सु अजान करयौ।
इहि सोच समाय, उदेगनि माय बिछोह-तरंगनि पूरि भरयौ।
सु सुनौ मनमोहन ताकी दसा सुधि-साँचनि आँचनि बीच परयौ।
तुम तौ निहकाम, सकाम हमैं घनआनँद काम सौं काम परयौ ॥३५५॥

कवित्त

गसिनि तिहारी देखि थकनि मैं चलौ जाति,
थिर चर दसा कैसी ढकी उघरति है।
कौन न परति कहूँ कल जो परति होय,
परनि परी हौं जानि परी न परति है।
हाय यह पीर प्यारे! कौन सुनै, कासौं कहौं,
सहौं घनआनँद क्यौं अंतर अरति है।
भूलनि चिन्हारि दोऊ हैं न हौ हमारैं तानैं,
बिसरनि रावरी हमैं लै बिसरति है ॥३५६॥

सवैया

मो अबला तकि जोग! तुम्हैं बिन, यौं बल कै बलकै जु बलाहक।
त्यौं दुख देखि हँसै चपला, अरु पौन है दूनौ बिरह नै दाहक।

३५४—उपचारिन—उपचारनि (संभव)। गति—चाल (वही)। ३५५—अन—ठान (कवित्त)। ३५६—कहूँ—कहीं (कवि०, प्रसाद)। चिनारि—चिन्हारि (कवित्त)। गसिनि—[illegible] ([illegible])।

समाते। हमैं=मेरा हृदय पहचान पाने। [३५४] छिपैं=छूने से। चेटक=माया। उपचारी=औषध का काम करनेवाला। [३५५] निहकाम=कामना-हीन। [३५६] गति=दशा; चाल। परनि=पड़न, स्थिति। अरति=

चंदमुखी सुनि मंद महा तम राहु भयौ यह आनि अगाहक।
प्रान धरोहर है घनआनँद लेहु न तौ अब लेहिंगे गाहक ॥३५७॥

कवित्त

मूरति सिंगार की उजारी छबि आछी भाँति,
दीठि-लालसा के लोयननि लै लै आँजिहौं।
रति-रसना-सवाद-पाँवड़े पुनीतकारी,
पाय चूमि चूमि कै कपोलन सौं माँजिहौं।
जान प्रानप्यारे अंग-अंग-रुचि-रंगनि मैं,
बोरि सब अंगनि अनंग-दुख भाँजिहौं।
कब घनआनँद ढरौंहीं बानि देखें सुख
सुधा-हेत मन-घट-दरकनि राँजिहौं ॥३५८॥

सवैया

मो बिन जौ तुम्हैं और रुचै तौ रुचै न तुम्हैं बिन मोहिं जियौ जू।
क्यौं छिन मैं हरि प्रान रहे सु दहै दुखिया गहि आस हियौ जू।
सूल भयौ गुन जो जिहिं अंग को दीप भो बारि बियोग दियौ जू।
हाय सुजान! सनेही कहाय क्यौं मोह जनाय कै द्रोह कियौ जू ॥३५९॥
[मुख सूधे सुभाय लख्यौ मग जात सो टेढ़ो है आननि बीच खर्‍यौ।
मुसक्यानि गई मुसक्यानिहि मैं मन सो मन नेकु निहारि ठग्यौ।
घनआनँद भौंहें कटाछन सौं रस पागि लई रति खेद जग्यौ।
जसुदाकृत पुन्य कै पुंजनि को फल पापनि सो अँखियानि लग्यौ ॥३६०॥]

३५७—धरोहर—[illegible] (कवित्त)। ३५८—दासन—बिन सुने (कवि०)। नैसैं मुख—देखें (कवित्त)। राँजिहौं—मढ़ि राँजिहौं (वही)। ३५९—हरि०—हरि आहि (कवित्त) जियौ—जियो। ३६०—[illegible] (कवित्त)। अंखियानि—अंखियाँ लगि (कवि०)। पापनि—पापिनि (राम)।

चढ़ती है। [३५७] बलकै=बकता है। बलाहक=मेघ; बिरह=कामदेव। अगाहक=अग्राहक। [३५८] राँजिहौं=टाँका लगाऊँगा। [३५९] खर्‍यौ=खड़ा रहा। [३६०] रूखे=उदासीन; चिकनाहट से रहित; चिकने=मिलकर; चिकना-

हाय बिसासी सनेह सौं रूखे, रुखाई सौं ह्वै चिकने अति सोहौ।
आपुनपौ अरु आप हू तें करि हाले हतौ घनआनँद को हौ।
कौन परी बिछुरे हौ सुजान जु एक घरी मन तें न बिछोहौ।
मोह की बान तिहारी असूझ, पै मो हिय कौं तौ अमोहियौ मोहौ ॥३३१॥

जा हित मात को नाम जसोदा सुबंस को चंद कला-कुल-धारी।
सोभा-समूह भई घनआनँद मूरति अंग अनंग-जिवारी।
जान महा, सहजै रिझवार, उदार बिलास मैं रासबिहारी।
मेरो मनोरथ हू बहियै, अरु ह्वै मो मनोरथ पूरनकारी ॥३३२॥

अंक भरौं, चकि चौंकि परौं, कबहूँक लरौं, छिन ही मैं मनाऊँ।
देखि रहौं, अनदेखें दहौं सुख सोच गहौं जु जहौं सुनि पाऊँ।
जान! तिहारी सौं मेरी दसा यह को समझै अरु काहि सुनाऊँ।
यौं घनआनँद रैनदिना नहिं बीतत, जानियै कैसैं बिताऊँ ॥३३३॥

गई सुधि-संग, भई मति पंग, नई कछु बात जनावति हौ न।
दुराव किये कहा होत सखी! रँग और भयौ ढंग ऊतर कौ न।
हिय धरकौ, तन रोंद जग्यौ, अरु ऐसी जँभानि की बानिहु तौ न।
बड़ायहौ बैदनि, साँच कहौ, घनआनँद जान चढ़े चित जौ न ॥३३४॥

कबित्त

कहाँ जौ सँदेसो ताको बड़ोई अँदेसो आहि,
न्हानै मन बारे को कहैऽब को सुनै सु कौन।
निधरक जान अलबेले निसरक-ओर,
दुखिया कहै या कहा तहाँ की चौंचन हौं न।

३३१—बिसासी—सनेही (कबित्त)। ३३२—अंग-रंग (वही)। ३३३—नहिं०—न बितीतत। ३३४—जनावति—जतावत (कबित्त)।

हट से मुक्त होकर। करि० = दूर करके। [३३१] जा० = जिसके कारण। जसोदा = यशोदा (यश देनेवाली)। जिवारी = जिलानेवाली। मनोरथ हू० = मेरे मनोरथ (मन के रथ) को भी चलाइए जैसे अर्जुन का रथ चलाया था। [३३२] अंक = गोद। [३३३] धरकौ = धड़कन। तौ० = तो नहीं थी। [३३४]

पर-दुख-दल के दलन कौं प्रभंजन हौ,
हरकौ ह्वै देखि कै बिबस बकि परी मौन।
इत की भसम-दसा लै दिखाय सकत जू,
लालन-सुबास मौं मिलाय हू सकत पौन ॥३३५॥

सवैया

मुख-नेह-रुखाई दिखास भरी, इत की तौ चितार रही न उतै।
रचि कौन सो घात लियौ है हियौ, जिन हेरैं न जोव बिचारि गुनै।
घनआनँद ऐसी दसानि घिरै दुखिया जिय सोचनि सीस धुनै।
अब कैसी भई उन जान हई दई कूक करौं पै न कोऊ सुनै ॥३३६॥

कबित्त

अंतर मैं रहति निरंतर जगी सुजान,
तहाँ तुम कैसैं सोयबे कौं घर कै रहे।
गुपत लपट जाकी तमें ही प्रगट करै,
जननि बाढ़ै, गुरु लोग भर कै रहे।
सीरी परि जात रोम रोम घनआनँद हो,
और याके कोटिक बिकार भर कै रहे।
बारिद सहाय ज्यौं दवागिनि दबति देखी,
बिरह-नवागिनि तें नैना भर कै रहे ॥३३७॥

सवैया

सावन-आवन हेरि सखी! मनभावन-आवन-चोप बिसेखी।
छाए कहूँ घनआनँद जान सम्हारि की ठौर लै भूलनि लेखी।

३३५—कहैऽब०—कहौंऽब को सुनौं (कांक०)। कहा०—कहैऽब। की—को (कबित्त)। ३३६—दिखास-दिख है। चितार—चिन्हारि। घिरै—घिरहौ (कबित्त)। ३३७—तमें-तन (राम); तुम (कांक०)। नवागिनि—दवागिनि (राम)।

न्हानै = छुटपन में। निसरक = शंका से रहित। [३३५] हरकौ है = हरनेवाले। भसम = भस्म करनेवाली। [३३६] मुख = मौखिक प्रेम या मुँह देखा स्नेह [३३७] गुरु = बड़े। भर = भय करके। [३३८] सम्हारि = सब सँभाल

मूँदे लगें सब अंग दगैं उलटी गति आपने पापनि पेखौ ।
पौन सौं जागति आगि सुनी ही पै पानी सौं लागति आँखिन देखौ ॥३३८॥

परकाजहि देह कौं धारि फिरौ परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ ।
निधि-नीर सुधा के समान करौ सब ही बिधि सज्जनता सरसौ ।
घनआनँद जीवन-दायक हौ कछू मेरियौ पीर हियें परसौ ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुवानि हूँ लै बरसौ ॥३३९॥

जान सुजान कहौ तुम ही जौ न रामौं तौ आँखिन काढ़ि बिसाऊँ ।
कौन-सुभाई सनौ बतियानि बिना इन कानन लै कहाँ ध्याऊँ ।
हाय मरयौ मन पीर तें प्रीतम ! या दुखियाहि कहाँ परचाऊँ ।
चाहत जीव परयौ घनआनँद रावरी सौं कहूँ ठौर न पाऊँ ॥३४०॥

निसद्यौस तपन उसास थकौं न सकौं तजि आस बिसास जकी ।
घनआनँद मीत सुजान बिना अँखियान कौं सूझत एक टकी ।
इस की गति कौन कहै को सुनै मन ही मन मैं यह पीर पकी ।
भरियै किहि भाँति कहा करियै अब गात सँदेसन हूँ की थकी ॥३४१॥

प्यारे सुजान के आनन को मंडन खंडन लेत अखंड-कला को ।
ज्यौं सरस्यौ जब हौं दरस्यौ तरस्यौ घनआनँद हेत-भला को ।
सूझम सो, पै सरस्यौ अतुलौ सुख रंक बिभौ जुग नैन-पला को ।
प्रीतम कौं हिय राखत हाय, बियोग मैं उपावत सोक छला को ॥३४२॥

घूमत सोंध लगें कब पाइनि चाइनि चित्त मैं चाह घनेरी ।
आँखिन शान रहै करि थान सुजान ! सुमूरति आँगन नेरी ।

३३९—कै—सौं (कांक०, प्रयाग) । अँसुवानि०—अँसुवानहिं (कवित्त) ; ...कैं (कांक०) । ३४०—तौन—कौन (कांक०, प्रयाग) मरयौ—मरौ (प्रयाग) ३४२—सैन—बैन (कवित्त) ।

करनी चाहिए, जैसा खून बैठे । [३३९] परजन्य = पर्जन्य, बादल, पर + जन्य, जो दूसरे के उपकार के लिए ही । जीवन = जल; प्राण । [३४०] कौन = श्रवण, कान । सौं = शपथ । [३४१] बिसास० = विश्वासघात से स्तब्ध । टकी = टकटकी । [३४२] मंडन = गहना । हेत० = प्रेमरस की वृष्टि । पला =

रोम ही रोम परी घनआनँद काम की रोर न जाति निबेरी ।
भूलनि जीतनि आपुनपौ चलि, भूलौ नहीं सुधि लेहु सबेरी ॥३४३॥

लनचौंहीं लगौंहीं, भईं तुम सौंहीं इतै अँखियाँ सुख-लाभ-भगीं ।
उत आप निकाई-निधान सुजान, ये बावरी ह्वै अनुराग पगीं ।
घनआनँद जीवन-प्रान सुनौ, बिछुरैं मिलैं गाढ़-जँजीर-जगीं ।
इनकी गति देखन-जोग भई जु न देखन मैं तुम्हैं देखि भगीं ॥३४४॥

कवित्त

सुरति करौं तौ बिसरे जौ होहि जान प्यारे,
वे तौ चित-चढ़े, रंग-मूरति सदा रहैं ।
सुधि करैं वेई सुधि हू कौं ऐसौ भूलि जाय,
बेसुधि किये से सुधि माँझ या प्रकार हैं ।
गूढ़ि गति ग्यौरियै की भूलियौ सुरति मोहि,
रातिद्यौस छाए घनआनँद घटा रहैं ।
सुधि कबहूँ न आवै भूलेऊ नेकु नाहि,
सुधि तिन ही मैं लेहैं सुधि मैं सदा रहैं ॥३४५॥

सवैया

अब तें तुम आवन-आस दई तब तें तरसौं कब आयहौ जू ।
मन-आतुरता मन ही मैं लखौ मनभावन ! जान सुजान हौ जू ।
बिधि के दिन लौं छिन बाढ़ि परे यह जानि बियोग बितायहौ जू ।
सरसौ घनआनँद वा रस कौं जु रसा रस सौं बरसायहौ जू ॥३४६॥

अंगनि पानिप-आप भरी, निखरी नवजोबन की सुघराई ।
नैननि ओरनि रूप के और अचंभे-भरी छबिता-उघराई ।

तरसौं—तरस्यौ (संग्रह) । रंक—रंग (राम) । ३४५—गहा—कहा (काशि०) । ग्यौरिवे—गाढ़िये (संग्रह) ।

पलड़ा । [३४३] घूमत = चक्कर खाता हुआ । थान = स्थान, देश । नेरी = निकट । रोर = शोर । सबेरी = शीघ्र । [३४४] अनुराग० = डूब पड़ीं । [३४६] काम = कामी । बियोग० = वियोगातुर करोगे । रसा = पृथ्वी । [३४७] सुघराई = सफाई ।

जान - महा - गरुवे - गुन मैं घनआनँद हेरि रह्यौ थुथराई ।
पैने कटाछनि ओज मनोज के बानन बोध बिंधी सुथराई ॥३४७॥

अभिलाषनि लाखनि भाँति भरीं बरुनीनि रुमाँच ह्वै काँपति हैं ।
घनआनँद जान सुधानिधि-मूरति चाहनि अंक मैं चाँपति हैं ।
दृग लाय रहीं पल पाँवड़े कै सु चकोर की चोपनि आँपति हैं ।
जब तें तुम आवनि-औधि बदी तब तें अँखियाँ मग माँपति हैं ॥३४८॥

मग हेरत दीठि हिराय गई जब तें तुम आवनि-औधि बदी ।
बरसौ कित हौ घनआनँद प्यारे पै बाढ़ति है इत सोच-नदी ।
हियरा अति औटि उदेग की आँचनि च्वावत आँसुनि मैन मदी ।
कब आयहौ औसर जानि सुजान बहीर लौं बैस तौ जानि लदी ॥३४९॥

तुम ही गति हौ तुम ही मति हौ तुम ही पति हौ अति दीनन की ।
नित प्रीति करौ गुनहीनन सौं यह रीति सुजान प्रवीनन की ।
बरसौ घनआनँद जीवन कौं सरसौ सुधि चातक छीनन की ।
मृदु तौ चित के पन पै इत के निधि हौ हित के रुचि मीनन की ॥३५०॥

अति दीनन की, गतिहीनन की पतिहीनन की रति के मन हौ ।
सब ही बिधि जान, करौ सुखदान, जिवावन प्रान कृपा-घन हौ ।
घनआनँद चातक-पुंजनि पोषन, तोषन रंक महा धन हौ ।
जन-सोच-बिमोचन, सुंदर-लोचन, पूरन-काम भरे पन हौ ॥३५१॥

कवित्त (अनंगशेखर)

सदा कृपानिधान हौ, कहा कहौं सुजान हौ,
अमान दान-मान हौ, समान काहि आँखियै ।

३४७—हेरि०—हेरि रह्यौ (वही) । ३४८—रुमाँच—रोमांच (प्रयाग) । चाहनि—बाहनि—(काशि०) । दृग—दृग (प्रयाग) पल—पग (काशि०) । माँपति—नापति (प्रयाग) । थुथराई=किंचित् उदास । रह्यौ०=रति भी थोड़ा पड़ गई । सुथराई=कुशलता [३४८] दृग=टकटकी । [३४९] मैन=मदन, काम । मदी=मद, शराब । बहीर=सेना का सामान । जानि०=समाप्त होने पर आ रही है । [३५०] निधि=समुद्र । [३५१] पतिहीन=प्रतिष्ठाहीन ।

रसाल सिंधु प्रीति के भरे, खरे प्रतीति के,
निकेत नीति-रीति के, सुदृष्टि देखि जीजियै ।
ठगी लगी निहारियै, सु आप त्यौं निहारियै,
समीप ह्वै बिहारियै उमंग-रंग भीजियै ।
पयोद - मोद छाइयै, बिनोद कौं बढ़ाइयै,
बिलंब छाड़ि आइयै किधौं बुलाय लीजियै ॥३५२॥

सवैया

चेटक रूप-रसीले सुजान ! दई बहुतै दिन नेकु दिखाई ।
कौंध मैं चौंध भरे चख हाय ! कहा कहौं हेरनि ऐसैं हिराई ।
बातैं बिलाय गईं रसना पै हियो उमग्यौ कहि एकौ न आई ।
साँच कि संभ्रम हौ घनआनँद सोचनि ही मति जाति समाई ॥३५३॥

प्यारे सुजान को प्रान-पियारो बस्यौ जब कान सँदेसो सुहायौ ।
कोटि सुधा हू के सार कौं सोधि कै पान किये तें महासुख पायौ ।
जीव-जिवावन ताप-सिरावन है, रस मैं घनआनँद छायौ ।
ये गुन क्यौं न रचैं सजनी ! मन रंग-रचै अधरानि रचायौ ॥३५४॥

कवित्त

जीअहि जिवाय मोकौं जानत सुजान प्यारे !
याही गुन नामहिं जथारथ करत हौ ।
चिरजीजै दोऊ सुख कीजै मनभायौ मेरो,
मेरी अभिलाषन कौं निधि कौं धरत हौ ।
चाह - बेली - सफल - करन घनआनँद यौं,
रस दै दै तर - आलवालनि भरत हौ ।

३५३—उमग्यौ—उमड्यौ (काशि०, प्रयाग) । गुन—गुनि (समर) रचैं—रुचै (प्रयाग), सजनी ना (काशि०) । रंग०—रंग रचे (प्रयाग), अधरौं परचै (काशि०) । ३५५—सुजान—जू जान (काशि०, प्रयाग) ।

[३५२] अमान=प्रमाण से परे या निरभिमान । पयोद०=घनआनँद ; आनँद के घन । [३५३] संभ्रम=भ्रांति मात्र । [३५४] सिरावन=ठंढा करनेवाले ; दूर

प्यार सों छकौंहीं छरकौंहीं मृदु बानि-बस,
बिबस ह्वै आप हौ पै मो पर ढरत हौ ॥३५५॥

सवैया

कुलाहल होत है गोकुल मैं जनम्यौ सुत नंद के सुंदर स्याम ।
चलौ चलियै मिलि देन बधाई भई अब हौं सब पूरनकाम ।
जसोमति सों झगरौ अगरौ करि लेहु रुचै जिहि जो अभिराम ।
लखैं अँखियानि ललाम ललाहि सुनैं घनआनँद लाड़िलो नाम ॥३५६॥
मुख-चाहनि कौं चित चाहत है चख-चाहनि दीठिहि पावति ना ।
अभिलाषनि लाखनि भाँति भरे हियरा-अधि, सांस सुहावति ना ।
घनआनँद जान तुम्हैं बिन यौं गति पंगु भई मति धावति ना ।
सुधि दैन कही सुधि लैन चही सुधि पाएँ बिना सुधि आवति ना ॥३५७॥

कबित्त

रसिक रसीले हौ छबीले गुन-गरबीले
रंगनि दगीले हौ छकीले मद-मोह तें ।
जीवन-चरम घनआनँद परम आछे,
सरस परम सुख सींच्यौ हौंस ओहतें ।
अचिरजनिधि है तिहारो सब बिधि, प्यारे !
कृपा हाँति फलित ललित लता छोह तें ।
मिलन मैं ज्यौं ही बिछुरन करि डारयौ, बारौ
त्यौं हौ किन कीजै हाहा मिलन बिछोह तें ॥३५८॥

सवैया

रस-रैनि जगी प्रिय-प्रेम-पगी अरसानि सों अंगनि मोरति है ।
मुख-ओप अनूप बिराजि रही ससि कोटिक तारन, को तोरति है ।

३५५—है—हौ (कवित्त) । ३५६—हियौ—हियैं (राग) ।

करनेवाले । [३५५] निधि = भांडार । छकौंहीं = छका देनेवाली, संतुष्ट करने वाली । [३५६] अगरो — बड़ा, भारी । [३५७] चाहनि = देखना । सुधि आवति ना = होश नहीं आता । [३५८] छकीले = छके हुए, परिपूर्ण । [३५९]

अँखियानि मैं लाजनि की अरुनाई, किधौं अनुराग सों बोरति है ।
घनआनँद प्यारी सुजान लखैं डरि डीठि हितू तिन तोरति है ॥३५९॥
गुन-भेद-भरी मुखचंद मनौ बिथुरी अलकावलि भाँति भली ।
मद-जोबन, रूप-छकीं अँखियाँ अवलोकनि आरस-रंग-रली ।
घनआनँद ओपित ऊँचे उरोजनि चोप मनोज के ओज दली ।
गति होंनी लजीली रसीली लसीली सुजान मनोरथ-बेलि फली ॥३६०॥
कहा कहियै सजनी रजनी-गति, चंद कहै कि जियै नहिं काढ़ै ।
अमी-निधि पै बिष-सार स्रवै, हिम-जोति जराय कै यों निरदाढ़ै ।
सु या घन-संग न जानिये, है घनआनँद जान-बिछोह को गाढ़ै ।
बियोग मैं बैरिनि बाढ़ति जैसी, कछू न घटै जु सँजोग हैं बाढ़ै ॥३६१॥
हुलास-भरी मुसकानि लसै, अधरानि तें आनि कपोलनि जागै ।
छुटीं अलकैं मृदु गुंजु मिहीं सुतिमूल छजानि अनी मुरि लागै ।
नहीं अँखियानि मैं अंजन-रेख लजीली चितौनि हियो रस पागै ।
सुहाग सों आपिन भाल दिपै घनआनँद जान पिया अनुरागै ॥३६२॥

कबित्त

कामना-कलपतरु जानि कै सुजान प्यारो,
सींचै घनआनँद सँवारि हिय थाँवरो ।
रूप-निधि साधिबे कौं महा सिद्ध मंत्र मानि,
आनि बर 'गोरी गोरी' जपै नित साँवरो ।
प्रेम-सुधा-स्रोत स्रौन सुनैं सुख-सिंधु होत,
मोद - रासि मंगल-निवास मन-भाँवरो ।
कलाधर केलि को, सुफल बाना-बेलि को है,
रसना को भाग है रसीलो राधा-नाँवरो ॥३६३॥

३६२—हियो—हियैं (कवित्त) ।

को० = रति भी पाठ है । [३६०] रली = युक्त । चोप = उमंग । [३६१] या = रात । [३६२] मिहीं — पतली । अनी = नोक । सुहाग = रोली की बिंदी । [३६३] थाँवरो = थाला । भाँवरो = आवर्त । नाँवरो = नाम ।

सहज सुहागी राधा-माधौ मन भायौ,
कुंज-पुंज छबि छायौ घनआनँद-निवास है ।
रितुनि कौ सिंगार रसनि सौं रच्यौ सनि,
देखैं बनै जैसो बन राजै सु प्रकास है ।
दंपति-सुजान फूली केलि कै फलनि सदा,
कलित ललित लीला-वलित-विलास है ।
ऐसे बनराजै बरनत बानी क्यौं न फूलै,
जाहि चाहि रितुराजै चाहत विकास है ॥३६४॥

सवैया

जान सुखारे रहौ, रहि आप हौ, होति रही है सदा चित-चोरी ।
है हम ही धुर कौ दुखदाई विरंचि विचारि कै जाति रच्यौ तो ।
प्रान-पपीहन के घन हौ, मन दै घनआनँद कीजै अनोखी ।
जानौ कहा अनुमानौ हियें, हित की गति कौ सुख सौं जिन चोखी ॥३६५॥

जित चाहत हौ तित जाय मिलौ, चित रावरो कोबिद-केलि-कला ।
जिनकौं तुम भोरि विसासि करौ सु न सांस भरै चतुरी अबला ।
घनआनँद जान! रहौ नए से, नए अरसी जित नेह-भला ।
नटनायक लायक मायक हौ गति पाय परै न तिहारी लला ॥३६६॥

हम सौं हित कै कित कौं नित हौ चित-बीच वियोगहिं बोय चले ।
सु अखैबट-बीज लौं फैलि पर्यौ बनमाली कहाँ धौं समोय चले ।
घनआनँद छाय बितान तन्यौ हम ताप के आतप खोय चले ।
कबहूँ तिहि मूल तौ बैठिये आय सुजान ज्यौं रूख के रोय पले ॥३६७॥

३६४–राधा०–राधा माधव के मन भायौ। कुंज-पुंज छायौ (राम)। दंपति०–दंपति सुजान केलि बेलि (वही)। रितुराजै–रितुराजौ (वही)। ३६५–घन–मन (कवित्त)। ३६६–जित–जिन (प्रयाग)। नए–नये (वही)। ३६७–नित–हित (कवित्त)। छाय–छोइ (प्रयाग)। हम–हमैं (वही)। ज्यौं–जौ (वही)। रूख–रुख (संपद)।

[३६४] कै=द्वारा। बनराज=वृंदावन। [३६५] धुर कौ=प्रारंभ। तो=भी। हित=प्रेम [३६६] विसासि=विश्वासघात। भला=भद्रता, बुद्धि। पाय०=समझ में नहीं आती [३६७] अखैबट=अक्षयवट। समोय=अनुरक्त होकर।

कवित्त

मेरो चित चाहै घनआनँद सुजान चौपै,
ठकी लाग-आग की लपेटें अंग ही सहै ।
वे तौ गौं गहेले हौं गहाऊँ सो न गहैं गैल,
रहैं छैल भए नए लैस ताहू कौ न है ।
बौरनि गकत, मूल भूले फिरैं फूलै वृथा,
आली! बनमाली जू के फल को कहा कहै ।
आवरी है बावरी तू तावरी परनि काहे,
तै हौं घर बसे, हौं उजारि बसि कौ रहै ॥३६८॥

उघरि दुरे हौ, नीकैं मिलन करे हौ, गाढ़े
रंगनि बुरे हौ घनआनँद सुजान जू ।
उर बैठे दाहत हौ, चाहनि मैं चाहत हौ,
घात ही निबाहत हौ प्रानन के प्रान जू ।
हँसि हँसि रुवावत हौ, छाहीं नहीं छुवावत हौ,
जागि जागि ज्वावत हौ आपै हू तैं आन जू ।
सूझत हौ बूझत हौ चाखत हौ भाखत हौ,
कहत हौ राखत हौ मौन ही बखान जू ॥३६९॥

महा अनमिलन-मिलाई मिलौ जब मिलौ,
ऐसे अनमिल कै मिलाप ही हमैं दई ।
हमैं तौ मिलौ, जौ कहूँ आप हू सौं मिलै होहु,
मिलौ तौ कहा जू ये मिलाप-रीति है नई ।

३६८ गहेले–गहेले (कवित्त, प्रयाग)। ३६९–मिलन–मिले न (प्रयाग)। दुरे–दूरे (वही)। बुरे–बुरे (वही)। बैठे–बैठ (राम)। आपै–आपे (प्रयाग)। चाहत–चाहत (कवित्त)।

[३६८] गौं०=अपनी घात को ही समझनेवाले। तावरी०=गरम क्यों होती है। घर०=दूसरे से प्रेम कर रहे हैं। [३६९] दुरे=दूर, पृथक्। मौन०=आपके निरूपण के लिए चुप रहना ही ठीक है, आप अनिर्वचनीय हैं। [३७०] दई=ईश्वर।

इते पै सुजान घनआनँद मिलौ न हाय,
कौन सी असिलता की लागी जिय मैं जई ।
तुम हूँ तैं अधिक अमिल मन हमैं मिल्यौ,
तऊ मिल्यौ चाहै, दाहै जऊ जरियौ गई ॥३७०॥

सवैया

नीके नए अलि जी के लगी हैं सुधारे हैं तून प्रसून के सायक ।
चौगुनी चोपनि तैसोई चाप चहोरि दै हाथ सज्यौ भटनायक ।
पौन-तुरंग चढ़्यौ बलि सौं बनितानि पछेरि कढ़्यौ दुखदायक ।
हौं घनआनँद जान कहूँ रितुराज भयौ रतिराज-सहायक ॥३७१॥
राखै सुजान इतै चित दै, छिन मैं किन कीजतु मान-मरोर है ।
माखन सौं मन कौंवरो है यह बानि न जानति कैसैं कठोर है ।
साँवरे सौं मिलि मोहति जैसी कहा कहियै कहिबे को न जोर है ।
तेरो पपीहा जु है घनआनँद है ब्रजचंद सु तेरा चकोर है ॥३७२॥
नित लाज-भरे हित-ढार-ढरे, निरधार-सुढार सुखदायक हैं ।
घनआनँद भूमि कटाछन सौं, रसपान-नृपाहि सहायक हैं ।
चित-चंचन कौं अनियारे महा, पै सुधाहि सु धारन लायक हैं ।
छिपि घूँघट पैठत जान हियैं निपटै निपटै नटनायक हैं ॥३७३॥
राधा नवेली सहेली-समाज मैं होरी को साज सजैं अति सोहै ।
मोहन छैल खिलार तहाँ रस-प्यास-भरी अँखियानि सौं जोहै ।
दीठि मिलैं सुरि पीठि दई हिय-हेत की बात सकै कहि को है ।
सैननि ही बरस्यौ घनआनँद भीजनि पै रँग रीझनि सोहै ॥३७४॥
वह माधुरियैं सौं भरी मुसक्यानि, मिठास लहै क्यौं बिचारो अमी ।
झरु बंक बिसाल रँगीले रसाल बिलोचन मैं न कटाच्छ कमी ।

३७१—चाप—चाय (प्रमा)। ३७२—दौ—दियौ (कवित्त)। दै यह—कै यह (प्रमाग)। सु—पै (कवित्त)। ३७३—हैं—है (कवित्त)। लायक—लादक (वही)।

[३७१] चहोरि=सँभालकर। [३७२] कौंवरो=कोमल। [३७३] निरधार०=साफ-सुथरे। निपटै=पूरे, पहुँचे हुए। [३७४] सैननि=संकेतों से।

घनआनँद जान अनूपम रूप तैं रीझि रहैं जिय माँझ रमी ।
न सुनी कबहूँ सु लखी, चित चोरैं लोनि लुनाइयै की लछमी ॥३७५॥
सब ठौर मिलै, पर दूरि रहौ, भरि पूरि रहै जिहि रंग मिलौ ।
इहि लायक हौ यह भायक हौ सुखदायक हौ, पुनि पाय खिलौ ।
घनआनँद मीत सुजान सुनौ कहूँ ऊमिल से कहूँ हेत हिलौ ।
हम और कछू नहि चाहति हैं छिनकौ चित मानस-रूप मिलौ ॥३७६॥
मानस को धन है जग पै बिन मानस को धन सो दरसै सो ।
जे घनमानस तें सर से तिन सौं मिलि मानस क्यौं सरसै हो ।
हाय दई! दरि नेकु इतै सु कितै परसै जिहि ज्यौं तरसै सो ।
चातिक-प्रान जिवाय दै जान जहाँ घनआनँद क्यौं बरसै जो ॥३७७॥
बात सुजानन की घनआनँद छाड़ति आहि अचेत किये चित ।
कानन पैठि कै प्राननि बेधति, दीसै नहीँ अकुलानि चढ़ै नित ।
क्यौं भरियै, करियै सु कहा, हमैं आनि बनी इन लोगन सौं इत ।
भोर मैं हाय अकेले अधीर हैं रीझहि लै रिझवार गए कित ॥३७८॥
चलिबे मधि बैठि रहै हौ कहा डग द्वै मग साँसहि सोधि चलौ ।
जिहि ठाँ तिहि बास कहाँ पुनि सो इहि संग खिचार कै रंग रलौ ।
घनआनँद भीजहु रीझि सुजान महा रसपान कै पाग पलौ ।
जग मैं छल सो बलि जीवन कौं कल सौं तुम ही किन नाहि छलौ ॥३७९॥

३७५—अरु—अरु (कवित्त)। ३७६—नायक—वही नायक (कवित्त)। ३७७—को धन सो—कै धन सो (कवित्त)। अहै—हहा (वही)। ३७८—लहैं—लहै (संग्रह)। नहीं—नित (वही)। ३७९—ठाँ—ठाँ (कवित्त)।

[३७५] लुनाइयै०=लावण्यश्री, सौंदर्यलक्ष्मी। [३७६] खिलौ=खिले होते हो। ऊमिल=अपरिचित। हेत०=प्रेम करते हैं। मानस०=जिस रूप में मन आपको देखना चाहता है। [३७७] मानस=मनुष्य। मानस=मन। घन०=घनमानुस। सर०=साधारण तलैया। मानस=मानसरोवर। [३७८] भरियै=बिन काढ़ै। [३७९] जग०—संसार में और यह जीवन छल (भ्रम) मात्र है, अपनी चतुराई से उसे आप ही क्यों नहीं

जात चले उहि नावँ सबै जिहिं ठावँ को ठीक न सूझत काहू ।
कैसो मिलाप लियो इन मानि मिलें मग आनि अनंक उछाहू ।
पौन के भौन रहै बसि गौन मैं आपनी आपनी चाह उमाहू ।
आहि नहीं मधि सोई सुजान जू है घनआनँद ओर-निबाहू ॥२८०॥

मंजुल वंजुल-पुंज-निकुंज फबे हद छबीलो मदंबर-मेह तें ।
धौस मैं रैन सो मैन को ऐन, पै जोति जग्यो जगि दंपति-देह तें ।
हास-बिकास बिलास-प्रकास सुजान समान अदेह कै देह तें ।
भीजि रहे घनआनँद स्वेद, समीर दुलै बिजना भरि नेह तें ॥२८१॥

कबित्त

मद-उनमाद-स्वाद मदन के मतवारे,
केलि के अवार लौं सँवारि सुख सोए हैं ।
भुजनि उसीसो धारि अंतर निवारि, जंघ-
जंघनि सुधारि तन मन ज्यौं समोए हैं ।
सुपने सुरति पागैं भरा चोप अनुरागैं,
सोए हू सुजान जागैं ऐसे भाव-भोए हैं ।
छूटे बार टूटे हार आनन अपार सोभा,
भरे रस-सार घनआनँद अहो ए हैं ॥२८२॥

सवैया

बात के बैन लौं दूरि परे, जड़ ता नियरे सियरे हिय दाहैं ।
चित्र की आँखिन लौं बिचित्र महारस-रूप-सवाद सराहैं ।

२८०—सूझत—सूझत (कबित्त)। मिलाप—मिलाप (प्रताग)। आनि—भीन (कबित्त)। मग—मन (वही)। पौन—कौन (वही)। इ—ए (वही)। २८१—छबीलो—फबी (कबित्त)। दुलै—डुलै (वही)। २८३—जड़०—नियरे सियरे हियरे दुख दाहैं (कबित्त)।

छूत जैसे। [२८०] जिहिं०=जिसके ठीक ठिकाने का पता किसी को नहीं। उछाहू=(उल्लास) उमंग। उमाहू=उत्साह। ओर-निबाहू=अंत तक निर्वाह करनेवाला। [२८१] वंजुल=अशोक। अदेह=अनंग। अदेह=कामदेव। सेह=प्रस्वेदता। [२८२] अवार=देर तक। भोए=युक्त। [२८३] कठप्रेम=पद प्रेम

नेह कथैं सठ लोग मथैं हठ कै कठप्रेम को नेम निबाहैं ।
क्यौं घनआनँद भीजैं सुजाननि यौं अमिलें मिलिबो फिरि चाहैं ॥२८३॥

हिय की गति जानन-जोग सुजान हौ कौन सी बात जु आहि दुरी ।
टपकचौई परै यह अंकुर ओस लौं ऐसी कछू रस-रीति धुरी ।
बिछुरें कित साति मिलें हू न होति, छिदो धसिया अकुलानि-छुरी ।
तुम ही तिहिं साखि सुनौ घनआनँद प्यार निगोड़े की पीर बुरी ॥२८४॥

नाहिं पुकार करै सुनि आहि न, को कित ह्वै केहि दोष लगैये ।
संगम पै बिछुरे मरियै, इनि आँखिन क्यौं जियराहि जरैये ।
आतनि-चोटनि चूर भयौ चित, सो छिन हो किन बाहिर ऐयै ।
ह्वै घनआनँद मौन सुजान कहा अब हेत-सुखेत सुखैयै ॥२८५॥

आवत ही मन जान सजीवन ऐसो गयौ जु कहौ नहिं लौटनि ।
धौस कछू न सुहाय सखी, अरु रैनि बिहाय न हाय करौटनि ।
अंग भए पियरे पट लौं मुरझे बिन ढंग अनंग मरोटनि ।
हो दुचितैं घनआनँद पै हमैं मारति है बिरहागिनि औटनि ॥२८६॥

द्रुम-बेलि-महारस-केलि-पगे करि दंपति के हिय को हरनैं ।
कहि कौन सकै दुति लेस कछू जिहिं राधिका मोहन हूँ बरनैं ।
जमुना-तट कोमल बालुका मैं छबि छाकि धरे मधुरे चरनैं ।
घनआनँद सो बनराज लसै मम प्राननि काज सदा सरनैं ॥२८७॥

लाल लपेटी सुही जुही-माल सिंगार को साज बिराजति सोही ।
पीरी पिछौरिया फेंट फबी मुरली-धुनि पूरि मलारहु मोही ।

२८४—टपकचौई—पटकयौई (कबित्त)। धसि०—धसि लौं (वही)। साखि—साधि (संग्रह)। २८५—ह्वै—है (कबित्त)। कोई—किन (कबि०)। इनि—यहि (कबित्त)। २८७—दुति०—उहि बेस (कबित्त)। बरनैं—बरनै (कबि०)।

भी प्रिय के उदासीन होने पर भी किया जाता है। [२८५] पुकार=आहों पर ध्यान देनेवाला कोई नहीं। [२८६] करौटनि=करवटें बदलने में। मरोटनि=शिकन, सलवट। [२८७] मधुरे=प्रिय। बनराज=वृंदावन। [२८८] सुही=

फूले कदंब-नीरे करैं केलि सखा चहुँ ओर महा छबि सोहीं।
आजु सखी घनआनँद चाहि न जानति हौं अब कहाँ तब कोहीं ॥३८८॥
स्याम-मनोहर आनन रूप कि सोहै महा घनआनँद सैनी।
गोपिन के दृग-तारनि को यह गोल किधौं हार हेरनि गैनी।
अंजन सी मनरंजन है व्रजचंद-चकोरन कों सुखदैनी।
भाल बढ़ैं चित चाव चढ़ै रँग-डोरि किधौं रसराज की रैनी ॥३८९॥

कवित्त

अभिलाषी प्रिय के दरसन अनिमिषवारी,
　　मन मिल जामैं अद्भुत चित-चोरना।
किधौं सखियाँ की जोगी भावना सरूप धार्यौ,
　　ताही मैं दिपति जान प्यारी छबि ओर ना।
प्यारे घनआनँद कौं लखि ललचानि भोई,
　　सात्तिक सिथिल होति नीकी चर-डोरना।
राग अनुराग भाव सुभग सुहाग-भीजी,
　　रीझनि झमोली झूलैं सरस हिंडोरना ॥३९०॥

सवैया

कैसें कहौं गुन-रूप-बखान सुजान छबीले भरे हिय-हेत हौ।
औसर-पास लगे रहैं प्रान कहा बस जौ सुधि भूलि न लेत हौ।

३८८—नल-माल (कवित्त)। चाहि-चाहे (वही) कहा०—कहौं अब तोही (वही)। ३८९—आनन-नागन (कवित्त)। हेरनि—हेरत (वही)। ३९०—मन—मानि (राम)। चित—चितु। ३९१—हिय हित (क० प्र०)। औसर औसर (प्रयाग)। लगै-लगे (कवित्त)।

लाख। झोरी=वस्त्रों की झलरी। पीरो०=पीला दुपट्टा। [३८९] सैनी=श्रेणी, पंक्ति, समूह। दृग तार=पुतली। गैनी=मार्ग। रँग=आह्लाद। रैनि=रस्सी या रैनी, वह गुल्ली जो सोने-चाँदी के तार खींचकर बढ़ाती है। रसराज=शृंगार (श्याम वर्ण)। रैनी=सँड़ौ [३९०] छबि०=शोभा की पराकाष्ठा। सात्तिक=सात्त्विक भाव। झींकी=कुकुरी। [३९१] चेटक=मायावी। चेत=चेतना।

चेटक हौ सब भाँतिन जू घनआनँद पीवत चातिक-चेत हौ।
रावरी रीझि न बूझि परै तनकै भिलि क्यौं बहुतै दुख देत हौ ॥३९१॥
जान हौ ए जू जनाऊँ कहा, न गए कितहूँ जु कहाँ इत आवहौ।
दीसौ दुरें उर दाहन ज्यौं उर तें कहि यौं जग मैं कब छावहौ।
मोसौं बिरहीहि कै बाहि भगा कांर को सधि गावरें सूधे समावहौ।
ऐसी बियोग-दवागिनि कौं घनआनँद आय सँजोग सिरावहौ ॥३९२॥
दृग सींजियै रीझि परी जिनसों इन मोर-पखौवनि को मटकैं।
मन दै फिरि सीझियै आपु नहीं जु नहीं अटकै न कहूँ भटकैं।
करि बंदन दीन भनैं सुनियै दुख-फंदन मैं कब लौं लटकैं।
घनआनँद स्याम सुजान हरौ जिय-चातिक के हिय की खटकैं ॥३९३॥

कवित्त

समै के सरूप को जथारथ है बोध जाहि,
　　आए सो हरष औ बिषादहू न गत को।
प्यारो घनआनँद सुजान छायौ आँखिन मैं,
　　रस छाकै ताकै बाहि ठगिया ठगन को।
ताही न्यारो मिल्यौ औ बिचारो मो तौ नाहू मधि,
　　ताहि रंग ढंग राखौं सुमन पगत को।
ऐसी दसा जाग्यौ भाग जागैं तौ जगाय भेदैं,
　　प्रेम मैं जगत जिहि खेम मैं भगत को ॥३९४॥

सवैया

प्रानिन प्रान हौ, प्यारे सुजान हौ, बोलौ इते पर चीन्ह हौ क्यौं।
चेटक-चाव दुरौ उघरौ, पुनि हाथ लगे रहौ प्यारे गहौ क्यौं।

३९२—जनाऊँ—जनाऊँ (कवित्त)। समावहौ सुभाय हैं (वही)। आग-आय (प्रयाग)। ३९३—नहीं—नहीं (कवि०)। दुख—श्रम (कवित्त)। स्याम—मीत (प्रयाग)। ३९४—जाहि—ताहि। बिषादहू—बिषादन ढंग। बाहि—ताहि। जाग्यौ—भाग्यौ। खेम—प्रेम (वही)।

[३९२] जान=ज्ञानी। सिरावहौ=ठंडी करोगे। [३९३] मोर०=मोरपंख की आँखें, जो देख नहीं सकतीं। मटकै=नाचे, चंचल बना रहे। खटक=वेदना। [३९४]

मोहन रूप सरूप-पयोद मों भींनिहु जो, दुख-दाह दहौ क्यौं ।
नावँ भरे जग मैं घनआनँद नावँ तुम्हारो तौ नावँ सह्यौ क्यौं ॥३९५॥

सोरठा

जौ लौं जगै न भूल, तौ लौं सोवै सुरति-सुख ।
वही होय अनुकूल, तौ भूलै सुख-सुधि सबै ॥ ३९६ ॥

कवित्त

बेई कुंज-पुंज जित तरै तन बाढ़त हो,
तिन छाँह आगैं अब गहन ज्यौं गहि गो ।
सुरति-सुजान-नैन-नीचिन सौं सींची जिन,
वही जमुना, पै आली ! वह पानी बहि गो ।
बहै सुख-स्रम-स्वेद-समै को सहाय पौन,
नाहिं छिर्यौं देह देया महा दुख दहि गो ।
बेई घनआनँद जू जीवन कौं देते मिन,
ही को नावँ मरिनि के मारिबे कौं रहि गो ॥३९७॥

इतै अनदेखैं देखिबेई जोग दसा भई,
तैं तो अनाकनी ही सौं बाँध्यौ बीहि-सार है ।
आन घनआनँद बिनाउब सुबनक हेरे,
धीरज हिरात जात सूझत बिचार है ।
हीन भनि दीनन कौं मोहन अमोही रच्यौ,
महा निरदई हमैं मिल्यौ करतार है ।
तेरें बहरावनि कहै है कान बीच, हाय
सिरही बिचारिनि की मौन मैं पुकार है ॥३९८॥

३९६—भूल—मूल (राम) । होय—हेत । ३९७—ज्यौं—यौं (वही) आली—हेली । नाहिं—नाहिं । नावँ०—नाम मारिनि । ३९८—बनाउब—बनाव (संपा०) । कलिमा=छल । [३९५] पीरक=पीड़ा देनेवाले । [३९६] मूल=अर्थात् ईश्वर । [३९७] गहन=ग्रहण की दुःखदायिनी छाया । सींचि=जहर । [३९८] बहरा-

सवैया

साँझकाई-प्रदोष मैं खेल रच्यौ हँसि रोय सु औसर ओस भयौ ।
चहुरी करि पान बिषै-मदिरा तरुनाई-तमी मधि सोय गयौ ।
तजि कै रसमै घनआनँद कौं जग-धुंध सौं चातिक-नेम लयौ ।
जड़ जीव न जागत रे अजहूँ किनि, केसनि ओर तैं भोर भयौ ॥३९९॥

मन पारद लौं न रहै थिर ह्वै छिन एक मैं कोटिक ढार ढरै ।
धर अंबर खूँदि थकै न कहूँ जियरा इन सोचन सोच बरै ।
घनआनँद जो गुरु-ग्यान-जरी-रस रंचक या मधि आनि परै ।
मिटि जाहि बिचार-बिकार सबै सब सुद्ध रसायन-रूप धरै ॥४००॥

साँसहि साधि सुधारि महागुन मान अनेक तैं एक से पोहै ।
दै मन मंजु सुमेर जहाँ दुहुँ ओर गतागत कै न बिछोहै ।
फेर परै न कहूँ निज नाम सौं फेरि अनूपम रूपहि जोहै ।
या बिधि जो सुमिरै घनआनँद सो मत साधु-सिरोमनि सो है ॥४०१॥

खंजन ऐसे कहा मनरंजन, मीननि लेखौं कहा रस-ढार सो ।
कंजनि लाज को लेस नहीं, मृग रूखे, सने ये सनेह के सार सो ।
मोतिन के यह पानिप-जोति न, मान-सिखाई न जानत मार सो ।
मोन सुजान सिरावत तो दृग है घनआनँद रंग अपार सो ॥४०२॥

३९९—साँझ०—साँझ समयौ (राम) । चहुरी—चहुरयौ । धुंध०—धूँधरयो (वही) । ४००—भरै-भरे (राम) । ४०१—लै—सो (राम) । ४०२—सो—सो (राम) । है—लै (वही) ।

वनि=बहकाना। या बहरावन [३९९] प्रदोष=संध्याकाल । बिषै=विषय, भोग-विलास । तमी=रात्रि । धुंध=माया से आच्छन्न । केसनि=वृद्धावस्था के उज्ज्वल केश ज्ञान का प्रभात होने की सूचना दे रहे हैं । [४००] पारद=पारा । धर=पृथ्वी । अंबर=आकाश । बरौ न=ठहरता नहीं । रसायन=वह औषध जो जरा और व्याधि दूर करनेवाली हो [४०१] गुन=गुण; तागा । सुमेर=माला के सिरे पर की बड़ी गुरिया । दु बि=(दु) दोनों । गतागत=जाना आना । [४०२]

मोहिं निहोरिहै तू जु परेखक मैं, मेरो निहोरिबोई किन मानति ।
जासों नहीं ठहरै ठिक मान कौ, क्यों हठ कै सठ रूठनो ठानति ।
कैसी अजान भई है सुजान हौं, मित्र के प्रेम-चरित्र न जानति ।
सो मुरली घनआनँद की निति तान भरी, कित मोहिनि आनति ॥४०३॥

कान्ह ! परे बहुतायत मैं अकलैनि की बेदन जानौ कहा तुम ।
हौ मनमोहन मोहे कहूँ न बिथा बिमनैन की मानौ कहा तुम ।
बौरे बियोगिन आप सुजान ह्वै हाय कछू उर आनौ कहा तुम ।
आरतिवंत पपीहन कौं घनआनँद जू पहिचानौ कहा तुम ॥४०४॥

कवित्त

पानिप अनूप रूप जल कौं निहारि मन,
गयौ हो बिहार करिबे कौं चाय हारि कै ।
परयौ जाय रगनि की तरल तरंगनि मैं,
अति ही अपार माहि कैसें सकै तरि कै ।
भौंर-नीर सूझत कहूँ न घनआनँद यौं,
बिबस बिचारौ अबलौं बीच ही हहरि कै ।
लेस न सम्हार गहि फेननि मगन भयौ,
बूड़िबे तें बच्यौ को सिवार कौं पकरि कै ॥४०५॥

सवैया

[कहौ कछु और, करौ कछु और, गहौ कछु और, लखावत औरै ।
मिलौ सब रंग कहूँ नहिं संग, तिहारो सरंग तकै मति बौरै ।
गहौ बतियानि, सहौ पतियानि, डहौ छतियानि, निदान को ठौरै ।
महा छल छाय, लुभै हौं बनाय, कितै घनआनँद ! चातक दौरै ॥४०६॥]

४०३—कै-है (राम)। ४०५—कैं-कौं (राम)। ४०६—लखावत—लगावत (कवि०)।

मान०=बाधा मारकर बिखाना । मार=काम । [४०३] निहोरिहै=खुशामद करेगी । ठिक=स्थिरता । सठ०=दुष्ट रोष । [४०४] अकिलैनि=अनन्य प्रेमिका की । बिमनैन=बिमनस्कों की । [४०५] सिवार=शैलों का उपमान । [४०६]

कवित्त

इंदीवर-दलनि मिलाय सोनजुही गुही,
सुही माल हाल रूप गुन न परै गनै ।
पगिया पिछौरी छोर सीस पै कलंगि राखैं,
केसर बिचित्र अंग भाल रंग सौं सनै ।
मुरली मैं गौरी धुनि होरी घनआनँद तें,
तेरे नाम हहकनि ललक मनै ठनै ।
हाहा हे सुजान ! आजु दीजै मान-दान नेकु,
आवत गुपाल देखि लीजै बन तें बनै ॥४०७॥

भए अनभयो सो सरूप देखियत तेरो,
साहि तेरी साँस ही की गति साँची साखि रे ।
जीवै जग माहि राख्यौ रूठिये प्रतीति साँच,
साँचैं भूठ जानि कछु और अभिलाखि रे ।
कृपाबल ऐसें कैसें पंगुहि न नाँघै निधि,
ऐसें जैसें भूलनि सुधि सुधहि चाखि रे ।
जीवन मरत जौं पै दूरि घनआनँद है,
जीवत तौ मीचु सौं मरनि कोरि राखि रे ॥४०८॥

सवैया

ब्रजनाथ कहाय अनाथ करौ, छिन हूँ हित-रीति मैं भाँति नई ।
न परेखो कछू पै रह्यौ न परै, ठकुराइति-रीति अनीतिमई ।
घनआनँद जानहिं को सिखवै, सुलई रस सींचि जु बेलि बई ।
सुधि-भूलि सबै हिय सूल सलै हम सौं हरि ऐसे भए हैं दई ॥४०९॥

४०७—हेरि—हेरि (रा०)। तैं—हैं। ठठकनि—हहकनि, ललक—लखम (नहीं)
४०८—पंगुहि०—पंगुहौ। धँषै (राम)। ४०९—हैं—ए (राम)।

निदान=रोग के कारण की पहचान । [४०७] सुही=लाल । गौरी=गौरी राग । [४०८] भूलनि=सुख की भूल जाना । मीचु=मृत्यु । [४०९] भाँति=ढंग ।

कवित्त

बासर बसंत के अनंत हूँ कै अंत लेत,
ऐसे दिन पारें जु निहारें जिय रालि है।
लतनि कौ फूलनि तमालन पै झूलनि कौं,
हेरि हेरि नई नई भाँति पियराति है।
प्यारे घनआनंद सुजान! सुनौं काल-दसा,
चंदन-पवन तें पजरि सियराति है।
औसर मरहागै न तौ अनआवधि के संग
दूरि देस जायबे कौं प्यारी निअराति है ॥४१०॥

फागुन महीना की कहा ना परैं बातें दिन-
रातैं जैमें घंतल सुनें तें डफ-घोर कौं।
कोऊ हठें तान गाय, प्रान बान पैठि जात,
हाय चित बीच, पै न पाऊँ चितचोर कौं।
मच्यौ है चुहल चहूँ दिसि चाँप चाँचरि सौं,
कामौं कहौं सहौं ही बियोग-झकझोर कौं।
मेरो मन आली वा बिसासी बनमाली बिन,
बावरे लौं दौरि दौरि परै सब ओर कौं ॥४११॥

दोहा

गोरी! तेरे सरस दृग, किधौं स्यामघन आप।
दावानल सौं पाक ये करत बिरह-संताप ॥४१२॥

सवैया

घनआनँद-रूप सुजान सनेही पै, आपु ही आपुन-त्यौं बरसौ।
इन मो मधि मोरियै रानि रचौ, उत वाहि निवाहन मौं सरसौ।

४११–पैठि–पैठ (प्रयाग)। चुहल–चहल (राम)।

ठकुराइति०=बड़ों की रीति। [४१०] राति=अँधेरा ही अँधेरा। पजरि०=प्रज्व-
लित होकर ठंढा पड़ जाता है। [४११] घोर=ध्वनि। चुहल=विनोद। [४१२]

रसनायक माथक, लायक हौ किनहूँ भर भाय कहूँ तरसौ।
अब हौं जु कहौं सु तौ दूसरे कौं तुम हौ सब रंग मिले दरसौ ॥४१३॥

इक तौ जग-मांझ सनेही कहाँ, पै कहूँ जौं मिलाप की बास मिलै।
तिहि देखि सकै न बड़ो बिधि कूर, बियोग-समाधहि साजि पिलै।
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ, न मिलौ तौ कहौ मन काहि मिलै।
अमिले रहिबो लौं मिलें तें कहा, यह पीर मिलाप मैं धीर गिलै ॥४१४॥

मनमोहन तौ अनमोद करौ, यह मोहित होत फिरै सु कहा।
अरु जो अपहार हरै न हरै, गुन त्यौं तकि लागत दोष महा।
घनआनँद मीत सुजान सुनौ, चित नै इतनी हित-बात हहा।
जिय जाचक है जस देत बड़ो, जिन देहु कछू, किन लेहु लहा ॥४१५॥

अंतर हौ किधौं अंत रहौ, दृग फारि फिरौं कि अभागिनि भीरौं।
आगि जरौं अकि पानी परौं अब कैसी करौं हिय का बिधि धीरौं।
जौ घनआनँद ऐसी रुचै, तौ कहा बस है अहो प्राननि पीरौं।
पाऊँ कहाँ हरि हाय तुम्हैं, धरती मैं धँसौं कि अकासहिं चीरौं ॥४१६॥

कवित्त

होनि सौं महरौ पै अनहोनि जाके बीच भरी,
जामैं चलि जायबे मनाहि रहठानि है।
सांचो झूठ देखियै गुनैखनि लौं पेखियै हो,
सोई लखि लेहै जाहि पूरी पहचानि है।
वहाँ घनआनँद है पोखन सुजाननि कौं,
नीर स्वारि छीर पीवो हंसनि की बानि है।

४१३–लिए दून निव.डिन (राम)। ४१४–कहौ–कहु (प्रयाग)। ४१७–
लौं–लौ (राम)। है–है। लेहै–लेहै। पीवो–पीवै। हंसनि–हंसनि (वही)।

स्यामघन=श्रीकृष्ण; काले बादल। [४१३] तरसौ=प्यासे करते हो। [४१४]
बास=गंध। पिलै=टूट पड़ता है। धीर०=धैर्य को निगल जाता है। [४१५]
अपहार=बिरंग तौर से हरनेवाला। लहा=लाभ। [४१६] अभागिनि०=मैं अभागिनी
निपट सही। अकि=अथवा। [४१७] होनि=अस्तित्व, सत्ता। अनहोनि=अन-

कैसो अचरजखानि दीसि पर्यो जग जानि,
जाको लाभ हानि जाकों उपजि बिलानि है ॥४१७॥

सवैया

घर ही घर चौचँद-चौपरि है, बहु-भाँतिन रंग रचाय रह्यौ।
भरि नैन हियैं हरि सूझ सम्हार सबैं करि नाक नचाय रह्यौ।
घनआनंद पै ब्रज-गोरिनि कौं नख तैं सिख लौं चरचाय रह्यौ।
लखि सूनो सकै किन गावरौ ह्वै बिरहा नित फाग मचाय रह्यौ ॥४१८॥

मनमोहन नाहिं रहै सु करौ, पन कौ पटिहै बह जौ बढ़िहै।
बहु ओगनि लै भटकावत यौं, अटकावत क्यौं न कहा घटिहै।
घनआनंद मीत सुजान सुनौ अपनी अपनी सिसि कौ हटिहै।
तुम ही तन खोरि लगाइहै जू दृग मोरि कै जौ हम त्यौं डटिहै ॥४१९॥

कवित्त

रास मैं सुरस इसों दिसनि उफनि चल्यौ,
तान की चुहल चोख आप-आपनी मची।
सुघाई सों भरे सुर मोचे साधे लघु गुरु,
भौंहों धुनि सुनि मति राग-रंग ह्वै रची।
मौन मौन थकि छीन छबि जगत भयौ,
कौन कहि सकै स्वाद मीन कछू लै पची।
रीझि घनआनँद रह्यौ है छबि छाय तहाँ,
याते अब सोभा न कहूँ न रंचकौ बची ॥४२०॥

४१९-पटिहै०-पटिहै बढ़ि (का०)। बढ़िहै-चढ़िहै (कवित्त)। यौं-क्यौं (वही)। ४२०-मैं०-सिंधु (राम)। चोख-चोप। है-है (वही)।

मिलाप, असफलता। रहवानि=रहने का स्थान। दीसो०=यह अचरज सब दिखाई पड़ता है। सुपेखनी०=देखने को तो यह सुंदर तमाशा है, पर इसे सब देख नहीं पाते जिसकी ज्ञानदृष्टि पूर्ण होती है वही इस खेल को देख सकता है। उपजि०=इसकी उपज ही नाश है। [४१८] चौचँद=चरचा। करि०=नाक के बल। [४१९] पन कौ०=इसकी प्रतिज्ञा पूरी हो जायगी। घटिहै=समाप्त हो जायगी। खोरि=दोष। नम०=अर्थात् मरणासन्न हो जायगी। [४२०] मौन०=मौन ने

सवैया

हम सौं पिय सौंपिये बात कहा मन सौं मनस्यौ अरु नाहिं कहूँ।
कपटी निपटै, हिय दारुन हौ, निरदै जु दई डर नाहिं कहूँ।
सब ही रँग मैं घनआनँद पै बस-बात परे थकु नाहिं कहूँ।
उघरौ, बरसौ, सरसौ, तरसौ, सब ठौर बसौ थकु नाहिं कहूँ ॥४२१॥

कवित्त

मन की जनाऊं ताकें मोहन ही हौं हो कान्ह,
जानराय गुनहि लगाऊँ कैसे दोष जू।
बिनाई कहँ करौ तौ कहिबे को कहा रही,
कहँ क्यौं न करौ दान प्रान-परितोष जू।
तुम्हैं रिझवार जानि खीझ सौं कहत प्यारे,
हाहा कृपानिधि नेकौ मानियै न रोष जू।
आनँद के घन भूमि झूमि कित तरसावौ,
बरसि सरसि कीजै हेत-लता-पोष जू ॥४२२॥

कौन कौन अंगन के रंगन मैं रोंचैं मन,
मौन होत सोई सुख मुख पुनि ल्याभई।
मौन मिही बात है समझि काहि जानौ जान,
अमी काहू भाँति को अनभै भरि ल्यावई।
भोरनि उगनि याकी मूरछा सचेत सदा,
रीझ घनआनँद लिखैं थाहि न्यावई।
कहैं कौन मानै, पहचानै कान नैन छाकै,
बात की मिठास मोहि मारि मारि ज्यावई ॥४२३॥

४२१-रचौ-धनौ (का०)। कौन०-को अनुहिर (राम)। कानैं-कानें (वहीं)। ४२२-ही-हौ (राम)। बिनाई-बिना ही। दान-दीन (वही)। ४२३-मौन होत-मोहन हो (राम)। कहैं०-कहै कोउव (वही)।

हो यह स्वाद कुछ पचा पाया। यह अनुभवगम्य है, अनिर्वचनीय है। [४२१] मन०=आपका मन कहीं अवश्य अनुरक्त नहीं है। [४२२] जानराय=ज्ञानियों में श्रेष्ठ। [४२३] मिही=सूक्ष्म, गूढ़। कान०=जिसके नेत्रों में कान हों, अो

सवैया

आँखिन मूँदिबो बात दिखावत, सोवनि जागनि जानहि पेखि लै।
बात-सरूप अनूप अरूप है, भूल्यौ कहा तू अलेखहि लेखि लै।
बात की बात सुबात बिचारिबो सूछमता मन हौर बिसेखि लै।
नैननि-कानन बीच बसै घनआनँद मौन-बखान सु देखि लै ॥४२४॥

कवित्त

सुधि करैं भूल की सुरति जब आय जाय
तब सब सुधि भूलि झूकौं गहि मौन कौं।
जाहि सुधि भूलै सो कृपा तें पाइयत प्यारे,
फूलि फूलि भूलौं या भरोसैं सुधि हौन कौं।
मेरो सुधि-भूलहि बिचारियै सुजाननाथ!
चातक अभाई घनआनँद अचौन कौं।
ऐसी भूल हू सौं सुधि राखबौ न भूलें क्यौं हूँ,
ताहि जौ बिसारौ तौ सम्हारौ फिरि कौन कौं ॥४२५॥

सवैया

सुधि भूलि रहौं मिलि ज्यौं जलपै अब यौं मन क्यौं करि फूलिहै जू।
मिटिहै तबहीं तिहि ताप जबै सुधि आवन की सुधि भूलिहै जू।
घनआनँद भूलनि की सुधि कौं मनि बावरी ह्वै रहौ भूलिहै जू।
सुधि कौन करै इन बातन कौं कबहूँ तौ कृपा अनुकूलिहै जू ॥४२६॥

कवित्त

रसिक रँगीले भलो भाँतिनि छबीले घन-
आनँद रसीले भरे महासुख-सार हैं।
कृपा-धन-धाम स्यामसुंदर सुजान मोद-
मूरति सनेही सिखा बूझैं निरधार हैं।

४२४–सूछमता–सूछमता (कवित्त)। ४२५–अचौन–अचौन (कवि०)।

देखकर ही मेरी मौन पुकार सुन ले। [४२५] झकोर=वश। [४२५] अचौन=आचमन, पीना। [४२६] फूलिहै=समाप्त हो जायगी। [४२७] अचाह०=

चाह-आलबाल कौ अचाह के कलपतरु,
कीरति-मयंक प्रेम-सागर अपार हैं।
निज हित-संगी, मनमोहन त्रिभंगी, मेरे
प्रानन अधार नंदनंदन उदार हैं ॥४२७॥

सवैया

जगि सोवनि मैं जगियै रहैं चाह बढ़ै अनराग उठै रतिया।
भरि अंक निसंक ह्वै भेटन कौं अभिलाष-अनेक-भरी छतिया।
मन तें मुख लौं निति फेर बसो किन क्यौंरि सकौं हित की बतिया।
घनआनँद जीवन-प्रान लख्यौ सु लिख्यौ किहि भाँति परैं पतियाँ ॥४२८॥

कवित्त

थिरता अथिर सोई थिर देखियत देखें,
सब ही के जिय नेकौ भौन सौं न है निहारि।
होनि मो नहीं है अनहोनि हू नहीं है, ऐसी
होनि अनहोनि कौं न सोच कोऊ ये बिचारि।
दोऊ मिटि गए तें रहै जो सुख, कहै कौन,
ऐसी जाहि सूझै दीजे प्यारी तिहि बूझि वारि।
उघरनि छावनि सुजान घनआनँद मैं
उघरि छए हैं पै पसारे आपनो रसारि ॥४२९॥

सवैया

पीठि दियैं सब दीठि परैं निमुहैं, जग डीठिनि कौन सकेरै।
धीरि धरयौ जिस ही मिल ही निरहीं चितयौं न कहूँ हित हेरै।
कागद-मौन लै आगर मौन दै बात बसी पै सुजानहि टेरै।
नैननि कानन सौंही सदा घनआनँद औरनि सौं मुख फेरै ॥४३०॥

४२८–अनराग–अनुराग (कवि०)। ४२९–सो०–सदा है (रत्न)। ... तेहि बूझि। पसारे–पसारि (वही)। ४३०–निरहीं–निरहीं (रत्न)।

जिसकी चाह करनेवाला कोई न हो उसके लिए कल्पवृक्ष है। [४२८] अनराग०=अनुरागे जगता है। [४२९] मौन=मृत्यु। बूझि=बूझकर, बिना बिचार किए ही। [४३०] निमुहैं=बिना मुंह के। सकेरै=सकेलै, एकत्र करे।

प्रेम की पीर अधीर करै हिय, रोवनि कौं दृग आँसुनि ढारत ।
चाहनि चोप उमाह उमग पुकारनि यौं नित प्रान पुकारत ।
हौं घनआनँद छाय रहे कित धौं असम्हारहि नाहिँ सम्हारत ।
एजू सुजान जनाऊँ कहा बिन आरति कौं, अति या विधि आरत ॥४३१॥

हम आपनो सो बहुतेरो पचैं कि बचैं अवलोक तैं एकौ घरी ।
न रहै मन नैसिक तान भिदे छिदै कान ह्वै प्रान सुलाकी खरी ।
घनआनँद बीरनि डौरनि डोरनि ढूँढ़िथौं पैयत लाज न री ।
कित जाहिँ कहा करैं कैसें भरैं यह कान्ह की बाँसुरी बैर परी ॥४३२॥

कवित्त

नेही नैन आरत पपीहन की चाह भरयौ,
पानिप अपार घरै सोभन अदेह को ।
उरझ्यौ काहू भाँति धीर आरनि अपूरब पै,
इते पै कुलीन चैन प्रान मन देह को ।
दोऊ अदभुत देखौ रसिक सुजान क्यौं न,
लेहि देहि स्वाद-सुख आनँद अछेह को ।
मोहि नीको लागत री राधे मेरे लोने इन
अंग अंग अतराल रंग मेह नेह को ॥४३३॥

सवैया

बरसैं तरसैं सरसैं अरसैं न कहूँ दरसैं इहि छाक छई ।
निरखैं परसैं करसैं हरषैं उपजीं अभिलाषनि लाख जई ।
घनआनँद ही उनए इन मैं बहु भाँतिनि ये उन रंग रई ।
रसमूरति स्यामहिं देखत हीं सजनी अँखियाँ रसरासि भई ॥४३४॥

४३१—पचैं—करैं (राम)। अवलोक—अवलोकन तें—(कवि०); अवलोकनैं (संग्रह)। ४३३—धीर—धारे (प्रमाद)। आरनि—ओरनि (कवि०)।

आरत=उत्सुक। [४३१] आरति०=आप वेदना से रहित हैं। [४३२] अवलोक=अवलोकन से। [४३३] अदेह=रूपहीन। अपूरब=अपूर्व, अनुपम; पूर्व से इतर दिशा। अछेह=अछेद्य; अक्षय। [४३४] जई=अनुरक्त हुई।

छप्पय

चलनि नहीं मँडराय रहनि कौं चलनि चल्यौ तू ।
छल मो जीवन देखि तऊ तिहिं छलनि छल्यौ तू ।
भ्रम बाद पचि मरयौ मरम-सोधौ न धरयौ तू ।
अंत गहैगो मौन कहौ कबहूँ न करयौ तू ।
अजौं चेति जड़ जीव किनि कित आयौ जैबो कहाँ ।
चित चलाय नित ह्वै अचल, घनआनँद चलिबो जहाँ ॥४३५॥

सवैया

जिय सूझ करौं हठि बूझत जौ कि सुधा मधि बीच परयौ परि क्यौं ।
अब भूलि गई सुधि कतक की अपराधन तें न धरयौ हरि क्यौं ।
घनआनँद त्यौं मनि लेह अबै सु बनावहिं साँच खरयौ हरि क्यौं ।
कित कौं करतूतिहि खोरि लगै निज या विधि मोहि रच्यौ हरि क्यौं ॥४३६॥

हारे उपाय, कहा करौं हाय, भरी फिरि धाय ससोस यौं मारै ।
रोचनि आँसू न नैननि देखौं इक मौन मैं व्याकुल प्रान पुकारै ।
ऐसी दसा जग छायौ अँधेर बिना हित-मूरति कौन सम्हारै ।
है जिन ही की कृपा घनआनँद हाथ गहैं प्रिय-पायनि पारै ॥४३७॥

जिहि पाय की धूरि लौं जाय न पौन, करै इहि भाग कौं गौन-मनै ।
सिहि दूरि किती कहि आँधि बिचारि, विचारत क्यौं न कहा बिरमै ।
गति बूझि परी, किन सूझत रे, कहिबौ न छिपै किहि यौं सुगमै ।
घनआनँद आहि कृपा निधि सो अजि लै रसमैं तजि दै बिसमै ॥४३८॥

रस-रंग-भरी मृदु बोलनि कौं कल कानहिं पान करावहीं जू ।
नसि हंस-प्रसंसित लौं कब धौं सुख लै अँखियान मैं आवहीं जू ।

४३५—तू—तैं (प्रमाद)। ४३६—जौ—तौ (राम)। त्यौं—तैं। तु०—सुनै जाय है। खोरि—हरि। लगै—लई। हारे—मारे (वही)। ४३७—आँसू—आँसुनि (कवि०)। सम्हारै—सहारे (राम)। ४३८—छिपै—छिपौं (राम)।

[४३५] भ्रम=भ्रांति, मिथ्या। मरम०=वास्तविक बात की खोज। चित०=चित्त में विचार करके। [४३६] परयौ=परेशान हुआ। साँच०=सत्य असत्य कैसे होगा। खोरि=दोष। [४३८] यौं=प्रकार, तरह। [४३९] रस=प्रेम; जल।

अभिलाषनि पूरिकै उफन्यौ मन तैं मनमोहन पावही जू।
चित-चातक कै घनआनँद हौ रटना परि रीझनि छावही जू ॥४३९॥

कवित्त

बीतनि को रूप तूँ ठहरि हेरि गए बीते,
ऐसें जोर जग मैं निसा अद्य बिताव रे।
ठहरनि बातनि तें बहुरि बहुरि नीकैं,
निहचै सौं हियो भरि संसय रिताव रे।
कौन नींद सोवत है औसर क्यौं खोवत है,
हूल-बातें सुनि हाहा चेतहि चिताव रे।
ऐसें रंग रचें जौ बचै तौ घनआनँद हूँ,
तचै कैसें ताप आय जीवन हिराव रे ॥४४०॥

सवैया

चित दै जिहि भाँति, भजौं सोहि क्यों, रहि क्यौं हूँ परै न हितात हियौ।
सु न जानत जीवन कौन सौं काम, बिसास मैं प्रेम को नेम लियौ।
घनआनँद कैसें सुजान हौ जू जिहि मूरति सोच न छाँहि छियौ।
करी बावरी रावरी बोलनि हौं कहि प्यारी मनोज के प्यार कियौ ॥४४१॥

कवित्त

सबद-सुरूप कहैं जानन सुजान चहैं,
अचिरज यहै और होत सुर लाग मैं।
वेद-भेद ताके जानि परी यौं सुजाननि कौं,
अगह अगाह नाद पावत विभाग मैं।
पूरि तानि बानि पहचानि घनआनँद जौ,
पांवड़े करत हिय प्रानपति आगमैं।

४४०—तूँ०—कूठ हेरि (राम)। गए—गयौ। जोर—जोग। निसा—कहा। निहचै०—नहीं सौं न हियो भार। तचे—नचै (वही)। ४४१—चितदै—चितवै (प्रयाग); चितवौ (कवित्त)।

[४४०] बीतनि=क्षणभंगुरता। बहुरि०=बहुर बहुर कर, किसी प्रकार बचकर। रिताव=खाली कर, दूर कर। [४४१] न हितात=अच्छा नहीं लगता। बनाय

सूछम उसास गुन चुन्यौ ताहि लखै कौन,
पीन पट रँग्यौ पेखियत रंग-राग मैं ॥४४२॥

सवैया

यह नेह तिहारो अनोखो लग्यौ, जु परयौ चित रूखो सबै तन ही।
बिसरै छिन जो सु करै सुधि लौं, गुन-माल बिसाल गनैं मन ही।
हित-चातिक-प्रान, सजीवन जान! रचे विधि आनँद के घन ही।
दरसौं परसौं बरसौ सरसौ मन जौं हू गए पै लसौ मन ही ॥४४३॥

कवित्त

मिलन तिहारो अनमिलन मिलावत है,
मिलैं अनमिल कछू करि न सकौ तरक।
जियौं तुम ही तें बिना तुम्हैं मरि मरि जावँ,
एक गावँ बासि बैरी ऐसो राखिये सरक।
देखि देखि हूँहाँ दुख-दसा देखि मिलो हाहा,
मीत यौं बिसासी यह कसकै भई करक।
आनँद के घन हौ सुजान कान खोलि कहौं,
आरस जगौ है कैसें सोई है कृपा-ढरक ॥४४४॥

सवैया

औगुन हौ गुन मानि महा, अभिमान भरयौ अति उत्तम नीच मैं।
नीरसता सरस्यौं नित पै अरस्यौ न कहूँ सनि आरस कीच मैं।
ऐसो अचेत जु सोच किधौं भ्रम, जीवन को सुख साधत मीच मैं।
ख्याल परयौ अब होत हरयौ हरि नैंकु, कृपा घनआनँद-सींच मैं ॥४४५॥

४४२—चहै—चहै (राम)। ताके०—ताकौ जानि परयौ। पावत—लेत हौ। करत—ठानें। पेखियत—देखियत (वही)। ४४३—गनैं—गुनै (राम)। ४४४—बैरी०—ऐसी लिये (राम)। ४४५—न—जु (राम)।

पीन=कृत्रिम। [४४२] सुर=ध्वनि। लाग=प्रीति। आगमैं=आगमन में। गुन=सूत। [४४३] तन=ओर। बिसरै०=विस्मृत दशा के क्षण तेरी ही स्मृति में लगे रहते हैं। [४४४] सरक=खिंचाव। करक=पीड़ा। [४४५] अब=मिथ्या।

आयौ महारसपुंज भर्यौ घनआनँद रूप-सिंगार को मौरे।
सींचत है हिय-देस सुदेस अपूरब आँखिनि ठानत ठौरे।
मोहन-बाँसुरिया सो बजै मधुरै गरजै धुनि मैं मति बौरे।
आज की मोरनि की सजनी चित दै सुनि लै कछु बोलनि औरे ॥४४६॥
धर अंबर नैं जु कछू लखियै सु सबै गुन-बोलनि रूप बन्यौ।
ठहरै न कछू इहि कारन दीठि महा चित चेटक ठान ठन्यौ।
घनआनँद दौ सहजै सब जाल तकौ रहि जानि जौ बोध जन्यौ।
छन की हत को सुधि भूलि भली जग फागुन-भोर को भेद भन्यौ ॥४४७॥

दोहा

सहज रचै सोई बचै, वृथा पचै संसार।
सहज मिलन बिछुरन सहज, सहज सकल ब्योहार ॥४४८॥
सुख सुदेस को राज लहि, भए अमर अवनीस।
कृपा कृपानिधि की सदा, छत्र हमारे सीस ॥४४९॥
हरि तुम सौं पहचानि को, मोहि लगाव न लेस।
इहि उमंग फूल्यौ फिरौं, बसौं कृपा के देस ॥४५०॥
मोसे अनपहचान कौं, पहचानै हरि कौन।
कृपा-कान मधि-नैन ज्यौं, त्यौं पुकार मधि-मौन ॥४५१॥

कवित्त

दीनौं जग जनम, जनाय जैं जुगति आछी,
कहा कहौं कृपा की ढरनि ढरहरे हौ।
आनँद-नयौ ह्वै मगन मोंचै रोम-रोम,
भाव-निरभर लै सुधोअ-सर भरे हौ।

४४६—कौ—कै (राम)। ४४७-धर-धरा (का०)। ढकैं—ढवै (राम)। ठहरै—ठहरै (वही) तकौ०—उन को इनकी (राम)। ४४८—संसार-है सार (राम)। ४५०—फिरौं—रहौं (राम)।

[४४६] मौरै=मुकुट ही। सुदेस=उत्तम। [४४७] गुन-बोलनि=गुलरहित। चेटक=माया, जादू। बोध०=बोध जगाता हो। [४४८] सहज=सरल, स्वाभाविक [४५०] कृपा०=कृपा में ही। [४५१] कृपा०=जैसे आपके नेत्रों में कृपा के

जीवन-अधार प्यारे आँखिन मैं आय छाय,
हाय हाय अंग-अंग-संग रंग रचे हौ।
ऐसैं कथौं सुलझै सोच-तारनि, हरनौ के हरी,
जैसे या पपीहा-नीति नीठि हू न पचे हौ ॥४५२॥

सोरठा

घनआनँद रस-ऐन, कहौ कृपानिधि कौन हित।
मरत पपीहा-नैन, बरसौ पै दरसौ नहीं ॥४५३॥

सवैया

रस चाँचँद चाँचरि फाग मची, लखि रीझि बिकानि थकी जु चकी।
समुहाय लहौं हरि भामिनि त्यौं पिचकी भरि तकि तकी कुच की।
नत भृकुटि-गुलाल उठै झकसैं जु लगै परि लैं अँखियाँ दुचकी।
घनआनँद घूमनि झूमि रहे गुलचाइन लै अचकौं उचकी ॥४५४॥

कवित्त

देह सौं सनेह सो तौ ह्वै रह्यौ खिन ही मैं,
नातो सब हातो परि रह्यौ नहीं रे नाम।
फूलै भ्रम भूलैं किन मूलैं मोह फंदनि न,
तन को सम्हारैं क्यौं न आनन के संगी स्याम।
जागत हू सोयै सोवैं मर्म सौं रतन जौरे,
पाय घनआनँद नचै अचेत काम भाग।
आएँ औधि-औसर उमाहहू बसाँय जैहै,
भरेई रहैंगे धनधाम बंधे धूमधाम ॥४५५॥

४५२—जनाय—जनाई (राम)। जुगति—जुगति (कवि०)। भरे—गहभरे (राम)। रंग—रूप (वही)। ४५३—बरसौ—बरसौ (राम)। दरसौ—दरसौ (वही)। ४५५—मोह—भ्रम (सेवक)। उमाहहू—उमाहै (राम)।

कान लगे हैं वैसे ही मेरी पुकार मौन में है। आप देखकर मेरी स्थिति समझते और बिना कुछ कहे ही कृपा करते हैं। [४५२] ढरहरे=द्रवीभूत। आनँद०=आनंद के बादल; घनआनंद। निरभर=पूर्ण; निर+भर=जो भरा न हो। नीठि=किसी प्रकार भी। [४५३] ऐन—घर। हित=प्रेम या लिए। [४५५] मोह—अज्ञान। हातो=दूर

सवैया

संग लगे फिरौ हौं अलगी रहौं मोहुवै गैल लगावत क्यौं नहीं ।
नेंरस राचनि हौ सरसौ रस-मूरति प्रीति पगावत क्यौं नहीं ।
ढीलो परयौ तुम सौं घनआनँद हौं गुनरासि खगावत क्यौं नहीं ।
जागत सोवत सो हौ कहा वही सोवत मोहिं जगावत क्यौं नहीं ॥४५६॥

मन मेरो अनेरो घनेरो भयौ अब कौन के आगे पुकार करौं ।
सुखकंद कहा ब्रजचंद सुनौ जिय आवति है तुम ही सौं लरौं ।
मनमोह भए जु न मोहत हौ मनमोहन यौं बिधि बाहि भरौं ।
घनआनंद ह्वै दुख-ताप तपावत क्यौं करि नावँहि नाएँ धरौं ॥४५७॥

रूप-सुधारस-प्यास-भरी नित हौं अँसुवा ढरिबोई करैंगी ।
पावन-साध असाध भई इहि जीवनि यौं मरिबोई करैंगी ।
हाय महादुख है सुखदैन बिचारौ हियें भरिबोई करैंगी ।
क्यौं घनआनँद मीत सुजान कहा अँखियाँ भरिबोई करैंगी ॥४५८॥

सुनि बेनु को मादक नाद महा उनमाद सवाद छक्यौं न थिरै ।
निसिद्यौस घुमौंहनि भौंर परयौ अभिलाष-महोदधि हेरि हिरै ।
घनआनँद भोजन लोचनि सूझन आकनि दौरि सम्हारि गिरै ।
मन लौं यहि लोज बिरयौ पर मैं बन मैं मनमोहन-संग फिरै ॥४५९॥

कवित्त

बिरह को बेदनि तें गिरि जात सबै गात,
एक एक बात सुधि आगें दुख दूनो है ।
बिलखत छाँड़ौ छौड़ चातक पिन्हारी करि,
बारि दियौ हिये मैं उद्वेग को अमूनो है ।

४५६—अलगी—अलगी (ान) रहौं—रहौं (कौं०)। वहौ—कहौ (राम)।
४५७—तौं—तें (खोज)। मनमोह—मनमोह (कौं०)। भरौं—भरौं (खोज)
तपावत—तपावत। क्यौं०—आवत (वह)। ४५८—यौं०—क्यौं (कांवत)।

ठाँवर। काम०=कामना के घर में। उमरि०=छिन्नभिन्न हो जाएगा। भ्रम०=भूल-चपेड़। [४५६] गुन=दृष्टा ओर। खगावत=मिलाते क्यौं नहीं; कसते क्यौं नहीं। [४५७] अनेरो=दुष्ट। [४५८] लाख=उत्कंठा। असाध=असाध्य। भरि

ऐसें कैसें कै लौं रूँधि राखिये पपीहा प्रान,
जीवन दुहेलो घनआनँद बिहूनो है ।
बसन हितू समाज काहू सौं न मोहिं काज,
आली वा बिसासी बिनु लागै ब्रज सूनो है ॥४६०॥

सवैया

दूरि भजौ कितनौऊ तजौ हियरा तें हटै नहिं हाय हितैबो ।
लखौ कहा हमसौं है तुम्हैं हमहीं है परौ जुग कोटि बितैबो ।
पूरि परेखें रह्यौ चित-चातक हौ घनआनँद कैसें रितैबो ।
आँखि बिसासिनि आस गहौ न तजैं इनते पर नाद चितैबो ॥४६१॥

देख तुम्हैं तब लखें लिखैं लिखिया लाखिन भई आहि अहा गति ।
एक घरी अँसुवन बाढ़ बहैं न रहैं मरबो लौं गहै सु महा गति ।
यौं दिनराति भरैं घनआनँद देखौ बिचारि के नेकु हहा गति ।
आँखि दुखारिन की यह पीर लहौ नहीं प्यारे कहौ तौ कहा गति ॥४६२॥

हौं सु भले हौ कहा कहिये हम आपने पूरन भाग लहे हौ ।
आँखि निगोड़िन हौ यह दाप अजू तुम तौ गुन-गाँसि-गहे हौ ।
आनँद के घन हौ रस-मूरति प्यास बढ़ाय कितै उमहे हौ ।
लै मन बाँधि रहे तन त्यौं अब क्यौं उर-अंतर पैठि रहे हौ ॥४६३॥

रूप-सुदेस को राज करयौ करौ छत्र-गुमाननि सीस धरै जू ।
सुंदर साँवरे हौ दिन-दूलह चाव चहूँ दिसि चौंर ढरै जू ।
नीके लसौ बरसौ घनआनँद चातक-लोचन प्यास मरै जू ।
रावत हैं तुम्हें जीवन दै अंतर्जामिन रावरो आस करै जू ॥४६४॥

बोई=दुख के दिन काटना। [४५९] घुमौंहनि=घुमाव रूपी भँवर में [४६०] गिरि=शिथिल हो रहे हैं। गात=गात्र, अंग। दूनो=दुगना। दुहेलो=दुःखमय। बिहूनो=विहीन, रहित। [४६१] हितैबो=प्रेम करना। [४६२] अहा गति=आनंद की स्थिति। महा गति—ऊंची चाल हहा गति=हाय दुर्दशा। कहा गति=क्या दशा! [४६३] गाँस=फंदा। [४६४] दिन-दूलह=प्रतिदिन दूल्हा.

तुम्हैं देखि जियौं नियौं रूप-सुधा घनआनँद प्यारे सदा सौं कहौं ।
मिलि जाहुँ तुम्हैं रँग लोन लौं पाय पै हाथ मिलौं नहीं तासौं कहौं ।
यह रावरीयै रस-रीति अजू अपढार ढरौ इत धासौं कहौं ।
सुनि ऊतर देत न नेकहू कहौं कि तुम्हारे सचाइहि कासौं कहौं ॥४६५॥

प्रीति के डाँवहि बैर सों लैन कौं ताकि रहौ मन के अभिलाखनि ।
घातक-चोपनि चाहति हौ घनआनँद अंग सवादिलौ चाखनि ।
लाज-लपेटी लुनाबलि ज्यौं करि लौन मैं साहि तें सौगुनी माखनि ।
फागुन आवत ही उघरी इहि ओर बढ़ै हियरा भरि राखनि ॥४६६॥

कमला तप साधि अराधति है अभिलाष-महोदधि-मंजन कै ।
हित संपति हेरि हिराय रही नित रीझ बसी मन-रंजन कै ।
तिहि भूमि की ऊरध-भाग-दसा जसुदा-सुत के पद-कंजन कै ।
घनआनँद-रूप निहारन कौं ब्रज की रज आँखिन अंजन कै ॥४६७॥

नंद के आनँदकंद उदै ब्रजचंद बधाएँ सबै मिलि जाहीं ।
नैन हियें सुनि ही कै जियैं अभिलाष चकोरनि ने अधिकाहीं ।
दूध दही क मही की नदी बही गोकुल गोप-गवारिन माँहीं ।
आनँद को घन ओपन सौं अति ह्वै उमगै सरसै हित-छाँहीं ॥४६८॥

गोकुल-घाँ तैं कुलाहल की धुनि आवति ज्यावति प्रान सुछंद है ।
राजि जसोमति-कोख उदै भयौ पूरब भाग अपूरब चंद है ।
चाह-समुद्र मनैं सरस्यौ घनआनँद नैनन कौं सुखकंद है ।
आजु लख्यौ सजनी रजनी द्युति दीसति औरई ओप अमंद है ॥४६९॥

कवित्त

गोकुल-नरनारिन मैं मचा गहमह माँची,
गोपै-गोप उमहे बधाएँ ब्रज-ईस को ।

सदा सुखदा । [४६५] अपढार=सरलता से ढलना । [४६६] सवादिलौ=स्वादिष्ट । लाख=अभिलाषा । [४६७] पद०=चरण कमलों से । [४६८] गवारि=छोटी गली । [४६९] घाँ=ओर । सुछंद । पूरब०=पूर्वजन्म के भाग्य से ।

कान्ह कुलमंडन प्रगट भए भूरि-भाग
भादौं कृष्न-पाख आठैं उदै रजनीस को ।
पूरी है कुलाहल की धुनि-धारा चहूँ ओर,
आनँद को घन घोरैं बोलत असीस को ।
कामना-सुतरु छायौ फूल-संग फल पायौ,
औसर अनूप आयौ उर-बकसीस को ॥४७०॥

मुकुट मनोहर मैं लटक-अटक भरि,
घूमर बिलोचन चलावैं काम-कटकै ।
केसरि की खौरि खोरि पारत निहारैं मन,
दौरि दौरि अंग-संग रंगनि त्यौं भटकै ।
कहा कहौं हेली मनमोहन अनूप रूप,
हरै मान बाँसुरी हहारें लाज-हटकै ।
देखैं घनआनँद रसीली मृदु मूरति कौं,
ऐसी कौन बावरी सयानि लैन घटकै ॥४७१॥

सवैया

झुकि रूप-तरंगनि भाल परें गुनमाल बिसालनि लै फँदई ।
उफनाय ज्यौं रससिंधु हियें मुखचंद लखें अभिलाष छई ।
घनआनँद औसर के बस ह्वै मन की गति कौतुकी संग गई ।
जित ह्वै जित मोहन गौन कियो अँखियाँ तित ही तित क्यौं न भई ॥४७२॥

तीर ही जाके महाछबि-भीर सौं सोहै गुपाल को गोकुल गाँव री ।
बासिन के दृग-तारन-पुंज की मूरति मंजु लसै तिहि ठाँव री ।
ऐसें रसामृत पूरत ह्वै भरिबाइ करै अमलादिन भाँवरी ।
है यमुना जमुना घनआनँद साँवरे-संगम रंगनि साँवरी ॥४७३॥

कवित्त

मन के मनोरथ-महोदधि-तरंगनि मैं,
अति ही तरल गति प्रबल प्रचंड है ।

[४७०] गहमह=चहल-पहल । मचा=नंद महर के यहाँ । उर०=हृदय को दान कर देने का । [४७१] लाज०=लज्जा की हिचक । घटकै=परेशान हो । [४७३]

एक एक बीचि-बीच साथर असेष जहाँ,
मूखैं नागि वोरैं नीर दीरघ अखंड है।
पार परि कोऊ न सक्यौ है विश्वकर्या है ओज,
थीजें सिद्ध चारन मुनीस महिमंड है।
सोई घनआनँद सुजान-रूप को पयोहा,
सोभासींव जाके सीस मंडित सिखंड है ॥४७४॥

यहै मन है हरि नाम तिहारो कहूँ कबहूँ सुधि भूलि न लीजै।
जु यौं बिन नाथ बिसासनि लागत हाय नऊ तुमहीं लगि जीजै।
सुबास भरी घनआनँद है दुरि देखनि त्यौं खिसियौ हँसि दीजै।
जरौ रसना सौं कहा कहियै थकि मोहि उठै जिन की कस कीजै ॥४७५॥

गोपिन के रस को चसको जब लौं न लग्यौ तब लौं मन गंजन।
नीरस की रसिकाई कहा मन हो बिधि है मद रे मद-भंजन।
प्रेम पिकोन को स्याम भरचौ घनआनँद छायौ जहाँ हित-गुंजन।
सोई सुदेस सदा सुखमैन बसै जमुना-तट को बन कुंजन ॥४७६॥

तोकौं नई गुन-रूप-जई अनुरागमई अति आप चढ़ी है।
तोहि तकी फँदवारि कहा फिरि चौपति मोहन मंत्र पढ़ी है।
भीजनि भीजै सुधा-रस स्याम सदा घनआनँद गेह बढ़ी है।
प्रीतम के पहुँचा पहुँची यह संपति राखियै हाथ चढ़ी है ॥४७७॥

प्रेम के पाले परै जिय जाको भरै कल क्यों अकुलानिमई है।
दीपत देखौ दसा सिसि सोतम कोन अनूठियै ठान ठई है।
यौं घनआनँद छाय रह्यो नव लाज मल्हारं सु बीति गई है।
जाहु कहाँ अहो नाहीं नहीं तुम ही सौं जहाँ तहाँ भेंट भई है ॥४७८॥

४७४—सुजान०-रूप को पयोहा इति (संग्रह)।

अमुना=इस प्रकार। [४७४] बीचि=लहर। साथर=सागर। महिमंड=महिमावान्। सिखंड=मोरपंख। [४७५] खिसियौ=झेंप से हिचकती हुई भी। कस०=खींची जाय [४७७] चढ़ी=लगी। [४७८] बनायबि=बनाई भाँति।

लजि कै रंगनि संग अलीन लै झूलन फूल सौं प्यारे बनायनि।
सामुही ह्वै साथ बैठति है इक झूलति आप गोसाबेलि पायनि।
सौंवरे छैल तहाँ रचि ताकहीं यौं मिहँदी लौं लग्यौ घुरि चायनि।
गीतनि भास मिलैं घनआनँद रीझत भीजत भावते भायनि ॥४७९॥

छवि राधा अहो जहाँ मगन है वह ठौर जथारुचि रंजन है।
सु संजोग बियोग महारस रूप लिहौं नित हौ मन मंजन है।
न मिलै बिछुरै कतहू न कहूँ घनआनँद यौं भ्रम-भंजन है।
लखि लै सुख-संपति दंपति मैं ब्रज की रज आँखिन अंजन कै ॥४८०॥

गोकुल को बर बानिक नैन सदा लखिबोई करैं अनिमेखनि।
मंडित मोद अखंडित रूप भरो मन रोमहि रोम सुदेखनि।
मोहन ही सबकै धन जीवन प्रीति रची रसरीति बिसेखनि।
पान करौ चित चातिक ह्वै घनआनँद चाह उमाह, असेखनि ॥४८१॥

तुम्हैं प्रान लगो तुम आननहैं मनमोहन मोह न मानियै जू।
निठुराई सौं कौ लौं निबाहियैगो कबहूँ तौ दया उर आनियै जू।
दरसे तैं कहौ हो कहा घटिहै घनआनँद चातिक दानियै जू।
बरसौ सरसौ अरसौ न हहा जग-जीवन हो जग जानियै जू ॥४८२॥

मोहन-मूरति की पहचानि सु आँखिन बीच निकेत ह्वै राखी।
बंसी बजावनि रीझि रिझावनि प्रानेनि तानिनि सैन ह्वै राखी।
प्यारे सुजान सुनौ घनआनँद चातक ज्यौं अब हेत ही राखी।
जाचैं तुम्हैं अरु राचैं कहूँ न जहाँ अब जैसें सचैन ह्वै राखी ॥४८३॥

आँखिन आनि रहे लगि आस कि बेस-बिलास निहारियै हूँगो।
कानन बाँध बसैं मोर प्यास अमीनिधि बैननि पारियै हूँगो।
यौं घनआनँद रौंगहि ठौर सम्हारत है सुसम्हारियै हूँगो।
प्रान भरे सुरझैं उरझैं कि कहूँ कबहूँ हम वारियै हूँगो ॥४८४॥

४८५—अरसौ०—अनैं अरसौ लेखिय (संग्रह)।

[४८०] मंजन=मार्जन, स्नान [४८१] असेखनि=परिपूर्ण। [४८२] सोहन=शोभन। अरसौ=आलस्य मत करो। घुरि=घुमड़। भास–ध्वनि। [४८३]

सूझ परै सुनि बूझि कछू कि चल्यौ कित कौं अरु आयौ कहाँ तैं।
संग सदा जिहि को सुधि हू न, रह्यौ अति भूलि महा भ्रम-नातैं।
ऐसे सचेत समीप अचेत अचंभे भरयौ लखि ऊखिल-भाँतैं।
यौं घनआनँद-ओर उतै भटकै किनि रे मन! तू सब घाँतैं ॥४८५॥

कवित्त

मेरे प्रान सोचन ही सूखत सदा हैं घन-
आनँद झरे पै माखि सुनी प्रानपति है।
अंतर मैं रहौ पै न अंतर उघारत हौ,
देखन कौं आँखिन मैं नींद की सँघति है।
मिलन दुहेला सपने हू इहि भाँति भयौ,
भली लगै भावते जो तुम जानी मति है।
कहौ हाय सूझति हौं सूझनि अलोलनि सौं,
मेरी कहा गति जो निहारौ यह गति है ॥४८६॥

सवैया

भरि-जोबन-रंग अनंग-उमंगनि अंगनि अंग समोय रहे।
उर फागुन-दाव को चाव रच्यौ सु मच्यौ खुलि खेलि जु गोय रहे।
घनआनंद चोपहि चोपनि लै उर चौगुनै नेकु न सोय रहे।
दृग रावरे खेल खिलार महा कहा नेक गुलाल मैं भोय रहे ॥४८७॥

गोरे कपोलनि लाल गुलाल को भोय रह्यो कछु पोंछिऊ पाछैं।
दर्पन देखि हिये हुलसैं हुलसैं छबि छ्वै मुसक्याँनि कटाछैं।
ओठ पै मानिक-आब अनूठियै चाहि चकी जु हुती तन-काछैं।
चोपनि चातक ह्वै घनआनँद प्रानन नीरनि पानि पै काछैं ॥४८८॥

कन-स्वेद भयौ सु बिराजत यौं उडुपी नभ तारनि संग भयौ।
मद जोति चढ़ै अति मोद बढ़ै मुखचंद तें मान-पतंग भयौ।

४८८—कपोल॰-भव (संग्रह)।

रहैं भाव विकलताता। [४८५] ऊखिल=अपरिचित। घाँ=ओर। [४८६] मारव॰=मर्यादा, प्रतिष्ठा [४८७] चौगुनै=चौगुना। भोय॰—डूब रहे। [४८८] पोंछिकै=

भयौ आँइहि कंज कुमोदनि के, रति-अंत चहूँ श्रम-भंग भयौ।
घनआनँद आज मनोज-उमंगनि अंगनि अद्भुत रंग भयौ ॥४८९॥

लाल के लोचन मैं प्रान बसैं तुहीं जानति प्रीति की रीति सयानी।
ज्यौं ब्रजजीवन जीवन तो बिन ऐसी कहा मीन मरै बिन पानी।
ह्वै हित-ध्यान भरयौ घनआनँद आन पपीहन तें अधिकानी।
राधे हठीली कहै बिनि है, कब तें यह ठानि है मनमानी ॥४९०॥

मुख देखत हौ पलकौ न लगै अँखियानि मैं जागनि-जोति खिलै।
हिय की गति हाय कहा कहियै तिन ऐसे सबै ही कबहूँ को हिलै।
घनआनँद रोमहि रोम मिलै रसरंग-समोदनि अंग मिलै।
उनमें मिलि जौ बिछुरै सजनी सु न जानिये हौं किहि भाँति मिलै ॥४९१॥

परदेस बसे बस है बिधि के जिय जीवत यौं कछु नाहिं नई।
जु परै सु सहैं किन कासौं कहैं जग बीस परयौ सब सुनिमई।
घनआनँद जान मिलै न कहूँ इहि हेत सम्हारि अचैन भई।
वह तो सुधि भूलि गयौ बिछुरैं कबहूँ सुधि भूलि न मोल लई ॥४९२॥

जित हौ चित हौ हित हौ कित हौ बन हौ इतने पै दृग दहैं।
बरसौ सरसौ दरसौ न कहूँ घनआनँद कारौ बियाहि कहैं।
मांस एकाहि बास बिसास करौ बम नाहिं निसलौ बनो ग्रु सहैं।
हम संग किधौं तुम न्यारे रहौ, तुम संग बसौ हम न्यारे रहैं ॥४९३॥

देखि बिचारि बिचारैं सँचारहि कौनहीं कौन प्रकार पर्यौ तू।
राचि परच्यौ बहु प्रीति सुरीतनि लाग लग्यौ अजगाथ लग्यौ तू।
यौं भ्रम भूलि परयौ भ्रम कै, अब लौं सुधि नौ बिन बोध ठग्यौ तू।
चोपनि चातक ह्वै चित रे घनआनँद लौं जड़ क्यौं न जग्यौ तू ॥४९४॥

कारि चैर बिसासिनि व सुरिया सब ही कुल मैंड की रीझ ढलौ।
मँडरानि रहैं धुनि कानन मैं मन भान पगे रहैं रंग रली।

४९५—धुनि [illegible]। मन॰—मनमोहन (संग्रह)।

पोंछिकै पर भी। काछैं=पास। [४८९] उडुप=चंद्र। पतंग=सूर्य। [४९०] तिन॰=उनका। और होकर तृण की भाँति तभी से न जाने कब का छिन रहा है। [illegible]—कष्ट सह रहा है। [४९४] लग्यौ=नमित। [४९५] भटमेरा=मुठभेड़।

घनआनँद क्यौं बचियै अटभेर अचानक होत गरधारौं गली ।
कित जाऊँ कहा करौं कैसें रहौं मनमोहन मोहन लागि छली ॥४९४॥
रूप-निकाई अनूप कहा कहौं आँगन ओनि सुरंगनि सागनि ।
है घनआनँद जीवनमूल पपीहा कियें पिय-लोचन पागनि
और सिंगारनि के अथ ह्वै रही चाहि विचित्र ही मति रागनि
पायनि तेरे रची मिहँदी लखि लौनिन के तरवानि में लागनि ॥४९५॥
नख की छबि हेरि हरयौ हिय होत, चली मिलि जूथनि जूथ जुरी ।
घन घोरि जुरे अहो ओरनि तें बरसैं परसैं सरसैं सु कुही ।
तिहिं कुंजन मैं रसपुंज-भरे बिहरैं हरि-राधिका चोप चही ।
घनआनँद नैन-पपीहन कौं नित ही रसरासि रही समुही ॥४९७॥

कवित्त

भले ही रसीले अरसीले सुने हूजियै न,
गुननि निहारें हरसयौ है मन गाय गाय ।
कानति सुनी है तैसें आँखिन हू देखें जानें,
दौरत नहीं कौं सब ठावें रहे छाय छाय ।
ऐसें घनआनँद अचंभे सों भरे हौ भारी,
आँग से रहत जित नित तुम्हें पाय पाय ।
एक बास बसे सदा बालम बिसासी, पै न
भई कधौं चिन्हार कहूँ हमैं तुम्हैं हाय हाय ॥४९८॥

सवैया

सुनि कै गुन बावरे बावरे लौं उरझानि सुरूप की बानि परी ।
दरसै बरसै सरसै परसै घनआनँद रीझ बिकानि परी ।
अनखौं न कहूँ अब यौं उघरें नहिं जानि परो जु न जानि परी ।
रसनानि सुनौ इन प्रान-पपीहनि बाँट पुकारनि आनि परी ॥४९९॥

४९७—घुरे—जुरे (प्रसाद) । ४९९—अनखैं—अमैं (वही) ।

गरधारौं=गलियारा छोटी गली में । [४९५] तरवानि=पैरों में आग लगती है, नख से शिख तक भस्म होने लगता है [४९७] कुही=सावा का बूँद, कही=यहाँ । समुही=समुख । [४९८] बालम=प्रिय । [४९९] बाँट=हिस्से में ।

बातनि डारत बातनि छावत चायनि दायनि नाचि रहे हौ ।
यौं घनआनँद चौंपरि देत न हाथ लयौ छल पाचि रहे हौ ।
हाय नेकु उपाइ परी छिन-काचे नेकु पन पाचि रहे हौ ।
फाग सी खेलन डोलत लाल जहाँ तहाँ रंगनि राचि रहे हौ ॥५००॥
ठगई थाि कै ठगई जु कही न गई अजहूँ करौ बातैं पढ़े ।
पोच कै मनि कै मरि ल्यावत हौ ब्रजमोहन ऐसियै बातैं पढ़े ।
बिन लेखे लिखी न सके लिखधार कहौ हित-मूरति कातैं पढ़े ।
घनआनँद सावन भावत हौ दिन पावस रौं उन राखैं पढ़े ॥५०१॥
रंग भरयौ इन सूमनि हौं इन सौंधो रच्यौ भई हौं नकबानी ।
नैन गुलाल भरे कि जगे निसि सौ हग आवत है भरि पानी ।
चौंच नचे हम सोनि परें पिय मो हिय खोंदि गुली मुसकानी ।
आनँद के घन भीगी नई यह मानि हरें इन बाचनि ठानी ॥५०२॥
आग हौ फाग मचाय कै लाल कियौ जिन नेह नयौ अपनौ जू ।
आछे निचोय भिजै फगुआ मन-मानतो लै अपनो जू ।
भूलि परैं सुधि भोरियौं लानौ किधौं कछु देखनि हौ सपनौ जू ।
भाग खुले उनए घनआनँद प्रान-पपीहन तैं तपनो जू ॥५०३॥

कवित्त

अपबस होतु तौ हमारियै बसाय प्यारे,
सुबस बसौ बिसासी नहीं बस और के ।
कहा जानौं कितहूँ चमक है कि नाहीं तुम्हैं,
भौंर से गुंजाने देखियत ठौर ठौर के ।
साँचिहौ बिचारौ भोरे हेरत हिराय गई,
चतुर सनेही दुरि अंतर की भौंर के ।

५००—छौना बानन (प्रसाद) । हाथन—हाथै नहीं (वही) । ५०१ ऐसियै—ओसियै (प्रसाद) । लिखधार—लिखवार (वही) । ५०२—आनँद—ईतिल (प्रसाद) । गुली—मुली (वही) ।

[५००] छावन=बाँधते हो । [५०१] दिन=रे दिन ढाकना । रातैं=रात्रि; अनुरक्त होना । [५०२] सौंधो=सुगंध । नकबानी=नाक में दम होना ।

क्यों हीं घनआनंद पपीहनि की गति कहा,
मन भए पंगु ये निहारी एक ठौर के ॥५०४॥

सवैया

कोटि की मति को गति थी मति की गति पापनिकाहनि देखी।
देवनदी-अहिपान-पदी महिमान बड़ी मुनि सांख विसेखी।
और कहाँ कहि कौन सके घनआनँद यों उर हों अवरेखी।
तेरई और त्रिविक्रम, ताकि दया करि दै चिंतनी अनिमेखी ॥५०५॥

कवित्त

नाद को सवाद जाने चातुरी बधिक कहा,
रूप के निधान की बखान कहा सूर सों।
सरस परस के विलास जड़ जाने कहा,
नीरस निगोड़ी दिन भरै भौंप कूरसों।
चाहु को चटक तें भयौ न हिय खाँप जाके,
प्रेम-पीर-कथा कहै कहा अकभूर सों।
चाहै प्रान-चातक सुजान घनआनँद कों,
दैया कहूं काहू कौं परै न काम कूर सों ॥५०६॥

सवैया

नेह सों भोय सँजोय धरी हिय-दीप दसा जु भरी अति आरति।
रूपउज्यारे अजू ब्रजमोहन सौंहनि आवनि ओर निहारनि।
रावरी आरति बावरी लौं घनआनँद भूलि वियोग निवारति।
भावना-थार हुलास के हाथनि यौं हित-मूरति हेरि उतारति ॥५०७॥

५०४—सुजान-उन्माद (संग्रह); अंत-रंग, वहीं)।

[५०५] अति०=अत्यंत प्रशंसा की दृष्टि, अत्यंत प्रिय बना देनेवाली। अहिपान=शेषशायी विष्णु के पद से उद्भूत। मुनि=वेद। अव-रेखी=विचार किया। त्रिविक्रम=त्रिविक्रम वामन का रूपधारी। चिंतनी=चितवन, एक नदी। पुराणानुसार यह पारियात्र पर्वत से निकली है। वामन ने त्रिविक्रम रूप इसी के तट पर धारण किया था। अनिमेखी=निर्निमेष। [५०६] सूर=अंधा। भौंप=भौंकता है। भौंकि=भौंककर। कूरसों=कुरसी, स्वादहीन वस्तु को। खाँप=कोंपल, अंकुर। अकभूर=अनाड़ी, मूढ़। [५०७] नेह=प्रेम; घृत। भोय=भिगोकर। सँजोय=जलाकर। दसा=अवस्था; बत्ती।

कृपाकंद

कवित्त

नेक उर आएँ ही चहत दुख दूरि जात,
ताप बिन नाहिं आप चंदन कृपा करैं।
लागनि दै लागनि दै पाग अनुरागनि ह्वै,
जागनि जगाय लैकै मंडन कृपा करैं।
चालों के विलास बरसावै घनआनँद ह्वै,
मूढ़ हू प्रसाद गूढ़ छंदन कृपा करैं।
आरति - निकंदन मिलावैं नंदनंदन जू,
आनँदनि मेरी मति बंदन कृपा करैं ॥१॥
परे रहौ करम धरम सब धरे रहौ,
डरे रहौ डर कौन नसै हानि लाहे कौं।
लोक परलोक जो कछू है तौ न छुहैं हम,
छीलर रचै न छीरसिंधु अवगाहे कौं।
महा घनआनँद उमड़ पाइयति जहाँ,
सोच सूखा परै करमठ दुख दाहे कौं।
ऐसो रसरासि लहि उलहौ रहत सदा,
कृपानिधि सेवा कहूँ दिसि देखै काहे कौं ॥२॥

सवैया

हरि के हिय मैं जिय मैं जु बसै महिमा फिरि और कहा कहियै।
हरखैं नित नैननि बैननि ह्वै मुसकानि सों रंग महा लहियै।
घनआनँद प्रान-पपीहनि कौं रस-प्यावनि ज्यावनि ह्वै बहियै।
करि कोऊ अनेक उपाय मरौ हमैं जीवनि एक कृपा चहियै ॥३॥

[१] मंडन=मंद बुद्धिवालों का। मूढ़०=मूढ़ भी गूढ़ छंदों की रचना करने लगता है। आरति०=क्लेशनाशक। [२] धरे०=धरे रहें। छीलर = तलैया। [३] ज्यावनि = संजीवनी।

स्याम-सुजान-हियैं बसियै रहै नैननि स्यौं लसियै भरि भाहनि ।
बैननि बीच बिलास करै मुसकानि सखी सौं रचो चित चाहनि ।
है बस जाके सदा घनआनँद ऐसी रसाल महा सुखदाइनि ।
ऐसी भई मति मेरी निहारि कै सील-सरूप कृपा-ठकुराइनि ।।४।।
बैन कृपा फिरि मौन कृपा दृग-दौर कृपा दृढ़ समाधि कृपाई ।
ज्ञान कृपा गुन गान कृपा मन-ध्यान कृपा हरै आधि कृपाई ।
लोक कृपा परलोक कृपा लहियै सुख-संपति साधि कृपाई ।
यौं सब ठौं दरसै परसै घनआनँद मोहि अगाधि कृपाई ।।५।।
अलकै झलकै मुख रंग रचे रचरे गुन-गौरव मोल ठकै ।
मन चाहि चढ़े चलि ऊरध कौं टक टेक लौं स्याम सुजान तकै ।
जक एक न दूसरी बात पढ़ै घनआनँद भाँति कै भ्रम थकै ।
दृग देखि छकै पछकै कबहूँ न सुधा-कृपा-मधुपान छकै ।।६।।

कवित्त

मंजु गुंज करैं राग-रचे सुर भरैं,
प्रेमपुंज छवि भरै हरैं दरप मनोज को ।
चाव-मतवारो भाव-भाँवरीन लेत रहै,
देत नैन चैन-ऐन चोपनि के भोज को ।
और कृपा भूलि रीझ भीजि घनआनँद यौं,
रही भयौ एक बानी गुन-गन-खोज को ।
बानी रससानी या मधुव्रत कौ, लह्यौ छिन
कृपा-मकरंद स्याम-हृदय-सरोज को ।।७।।

सवैया

फीके सवाद परे सब ही अब ऐसो कछू रसपान कृपा को ।
नीरस मानि कहैं न लहै गति मांहि मिल्यौ सनमान कृपा को ।

६—छबीली-छबीले (वृंदावन) । ७—रससानी—रसलीनी—(वृं०) ।

[४] रचो=अनुरक्त । [५] आधि=मानसिक क्लेश । ठौं=स्थान । [६] कृपामधु और मदिरा की एकरूपता दिखाई गई है । छकै=शिथिल न हो जाए; शील से आकुल हो जाए । उसके न=नशा उतरता ही नहीं । मधु=शहद; शराब । [७] चोज=उमंग ।

रीझनि लै भिजयौ हियरा घनआनँद स्याम-सुजान-कृपा को ।
मोल लियौ बिन मोल, अमोल है प्रेम-पदारथ-दान कृपा को ।।८।।
नेम लियौ अब बातनि सौं अब बाँधिहु साधि कै त्याग महातप ।
प्रेम धर्यौ घनआनँद-रूप सौं देखि लख्यौ भ्रम-बाद को आतप ।
कैसें कहै कछु भाँहि सवाद मिलै बड़ी बेर सौं याहि मिल्यौ टप ।
मौन हू जाकी पुकार करै गुनमाल गहैं जपै जीभ कृपा-जप ।।९।।
क्यौं हठ कै सठ साधन सोधत होत कहा मन यौं तरसै तैं ।
हाथ चढ़ै जिहिं स्याम सुजान कहूँ जिहिं पायन्ह रे परसै तैं ।
नीरस मानस हूँ रसरासि बिराजत नेसिक जा सरसै तैं ।
ऊसर हू सर होत लखे घनआनँद-रूप कृपा बरसै तैं ।।१०।।
ज्यौं परसै नहिं स्याम सुजान तौ धूरि समान है आगनि धोइबो ।
त्यौं मन सौं तिनके दरसे बिन बादि बिचारनि बीच पँचोइबो ।
ऐ घनआनँद क्यौं लहियै स्रम कै भ्रम भार अपारहिं ढोइबो ।
लागत आय कृपा-रस पागन दाखन यौं सहजैं सुख सोइबो ।।११।।
आयु जौ वायु लौं धूरि सबै सुख जीवन-मूरि सम्हारत क्यौं नहीं ।
नाहिं महागति तोहि कहा गति बैठि बनैगी बिचारत क्यौं नहीं ।
नैमनि संग फिरै भटक्यौ पल मूँदि सरूप निहारत क्यौं नहीं ।
स्याम-सुजान-कृपा-घनआनँद प्रान-पपीहनि पारत क्यौं नहीं ।।१२।।

कवित्त

चाहियै न कछू ताकी चाह जातैं फल पायौ,
यातें बड़ो चन के सरूप नैन कीनो बस ।

९—त्याग तप (राम) । जप—जस । भ्रम—दुख (वही) । ११—भ्रम—भोरे (राम) । पागत—पागन (लंदन) । १२—आयु०—आस जौ बास (राम) ।

मधुव्रत=भ्रमर । [८] गहि=मोल । [९] आतप=धूप । टप=शीघ्र । [१०] परसे तैं=क्या तूने स्पर्श किया । मानस=मन; मानसरोवर । नैसिक=थोड़ा । [११] ज्यौं=जौ, यदि । पँचोइबो=गंदे जल में डुबोना । [१२] महागति=परम

जहाँ राधा-केलि-बेलि कुल की लवनि छायी,
लसत लुनाई फूल-कालिंदी सुदेस थरु ।
महा घनआनँद फुहार सुखसार सींचे,
हित-हुलसनि लगाय रंग-भरयौ अरु ।
प्रेम-रस-मूल-फूल-मूरति बिराजै मेरे,
मन-आलबाल कृस्न-कृपा को कलपतरु ।।१३।।

सवैया

साधन-पुंज परे अनलेखें पै हौं अपने मन एकौ न लेख्यौ ।
तातें सबै तजि स्याम सुजान सों साहस औरै हियें अवरेख्यौ ।
जो निरखे उर में छिन मैं किनहूँ बिन सोच कछू न बिसेख्यौ ।
प्रान-पपीहन कौं घनआनँद पोष-रसीली कृपा करि देख्यौ ।।१४।।
काहे कौं सोचनि मारें जियरा परी तोहि कहा बिधि साधन की है ।
हूँ घनआनंद स्याम सुजान सम्हारि तू चातिक ज्यौं मुख जोहै ।
ऐसे रसामृत-पुंजहि पाय कै को सहै! साधन-झीलर छीहै ।
जाकी कृपा नित छाय रही दुख-ताप तें बौरे! बचाय ही सोहै ।।१५।।

कवित्त

साँवरे-सुजान-रंग-संगमतरंग-भीजी,
दरस-परस-पैज-पूरन बसीठि है ।
एक गुनहीनानिहूँ सूझत सरूप जाको,
कृपा-मद-अंध तिन्हैं सपनें न डीठि है ।

१३ लाही-लाको (राम)। जानें—जानैं (वही)। १४-हौं—मैं (वृंदा०, लंदन)। सोच०—सूचक हीन (लंदन)। कृपा० कृपाकार (वृंदा०)।
१६ संगम—लग भांति रंग (राग)।

गति। गसि=समर्थ शक्ति। धारत०=धारता क्यों नहीं। [१३] थरु=वृंदा-वन। सुदेस=सुंदर। [१४] अनलेखे=अगणित। बिन०=सोच के अतिरिक्त और कुछ न पाया। [१५] झीलर=छिछला। छीहै=छूएगा। [१६] पैज=

सदा घनआनँद बरसि प्रान-चातकनि,
पोखनि पुकार बिन ऐसी सुद्ध ईठि है ।
साधन असाधन त्यौं सनमुख होति कैसैं,
सबै दिसि पीठि कृपा-मन गन दीठि है ।।१६।।

सवैया

चातिक-चित्त कृपा घनआनँद चोंच कौं औंधि सु क्यौं करि धारौं ।
त्यौं रतनाकर-दान-समै बुधि-जीरन-चीर कहा लै पसारौं ।
पै गुन ताके अनेक लखौं निहचैं उर आनि कै एक बिचारौं ।
कूल बहाय प्रवाह बहै यौं कृपा-बल पाय कृपाहि सम्हारौं ।।१७।।

कवित्त

अमल अपूरब उजागर अखंड नित,
जाहि चाहि चंदहि चितारिबो कलंक है ।
तारनि प्रकासै मित्र-मंडल मैं मदन है,
मन-धन राजै रसनायक निसंक है ।
आनँद-अमृत-कंद बंदनीय प्रानन को,
सुषमा संपत्ति हेरैं काम कौन रंक है ।
चाहते चकोरन कौं चोपन सौं लखि लेत,
कृपा-चंद्रिका में नंदनंदन मयंक है ।।१८।।
हारे हू के जीतक सुभाय हम हेरि लहे,
दानी बड़े पै न माँगे बिन ढरैं दातुरी ।
दीनता के आगे तौ लौं प्रभु कहि कौन पावै,
साँच सौं निकट दूरि भाजैं देखि चातुरी !

१७—सम्हारौं—समारौं (लंदन)।

प्रतिज्ञा। बसीठि=दूती। डीठि=दृष्टि। ईठि=इष्ट। [१७] औंधि=औंधा, ओला। रतनाकर=रत्नों का समूह। जीरन=जीर्ण, पुराना। [१८] चितारिबो=ध्यान में लाना। तारा=पुतली; आकाश का तारा। मित्र=सखा; सूर्य। आनँद०=

गुननि बँधे हैं निरगुन हू आनँदघन,
मनि और यहै गति कहूँ और जानु मैं ।
आतुर न हूँ मैं आन आतुर बिचार थकै,
और गथ कीजै कृपा ही के एक आतुरैं ।।१९।।

सवैया

हौं गुनरासि हरौ गुन हौं गुनहीनन तें सब दोष प्रमानैं ।
हा हा तुम्हैं जिन मानियै जू बिन आँचै कहौ किन हानि बखानैं ।
लीजै बलाइ तिहारी कहा करैं हैं हम हू कहै दोष निवानैं ।
बूझौ कहैं कहा एक कृपाकर रावरे जो मन के मन मानैं ।।२०।।

कवित्त

रहौ न करमादि कछू साधन के साधिबे कौ,
समता बचाय राखैं सुखन सौं मानि हैं ।
लोक परलोक सब भूलि गए सुधि आगे,
मारिए अनेक एक एक रसखानि हैं ।
ताप बापुरेनि की सिरानी भाय नेकु ही मैं,
छाए घनआनँद सुजान-पन आनि हैं ।
अब पहचानि हमैं चाहियै न काहू संग,
बिन पहचानि कृपा - लोनैं पहचानि हैं ।।२१।।

सवैया

जल मैं थल मैं भरि पूरि रह्यो सम कै दिखरावनि हू बिसमैं ।
सम रूप सदा गुनहीनन सौं निज नेह तें त्रासनि ताप-तमैं ।

१९–बौ०–के लौकिक (रान)। हरे–बढ़े (छंदत)। २०–हरौ–बढ़े (लंदन)। मारे–मारैं (वही)। २२–मारैं–दरसैं (लंदन)। बरसैं–मरसैं (वही)। निज–नित (लंदन)।

आनंदरूपी अमृत का पात्र। मैं=मुख [१९] बापुरी=(दापुरी) दीन की वृत्ति। और=है सखी। [२०] कृपाकर=कृपा की खान। [२१] बात=वायु; बचन। [२२] सम=विषम को भी सम कर देता है। बरसैं=बरसने में

घनआनँद जीवनरासि सदा बरसैं सरसैं अरसैं न गसैं ।
निज प्यासनि सगम रूप अभग कृपा दरसी सब ठौर हमैं ।।२२।।

पद

गाऊँ मन कृपासहित सुखरासि ।
जो राधिका रूपनि अभेद गुन रूप रूप जित रही प्रकासि ।
बदन-कमल लखि स्याम भँवर छिन मंद हँसनि रसरंगी बिकासि ।
रसिकनि पान कराय छिनक मैं डारति बिषम बियोगहि त्रासि ।
हियरैं बसति लसति जिहिं दरकति कारे कोरि मदन उपहासि ।
जगजीवन सब हू आनँदघन तिस उपजावति प्यास नासि ।।२३।।
कृपाकलपतरु श्रीगोपाल ।
अति रसमय अविचल फलदायक प्रफुलित सदा धरैं बनमाल ।
गोपीजन - मन - आलबाल मधि आभिन सोभामूल रसाल ।
चढ़ि बढ़ि भाव-बेलि चहुँ दिसि नें ललित कोल सुख मंजिन बिसाल ।
गुन अनंत साखा सुदेस लसि राजत रुचिर चरित्र-प्रवाल ।
मधुर रूप मकरंद बृष्टि दृग-मधुप परम गुनदत-प्रतिपाल ।
अवनीमनि बनराज भाग पर जगमगात जगि जोतिनि जाल ।
सेवित छबि छाया आनँदघन अखिल तापमोचन सब काल ।।२४।।
कोऊ कृपा-बल दूसरो है करि बर्यौ नहिं साधन के मन साधौ ।
लोन के लोगन मान मनौ किन कोऊ समाधिहि रंचि अराधौ ।
मेरें कृपा घनआनँद है रस भीजि सदा जिहिं राधिका-माधौ ।
ता बिन ते भ्रम-मूल मड़ै भ्रम-भूल तहूँ सु न एक न आधौ ।।२५।।

२३–नित–नि (वृंदा०)। २४–तन–सब, सब (सपद)।

कामना नहीं करती। [२३] मदन=मक्खन। तिरस=(तृष्णा) लालसा, प्रेम। [२४] आलबाल=थाला। रसाल=रसिक रसमय। सुदेस=सुंदर। प्रवाल=नए पत्ते, कोंपल। बनराज=वृंदावन। भाग=आधार, अंचल। [२५] सत=

कवित्त

साधन जितेक ते असाधन के नेग लगौं,
साधन को सार मनसार गहि गाहि तू।
प्रेम सो रतन जासौं पाइहै सहज ही मैं,
वह नाम रूप सु अनूप गुन चाहि तू।
राधिका-चरन-नख-चंद स्यौं चकोर ह्वै सु,
बाढ़त अनंद यौं तरंगनि उमाहि तू।
बोहित बिलास हू चढ़ाय लैहै सोई हा हा,
कृष्न-कृपा-सिंधु मेरे मन अवगाहि तू ॥२६॥

पद

जौ पै तेरौ मुख नेकु निहारौं।
बहुतै बहुत प्रान-सर्बसु लै वारि सकौं सौ वारौं।
तोहि तें जोहौ सम्हार करौं सब अभिलाष उघारौं।
करि करि पान रूप-आसव, सुधि बिसरनि-संग सम्हारौं।
कयौं काहि मरौं उचित अनुचित की कृपा-भरोसौ भारौं।
आनंदघन प्रीतम सुजान हौ मौनहि गहैं पुकारौं ॥२७॥

सवैया

चलि जात उसास जो ऊरध कों अध-आनन-धाम-बिलास नहीं।
गति औसर की अति हाँसि परी बरुनी खुलि फोरि मिलै कि नहीं।
इहि बीच बिचारियै जीवन मौं मरिबै लहि साधन-साँच मही।
घनआनँद-प्यारे-कृपा-भय है अब यौं मन की करतूति रही ॥२८॥

२६—वह—वह (राम)। २७—तोहि०—यौं ही तो हिय के (रा०)। की—कौ (वही)। २८—नहीं—कहीं (राम)। मिलै०—[illegible]। [illegible]। है—ह (वही)।

साध, मजा, सौ। एक—एक क्या सधे को भी प्रतीत नहीं होती।
[२६] नेग०=भेंट हो जाय। बोहित=जहाज। [२७] उघारौं=प्रकट करूँ। [२८] गति० = जीवन की गति समझ में आती है।

कवित्त

बिना माँगें देत माँगि लेत सु यौं मूढ़ तासौं
मूढ़ गति जानियै जौं प्रभु हौ उदार हौ।
कृपा-रस-नायक हौ महा सुखदायक हौ,
लायक हौ बूझ के सदन सिंगार हौ।
गुननि सरूप जाय गहै घनआनँद यौं
कहा लौं बखानै मति महिमा-अपार हौ।
चितनि तिनहूँ परौ जिनकें न धनि तुम,
मेरे तौ सदाई करतार भरतार हौ ॥२९॥

सवैया

औगुन है करि लंक गुनैं निगुनीनि ह्वै गुन की अधिकाई।
भीजि रही घनआनँद यौं बरसैं सरसैं सुख-सीतलताई।
मोहिं महाभ्रम-रासि मिली जिन पागि दई मति-मोद-मिठाई।
रीझि कृपा लखि रीझि रहौ अकि रीझि कै जानति एक कृपाई ॥३०॥
जे करतूति पचैं दुहुँ लोक लै लेहौं लहौ जु कछू उन पायौ।
कोष-कृपानिधि के हिय तें हम रंकनि बाँटि कृपा-धन आयौ।
जाहि न भै हरिबे कौं कहूँ हरि हेत सदा घनआनँद छायौ।
सो उलटी रखवारी करै यह रीति अनोखी, दुरै न दुरायौ ॥३१॥
सदा द्रव मूरति प्रेम पगी भली भाँति जगी भए आप हि आप।
महा निदयौ सौं रचै रचना पै हियैं सिगराने प्रबोध प्रताप।
मिलै हिय रंग मिलै जिन सग मिलै सब अंग हिलै चित चाप।
कृपा घनआनँद छाँहि बढ़े तिन्हैं ब्यापत कयौं दुख-आतप-ताप ॥३२॥

२९—देत—(राम) में नहीं। मूढ़०—प्रभु ऐसे ही (राम)। सदाई—सदा न (लंदन)। तिनहूँ—तिनहूँ (राम)। ३१—द्रव—द्रव (राम)। जगे—जगे; रचना०—रचिये हिय के; मिलै—मेलै (वही)। चाप—[illegible] (लंदन)।

[२९] बूझ=बुद्धि। [३०] अकि=या कि, अथवा। [३१] करतूति०=जो कर्म-साधन में परेशान रहते हैं। [३२] द्रव०=कोमलता की मूर्ति। हिलै०=चित्त के

कवित्त

मन की जनाऊँ ताकें मोहन ही हौ हो कान्ह,
ज्ञानगाय गुननि लगाऊँ कैसें दोष जू ।
चिनाई कहैं करौ तौ कहिबे को कहा रहौ,
यहैं क्यौं न करौ दास-प्रान-परितोष जू ।
तुम्हैं रिझवार जानि रीझ सौं कहत प्यारे,
हा हा कृपानिधि जनौ मानियै न रोष जू ।
आनंद के घन भूमि झूमि बिन तरसाएँ,
बरसि सरसि सींचैं हेत लता-पोष जू ।।३३।।

सुधि करैं भूल की सुरति जब आय जाय,
तब सब सुधि भूलि झूलौं मोहि मौन कौं ।
जाहैं सुधि भूलैं तो कृपा नैं पाइयत प्यारे,
फूलि फूलि भूलौं यह अंगोछ सुधि हीन कौं ।
मेरी सुधि भूलहि बिसारिये सुरतिनाथ,
चातक उमाहि घनआनँद अधीन कौं ।
ऐसो भूल हू कौं सुधि रावरी न भूलें क्यौं हू,
ताहि जौ बिसारी तौ सम्हारौ फिरि कौन कौं ।।३४।।

सवैया

सुधि भूलि रही मिलि ज्यौं जल पै अब यौं मन क्यौं करि फूलिहै जू ।
मिटिहै तब ही तिहि ताप अबै सुधि आवत ही सुधि भूलिहै जू ।
घनआनँद भूलनि की सुधि कौं मति बावरी ह्वै रही झूलिहै जू ।
सुधि कौन करै इन बातन की कबहूँ तौ कृपा अनुकूलिहै जू ।।३५।।

३३–मोहन०–मोह नाहिं [illegible] । दास–दीन । हेत–हित ([illegible]) ।
३४–झूलौं [illegible] ([illegible]) । ३५–अब यौं–अबहीं ([illegible]) ।

[illegible] लवंगी धनुष से युक्त । [३३] मोह=भ्रम । [३४] सुधि०=प्रिय की भूल का स्मरण करने से जब उनकी स्मृति हो जाती है । अधीन–आत्मसमर्पण [illegible] । [३५] झूलिहै–[illegible] जायगी, समाप्त हो जायगी ।

कवित्त

रसिक रँगीले भले भाँतिन छबीले,
घनआनँद रसीले भरे महा सुखसार हैं ।
कृपा धन-धाम स्यामसुंदर सुजान मान-
सुगति सनेही बिना बूझें रिझवार हैं ।
चाह-आलबाल ज्यौं अथाह के कलपतरु,
कीरति-मयंक प्रेम-सागर अपार हैं ।
निज छबि-संगी मनमोहन त्रिभंगी मेरे
प्रानन अधार नंदनंदन उदार हैं ।।३६।।

सवैया

हारे उपाय, कहा करौं हाय, भरौं किहि भाय मसोस यौं मारैं ।
रोवनि आँसू न नैननि देखिए मौन मैं व्याकुल प्रान पुकारैं ।
ऐसी दसा जग छायौ अँधेर बिना हित-मूरति कौन सम्हारैं ।
हैं तिनही की कृपा घनआनँद हाथ गहैं पिय-पायनि पारैं ।।३७।।
जिहि पाय की धूरि लौं जाय न पौन करैं इहि भाय कौं गौन-समैं ।
तिहि दूरि किती करि सोधि बिचारि, बिचारन क्यौं न कहा बिरमैं ।
गति बूझ परै, किन सूझत रे, कहि धौं न हियें किहि धौं सुगमैं ।
घनआनँद आहि कृपा निगरी भजि लै रसमै तजि दै बिसमै ।।३८।।

कवित्त

मिलन तिहारो अनमिलन मिलावत है,
मिलौं अनमिलैं कछू करि न सकौं तरक ।

३६–अथाह–[illegible] (वृंदा०) । ३८–बूझि–सूझि (वृंदा०, [illegible]) । किन०–[illegible] (वही) । हियें–[illegible] (राम) । ३६–मेरे–तेरो । मेरो (राम) ।

[३६] अथाह०–अपार भक्ति के लिए कल्पवृक्ष । [३७] मसोस=पछतावा । पारैं=डालें । [३८] किहि०=किस प्रकार । आहि=है । रसमै–आनंदमय, प्रेम रूप । बिसमै=विस्मय; विषम । [३९] तरक=विचार । [illegible]=[illegible] ।

जियौं तुम हीं तैं बिना तुम्हैं मरि मरि जाउँ,
एक नावँ चाखि बैरी ऐसी राखियै मसक ।
देखि देखि दूरी दुख-दसा दीन मिलौ, हा हा
मीत मो बिसासी सह कसके नई करक ।
आनँद के घन हौ सुजान कान खोलि कहौं,
आगन जग्यौ हू कैसे माइँ न कृपा-टरक ॥३९॥

सवैया

औगुन ही गुन मानि महा, अभिमान भरयौ अति उत्तम नीच मैं ।
नीरसता भरयौ नित पै अरस्यौ न कहूँ सनि आरस-कीच मैं ।
ऐसो अमोल जु सोच कियौ भ्रम, जीवन कौ सुख साधत मीच मैं ।
ख्याल-भरयौ जन हाल हरयौ हरि नेकु कृपा-घनआनंद-सींच मैं ॥४०॥

दोहा

सुख-सुदेस कौ राज लहि, भए अभय अवनीस ।
कृपा कृपानिधि की महा, छत्र हमारैं सीस ॥ ४१ ॥
हरि तुम सौं पहचान को, मोहिं लगाव न लेस ।
इहि प्रसंग फूल्यौ रहौं, यहौ कृपा कै देस ॥ ४२ ॥
मो से अनपहचान कौं पहचानें हरि कौन ।
कृपा-कान मधि-नैन ज्यौं, त्यौं पुकार मधि-मौन ॥ ४३ ॥

कवित्त

दीनौ जग जनम, जनाय जे जुगति आछी,
कहा कहौं कृपा की ढरनि ढरहरे हौ ।
आनँद-पगार ह्वै सरस सींचे रोम-रोम,
भाव - निरभर लै सुभाव - सर भरे हौ ।

४०—नेकु—नेसु (राम) । ४२—मोहिं—मोह (वृंदा०) ।

[४०] सींच=सीच मन । भ्रम=मिथ्या संसार । मीच=मृत्यु । [४१] अवनीस=हम राजा हो गए । [४२] इहि०=क्योंकि आप 'अनपहचान' पर कृपा करते हैं । [४३] कृपा०=जिस प्रकार आपके नेत्रों में कृपा के कान हैं उसी प्रकार मेरी पुकार

जीवन-अधार प्यारे आँखिन मैं आय छाय,
हाय हाय अंग-अंग-संग रंग ररे हौ ।
ऐसें क्यौं सुखैयै सोच-तापनि, हरयौ कै हरी,
जैसैं या पपीहा-दीठि नीठि हू न परे हौ ॥४४॥

सोरठा

घनआनँद रस-ऐन, कहौ कृपानिधि कौन हित ।
मरत पपीहा - नैन, बरसौ पै दरसौ नहीं ॥४५॥

दोहा

तुम नियरें अति दूरि हौ, मिलन उपाय न कोय ।
एक ढरौंहीं कृपा तैं अनहोनी हू होय ॥४६॥

सवैया

संग लगे फिरौ हौ अलगौ रहौ मोहुँ गैल लगावत क्यौं नहीं ।
नीरस रावनि ही सरसौ रसमूरति प्रीति पगावत क्यौं नहीं ।
ढीलो परयौ तुम तें घनआनँद ही गुनरासि खगावत क्यौं नहीं ।
जागत सोवत से हौ कहा बहो सोवत मोहिं जगावत क्यौं नहीं ॥४७॥

कवित्त

लखें नहीं जनम अलेखैं सौ सकल बातैं,
ऐसो जग-पैंठ मैं गरीबाई लहौंगो कहा ।

४४—जनाय—बनाई (राम) । भरभरे—गहभरे । रंग—रस (वही) । संग—अंग (वृंदा०) । ऐसें—ऐसो (वही) । ४५—बरसौ०—दरसौ पै बरसौ (राम) । ४६—ढरौंहीं—ढरै हार (राम) । ४७—अलगौ—अलगे (राम) । नहीं—नहु (वृंदा०), नहीं (वही) ।

को मौन में है । [४४] ढरनि=ढलना । ढरहरे=ढलनेवाले, कृपालु । आनँद०=आनंद के बादल, घनआनंद । निरभर=निर्भर, पूर्ण । गहभरे=भली भाँति भरे हुए ; रस०=रसयुक्त । नीठि=कठिनाई से भी । [४५] नेह=रस, प्रेम । ऐन=अयन, घर । [४६] एक०=अद्वितीय; केवल । [४७] गैल लगावत०=बाँधते या

लहालेह कहूँ है तैं अंतर आनंद परै,
या बिधि की मिलनि बियोग सौं लहौंगो कहा।
चिरजीवौ मोहिं मारि तुम्हैं सुख होहु प्यारे,
परबस महा कहा कहा न सहौंगो कहा।
कृपा-घनआनँद पपीहा की पुकार लागौ,
तुम सनमुख ह्वै पै बिमुख रहौंगो कहा॥४८॥

छप्पय

भूल न कबहूँ होय सुरति की सुरति देहु हरि।
सुरति किये ही रहौ कृपा-अवलोकनि सौं हरि।
सुधि चरित्र रुचि परचि राचि चित-चेत थकै तहँ।
निज सरूप की लहनि कहनि अरु रहनि एक जहँ।
सुंदर सुदेस आनंदघन आय रहैं सु बिनोद बनि।
संदेह-ताप-दवागिनि हरौ अंतरजामी जानिमनि॥४९॥

पद

मेरी कब पुकार लागौगे।
मो मन अजन अजिर मैं निज जोतिहि जमाय जागौगे।
गहि गुन कृपा देख गन मेरे अंतर तैं त्यागौगे।
नीरस रचनि बनाय रँगीली प्रीति सुरस पागौगे।
मोसे सिथिल अचेत और अपनो करि सुधि पागौगे।
आनँदघन आरत चातक ज्यौं प्यास-रूप रागौगे॥५०॥

४८—लहौं—लौं (राम)। तैं०—तब तब। लहौंगो—लहौंगे। कहौ हौ—कहौ तौ है (वही)। देख—देव (राम)। होहु—होय (राम)। कहा०—कहा भरौं। लागौ—लागो। ह्वै पै—भए (वही)। ४९—रहौं—रहौ (राम)। हरि—हरे (लंदन)। रहनि०—रहनि जहाँ (राम)।

कसमें क्यों नहीं। [४८] पैंड=हाट, बाजार। मवेबाई=झोंका ही। लहालेह=लोभ। [४९] सुरति०=अपने प्रेम की स्मृति। चेत=चेतना, बुद्धि, होश। [५०] अजन=

आयौ सरन बिकार भरयौ।
तुम सरबग्य अग्य हौं बहु बिधि सु कछु न करिबे सु कछु करयौ।
सदा दयाल दीन-दुख-मोचन यही सुमिरि सबहीं बिसरयौ।
कृपाकंद आनंदकंद हौ पतित पपीहा द्वार परयौ॥५१॥
भूल-भरे की सुरति करौ।
अपनी गुननिधानता तन धरि मो अनेक औगुन बिसरौ।
या असोच कौं सोच कीजियै हा हा लौ करि सुढर ढरौ।
कृपाकंद आनंदकंद हौ पतित पपीहा-तपति हरौ॥५२॥
करौ सु क्यौं चित चरन जटै।
हित-मकरंद पान करि कबहूँ कहूँ न काहू भाँति घटै।
ताप-कलाप बिलाहिं कृपानिधि सब बिधि मोहादिकनि हटै।
पद-पराग रचि परचि अरचि रुचि सुचि सुरूप गुनगाननि रटै।
बार बार बिनतौ है तो हरि ही पूरन सुधि कहा घटै।
दुखित दीन चातक आनंदघन एक तिहारी ओर डटै॥५३॥

सवैया

सुरझैं किन रे उरझे मन तू ममता गुरझैं अरझावत क्यौं।
जित को तित ही लगि ह्वै अलगौ इत के हित-फंदनि आवत क्यौं।
घनआनँद कृष्ण-कृपा-रस कौं करि पान जियैं न जियावत क्यौं।
निहचैं जचि रे परिचैं रुचि रे थिरता सचि रे भ्रमि धावत क्यौं॥५४॥

५४—रे—रै (राम): झैं—है। जियैं—जिवैं। परिचैं—परिचे रे (वही)।

निर्जन, जनरहित। अजिर = आँगन। जागौगे=प्रबुद्ध करोगे। रागौगे = प्रिय लगोगे। [५१] कृपाकंद=कृपा के बादल। आनंदकंद=आनंद के मूल। [५२] सोच=चिंता, फिक्र। [५३] जटै = जुड़ जाय। डटै= डटे, अड़के। कलाप=समूह। [५४] गुरझैं=गाँठें। सचि=संचित कर।

कवित्त

जिहि जिहि ठौर जाहि जाहि भाँति जानराय,
जुगनि जुगनि जगमगे हौ जनन कौं।
पूरन-कृपा-पियूष पालत रहे हौ सदा,
मानन तें प्यारे अपनेन के पनन कौं।
गोबिंद गुसाईं ज्यौं ही माँगत हौं गोद-गेह
गिरा अगराई गुन-गरिमा-गनन कौं।
मन घनआनंद तिहारो चोप चातक है,
चाहत है सांनिध सबादनि सनन कौं ॥५५॥

विष्णुपद

अटकनि दवौ निपट भटकनि है सटकनि भला सबै हिस तें रे।
गटकनि कृपा-सुधानिधि चरितनि तिन तजि पियौ बिषै-बिस में रे।
परयौ अचेत श्रम जीवत हौ अजहूँ सम्हरि मोह-निस तें रे।
नित हितमय उदार आनंदघन रस बरसत चातक-तिस नें रे ॥५६॥

पद

तुम्हीं रचे सो रचौ कृपानिधि।
हम कछु जानत नाहिं बापुरे दीन हीन सब भाँति बिधि अबिधि।
लीन सुचि साख सदा तें स्वामी रहै रसील गुननि गनत निधि ॥
चातक-जन-पुकार आनंदघन अब दरसै बरसै हौ पन सिधि ॥५७॥

५५—पालत—पालन (राम)। गहे—गाथ। अगराई—अरगई (वही)। सांनिध—संनिधि (वृंदा०)। ५६—हितमय—हित में (राम)। चातक०—आनँद किस (वही)। ५७—रसील०—रसीले गाने (राम)।

[५५] जन=दास। अपनेन०=भक्तों की प्रतिज्ञाओं के लिए। अगराई=अग्रता, श्रेष्ठता। [५६] सटकनि=हटना। गटकनि=पीना। तिस=तृष्णा। [५७] बिधि=विहित कर्म। अबिधि=निषेध; निषिद्ध कर्म। साख=प्रसिद्धि। निधि=परत्वकर,

जिहि लजाय सु न कीजै स्वामी।
मो मन दसा असाधि कृपानिधि कहा कहौं अंतरजामी।
असुचि अनीच पोच पै गुन सुनि उरभत सुरभत पतित सकामी।
सरसि दरसि बरसौ, परसौ जू आनँदघन चातक-हित नामी ॥५८॥

कवित्त

दान के बिधान यौं बखानत सुजान संत,
दानी बहु भाँति और जाचक अनंत हैं।
सूछम पुनीत पै निपट वाकी रीति नीति,
जानत जे एक दानी एही रसवंत हैं।
फल आगें लागै पाछैं अंकुर मनोरथ कौ,
पानिप-निधान मान-महिमा-महंत हैं।
तातें मन चातक तू घन लै सजीवन सौं,
कृपा-घनआनँद अधार जगजंत हैं ॥५९॥
घन ऊँची रीति नीति नीचियौं न होति,
कहूँ ऐसे मन-चातक भए जे कृपाकंद के।
सुधा कौं सुराखैं लखैं नीच कीच कैसैं चखै,
तोपे रस-पोषे घनआनँद अमंद के।
जिन पर रीझ-भीजे छाए सुख-संपै लियैं,
ललन रसन प्यारे जसुमति नंद के।
तिन्हैं देई तकैं लेऊ तहाँ पान छकैं और,
कैसैं देखि सकैं जे अजाची जगबंद के ॥६०॥

५८—एही०—राय राजवंत। जगजंत—जगजंत (वही)। ६०—संपै०—संपदा लै (राम); सबै लिये (वृंदा०)। तहाँ—तिन्हें (राम)। सकैं—जकैं (राम)।

कुभाव। [५८] पोच=नीच। [५९] जगजंत=जगज्जंतु। [६०] कंद=बादल। सुराखैं=सुराख्य, मदिरा का स्थान या देवलोक। संपै=(संपा)

सवैया

द्वारे न आइहौं जू जन कै जगदीस तिहारियै पौरि पर्‌यौ हौं ।
आस की पासहिं काटि कृपा-बल पूरन पेम भरोसैं भर्‌यौ हौं ।
है अनुकूल हरौ हिय सूल खरो अनखाय उदार अर्‌यौ हौं ।
हौं घनधारी सुनौ घनआनंद सींचन को अभिलाष हर्‌यौ हौं ।।६१।।

कवित्त

दौरि दौरि थाक्यौ पै थकै न जइ दौरनि तें,
गति भूलै मन की न दूरी कछू तो तें रे ।
तातें ठौर दीजै चाह, सुधि लीजै मोदघन,
भूमियै न बिहर्‌यौ अनाथ तोहि होतें रे ।
हाय हाय है अभागी हारि कै कहत हा हा,
आय बनी अब ह्वैहै कहा रची जोतें रे ।
आस-बिसवास दै असाधन हूं साधि लैन,
साधन कृपा है और कहा सधै मोतें रे ।।६२।।

६१—द्वारे०—द्वार न जाइहौं मैं (राम)। हौं—हूं। कै—को। भरोसैं—भरोसै। सुनै—सुनौ (राम)। दरसें—अरसें (सुदा०, लंदन)। ६२—थकै०—थक्यो न नक (राम); दूरी०—दूरि; दै०—दैन साधन हूँ साधन दैन (वही)।

टिप्पणी: (संकेत) घन-संपदा। जगचंद=जगद्गुरु। [६१] जन=साधारण जन। पौरि=द्वार। पास=पाश, फंदा। अर्‌यौ०=अत्यंत क्षुब्ध होकर। हर्‌यौ=हरामरा; प्रसन्न। [६२] मोदघन=आनंद के बादल, घनआनंद। बिहर्‌यौ=छिन्न भिन्न। होतें=होते हुए।

वियोग-बेलि

(बंगाली रेखता)

सलोने स्याम प्यारे क्यों न आवौ ।
दरस-प्यासी मरैं तिनकौं जिवावौ ।। १ ।।
कहाँ हो जू कहाँ हो जू कहाँ हो ।
लगे ये प्रान तुम सौं हैं जहाँ हो ।। २ ।।
रहौ किन प्रान-प्यारे नैन-आगैं ।
तिहारे कारनैं दिन-रैन जागैं ।। ३ ।।
सजन! हित मानि कै ऐसी न कीजै ।
भई हैं बावरी सुधि आय लीजै ।। ४ ।।
कहौं तब प्यार सौं मुसकानि बातैं ।
करौ अब दूरि तैं दुखदैन घातैं ।। ५ ।।
बुरे हौ जू बुरे हौ जू बुरे हौ ।
अकेली कै हमैं ऐसैं दुरे हौ ।। ६ ।।
सुहाई है तुम्हैं यह बान कैसैं ।
सुखी हौ साँवरे, हम दीन ऐसैं ।। ७ ।।
दिखाई दीजियै हा हा अमोही ।
सनेही ह्वै रुखाई क्यौं इव सोही ।। ८ ।।
तुम्हैं बिन साँवरे ये नैन सूनैं ।
हियै मैं लौ, दियैं बिरहा अलूनैं ।। ९ ।।
हजारों जौ हमैं कायौं बसैही ।
हमैं यौं ख्वाय कै औरैं हँसैहौ ।। १० ।।
कहौ अब कौन सौं बिरहा-कहानी ।
न जानें हौ न जानें हौ न जानी ।। ११ ।।

२—हौ—जू (लंदन)। ३—रैन रैनि (कांक०)। ९—ये—यह (लंदन)।
११—कहौ—कहैं (सभा)।

[९] अलूनै=(अलोना) फुट भाग, हृदय में प्रचंड आग लगा है।

लिखौं कैसैं पियारे प्रेम-पाती ।
लगैं अँसुवन झरी ह्वै टूक छाती ॥ १२ ॥
परयौ है आनि कै ऐसो अँदेसो ।
जरावै भीम अरु कानन सँदेसो ॥ १३ ॥
दसा है अटपटी पिय आय देखौ ।
न देखौ तौ परेखौ है परेखौ ॥ १४ ॥
अजू ऐसैं कहौ कैसैं बिसैयै ।
अवधि दिन हूँ सदा पैंडो चितैयै ॥ १५ ॥
अनोखी पीर प्यारे कौन पावै ।
पुकारौं मौन मैं कहिबौ न आवै ॥ १६ ॥
अचंभे की अगनि अंतर जरौं हौं ।
परौं सियरी मरौं नाहीं भरौं हौं ॥ १७ ॥
कहा जानैं तुम्हारे जी कहा है ।
असोचो मोहिं तौ सोचौ महा है ॥ १८ ॥
तिहारे मिलन की आसा न छूटै ।
लग्यौ मन बावरौ तोरैं न टूटै ॥ १९ ॥
अजौं धुनि बाँसुरी की कान बोलै ।
छबीली छैल-छोलनि-संग डोलै ॥ २० ॥
सलोनी स्याम-मूरति फिरै आगैं ।
कटाछैं बान से उर आनि लागैं ॥ २१ ॥
मुकट की लटक हिय मैं आय हालै ।
चितवनी बंक जियरा-बीच सालै ॥ २२ ॥

१२–लिखौं–लिखौं । १३–भीम–भीष (वही) अरु–औ (खोज) । १४–कहिबो–कहिबै (सभा) । १७–अगनि–आगनि (वही) । सियरी–सीरी (सुधा०, सभा) । १८–असोचो–असोचौ (सभा) । तुम्हारे–तिहारे । तौ०–तोसों सो (वही) । २१–से–सी (सभा) । २२–चितवनी०–चितौनी बंक हिय मैं आय ।

हसन मैं दसन-दुति की होइ कौंधैं ।
बियोगी नैन अटक चाहि चौंधैं ॥ २३ ॥
अधर कौं देखि प्यासे प्रान दौरैं ।
अमी के पान बिन ह्वै बिबस बौरैं ॥ २४ ॥
अचानक आय भेंटनि जब मनावै ।
कहौं तब की दसा कहि को बतावै ॥ २५ ॥
लगी लालन ! बिरह की तब चटपटी ।
कहौ कैसैं सहौं यह गति अटपटी ॥ २६ ॥
बहै तब नैन तैं अँसुवानि-धारा ।
चलावै सीस पै यह बिरह आरा ॥ २७ ॥
इतै पै जौ न पावौं पीर प्यारे ।
रहैं क्यौं प्रान ये बिरही बिचारे ॥ २८ ॥
सुहाई है तुम्हैं कैसैं अनैसी ।
कहैं कासौं करौ तुम ही जु ऐसी ॥ २९ ॥
जरावैं नेह तौ फिरि को सिरावै ।
अमी मारैं कहौ जू को जिवावै ॥ ३० ॥
जु चंदा तैं झरैं दैया अँगारे ।
चकोरन की कहौ गति कौन प्यारे ॥ ३१ ॥
अजू ब्रजनाथ गोपीनाथ कैसे ।
करै बिरहा हमारे हाल ऐसे ॥ ३२ ॥
अचंभो है अचंभो है महा जू ।
सनेही ह्वै कहौ कीनी कहा जू ॥ ३३ ॥
हियौ ऐसो कठिन कब तैं कियौ है ।
बलौ अबलानि मारन पन लियौ है ॥ ३४ ॥

२३–होइ–होत । चाहि–चाय । २४–प्रान–नैन (वही) । २५–भेंटनि–भेजनि (सुधा०), मदन (सभा) । २६–कहौ०–कहौ कैसे रह गत । २७–यों०–बिरहा जु आरा (वही), बिरह अपार (कोक०) । २८–पावौं–पाऊँ (सभा) ३१–प्यारे–पारे (खोज) ३३–महा–महाँ (सभा) । ह्वै–ह्वै । ३४–अबलान०–अबलानि मारें सु न ।

करौ अब सौं तुम्हें आछी लगैं हौ ।
जसोदानंद जैसें जैसें जगैं हौ ॥ ३५ ॥
तिहारे नाम के गुन बाँधि हारी ।
बिचारी जू बिचारी है बिचारी ॥ ३६ ॥
दया दियराय बिनती कीजियै जू ।
परे पायनि हियैं धरि लीजियै जू ॥ ३७ ॥
भरोसो है भरोसो है भरोसो ।
रहौ मन धरि अजू अब तौ परोसौ ॥ ३८ ॥
रँगीले हौ छबीले हौ रसीले ।
न जू अपनौन मौं हूजै गसीले ॥ ३९ ॥
तुम्हैं बिन क्यौं जियैं तुम हौ पियारी ।
बचैं कैसैं कहौ तुम हौ जु मारी ॥ ४० ॥
लगी लौकि सबैं बिधि प्रान - संगी ।
तिहारी मान है प्यारे तरंगी ॥ ४१ ॥
रहौ लौकि अजू घनस्याम प्यारे ।
हमारे हौ हमारे हौ हमारे ॥ ४२ ॥
तिहारी हैं तिहारी हैं तिहारी ।
बिचारी हैं बिचारी हैं बिचारी ॥ ४३ ॥
तुम्हारे नाम पै हम प्रान वारे ।
जहाँ हौ जू रहौ रहियै तुम्हारे ॥ ४४ ॥
तुम्हैं निसिबास मनभावन असीसैं ।
सजीवन हौ करौ हम पै कसीसैं ॥ ४५ ॥
लगी जिन लाड़िले जू पीर ताती ।
सुहाई है हमैं तुम कौं सुहाती ॥ ४६ ॥

३७—दया-दया (छंद) । ४१—मान—मौन (सभा) ४५—लगी—लगैं (भरत) । ताता—ताती (सभा) ।

[४५] कसीसैं=खिंचना, कस हाना अर्थात कृपा करना ।

नहीं तुम ही जु प्यारे दान दोसैं ।
दया की दृष्टि सौं फिरि कौन पोसै ॥ ४७ ॥
सुरति कीजै बिसारैं क्यौं बनैगी ।
बिरहिनी की अबधि कौ लौं गनैगी ॥ ४८ ॥
हियौ ऐसो कठिन कब तैं कियौ है ।
मिलौ आँगन हमैं बिरहा दियौ है ॥ ४९ ॥
नहीं पाई परैं प्यारी लपेटैं ।
कहौ हाहा कहौ यौं आहि पेटैं ॥ ५० ॥
भई सूधी सुनौ बाँकेबिहारी ।
न करिहैं मान फिरि सौं है तिहारी ॥ ५१ ॥
चढ़ाईं भूँ अब पायनि परैंगी ।
कहौ जोई अजू सोई करैंगी ॥ ५२ ॥
दई की मानि कै, अब आनि उगावौ ।
पियासी है पियारे सुरस प्यावौ ॥ ५३ ॥
तिहारी ह्वै कछू क्यौं हू जियैंगी ।
बिरह-घायल हियौ ज्यौं त्यौं सिवैंगी ॥ ५४ ॥
यही आवै अजू प्यारे सँदेसौ ।
रहौं पहचान को ही मैं न लेसौ ॥ ५५ ॥
बिसासिनि बाँसुरी फिरि हूँ सुनैगी ।
किधौं हौ सीस आँसुनि धुनैगी ॥ ५६ ॥
न नेरौ जू कहौ क्यौं ही डर जारौ ।
निमोही प्रान को दुखदैन हारो ॥ ५७ ॥
करी तुम तौ अजू गुनखान हाँसी ।
परी गाढ़ी गरैं बिसवास फाँसी ॥ ५८ ॥

४७—दृष्टि दृष्टि । ४८—कौं—कब तक । ४९—तैं—तक । ५०—आहि—आइ (वही) । ५४—कछू—बिछुर (खोज) । ५६—सीसरनि—ऐसें सिर—(वही) । ५८—री—हौ (सभा) । गाढ़ी—गाढ़े ।

न छूटै जू न छूटै जू न छूटै ।
हमोरी रावरी बिरहाउ लूटै ॥ ५९ ॥
हमारें एक तुम सौं टेक प्यारे ।
मिले मैं के कपट हूँ नाग न्यारे ॥ ६० ॥
चकोरी बापुरी ये दीन लोरी ।
अहो ब्रजचंद क्यौं पहचान खोरी ॥ ६१ ॥
छबीले छैल तुम कौं पीर काकी ।
बिथा की कथा तें छनियाँ जु पाकी ॥ ६२ ॥
सजीवन साँवरे कब धौं हरौगे ।
मरौं साधा, बिरहबाधा हरौगे ॥ ६३ ॥
टरै नाहीं हिये तें हेत-थाती ।
तुम्हारी आप के प्यारे सँघाती ॥ ६४ ॥
बढ़ै आसा हियें भारी-नदी सी ।
न हाँसे को ससाँसो भाँवरी सी ॥ ६५ ॥
निहारो हूँ दुखारी बूझियै क्यौं ।
सुनौ सुखदैन प्यारे दीन हैं यौं ॥ ६६ ॥
दईमारनि कौ अब दया आनौ ।
परैं पा दूरि तें ब्रजनाथ मानौ ॥ ६७ ॥
सनेही हौ तुम्हैं सब गाँव जानै ।
सबै मिलि रावरे गुन कौं बखानै ॥ ६८ ॥
अजू अब० सक लागैं प्रानप्यारे ।
सुनै जिन कान मोहन गुन तिहारे ॥ ६९ ॥

५९—बिरहा०—बिरहैन (खोज)। ६०—हमारैं—हमारी (सभा)। मिले—मिलन। ६४—तुम्हारो—तुम्हारे (वृंदा०)। ६५—ससाँसो—सगोतैं (सभा)। ६६—यौं—ज्यौं (सभा)। ६८—सौं०—है तुम्हैं संग सात (खोज)। ६९—सक—संग (सभा)। मोहन—मोतैं (खोज)। तिहारे—निहारे (वृंदा०)।

[६४] सँघाती=संगी ।

तिन्हैं घटि बात कैसैं सही परिहै ।
बिना ही काज जियरा जूझि मरिहै ॥ ७० ॥
हमैं तुम तौ लगौ सब भाँति नीके ।
करौ किरपा हरौ ये साल ही के ॥ ७१ ॥
कहा वारैं निछावरि है रहो है ।
कहाँ कौं लौं कही है जू कहौ है ॥ ७२ ॥
रसिक सिरमौर हौ रस राखि लीजै ।
तनक मन नाम के गुन बाँच दीजै ॥ ७३ ॥
धरैयै नावँ कौं अब नावँ ऐसैं ।
दुहाई है सुहाई परै कैसैं ॥ ७४ ॥
सदा लै रावरी बिनमोल चेरी ।
घरनि तें काढ़ि बन बंसीनि घेरी ॥ ७५ ॥
किये की लाज है ब्रजराज प्यारे ।
बिराजौ सीस पै जग मैं उज्यारे ॥ ७६ ॥
सदा सुख है हमैं तुम साथ आछैं ।
खगी डोलैं छबीलै-दौहैं-पाछैं ॥ ७७ ॥
तुम्हैं भेंटै तुम्हैं देखैं भले ही ।
जगे सोए कै बैठे हू चले ही ॥ ७८ ॥
न न्यारी हू न न्यारी हू न न्यारी ।
भई है प्रानप्यारे-प्रान-प्यारी ॥ ७९ ॥
हमारी औ तिहारी एक बातैं ।
रँगीले रँगराते बीस-रातैं ॥ ८० ॥
सदा आनंद के घन स्याम संगी ।
जियौ न्यारौ सुधा प्यावौ अभंगी ॥ ८१ ॥

७०—घटि—घर (खोज)। ७१—किरपा०—फिर पावरे से (सभा)। ७३—बाँच—मा'दे (वृंदा०)। ७४—दुहाई—साहाइन (सभा)। ७६—उज्यारे—उजारे (वृंदा०)। ८१—जियौ—जियो (सभा)।

[७१] साल=शल्य) पीड़ा। [७७] आछैं=रहते हुए। [८१] अभंगी=अखंड, निरंतर।

इश्कलता

दोहा

छैल छबीलो साँवरो, गोपबधू - चित - चोर।
आनँदघन बंदन करै, जै जै नंदकिसोर ॥ १ ॥
लग्यो इश्क ब्रजचंद सूँ, अंदर अधिक अनूप।
तब ही इश्कलता रची, आनँदघन सुखरूप ॥ २ ॥
स्याम सुजान बिना लखैं, लगे बिरह के सूल।
तामैं इश्कलता भई, घनआनँद को मूल ॥ ३ ॥
संजोगी हैं इश्क मैं, इश्क - बियोगी खूब।
आनँदघन चश्मों सदा, लखबा रहै महबूब ॥ ४ ॥
बिरह-सूल भी वारि करि, घनआनँद भी सींच।
इश्कलता झालरि रही, हिये चिमन के बीच ॥ ५ ॥

ख्याल

सजन सलोना यार नंद दा सोहना।
रसिकबिहारी छैल सु मनमथ - मोहना।
दिखलाओ मुखचंद सु झाँकी प्यारिया।
आनँद-जीवन ज्यान असाडी ज्यारिया ॥ ६ ॥
पल पल प्रीति बढ़ाय हुआ बेदरद है।
आसिक-बर पर ज्यान चलाई करद है।
घनी हुई महबूब सु मरम न खोलियै।
आनँद-जीवन ज्यान दया कर बोलियै ॥ ७ ॥

१—सूँ—सों (बेल०)। अंदर—अंदर (लोक), अंबर (बेल०)। ४—हैं—है (बेल०)। लखबा—लागा (वही)। ६—ज्यान—जान (बेल०)।

[२] इश्क=प्रेम। [४] चश्म=आँख। महबूब=प्रिय। [५] सूल=पीड़ा; काँटा। वारि=काँटे की रोक। [६] दा=का (पुं०)। सोहना=(शोभन) सुंदर। मनमथ=कामदेव। असाडी=हमारी। ज्यारिया=जिलानेवाली। [७] करद=छुरा। घनी० = बहुत चाव कर चुके।

क्यौं चितचोर किसोर हुवा बेपीर है।
भौंह कमाने तान चलाया तीर है।
अंत कहा ही लेत नंद के लाडिले।
आनँद-जीवन ज्यान सुचित के चाडिले ॥ ८ ॥
इश्क नहीं यह होय करंदे जोर हीं।
लोना चित्त चुराय अनोखे चोर हीं।
जानी जू दिल-जान कपट की प्रीति है।
आनँद-जीवन ज्यान अटपटी रीति है ॥ ९ ॥
प्यारे प्रीत बढ़ाय लिया चित चोर कै।
हुव्यो है इठलाय चल्या मुख मोर कै।
रूप-सुधा दरसाय दिया क्यौं जहर है।
आनँद-जीवन ज्यान किया तैं कहर है ॥ १० ॥
हो हलधर दे बीर चले कित आन ही।
निठुर कान्ह महबूब न सुनदे बात ही।
इथ्थूँ आवन नाहि सु की तकसीर है।
आनँद-जीवन ज्यान बड़ी दर पीर है ॥ ११ ॥
भरि पिचकारिन रंग सुरंग गुलाल है।
बाजत चंग उपंग झाँझ डफ ताल है।
गावति हैं ब्रजनारि फाग रँगबोलियाँ।
आनँद-जीवन ज्यान सु हो हो होरियाँ ॥ १२ ॥

८—जीवन—घन के। चाडिले—चाडिले (वही)। १०—चल्या—चलो (बेल०), चल्या (वृंदा०)। ११—दे—के (बेल०)। [illegible]। इथ्थूँ—इथे। बड़ी०—बड़ा बेपीर (वही)।

[८] अंत०=मारते क्यों हो। [९] करंदे०=जबरदस्ती करने से। [१०] हुव्यो०=हाथ झटकाकर। [११] हलधर०=बलदाऊजी के भाई। इथ्थूँ=(इत्थ) यहाँ। की=क्या। तकसीर=अपराध, चूक। [१२] चंग=डफ के ढंग का एक बाजा।

मसैक

को को सूखी कहै तुसाडी हो हो हो हो होरी है ।
चूका चंदन अगर कुमकुमा भरे गुलालन झोरी है ।
आनँद-रंग घने से भिजवैं हाथ लिये पिचकारी है ।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी, जिंद असाडी ज्यारी है ॥ १३ ॥

अहा अहो मँद-नंद साँवरे छिन छिन बानक न्यारी है ।
ओढ़े जरद दुसाला यारी केसर की सी क्यारी है ।
आनँदघन हित-प्यारे बधानी मूरत लागदी प्यारी है ।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है ॥ १४ ॥

सजन सनेही यार नंद दे एती क्या मगरूरी है ।
दरदबंद दरसन दा खातर बंदा हुकम हजूरी है ।
ब्रजमोहन घनआनँद तैंडी रीति अटपटी न्यारी है ।
महर-लहर ब्रजचंद यार दा जिंद असाडी ज्यारी है ॥ १५ ॥

यारां गोकुलचंद सलोने दिया चश्म दा धक्का है ।
डारि दिया घनआनँद जानी हुसन सराबी पक्का है ।
सैन-कटारी आसिक-उर पर तैं यारां झुक झारी है ।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडा ज्यारी है ॥ १६ ॥

दरदबंद डाला बेदरदी खूब इश्क दा फंदा है ।
हँस हँस कर मन मूसि लिया वे बड़ा गरीब गिरंदा है ।

१३—कोको०—...सूखी (बेल०) । ये—दे । १४—ओढ़े—ओढ़ी । १५—रीति—निपट (वही) ।

अधंग=अकमरंग ; ताक=मैदान । [१३] तुसाडी=आपकी । चूका=चूरा, अभ्रक का चूर्ण । बंदन=सिंदूर । महर=कृपा ; दी=की । जिंद=जिंदगी, जीवन । असाडी=हमारी । ज्यारी=जिलानेवाली । [१४] बानक=सजधज ; जरद=पीला । लागदी=लगती ; [१५] सजन=स्वजन, प्रिय । नंद दे=नंद के पुत्र । मगरूरी=घमंड ; दरसन०=दर्शन के लिए । तैंडी=तेरी । [१६] चश्म०=आँख की चोट । डारि०—पीछे लगा लिया । सैन=इशारा । झुकि०=झुक होकर चलाई है ।

टुक भी तो घनआनँद प्यारे सुनियो अरज हमारी है ।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है ॥ १७ ॥

जिगर जान महबूब असाने की बेदरदी कैंदा है ।
पाक दिलां दे अंदर धँसकर बेनिसाफ दिल लैंदा है ।
आनँदघन हो प्रान-पपीहा निसदिन सुध न बिसारी है ।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है ॥ १८ ॥

दिलपसंद दिलदार यार तू मुझनूँ की तरसौंदा है ।
रात-दिहाड़े तलब तुसाडी अकल इलम नहौंदा है ।
मैनूँ ध्यान आन नहिं जानी तू घन-कुंज-बिहारी है ।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है ॥ १९ ॥

नंद महर दा कुँवर कन्हैया मैंडा जीवन जानी है ।
बिसरे नहीं रैनदिन जो से प्यारा प्रीतम प्रानी है ।
दीजैं इन्हां असानूँ झाँकी आनँदघन गिरधारी है ।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है ॥ २० ॥

रहौ खुसी महबूब नंद दे मनमाने तित जावौ जू ।
कदी कदी घनआनँद जानी इन गलियन भी आवौ जू ।
आस लगी अँखियाँ नूँ यानी दीजै झाँकी प्यारी है ।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी ज्यारी है ॥ २१ ॥

१७—हँस०—हस हंस (बेल०) । १८—बे०—बिन ताक । १९—करोंदा—तरसौंदा । अन०—न आवत । आनी—यानी (वृन्दा०) । २०—इन्हां—यहां (बेल०) । कदी०—कहूँ कदी (वही) ।

[१७] हंस=हँसकर । मूसि०=चुरा लिया । वे=रे । गिरंदा=फंदा लगानेवाला । [१८] असाने=जो किसी की माननेवाला न हो । कैंदा=कैदा है । बे०=अन्यायपूर्वक । लैंदा=लेता है । [१९] की=क्या । तरसौंदा=तरसाता है । दिहाड़े=दिन । अकल=अकल, बुद्धि । इल्म=इल्म, ज्ञान । [२०] महर=गोपों के सरदार । मैंडा=मेरा । असानूँ=हम को । [२१] कदी=कभी ।

दोहा

आनँदघन बरसावनो, स्याम सलोने गात ।
आवत धीर-समीर तें, चल्या पुलिन को जात ॥ २२ ॥

सिहाणी

इनन्हूँ क्यौं कर गहि सकौं घनआनँद पंथा ।
मैं तैंडी लटकन फँधा क्या तुजन्हूँ कीया ।
क्यौं महबूब सुजान तें गौरैं क्या कीया ।
मैंडा दिल लैंने अबे क्यौं मुसि कै खोया ॥ २३ ॥

चोर लिया चित आहले घनआनँद जानी ।
मैंडा दिल तैं मोहि कै उर औरहि ठानी ।
इश्क-महर के बीच है यह अकह कहानी ।
अलकौं में बाँधे रहैं महबूब सुमानी ॥ २४ ॥

क्या कहियै ब्रजमोहना तू मानै नाहीं ।
तू ही जानैगा अबे अपने दिल माहीं ।
घनआनँद मिल दीजियै नहिं कीजै नाहीं ।
अँखियाँ मैंडी खुभि रहीं मैंडे दिल माहीं ॥ २५ ॥

दोहा

आनँद के घन जान कौ, कीन्हौं तुम औहेन ।
रूप-सुधा बरसाय कै, कहर-जहर क्यौं देन ॥ २६ ॥
अंसः के बिच मोहनी, मोहन याको नाम ।
आनँदघन सिरमोहिया, नाहीं सावरो नाम ॥ २७ ॥

२२—सलोने—सलोनो (प्र०) । २३—पीया—कीया ।

[२२] धीर समीर=कुंज विशेष । पुलिन=तट । [२३] इनन्हूँ=इनको । तैंडी=तेरी फँधा=फँसा हुआ । तुजन्हूँ=तुमको । मैंडा=मेरा । अबे=भी, ऐ । मुसि कै=चुराकर । [२५] मैंडे=मेरे ।

अरिल्ल

कालिंदी के तीर बजी हरि-मुरलिया ।
समझ परै नहि तान अनोखा सुर लिया ।
पूरि रही धुनि कान न छोड़न गैल है ।
आनँद-जीवन जान छयलो छैल है ॥ २८ ॥

बाढ़ी नाड़ी पीर करेजे आय कै ।
मोहन मन हर लिया सु बैन बजाय कै ।
लग्गा मैंनूँ तीर इश्क दा खूब है ।
आनँद-जीवन जान कान्ह महबूब है ॥ २९ ॥

बँचत है तुव छाँहि किधौं मन मैंडड़ा ।
रहै अयानूँ चाव नेह दे लैंडड़ा ।
खड़ा रझावन संग सुरंग मजूम है ।
आनँद - जीवन जान कान्ह महबूब है ॥ ३० ॥

बीज-छटा पटपीत घटा तन स्याम है ।
इंद्रधनुष बनमाल लाल अभिराम है ।
बंसी-धुनि घन-घोर रूप जल झलमलै ।
आनँद जीवन जान मेघ ज्यौं झलमलै ॥ ३१ ॥

दीजे इनन्हूँ भीख सलोने साँवरे ।
खूब करैं ये नैन हुए सिडबावरे ।
मिलौं कोय जाय कान्ह घाय है ।
आनँद-जीवन जान न आन बचाव है ॥ ३२ ॥

२८—तान—जान (वही) । २८—लागा—लगा (वही०) । कान—कान्ह । ३१—घटा—घना । इनन्हूँ—मुजन्हूँ । दीजे—दीजै ।

[२८] सुर=स्वर, ध्वनि । [२९] बैन=वेणु, बाँसुरी । मैंनूँ=मुझको । दा=का । [३०] मैंडड़ा=मेरा । कान्ह=कान्ह कृष्ण । चंग=पतंग । [३१] बीज=विद्युत्, बिजली । बनमाल=घुटनों या पैरों तक लंबी माला । घोर=ध्वनि, गर्जन । रूप=सौंदर्य । झलमलै=झलकता है । [३२] सिडबावरे=सिरचढ़े दुलहए ।

दोहा

बरसौ आनँदघन अनत, इत निन निस ही छाय ।
प्रान-पपीहा की दसा, कहै कौन अब जाय ॥ ३३ ॥
आनँद के घन तुम बिना, तलफत नेही दीन ।
पल हू कल नहि परत है, जैसे जल बिन मीन ॥ ३४ ॥

निसानी

आनँद के घन तुम बिना, मुजनूँ नहि भावै ।
नयन असाडे लागनै तुझही नूँ धावै ।
हुआ सदा कोई लाडिले देखन नहि पावै ।
जुलम करें ये बावरे मुजनूँ तरसावै ॥ ३५ ॥
तेंडे मुख पर तिल अवे अति खून करेंदा ।
अलकै तेंडी यों छुटी है नागिन लसेंदा ।
तिलक बीच छापे अवे दिल का है फंदा ।
नंदगोविंद सु नंद दे घन आनँद-कंदा ॥ ३६ ॥

दोहा

आनँदघन छिन पोखि कै, धाये प्रान अधीन ।
ते ही अब बिललात यों, जैसे जल बिन मीन ॥ ३७ ॥

निसानी

दे गिरंद गिरँदा हुआ वे जिंद असाडी लीनी है ।
छिप छिप कर मुखड़ा दिखलावै रीति अनोखी लीनी है ।
मगजदार मरबूब करेंदा खूब मजे दी चारी है ।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी प्यारी है ॥ ३८ ॥

३४—तलफत-दीनता । ३५—१ लागनै—लागतै तुम (वही) । वे—जे (मनो०) ।
मुजनूँ—तुजनूँ ।

[३३] अनत=अन्यत्र । [३४] मुजनूँ=मुझको । असाडे=हमारे । [३५] हुआ=हुआ, सदा । देखन०=देखने नहीं पाते । [३६] करेंदा=करता है । लसेंदा=सुशोभित है । नंद दे=नंद के पुत्र (गोविंदचंद) । [३७] अधीन=अभ्रतों से । [३८] गिरंद=फंदा ।

अहो अहो घनआनँद जानी जिंदूँ निंदूँ जांदा है ।
बेपरवाही जाहर कर कर चश्मा नूँ चमकांदा है ।
नोक नजर इक करदा नाहीं की तकसीर हमारी है ।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी प्यारी है ॥ ३९ ॥
ब्रजमोहन घनआनँद जानी जद चश्मों विच आया है ।
इश्क अराबी करया मुजनूँ गहरा नसा पिलाया है ।
तन मन और जिहान माल दी सुधि बुधि सबै बिसारी है ।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी प्यारी है ॥ ४० ॥
दीन भए अब मोल लीन बुध मैंडी पीर न पावै है ।
लाज कलंक यार अपने कूँ तैं ही छिन मरि जावै है ।
आनँदघन इस दिल दी बेदन लहै सुजान बिहारी है ।
महर-लहर ब्रजचंद यार दी जिंद असाडी प्यारी है ॥ ४१ ॥

दोहा

आनँद के घन छैल की छवि निरखै धरि ध्यान ।
इश्कलता के अर्थ कों समझै चतुर सुजान ॥ ४२ ॥
आनँद के घन छैल सौं करि ले चित को चाव ।
इश्कलता जो चाहिये तौ बृंदावन आव ॥ ४३ ॥
इश्कलता ब्रजचंद की जो चाहै दै चित्त ।
बृंदावन सुखधाम मों जाहु नित्त ही नित्त ॥ ४४ ॥

———

३९—अहो० अहो महो (नहीं) ।

गिरँदा—बंधन लगानेवाला । जिंद=जिंदगी, प्राण । असाडी=हमारी । मगज-दार=बुद्धिमान् । [३९] जिंदूँ०=जाती नहीं जाता है । चश्मा नूँ०=आँखों को चमकाता है । नोक=अनी, कोर । करदा०=करता नहीं । की०=हमारा अपराध क्या है । [४०] जद=जब । चश्मों०=नेत्रों के बीच । इश्क०=प्रेमरूपी मदिरा । मुजनूँ=मुझको । [४१] दीन०=मिलाइए 'सुजानहित', छंद ४ ।

यमुना-यश

चौपाई

जमुना को जस बरन्यौ नाहीं । अति अगाध कैसें अवगाहीं ॥१॥
जमुना कहैं रसवती बानी । कांति मधुर रसनिधि की रानी ॥२॥
जाके तीर रसिक रसरंगी । बसत लसत गोपाल त्रिभंगी ॥३॥
जमुना को रस कहत न आवै । नित-बिहार-रस-पारस पावै ॥४॥
जो रस अगम अगोचर महा । सो याके तट प्रगटित अहा ॥५॥
या जमुना की भाग-निकाई । मति अति हीन बिचार बिकाई ॥६॥
महा रसवती राधापति की । पूरन-प्रेम-तरंगनि तति की ॥७॥
श्रीजुत अंगराग की धारा । जमुना-रूप अनूप अपारा ॥८॥
सबिता पिता बड़ागर मानैं । कुलनचंद सुत पावन न्हानैं ॥९॥
बिबिध केलि सुख-बेलि बढ़ावैं । बनमाली ज्यौं निपटैं भावैं ॥१०॥
जमुना बृंदाबन की सोभा । लखि नित प्रगटि हरति हिय-लोभा ॥११॥
कुंजनि पुंज तरंगनि रोपैं । कुंज-बगान कौं बहु बिधि पोषैं ॥१२॥
जमुना हृदय हेत की खानि । कौन सकै या मरमहि जानि ॥१३॥
भूषन प्रगट रस जमुना जानैं । जमुना को हित को पहचानैं ॥१४॥
घूमति फिरति भरति भौंरी । निज संगम-रंगनि साँवरी ॥१५॥
गौर बरन राधा की गोय । स्याम-रंग मैं भरयौ सजोय ॥१६॥
राधा को रस जमुना जानैं । भानु-नंदिनी नातो मानैं ॥१७॥
जमुना-हृदैं रहति नित राधा । जमुना लखैं हरति भ्रम-बाधा ॥१८॥
सुख-सेवा साधिबो करति है । राधा-भाव केलि-सहित ढरति है ॥१९॥
यहै जमुना को मरमु कह्यौ है । जमुना ही की कृपा लह्यौ है ॥२०॥
या जमुना कौं ही हौं गाऊँ । या जमुना को सुदरस पाऊँ ॥२१॥
या जमुना मैं नित हौं न्हाऊँ । या जमुना तजि कहूँ न जाऊँ ॥२२॥

१३—हृदय—पाठ (प्रथम)। या०—पावर नहीं (वही)।

[११] गोभा=अंकुर। [१३] हेत=हित, प्रेम। [१७] भानुनंदिनी=भानु (सूर्य) की पुत्री, (यमुना); (वृष-) भानु की पुत्री (राधा)। [१९] राधा-भाव—राधा के

यह जमुना मेरी सुखदायनि । याकी लहरि भरयौ चित चायनि ॥२३॥
उफनत स्याम-रसामृत-सिंधु । बिबिध भाव भर पूषन-बंधु ॥२४॥
या जमुना को मोहिं प्रमान । रसनैं जमुना-सुजस-बखान ॥२५॥
ऐसी जमुना मोकौं चहियै । जमुना-कृपा कहाँ लौं कहियै ॥२६॥
जमुना के तट फूल्यौ फिरौं । हेरि तरंगनि रंगनि हिरौं ॥२७॥
जमुना लीला-रंग दिखावै । परम प्रीति की रीति सिखावै ॥२८॥
यह जमुना जीवनि है मेरी । जमुना सी जमुना ही हेरी ॥२९॥
ऐसैं ही जमुना यह देखौं । नित नित नैननि भाग बिसेखौं ॥३०॥
जमुना-महिमा बेद बखानैं । सतसिंधु-भेदिनि जग जानैं ॥३१॥
जमुना जल-कमला-रसरैनी । स्याम-परस पूरन-पद-देनी ॥३२॥
जमुना देखि न देखैं जम कौं । भानकुँवरि मेटति दुख-जम कौं ॥३३॥
जमुना-जलहि सहज हूँ पियैं । भव-भय-ताप न व्यापति हियैं ॥३४॥
जमुना देखत ही हरि दरसैं । स्याम रूप आनँदघन बरसैं ॥३५॥
बहुत भाँति महिमा जमुना की । कहि को सक न सकति रसना की ॥३६॥
गोकुल-घाट पियौ जिन पानी । जमुना-रस-महिमा तिन जानी ॥३७॥
जमुना-तीर बसत बलबीर । गोचारन-सुख बिलसत तीर ॥३८॥
स्याम-सरीर सुभांति गंभीर । जमुन-नीर बिहरत बलबीर ॥३९॥
कुँवर कान्ह जमुना मैं न्हात । मसकत सुभग साँवरे गात ॥४०॥
कहा कहौं जमुना को भाग । अंगराग पूरन रस-पाग ॥४१॥
पैरत जमुना अपनै रंग । कान्ह कौतुकी ग्वालनि संग ॥४२॥
बिबिध कलोल केलि निस्तारन । जमुना सौं पूरन मन पारन ॥४३॥
यहै जमुना रस-रास खिलावैं । पुलिन सुमंडल रुचिर रचावैं ॥४४॥

२५—बखान—पँवाद (प्रथम)। ३०—ऐसैं०—ऐसइ या जमुना हौं। ३१—मत-ज। ३४—भव—नय। ३५—आनँद०—आनदाने। ३६—को०—न सकति (वही)।

पति, श्रीकृष्ण। [२४] पूषन०=सूर्य का मित्र, चंद्रमा। [२५] रसनैं=रसना को जीभ को। [२७] रंगनि=आनंद में। हिरौं=खो जाता हूँ। [३४] दव=दावाग्नि। [३६] सकति=शक्ति। [४०] मसकत=मसकते हैं।

भ्रमित जानि ब्रजमोहन धीर । जमुना सौंनक सजति समीर ॥४५॥
सहज भाँति जमुना सुख दैनि । उमँग-भरी हित-लहरैं लैनि ॥४६॥
महल टहल कों अहल-पहल है । जमुना लहरनि भरी लहलहै ॥४७॥
जमुना बिहरनि बैठि सदेसनि । सगन स्यामसुंदर सजि बेसनि ॥४८॥
जमुना बिबिधि कलोलनि ठानति । टहल-रीति जमुनाई जानति ॥४९॥
यह जमुना मेरी जिजमानि । दंपति-सुख-संपति की दानि ॥५०॥
मधुर - केलि - चिंतामनि जमुना । बाँटे जमुना जाँटे राखी रसना ॥५१॥
जमुना दई रसभरी बानी । तन जमुना-रंग-रंजित रसानी ॥५२॥
जमुना जमुना जमुना कहौं । धीर-समीर-तीर बसि रहौं ॥५३॥
जमुना मोकौं सब कछु दियौ । दरसि परसि सरसान्यौ हियौ ॥५४॥
जमुना नावँ जगत - उजियारौ । रसिक सुजान कौं अति ही प्यारौ ॥५५॥
जो जन जमुना को रस चाखैं । सो नित जमुना जमुना भाखैं ॥५६॥
जमुना चाहिं धँन चित होत । उमँगि चलत लीला-रस-सोत ॥५७॥
जमुना कहत लोभ जागि परै । कृष्नचारन - लीला-रस ढरै ॥५८॥
जमुना कहत कृष्न ढरि आवै । रस ही रस निज दरस दिखावै ॥५९॥
जमुना हरैं हरन ब्रजनाथ । सहज जानि कैं गहत सु हाथ ॥६०॥
ऐसो जमुना को परताप - बल । और कहा यातैं उत्तम फल ॥६१॥
जमुना को फल जमुना ह्वैयै । नित हीं जमुना जमुना गैयै ॥६२॥
जमुना जाचैं जमुना पैयै । मन बच करि जमुनाई ध्यैयै ॥६३॥
जमुना सर्व-स्वारथ - संचारिनि । जमुना परमारथ-बिस्तारिनि ॥६४॥
जमुना है मंगल की माला । जमुना देवी दीन-दयाला ॥६५॥
जमुना जो कछु मो पर ढरी । पावन पैज प्रीति हू करी ॥६६॥
जमुना सुकृत कहाँ लौं बरनौं । पालै पोषै राखै सरनौं ॥६७॥
जमुना सुख-समाज दरसावै । नीरस मनहिं परसि सरसावै ॥६८॥

५६—पीवैं—पैगै (प्रयाग)।

लगाते हैं। [४८] टहल = काम-धंधा। सगन = मण्डली-सहित। [४९] टहल = सेवा। भरी = भरी-पूरी, संपन्न। जिजमानि = यजमान का स्त्रीलिंग रूप, धनशालिनी। [५१] जांटे० = जड़ रखा है। [५३] धीर० =

कृष्न - तरंगिनि यातैं कहियै । जमुना देखि कृष्न उर गहियै ॥६९॥
जमुना तैं निरवधि रस लहियै । जमुना चहियै जमुना चहियै ॥७०॥
जाके मन जमुना को पन है । ताकौ अतुल को पूरो मन है ॥७१॥
जमुना जमुना जमुना एक । जमुनाहीं सौं निबहौ टेक ॥७२॥
वृंदाबन जिहिं जमुना - कूल । यह नित ही मोकौं अनुकूल ॥७३॥
जमुना - तट बनराज निकेत । सदा स्याम को निज संकेत ॥७४॥
यह जमुना यह बन मेरो धन । या जमुना बन लौं मेरो पन ॥७५॥
यह जमुना यह बन यह पन है । बन जमुना-बन भाग्यौ मन है ॥७६॥
जमुना बन पन मन मैं बसौ । रसना जमुना के रस रसौ ॥७७॥
स्रवन सदा जमुना-जस सुनौ । मनि जमुना-कीरति-गुन गुनौ ॥७८॥
जमुना - बचन मौन मैं रचौ । मन जमुना-चिंतन मैं खचौ ॥७९॥
जमुना सुंदर लोचन देखैं । मनौ सिंगार सुअंजन रेखैं ॥८०॥
राधा मोहन - सहचरि दरसौं । जमुना दरसि केलि-सुख सरसौं ॥८१॥
जमुना को आनंद अगाध । गोपीजन - वल्लभ रस - ओघ ॥८२॥
मो पर ढरी भरी रस-रंगनि । निरखत जमुना रुचिर तरंगनि ॥८३॥
निरवधि रस की रासि रसीली । हित-कादंबिनि निज चटकीली ॥८४॥
प्रगट पुलिन आनंद यह देखि । जमुना-कांति-कला बिसेखि ॥८५॥
जमुना कौ मंगल जस गायौ । रसना निज सवाद-फल पायौ ॥८६॥
जमुना - जस जैसैं मन भायौ । जमुना ही अपनाय कहायौ ॥८७॥
जमुना - रस - जस ऐसैं कह्यौ । बानौ निज परमारथ लह्यौ ॥८८॥
जमुना-जस कौं जियरा तरस्यौ । जमुना कृपा-जलद उर सरस्यौ ॥८९॥
नव कछु जमुना-सरसहि परस्यौ । चातक ह्वै आनँदघन बरस्यौ ॥९०॥

दोहा

जमुना - जस बरन्यौ बिसद, निरवधि रस को मूल ।
जुगल - केलि - अनुकूल है, बसियौ जमुना - कूल ॥९१॥

९१—बसि०—बसौं ही (वही)।

कुंज विशेष : [६६] पैज=प्रतिज्ञा। [६७] सरनौं=शरण में भी। [८२] ओघ=प्रवाह बाढ़। [८४] कादंबिनि = मेघमाला। [९०] आनंद०=आनंद से आप बरसनेवाला।

प्रीति-पावस

चौपाई

बन बिहरत मोहन घनस्याम। गिरि-गोधन-समीप सुखधाम ॥१॥
रितु बरषा दरसी ब्रज बसिकैं। जित तित घमत स्यामघन लसिकैं ॥२॥
उमहि असाढ़ चाहि यौं रहै। चोप-चटक आगम ही गहै ॥३॥
भयौ करति कौंधनि सो हियें। दैसें जियें चटपटी लियें ॥४॥
सावन-रूप महारस-भावन। मनलोचन हरियारो सावन ॥५॥
मनभावन हरि भूमि रिझावन। मनमोहन है ब्रजसुख-सावन ॥६॥
नित ही हित-झरनानि झुकि बरसै। नित ब्रजमोहन-रसघन सरसै ॥७॥
सो बिलसत बरषा-सुख बन मैं। चरनत नए नेह के पन मैं ॥८॥
घिरि घटानि जब झुकति अँध्यारी। तब भीजत डोलत बनवारी ॥९॥
सुमिलि सखा-समाज-संग मारैं। मन लोचन अभिलाषनि ढारैं ॥१०॥
बरन बरन सिर लालित लपेटा। कोरि कोरि मनमथ-मद मेटा ॥११॥
रचे काँचरू पानन के छतना। सुख-छबि भेद आर दरसनि गनत ना ॥१२॥
मधुर अधर अभिगुंजी धरें। कान्ह मुरलिका सुर-रंग ररें ॥१३॥
मिलि अनेक एक मन मतैं। सदा स्यामसुंदर-रुचि रतैं ॥१४॥
बहुत भाँति धन लीला करैं। परम-चरित्र कहे क्यौं परैं ॥१५॥
गोरे कंदरनि कहूँ छकि छहियै। मधु रितु कौ घसमूह सुख लहियै ॥१६॥
तहाँ बैठि धन ब्रज छबि हेरत। केलि कै न सुखरासि सकेलत ॥१७॥
बिहरत कबहूँ कालिंदी-तीर। कहो परत क्यौं सोभा-भीर ॥१८॥
मेघ-माधुरी जमुना-नीर। ऐसो सुंदर स्याम सरीर ॥१९॥
वृंदावन घनस्याम-सरूप। लाल तमाल कदंब अनूप ॥२०॥

२—तित-तित (भ्रमा०)। ११—कोरि०—कोटि कोटि कामदेव। १३—अधर०—उर आली गुंजा। १५ परम—प्रेम। रुचि-सुख। १८—कबहूँ-कहूँ। २०—सरूप-स्वरूप (वही)।

[७] झरना=वृष्टि। [१२] छतना=छाता। [११] कोरि=करोड़। [१३] अभिगुंजी—अभिगुंजन करनेवाली। [१४] मतैं=मत करते हैं।

कुंज-पुंज आनिक बहु भाँतिन। लसत सघन अपनी पाँतिन ॥२१॥
मोहन ठौर महा मन मोहन। कौ है बरनि सकत छबि-सोहन ॥२२॥
तरुन बिथालनि झूला मेलत। फूलनि फूलि फूल रस झेलत ॥२३॥
सुख-सहेत ब्रज गोपिनि बासी। दिनहीं कियौ रहत अघरासौ ॥२४॥
पावस-दिन मावस-निसि मानौ। निसि-बिलास कैसें धौं गानौ ॥२५॥
भीजि रहत प्रेम-पावस मैं। संगम पन लहत सावन मैं ॥२६॥
जमुना-पूर परम सुखदायक। दरस परस सरसत मननायक ॥२७॥
उमड़्यौ रहत सदा आनँदघन। यह जमुना यह बरषा यह बन ॥२८॥
हित-पावस नित ही इत रहै। चातक-चोप सदा निरबहै ॥२९॥
फिर पावस रितु जब इत आवै। रीझि भीजि रस-पारस पावै ॥३०॥
रितु अनरितु इत की रितु औरै। सेवति रसिक स्याम सिरमौरै ॥३१॥
मुरली मैं मलार धुनि पूरति। या बिधि जड़-जंगम-चित चूरति ॥३२॥
मन-ब्रज नेह-मेह बरसावै। वह पावस-सुख कहत न आवै ॥३३॥
सजल नैन देखैं अनदेखैं। उघरनि नहीं ब लगत निमेखैं ॥३४॥
चातक-चाप चपल हित लखें। सबही हिय रस-स्वासनि नखैं ॥३५॥
बरत लगन अभिलाषनि भुरवा। मुदित मनोज-मनोरथ मुरवा ॥३६॥
भीजनि भिजवनि बाहर घर मैं। कछु सुधि नाहिं परनि हित-झर मैं ॥३७॥
सब ब्रज रस-धाराधर पूरि। सदा एकरस आनँद मूरि ॥३८॥
बहुत स्याम ज्यौं ज्यौं झर बरसैं। आनँदघन ब्रज आनँद सरसैं ॥३९॥
दामिनि-स्याम भरयौ घन डोलै। सदा मिलन मैं मानत झोलै ॥४०॥
नित ही हरसहि कोकिला कूजै। केलि-कलाधर आसनि पूजै ॥४१॥

२२—मोहनैं०—मोहन को (वृंदा०)। २४—सहेत—सहेट (भ्रमा०)। २६—सं०—प्रगट होत। २८—उमड़्यौ—उमड़यौ। ३०—पारस—बर रस। ३१—की रितु—की रति।

[२४] सहेत=संकेतस्थल। बासी=बसत (रहनेवाला)। [२५] मावस=अमावास्या। [२७] पूर=प्रवाह। [३४] नखैं=चमकती है। [३६] भुरवा=बादल के खंभ; मुरवा=मोर। [३८] धाराधर=बादल। [४०] झोलै=विरह की

रस को फैल सदा ब्रज दरसै। सदा अपूरब अंबुद बरसै ॥४२॥
सब विधि भरत मनोरथ क्यार। ब्रज पावस नित दरसत प्यार ॥४३॥
यह पावस या ब्रज नित बसै। सदा स्यामघन ह्वत रससरसै ॥४४॥
अद्भुत घन दामिनि सुख सरसैं। रस पीवनहू प्यासनि बरसैं ॥४५॥
चढ़े रहत नित हियनि हिंडोरनि। बिहबलै प्रेम-मूल झकझोरनि ॥४६॥
मधुर प्रेम-पावस के गीत। रसनिधि राधा मोहन-मीत ॥४७॥
मुहँ बरन बसन अनुराग। भावै रहनि सदा बड़भाग ॥४८॥
भींजैं सहज भिजावत सदा। नव घन दामिनि रस-संपदा ॥४९॥
प्रानधन भींजि रह्यौ है रस मैं। ये गुन प्रगट प्रीति-पावस मैं ॥५०॥
यह पावस जिय ही इत रहै। बरसनि सुख-सरसनि को कहै ॥५१॥
अचरज-झर लागीई दरसै। घन बरसै आनँद-निधि परसै ॥५२॥
दामिनि घनहिं भिजै रस पोखै। घन दामिनिहिं देखि ही जीवै ॥५३॥
अद्भुत घन दामिनि को धर्म। क्यौं न परत अनोखो मर्म ॥५४॥
स्यामनि बरसत अति रस भरै। अचरज घन दामिनि संचरै ॥५५॥
बरन-बरन लीला-रस-रंगनि। नित नवीन पूरन सब अंगनि ॥५६॥
ब्रजबन रस भींजत घुरि दुरिकै। उचरि घमड़ि अरु घमड़नि दुरिकै ॥५७॥
बिसद केलि-रस-रेलि बढ़ी है। प्रबल प्रेम-भर नदी चढ़ी है ॥५८॥
उमग अमाइ चढ़त झर सावन। भरि झँटनि भादौं मनभावन ॥५९॥
बारह मास रु रितु यह पावस। पून्यौ को सुख देत अमावस ॥६०॥
या ब्रज सब रितु अचरज-रूप। आचरज गोपी कान्ह अनूप ॥६१॥
सुरस प्रीति-पावस ज्यौं सरसै। त्यौं ही सब रितु को सुख परसै ॥६२॥
कहत-कहत कछु बन कहि आवै। लहत रहत नित गुननि भुलावै ॥६३॥
या ब्रज सहज प्रीति-पावस है। सब रितु सुख इकरस अजरस है ॥६४॥

४२—सदा अपू०—जहाँ अपू०। ४३—क्यार—प्यार (छं०)। ५०—है—हित (सदा०)। ५६—बरन—पाती। ६४—सुरस—अस इकरा।

[४३] क्यार=(केदार) क्यारी। रससरसै=रस बरसाता है। [४८] मुहँ= वाले। [५८] बिसद=स्वच्छ। रेलि=प्रवाह।

जिनके दृग चातक मन मोर। तेई तकत सु पावस-ओर ॥६५॥
रसकदंब-कादंबिनि दरसै। भीजि भीजि आनँदघन बरसै ॥६६॥
सब रितु भरयौ रहत चौमासौ। बरसि बहायौ सब ही साँसौ ॥६७॥
सोध सोध जैसो जब चहियै। हित-पावस मैं नित ही लहियै ॥६८॥
यहाँ आय पावस हू भीजै। नित त्यौहार मनावन जीजै ॥६९॥
सो पावस ब्रज बसि यौं सोहै। सोहै मोहै पटतर को है ॥७०॥
फूले सरस कदंबनि पुंज। महा मनोहर मधुकर-गुंज ॥७१॥
सोभन लतागन फूलनि छाए। सोभित बन के सदन सुहाए ॥७२॥
बनबागनि को सुख सरसावन। पैठत बैठत बूँद बचावन ॥७३॥
गायनि को सुख देखन चाहै। लिये लकुट आनँदनि बाहै ॥७४॥
साँवल-बरन सहज ब्रजमोहन। मन रमनिन के मनोरथ-दोहन ॥७५॥
सुहृद-संग बिहरत बन फिरै। अँखियाँ निरखि न क्यौं हूँ घिरै ॥७६॥
मुरली माँझ मलार उभावत। पावस को सौभाग्य बढ़ावत ॥७७॥
सुरहि परसि पखान जल होय। ब्रज पावस-गुन धरयौ समोय ॥७८॥
सोई प्रगट ठौर ही ठौर। पावस बिहरत ब्रज-सिरमौर ॥७९॥
गावत गोपी रितु के गान। भीजत रीझत मोहन-प्रान ॥८०॥
झुरमट झूला नगर नगर है। पावस को सुख डगर डगर है ॥८१॥
सरवर तीर समाजहि मचैं। झूलैं, गावैं, निरखैं, नचैं ॥८२॥
मिलि भीजन के सुख बहु भाँति। पेखत नैननि मानत साँति ॥८३॥
पावस को सुख बहुत प्रकार। ब्रज बन बिहरत रसिक उदार ॥८४॥
नंद-कुमार सबके मन मोहत। सब रितु हित सब ही बिधि सोहत ॥८५॥

६६—बरसै—डरी (वही)। ६८—जैसो जैसे (सं०)। ७५—साँवल—सावन (सदा०)। ७६—घिरै—फिरै। ८०—रितु—ही।

[६६] कदंब=समूह। कादंबिनि=मेघमाला। [६७] साँसौ=संशय। [७०] पटतर=समानता। [७३] बचावन=बचाते हुए। [७८] सुर=स्वर, मुरली की ध्वनि। पखान=पाषाण। समोय=भिगोकर। [८१] झुरमट=समूह, भीड़। नगर=घर। डगर=मार्ग। [८३] साँति=शांति।

सोभित कोंहीं लकुट सुदेस । पावस ग्वार मनोहर बेस ॥८६॥
ब्रज-जन गैल-गरवारनि गाहत । लहत फिरत ज्यौं ज्यौं सुख चाहत ॥८७॥
बहु बिधि पावस के सुख बिलसैं । नित गोपी गुपाल मिलि हुलसैं ॥८८॥
गोप-हरयारी झिलमिल बाढ़ी । पावस निज संपति ह्वै काढ़ी ॥८९॥
राधा-मोहन बरषन-बिहार । उर धरि पावस कियौ सिंगार ॥९० ॥
श्री ब्रजभूमि वास करि पावस । कृस्न-मनोरथ-रस को पारस ॥९१॥
पाय तुष्ट ह्वै आनि छबि छाय । हित हरियारी रच्यौ बिछाय ॥९२॥
तापर ते पद धरि भरि सरसैं । अति कोमल तृन-अंकुर परसैं ॥९३॥
बन बेलिन बहु भाँति फूल फल । सरनि समाज भरे निरमल जल ॥९४॥
बिलसत मन सुख मोहन स्याम । उर पर पोत जुही को दाम ॥९५॥
कौतुक-रूप सदा बनवारी । आनँद-मूरति रासबिहारी ॥९६॥
सहज सिंगार कहा कछु कहौं । रूप-लहर को थाह न लहौं ॥९७॥
बरन मनोहर जगत उज्यारौ । कारौ अंजनलोचन को तारौ ॥९८॥
पावस घन बन भूमत डोलैं । जोबन-झरनि छैल-गति बोलैं ॥९९॥
ब्रजरस भिजे रिझै इन राख्यौ । ब्रजरस-सार सोधि इन चाख्यौ ॥१००॥
चातक ह्वै लखि प्रीति-पावस को । जल-रसिया चसको ब्रजरस को ॥१०१॥
भींजे रहत प्रीति-पावस-रस । पावस-सुख बिलसत भीजनि बस ॥१०२॥
यौं ह्वै अंजत बिलसत रहौं । ब्रजरस सुख-संपति नित लहौं ॥१०३॥
गोप-दुलारे जमुना-जीवन । अति-रस-प्यावन अति-रस-पीवन ॥१०४॥
पावस-प्रीति पयोद बरसैं । तापै कोषे पीवैं सरसैं ॥१०५॥
घन चातक को मरम न परसैं । निज प्यासनि आनँदघन बरसैं ॥१०६॥

८८—बरन-चरन (वही) । ९१—पावस—स्वारथ (वही) । पारस—पावस । ९२—ह्वै-है । ९४—पोत-पीत । १०१—चातक—चातक । संपति—गवाद (वही) ।

[८६] कोंहीं=पत्तों का छोटा छाता या कंबल की घोघी । सुदेस=सुंदर । [८७] गरवार=गलियारा, छोटी गली । गाहत=घूमते हैं । [८९] हरयारी=हरियाली । [९५] दाम=माला । [९७] थाह=गहराई ।

प्रेम-पत्रिका

चौपाई

कान्ह तिहारी पाती तुमहिं सुनाइहौं ।
हाय हाय फिरि हाय कहूँ जौ पाइहौं ॥ १ ॥
कटुक प्रीति कौ स्वाद मिठास-भरचौ कहा ।
छवै रसना करि किलक कहौ बरनै कहा ॥ २ ॥
जानै बिरही प्रान और कैसैं बनै ।
तीखी तरल सुधा तक कहत रसना छनै ॥ ३ ॥
सुमन सहैं तें और लहैं पर-पीर कौं ।
धनि धनि हौ ब्रजनाथ निहारै धीर कौं ॥ ४ ॥
गुर्बी रहौं सुमरन हमारो हम भरैं ।
बाँको बार न होत असीस सदा करैं ॥ ५ ॥
अकथ कथा की पाती छाती ह्वै भई ।
नेकु लागि पिय आँचौ दूरि भए दई ॥ ६ ॥
बिसरि गए बिसवासी सावक सनेह की ।
मुरली-बेधनि बेधी गति मन देह की ॥ ७ ॥
घरनि दूरि पहचानि निकट की को कहै ।
सुधि भूली सब भाँति परेखनि क्यों दहै ॥ ८ ॥
बृंदाबन घन कुंजै देखति हैं जबै ।
पात फूल फल डार बिराजत ही सबै ॥ ९ ॥
छिन छूँ भौ दुख दैन दूर तें दूरि सैं ।
हाय न लागत हाय रहै ही पूरि सैं ॥ १० ॥

१—तिहारी—तेरी (आदि०) । हाय कहूँ—कहूँ जौ तुम्हैं । २—छुँ—छै (वही) । ४—परेखनि—परेखन (वही) । हौ—है । ७—गए—गई (वही) । सनेह—सनेह (वृंदा०) । ८—क्यों जो (आदि०) १०—हौ—है (वही) ।

[२] किलक=पुकार । [३] छनै=छिद जाती है [७] सरक=मद्यपान ।

दिवस बिसूरि बिसूरि रात गिन बीतई।
सब बिधि हारी हाय बिरह बल जीतई ॥ ११ ॥
चेटक चिनहि लगाय निचोते हौ भले।
जुबती-जन-मद-भंजन घातन ह्वै पले ॥ १२ ॥
परमसुर दर करौ निवारि अनीति कौं।
प्रेमी परम सुजान एक रस रीति कौं ॥ १३ ॥
जानि बूझि अनकनी दयाल न दीजियै।
दुखिया जन को जतन कछू तौ कीजियै ॥ १४ ॥
या बिधि ब्रज बसि रहैं बिलासी भौंवरे।
तुमहीं दैउ बनाय सबै बिधि भौंवरे ॥ १५ ॥
कँवल नैन बंक चितवनि मालति ह्वै दई।
बेध्यौ हियौ हुमार सुमार कपटमई ॥ १६ ॥
अब पिय कपट न करियै हरियै कदन कौं।
पाय हारि किन मूढ़ चढ़ावत मदन कौं ॥ १७ ॥
सुंदर रसिक सजीवन तुम हौ तौ जियैं।
तुम बिन कहूँ न रहैं कहैं सो है कियैं ॥ १८ ॥
आँखिनि कहा दिखावौं मन पैठे रहौ।
निकसि गए तजि नेह प्रान पैठे रहौ ॥ १९ ॥
भरी बरोहर पिय की प्रान सुदाम हैं।
जब चाहौ तब लेहु जु गाहत जाम हैं ॥ २० ॥
सदा सुखद सुख देत रहौ दुख पावत नाहीं।
कीरति जौन्ह सु जगमगै जसुधा-सुत पाहीं ॥ २१ ॥

१३–दर-ओर (पाठांतर)। प्रेमी०–प्रेम परम पारीत । १४–अनकनी०–अनकनी नहीं (जन–जिन : नहीं)। १६–हुमार-हमार–(…)। १७–कदन-… (…)।

[१२] चिन्हन=चिह्नित । [१५] भौंवरे=चक्कर काटनेवाले भौंरे । [१६] हुमार=धारदार … । सुमार=प्रवेश । [१७] कदन=कष्ट, पीड़ा । पाय=पैरों पर गिराकर । [२०] जाम=जन्म ।

मंगल मूरति सबन कौं सुख लै बिसतारौ।
हम निपट रावरी हैं आसरौ तिहारौ ॥ २२ ॥
तुमरी कुसर कुसर सदा ब्रज मैं जिन है हौ।
और भाँति कहि को सकै औसर सौं लै हौ ॥ २३ ॥
नित सुहाग-पागी रहैं ब्रजनाथ गुसाँई।
आनँदघन बरसत रहौ निसिबासर ढाँई ॥ २४ ॥
तुम चाहौ सु करौ जु सहौ कछुव न कहैं।
आनँदघन रसरासि चातकौ ह्वै रहैं ॥ २५ ॥
गो पानी कौं दौरि पथिक प्यासे जहैं।
आसा निगड़ समेत चलत उमह्यौ रहैं ॥ २६ ॥

कबित्त

वही जमुना है वही बन वेई कुंज-पुंज,
वही रितु वही चंद और मग चाहियै।
वेई हम वही मन वेई अभिलाष लाख,
वहै धुनि मुरली की आजौं रमि रहियै।
कान्ह किसोर चितचोर ओर के बिसासी,
अब ही दुरे हैं कहूँ हूँढ़िबो उमाहियै।
बिरहा बिषम घनआनँद यौं छाय रह्यौ,
तोरी परि दहियै हा गति कासौं कहियै ॥ २७ ॥

सवैया

मुख देखि जियौं अनदेखें मरौं सुख चाहि मरौं तो जियौं सु करौ।
ब्रजजीवन आनँद के घन हौ इन दीन पपीहनि पीर हरौ।
भर पै भर लाय नयाइयै आय सुलाय लै पाय परौं कि ढरौ।
अब औसर है सुलनैन सुनौ इक बार जिवाय कै जीवो करौ ॥ २८ ॥

२६–दौरि–दैन (…)। उमह्यौ–उनयौ (…)। २८–भर–भरि (याज्ञिक)।

[२३] कुसर=कुशल । [२६] निगड़=बेड़ी । [२७] ओर के=चरम सीमा के, अत्यंत । बिसासी=विश्वासघाती । [२८] भर=झड़ी, वृष्टि । आय=… । लाग=…

सीतल सुंदर मोहन मंदिर कुंजर केलि-कलानि बिसेषै ।
गोबिंद गोधन धारन कौं घनआनँद छावत भावन देखै ।
फूलन कै फल कै दल कै ललकैं जल कै भरि भाव असेषैं ।
लै मन हाथ रहै हरि कौं हरि हाथ रहौ गिरिनाथ सु लेखैं ॥ २९ ॥

कवित्त

वृंदावन सोभा नई नई रसमई गोभा,
कहत बनैं न स्याम-नैन पहचानहीं ।
राधिका दरस कौं सुदेस आदरस याहि,
चाहौई करत जब जब जैसैं जानहीं ।
ऐसे रंग मूरति बसे हैं एक संग दोऊ,
रूप की मरीचैं घनआनँद बितानहीं ।
जमुना कैं तीर देख्यौ प्रगट दुरयौ है अति,
निगम अगम ताहि लेखैं है बखानहीं ॥ ३० ॥
स्याम बामैं रमे यह धर्म स्यामनंदिय सदा,
तामैं फिरि राधा बसैं कथौं इव सो निहारियै ।
यही वृंदावन देख्यो प्रकट दुरयौ है एक,
मोहन की दीठि ईठि भएँ ही चिन्हारियै ।
नैन बैन मनसा समोय गाय्यौ बड़भागि,
तिनहीं की कृपा कौं सु अजन बिचारियै ।
महा अनुराग-धाम मोहि ऐसैं दीसि परयौ,
दरसत न काहू बिन दीठैं लाल-प्यारियै ॥ ३१ ॥

२९—कंदर-कंदन । बिसेषै—असेषैं (वही) । ३०—जैसैं—ऐसैं (संदन) । दुरयौ—दुरयो (वृंदा०) । ३१—दुरयौ—दुरयौ (वृंदा०) । नैन०—राग पावरे कौ मोहि (वृंदा०), नैन मनसा समाय (वाजिक) ।

[३०] गोभा=अंकुर । सुदेस=सुंदर आदरस=आदर्श, दर्पण । मरीचैं=किरणें । बितान=चँदोवा । [३१] समोय०=लीन कर रखा है । लाल०=श्रीकृष्ण और श्रीराधा ।

याहि दीसैं स्याम दीसैं दीसैं स्याम दीसै यह,
ऐसो वृंदावन कहौ कैसैं करि दरसई ।
दामन दुरयौ सो स्यामसुंदर-सुभाव लियैं,
दुरयौ मति हरै हरि हरि जिसै बोलई ।
परै तैं परे है भयौ हाथ यह वृंदावन,
राचैं, रज आँखें ईस हू वै चकसोसई ।
याहि दौरैं जात पाय लियौ है मनोनि सुधी,
मधुर त्रिभंगी जौं लौं कृपा न परसई ॥ ३२ ॥

वृंदावन-माधुरी अगाध सौं भरी है देखौ,
स्याम की अनूप रूप त्यौं हीं याहि देखियै ।
अंग-रंग-संग एकमेक ह्वै रह्यौ सदाई,
तातैं भेदवती राधा मानो अवरेखियै ।
सुबन बस्यौ है सुखसन्यौ है कलिंदीकूल,
आनँद को घन रसभूरति बिसेखियै ।
रैबत दुरयौ सो अवनी पै आलि ऊँचो आहि,
मरम कृपा ही तैं परम-गुन पेखियै ॥ ३३ ॥
वृंदावन पाइबे की गैल कौं गहै न जौ लौं,
पाइहू नग तें रस-पारस क्यों पाइयै ।
राधा-पिय-केलि की कलानि कौं संगी नाँकैं,
सुभर भरयौ है तौ लौं दृग न समाइयै ।
रहनि कहनि एक टेक टकटकी ही सौं,
भानुजा-चरन-रज आँखिन अँजाइयै ।

३२—परैं तैं—परे तैं । ३३—देखौ—देखौ (वाजिक) । एकमेक०—एक एक है (वही), एकमेक होकर्हां है सदा (वृंदा०) । मोन्हें (वाजिक) । तैं—पै (वृंदा०) । ३४—पारस—आ रस (वाजिक) । है—सो जौं (वही) ।

[३२] दरसौ=दरसाभरा । बिसे०=पुलकित । राचैं=अनुरक्त होते हैं । चकसोस=प्रसाद, भेंट । परसई=स्पर्श करते । [३४] भानुजा=वृषभानुजा, राधा ।

निगम बिसूरि जाकौं पदई परम दूरि,
आनंद के अंबुद कौं थकि थकि धाइयै ॥ ३४ ॥

राधा-हरि-आरति सरोरि सोहै मारति है,
वा बिधि जिवाय जिय दसा करै औरई ।
बन उपबन भज बाखर खरिक खोरि,
गिरि गहबर जमुनानि प्रेम - पौरई ।
कहा जानौं कैसौ है कहा है दुहुनि की लाग,
रंचक बिचारैं आलि आवति है बौरई ।
रसन रँगीली भूमि आनंद को घन झूमि,
भोरे भोरे दरसन ढौर ढौरई ॥ ३५ ॥

सवैया

ब्रजमोहन राधिका की रहलानि सदा अनुराग सुहाग भरयौ ।
कहुँ आवत न्यौ निरखैं बन गिरि गोभन मैं जु कछू लै धरयौ ।
भरि भौंहनि नैन हियैं दिन रैन सहेटनि भेटनि ढार ढरयौ ।
सु कलिंदी के कूल अनंदनि भूल सनेह को देस हुँ दीलि परयौ ॥ ३६ ॥

कवित्त

जोई है बिचारौं गति नहीं नहीं होंस छैल,
आइहै अकेल पै हराए लौं न छ्वै परै ।
तौ को गति कहा कहीं कहाँ जाकौं कैसें रहौं,
नैन मूँदे नहीं चित भावनानि भ्वै परै ।
आनंद को घन छायो पैठक उमड़ लियैं,
चहूँ ओर बुरि घेरि चोपनि सौं च्वै परै ।
गोकुल को समवास मान ननदी को त्रास,
हूलते को चोट सौं कनौड़ें भेंट ह्वै परै ॥ ३७ ॥

३७—भौ—च्वै (मंदिर)।

[३५] आरति=लालसा। बाखर=घर। खरिक=पशुशाला। खोरि=गली। रमडि़०=बिलासपूर्वक, क्रीड़ा करते हुए। [३७] हराए लौं—माया रूप की भाँति। तौ=तब। भ्वै=गोल हो जाता है। सूलते०=पीड़ावाले स्थान पर ही चोट लगने की भाँति।

सवैया

सोंधें सनी अलकैं भगरौं सुभ्र जोबन जोन्ह सौं चंदहि चोरति ।
अंगनि रंग-तरंग भई सु किधौं रूपमानि के आनिप ढोरति ।
मोहन सौं रस-फाग मची सु भली भई हौं कब तें ही निहोरति ।
आनंद के घन रीझनि भींजि भिजै पठई कहा चाँव निचोरति ॥ ३८ ॥

कवित्त

एक होलें बेचति गुपालहिं दहेंड़ी धरैं,
नैननि समान्यौं सोई बैननि जनात है ।
और उठि बोलैं आगें ल्याइ री कहा है मोल,
कैसो धौं जम्यौ है ज्यौं चखाएँ ललचात है ।
आनँद को घन छायौ रहत सदाई ब्रज,
चोपनि पपीहा लौं चहूँघा मँडरात है ।
गोकुल-बधूनि की बिकानि पै बिकाय रहे,
गोरस ह्वै गली गली मोहन बिकात है ॥ ३९ ॥

सवैया

बसि नैन हियैं दुरि दूरि लसौ सुख-दैन सदाई सहायक हौ ।
कितहूँ दरसौ कितहूँ सरसौ गति को समझै घन-पायक हौ ।
जित भूमि भरौ तित भाग भरौ घनआनँद जू रसनायक हौ ।
ब्रजमोहन छैल छबीले गुनी कहियै सु कहा सब लायक हौ ॥ ४० ॥

कवित्त

मोहन के बदन मिठास-भरी बानि बिंदु,
माठियै लगति जब मिलै मन ठाढ़ि लै ।
भोरी ब्रजगोरिनि की लाज-पाज तोरि तोरि,
गैल करि देति खेद-बाधा-खाईं फाटि लै ।

३९—धरैं—लियैं (संग्रह)। समान्यौ—समानौ। जात—लात। ४०—दरसौ०—दरसौ गति को समझै नन की तुम तो। ग०—गौ।

[३८] सोंधें=सुगंध से; आनिप=शोभा। ढोरति=बहा देती है। [३९] दहेंड़ी=दही की मटकी। [४०] घन०=घन को पी जानेवाले। [४१] काढ़ि०=काढ़कर

ऐसी बिसवासिनि बजाय बैर काढ़ति है,
काढ़ति परान तें उपायनि उचाटि लै ।
बाँसुरी की बाजनि बिराजै मन व्यापक ह्वै,
दूसरे गति जमुना की राखी राग पाटि लै ॥ ४१ ॥

कीनें हरि देव माँ बतायो हरिदेव हा हा,
नाँवै हरिदेव पै हियौ हू हरि लेत हौ ।
गिरिधर-कंदरानि मंदिर मैं बसो लसौ,
साँवरे सलोने साधु सें दिखाई देत हौ ।
आनँद के घन भूमि रहत सदाई इतै,
घेरौ अनजानि दान माँगि अरि देत हौ ।
गायनि चरावत हौ चायनि चतुर छैल,
भरे भेद-भायनि सौं दायनि समेत हौ ॥ ४२ ॥

नाम कौ न नेम चाख्यौ प्रेम सौं सुजान कहा,
भाग्यो नहीं धाम लीला-माधुरी विभूति कौं ।
जनम जनम तें अपावन अगाध महा,
अधम गति सौं न छाँड़ै अजौं छुति कौं ।
भूलि सार-सोहै रह्यौ भ्रम-धूम-धूंधरि सौं,
केवल कलंकी-रूपी जननी-प्रसूति कौं ।
करुनानिधान कान्ह आपने गुनै सम्हारौ,
मेरी गति कौन औ बिचारौ करतूति कौं ॥ ४३ ॥

जप-रस-धारा मन मज्जन करै न जौ लौं,
तिय-रसहीन-ज्वाला धानहि पजारै कहा ।
अपरस ठौर तहाँ सपरस जाइ कैसैं,
कामना न थोरै ना लौं तन के पखारैं कहा ।

पान लेती है । पाउ=पाँव : खाईं=खाई को भरकर । बजाय=डंके की चोट । राग०=राग से भरकर यमुना की गति स्तब्ध कर दी है । [४२] हरि०=हरण करके दे देते हो । नाँवै०=नाम से तो हरकर 'देने' वाले पर काम से हृदय भी हर 'लेने' वाले हो । दान=कर । भाय=भाव ; दाय=दाँव, घात । [४३] अपरस=नीरस ।

बृंदावन-माधुरी अगाध है अगम अति,
यातें सुनि साँवरे सर हठ-पन पारै कहा ।
आनँद को घन भूमि केवल कृपा-समीर,
सहज चमक दैखौ ढकै औ उघारै कहा ॥ ४४ ॥

कछू न करत याम सब कछू करत हौ,
मोसे अनकछू भौ कछू न हौ करत क्यौं ।
अंतर की जानौ जानि बूझि राखौ अंतर कौं,
आँसनि गसीले महा ढीले न ढरत क्यौं ।
जगत के जीवन छबीले घनआनँद जू,
छाए सब ठौर हा हा छिपे न परत क्यौं ।
साँचे कपटी हौ सूधी बानि हू टेढ़ परी,
परे तें परे हौ पै न टारे हू टरत क्यौं ॥ ४५ ॥

मतिमान ह्वै कै मति मानियौ कहाँ सें सीखे,
रति मानि आप अति मान मोहि दियौ है ।
घूमरे दृगनि कछू पिय के फिरत कहा,
पटहि पलटि आप महा पोढ़ौ कियौ है ।
हूते मान सौं हैं ग्वाय ग्वाय न अघाए कहूँ,
सुघर कहाए सठता को हठ लियौ है ।
भोरई भले हौ जू भले को मुख देखि चले,
कितहूँ तें मोहू कौं दरस आय दियौ है ॥ ४६ ॥

पूति=दुर्गंध । छुति=अस्पृश्यता । मेरी०=कर्मबंधन को । [४४] अपरस=अस्पृश्य, अप्राप्य । सपरस=सस्पृश्य; छूत से युक्त । चमक=सजावट । [४५] अंतर=अंतःकरण । अंतर=भेद । गोसि=आँठ; भेद की बात । गसीले=घुन्ने । ढीले=शिथिल । न ढरत=द्रवीभूत क्यों नहीं होते । छिपे०=छिपे नहीं रहते, पकड़ में नहीं आते । परे०=परात्पर होकर भी सदा निकट रहते हो, टलते नहीं । [४६] खंडिता का कथन है । मतिमान=बुद्धिमान् ; मति०=न मानना । रति०=प्रेम करके । पट०=वस्त्र को पलटकर, दूसरे के वस्त्र पहनकर । सुघर=चतुर ।

भूषन कौं भूषन हौ कहा लै सिंगारै कोऊ,
अति ही अनूप रूप कैसैं धौं कह्यौ परै ।
आनँद के अंकुर रसीले ब्रजमोहन जू,
पपीहा बिचारे पै न चाह हू गह्यौ परै ।
दीसौ अनदेसौ नैन लागेई रहत सदा,
लहाछेह रावरो छबीलो न लह्यौ परै ।
खुलि मिलिबे मैं दूरि दुरि दुख देत देखा,
सीतलता तुम्हैं मेरो हियो क्यौं दह्यौ परै ॥ ४७ ॥

स्याम-रंग-रँगी दीठि लोयन भगौहैं सदा,
अंगनि अनंग-ज्वाला फूटी पजरति है ।
नखसिख भसम-चढ़े लै गात देखियत,
आँसुनि को धारा हू न धोइयौ परति है ।
बिकल अचेत तारी तुम ही त्यौं लागी रहै,
रातिद्यौस ताकौं मांई आँखैं ज्यौं भरति है ।
चातकी भई है घनआनँद तिहारे जान,
जोगिनि तैं अधिक बियोगिनि बरति है ॥ ४८ ॥

सवैया

दिन फाग के भागनि आनि मिले लगि लैन हैं दाननि दायनि सौं ।
मची राधिका मोहन त्यौं दिन द्वार रची रुचि चाँचरि चायनि सौं ।
लखि दीठि रँगी नव जोट जगी गुन जोबन रूप सुभायनि सौं ।
.... ॥४९॥

रसिना बलभद्र सुनाम लिये जब ठौर रसै बिधि होति भली ।
ब्रजमोहन मोद को मूरति राम जनैं धनि रोहिनि पुन्य फली ।

[४७] भूषन०=गहनों को भी शोभित करनेवाले। लहाछेह=शीघ्रता, फुरती। [४८] भगौहैं=गैरिक, गेरू के रंग का। भसम=भस्म, राख; अथवा भभि। तारी=ध्यान। राति०=वे ही रातदिन इस प्रकार उसका समय व्यतीत करना जानते हैं; मिलाप-जानैं वेई दिनराति बखानें में आय परे दिन राति को अंतर। [४९] दावँ=अवसर। दाय=दाव। [५०] जनैं=जिससे या जहाँ। धनि=

घनआनँद छाय सदा ब्रज पै रससौं सरसौं करि रंगरली ।
मन रे सुख-संपति चाहत जौं तिन ही भजि लै मुसली कुमली ॥ ५० ॥

कवित्त

गुननि अगाधी राधा-मोहन हू गाइयौ सदा,
सुलभ सुहायौ बृंदाबन गाढ़ैं गहि रे ।
अद्भुत अभूत महा-मंडल परे तें परे,
जीवन को लाहो हाहा क्यौं न ताहि लहि रे ।
आनँद को घन छायौ रहत निरंतर ही,
सरस सुदेस सौं पपीहापन बहि रे ।
जमुना के तीर केलि-कोलाहल-भीर ऐसी,
पावन पुलिन पै पतित परि रहि रे ॥ ५१ ॥

सवैया

अब सो कहियै ब्रजमोहन जू सु करौं बिनती कर जोरि गहौ ।
अब ठौर तें ठौर थकै मन को कि तिहारियै पौरि पै नेहु दहौ ।
घनआनँद दीन पपीहन कैं तुम ही धन जीवन-मूल सही ।
जिय की गति जानत हौ सुखदैन कहौ जू कहा कहिबे को रही ॥ ५२ ॥

बंसी मैं मोहन-मंत्र बजाय कै मोहि लई चतुरी अबला सब ।
जो कछु राग रच्यौ अनुराग सौं को बरनै अरु सुन्यौ जिनहूँ जब ।
ब्यापि रह्यौ चर थावर लै घनआनँद घोर घमंडन की फब ।
कानन मूँदेऊ तैंसियै बाजति क्यौं भरियै करियै सु कहा अब ॥ ५३ ॥

छप्पय

ब्रजबासिन की सहज रीति जैं पापनि मन कौं ।
गहैं स्याम बिसवास नाहिं पालैं हित-पन कौं ।

५२—अब ठौर (संग्रह)। तैंसियै—तैसियौ (नंदन)।

धन्या, स्त्री। रोहिनि=बलरामजी की पत्नी रोहिणी। मुसली=मुसल धारण करनेवाले बलराम। [५१] गाढ़ैं=अच्छी भाँति ग्रहण कर; बहि=वहन कर। पुलिन=तट। [५२] पौरि=द्वार। नेहु०=पड़ा रहूँ। [५३] थावर=स्थावर।

निसलीला - रागमगी - नैन - आननि - संग डोलैं ।
जमुन-नीर तट - बेलि केलि-रस केलि कलोलैं ।
अहोभाग कहिये कहा आनंदघन अभिलाष - भर ।
क्यों न लगै आसा - लतैं, फूल - सहित ऐसो सुफर ॥५४॥

कवित्त

आनँद को अंबुद पपिहापन पैंज धरैं,
झूम्यौ देखियत ब्रज बंसी-धुनि-घोरना ।
चोप चपलानि की चमक चारु चहूँ कोद,
लाख लाख अभिलाष उमस को ओर ना ।
रस-भर लाग्यौ हित-हरियारो नित नई,
तोकौ प्रीति-पावस को समै चित-चोरना ।
हिलनि मिलनि फूल आस-लौनी भूलनि सौं,
झूलत गुपाल - गोपी हिलग - हिंडोरना ॥५५॥

सवैया

मित्र के चित्रहि पावन ह्वै उर काम-चरित्र को भौंर मच्यो है ।
सोक चढ़ावति आँखिनि लावति चुंबन की अति चोप रच्यो है ।
हाय कहौं न परै हित की गति कौन सवाद अचौंनि अच्यो है ।
लालो सौं छावत ह्वै घनआनंद भीजि गई दुति-पाँति रच्यो है ॥५६॥

कवित्त

ऊर्यौ विधि-प्रेरित भई है भाग-कीरति,
लह्यो रति जसोदा-सुत-पायनि परस की ।
गुलम लता ह्वै सीस धरयौ चाहै धूरि जाकी,
कहिये कहा निकाई महिमा सरस की ।
झूम्यौई रहत सदा आनंद को घन जहाँ,
चातकी भई है मति माधुरी-बरस की ।

५४—अहोभाग ...। ...। क्यों न०—क्यों ... फूल । सुफर—सुफल;
फल=हरा । [५४] जैं=जैसे । [५५] ...=पतिहा । कोद=ओर । ओर=सीमा,
अंत । [५६] अचौनि=आचमन, पीना । [५७] प्रेरित=प्रेषित । आरति=

आँखिनि लगी है प्रीति पूरन पगी है अति,
आरति जगी है ब्रजभूमि के दरस की ॥५७॥
गोपिनि के आँसुनि सौं सींची अति लोनी लगै,
देखि पाइ भाग जागै जीवन की मूरि मैं ।
मोहन रसीले को सुरूप दरसावै मन-
रंजन सुअंजन के राखौं चख पूरि मैं ।
याही मिलि रहौं कहा कहौं जैसो जिय आवैं,
हेत-हेतन रहौं ह्वै निपट धूरि चूरि मैं ।
सीसहि चढ़ाऊँ घनआनँद कृपा लै पाऊँ
प्रेमसार परस्यौ है समाय ब्रज-धूरि मैं ॥५८॥

सवैया

आवै कहूँ मनमोहन मो गली पुन्य भागन कौं अत ऊजै ।
आय कछू न बसाय तऊ दुरि देखिबी दूभर छाँह क्यों छूजै ।
माँगनि हौं सिखवनी पै वहै खन जो कबहूँ जिय आसहि पूजै ।
चौथ को चंद लख्यो ब्रजचंद सौं लागी कलंक लौं ऊजरे दूजै ॥५९॥
रीति की चेटक ही सौं भरी धुनि मैं करै भोरज-डोरन बाँसुरी ।
घेरि लै आनि बसावै बनै ब्रजनारिन के पगै मोहन बाँसुरी ।
रीझ भिजै घनआनँद कौं मुँह लागि रहै हिय छोरन बाँसुरी ।
हाथ लिये रहै रैन-दिनौ मनमोहन की मन - मोहन बाँसुरी ॥६०॥

कवित्त

ऐसो कृपा कीजिये कृपानिधि निवारि भ्रम,
भाँवरी करौं सदाई ब्रज - बन - भाँवरी ।
ठौर ठौर सोभा लखि जमुना के तीर थकि,
चाकि जकि चाहि रहौं वहै छबि साँवरी ।

६०—ठौं०—थ: (...) ।

लालसा । [५८] लोनी=लावण्यमय । समोय=मिलाकर । [५९] ऊजै=आंदोलित होता है । खन=क्षण । ऊजरे=उज्ज्वल; दर्पित । [६०] चेटक=जादू ।

आनँद के घन हौ चपोहा प्रान पोखियै जू,
हित-छाँह छाय मेटौ सोच-घाम-ताँवरी ।
छोरि सब ओर तैं सुदेस लै बसैयै हाहा,
मोहन रसीले यौं गसैयै मोह-दाँवरी ॥ ६१ ॥

ब्रज बृंदावन गिरि गोधन जमुन-नीर,
सुबस सुदेस पुर बन सुख-साधा को ।
जाकी भूमि भागहि सिहात हैं गिरीस ईस,
धूरि रसमूरि हरै दुख सब बाधा को ।
एकरस बिहरत दोऊ महारस भीजे,
आनँद-पयोद प्रीति परम अराधा को ।
स्याम के सरूप को कछुक निरधार होत,
नौ कछु कह्यौ परै अगाध प्रेम राधा को ॥ ६२ ॥

राधा-रूप-साधा साधिबे कौ महाचिंतामनि,
गोरी गाय चायनि चरै साँवरो कन्हाई ।
ग्वैंड़े आय देखत हैं, नेह सौं निबेरत हैं,
जाँति भरि धावत हैं भाव भरि गाइई ।
धौरी हार हौरी लै बुलाय बोलि सौंपि देत,
काजर कुरंगनैनी चोपनि चितवई ।
दोहन करत ब्रजमोहन मनोरथनि,
आनंद कौ घन रंग-झलनि झमाई ॥ ६३ ॥

प्रेम परबस हौ रसीले ब्रजमोहन जू,
झूठी बतियानि लै कै साँच सौं कहत हौ ।

६१—रहौं—रहे (लंदन)। छाय—हरै (वही)। ६२—जमुन—जमुना (लंदन)। जाकी—जागी (वही)। ६३—धाय—आय (लंदन)।

[६१] दाँवरी=रस्सी। गसैयै=अपने प्रेमबंधन में ऐसा बाँधिए। [६२] गोधन=गोवर्धन। पयोद=घन। [६३] ग्वैंड़े=गाँव का परिसर। निबेरत=पृथक करता है। धौरी=धवल, सफेद। चितवई=लगाती है। झला=वृष्टि। झमाई=झाँविरा

तुम्हैं रूप कौन की लजौंहैं नैन सौं हैं खान,
रूसें रूम रासि राखि चाहहिं चढ़त हौ ।
आनँद कौ घन झूमि झूमि रसधार नाखौ,
प्रानन कैं प्यासे क्यौं परेखनि दहत हौ ।
आप हीं सुधारि मेरौ आरसी लै मुख देखौं,
निखरि सलोने स्याम चित पै चढ़त हौ ॥ ६४ ॥

भाव भरे चाव भरे सरस बनाव भरे,
हिये न कढ़त कसे कसक-कसौटी के ।
सुंदर सलोने ब्रजमोहन परस पगे,
परम मरम अपरस तापतौटी के ।
रसना कौ भाग साँचे सौगनि सुभूखन हैं,
जगमगि रहे महा मोहन हथौटी के ।
भींजे घनआनँद अनूप रूप-झलनि सौं,
रसिक पपीहा साखी आखर अछरौटी के ॥ ६५ ॥

सहज सुगंध भाँति भाँति भाव-फूल खिले,
रूप रस-रीति जामैं केसरि को झालना ।
बिसद सुबास नाना बिधि सौं सवाँरि रच्यौ,
चाँकत सुजानि भरयौ गूढ़ गाँस खोलना ।
राधा-मनमोहन-बिलास कौ सुखासन है,
दोऊ एक बानक सलोने सिंहबालना ।
तन कहूँ क्यौं न चलौं देखि के तिनके मेरा,
सब ब्रज-मंडल कौ छबीले-खटोलना ॥ ६६ ॥

६६—सहज—बिबिध, खिले (संग्रह)। रूप—रस (वही)। केसरि—कसरि (लंदन)। सुबास०—सुबासना पवन सौं सुधारि रच्यौ (संग्रह)। सँवारि—सँभारि (लंदन)। मनमोहन—ब्रजमोहन (संग्रह)। तन०—तनकौ न कहूँ (वही)।

कर देता है; जल से भर देता है। [६४] कसक०=वेदना की कसौटी। अपरस=जिसका स्पर्श न किया जा सके। तापतौटी=जलन की व्याकुलता। हथौटी=हाथ की शैली। झला=वृष्टि। साखी=साक्षी। अछरौटी=वर्णमाला लिखने का प्रकार,

सवैया

चाहिक चौंप रचे चित्रकाम कै दौरत नेह-निबाहन-रूखे ।
भूखि भ्रमावहि दै घनआनँद गाजत ह्वाय बिमासनि सूखे ।
छैल छबीले भये छल-छंद छुटी हम ही अनरोखेहु दूखे ।
रावरे पेट की बूझि परै नहिं रीझि पचाय कै डोलत भूखे ॥ ६७ ॥

सोरठा

जासौं अनबन मोहि, तासौं बनक बनी तुम्हैं ।
हियरा परेखनि पोहि, कहा सुजनबन गुन-भरे ॥ ६८ ॥

कवित्त

अंग सुखमूल, रंग कांचन गुलाब फूल
कोमल दुकूल तूल - पूरित अजायबी ।
छूटी छबि-रसमैं चटक चोखे रसमैं,
बिलोकि मन बस मैं न रोकै रहै दायबी ।
केसरी लपेटा छैल बिधि सों लपेटे,
मुख बीरा कंठ हीरा-जोति उपमा लजायबी ।
पीन कै सिंगार घनआनँद उदार देखौं,
रीझनि पसीजे नन कछू न सहायबो ॥ ६९ ॥

चलि रे सुबल आजु जाही कै सजन कालिंद,
जा रहे मैं लखाई घनआनँद स आवरे ।
छहरैं गात मँडरात भौंर भौंरनि है,
छूटे हार मोतिन ज्यौं ह्वै-कारी भरी नरे ।

वर्ण-विन्यास । [६६] विसद=निर्मल । [६७] भ्रमाय=भूलि के जग में भर देना । अन०=रूप में निर्दोष होकर भी मन में सदोष हो । रीझ०=मेरी रीझ को पचा-कर भूखे घूमते हो । मेरी रीझ की तो चिंता नहीं करते पर दूसरों से मिलने-जुलने की ताक में लगे रहते हो । [६८] अनबन=बिगाड़; मनमुटाव । बनक=मैत्री । परे-खनि०=पछतावों से गूंधकर ; गुन=गुण, डोर । [६९] तूल=रूई । अजायबी=अद्भुत ; रसमैं=रसमयी । चटक=चपलता । चोखे०=जौहरता की उत्पत्ति से युक्त । दायबी=दाँव, अवसर की खोज में रहनेवाला । केसरी=पाग । लपेटा=पगड़ी ।

आँचर उलटि सीस हारें कै न जानें क्यौं,
निहारत ही हियें त्यौं जु बात मन में धरै ।
औचकाँ ह्वा चित इत डीठि कै परत, पीठि
दै न देखि नैन हँठि नीठि न कह्यौ करै ॥ ७० ॥

रही मिलि भीति पै सभाँति लोक-लाज-भीजी,
रीझै कहूँ स्यामैं देखि दसा ताकी को कहै ।
फंद की मृगी लौं छंद छूटिबे को नेकौं नाहिं,
चारयौं ओर कोरि कोरि भाँतिन सौं रोक है ।
मोहन को बेनु सुनै धुनै सीस, मन ही मैं
गुनै, भौरी सोच गुनै गहि डूबी सोक है ।
निगरे न बास गुरुजन आसपास घनआनँद,
कठिन कहा अहा नेह - लोक है ॥ ७१ ॥

पीरे पीरे फूलन की माला रचि हियें धारि,
बारि बारि नाहो कों सफल करै काय कौं ।
ऐसे धीर-काचे, पूरे प्रेम-रंग-राचे बीर,
पीरे फल चाखैं अभिलाषैं नीके दाय कौं ।
डोलैं बन बन बावरे ह्वै सांवरे सुजान,
धाय धाय भेटैं मानौं ह्वै लिखि साथ कौं ।

७०—ओनरे-ओनरे (ओट) । छहरैं—छहरे । भौंर—मोर । कैं न—कौन । निहारत०—निहारते ही हृदय में । औचकाँ—औचक (सह) ।

उदार—उत्तम । सहायबी=सहायक [७०] सुबल=श्रीकृष्ण के एक सखा । बगर=घर । ओंचरे=कोनों में । छहरैं०=छहरे शरीरवाली : कैं० = कोई जानता नहीं किस लिए । औचकाँ० = अचानक कहीं से किसी की दृष्टि पड़ती है तो वह पीठ फेर लेती है और उसके पीछे फिरने की शोभन चेष्टा से नेत्र हटने की बात बहुत कहने पर भी नहीं मानते । [७१] भीति=दीवार । रही०=भीत पर चित्रलिखी सी लगती है । छंद=उपाय । धुनै=धुनती है । भौरी०=सोच के फेर में पड़ी । गुनै०=गुण (गुण, डोर) की पकड़कर भी शोक में डूब रही है ।

उमगि उमगि घनआनँद मुरलिका मैं,
गौरी गाय दौरी सों बुलावैं गौरी गाय कौं ॥ ७२ ॥

सवैया

प्रेम - पराग - मकरंद - भरे बहुरंग प्रसूनन की रुचि-राजी ।
देखत आज बनैं बनराजहिं रूप अनूपम ओप बिराजी ।
राग-रचौ अनुराग - पगी सुनि हूँ घनआनँद बाँसुरी बाजी ।
मैन - महीप बसंत - समीप मतो करि कानन मैन है साजी ॥ ७३ ॥

कवित्त

नीकी नई केसरि की गारी हू गरव गारै,
झाँकी रागि गारि सी बिहारै रूप गोरी को ।
चाक चुहचुही भर्जी पहिन लजाई लखैं,
पधरि चलत न्यै थबन चूको दोरी को ।
हँसि बोलै कोटिक कपूर सोंधे वारि डारि,
डारि डारि दोऊ हो कलंक कहूँ चोरी को ।
प्यारे घनआनँद के राग भाग कहा देखौं,
रंग-भीजे अंगनि अनूठो खेल होरी को ॥ ७४ ॥

सवैया

बैस नई अनुरागमई सु भई फिरै फागुन की मतवारी ।
साँवरे हाथ रची मिहँदी कफ नीकै बनाय हरै हियवारी ।
साँवरे भौंर के भाय भरी घनआनँद सौंनि मैं दामिनि न्यारी ।
कान ह्वै पीसति प्रानपियैं मुख-अंबुज त्वैं मकरंद सों गारी ॥ ७५ ॥

७४—गारी—गारै (लंदन) चूको चूको (वहीं) । होरी—गोरी (कवित्त) । रंग—रस (वहीं) ।

उपर्व०=परदा न खुल जाय । [७२] बाय=वायु (आकाश, शून्य) । गौरी=एक रागिनी । ढौरा=ढंग । गौरी=गौर वर्ण । [७३] रुचि०=सुंदर पंक्ति । बनराज=वृंदावन । [७४] राति०=अर्थात् केसर भरी जान पड़ती है । गारि=लज्जा । गारि=गाली । चुहचुही=आर्द्र । सोंधे=सुगंधित द्रव्य । वारि०—निछावर करके फेंक देना पड़ता है । [७५] सौनि=भुइँ में अबीर की लगाई ।

पिय के अनुराग सुहाग भरी रति हेरैं न पावति रूप-रफैं ।
रिझवारि महा रसरासि-खिलारि सु गावति गारि बजाय डफैं ।
अति ही सुकुवारि उरोजनि भार भरैं मधुरी डग लंक लफैं ।
लपटैं घनआनँद बायरे हैं दृग-पायलो छ्वै गुजरी-गुलफैं ॥ ७६ ॥
पातरे गात किये नवसात, निकाई सों नाक चढ़ाएँई बोलैं ।
राचे महावर पायनि त्यौं तकि चायनि आय गरवारैं ई डोलैं ।
स्यामहि चाहि चलैं तिरछैं, मन खोलौं खिलारि न घूँघट खोलैं ।
आली सों आनँद बानि लागि मयापति बातनि बामरि बोलैं ॥ ७७ ॥
हरि-नेह-छकी सकुचाई के तेह सु गेह मैं लाज सों काज करै ।
मिस ठानि चलै रसिया रहठानि त्यौं आनि भटू अँखियानि भरै ।
घनआनँद रूप - अनूप - भरी धरनी पर सूधे न पाय परै ।
पिय को हिय लाहि लखें अभिलाषनि लाखनि लालनि भाँति भरै ॥ ७८ ॥
चाल-निकाई लखें जिन्हें पचि पंगु मरालिनि-माल बिसूरति ।
पाय परैं न परैं मति पाय लखें तरसें अरसैं, न कछू रति ।
घूँघट-बीच मरोचन की छबि कोटिक चंदन को मद चूरति ।
लाजनि सों लपटी घनआनँद साजन के हिय मैं हित पूरति ॥ ७९ ॥

कवित्त

चुहँदि जगाई अधराति औटपाई आनि,
भरराई जानि सम्हराई मुँह चाँपि कै ।
संकट सनेह को बिचारैं प्रान जात घुटे,
बरै नाह, नाहर-डरनि डठी काँपि कै ।

७६—गुल०-नवलनि (कवित्त) । ७७—खोलौं—खेलैं (कवित्त) । ७८—अनूप—गहर (कवित्त) । ७९—चाल—भाल (लंदन) । मद—गद्द (वहीं) ।

[७६] रफैं=सुंदर ढंग । लंक०=कमर लचकती है । दृग०=नेत्ररूपी नूपुर । गुजरी=गोरी । गुलफ=टखना । [७७] नवसात=सोलहो शृंगार । मन० = मन खोलने पर भी । बामरि = बेहोशी । [७८] रहठानि=नासस्थान । [७९] चरसैं=मस्त होती है ।

दिन होरी-खेल को हराहर भरयौ हो सुनौ,
भाग जागौं सोयौ निधरक नैन ढाँपि कै।
सपने की संपति लौं दुखदैन जाग्यो घन-
आनंद कहा धौं सुख पायौ पंथ नाँपि कै ॥८०॥

सकनाई-बारुनी-छकनि-मतवारे भारे,
झुकि घुकि चाव भीजि ढरकि गिरत हैं।
सम्हरि उठत घनआनँद मनोज-ओज,
बिफरत बावरे न लाजनि घिरत हैं।
सुघराई सान सौं सुधारि मसि असि कांमि,
कर ही मैं लिये निसिवासर फिरत हैं।
तेरे नैन-सुभट चुहट-चोट लागें बीर,
गिरिधर-धीरता के किरचा करत हैं ॥८१॥

सिसुताई-निसि सिथराई बाल-स्यालनि मैं,
जोबन बिभाकर-उदोत-आभा ह्वै रली।
गमागम-बस भयौ रस को समागम है,
आगे तैं अधिक अब लागन लगी भली।
सकुच-बिकच-दसा देखैं मन आई मनौ,
चाहति कमल दीन कौन रूप की कली।
बड़भागी भागी चलि ऐहै घनआनँद सों,
आँखिनि सिरैहै मधु लैहै भावना अली ॥८२॥

८०—सु हारे—अहो (कवित्त)। नैन—नैन (लेखा)। ८२—देखैं—देखौं (कवित्त)। घन—आनँद (लेखन)।

[८०] चुहटि=चुटकी से स्पर्श करके, चिकोटी काटकर। धीरताई=नटखटपने से। बरे=दूर, पृथक्। नाहर=शेर। हराहर=धोखा-धपटी। चैन=सुअवसर [८१] बिफरत—उत्पात करते हैं। मसि=अंजन। चुहट=कसक। किरचा=टुकड़े। [८२] बिभाकर=सूर्य। गमागम=जाना (शैशव का) और आना (यौवन का)। बिकच=खिलने को।

सवैया

जान नए नए नेह के भार झिपे उर और घनी बरुनी के।
आनँदमैं मुसक्यानि उदोत मैं होत हैं बोलत मोल अमी के।
भोर की आवनि भान अँकोर किये तिन हाँ चलि आए जहीं के।
हारियै जु तिन तोरि कै लालन और दिखान तैं लागत नीके ॥८३॥
होते हरे हरे फूले जो बूझें, कितै गईं सो चिकनाई निहारी।
मोह-मढ़ी बतियाँ जु गढ़ी सु कहाँ छलियौ छिदि अंक बिहारी।
तूक पै मूक भए ही बनै, घनआनंद हूकनि होत दुखारी।
प्यारे कहा भयौ कान्ह कठोर ह्वै एक ही बारि बिन्हारि बिसारी ॥८४॥
भोर तें साँझ लौं कानन-ओर निहारति बावरी नेकु न हारति।
साँझ तें भोर लौं तारनि ताकिबो तारनि सौं इकतार न टारति।
जौं कहूँ भावतो दीठि परै घनआनँद आँसुनि औसर गारति।
मोहन-सोहन जोहन की लगियै रहै आँखिन के उर आरति ॥८५॥
नैन की सैन मैं कोटिक बैन लजौंहँ भजैं तजि कै सब पोचनि।
आनँदमैं मुसक्यानि लसैं निधिलाई परै चित चाह की आँचनि।
ना पिय के हिय कौं हँसि हेरि लई सु रई सी नई गति नाचनि।
नूपुर-बीन सौं लीन कै प्यारी प्रबीन अधीन किये गुर साँचनि ॥८६॥
पूरन चंद कै चूरन कौं नख धूरि हमैं सु कपूर किती पति।
जौं मगधा-मनि को मनु मोहिबे तोहि कहा परसै पग की गति।
स्याम के संग पगी सब अंग, लसैं रस-रंग तरंगनि की गति।
आनँद-अंजन आँखिन अंजन होत लसैं सबिता-दुहिता अति ॥८७॥

८३—चोलत—बोल अमोल (कवित्त)। ८६—कौं—कै (कवित्त)।

[८३] अमी=अमृत। अँकोर=भेंट। [८४] हारि...=हारे हुए भी जिससे हरे (प्रसन्न) हो जाते थे। [८५] न हारति—नहीं थकती। तारनि=आकाश के तारों को। तारनि सौं—पुतलियों से। इकतार=लगातार। भावतो=प्रिय। आँसुनि...=उस अवसर पर आँसू गिराती है [अथवा आँसुओं द्वारा अवसर को निचोड़ देती है, खो देती है]। सोहन=संमुख। जोहन=देखने को। आरति=लालसा। [८६] सब=अपने पैने बाणों को। प्रबीन=(वीणा बजाने में) निपुण।

घूँघट-ओट लखैं तिरछौं घनआनँद चोट सु घाय बनावैं ।
बाँह उसारि सुधारि बरा बर ओर छरा धरि छूकति आवैं ।
कौंधि अचानक चौंधि भरैं चख, चौंकनि चौंकनि छाँह न छ्वावैं ।
बाल अनूठियै ऊठि गुलाल की मूठि मैं लालहिं मूँदि चलावैं ॥ ८८ ॥

कवित्त

नई तरुनई भई, मुख आछी अरुनई,
सरद-सुधाधर उदोत-आभा रद की ।
अंग अति लोनों लसैं ललित तिलौनी सारी,
भाग-भरे भाल दिपै बेंदी मृगमद की ।
बोलैं हा हा होरी घनआनँद उमंग-बोरी,
छैल-मनि छकै छबि हेरैं रदछद की ।
गोरी भरि मूठी गोरी भुज उठी सोहै मनौं,
परागं भरैं रही भली कली कोकनद की ॥ ८९ ॥

सवैया

दाउँ तकैं, रस-रूप छकैं, निधकै मुति पै अति चोपनि धावैं ।
चौंकि चलै, ठठि छैल छलैं, सु छबीली छराय लौं छाँह न छ्वावैं ।
घूँघट-ओट चितै घनआनँद ओट चितै अँगुठाहिं दिखावैं ।
भावती यौं रस भ्वै रसिया हिय-औसनि सों सनि आँखि अँजावैं ॥ ९० ॥

पिय नेह अछेह भरी दुति देह दिपै तरुनाई के तेह तुली ।
अति ही गति धीर समीर लगैं, मृदु हेमलता जिमि जाति डुली

८६—सौं—मैं (लंदन) । ९०—ठठि—लखि (लंदन) ।

[८७] दति=वनिता । मघवा०=इंद्रनील, नीलम । पय=पानी । मति=समता । सविता०=यमुना । [८८] उसारि=बाँह में से निकाल कर । बरा=बाँह का एक गहना, टाँड । छरा=नारा, नीवी । ऊठि=उमंग । मूठि चलावैं=मार करती है । [८९] तिलौनी=फुलेल से सुगंधित । रदछद=होंठ । रही=भरी । कोक०=लाल कमल । [९०] ठठि=शान से ठटकर । छराय=छलावा, मायारूप । ओट०=आवरण बनाकर ।

घनआनँद खेल-अलोल दसै बिलसै, सु लसै लट कीम झुली ।
सुठि सुंदर भाल पै भौंहनि बीच गुलाल की कैसी खुली टिकुली ॥ ९१ ॥

आली तिलौनी लसै अँगिया गसि चोवा की बेलि बिराजति लोइन ।
साँवरी पोति-छरा छलकै छबि गोरी अँगोट तसैं सम कोइ न ।
गड़ी मवैं खिनि ताकि थकै घनआनँद छैल छकै दृग ओइन ।
भावनी यौं पगि लाजनि सौं लगि होंसे लला के लगीं हैं ई लोइन ॥ ९२ ॥

कवित्त

सींचे रस-रंग अंग फूलि फैलि फबि रुचि,
देखि देखि मालती-लतानि एकमति है ।
आछे काछे मधुप-कुमार कोटि ओट कीजै,
अलक छबीली मन छुटियौ बसति है ।
कहा कहौं राधे घनआनँद पिया के हिय,
बसि रसि जैसी तैसी आँखिनि ससति है ।
कौन धौं अनूठो रस प्यावै जिय ज्यावै भावै,
ए री तेरी हँसनि बसंत कौं हँसति है ॥ ९३ ॥

गाजिन मैं छजी, रजी तिनहीं मैं चली भली,
धीमें बावरे ह्वै हियें गावरे प्रतीति है ।
आजु भौं लला हो काहू बाम सों न काम परयौ,
ऐसी जो सिखाय होरी खेलिबे की रीति है ।
गाज क्यौं बजावौ घनआनँद डरावौ कहा,
आवौ गावो गैंडे जानि परैं हार जीति है ।

९३—कौन—छबि (मलिक) । ९४—आनन ससति है (लंदन) ।

[९१] अलोल=अचंचल । खेल=जोश । तुली=ठीक, अंदाजसर । खलेल=किलोल । खुली=खुली है । [९२] तिलौनी=सुगंधित । लोइन=सुंदर । पोति०=काँच की गुरियों की लड़ी । अँगोट=अंगयष्टि । मवैं खिनि=खींचे से रगड़ी हुई । लाजनि=पैर रसना, पकना । लोइन=लोचन । [९३] ओटि०=छिपाने पड़ते हैं । ससति=

आन हमैं बाबा वृषभानु की जौ न ढरैं,
गई करैं धरैं सो। सबै ही सबै भाँति है ॥९४॥

गोरे भए स्याम गोरी साँवरी ह्वै रही देखौ,
रूप की निकाई आजु औरै पेखियत है।
अद्भुत धरी है प्रीति-रीति परतीति-नीति,
निपट अचंभे की समीति लेखियत है।
देखैं भूलियत कछू कहत न आवै सखी,
इनकी बिलग नई नई देखियत है।
चिरजीवौ जोरी घनआनँद सरस यह,
ब्रज वृंदावन ही मैं यौं बिसेखियत है ॥९५॥

९४—हिये०—हियरा मे व्याजीन (पाठांतर) । मो—तो (वही) । ९५—गोरे—गौर (खोज) ।

समा जाती है । [९४] दैंहै=परिसर, निकट । आन=शपथ । गई करैं=अप्रतिष्ठा करें । सबै०=सब कुछ निबट जायगा । [९५] समीति=समूह । बिलग=अलग ।

प्रेमसरोवर

दोहा

प्रेमसरोवर अमल सर, हिय कदंब-तरु-पाँति ।
भानकुँवरि-बिहरन सुथल, कांति अपूरब भाँति ॥१॥
सोभा-भर लाग्यौ रहै, भूमि सघन तरु-बेलि ।
रच्यौ रुचिर रचना सुघर, आनँद-पुंज सकेलि ॥२॥
सब रितु-हित सोभित सरस, करियै कहा बखान ।
कीरतिलली अलीनि मिलि, खेलन की रहठान ॥३॥
मनभावन सावन-समैं, मिलि झूलन-हित चाव ।
सोभा-भर रुकनाल सर, देखैं बनै बनाव ॥४॥
बरन बरन नव पाट कै, झूला झूलें बिसाल ।
कुसमग रूप रचनी सरस, मंडित ताल-तमाल ॥५॥
जूथ-जूथ-सँग झूलहीं, राधा राजकुमारि ।
दीपत द्रुम दल फूल फल, अचिरज-रूप निहारि ॥६॥
बिच झुरमुट झूला चलत, जल छ्वै लाँबी झूल ।
बरसनि रूप-झलानि की, बदन भरे अति फूल ॥७॥
भूषन बसन सुरूप गुन, ललित लहलहे अंग ।
मोहन गीत सुकंठ मिलि, किलकनि बरसति रंग ॥८॥

---

[१] भानकुँवरि=श्रीराधा । [२] भर=झड़ी । [३] कीरतिलली=श्रीराधा । रहठान=स्थान । [४] पाट=रेशम । झूलें=लटके हुए । [७] झुरमुट=वृक्षों का समूह, निकुंज । झूल=पेंग । फूल=प्रसन्नता । [८] रंग=आनंद ।

ब्रजविलास

दोहा

मोहन ब्रजबन की थली, भली रँगीली ठौर ।
मन आएँ आवै सु क्यौं, कहौ फिरि कछु और ॥ १ ॥
ललित लाल लीला रली, ब्रजबन-हाँच गहठानि ।
आँखिनि देखैं ही भटू, आँखिनि पैठत आनि ॥ २ ॥
सदा सुहायो रससनो, सुंदर ब्रज को बास ।
मोहन-मुख-सुखमा सन्यौ, मोहत सहज प्रकास ॥ ३ ॥
ब्रजबन जमुना गिरितटी, मची रहति रसकेलि ।
सब हौं भीजे देखियै, आनँदघन-रस-केलि ॥ ४ ॥
कहा कहौं ब्रज की बनक, कान्ह कुँवर के हेत ।
घर बाहिर बीथी बगर, मन दृग मोहि लेत ॥ ५ ॥
मोहनहीं सौं ही नचैं, जितै गरब्यारे आहि ।
ब्रज-ग्वालिनि को लालसा, रीझनि स्यामहि चाहि ॥ ६ ॥
कृपा करौ ब्रजनाथ जौ, ब्रजदरसन के नैन ।
या ब्रजबन की माधुरी, सो परसैं उर-ऐन ॥ ७ ॥
जमुना-कूल सुहावनो, लखित ललित तरु-बेलि ।
सूचत राधारमन की, महा मधुर रसकेलि ॥ ८ ॥
प्रेमरंग-रस-रंगमगी, सुंदर ब्रजबन-भूमि ।
ब्रजजीवन आनंदघन, हित बरसत नित झूमि ॥ ९ ॥
ठौर ठौर सोभा महा, नई नई हित-जोति ।
मुदित उदित ब्रजचंद लखि, जगमग जगमग होति ॥ १० ॥
मोहन मदनगुपाल को, मोहन यह ब्रज देस ।
अति उदार भागनि भर्यौ, राजत नंद नरेस ॥ ११ ॥

खरिक खोरि महमह महा, गोधन गोपकुमार ।
गोवर्द्धन ब्रजसंपदा, मोहन प्रान-अधार ॥ १२ ॥
अमृत-बृष्टि हित-दृष्टि सौं, सींच्यौ ब्रज निज देस ।
ब्रजजीवन आनंदघन, जनम्यौ भाग असेस ॥ १३ ॥
ब्रजमंगल गुन स्याम के, अद्भुत प्रेमनिधान ।
घर घर मैं सुनियत सदा, बिरह-बिमोहन गान ॥ १४ ॥
ब्रजमोहन मन मैं बसै, नित ब्रजमंगल रूप ।
घर बाहिर ब्यापक सदा, मंगलचरित अनूप ॥ १५ ॥
ब्रजबिलास रसरीति को, करियै कहा बखान ।
पूरनचंद उदोत जहाँ, पूरन-कला-निधान ॥ १६ ॥
नैन मिलैं मन मिलि गयौ, बढ़ी अनोखी चोंप ।
अचिरज-फल लाग्यौ सखी, पलहूँ नहीं हिय-कोंप ॥ १७ ॥
भई कलंक कुलीनता, चाहन ही ब्रजचंद ।
चख-चकोर चोंपनि सखी, प्रगटी कला अमंद ॥ १८ ॥
देखी अनदेखी भई, अब सब ही कुलकानि ।
गोरि परी आँखिनि सखी, उघरि परनि की बानि ॥ १९ ॥
जगत-उजागरो साँवरो, दुर्यौ हिये मैं आय ।
गोरी नावँ प्रगट भयौ, सपनैं संगम पाय ॥ २० ॥
हिलग नई ब्रज-छैल की अबकी किये दुराव ।
सपनैं हौं परतच्छ कियौ, लाज-लपेट्यौ चाव ॥ २१ ॥
भयौ संजोग बियोग हूँ, भई गात-गति और ।
पावस पावन मचि गई, घर बाहिर हित-ठौर ॥ २२ ॥
राधा मेरो नाम है, वे ब्रजमोहन स्याम ।
मोहि ग्वारिनि गाइयै, सु लगजाग के काम ॥ २३ ॥
कोटि उपाय करौ सखी, दुरै नहीं हित-बानि ।
रोम रोम मैं रमि रही, ब्रजमोहन-पहचानि ॥ २४ ॥

मुरली-धुनि कानन रमी, राति द्यौस मँडराति ।
त्यौं मूरति आँखिनि बसी, सनमुख ही दरसाति ॥ २५ ॥

घर ही मोहन के यहाँ, बाहिर राधा नाँव ।
उलटी गति है प्रेम की, जानत गोकुल गाँव ॥ २६ ॥

झुकी झुकी सब संग हीं, झकी मोह के छाक ।
उघरि परी घूँघट कियैं, निपट अटपटी ताक ॥ २७ ॥
हित-डोरा आँखिनि पर्यौ, हरयौ हिये कौ धीर ।
जागनि हूँ असरारि हीं, सँग सोवन की पीर ॥ २८ ॥

दुसह बिरह जदुनाथ कौ, मिल्यौ कहूँ तें आइ ।
बिछुरि बिसासी यौं मिल्यौ, कछु गति गही न जाइ ॥ २९ ॥

संग लगें डोलैं सदा, बोलैं चाहि न बात ।
एक बात बूझै सु क्यौं, अनमिल कौ कुसलात ॥ ३० ॥

तिन्हैं चैन क्यौं बिन हमैं, हमैं चैन जो नाहिं ।
कहा मिलैं वे अनमिले, हम बिछुरें मिलि जाहिं ॥ ३१ ॥

सुनैं कौन बरनैं सु को, ब्रज कौ दुसह बियोग ।
धन्यौ प्रान ऐसें सखी, अनमिल सौं संजोग ॥ ३२ ॥

हाय-बावरी गोपि सब, भूलन साँझ सकार ।
मुह मूँदें डोलैं थके, काहैं कान्ह पुकार ॥ ३३ ॥

बन जमुना गिरि ब्रजगली, लखियत मोहन स्याम ।
देखत भूली है भई, मोहि आठ हूँ जाम ॥ ३४ ॥

एक कान्ह देखें जियैं, ये सब ही ब्रज लोग ।
चेटक रूपी कान्ह कौ, अचिरज बिरह-संजोग ॥ ३५ ॥

मोहन-मूरति साँवरी, डोलति डीठिहि लागि ।
अँसुवनि दरसत स्याम घन, जल मैं लागी आगि ॥ ३६ ॥

चाहयौ रहत गुपाल हो, ब्रज कौ दुसह बियोग ।
यातें सब ठौ होत है, ब्रजमोहन-संजोग ॥ ३७ ॥

ब्रजमोहन-मैं ह्वै रह्यौ, देखत बिरही लोग ।
यातैं कछु कहत न बनै, अचिरज बिरह-सँजोग ॥ ३८ ॥

ब्रज छायौ आनँदघन, बिरह-सँजोग अनूप ।
दरसैं सुंदर स्याम कौ, मोहन अचिरज-रूप ॥ ३९ ॥

अचिरज गति मन दृगनि की, लगि मोहन के संग ।
करत रहत हम सौं सदा, नवरंगी पै रंग ॥ ४० ॥

बिछुरें जियैं मिलें न ते, मिलें न जिन्हैं बिछोह ।
सब पै समझि परै नहीं, ब्रजमोहन कौ मोह ॥ ४१ ॥

प्राननाथ ब्रजनाथ सौं, बिछुरैं जियै सु कौन ।
अकथ कथा ब्रजप्रेम की, कछु बरनत है मौन ॥ ४२ ॥

मोहन-रस बरनैं सुनैं, और रसना कान ।
बिमन भऐं मन समझियै, मोहन ही की आन ॥ ४३ ॥

मोहन मन मोहन लगे, मानहु मोहन संग ।
थकि थकि रहियैं लखत हौं, ब्रजमोहन के रंग ॥ ४४ ॥

कबै मिलें बिछुरे कबै, बिषम बिसासी स्याम ।
मिलैं अमिल अमिलैं मिलें, ये कपटनि के काम ॥ ४५ ॥

अहा कहा गति प्रेम की, क्यों हूँ समझि परै न ।
मिलैं अनमिलें एक से, कछु कहिबे कौ है न ॥ ४६ ॥
निपट नवेली देखियै, या ब्रज हित-ब्यौहार ।
गहे गहि रहे एक से, मोहन-गुन आधार ॥ ४७ ॥

अचिरज मोहन साँवरे, अचिरज नेही नैन ।
ब्रज अचिरज मौं राँच रह्यौ, बरनैं अचिरज बैन ॥ ४८ ॥

महा मरम ब्रज प्रेम कौ, कहा बरनियै ताहि ।
मोहन-गुन गहि बूझियै, कौन सकै अवगाहि ॥ ४९ ॥

मिलैं चटपटी बिरह की, बिछुरें मिलन-बिनोद ।
लपट-लपेट्यौ बरसई, ब्रज मैं प्रेम-पयोद ॥ ५० ॥

ब्रजमोहन आनंदघन, किये पपीहा प्रान।
तन-मन-स्याम-परसौं फिरैं, ब्रज-रसरीति प्रमान ॥ ५१ ॥
स्यामनि ही बरसैं सजल, सदा करत रसपान।
रीझ भीजि सुभग सदन, अचिरज मरम सुजान ॥ ५२ ॥
को समझै ब्रज प्रेमगति, मति विचार बौराय।
अतुल अगम रसरीति कथैं, रसना परसौं जाय ॥ ५३ ॥
रहि न सकै ब्रजरस बिना, रसनैं परयौं सवाद।
कहि रहि सकै न फिरि चकै, मौन-गह्यौ उनमाद ॥ ५४ ॥
रसैं आनि रसना हरयौ, रस है करयौ बखान।
ब्रजरस यौं रसना रच्यौ, बस्यौ नैन मन प्रान ॥ ५५ ॥
ब्रजरस के रसिना रतन, अचिरज-खानि अमोल।
चोरि चटक दौरानि मौं, करत रंग मग बोल ॥ ५६ ॥
ब्रज-सोभा ब्रज की कुसल, ब्रजजीवन धनमूल।
ब्रजनायक ब्रज मैं सदा, जिन तन हित अनुकूल ॥ ५७ ॥
ब्रज सनमुख राजत सदा, ब्रज तैं थोड़ी पीठि।
सौभग आगानि एकरस, रहत बसैं त्यौं डीठि ॥ ५८ ॥
ब्रज सुदेस मन बसत नित, बसैं रमन मन धाम।
नित लीला ब्रजनाथ की, दरसत चारौं जाम ॥ ५९ ॥
ब्रज-सुखमा दृग आनईं, ब्रजलोचन कैं चाव।
ब्रजविनोद आनंदघन, रच्यौ निरंतर सुभाव ॥ ६० ॥
सबै ओर ब्रजकौतुकैं, आप गुसाईंहि होत।
प्रेमपियूष मयूख तें, सबै सु लीला-सोत ॥ ६१ ॥
ब्रजस्वरूप आँखिनि बसै, ब्रजमोहन-रस-स्वाद।
स्रवननि ज्यौं मंडराय है, मोहन-मुरली-नाद ॥ ६२ ॥
नखसिख ब्रज व्यापक भयौ, कहा कहौं निज प्रीति।
ब्रजमोहन बिलसत सदा, यह अपनी रसरीति ॥ ६३ ॥

सकल कला ब्रजचंद की, प्रगटति नेही-अंग।
ब्रजजीवन जिय मैं बसैं, करत महा रसरंग ॥ ६४ ॥
ब्रजविलास बरसैं सदा, ब्रजमंडल को साथ।
ब्रजमोहन पावन लगे, ब्रजनेही-हिय-हाथ ॥ ६५ ॥
ब्रज को अमल अगाध रस, बूड़त है चित चाहि।
लीला अचिरज लहर कौं, सकै क्यौंइँ अवगाहि ॥ ६६ ॥
नेही मन मोहन लख्यौ, डीठि ब्रजमोहन ऐन।
भूलें हू सुरती रहै, ब्रजबन-बीथिन गैन ॥ ६७ ॥
ब्रजसंपति कौं पाय कैं, भयौ निपट ही रंक।
मन मतंगज झूलत सदा, लखि मोहन-पद-अंक ॥ ६८ ॥
श्रीब्रजमोहन-माधुरी, रही नैन-मन छाय।
अद्भुत रस आनंदघन, प्यासैं बढ़ति अघाय ॥ ६९ ॥

———

६८-मोहन-मदन (चंदन)।

[६९] अघाय=छककर ; भली भाँति

सरस बसंत

दोहा

बृंदाबन आनंदघन, राजत जमुना-कूल।
सदा सुखद सुंदर सरस, सब रितु रुचि-अनुकूल ॥ १ ॥
बनसंपति दंपतिमई, नई नई नित जोति।
कृष्न-राधिका-रूप तें जगमग जगमग होति ॥ २ ॥
या बन की सोभा अगह, कमलनैन कौं चैन।
पै जानिक बरनौं कहा, सब रितु अबिरल-ऐन ॥ ३ ॥
रितु औरैं औरैं नवल, बृंदाबन तरुबेलि।
सहज सुहायो है सदैं, आनंदघन रसकेलि ॥ ४ ॥
या बन सरस बसंत रितु, बिलसत मधुर किसोर।
फागु खेलि चौगान मिलि, चाहन बन की ओर ॥ ५ ॥
चाहनि चाह भरयौ सुबन, प्रफुलित सरस बसंत।
गुंजभरे अलि-पुंज मिलि, सोहत आनि रसवंत ॥ ६ ॥

चौपाई

घमड़ि पराग लता-तरु ओर। मधुरितु-आरंभ-सौंज समोर ॥७॥
बन बसंत बरनत मन फूल्यौ। लता लता फूलनि संग झूल्यौ ॥८॥
खगनि-कुहक पिक-कुहक सुहाई। बन मनमथ की फिरी दुहाई ॥९॥
मलय-पवन-आगम सुखसार। रोचक महा सुगंध सुढार ॥१०॥
बरसत पुहुप पुहुमि पर सोहन। बन-छबि लखि ब्रजमोहन मोहत ॥११॥
भौंरनि भीर चाय सौं डोरत। परम प्रीति रसमसे झकोरत ॥१२॥
कुसुम सु आसव स्यामहि ध्यावत। बन-तरु तहँ पै सीसि झुकावत ॥१३॥
मधुरितु मधुप-हित-अंग टपकत। मधुप-किसोर चौंपि सौं लपकत ॥१४॥

१—राजत—राजत (लंदन); सुखद—सुखद (हस्त०), ३—जानिक—जानत (लंदन); ४—केलि—केलि (लंदन)। १४—मधुप-हित०—मधुपित हित अति (लंदन)।

सरस बसंत सौंज बहुरंग। फिरैं फिरत बनमाली-संग ॥१५॥
कुंजन के प्रकार बहु भाँति। जमुना-तीर बिराजति पाँति ॥१६॥
नवपल्लव दरपन-दुति धरैं। या बन की छबि को बन करैं ॥१७॥
पुहुप-अखय जित तितहिं रचावैं। यातैं सरस बसंत कहावैं ॥१८॥
बनबिहार के समहिं निबारैं। मदनगुपाल-प्रीति-पन पारैं ॥१९॥
सरस बसंत प्रीति की सोभा। प्रफुलित होति निराजति सोभा ॥२०॥
बृंदाबन बसंत रसवंत। राधा-माधव कामिनि-कंत ॥२१॥
तन मन फूले बिहरत बन मैं। फूली ललित सखी जन-मन मैं ॥२२॥
रूपमंजरी रुचिर सु अंगनि। नई दरसनई बरसनि रंगनि ॥२३॥
या बन बर बसंत की संपति। बिलसत लसत रँगीले दंपति ॥२४॥
सरस राग हिंडोल जम्यौ है। नाद-स्वाद दिसि-दिसनि रम्यौ है ॥२५॥
मुरली-टेर व्यापि बन रही। थिर-चर-गति कछु परति न कही ॥२६॥
तैंसिय होति भवँर-झंकार। बरसत बन बरसत सुखसार ॥२७॥
सरस बसंत समय सुख बढ़्यौ। होरी-खेल-चाव चित चढ़्यौ ॥२८॥
सहज रंगभरे राधा-मोहन। रंगनि भरत हरत मन सोहन ॥२९॥
होरी सौं खेलिबो करत हैं। फिरि फागुन के रसहिं ढरत हैं ॥३०॥
खेल कुतूहल रुचि रचनि मची है। दुरी चौंपि अब उघरि नची है ॥३१॥
ब्रज के बास खेल रचि रास्यौ। बन बसंत औसर अभिलास्यौ ॥३२॥
सरस बसंत फागु कौ खेल। बिहरौं बिहरनि कामिनि मेल ॥३३॥
सब बेलिनि झुरमटहि निहारि। फागु खेलि यौं रहे बिचारि ॥३४॥
बनसंपति दंपतिरुचि सरसैं। जित तित फागु-खेल कौं दरसैं ॥३५॥
बन तन मन हरियै भरौ है। औसर पै अति उघरि परौ है ॥३६॥
सरस बसंत माधवी होरी। मदनगुपाल माधवी गोरी ॥३७॥
सरस बसंत सहज बन सोभा। तैंसिय बन प्रफुलित गुन-गोभा ॥३८॥

३०—सौं०—सौं लगन को (हस्त०)।

[१४] मधुप-किसोर = भ्रमरबाल। [३३] बिहरनि = सखाओं पर; सखाओं से।

लहलहानि तन बनहिं लसी है । पुहुप-बिकास हुलास हँसी है ॥३९॥
अंग अंग बहु रंग प्रकासै । तन मन एकमेक ह्वै भासै ॥४०॥
सरस बसंत रूप बनराज । राधा-मोहन-प्रेम-समाज ॥४१॥
सरस बसंत बिचारन बनै । बरसत मोद नैन अरु मनै ॥४२॥
हित-होरी सुखि खेल मच्यौ है । अमित मदन-रति-ओज रच्यौ है ॥४३॥
सरस बसंत फागु के रंग । मिलि रस बढ़यौ अमोघ अनंग ॥४४॥
ब्रज बन सरस बसंत-बिकास । होरी-खेल अनंग-बिलास ॥४५॥
यह बसंत पर हरी चोंपै । छिन छिन नई नई छबि ओपै ॥४६॥
सौरभ घमड़ उमड़ रस रेल । सरस बसंत फागु कौ खेल ॥४७॥
मधुरितु मधुर फागु या जग है । चोंपनि बिरस खिलारिन मन है ॥४८॥
मन को फूल फलि तन छाई । मन बसंत-संपति सरसाई ॥४९॥
याहीं सरस बसंत बन्यौ है । फागु खेल अनुराग सन्यौ है ॥५०॥
सरस बसंत फागु-रस भोए । आनँद अंग अनंग-समोए ॥५१॥
सरस बसंत अनंत मौर है । और रसिकपति रंग-रौर है ॥५२॥
ललित लहलहनि मधुर महमहनि । अंग डहडहनि रंग गहगहनि ॥५३॥
ब्रज बृंदाबन सरस बसंत । बिहरत रसिकराय रसवंत ॥५४॥
चटक चाव चहुँघार महा है । आन रस रँग कहि परत कहा है ॥५५॥
सरस बसंत खेल रंगभरे । मुकलित बैस-बिलासनि ढरे ॥५६॥
बहु रँग संपति सरस बसंत । ब्रजबन बिलसत राधाकंत ॥५७॥
भाग फाग अनुराग राग भरि । प्रमुदित सरस बसंत केलि करि ॥५८॥
नित ही सरस बसंत बिराजै । मधुरितु समय परम सुख साजै ॥५९॥
जा हिय सरस बसंत बिकासै । बृंदाबन मधुरितु सुख भासै ॥६०॥
केलिमंजरी प्रगटित होय । संपति-संपनि दरसै सोय ॥६१॥

४२—मनै—मनैं (वृंदा०) । ५२—अनंत—अनंग (वृंदा०) ५१—फागु—भागु (लंदन) । अंग—रंग (वही) ।

[४३] मदन=कामदेव । [५२] रौर=आनंद का कोलाहल । [५३] लहलह=लहलहाना, हरा भरा होना । महमहनि=सुगंध । डहडह=प्रसन्न होना । गहगह=रंग का चढ़ना ।

ब्रजबन बिसद बिहार-बिनोद । सरस बसंत बढ़ावै मोद ॥६२॥
परमानंद-भाव उर जागै । सरस बसंत रीतिरस पागै ॥६३॥
महा मधुर मधुरितु-सुख लहै । सरस बसंत-माधुरी कहै ॥६४॥
घानी सबै प्रेम-मकरंद । सरस बसंत-बिकास अमंद ॥६५॥

दोहा

ललित फागु रचना रची, बिलसत सरस बसंत ।
जै जै राधा माधवी, जै बनमाली कंत ॥६६॥

गोपीबल्लभ-पद-कमल, सुंदर प्रीति-पराग ।
मन-मधुकर मकरंद-मग, मंडित पूरन भाग ॥६७॥

मूरति सरस बसंत की, बनमाली अभिराम ।
प्रफुलित रूप अनूप तन, मोहन मनसिज काम ॥६८॥

राधा-बदन-बिकास-रस, मोहन मधुप सुजान ।
चोंपनि चसकैं दृगनि भरि, करत निरंतर पान ॥६९॥

मुकलित बैस बसंत को, अद्भुत अमित बिकास ।
राधा-माधव-माधुरी, पीवत सरसैं प्यास ॥७०॥

हित-फूले झूलें रहत, गौर स्याम तरु-बेलि ।
जमुना कै तट बैन बट, मधुरितु-रँग रसकेलि ॥७१॥

यह बसंत या बन बनै, धनि बृंदाबन-खेत ।
रसिकराय आनंदघन, नैन हियें भरि देत ॥७२॥

राधा-मोहन हंस जुग, रस-रगमगे बिहार ।
फागुन सरस बसंत के, सब रितु मैं सिंगार ॥७३॥

गुपत प्रगट चोंपनि भरो, मचो रहत रस-फाग ।
सब रितु एकै रितु रहै, होरी सौं अनुराग ॥७४॥

६८—तन—मन (लंदन) । ६९—बिकास—प्रकाश (वृंदा०) । ७१—रँग—रंग सकेलि (वृंदा०) ।

फागुन-रस भीजे सहज, आँखिनि बिलसत भाय ।
यह सुख सरस बसंत को, हिय भरि रह्यौ घुमाय ॥७५॥

हित-हेरी मचियै रहै, नित ही सरस बसंत ।
फिरि फागुन को को कहै, रंग-तरंग अनंत ॥७६॥
हित की गति कहत न बनै, हिय ही होति लखाय ।
फाग भाग अनुराग को, फूलि रह्यौ घनराय ॥७७॥
ब्रजबासी राधारमन, बृंदाबन सुख लेत ।
फाग-भरे फूले रहैं, पूरन प्रेम-निकेत ॥७८॥

---

[७५] घुमाय=चारों ओर; सर्वत्र ।

अनुभवचंद्रिका

चौपाई

ब्रजबन स्याम-रंग रचि रह्यौ । ब्रजबन को सुरूप यह लह्यौ ॥१॥
ब्रजबन देखन के दृग औरै । ब्रजबन सुखद स्याम सिरमौरै ॥२॥
ब्रजबन परम तत्व को सार । ब्रजबन लीला नित्य बिहार ॥३॥
तन तैं निकसि मन पगै पन सौं । तब पहिचान होय ब्रजबन सौं ॥४॥
ब्रजबन को सुरूप आनंद । कुलचंद नित उदित सुछंद ॥५॥
अद्भुत प्रेमसुधा झर सरसै । कुलचंद आनंदघन बरसै ॥६॥
या रसमय ब्रज बन को रूप । अमल अखंड अगम्य अनूप ॥७॥
लीला-रस-विलास को सागर । ब्रजबन गोकुलचंद उजागर ॥८॥

दोहा

गोकुलचंद मयूख लखि, जे दृग भए चकोर ।
ते ब्रजबन देखत सदा, बिसरि साँझ अरु भोर ॥९॥

चौपाई

ब्रजबन सोभा मन ही जानै । मनमोहन-मन बैठि बखानै ॥१०॥
ब्रजबन निरवधि रस लै सान्यौ । ब्रजबन-रस रसिया ही जान्यौ ॥११॥
या ब्रजबन मैं जो कछु होय । प्रगट तिनमहूँ राख्यौ गोय ॥१२॥
परम पर सो कैसे भनै । महा मरम न बिचारत बनै ॥१३॥
या ब्रजबन-रस-बस को होय । सबनि अगोचर लहै न कोय ॥१४॥
ब्रजबन-महिमा अधिक अगाध । नित्यानंद बिनोद अबाध ॥१५॥
गोपभेष गौ पालत सदा । ब्रजबन बिलसत निज संपदा ॥१६॥
परमधाम को परम धाम है । ब्रज बृंदाबन सरस नाम है ॥१७॥
ब्रजबन-सुख ब्रजमोहन लेत । सो सबही ब्रजबन लौं देत ॥१८॥
ब्रजबन ब्रजमोहन को हेत । कछु कहि परत न अति रस-खेत ॥१९॥
ब्रजबन-रस सबही तैं न्यारो । मुरलीधर प्रानेसुर प्यारो ॥२०॥
या ब्रजबन बाँसुरी बजति है । लीला ललित समाज सजति है ॥२१॥

ब्रजबन बंसी-धुनि मँडराति। ऐसी कछु बंसी-धुनि जाति ॥२२॥
धुर के सुरनि बजी सो बजी। काननि सुनि बहुरि न तजी ॥२३॥
कहा कहौं ब्रजबन की बात। सुमिरत सब बिचार बिसरात ॥२४॥
ब्रजबन बरसि दरसि फिरि ढरै। हरि लौं हियरा ढारनि करै ॥२५॥
लीला ललित लोभ नहिं लागै। ब्रजबन सौं कैसें पन पागै ॥२६॥
इतने पैं कछुवै न लुहाय। ब्रजबन नैंन हियें मँडराय ॥२७॥
ब्रजबन-बासी स्याम सुजान। गोपीबल्लभ रूपनिधान ॥२८॥
सुंदर ढीठि कबहुँ जौ करै। मन-तन-संग ब्रजबन लै भरै ॥२९॥
तन मन ब्रजबन रहै समोय। कृपा करै तौ सब कछु होय ॥३०॥
इन आँखिन जौ ब्रजबन दरसै। हमकौं सोई सब सुख बरसै ॥३१॥
आस-पास ब्रजबन मैं रहौं। मन तन ब्रजबन-मारग गहौं ॥३२॥
ब्रजबन-सोभा नैन बिलोकौं। सब तन तैं ब्रजबन मन रोकौं ॥३३॥
कुरौ सहज आनंद-बिस्राम। सफल होहु यौं ब्रजबन-बास ॥३४॥
ठौर ठौर सौं बिनती यहै। नित ही मन तन इनहीं रहै ॥३५॥
ब्रजबन ही जीवन-धन जानौं। मन तन ब्रजबन-रस लै सानौं ॥३६॥
ब्रजबन-सरि-सरिता-जल पियैं। उपजै सांति जरनि गए हियैं ॥३७॥
लीला-अंकुर उपजै मन मैं। यातें सर्बास परसौं ब्रजबन मैं ॥३८॥
ब्रजमंडल बनराज-बिहारी। गोपीनायक लायक भारी ॥३९॥
सुंदरि गुननि ढरकत ढिग आय। हरिहैं आनि मधुर मुसिकाय ॥४०॥
यहै ब्रजबन-प्रसाद की आस। ब्रजबन कृस्न-कृपा-बिसवास ॥४१॥
ब्रजबन बसि ब्रजनाथहि गाऊँ। श्रीगोपीपद-रज सिर नाऊँ ॥४२॥
जमुन-तीर ब्रजजीवन-केलि। मन रसना हित धरूं सकेलि ॥४३॥
स्रवन सुनौं ब्रजबन-गुन-गीत। मंगलमूरति परम पुनीत ॥४४॥
आनँद-लहर उठै मन दयैं। ब्रजबन कै सुख साधौं सबैं ॥४५॥
ब्रजबन सदा बिनोदहि परसौं। दरसौं सोभा हियरा सरसौं ॥४६॥
ब्रजबन-रसिक-संग अभिलाखौं। तिननैं सुनि बूझैं कछु भाखौं ॥४७॥

३९—लायक—नायक (लंदन)।

[२५] ढरै=द्रवित होती है, दूर होती है।

ब्रजबन-रस की गाँसनि खोलौं। जौ राखै तौ गैलन डोलौं ॥४८॥
ब्रजबन बसिबे को यह फल है। जिनि मिलि दरसत रूप अमल है ॥४९॥
ब्रजबन बसियै रसिकौ मिलैं। ब्रजबन-भाव इन्हैं मिलि खिलैं ॥५०॥
रसिक-सजीवन ब्रजबन-बासी। राधा-मोहन सदा बिलासी ॥५१॥
ब्रजबन परमानंद-रसायनि। गोपी-पद-रज यह रसदायनि ॥५२॥
ब्रजबन बसि पद-रज-रति मिलै। मति-गति अति आनँद-रस झिलै ॥५३॥

दोहा

प्रकटी अनुभवचंद्रिका, भ्रम-तम गयौ बिलाय।
ब्रजमंडन की कृपा तें, रह्यौ मोद-घन छाय ॥५४॥

ब्रजबन-लीला-माधुरी, निरवधि रस को सार।
रसिक-मुकटमनि कृपा तें पायौ प्रान-अधार ॥५५॥

———

[५३] झिलै=धँसती है। [५४] मोद-घन=आनंद का बादल ; आनंदघन।

रंगबधाई

चौपाई

घोष-नृपति-घर ढोटा जान्यौ। ब्रज पर आनँदघन बरसायौ ॥१॥
मधुर स्याम ब्रज-लोचन-तारो। गोकुल जीवन जगत-उज्यारो ॥२॥

दोहा

लीला ललित गुपाल की, अति अद्भुत रसकंद।
आनँदघन बरस्यौ उदै पूरन गोकुलचंद ॥३॥

चौपाई

जसुदा-कूख-ककुभ तें निकस्यौ। पूरब भाग अपूरब बिकस्यौ ॥४॥
सदा सनमुखी सबहीं भाँतिनि। व्यापक छबि परिपूरन-कुल-काँतिनि ॥५॥
अचरज-प्रभा कछु न कहि आवै। सबकौं सबहीं दिसि दरसावै ॥६॥
मित्र-मंडली-मंडन लसै। निसिदिन मन नैनन मैं बसै ॥७॥
ब्रज की कमलमुखी लखि फूलैं। गोकुलचंद पालनैं झूलैं ॥८॥
रंगबधाई को सुख जैसो। मन लोचन नहि जानत तैसो ॥९॥
महा घोष बाजन को भयौ। बंदी बिरुद दसौं दिसि छयौ ॥१०॥
ब्रज निरवधि सुखसिंधु बढ्यौ अति। बरनत थकै कोटि सारद-मति ॥११॥

दोहा

छगनचंद मैं मन दियें, फूले सु मंगल-मोद।
सबै कोउ बरसै लखें, ब्रज मैं प्रेम-पयोद ॥१२॥

चौपाई

नंद महोछौ के सुख देखैं। जीवन-जनम मानियत लेखैं ॥१३॥
इधिकाई सुख-भारी भई। ब्रज मैं सोभा प्रगटी नई ॥१४॥
आनंद बाजनि बढ्यौ थिर चर मैं। मंगल व्याप्यौ धर अंबर मैं ॥१५॥

१--घर--पै (लंदन)। १५--बढ्यौ--बरसौ (वृंदा०)।

[१३] महोछै=महोत्सव। जीवन०=जन्म लेखे में मानते हैं, सफल समझते हैं।

सजन-बंधु ब्रज मैं इकठौरे। मगन भरथ्यरनि डोलत बौरे ॥१६॥
आवत धावत मिलत सु लपटत। प्रेममगन नाचत अरु रपटत ॥१७॥
नंद-सदन रस-रंगबधाई। कोटि फागु खेलैं अधिकाई ॥१८॥
इक दिसि मागध सूत रटत हैं। बंदी बिरुदनि पढ़ि न हटत हैं ॥१९॥
निधरक निकरप अगरन नेग चुकावत। भगरि भगरि हित-चौंप बढ़ावत ॥२०॥
बरनौं कहा नंद को देबो। भरि थकि परैं लेनहूँ लेबो ॥२१॥
आनँद-परम-हित आसा पूजी। रही काहि अभिलाषा दूजी ॥२२॥
धाँमा धुधक ढोल ढमकारनि। इत बदनपनि पुलकि किलकारनि ॥२३॥
गायक बिबिधि सोहिले गावत। अपनो मनबांछित भरि पावत ॥२४॥
जित जित चहत चकित ह्वै रहियै। या औसर की छबि कह कहियै ॥२५॥
सुर किंनर अपसर लखि झूमैं। थके छके आनँद-मद घूमैं ॥२६॥
अतुलित रस को सिंधु बढ्यौ है। मुहँमाँग्यौ फल हाथ चढ्यौ है ॥२७॥
रावर की छबि बरनौं कैसैं। सोवर को घर सोहत जैसैं ॥२८॥
भागनि भरी जसोदा दिपै। दिसि दिसि जसदीपति सौं लिपै ॥२९॥
गोपबधू घर आनँद-भरी। गावति हँसति मल्हावति खरी ॥३०॥
अखिल भुवन-सुख सदन नंद कैं। जनम-लसै आनंदकंद कैं ॥३१॥
सबकौं सबै मनोरथ मिलै। अपने रंग-उमंगनि खिलै ॥३२॥
गोकुल गाँव कालिंदी-तीर। बढ़ी महा मंगल की भीर ॥३३॥
सबही के हिय परम हुलास। सफल भयौ गोकुल को बास ॥३४॥
ब्रजपति सपति परत न बरनी। जसो सपूती सी जिहि घरनी ॥३५॥
यह धन धाम सदाई रहौ। नित नित सुतहित के सुख लहौ ॥३६॥
जागौ जियौ कन्हैया बारो। नंद-जसोमति प्राननि प्यारो ॥३७॥
लाड़िल अतिलड़ लला सलोनो। ब्रजमोहन सोहन दिनहोनो ॥३८॥
सखी होत बड़भाग हमारैं। दिन दिन लोचन फलहि निहारैं ॥३९॥
सबकौं सबही बिधि सुख पोखौ। त्रिभुवनि देहु चैन-चित चोखौ ॥४०॥

२२--अभिलाषा--अभिलाषनि (लंदन)। २३--ढम०--ढनकारनि (वृंदा०)।

[१७] रपटत=गिर पड़ते हैं। [१९] मागध=मागध। [२८] सोवर=सुवर्ण। [३५] जसो=यशोदा।

गैयनि पाली मैयनि हरषौं । नंदहि परमानंदहि बरषौं ॥४१॥
नित ही ब्रजजन-हित अनुकूलौं । जसुदाजीवन लला झडूलौं ॥४२॥
याकौ कंस खसौं मनि न्हातैं । या ब्रज की सुख-सोभा मातैं ॥४३॥
नित निज मोद बिनोदनि करौं । चित के चीतें हित बिस्तरौं ॥४४॥
बलिबलि जावँ आज के दिन की । सुभ नछत्र सुभ घरी सुछिन की ॥४५॥
या घर यह दिन दिन ही रहौं । मंगल - मोद महा निरबहौं ॥४६॥
आनँद को घन रस अस बरसौं । हित-हरियारी नित ही सरसौं ॥४७॥
मनभावन चातिक यह रस पियौं । ब्रजजीवन-रस पीवत जियौं ॥४८॥
ब्रज सुदेस सुख सदा बिराजौं । गोपराज नित सजौं समाजौं ॥४९॥
श्रीयुत नंदराय - दरबार । नित ही आनँद मंगलचार ॥५०॥
भेजमंगल ब्रज प्रान - अधार । जै जै जै नंदराजकुमार ॥५१॥
स्याम राम की जोट छबीली । जसुमति रोहिनि रस-बरसीली ॥५२॥

दोहा

लाड़चाव बिलसौं लसौं, ब्रजजीवन रसकंद ।
हित - पियूष पोषौं सदा, पूरन गोकुलचंद ॥ ५३ ॥

[४२] झडूलौं=[झडुला] झडूलेवाले ।

प्रेमपद्धति

चौपाई

कहा कहौं गोपिन को प्रेम । बिसरे जहाँ सबै बिधि नेम ॥१॥
प्रेम - पंथ आँको अति आहि । सूझै इन अवगाह्यौ याहि ॥२॥
इनके चरन सीस लै धरै । तब यह अगम गैल अनुसरै ॥३॥
अगह बस्तु मन याहि न गहै । रसना अकथ कथा क्यौं कहै ॥४॥
इनको भाव इन्हैं बनि आयौ । कहूँ न पैयै सो इन पायौ ॥५॥
इनकौ परम प्रेमपद दूरि । महामूरि इन पायनि धूरि ॥६॥
सो अति अलभ हाथ क्यौं लगै । परम प्रेम कैसैं उर जगै ॥७॥
सिव बिधि सुक उद्धव से जाचत । महिमा-ब्यास अचरज-रस राचत ॥८॥
सुमिरि समझि सूझत अभिलाषनि । ब्रज बसि निरबाँध रस की चाखनि ॥९॥
ब्रज परिकर सौभाग सराहि । बृहद बिसमय महिमा चाहि ॥१०॥
महा सरस सकत न अवगाहि । को धौं समझि सकै फिरि याहि ॥११॥
परम प्रेमगति कछु उर फुरै । दिव्य ज्ञान ब्यारैं हूँ दुरै ॥१२॥
ब्याकुल ह्वै कलमलत सछोभ । जाचत जनम ब्रजधरनि-गोभ ॥१३॥
रस - सवाद रसिया ही जानै । बिन रस भएँ कौन अनुमानै ॥१४॥
सो रस अमिल मिलै धौं काहि । निगम नेति करि बरनत जाहि ॥१५॥
तै कछु जो अनुमानत ताहि । मगन होत लीला अवगाहि ॥१६॥
अति लघु ह्वै ब्रजरज आराधत । गोपी-मग डग सोधत साधत ॥१७॥
अनुचर-भाँति बिन रज क्यौं मिलै । भाव-बेलि - पुहुपावलि खिलै ॥१८॥
ब्रजरज - रूप गुरु - कृपा दरसै । तब रस परम हेत हिय सरसै ॥१९॥
रसकदंब चूड़ामनि स्याम । राधारमन परम अभिराम ॥२०॥
रस ही रस अपने रस ढरैं । तब ब्रजरज - अधिकारी करैं ॥२१॥
सदै चोंपि उपजै उर भाव । जानि परै ब्रजजन-चित-चाव ॥२२॥
गोपी नट गुपाल की प्रिया । हरि-हित-भरी खरी सब क्रिया ॥२३॥
काहू समय कछु न रुचि और । लागि पै रहै काम की दौर ॥२४॥
गोपिन के बस गोपीनाथ । नित बिहरत ब्रजजन इक साथ ॥२५॥
मोहनचंदहिं कियौ चकोर । मोदमई नाचत चहुँ ओर ॥२६॥

अरस-परस-रस भीजे रहैं। ब्रजबन कौ सहेट-सुख लहैं ॥२७॥
ब्रज-बस रूरन गोपिका-लाग। महाभाग पूरन अनुराग ॥२८॥
रचे सहज ही अति रस राचनि। कहै कौन पूरन घन-पाचनि ॥२९॥
मुरली-धुनि गोपिन ही सुनी। जु कछु बजाई मोहन गुनी ॥३०॥
सब अनसुनी करी धुनि सुनिकै। टरखौ धरम धीरज सिर धुनिकै ॥३१॥
प्रबल प्रेम को भाव निखार्यौ। जगमोहन हूँ पकरि नचायौ ॥३२॥
या रस-बिबस एकरस रहै। अति अमोघ सुखसंपति लहै ॥३३॥
ब्रज-भूतल अभूत रससाज। सजे रहत नित प्रेम-समाज ॥३४॥
अरु बिहार ब्रजबधू-संग कौ। निरवधि रससागर-तरंग कौ ॥३५॥
को धौं कहै लहै धौं कौन। बानी थिरल अपूरब मौन ॥३६॥
बिन इन कृपा परस नहिं मन कौ। अति अपरस है घन ब्रजजन कौ ॥३७॥
सब तें ऊँचौ सब तें न्यारौ। या रस-बस ब्रजनायक प्यारौ ॥३८॥
बिना भएँ रस कौ जस राख्यौ। रसिकसिरोमनि यौं अभिलाख्यौ ॥३९॥
सो यह कहौ कौन छुवै सकै। याकौ अधिकारी ह्वै सकै ॥४०॥
गोपिन हितगति चितहि बिचारैं। परम प्रेम पूरन पन धारैं ॥४१॥
गहै सु गति गोपिन जो गही। या ब्रज-रस कौ साधन यही ॥४२॥
रूप-अटक की खटक सम्हारैं। ब्रजमोहन-मुख-ओर निहारैं ॥४३॥
रुकनि बढ़नि अभिलाष तरंगनि। मगन होन रूमगनि रसरंगनि ॥४४॥
दिन बितवनि चितवनि समायकैं। जियहिं जिवावनि चटक चायकैं ॥४५॥
सब ठौं एक स्याम की सूझ। सूझि न परति छकनि की बूझ ॥४६॥
इनतें प्रगट प्रेम की पद्धति। अति ही गुपत समझि मुरझै मति ॥४७॥
तातें गोपिन के गुन गाऊँ। इनकी रचनि मनैं परचाऊँ ॥४८॥
इनकी सु लगलगन सौं लागौं। मधुर किसोर-रूप-रस पागौं ॥४९॥
बस ह्वै बिबस कियौ ब्रजमोहन। लाग्यौ लाग्यौ डोलत गोहन ॥५०॥
रसिक-मुकुटमनि इनकौं नवै। जु कछु करैं सोई संभवै ॥५१॥
महा अगम अगाध रस-पदवी। ब्रजनायक बिन काहू न दवी ॥५२॥

[२९] पाचनि=पकना। [३७] अपरस=जिसका स्पर्श न हो सके।
[५२] न दबी=आकृष्ट नहीं हुआ।

यह रस ब्रज बृंदाबन धाम। गोपिनि मिलि बरसत घनस्याम ॥५३॥
रासबिहारी गोपिनि किये। बस करि लिये सदा सुख दिये ॥५४॥
नाचि नाचि कै भलैं नचाए। प्रबल प्रेमबस अबस लचाए ॥५५॥
निपट निसंक निरंकुस मोहन। फँदे रूप-गुन पिहरत गोहन ॥५६॥
भिजए रीझ रसिक रिझवार। ब्रजनायक ब्रजराजकुमार ॥५७॥
अति रसबिबस मगन करि राखे। परसि सरसि अपरस फल चाखे ॥५८॥
यह सवाद गोपिनि ही लह्यौ। नेति नेति निगमन हू कह्यौ ॥५९॥
कहूँ कहा कछु थाह न पावैं। निरबाधि रस कौं थकि थकि धावैं ॥६०॥
मिलै न गोपी-पद-प्रसाद बिन। सब अधिकारी बिकल किये इन ॥६१॥
समझि सनकादि जाचत अपनो सो। पै नहिं टरत मोह सपनो सो ॥६२॥
देखि देखि भूलत सुधि साधत। अगम अगाह वस्तु आराधन ॥६३॥
ब्रजरस निपट अटपटो आहि। को धौं थाहि सकै अवगाहि ॥६४॥
प्रबल तरंग रंग अति आगर। ब्रज अचिरज-रस कौ सुख-सागर ॥६५॥
श्रीगोपी-पदरज-अवलंब। लहियत ब्रजरसकेलि-कदंब ॥६६॥
तातें नंद गोप ब्रजबास। जौ पाइयै कृपा घनस्याम ॥६७॥
तन धरि धरि यह बानक बनै। ब्रजरज खरिक-कीच मैं सनै ॥६८॥
अलभ लाभ को भाजन होय। ब्रजजुहार रहै हिय भोय ॥६९॥
ब्रजजन सहज रीति कौं परखैं। ब्रज की प्रीति सहज मन करखैं ॥७०॥
कृष्ण-गोपिका-कौतुक ताकैं। उझकि परैं जब था रस छाकैं ॥७१॥
गोपी-प्रेम-भाव उर फुरै। तब भव खोर आप तें दुरै ॥७२॥
घूमत फिरै सुरति-भूल्यौ सौ। तन गुरझान्यौ मन फूल्यौ सौ ॥७३॥
स्याम-रूप रसभूप उज्यारौ। लखै सहज ब्रजलोचन-तारौ ॥७४॥
ताकौ कहा बहुरि गति कहियै। जो रागौ सौ निरखत रहियै ॥७५॥
ये ब्रजबधू परम बड़भाग। यह रस इन ही कौ निज भाग ॥७६॥
इनकौ गैल छैल-रस लहियै। तातैं सब तजि ब्रज बसि रहियै ॥७७॥
आस-पास ब्रज ही मैं रहौं। गोपीपद-प्रसाद मैं लहौं ॥७८॥
यह ब्रजरस मेरे मन मान्यौ। कमजानौं हू यहि पै सान्यौ ॥७९॥
जदपि स्वाद याकौ अति दूरि। ब्रजरज मिली सजीवन-मूरि ॥८०॥

याही लै निज नयन आंजिहौं । याहि चाहि मन-मुकुर माँजिहौं ॥८१॥
यह ब्रजरज - रस करिहौं पान । गोपीपद - प्रसाद सनमान ॥८२॥
गोपीपद - रज - रस अभिमान । परम गूढ़ मति मूढ़ निदान ॥८३॥
रहि न सकौं बिन किये बखान । अब रसना न चरै नहिं आन ॥८४॥
हियरा ब्रजरस - ढारैं ढरयौ । केलि - बेलि अवलंबन करयौ ॥८५॥
कछुक परयौ ब्रजरस को चसको । दूसर परस प्रेम अपरस को ॥८६॥
सोऊ सुगम मोहि परस्यौ है । गोपीपद - प्रसाद सरस्यौ है ॥८७॥
रस जो रसै कहा रसना बस । नतरु कहाँ रसना कित यह रस ॥८८॥
चकितो करत मौन को मौन । सुनि मेरे सबदौं न अघात ॥८९॥
हौं ही बरनौं हौं ही सुनौं । हौं ही समझौं निगुनौं गुनौं ॥९०॥
जितो कहावैं तितियै कहौं । ब्रज - सनेह को छेह न लहौं ॥९१॥
मौन थकै बानियौ न बोलै । ब्रजरस-सिंधु अगाध कलोलै ॥९२॥
यह रस पीवत प्यासै सरसै । अब तौ उघरि उघरि हित बरसै ॥९३॥
यह रस पाएं सब कछु पायौ । या ब्रजरज मैं उघरि दुरायौ ॥९४॥
गोपीरस गोपालैं जानत । भावक-जन तिन कृपा बखानत ॥९५॥
त्रिभुवन संत - सिरोमनि गोपी । अतुल प्रेम पूरन पन - ओपी ॥९६॥
गोपी-बिंद रस को बढ पाय । सदा रहयौ आनँदघन छाय ॥९७॥
जीवन सरस भयौ ब्रजरस तैं । सूमत गोपी-रस - पारस तैं ॥९८॥
हियो निरस या रस - उदगार । जै जै राधा नंदकुमार ॥९९॥
दंपति - कृपा - भरोसो मोहि । आतैं ब्रजरज पाई तोहि ॥१००॥
अब न और कछु या बिन चहियै । याही रज मिलि मिलि रस लहियै ॥१०१॥
गोपी - चरन - रैनु मेरे धन । गोपिन के पन सौं पारयौ पन ॥१०२॥
परम प्रेमपद्धति कछु कही । गोपीपद - प्रसाद तैं लही ॥१०३॥
सब रस को निगूढ़ मत यही । ब्रजरज गही भयौ अब सही ॥१०४॥
गोपीवल्लभ के गुन गावौं । गानि गानि निज सरूपसुख सानौं ॥१०५॥
गौर-स्याममय ब्रजबन देखौं । ठौर ठौर लीला अवरेखौं ॥१०६॥

[९१] छेह=(छेद) विच्छेद । [९६] ओपी=ओपित, देदीप्यमान । [१०२] रैनु=रेणु, रज ।

निरजास= निचोड़

रह्यौ परम रस को निरजास । श्रीब्रज बृंदाबिपिन - बिलास ॥१०७॥
भ्रम-तम गयौ भयौ सु प्रकास । गोपी - पदरज पूजी आस ॥१०८॥

दोहा

प्रगट प्रेमपद्धति कही, लही कृपा - अनुसार ।
आनँदघन उलहौ सदा, अद्भुत रस - आसार ॥१०९॥
सुरति स्याम सौं मिलि रही, करत धाम के काम ।
यह गति ब्रज अबलान की, प्रबल प्रेम नव दाम ॥११०॥
बँधि बाँधे मोहन गुनी, सुनी न ऐसी प्रीति ।
याही तैं सब तैं अमिल, या ब्रज की रसरीति ॥१११॥
प्रेमअवधि आनंदघन, लिये महारस पागि ।
सर्बस साध्यौ बिसरि सुधि, मोहनसा वर जागि ॥११२॥
कहि न परति कछु अगम गति, जगमोहन बस जाहि ।
ब्रज को प्रेम अगाध है, को अवगाहै ताहि ॥११३॥
सदा मगन मुरली भरैं, गावत ब्रज को प्रेम ।
ब्रजनायक नेही निपुन, गहै प्रेम को नेम ॥११४॥
गोरस हू सो रस लियौ, जो नर लहै न कोय ।
लैनि दैनि आनि रसमसी, गनि मति रही समोय ॥११५॥
घर बैठी बन मैं फिरै, गोपिन की यह गैल ।
मोहन क्यौं न लग्यौ रहै, रसिया मोहन छैल ॥११६॥

११०—प्रबल०—परम प्रेम नंदै दाम (राम) । ११३—अवगाहै—अवगाहै (राम) ।

[१०७] निरजास=(सं० निर्यास) निचोड़, निष्कर्ष । [१०९] आसार=झड़ी । [११०] सुरति=स्मृति, ध्यान । दाम=रस्सी । [१११] गुनी=गुणी ; रस्सीवाला । [११२] मोह० = अचेतावस्था । [११५] रसमसी=रसमय । समोय रही=लीन हो रही है । [११६] गैल=गली ; रीति । मोहन=साथ ।

गाँव गाँव बाखरि बगर, ब्रजमोहन मँडराय ।
कहीं नाहिं कल क्यौं परै, जिनके चैन चुराय ॥११७॥

एकहि लगि दुहुँघाँ लगी, लगी पुरातन प्रीति ।
गोपी और गुपाल की, निपट नवेली रीति ॥११८॥

परम प्रेमगति अगम अति, अमल अपूरब रूप ।
मन तें न्यारी सुचि सुमिल, ब्रज-रसरीति अनूप ॥११९॥

मधुर मुरलिका-नाद सौं, मति गति लई बिलोय ।
निगम तान बेधे मरम, बिषम बिषामृत मोय ॥१२०॥

प्रेमपरावधि ब्रजबधू, सुनि बंसी-धुनि मंद ।
तजन भईं सब कछु तबैं, भजन भईं ब्रजचंद ॥१२१॥

आरजपथ भूलीं भलैं, बिबस परीं हित-फंद ।
ब्रजमोहन ब्रजमोहनी, पूरन प्रेम अनंद ॥१२२॥

थकित चलीं सुनि मुरलिका, सु धुनि अपूरब गैल ।
बिबस भईं आपबस कियौ, मदनमनोहर छैल ॥१२३॥

अतुल अनूप सुरूप गुन, गोपी परम पुनीत ।
जिनके बस रसनिधि सदा, स्याम सजीवन मीत ॥१२४॥

जहाँ बृंदाबन छबि छयै, पूरन प्रेम-समाज ।
गोपराजनंदन नवल, जित बरसत रसराज ॥१२५॥

चौंप चाव सिनहौ नयौ, नवल रूप नवरंग ।
ब्रजबाला ब्रजचंद की, अद्भुत केलि अभंग ॥१२६॥

११७—बाखरि—पैखरि (राम)। ११९—सुचि—रुचि (वृं०)। १२०—तान—बान (राम)। १२१—कछु०—सकुच तब। १२२—ब्रजमोहनी—मनमोहनी। १२६—रामनगर की प्रति में यह दोहा यों है—चौंप भाग ब्रजचंद को अद्भुत केलि अभंग।

[११७] बाखरि=घर। बगर=बसेरा, प्रकोष्ठ। [११८] घाँ=ओर। [१२०] बींधे=बिंधकर। [१२२] आरजप०=मर्यादा का मार्ग। [१२५] रसराज=शृंगार।

गिरिबर बन जमुना पुलिन, जल थल अमल बिहार ।
सदा कुलाहल मचि रह्यौ, लीला ललित अपार ॥१२७॥

परम अमल अति ही अमिल, हरि-ब्रजबधू-बिलास ।
जाँचत हैं बिधि संभु से, श्रीब्रजमंडल-बास ॥१२८॥

श्रीपद-अंकित ब्रजमही, छबि न कही कछु जाय ।
क्यौं न रमाहूँ कौ हियौ, या सुख कौं ललचाय ॥१२९॥

रची निरंतर केलि यह, अद्भुत आमन रसाल ।
बिहरत भरे अनंद सौं, गोपी मदनगुपाल ॥१३०॥

मिलि बिछुरत बिछुरैं मिलत, अचरज मिलन-बिछोह ।
जग मोहन जग तें बिरल, ब्रजजन लीला मोह ॥१३१॥

देखत भूली सी लगैं, लखि ब्रज को ब्योपार ।
चकचौंधी सबके चखनि, अचरज प्रेम-बिहार ॥१३२॥

यह बिनोद या ब्रजभनें, अद्भुत अमल अखंड ।
गान करत ब्रजकेलि को, कोटि कोटि ब्रह्मंड ॥१३३॥

रसिक-सिरोमनि साँवरो, रमनीमनि ब्रजबाम ।
बिलसत हुलसत एकरस, ब्रज बृंदाबन धाम ॥१३४॥

महाभाग ब्रज की बधू, निज बस किये गुपाल ।
हिली रहैं हित भाव कैं, मुकुलित परम रसाल ॥१३५॥

गोपिनि की पदवी अगम, निगम सिहारत जाहि ।
पद-रज बिधि से जाचहीं, कौन लहै फिर ताहि ॥१३६॥

एक कृपाबल पाइयै, मतिगति रसि भरिपूरि ।
निकट होति पाछैं परैं, श्रीपदपंकज-धूरि ॥१३७॥

छाके ई पढ़के रहत, अछुपे छाक—उमंग ॥ १२८—अमल—अमिल (राम)। अमिल—सुमिल (वही)। १२८—मंडल—मंडन। (वृं०)। १३०—भरे—भरि (राम)। १३१—बिरल—बिलग। १३६—जाचहीं—जोवहीं।

[१२८] अमिल=अप्राप्य।

गोपिन को रस गुपत अति, प्रगट करै तिहि कौन ।
सुक सनकादिक सुमिरि कै, चकित रहत धरि मौन ॥१३८॥
गोपी-मदनगुपाल मिलि, मोहन मजबन-केलि ।
अति प्यारी न्यारी नवल, निरवधि आनँद-बेलि ॥१३९॥
परम प्रेमगति को कहै, मन बुधि थकित बिचारि ।
या रस-बस मोहन रसिक, रहत अपनपौ हारि ॥१४०॥
गोपी-रसलंपट कियौ, छियौ आपनो स्याम ।
ब्रजबन बसि हुलसत सदा, प्रकट इकौसैं धाम ॥१४१॥
अतुल रूप-गुन-माधुरी, परम अपूरब साज ।
गोपी और गुपाल को, अति रसमसो समाज ॥१४२॥
परम प्रेम-गुन-रूप रस, ब्रज-संपदा अपार ।
जै जै जै श्रीगोपिका, जै जै नंदकुमार ॥१४३॥

१३८—ताक—मव । १३९—प्यारी—भारी (वही) ।

[१४१] इकौसैं=एकांत, अकेले । [१४२] रसमसो=रसीला ।

वृषभानुपुरसुषमा-वर्णन

दोहा

बरसासानु गिरि गाइयै, परम पुनीत सुथान ।
उज्वल बपु हिय स्यामरस, जहाँ बसैं वृषभान ॥१॥

चौपाई

गिरि के नावँ गावँ ढिग बसै । बरसानो सरसानो लसै ॥२॥
भागनि भरी भूमि रँगभीनी । काहू बर बिरंचि रचि कीनी ॥३॥
कीरतिकुँवरि राधिका जितहीं । खेल्यौ करति निरत-रति तितहीं ॥४॥
सोहति संग सबै सहिदोली । कछुक लियैं अप-अपनी झोली ॥५॥
हिलनि मिलनि खेलनि चित चायनि । गावति गीतनि लै लै नायनि ॥६॥
खरक खोरि गहबर यौं डोलति । मैंथति स्रवन सुधा जब बोलति ॥७॥
राधा को हौं चौकस चेरी । सदा रहति घर बाहिर नेरी ॥८॥
नीको नावँ बहुगुनी मेरो । बरसाने ही सुंदर खेरो ॥९॥
याही घर की जाई बाढ़ी । सदा रहति राधा-ढिग ठाढ़ी ॥१०॥
राधा-दृष्टि लिये ही रहौं । जो कछु बूझैं सोई कहौं ॥११॥
मन की पाय टहल अनुसरौं । अपनी को मनभायो करौं ॥१२॥
राधा हौं सब भाँति पढ़ाई । पायँ प्रभाव गुमान बढ़ाई ॥१३॥
रससिंगार सौंज मनि जानौं । कबरी सोधौं बहु बिधि बानौं ॥१४॥
राधा नावँ बहुगुनी राख्यौ । सोई परस हिये अभिलाख्यौ ॥१५॥
चाड़ौं तानिन गाय सुनाऊँ । रीझि रीझि राधाहि रिझाऊँ ॥१६॥

[१] बरसासानु=बरसाना । बरसा=सूर्य की पत्नी । सानु=चोटी, शिखर । वृषभान=वृषभानु, राधिका के पिता ; वृषराशि का सूर्य । [४] निरत०=रतिलीन, प्रेमविह्वल । [५] सहिदोली=सखी । झोली=बोझ, फेंटा । [७] खरक=पशुओं के चरने का स्थान । खोरि=गली । गहबर=निकुंज, गुप्त स्थान । यौं=यों । [८] चौकस=सावधान । नेरी=निकट । [१२] अपनी को=अपनी स्वामिनी का । [१४] बानौं=रीति, प्रकार या बाँधती हूँ ।

राधा-रीझ अटपटी अति है। सोई मो मति की गति रति है ॥१७॥
छकनि जुकति रसभरी जनाऊँ। भागभरी को हरष बढ़ाऊँ ॥१८॥
छंद कबित्तनि रहौं चटक सौं। कहौं प्रेम-रसरंग अटक सौं ॥१९॥
नंदकुँवर को मुरलीनाद। सुनति कान दै लै सुरस्वाद ॥२०॥
रीझनि बिबस होत जब जानौं। तब बहुगुनी कला उर आनौं ॥२१॥
ताही सुरहि साथ कछु बोलौं। प्रेमलपेटी गाँसनि खोलौं ॥२२॥
दूरी बासहू उघरि परै जब। सो सुख कह्यौ परत न कछू तब ॥२३॥
रीझि बूझि के बनक बनाऊँ। चौंप चाव की रीझनि पाऊँ ॥२४॥
चित-हित-कौसमझनि अति गाढ़ी। राधा प्यारी लाड़िली लाड़ी ॥२५॥
ललिता सखी मोहि अति मानै। राधा को हित सौं पहचानै ॥२६॥
प्रीति बिसेष बिसाखा करै। बिहँसि बोलि माथे कर धरै ॥२७॥
राधा-सौं ही इन्हैं मनाऊँ। इन प्रसाद राधा मन भाऊँ ॥२८॥
सहचरि मेरो करतब चाहैं। राधा के ढिग बैठि सराहैं ॥२९॥
इन सबको प्यारी मन बातनि। तहँ रहति सेवा की घातनि ॥३०॥
गिरि बन बाग तड़ागनि खेलति। राधा सखि-समाज-सुख झेलति ॥३१॥
बहुत भाँति के कौतुक करहीं। एक प्रान मन इक रस ढरहीं ॥३२॥
बीनति पुहुप बनावत भूषन। बनहिं प्रकासति बदन मयूखन ॥३३॥
नंदराय को ललन छबीलो। ब्रजमोहन गुन-रूप-रसीलो ॥३४॥
तित ही निकसत आनि अचानक। बरनौं कहा मनोहर बानक ॥३५॥
तब सबके मन हुलस सकेलि कै। करत हाथ कछु खेल खेलि कै ॥३६॥
मुरली-तान सुनाय अचगरो। बस करि लेत सब गुननि आगरो ॥३७॥
हिलग-चौंप-बस रस अभिलाखै। रसिक छैल चितवनि मैं चाखै ॥३८॥
रूपमाधुरी पोषत प्यावत। ब्रजजीवन यौं जीव जिवावत ॥३९॥
नित यह चुहल रहति बन गहवर। लग्यौ रहत आनँदघन को भर ॥४०॥
इत उत की हितरीति अटपटी। हीं ही समझति चौंप-चटपटी ॥४१॥

---

[१८] छकनि॰=छकि की युक्ति से। [२८] राधा॰=राधा की ही भाँति।

गोकुलगीत

चौपाई

नंदराय को गोकुल गाऊँ। आप बरनि आप ही सुनाऊँ ॥१॥
यह सुख सुख हू को अभरै। सुख ही निज सुख बरनन करै ॥२॥
गोपी गोप गाय अरु ग्वार। गहमह रहति महर के द्वार ॥३॥
कान्ह कुँवर जीवन सब ही के। हुलसत बिलसत लागत नीके ॥४॥
मैया महरि जसोमति रानी। भागनि भरी बिधाता बानी ॥५॥
निज कुल कलश निज नैननि देखै। ओपित करत भाग की रेखै ॥६॥
ऐसी यहै सपूती जग मैं। जगमगाति महिमा जगमग मैं ॥७॥
सुत सनेह सौं मय भई सान्यौ। याके सुख सबको सुख जान्यौ ॥८॥
बरस्यौ करति दूध की धारनि। जैं जैं कुसल-परोसा-पारनि ॥९॥
ब्रज की मंगलरासि रही नित। ऐसैं ही तोषौं पोषौं हित ॥१०॥
बड़भागी नँदराय साधु मन। जिनकै ऐसौ धन यातैं धन ॥११॥
मोहन पूत होय मो लखैं। कहत न बनै बनै सुख देखैं ॥१२॥
खेलनि हसनि चलनि अरु गावनि। स्यामसुँदर को रसबरसावनि ॥१३॥
भीजे रहत सबै ब्रजबासी। आनँदघन गोपाल-उपासी ॥१४॥
जमुना-तीर गाँव की राजनि। कहा कहौं गोकुल-छबि-छाजनि ॥१५॥
गोकुल-छबि आँखिनि ही आवै। कहि न सकै रसना कछु गावै ॥१६॥
चहूँ ओर अति चुहल चैन को। पोषै चितवनि कमलनैन की ॥१७॥
आनँदघन बिनोद-भर बरसै। कान्ह कान्ह ही सबकौं दरसै ॥१८॥
सोए जगे कान्ह ही जिनकैं। तिनको सुख-संपति है तिनकैं ॥१९॥

१६—डिग—डिग्ह (लंदन) :

[११] धन=(धन्या) धनी। धन=धन्य ; भाग्यवान्। जिनकैं=जिनके ध्यान में। तिनकैं=उनके ही पास।

साँझ भोर लीला-भर भीजै। डोलत नैन नेम पुलक पसीजै ॥२०॥
यह गोकुल नित नैननि दरसौ। प्रानन पै आनँदघन बरसौ ॥२१॥

दोहा

स्याम-जोति जगमग भर्‍यौ, गोकुल दिपत सुदेस।
जै जै ब्रजरानी सदा, जै जै नंद नरेस ॥२२॥
सुख सोभा संपति महा, राम स्याम को चाव।
ताहि लड़ायौई करै, सब ही सहज सुभाव ॥२३॥

---

[२०] भर=(पानी-आँसू-का) भराव।

नाममाधुरी

चौपाई

वृंदावन - रानी श्रीराधा। मोहन - मनभानी श्रीराधा ॥१॥
जय नित्यविहारिनि श्रीराधा। व्रजसुख - विलासिनि श्रीराधा ॥२॥
कीरति की कन्या श्रीराधा। सब हीं विधि धन्या श्रीराधा ॥३॥
जय रासविलासिनि श्रीराधा। नित कुंज - निवासिनि श्रीराधा ॥४॥
हरि - उर - मनमाला श्रीराधा। गुन - रूप - रसाला श्रीराधा ॥५॥
श्रीदामा - अनुजा श्रीराधा। वृषभानु - तनुजा श्रीराधा ॥६॥
रसिकिनि की स्वामिनि श्रीराधा। करुनानिधि - नामिनि श्रीराधा ॥७॥
वंसीवट - वासिनि श्रीराधा। संगीत - प्रकासिनि श्रीराधा ॥८॥
श्रीकृस्न - सिरोमनि श्रीराधा। जय स्याम - सजीवनि श्रीराधा ॥९॥
आनंद - रसायनि श्रीराधा। प्रीतम - सुखदायनि श्रीराधा ॥१०॥
अनुराग - सुवेली श्रीराधा। सौभाग्य - नवेली श्रीराधा ॥११॥
सरसीरुह लोचनि श्रीराधा। हरि-बिरह-बिमोचनि श्रीराधा ॥१२॥
गोपाल - उपासिनि श्रीराधा। वृंदावन - वासिनि श्रीराधा ॥१३॥
श्रीगान - सुधानिधि श्रीराधा। प्रेमावधि सब विधि श्रीराधा ॥१४॥
जय नख - चंद्रावलि श्रीराधा। प्रीतम - प्रेमावलि श्रीराधा ॥१५॥
ललितादिक - प्यारी श्रीराधा। अति रूप - उज्यारी श्रीराधा ॥१६॥
मंगल की मूरति श्रीराधा। व्रजजन - सुख पूरति श्रीराधा ॥१७॥
व्रजचंद - चकोरिनि श्रीराधा। आभीर - विनोदिनि श्रीराधा ॥१८॥
लीला - रसरंगिनि श्रीराधा। अनुराग - अनंगिनि श्रीराधा ॥१९॥
त्रिभुवन - ठकुरायनि श्रीराधा। गोविंद - गुसाँयनि श्रीराधा ॥२०॥
गोपीजन - संगिनि श्रीराधा। रसरासि - अभंगिनि श्रीराधा ॥२१॥
नटनागर - भामा श्रीराधा। परिपूरन - कामा श्रीराधा ॥२२॥
तरुनीमनि - दरसनि श्रीराधा। सब भाँति सुलच्छनि श्रीराधा ॥२३॥

१३—गोपाल-श्रीकृस्न (नंदन)। १७—पूरति-पूरित (वही)। १९—अनंगिनि—अनंगिनि—(वही)।

कल केलितरंगिनि श्रीराधा । लावन्य-त्रिभंगिनि श्रीराधा ॥२४॥
कात्यायनि-वंदिनि श्रीराधा । अभिलाष-अमंदिनि श्रीराधा ॥२५॥
गोपी-चूड़ामनि श्रीराधा । सुषमा-महिमामनि श्रीराधा ॥२६॥
रामा अभिरामा श्रीराधा । स्यामा सुखधामा श्रीराधा ॥२७॥
रसरासि-रचावनि श्रीराधा । नटराज-नचावनि श्रीराधा ॥२८॥
ब्रजजीवन-जीवनि श्रीराधा । निरवधि-रसपीवनि श्रीराधा ॥२९॥
जमुनाजल-बिहरिनि श्रीराधा । लीलामृत-लहरिनि श्रीराधा ॥३०॥
निगमादि-अगम्या श्रीराधा । प्रेमावधि-रम्या श्रीराधा ॥३१॥
जगवंदन-वंदित श्रीराधा । नँदनंदन-नंदित श्रीराधा ॥३२॥
निस-जागर-भ्राजित श्रीराधा । सुखसेज-बिराजित श्रीराधा ॥३३॥
ब्रजचंद-चकोरी श्रीराधा । वृषभानु-किसोरी श्रीराधा ॥३४॥
ब्रजमोहन-मोहिनि श्रीराधा । अभिलाषनि-दोहिनि श्रीराधा ॥३५॥
वृंदावन-सोभा श्रीराधा । क्रीड़ा-नग-गोभा श्रीराधा ॥३६॥
अतिसय-रति-रूपिनि श्रीराधा । माधुर्य-अनूपिनि श्रीराधा ॥३७॥
कमनीय कुमारी श्रीराधा । हरिवल्लभ-प्यारी श्रीराधा ॥३८॥
श्रीकृष्णाकर्षिनि श्रीराधा । आनँदघन-वर्षिनि श्रीराधा ॥३९॥
दिव्यांसुक-वेसी श्रीराधा । अति मंजुलकेसी श्रीराधा ॥४०॥
अभिसार-प्रपन्ना श्रीराधा । अत्यंत प्रसन्ना श्रीराधा ॥४१॥
कल-केलि-पयानिधि श्रीराधा । रसरीति-रहःसिधि श्रीराधा ॥४२॥

२४—लंदन की प्रति के पृष्ठ पर ये पंक्तियाँ और हैं—मित मद साँसनि श्रीराधा । गोपीसर्वसमान श्रीराधा । २६ सुषमा—सुख की । मनि—मनि (लंदन) । लंदन की प्रति में एक पंक्ति और है—निर्भय मन ध्यानि श्रीराधा । २७—रामा—राधा (मुद्रा०) । ४२—रहः०—रही साधि (लंदन) ।

गिरिपूजन

चौपाई

गिरि गोधन-पूजन दिन आयौ । ब्रजबासिन को अति मनभायौ ॥१॥
घर घरनी सुत वित कुसरात । गोधन पूजि लहत सुख सात ॥२॥
याकौ चाव बरस दिन रहै । गोधन पै माँगत सुख यहै ॥३॥
गिरि गोधन पूजिवे उछाह । हँसनि घर घर चढ़े कराह ॥४॥
होन लगे बहु बिधि पकवान । तिनकौ कथ लौं करौं बखान ॥५॥
भरि भरि डला सकट अरु काँवरि । हिय जिय गोधन-पूजनि भाँवरि ॥६॥
या बिधि सजि ब्रजपति के साथ । सकल घोष धावत गिरिनाथ ॥७॥
ता छिन की छबि कहियै कहा । देत दोहनौ भरि मुद महा ॥८॥
गावत गीत ढोल ब्रजतिय कै । को बरनै उछाह हिय जिय कै ॥९॥
स्याम राम की जोट सुहाई । सबके मन-नैननि सुखदाई ॥१०॥
रंगनि करत ग्वालनन संग । ब्रजमोहन सबको सब अंग ॥११॥
दीपदान औसर की दीपति । सब दिसि कौं दीपनि सौं लीपति ॥१२॥
मावस पै पूनो ह्वै रही । यह धुनि कैसैं आवति कही ॥१३॥
ब्रज को चंद उजागर स्याम । आँखियनि तारो प्यारो नाम ॥१४॥
गिरि गिरिधर दीपति के धाम । मनिभूषन-भूषित अभिराम ॥१५॥
मुकुट करे मेखला सुदेस । मन जानै या सुख को देस ॥१६॥
गोपी-गोप-भीर अति भारी । परिकरमा की हौं बलिहारी ॥१७॥
इक आपनो साथिनि कौं टेरति । और कोऊ बिछुरे कौं हेरति ॥१८॥
महा कुलाहल की धुनि होति । भाजत जग स्रवननि की छोति ॥१९॥
रोहिनि जसुमति को समाज जहँ । रौरि बाल है कान्ह कुँवर तहँ ॥२०॥

[२] कुसरात=कुशल । सुख०=सातों स्वर्गों का सुख । [६] डला=डाला, डौरा । सकट=शकट, गाड़ी । काँवरि=बहँगी । [१०] जोट=जोड़ा । [१६] सुदेस=सुंदर । [१९] छोति=स्पर्श । भाजत०=जगत जब कानों को स्पर्श करती है तो जग भागता है । जग की आसक्ति छूट जाती है ।

गोद भराय फिरत कछु बाँटत । मधुमंगल लै लै फिरि बाँटत ॥२१॥
या बिधि इहि परिकरमा देत । कबहूँ नंद कनियाँ करि लेत ॥२२॥
गिरिधर पावन पायन पायन । उतरि चलत भरि गोधन भायन ॥२३॥
गावनि गावनि सुरनि बिराजनि । नख-जगमगनि हुरत ससि लाजनि ॥२४॥
यह छबि मन जानै कै नैन । अह कैसैं हूँ कहत बनै न ॥२५॥
जसु मैया सिहाति सुख देखति । सब बिधि भाग-सफलता लेखति ॥२६॥
सबके जीवन सबके प्रान । गिरिधर सबही कौं सुखदान ॥२७॥
गैयनि रखवारो बलवान । खेलत हरयौ अमरपति-मान ॥२८॥
गोबिंद लाल रँगीलो नाँव । कहि कहि जीवत सब ही गाँव ॥२९॥
गोधन पूजि नंद घर आए । घर घर घोष बधाए गाए ॥३०॥
बल मोहन चिर जियौ सुहाए । जिनपै सुख-संजोग दिखाए ॥३१॥
नित नित नए नए सुख सरसौ । ब्रजबन गिरि आनँदघन बरसौ ॥३२॥
नीके रहौ लहौ सुख सदा । बिलसौ अपनी ब्रज-संपदा ॥३३॥
कुलमंडन ब्रजराज-दुलारो । ब्रजजीवन ब्रजलोचन-तारो ॥३४॥

---

[२१] मधुमंगल=श्रीकृष्ण का एक सखा। [२२] कनियाँ=गोद। [२३] पायन=पैरों से। भाय=भाव, प्रेम। [२४] गावनि=गाना। [२८] अमरपति=इंद्र। [३०] घोष=अहीरों का गाँव।

विचारसार

चौपाई

कृस्न-कृपा हौं सदा मनाऊँ । कृस्न-कृपा तैं कृस्नहि गाऊँ ॥१॥
कृस्न-कथा-रुचि अंतर बाढ़ी । मोहन-मूरति आगैं ठाढ़ी ॥२॥
रसना कृस्न-गुननि गुन-ग्रसी । सब बातनि हाँसी करि नासी ॥३॥
कृस्न-गुननि कौ यहै सुभाव । चित चढ़ि बढ़त चौगुनो चाव ॥४॥
कृस्न-गुनानुवाद ही भावै । अब कछु और न मन मैं आवै ॥५॥
बानी कृस्न-कथा-रुचि रची । रसना सुजस बखानत नची ॥६॥
कृस्न-ललित-लीला-रस-पगी । सोवत हूँ गुन-गनना जगी ॥७॥
कृस्न-मधुर-रस रसना भाग । पायौ परम-प्रेम-पन-पाग ॥८॥
बचन मौन मैं कृस्नहि बोलैं । रसना कृस्न-चरित्र कलोलैं ॥९॥
कृस्न-नाँव-सुख-स्वाद अगाध । समझत कृस्न-सनेही साध ॥१०॥
कृस्न कृस्न ही सर्बस मेरो । कृस्न कहै ताकौ हौं चेरो ॥११॥
कृस्नकथा-प्रेमामृत-धार । कृस्न नाम सब स्रुति को सार ॥१२॥
कृस्नकथा अघओघनि हरै । मो से नीचहिं उत्तम करै ॥१३॥
कृस्नकथा अगतिन की गति है । धनि धनि ते जिनकै यह रति है ॥१४॥
कृस्नकथा महौषधी आहि । संसै-रोग मिटहिं सुनि याहि ॥१५॥
कृस्न नाम रसना जब भाखै । बिषै-महाबिष फिर क्यौं चाखै ॥१६॥
कृस्न कहत ही सब दुख जाहिं । तनकौ संसै यामैं नाहिं ॥१७॥
कृस्नकथा जे बैननि सुनावैं । तेई सुजन मोहि अति भावैं ॥१७॥
कृस्ननाम-हिय आसा राखौ । जान्यौ कृस्न कृस्न ही भाखौ ॥१९॥
कृस्न नाम अभिलाष पुजावै । तबही कृस्न कृस्न कहि आवै ॥२०॥
कृस्न कहे तैं परम पुनीत । स्रवननि मंगल हरिगुन-गीत ॥२१॥
एक बार जो कृस्न कहैगो । आनँदघन-रस भीजि रहैगो ॥२२॥
कृस्न परम रस को निरजास । कृस्न-कृपा तैं यह बिसवास ॥२३॥

[३] गुन=रस्सी। ग्रसी=बँधी। बात=बातें, विषय। [१०] साध=उत्कट इच्छा। [२३] निरजास=(निर्यास) निचोड़।

कृस्न नाम गुरु दियौ अगाध। रह्यौ मह्यौ आनंदघन साध ॥२४॥
केवल कृस्न कहौं अरु सुनौं। कृस्न-गुनानुबाद ही गुनौं ॥२५॥
कृस्नकथा सौं भरयौ भाव। रसन स्रवन यह सहज सुभाव ॥२६॥
कृस्नकथा को परयौ स्वाद। समझि तज्यौं सबही बकवाद ॥२७॥
कृस्नकथा कौ जु कछु मिठास। अनुभव रसना कौं अनयास ॥२८॥
कृस्नकथा परमानंद-सोत। कृस्नकथा अनुराग-उदोत ॥२९॥
कृस्नकथा परमारथ-बेलि। बर झालरी मधुर ब्रजकेलि ॥३०॥
कृस्न कृस्न बानी को भूषन। या बिन बावदूकता दूषन ॥३१॥
कृस्नकथा-सुख सनक बखानैं। ईस गिरीस सेष सुख जानैं ॥३२॥
कृस्नकथा-रस नारद पियैं। उनमद फिरत जिवावत जियैं ॥३३॥
कृस्नरसासव निरवधि छाक। ब्रह्मादिकनि रंक जिमि नाक ॥३४॥
कृस्नकथा-मादक जो छकै। गहै अगम गति ऐसौ थकै ॥३५॥
कृस्न कहै अरु कृस्न कहावै। कृस्न बिना न और कछु भावै ॥३६॥
निगम-सार है कृस्न-कहानी। नितलीला-बिनोद-रस सानी ॥३७॥
कृस्न नाम उर-अजिर-प्रकासक। ताप अनेक एक दुखनासक ॥३८॥
कृस्नकथा आनंद-रसायन। गावत अनिस ब्यास द्वैपायन ॥३९॥
बरनत स्रुति भागवत पुरान। लह्यौ रहत ताही रसपान ॥४०॥
कृस्नकथा बरनै सो रसना। या बिन बृथा बाद मैं रस ना ॥४१॥
कृस्नकथा संतन को धन है। कृस्नकथा ही सौं हित-पन है ॥४२॥
कृस्नकथा-रस निसदिन पियैं। कृस्नहि गाय गाय नित जियैं ॥४३॥
कृस्न मूलमंत्र है हमारौ। जपि जपि जियरा होत सुखारौ ॥४४॥
कृस्न कहत सब दुख दुरि गए। उदय भए नित मंगल नए ॥४५॥
कृस्न सुनत सुख बाढ़त हियैं। जीवत प्रान कृस्नरस पियैं ॥४६॥
कृस्नकथा-फल कृस्नकथा है। और कछू समझिबौ बृथा है ॥४७॥

[३०] झालरी=हरीभरी। [३१] बावदूकता=वाग्मिता, बकवास। [३२] सनक=प्रसिद्ध मुनि, निंबार्क-संप्रदाय के आदि-प्रवर्तक। [३४] छाक=तृप्ति। नाक=स्वर्ग। [३८] अजिर=आँगन। [३९] अनिस=अहर्निश, रातदिन, निरंतर। ब्यास०=कृष्ण द्वैपायन व्यास, पुराणों के कर्ता।

कृस्न नाम ही कृस्न-मिलाप। कृस्न कहन को यहै प्रताप ॥४८॥
कृस्न कृस्न रसना-रट लागी। कृस्नकथा-रति अंतर जागी ॥४९॥
कृस्नकथा तैं मन न अघाय। भावत यहै न और सुहाय ॥५०॥
कृस्नकथा-मधुरिमा अपार। कृस्नकथा सब स्रुति को सार ॥५१॥
कृस्नकथा-सुख सदा अखंडित। कृस्न कहै अरु गहै सु पंडित ॥५२॥
कृस्नचरित चिंतामनि-दाम। हरत फेरत पूरनकाम ॥५३॥
कृस्न नाम-लावन्य भरयौ है। मधुरिम-सार सकेलि धरयौ है ॥५४॥
कृस्ननाम-गुन कहियै कहा। कहत मौन सुख लहियै महा ॥५५॥
कृस्न अपूरब सुख को सिंधु। कृस्न कहैं तेई जन बंधु ॥५६॥
बुधि सोई जो कृस्न-सुधि साधै। सब दिस तैं मन कौं अवराधै ॥५७॥
एक कृस्न उर-अंतर फुरै। अन्य भाव नीके करि दुरै ॥५८॥
कृस्न कृस्न देखत ही फिरै। निसरत साँस कृस्न-गुन-भिरै ॥५९॥
बैठत उठत कृस्न ही सूझै। सोएँ जगें कृस्न-गति बूझै ॥६०॥
कृस्न सुमिरि भूलें सब बातैं। कृस्नकथा-रति कृस्नकथा तैं ॥६१॥
कृस्नकथा बिन कथा न दूजी। कृस्न कहत सब आसा पूजी ॥६२॥
कृस्न स्यामसुंदर ब्रजमाली। मधुर किसोर परमसुखसाली ॥६३॥
कृस्न कलपतरु आनँदमूल। लसत कलिंदनंदिनी-कूल ॥६४॥
श्रीबृंदावन कृस्न-सुधाम। बसत निरंतर अति अभिराम ॥६५॥
लीला-मगन कृस्नरस-सागर। गुननिधि गोपीनाथ उजागर ॥६६॥
कृस्न-सरूप कहत नहिं आवै। मोहन मनमथ-जूथ लजावै ॥६७॥
मुरली धरैं त्रिभंग बिराजैं। मोहन सुधुनि अखंडित बाजैं ॥६८॥
ब्रजबन ब्यापि रहति धुनि भाई। बिस्वबिमोहन कृस्न कन्हाई ॥६९॥
अमित कृस्नमहिमा क्यौं कहियै। देखत देखत देखत रहियै ॥७०॥
यहै कृस्न को सुभग सरूप। अद्भुत अमल अखंड अनूप ॥७१॥
या सरूप को मोहन ध्यान। हिय जिय बसौ बिलासनिधान ॥७२॥
गोपभेष ब्रजराजकुमार। यहै कृस्न सो प्रान-अधार ॥७३॥

[४९] अंतर=हृदय में। [५३] दाम=माला। [५८] फुरै=स्फुरित हो जागे, प्रकट हो। दुरै=छिप जाते हैं।

कृष्न कृपाकर पूरन चंद। अमल अपूरब परमानंद ।।७४।।
सदा सुनमुखी सब दिन दरसैं। मंद हसनि आनँदघन बरसैं ।।७५।।
दृग-चकोर चित-चातक पोषै। अगनित कला सदाइत तोषै ।।७६।।
ऐसे कृष्नचंद की हौं बलि। रूपसुधा सौं प्रान रहौं पलि ।।७७।।
कृष्नचंद आनंद-उदोत। ब्रज मैं जगमग जगमग होत ।।७८।।
सब जग-तारो कृष्न उज्यारो। ब्रजमोहन ब्रजजीवन प्यारो ।।७९।।
अमल कृष्न-कीरति-चंद्रिनी। खिलि खुलि रही जगत-बंदिनी ।।८०।।
सबको सब ठाँ सुजस प्रकासै। जग-चकोर-चिता-तम नासै ।।८१।।
पूरन गोकुलचंद सदाई। रुचिर केलि-किरनावलि छाई ।।८२।।
सुख सीतलता अमल अमंद। जै जै जै श्रीगोकुलचंद ।।८३।।
आनँद-अमी स्रवत सब ही कौं। मोद-बिनोद बढ़ावन जी कौं ।।८४।।
असुर मनोस उलूक न देखैं। सखा चकोरनि पोषि-परेखैं ।।८५।।
रसिकवृंद आनंद बढ़ावैं। गुन सुछंद बिरुदावलि गावैं ।।८६।।

दोहा

सब बिचार को सार है, या निबंध को मान।
श्रीगोपी-पद-रेनु-बल, बानी कियौ बखान ।।८७।।
निरवधि बस्तु अगम्य अति, सब बिचार तें दूरि।
रसिकसिरोमनि-कृपा तें, लही सजीवन-मूरि ।।८८।।

———

[८०] चंद्रिनी=चाँदनी। [८४] अमी=अमृत। [८५] पोषि०=(देखने पर) उत्साह, (न देखने पर) अनुत्साह।

दानघटा

सवैया

गोपी—

छैल नए नित रोकत गैल सु फैलत कापै अचैल भए हौ।
लै लकुटी हँसि नैन नचावत कौन रचावन मैन-तए हौ।
लाज अचै बिन काज लगौ गिनहौ सौं पगी जिन रंग रए हौ।
ऐंड़ सबै निकसैंगी अबै घनआनँद आनि कहा उनए हौ ।।१।।

श्रीकृष्ण—

है उनए सु नए न कछू उघटै कित ऐंड़ अमैंड़ अमानी।
बैन बड़े बड़े नैनन के बल बोलति है क्यौं हतौ इतरानी।
दान दिये बिन जान न पाइहै आइहै जौ चलि खोरि बिरानी।
आगे अछूती गई सो गई घनआनँद आज भई मनमानी ।।२।।

गोपी—

जाय करौ उहि माग पै लाड़ बढ़ाय बढ़ाय किये इतने जिन।
भीति की तीरनि खोरनि है सरसा हठ भोरनि सौं समझे बिन।
दान न कान सुन्यौ कबहूँ कहूँ काहू कौं कौन दयौ सु लयौ किन।
दौंकिक है घनआनँद डाहन काटत क्यौं नहीं दीनता सौं दिन ।।३।।

श्रीकृष्ण—

दैहिलो दान सो गैहै इतै नहीं पैहै अबै सु किये को सबै फल।
बाधा दुहाई सुहाई कहौ जिय जानि कै मानि छुटै न किये छल।

१—अमानी-अमानी (कवित्त)। हतौ—हतै (वृंदा०)। ३—बढ़ाय०—बढ़ाय बढ़ाय (वृंदा०)। कौन—कौन (कवित्त)।

[१] अचैल=चढ़नेवाले। मैन०=कामतप्त, मदनपीड़ित। अचै=पीकर। लगौ=लगते हो। रए=अनुरक्त। [२] उघटै०=ताना मारती है। अमैंड़=मर्यादा न माननेवाली। धुज=कर। खोरि=गली। बिरानी=पराई। अछूती=कोरी, बिना कर दिए। [३] भीति०=गली में तंकना भीत से भिड़ना है। दौंकिक=पेड़।

एक ही ओक दै जाहु चलो झगरो सगरो मिटि जात परै सल ।
नावँ परयौ अबला घनआनँद ऐंठति गैठनि भौंह किते बल ।।४।।

गोपी—

जोभ सम्हारि न बोलत हौ मुँह चाहत क्यौं अब आयौ थपेरैं ।
ज्यौं ज्यौं करौ कछु कानि-कनौड़ त्यौं मूड़ चढ़े अड़े आवत नेरैं ।
खाय कहा फल माय जने जिय देखौ बिचारि पिता-तन हेरैं ।
कंज-कनेरहिं फेर बड़ो घनआनंद न्यारे रहौ कहौं टेरैं ।।५।।

श्रीकृष्ण—

लेहु भया गहि साँझन तैं दधि की मटुकी अब कानि करौं कित ।
जैसे भ्रौं तैसे भए ही बनैं घनआनँद धाय धरौ जिय को तित ।
एकहि एक अराधि जाहु करौ अपने अपने चित को हित ।
फेरिये क्यौं हूँ हाथ सकेरिये जो विधना घर बैठे दयौ वित ।।६।।

गोपी—

गोद भरै बित धाय कैं जाय धरौ गहि गोद सौं माय के आगे ।
पेट परे को लखै फल क्यौं निपजे हौ सपूत सु भागनि जागै ।
बाँटिहै बाँलि सगाई कमाई की जाति मैं जातें महा पति पागै ।
बाम लिये की यहै गुन है घनआनँद जो छिन छाँह न लागै ।।७।।

४—देहुगे—देहुगे । झोल—झोल (कवित्त) । ५—चाहत—नाहत (वृं दा०) । मूड़—मूड़ (वही) । हेरैं—तेरैं (कवित्त) । ६—भया—भैया (वृं दा०) । ७—गुन—फल (कांकरा) । जो—और (वृं दा०) ।

[४] सुहाई=रुचनेवाली । जानि०=जान मानकर । ओक=अमानत । पात०=बात में परत पड़े, बस समाप्त हो । ऐंठति०=टेढ़ी मेढ़ी होती है । [५] कानि०=मर्यादा और एहसान का विचार । नेरे=निकट । फेर=अंतर । न्यारे=पृथक्, दूर । [६] भया=भैया । कानि=प्रतिष्ठा । एकहि०=एक के साथ एक मिल जाओ । सकेरिये=संचित करो । [७] पेट०=गर्भ में तुम्हें धारण करने का । निपजे हौ=उत्पन्न हुए हो । पति=प्रतिष्ठा ।

मधुमंगल—

नंदलला रससागर सौं ललिता रिस को सलिता न बढ़ैयै ।
नागरि आगरि हौ सहु भाँति तुम्हैं अब कौन सी बात पढ़ैयै ।
चोख न तोष नहीं उपजै घनआनँद क्यौं गुन दोष कढ़ैयै ।
नेकु टरैं सुधरैं सब काज अकाज इतो अपलोक मढ़ैयै ।।८।।

ललिता—

सुनि रे मधुमंगल ! दान-कथा सु जथारुचि होत वृथा हठ है ।
कर जोरि दिखाय दया, मृदु ह्वै चलियै बहु भाँति बिनै करि नै ।
घनआनँद ऐंठ अमैंठ किये कहा पैयत है रिझवारन पै ।
गुन गाय रिझावहु देहिं अबै वृषभानलली की निछावर कै ।।९।।

सखा—

स्याम सुजान सबै गुनखानि बजावत बैन महा सुर साँचनि ।
अंग त्रिभंग अनंग-भरे दृग भौंह नचाय नचावत नाँचनि ।
कीरतिजा कुलमंडन जौ निरखै भरि नैन चढ़ै सुख-आँचनि ।
दान हँसैं लुकिहै घनआनँद रीझनहीं रचिहै हित-खाँचनि ।।१०।।

सखी—

आवौ सखी चलि कुंज मैं बैठि लखैं घनआनँद की सुघराई ।
पैठत देहिं न नैंकै मनौ अकिलै इन्हैं लेकि करैं मनभाई ।
भावती टेक रही बहु भाँति किये न बनै अनि ही कठिनाई ।
लेत हौं राधे बलाय कह्यौ करि आज मनौ इतनो हम पाई ।।११।।

८—सहु—बहु (कवित्त) । ९—करि नै—करहै । ऐंठ—ऐंठ । कहा०—कहियै कहा पै अब पैयति है; गुन०—रिझवारिनि पै गुन गाय रीझावहु देहिं लली की निछावरि है (वही) । १०—जौ—ज्यौं (कवित्त) । हित—कित (वृं दा०) ।

[८] सलिता=सरिता, नदी । सहु=सब । चोख=तीक्ष्णता, तेजी । अकाज=व्यर्थ । अपलोक=कलंक । [९] मधुमंगल=श्रीकृष्ण का एक सखा । जोरि=जोड़कर । बिनै=विनय, प्रार्थना । नै=झुककर । ऐंठ०=टेढ़ामेढ़ा होने से । पै=से । [१०] कीरतिजा=श्रीराधा । हित०=प्रेम की आग । [११] सुघराई=चतुरता ।

राजदुलारी - भरी इकसार सुभाय मथे मन डारति पी को।
कुंज चली सुखपुंज अली सँग भाल बिराजत लाज को टीको।
लोचन-कोरनि छोरनि छ्वै मुसिकानि मैं ह्वै दरसै हित ही को।
बोलनि माधुरी वारियै वारि लखैं घनआनँद रूप लली को ॥१२॥

रंग रच्यौ सु न जात कह्यौ उमह्यौ सुखसागर कुंज मैं आएँ।
केलि पर्यौ रस को झगरो अति ही अगरो निबरै न चुकाएँ।
काहू सम्हार रही न भटू तनकी मन मैं घनआनँद छाएँ।
प्रेमपगे रिझवारन की तहँ रीझ कै रीझ ही जीत बसाएँ ॥१३॥

दोहा

गानघटा मिलि छबिछटा, रसधारनि सरसाय।
जियत पियत औरै न छियत, रसिक-पपीहा पाय ॥१४॥

दानघटा - रसपान कै, चातक रसिक सुजान।
बरखनि लसत चसके चखत, रखत तृषित ह्वै कान ॥१५॥

गानघटा सींचित सदा, मधुर केलि नव बेलि।
आलबाल पचि रचि सुमन, जीत रसिक रस केलि ॥१६॥

———

१२—राज०—राजदुलारी (वृंदा०)। सुभाय—सुहाय (वही)। १३—केलि—केलि (कवित्त)।

[१२] इकसार = समान ढंग से। हीं=हृदय। [१३] अगरो=अधिक, बढ़कर। निबरै=समाप्त करने पर भी समाप्त नहीं होता। रीझ०=स्वयम् रीझ को रीझकर।

भावनाप्रकाश

चौपाई

राधा - मोहन - जोट अनूप। अमल अमंद अपूरब रूप ॥१॥
इनकी लीला अचरज - खानि। कौन सकै या मरमहिं जानि ॥२॥
निरवधि प्रेम-अवधि अति सोहन। मंगल-मुकुट सनातन मोहन ॥३॥
निगम-हृदय सिव को धन यहै। गवरी सों कबहूँ जो कहै ॥४॥
ताहि गूढ़ को गाढ़ जताय। कृपादृष्टि कछु दियौ बताय ॥५॥
सो ब्रज बृंदावन मैं बसै। गुपत प्रगट सुखंदता लसै ॥६॥
दरसै परसै अपने ढारनि। बरसै कृपाकंद रुचि-धारनि ॥७॥
नंदीसुर बरसानो गाँव। जगमनि मोहन-राधा-नाँव ॥८॥
बरन स्याम अरु गौर सुबेष। अतुल माधुरी अमित असेष ॥९॥
परिकर-निकर कहाँ लौं कहियै। इनकैं सुख सबको सुख चहियै ॥१०॥
नित त्यौहार दुहूँ घर रहै। घर घर ब्रज ब्यापक सुख यहै ॥११॥
नित ही भाँति चाव टहलें। सबकौं सब बिधि लागत भलें ॥१२॥
सबके लोचन सबके प्रान। हरि-राधा-अनुराग-निधान ॥१३॥
नव नव भाँति नवल रुचि लियैं। बिहरत सबकौं सब सुख दियैं ॥१४॥
लीला ललित भेद बहु भाव। जब जैसो तब सबै बनाव ॥१५॥
ठौर ठौर की रचना नई। आनंदमूरति अचरजमई ॥१६॥
ब्रजबन के प्रदेस अति उत्तम। बिसद बिहार उदार सदा सम ॥१७॥
अति कमनीय अलौकिक रचना। कहा कहौं कछु बनै न बचना ॥१८॥
रमन - भूमि कालिंदी - कूल। बृंदाबन बिहार - अनुकूल ॥१९॥
सुषमा - सदन सदा सर्वोपर। अति अद्भुत भाँतैं दरसत धरन पर ॥२०॥

२०—दरसत—दरसै (वृंदा०)।

[४] गवरी=गौरी, पार्वती। [५] गूढ़=रहस्य। गाढ़=कठिन। [६] सुखंदता=स्वच्छंदता। [७] ढार=शैली। [८] नंदीसुर=नंद-यशोदा का गाँव। [२०] धरन=धरा पर।

मनहिं अगम्य सहज मन-रूप । जयति जयति मनराज अनूप ॥२१॥
राधा-मोहन-बर-बिनोद - थल । दरसत सरसत बरसत मंगल ॥२२॥
मदनायक निसंक जहँ खेलत । मनबांछित सुखपुंज सकेलत ॥२३॥
रमनीमनि श्रीराधा प्यारी । ऐसी जोरी की अधिकारी ॥२४॥
मधुर बैस नव जोबन जगी । दुहुँनि ठगौरी दुहुँनि लगी ॥२५॥
रहत डीठि मौं डीठि समाएँ । आरति डारति मनहिं बिलोएँ ॥२६॥
निपट सुतंत्र महा परबस ये । भींजे फाँस भाँति के रस में ॥२७॥
इनकी गति सु कौन मति भरै । बिथुरनि मिलनि कछु न सुधि परै ॥२८॥
अमित ओज क्यौं बरनि बनैयै । मोय मोय आचरज ही पैयै ॥२९॥
परसि न सकियै इनहीं पैयै । इनही तैं इनकी बलि जैयै ॥३०॥
मनबन बसत जुगल अनुरागी । भरे संजोग महा बैरागी ॥३१॥
सहज लगन अति अलग लगी है । महामोद की नींद जगी है ॥३२॥
कौन लहै इनके मन की गति । इनहीं कौं इनके पन की पति ॥३३॥
इनको नाम लेन ही बानी । होति महारसनिधि-ठकुरानी ॥३४॥
लेत लेत नामैं गुन फुरैं । तेई तब मानो त्यौं दुरैं ॥३५॥
जदपि कृपा उर-अंतर दुरैं । निपट दूरिहूँ आसन नेरैं ॥३६॥
यौं कछु कहौ परै तौ परै । रिझवारनि की रुचि अनुसरै ॥३७॥
राधा-मोहन अति बड़भागी । गौर स्याम मूरति रस-पागी ॥३८॥
कहियै कहा सरूप-निकाई । इनकी मति इन माँझ बिकाई ॥३९॥
भीजे रहत रीझ-रस नागर । सब-गुन-आगर गुपत उजागर ॥४०॥
महामधुर कमनीय जुगल बर । इनहीं कौं दीजै इन पटतर ॥४१॥
प्रेमबिबस न गनत निसि भोर । चाह दुहुँन के चंद-चकोर ॥४२॥
केलि-कला-पंडित रसमंडित । नितनव-नवरुचि-रचे अखंडित ॥४३॥
हित सदेह के सुगुनि समेटत । अति अभिलाष-भरे भरि भेटत ॥४४॥

२५-नव-भए । ३५-तब-भरा (लंदन) ; ३६-है-ऐ (वृंदा०) ।

[२५] ठगौरी=ठगविद्या । [२६] समाएँ=लीन किए हुए । आरति=लालसा । बिलोएँ डारति=मथे डालती है । [३३] पति=प्रतिष्ठा का ध्यान । [४१] पटतर=समता ।

तके रहत मिलिबे की घातनि । समुझत नैन-सैन की बातनि ॥४५॥
निपट नवेलो नेह निबाहत । मगन मनोरथ-सागर गाहत ॥४६॥
महाधीर अरु अधिक अधीर । परम सुखी परिपूरन-पीर ॥४७॥
इनको प्रेम पूरि ब्रज रह्यौ । सब लीलनि मैं रसिकनि लह्यौ ॥४८॥
सबके हियहिं साधि सुख साजत । चतुरसिरोमनि भाग बिराजत ॥४९॥
नैन-हियैं रंगनि भरि देत । या बिध सौं समीप-सुख लेत ॥५०॥
औरै दिन इनकैं निस औरैं । इनकी गति ज्यौंरति मति बौरै ॥५१॥
मनबन के सुख सदा मनावत । भाँति भाँति मन मैन सिरावत ॥५२॥
निकसत बन बिहरत अधिबनियनि । हितबतियनि कहि मिलवत छतियनि ॥
ललक लालसा उमग बढ़नि सौं । उरझनि आधी अधर कढ़नि सौं ॥५४॥
अतुल प्रेम-रस ओज-उफानैं । निरवधि रुचिर-मेल सुख-सानैं ॥५५॥
मानौ मेघ दामिनि मिलि परसैं । कहा कहौं जैसी छबि दरसैं ॥५६॥
केलि-रसिक अपानि क्यौं आवैं । मिलै अनमिलैं केल्यैं भावैं ॥५७॥
केलि-कुसलता कहौं कहा लौं । पहुँचनि पहुँचति नाहिं जहाँ लौं ॥५८॥
अविरज-दाव उपावन भरे । ब्रज बसि रस-रस-चसकै परे ॥५९॥
घरनि घात खरिकनि की हेट । मिस ब्यौहार ह्वै रहै भेट ॥६०॥
जमुना-घाटनि गहबर-बाटनि । चतुरा-पाज पैजपन-पाटनि ॥६१॥
इनकी गह इनही पै फबै । सब जानत पै लहत न कबै ॥६२॥
मोहन राधा मिलत मनराज । औरैं साँझ औरै परभात ॥६३॥

४६-मनोरथ-मनोहर (वृंदा०) । ५१-इनकैं-इनको (वृंदा०) । ५२-मैन-मैन (लंदन) । ५५-उफानैं-उफनौ (लंदन) । ५७-केल्यैं-केल्यौ (वृंदा०) ६२-गह-गुह (लंदन) ।

[५१] ज्यौंरति=विचार करती हुई । [५२] मैन०=कामशांति करते हैं । [५६] छबि=शोभा । [५८] पहुँचनि०=जहाँ पहुँच की भी पहुँच नहीं है । [५९] चसकै=चाव, टेव; चसक । [६०] खरिक=पशुओं के चरने का स्थान । हेट=संकेत, संकेतस्थल । [६१] गहबर=गुप्त स्थान ; चतुरा=चातुर्य । पाज=बाँध । पैज=प्रतिज्ञा । पाटनि=पूर्ण करना, निबाह करना । [६२] गह=टेक ।

इनके रँगनि मसैं हूँ रचैं । बड़भागिन सब कोऊ लचैं ॥६४॥
रसिकराय चूड़ामनि सबके । साँवल गौर छबि मिसं दम के ॥६५॥
प्रेमसरोवर - ढिग संकेत । घट-बढ़वारि दुहुँन के हेत ॥६६॥
बरसाने तें लाड़-गहेली । गैंवहिं निकसति सहित सहेली ॥६७॥
सहज बनक ब्रजमोहन-भाग । उमगत रोम रोम अनुराग ॥६८॥
खेलत खेलन रुचि के खेलनि । निरखि सिहाति तरु-लता बेलनि ॥६९॥
पुहुप - पुंज बीनत रँगभीनी । माला रचति नाम गहि भीनी ॥७०॥
सुहृद सखी सिंगारनि मंजें । अधिक मान तें राधें भजें ॥७१॥
राधा कों हित रुचि बिचारें । रीझि अपुनपौ वारि निहारें ॥७२॥
नंदीसुर के कान्ह अवगारें । बसहूँ रहत सिंगार गुन-आगारें ॥७३॥
बिहवल सरहि सरकि निचरात । जिन मिलि रही मिलन की घात ॥७४॥
निबट गहन गहबर तरु-छाँहीं । पर्नसालिका जहाँ तहाँ हीं ॥७५॥
सहज भाव की भेंट अचानक । बिधना सबी मनोरथ आनक ॥७६॥
हिलनि मिलनि बिरवलता की गति । देखें बनै अलौकिक अति रति ॥७७॥
ये रसनायक नायक धुर के । पढ़े पढ़ाए पूरन गुर के ॥७८॥
जानत मनै सनेह - निकाई । सबतें न्यारी प्रेम - लगाई ॥७९॥
सबै बात मनभाई पाई । जु कछु रुची रचना बनि-आई ॥८०॥
ब्रजबन ये ही कौतुक देखौ । राधा - मोहन - प्रेम बिसेखौ ॥८१॥
खग मृग द्रुम बेली जित तित हीं । या रस बीच पगि रहे नित हीं ॥८२॥
सब ब्रज रँग्यौ अपूरब हित हीं । सुन्यौ न कित हीं देख्यौ इत हीं ॥८३॥
दान केलिरस रास - बिलास । सुखद सनातन ब्रजबन-बास ॥८४॥
लीला ललित रसामृत सरसैं । गौर स्याम आनँदघन बरसैं ॥८५॥
मुरली-गरज ब्यापि अति रही । चित हित-काँप परति नहिं कही ॥८६॥
गाँव गाँव ब्रज प्रेम अखंड । परिपूरन रस अमल अखंड ॥८७॥
गोपी गोप गाय अरु ग्वार । छके रहत लीला - रस-सार ॥८८॥

[६४] लचैं=लचता है । [७०] भीनी=पतली । [७३] अवगारैं=[illegible]-वाले या अवगारैं=नटखट । [७५] पर्नसालिका=कुटिया, पत्तों से बना घर । [७६] आनक=संयोग । [७८] धुर के=चोटी के, चरम कोटि के ।

नवरँग नवल नवेली सैल । नव राधा नट गिरधर गैल ॥८९॥
सबके प्रिय जिय इनको हित है । इनके हित सबको सुख नित है ॥९०॥
यह समाज देखे हीं जीजै । अद्भुत चरित अमीरस पीजै ॥९१॥
ब्रजबन नवधन रस - आगार । भीजौ आनँदघन - आसार ॥९२॥
दृगनि देखि मन प्रेम कलोलै । सुख - समाज आगे ही डोलै ॥९३॥
नित नैये नित प्रेममई है । प्रीति पुरातन रीति नई है ॥९४॥
या रस को सवाद जौ आवै । रसना फिर न और कछु गावै ॥९५॥
जुगल कुँवर कौं लड़कि लड़ावै । परम प्रेमरस - पारस पावै ॥९६॥
ब्रजबन सहज माधुरी हेरैं । मन फिर गए बहुरि को फेरैं ॥९७॥
श्रीगुरुवर - प्रसाद के लेम । हिये बढ़े आवेस अप्रेम ॥९८॥
रमन-भूमि-रज - अंजन परसैं । तव लीला - सुरूप कौं दरसैं ॥९९॥
निस दिन तन मैं चकित निहारैं । ब्रजसंपति दंपति उर धारैं ॥१००॥
ब्रजरस परम प्रसादहि पाय । रहे सदा आनँदघन छाय ॥१०१॥
अंतर बाहिर ब्रजरस भरे । मौन - विनोद - सिंधु बिहरै ॥१०२॥
भावतरंगनि करि बड़वार । बेसम्हार ह्वै रहे सम्हारि ॥१०३॥
गौर स्याम छबि प्रगट निहारैं । ब्रजजन मनि अति रति उर धारैं ॥१०४॥
बिसरे सुधि उन्मद गति फिरैं । लीलानिधि आवत मन घिरैं ॥१०५॥
जिन रजपरस मरमता कित ई । रज मिलि रहे पाइ पति इत ई ॥१०६॥
हिय मैं वास करौ ब्रजभूमि । तनहूँ रहौ नहीं हौं झूमि ॥१०७॥
यह ब्रजरज ही मेरो धन है । अखिल ब्रजरज ही सों पन है ॥१०८॥
डीठि जानि या रज सौं रहै । चाहौं करौ सदा सुख यहै ॥१०९॥
यह रज चाहि माहि जो सूझै । मेरोई मन सो सुख बूझै ॥११०॥
मोहन-चरन - धरनि दिखरावै । याते कोऊ यह रज भावै ॥१११॥
मोहन-दरस दियो अभिलाखै । रज कौं परस दृग निरख राखै ॥११२॥

८६-८८ [illegible] (नहीं) । ९०-सबको-सबके (वृं०) । ९१-हीं-है । ९३-कलोलै-किलोलै । १०५-आवत-आवत (वृं०) ।

[९२] आसार=वृष्टि । [९६] लड़कि=ललककर । [१०५] निधि=समुद्र । आवत=आवर्त, भँवर ।

या रज की हौं बलि बलि जाऊँ। या रज ह्वै रज ह्वै रलि जाऊँ ॥११३॥
लै या रजहि कहा धौं करौं। प्रानन के संपुट लै धरौं ॥११४॥
यह रज जैसी लागति प्यारी। ब्रजजीवनि जानत जिय-ज्यारी ॥११५॥
अब लौं ब्रजरज लै सिर धरिहौं। रज की सरन चरन अनुसरिहौं ॥११६॥
जब गुपाल आवत गोचारैं। गोपी वारी रजहि निहारैं ॥११७॥
या रज मैं या ब्रज को चंद। बढ़ै होत आनंद अमंद ॥११८॥
या रज रंजित स्याम सवारे। नीके लगत दृगन के तारे ॥११९॥
रज-रगमगे जगमगे मोहन। बिहसत गोपवधुन के गोहन ॥१२०॥
यह रज देखि जियत ब्रजबाला। पहले रज पाछें नंदलाला ॥१२१॥
या रज सौं अब आन बनी है। मति गति रति या रज हि सनी है ॥१२२॥
यह ब्रजरज ब्रजमोहन-मुख सौं। जसु पोंछति आंचर लौं सुख सौं ॥१२३॥
या रज की पदवी अति दूरि। यह रज रसिकनि जीवनिमूरि ॥१२४॥
यह ब्रजरज ब्रह्मादिक जाचत। या रज सौं बड़भागी राचत ॥१२५॥
या रज मैं रसपुंज समोयौ। या रज मैं परमारथ मोयौ ॥१२६॥
यह ब्रजरज जब आंखी लागै। जब समझै ब्रज को अनुरागै ॥१२७॥
यह रज परसि जगै अनुराग। यह रज दरसि जगै बड़भाग ॥१२८॥
यह ब्रजरज प्रानन रस पोषै। यह रज लागि सुहावन दोषै ॥१२९॥
यह ब्रजरज भंजन को मंजन। यह रज परमांजन को अंजन ॥१३०॥
बस्तु-बूझ बिन सूझ न रज की। यह रज सिरभूषन सिव अज की ॥१३१॥
या ब्रजरज की महिमा बाँकी। रज सींची गोपीजन-पग की ॥१३२॥
या रज रंगे चरन-अभिसार। दृगनि लगावत रसिक उदार ॥१३३॥
यह रज पीत बसन सौं पोंछत। सीस छुवाय फिर उरसि अंगोछत ॥१३४॥
ब्रजरज कथा कहाँ लौं कहिबे। या रज की उपमा कौं चहिये ॥१३५॥

११५—जियरी—ज्यारी (वृं॰सं॰)। १२०—गोहन—जोहन (वृं॰सं॰)। १२५—बड़भागी—बड़भांगी (लंदन)। १३२—रज—रस (लंदन)।

[११२] निरज=रजोहीन, निर्मल, रजोगुण से रहित। [११३] रलि=मिल जाऊँ। [११५] ज्यारी=जिलानेवाली। [१२०] रगमगे=रंजित, युक्त। गोहन=साथ। [१२३] जसु=यशोदा। [१३०] पां=पैर। [१३४] उरसि=उर में।

आसवास या रज मैं राखौं। या रज तें रज ही अभिलाखौं ॥१३६॥
रज ही सेऊँ रजहिं अराधौं। ब्रजरज ही निज साधन साधौं ॥१३७॥
सिद्ध भए रज मिलौं मिलै जौ। सुख परसौं ब्रजरजधानी कौ ॥१३८॥
ब्रजरज कृष्णकृपा करि पूरन। ब्रजरज विरहव्यथा हित-चूरन ॥१३९॥
ब्रजरज परसि मिटै भ्रम व्याधि। ब्रजरज हरै हिये की आधि ॥१४०॥
को समझै ब्रजरज-अधिकारै। सीस चढ़ै जो रज यह धारै ॥१४१॥
ब्रजरज निज सुरूप दरसावै। या रज की गति कछु कहि आवै ॥१४२॥
रज दरसै तौ सब कछु दरसै। रज परसे बिन प्रेम न परसै ॥१४३॥
ब्रजरज को आसरो लीजियै। लोकलाज सिर धूरि दीजियै ॥१४४॥
रजपन बाँधि जगफंद छूटियै। रजहि पाय रसरासि लूटियै ॥१४५॥
यह ब्रजरज दुर्लभ है महा। या रज कौं पावै ही कहा ॥१४६॥
रजहि रहै मिलि तब रज सो। निरखै निज समाज सुखसाज सो ॥१४७॥
ब्रजरज ब्रजरज ब्रजरज एक। रज ही सौं साँचो पन-टेक ॥१४८॥
ब्रजरज जीवन ब्रजरज प्रान। ब्रजरज ही सोभा सनमान ॥१४९॥
ब्रजरज बिन जाँचौं नहिं आन। ब्रजमोहन! ब्रजरज दै दान ॥१५०॥
ब्रजरज ब्रजरज ब्रजरज दरसै। ब्रजरज बिन चित और न परसै ॥१५१॥
ब्रजरज परसन कौं मन तरसै। ब्रजरज-रस-प्रसाद ज्यौं बरसै ॥१५२॥
ब्रजरज ब्रजरज ब्रजरज भजियै। ब्रजरज सींचि सबै कछु तजियै ॥१५३॥
ब्रजरज सुगम अगोचर अति है। देखत भूलौ सो रज-रति है ॥१५४॥
ब्रजरज वास मन मैं आवै। ब्रजरस-परम सवादहि पावै ॥१५५॥
एक परमपद होत जहाँ लौं। फीकौ परत मिठास तहाँ लौं ॥१५६॥
ब्रजरज ही मेरी उपासना। ब्रजरज बसौं सदा सुबासना ॥१५७॥
ब्रजरज बिन कछु और आस ना। रज-सेवक सुविचार सासना ॥१५८॥

१४९—इसके बाद लंदन की प्रति में ये पंक्तियाँ हैं—यह ब्रजरज नद ब्रजरस आहा। या ब्रजरज की कहियै कहा।

[१३६] आस=आशा का निवास। [१४०] आधि=मानसिक कष्ट। [१४६] लहा=लाभ। [१४७] सभ=सजावट। [१५२] ज्यौं=ज्यों। [१५३] सींचि=संचित करके। [१५८] सासना=शासन।

ब्रजरज-महिमा रसना थकौं। जदपि बरनि कछुवै नहिं सकौं ॥१५९॥
तदपि रेनु-मादक गुन छकै। थकि थकि जकि जकि तनक न थकै ॥१६०॥
ब्रजरज कौं अभिलाष बढ्यौ है। रसना ब्रजरज-सुजस पढ्यौ है ॥१६१॥
ब्रजरज मैं रसपुंज भर्यौ है। श्रीहरि हू को हियो हर्यौ है ॥१६२॥
यह ब्रजभूमि सदा रँगभोई। महा अपूरब रसनि समोई ॥१६३॥
या ब्रजरज मैं निधि लै गोई। या अंजन बिन लखै न कोई ॥१६४॥
श्रीललिता तप साधति याकौं। ललचि ललचि आराधति याकौं ॥१६५॥
नंदसून-पद-लालन-लोभैं। रमा रसिकिनी पावनि छोभैं ॥१६६॥
यह रज यह रस याही सोहै। या रज की उपमा कौं को है ॥१६७॥
यह रज गंधवती सब ऊपर। कौतूहल रसिकराय या भूपर ॥१६८॥
या ब्रजलीला बिधि हू मोह्यौ। कछु अद्भुत प्रभाव जब जोह्यौ ॥१६९॥
हरि-सुखमय अब ब्रज देख्यौ। रज उत्कर्ष बिचारि बिसेख्यौ ॥१७०॥
श्रीरसना-अंकित लखि भूमि। रह्यौ माधुरी महिमा झूमि ॥१७१॥
जावत नंदलाल पद छ्वै कै। या रज कौं हित कौं कछु ह्वै कै ॥१७२॥
पै रस ब्रज कौं मिलै कहूँ न। और कहीं धौं पावै कौन ॥१७३॥
श्रीगोपीपद-कमल-पराग। यह रज रसिक जननि को भाग ॥१७४॥
दुर्लभ या रज को अधिकार। जानत एकै नंदकुमार ॥१७५॥
गोपी-पद-प्रसाद रज लहियै। निगमागम मैं प्रगट सु कहियै ॥१७६॥
या रज को साधन इह एकै। मिलै न किये उपाय अनेकै ॥१७७॥
अति रति बिन न परसै धूरि। यह ब्रजरज सबकौं अति दूरि ॥१७८॥
अबला प्रेम गति ब्रजजन जहीं। सो रति पूरि रही ब्रजमहीं ॥१७९॥
इनकी अनुग भावना गहै। काहू बिधि इनकौ ह्वै रहै ॥१८०॥
सहज होय या रज-पहिचानि। परै सहज ब्रजजन की बानि ॥१८१॥
या रज बिना न भावै आन। जगै हियैं ब्रजरज-अभिमान ॥१८२॥

१६५—श्रीललिता—श्रीललना (लंदन)। १६८—[illegible]। १७७—एकै—एक (वही)। १७८—रति—रज (वृं०) यह—या (लंदन)। १८०—काहू—काऊ (वृं०)।

[१६४] निधि=खजाना। गोई=छिपाई हुई। [१६६] सून=पुत्र। छोभैं=उद्वेग। [१७१] श्रीरसना=राधिका की करधनी।

सहज करै रज अंगीकार। यह रज तब पावै निरधार ॥१८३॥
या रज सौं नातौ जिय जोरै। और सबन सौं सब बिधि तोरै ॥१८४॥
या रज को प्रसाद जब पावै। तब सब कछू सहज नहिं भावै ॥१८५॥
ब्रजमोहन को यह ब्रज धाम। निपट दुरयौ परम अभिराम ॥१८६॥
श्रीब्रजराज-बास जो बसै। ब्रजजन-भाव-लोभ मन गसै ॥१८७॥
तौ या सुख-सवाद कौं पावै। निधरक ललना-लाल लड़ावै ॥१८८॥
आनँदघन-रस भीज्यौ रहै। ब्रजजन-लीला-सिंधु अवगहै ॥१८९॥
छिनछिन भावतरंग बिसेषैं। देखि देखि छबि थकै निमेषैं ॥१९०॥
महामधुर रसपान छकै मन। बिबस दसा अति रोमांचित तन ॥१९१॥
झूमि झूमि मन-घूमनि डोलै। मौन धरै मन ही मन बोलै ॥१९२॥
औरै दसा दियै रँगभीनो। नेह-गाँस कसकै अति झीनो ॥१९३॥
होय सिथिल गति सबै अंग तैं। क्यौंहि सकै नहिं सौंभि भार तैं ॥१९४॥
मुरली-धुनि स्रवननि मैं रमै। चकित थकित मति को गति गमै ॥१९५॥
बिबस दसा-गति कही न परई। दरस-प्यास नैननि जल भरई ॥१९६॥
चटक चौंप चेटक मिस चढ़ई। नाम रूप गुन अनुदिन बढ़ई ॥१९७॥
हा राधा हा कृस्न पुकारै। चेतनहार ह्वै तिन्हैं सम्हारै ॥१९८॥
ब्रजबन ठौर ठौर लखि माहिं। नव-केलनि हरि-राधा जाहीं ॥१९९॥
दंपति-रस-संपति हिय भरै। पूरन पन को नेक न टरै ॥२००॥
फूलै सदा ब्रजमोहन केलि। चौंकलि हियौ महारस मेलि ॥२०१॥
बिहरै बिबस सदा ब्रजबन मैं। दरस-परस-रस-आरति मन मैं ॥२०२॥
जीवन एक जुगल-रस जाकैं। मन मैं और ठौर नहिं ताकैं ॥२०३॥
जमुना-तीर बैठि मुख धोवै। हँसि हँसि परै बिकल छिन रोवै ॥२०४॥
उनमद भयौ फिरै मदमातौ। कबहूँ न होय लगन तैं हातौ ॥२०५॥
बैठै चलै एक जक जागै। भाँति भाँति सुरति भावरस पागै ॥२०६॥

१८५ जब—तब (वही)। २०५—हातौ—आतौ (वही)।

[१८८] ललना=राधा-कृष्ण। [१८९] सिंधि=समुद्र। अवगाहै=नहाए। [१९२] गाँस=किसी हथियार की नोक। झीनो=पतली, महीन, सूक्ष्म। [२०२] आरति=लालसा। [२०५] हातौ=दूर। [२०६] जक=धुन।

कब ह्वैहै ऐसी गति ह्याहा । जीवन-जनम-सफलता-लाहा ॥२०७॥
या रस बिन छिन रह्यौ न परिहै । नैननि नीर एकरस ढरिहै ॥२०८॥
मूकै मुख बोलौ न आइहै । रोम रोम अभिलाष छाइहै ॥२०९॥
निसिदिन याही बिधि बिताइहौं । प्रिय नितलीला-रस हिताइहौं ॥२१०॥
गुननि नाम आँखिन जल ढरिहै । तन ब्रजभूमि भूमि गिरि परिहै ॥२११॥
ब्रजरज लोटि बिकल ह्वै जैहौं । बड़ी बेर तन की सुधि पैहौं ॥२१२॥
रजहि पाय मिलि रजहि रहौं जब । सो अघाइ सुख कहै कौन तब ॥२१३॥
श्रीगुरु-पद - प्रसाद रज पाई । रज-महिमा रस-परसैं गाई ॥२१४॥
रोम रोम रमि रही रजै है । प्रानन पैठि रह्यौ जु ब्रजै है ॥२१५॥
ब्रजरज-टेक टरति क्यौं मन तैं । प्रान पकि रहै पूरन पन तैं ॥२१६॥
निबहै टेक एक रज - बल तैं । ह्वा आगैं ब्रज बैठे चलतैं ॥२१७॥
सोवत जागत ब्रज ही देखौं । ब्रजमोहन - लीला अवरेखौं ॥२१८॥
ब्रज ही लागि परयौ मनमोहन । बिसरत नाहिं रसिक ब्रजमोहन ॥२१९॥
राधा के मन मैं मन रहै । ब्रजमोहन यों मोहन गहै ॥२२०॥

२०७—प्र०—कबहुँ ह्वैहै (पुं०) ।

[२०८] ढरिहै=ढपकेगा । [२१०] हिताइहौं=प्रीति उत्पन्न करूँगा । [२१८] अवरेखौं=विचार करूँ ।

कृष्णकौमुदी

दोहा

स्याम - रूप आनंदघन, अभिनव मधुर किसोर ।
परम रसिक गोपी-रमन, राधा - बदन - चकोर ॥ १ ॥
मुरली - नाद - बिनोद - रत, सुघरराय रसलीन ।
मोहन महा कहा कहौं, अनुदिन निपट नवीन ॥ २ ॥
गोपराज - कुल को कलस, पूरन परम रसाल ।
कंजलोचन - रोचन रुचिर, गोपवेष गोपाल ॥ ३ ॥
मोरचंद्रिका सिर धरैं, गरैं गुंज की माल ।
धातु - चित्र कटि पीतपट, मोहन - मदन गुपाल ॥ ४ ॥
प्रेम-अवधि लीला - मगन, नटवर नित नवरंग ।
केलिकला - पूरन - कुसल, अद्भुत अतुल अनंग ॥ ५ ॥
दिन दूलह लोनो ललित, सब गुन रूपनिधान ।
सुहृद सुमिल नागर नवल, अनुपम सुखद सुजान ॥ ६ ॥
ब्रजनायक ब्रज - प्रेमनिधि, ब्रजभूषन ब्रजप्रान ।
ब्रजमंडन ब्रजहितकरन, गिरिधर ब्रजबलधान ॥ ७ ॥
ब्रजमंगल ब्रजकौतुकी, ब्रजबासी ब्रजचंद ।
ब्रजबिनोद ब्रजराजसुत, ब्रजजन - आनंदकंद ॥ ८ ॥
अति कमनीय किसोर वपु, गोपीनाथ उदार ।
कलबैन क्रीड़ानिपुन, कान्हर गोपकुमार ॥ ९ ॥
कुंजबिहारी कुसल कवि, कोविद कृपानिकेत ।
मधुर मनोहर मेघदुति, मदामुदित सुखहेत ॥ १० ॥
कामकेलि क्रीड़ा कुसल, कलानाथ रसवंत ।
गोवरधनवासी सदा, गोप - कामिनी - कंत ॥ ११ ॥

[२] सुघर=चतुर । [३] रोचन=रुचनेवाले । [४] धातु०=मिट्टी से अंगों पर छापा लगाए । [१०] हेत=हेतु, कारण ।

चतुरसिरोमनि अति चपल, परम धीर गंभीर।
सदासुखी सोभासदन, कोमल अमल सरीर ॥ १२ ॥
अगत - उजागर साँवरो, अवतरन-लीला-खानि।
दान - केलि - कोलाहली, रसलोभी रसदानि ॥ १३ ॥

महालील मायी महा, महापुरुष मतिमान।
महारसिक महिमा महा, मानी परम प्रधान ॥ १४ ॥

वृंदावनवासी सदा, अभिरुचि - धीरसमीर।
कुंजरमन कंदर्पजित, विहरत जमुनातीर ॥ १५ ॥

गोचारी गोरज - धरन, ब्रजजन - उत्सव - रूप।
गोपीवल्लभ गोपधन, गोपकिसोर अनूप ॥ १६ ॥

रासबिलासी रसिकवर, चिंतामनि चैतन्य।
चटुल चतुर चुंबक चपल, अद्भुत अद्भुत धन्य ॥ १७ ॥

मानसरोवर - बास - बस, केलिकला - कलहंस।
बट - भंडीर - निवास नित, राधारसिक प्रसंस ॥ १८ ॥

राधारंगी रस - अवधि, सरल त्रिभंगी स्याम।
रतिवर्धन रतिपति - जयी, रामानुज अभिराम ॥ १९ ॥

राधाजीवन विपुल धन, राधा - सखा - सुरूप।
राधा - रसलंपट सदा, राधारसिक अनूप ॥ २० ॥
राधा जीवन स्याम कौ, राधा - जीवन स्याम।
गौर स्याम एकत सदा, बसत विदित ब्रजधाम ॥ २१ ॥

राधा - जागर - जगत-रत, पूरन परम सनेह।
कुंजकुटीर कदंब - तर, कृपीमान कृतगेह ॥ २२ ॥

२२-कुटी०—कुटीभाजी (वंदन)।

[१४] महालील=महान् लीला करनेवाले। मानी=मर्यादा। [१५] धीर०= एक कुंज। [१८] भंडीर=भांडीर वन, बरगद का वन। [१९] रति०= कामदेव के जेता। रामानुज=बलराम के छोटे भाई। [२२] जागर=जागरण।

सदा गोधर्मीमंगलो, सेवित नायकराज।
खरिक खोरि गिरधर गहन, अमित अनंग समाज ॥ २३ ॥
नित नवीन सिंगाररुचि, रसिक छैल ब्रजचंद।
सनमुख ही सोभित सदा, लहियत लाभ अमंद ॥ २४ ॥
आनंदघन घनरसी रहै, ब्रजजन - जीवनमूल।
दुखिजन सुख लखिजन सरसौ, सबकौं हित-अनुकूल ॥ २५ ॥

कृपानिधान आनंदघन, अद्भुत अमल अमंद।
जसुदा - अमोदित - उदै, भाग अपूरब नंद ॥ २६ ॥
अति सुगंध अभिराम तन, पहिरैं नव बनमाल।
ब्रजमोहन मोहन करी, मन - हिय मधुकर - जाल ॥ २७ ॥

अति चटकीलौ लटक सौं, सुफर छबीलौ माथ।
आनंदघन मुख - माधुरी, रस बरसै इक साथ ॥ २८ ॥
भाल-माल बड़भाग-निधि, रुचिर सु कुंकम खौरि।
दृगविलास मृदु हास लखि, दृग पहार-ढिग पौरि ॥ २९ ॥

भाल भौंह दृग नासिका, सुघर कपोल सुढौन।
सौंवल छबि मधुमै अधर, देखि रहि सकै कौन ॥ ३० ॥

स्याम सरूप अनूप अति, सकै कौन अवगाहि।
चाहि ब्रजबधू चकि रहैं, राधा - मान सराहि ॥ ३१ ॥

लहलहानि - जोबन उठै, ब्रजमोहन अँगअंग।
महा रूपसागर उमंगे, उठनि अमोल तरंग ॥ ३२ ॥

मनिकुंडल अति भा-चुलनि, झुलनि सुललित कपोल।
रूप - सरद - लहरानि मैं, मनमथ - मान कलोल ॥ ३३ ॥

मुरली कवि अधरानि मैं, अति मादक धुनि पूर।
तान - तान संधानहीं, धरम मरम भे चूर ॥ ३४ ॥

३४—धरम—नेम (वृंदा०)।

[२३] साँकरी=गली। [३१] अवगाहना=थहाना। [३३] भा=चमक।

छुटत छबीली चंद्रिका, हँसनि लसनि बहु भाँति ।
कौंध चौंध आँखियनि भरै, दसन रँगीली पाँति ॥ ३५ ॥
सहज चीकनी घूँघरी, अलकनि छलनि छुरि स्याम ।
अजौं करति उरझनि मनौं, लगी कनौंती कान ॥ ३६ ॥
स्रवन-सुभगता हेरि कैं, टरत न लोभी नैन ।
कहत लगी सुखदैन सौं, बिन बानी हित-बैन ॥ ३७ ॥
रुचिर चिबुक लोनी ललित, मृदुल मनोहर गोल ।
ज्यौं निकसत मन गाड़ परि, उझकनि कसक अडोल ॥ ३८ ॥
स्याम-रूप अंजन सरस, राधा नैन-सिंगार ।
वदन-कमल-मधुपान-अलि, उरमंडन-हिलि हार ॥ ३९ ॥
रसिक पपीहापन गहैं, राधा आनँदकंद ।
चौंपत चौंपि चकोर कौं, मदन देखि ब्रजचंद ॥ ४० ॥
ब्रज-वनिता आनँदघन, मुरली-गरज रसाल ।
रस-तानानि झर लासकैं, रीझनि करत निहाल ॥ ४१ ॥
आनि मुकुंद कौस्तुभ धरैं, गरैं सीपसुत-दाम ।
झलक मलक-सोभा लखैं, बिबस होत ब्रजबाम ॥ ४२ ॥
सुंदर अंस पीवर रुचिर, परम ललित भुज-बेलि ।
अंगद रसरंगद धरैं, फलित कलित रसकेलि ॥ ४३ ॥
पानि प्रेमपल्लव रुचिर, कर तरु अरुन रसाल ।
सरस परम-सुख लेत हैं, भागभरी ब्रजबाल ॥ ४४ ॥

३५ हँसनि–हसनि (लंदन)। ३६–मनौं०–मनों लगी (लंदन)। ३८–उझकनि–उझकि (लंदन)। ३९–मंडन०–मंडन हिलिहार (वृंदा०)। ४२–धरैं–धरें; दाम–धाम (लंदन)। ४३–कलित–फलित (वृंदा०)। ४४–बाल–भाग (वृंदा०)।

[३६] कनौंती=कान। [३८] गाड़=गड्ढा। उझकनि–उझकि, झाँकी। [४२] सीप०=मोती की माला। [४३] अंस=कंधा। पीवर=पुष्ट। अंगद=बाहु पर का एक गहना, बिजायठ।

उदर-मधुरिमा क्यौं कहौं, दृगनि बिलोकनि भूष ।
नाभि रोमराजी रुचिर, पूरित प्रेमपियूष ॥ ४५ ॥
कटिप्रदेस बरनौं कहा, कहिबे कौं कछु नाँहि ।
रतिबिलास बरसै सदा, मन भिजवै रस माँहि ॥ ४६ ॥
रूप-सलोने स्याम कौ, क्यौं करि सकौं बखान ।
महा मधुर रसस्वाद-सुख, नहिं समात अनुमान ॥ ४७ ॥

चौपाई

जानु जंघ रसढरे सुभायनि । बाथनि दृग न्यौछावर पायनि ॥४८॥
चरन-माधुरी अति रससार । राधा के मन कौ व्यौहार ॥४९॥
इनकें उनकें मन की बात । ये जानैं क्यौं इन्हैं बिहात ॥५०॥
सखनि निबाहन हिलि मिलि जीवन । ब्रजबन बसि लीलारस पीवन ॥५१॥
गावत मोहन गौर अधराग । कछु बाँस रहत मलत जीउ प्रात ॥५२॥
लोकलाज मरजाद निबाहत । मन मतवारे बन बन गाहत ॥५३॥
परम प्रेम-परिपूरन रूपनि । राधा-मोहन रसना-संपनि ॥५४॥
ब्रज इकरंग स्याम-रंग रच्यौ । सब नचाय या आगैं नच्यौ ॥५५॥
रसिया रसिकराय रसस्वामी । रसिकसिरोमनि नायक नामी ॥५६॥

दोहा

नटवर स्यामकिसोर तन, चरचित नव पाटीर ।
महा मनोहर मधुरिमा, गुनगरिमा गंभीर ॥ ५७ ॥
महा ललित लीला-मगन, गिरधर गोपीनाथ ।
वृंदावन आनँदघन, प्रिय समाज लैं साथ ॥ ५८ ॥
अनुनाद-सुखस्वादमय, अद्भुत परमानंद ।
पूरन प्रेम कुतूहली, ब्रजजनचंद रसकंद ॥ ५९ ॥
सरस गीत कल-पद-भरी, मुरली अधर रसाल ।
गोपवधू-मन-बसकरन, मधुर त्रिभंगी लाल ॥ ६० ॥

६०–पद–मद (वृंदा०)।

[४५] भूष=भूषित करती है। राजी=पंक्ति। [५७] पाटीर=चंदन।

मोहन मादक रूप लखि, छके रहत ब्रज लोग ।
अपने अपने भाव सौं, चहत भावतो भोग ॥ ६१ ॥
जमुना-तीर बिसद पुलिन, बिहरत नित ब्रज रंग ।
निरमल नख-ससि-कौमुदी, मोहित अमित अनंग ॥ ६२ ॥
रसलोभन महारसिक, मदमाते दृग लोल ।
रसलपट लावन्यनिधि, अतुलित अतन कलोल ॥ ६३ ॥
अचरजमूरति अमितदुति, चकचौंधी सखि होति ।
ब्रजबन ब्यापि रही सदा, बदन-अपूरब-ज्योति ॥ ६४ ॥
पगु होति मन-नैन-गति, देखत सहज सिंगार ।
ब्रजजन-प्रान-अधार नित, सुख-सुंदरता-सार ॥ ६५ ॥
नई चोंप नित ही रहै, सरस चाह रसरीति ।
निरट चटपटी सौं भरी, ब्रजमंडल की प्रीति ॥ ६६ ॥
स्याम-रूप आनंदघन, बरसत सुरस अमोघ ।
पोषत जीवत एकरस, ब्रजजन चातक-ओघ ॥ ६७ ॥
सघन कलपतरुबर-तरें, सोभित स्याम त्रिभंग ।
उर उदार बनदाम लखि, अटकत लोचन-भृंग ॥ ६८ ॥
सजल स्याम अभिराम छबि, आनँदघन रस-ऐन ।
भिजवत रिझवत हँसि चितै, गोपीजन-मन-नैन ॥ ६९ ॥
निसदिन देखत हू बढ़ै, सबके हिय अभिलाष ।
मोहन मधुर किसोर पै, मदन वारियै लाख ॥ ७० ॥
नहिं अघात अचवत अमी, ब्रजजन जीवन-रूप ।
गोपी-नैन-चकोर को, पूरन प्यास अनूप ॥ ७१ ॥
बढ्यौ रहत ब्रजनाथ सौं, ब्रजबासिनि को भाव ।
मोहन हिय हू चौगुनो, मिलि खेलन को चाव ॥ ७२ ॥

६१—रहत—नाईं (रहौ) । ७०—वरै—चढ़ै (लंदन) ।

[६३] अतन=काम । [६७] ओघ=समूह । [६८] बनदाम=बनमाला ।

सुख-रस जु चुहलैं रहैं, ब्रजबन गिरि चहुँ ओर ।
नव किसोर आनंदघन, ब्रजजन माते मोर ॥ ७३ ॥
मधुर बोल-कादंबरी-छके साँवरे छैल ।
गर-सौरता-लटपटनि मैं घूमत घेरत गैल ॥ ७४ ॥
अटक मटक चोचलि करन, आनन ढरन ढरकाय ।
नवल सनेही छबिबर, हिय हरि लेत सुभाय ॥ ७५ ॥
आनँदघन घमड्यौ रहत, ब्रजबन गैल मँझार ।
सबको जीवन साँवरो, रसनिधि नंदकुमार ॥ ७६ ॥
दिन-दूलह ब्रजचंद के चरन सुमंगल-मूल ।
जमुनातट बृंदाबिपिन, बिहरत रुचि-अनुकूल ॥ ७७ ॥
नखचंद्रावलि-चंद्रिका, दृग-चकोर-कुलरंग ।
चरन-कमल अद्भुत अमल, प्रफुलित आनँद-ऐन ॥ ७८ ॥
कुंज-भवनि-मंडन मृदुल, मंजुल चिह्न-समेत ।
रसिकाभिसारिनि-पद-कमल, बिरह-ताप हरि लेत ॥ ७९ ॥
चरन चारु ब्रजचंद के, बृंदाबिपिन-बिहार ।
बंदन करि जासौं सदा, गोपीपद-रज-सार ॥ ८० ॥
एक प्रान मन एक ही, एक वेस इक सार ।
रसानुरागनि गाइयै, राधा-नंदकुमार ॥ ८१ ॥
ब्रज-बृंदाबन-रस भर्‌यो, रसिकनि करौ बखान ।
गोपी अरु गोपाल को, लीला-आनँद पान ॥ ८२ ॥
ब्रजनटनागर नागरी-गुन, गावत गावत न अघाति ।
श्रीवृंदावन जमुना-नदी, सुख विलसत दिनराति ॥ ८३ ॥
कृष्णकौमुदी नाम यह, मोहन मधुर प्रबंध ।
प्रगट भयो [illegible]-कुंदावली, प्रफुलित परम सुगंध ॥ ८४ ॥

---

[७४] कादंबरी=शराब ।

धामचमत्कार

चौपाई

ब्रजवन पूरि रह्यौ सुख मंदा । कृष्ण - ललित - लीला - संवदा ॥१॥
ब्रजवन को अमोघ है ऐसें । बनवारी विहरत हित जैसें ॥२॥
रमन - भूमि को रूप अनूप । राजत रसिकमुकटमनि भूप ॥३॥
लीला - ललित स्याम सुकुमार । माधुर किसोर माहात्म्य - धार ॥४॥
अमित ओज मधुरिम-भर बढ़े । ब्रजवन विहरत चौंपनि चढ़े ॥५॥
अति अगाध रससागर ब्रजवन । नित बरसत स्यामनि आनंदघन ॥६॥
अच्चरजमय ब्रजवन की सोहै । बुधि विचार हेरत ही खोहै ॥७॥
ब्रजवन देखन के दृग औरें । रचना कांचिर दृग हू औरें ॥८॥
परमानंद - रूप ब्रजवन है । जहाँ प्रवेस करत नहिं मन है ॥९॥
परम तत्व को सार समोध । ब्रजवन - रज लौं राख्यौ साध ॥१०॥
ब्रजवन सिर पर को आभास । निरवधि-नवनिरवास-विलास ॥११॥
सिव विरंचि सनकादिक ईस । जाचत ब्रजवन - रज को सीस ॥१२॥
महिमा अमित निगमहू भाखैं । समुझि सुमेरि मन हू मैं रखैं ॥१३॥
हरि-परिकर ब्रजवन को भाग । समुझि परस्पर अति अनुराग ॥१४॥
गोपवेस ब्रजराजकुमार । जिन सग मिलि नित करत विहार ॥१५॥
यह समाज ब्रजवन में लसै । नित्य किसोर - केलि रसबसै ॥१६॥
वस्तुग्यान बिन ध्यान न आवै । ब्रजस्वरूप को भेद न पावै ॥१७॥
सब तें अगम अगोचर ब्रजरस । रसना कहि न सकति याकौ जस ॥१८॥
ब्रज सुदेस ब्रजराजा नंद । जसुदानंदन गोकुलचंद ॥१९॥
महामोद ब्रज अगम विनोद । कोर पूरन विलास चहुँ कोद ॥२०॥
आनंद - उदय एक सौं जहाँ । नित्यानंद विराजत तहाँ ॥२१॥
धाम - माधुरी अतुल अभूत । जानत है संकर अवधूत ॥२२॥

२—विहरत०—विहरत नाहिं (वृं०) । ८—हौरैं—हौरैं (वही) ।
१६—बत—जत (लखन) ।

[५] भर=भराव । [११] निरवास=निचोड़ । [१४] परिकर=निकट के लोग, पार्षद । [२०] कोद=ओर

गोपेसुर है निरखत सोई । कृपा करैं तौ समझैं कोई ॥२३॥
अगम अगाध कैसें लहिये । ब्रजवन को सुरूप क्यौं कहिये ॥२४॥
लीला ललित सु ज्यौं मन भावै । अधिकारिनहू अधिक घुमावै ॥२५॥
ब्रजवन विहरत मदन गुपाल । संग सोहत निज परिकर लाल ॥२६॥
ब्रजवन के प्रदेस बहुरंग । नित नित लीला ललित अभंग ॥२७॥
गाँव नाम के नाँव अनेक । बरनत हैं बाराह जु एक ॥२८॥
नाम धरे तिहि जिन्हीं धरे । अपनी रिझौं आप विहरैं ॥२९॥
ब्रज की गली मनोहर महा । याकी महिमा कहिये कहा ॥३०॥
माया को कछु जोर न पैंठ । अति अद्भुत जिन हो जिन जैंठ ॥३१॥
मन की चलन न बरनन बनै । इंद्रिय परै सो जानत मनै ॥३२॥
आनंदरस कांति जाति कहियै कैसें । निगम नेति कहि बरनत ऐसें ॥३३॥
धरनीधर गिरिवर नदा । सोभानिधि ब्रज को चौहदा ॥३४॥
देखत सहज स्याम दरसावें । ब्रज की आभा ब्रज ही पावें ॥३५॥
सब रितु सुखद सुहाई लागत । ब्रजवनि ब्रजमोहन-हित पागत ॥३६॥
ब्रज विहरत गिरिधर कौतुकी । निरखत फिरत लगाये टकी ॥३७॥
अपने ब्रज में ब्रज को नायक । खिलवै सुख सबकौं सुखदायक ॥३८॥
ब्रज में सुखसमूह नित रहै । ब्रजजनन को जीवन कहै ॥३९॥
यह ब्रज कबहु न बिसरत पियैं । नित्यनायक ब्रजमोहन - जैसो ॥४०॥
ब्रजवन नित दरपन है किधौं । निरखत स्याम सिरावत हियौ ॥४१॥
कुलनचंद को अब अब देखौ । भर नैन भाग सब लेखौ ॥४२॥
ब्रजवासी गोपाल गोपसुत । ब्रज सुधाम अद्भुत लीलायुत ॥४३॥
ब्रजस्वरूप कछु मन मैं आयौ । सो हठ के ब्रजनाथ कहायौ ॥४४॥
नारद कहौ कहूँ सोउ कहा । या ब्रज अवर्न्य - बानक महा ॥४५॥
ब्रज को नित्य रूप अपारै । मेरो ढीठि निहारि न हारै ॥४६॥
या ब्रजवन के गोप - गोपिकारे । देखत लागत खरे पियारे ॥४७॥

२६—...(वृं०) । ३६—...(लखन) । ४६—निहारि—निहारै (लखन) ।

[२५] घुमावै=चक्कर में डालती है । [२८] ठिक=निश्चय । [३७] टकी=टकटकी । [४७] खरे=अत्यंत ।

ब्रजमोहनहिं दिखावत देखौं। ऐसे ब्रज सौं मेरो लेखौ ॥४८॥
धन्य धन्य या ब्रज के बासी। मंगलनिधि गोपाल-उपासी ॥४९॥
या ब्रज मैं नित मंगलचार। धन्य धन्य ब्रज को ब्यौहार ॥५०॥
कहा कहौं या ब्रज को चैन। देखत फूलत भूलत नैन ॥५१॥
ब्रजविनोद गहमह नित रहै। देखत बनै कहा कोउ कहै ॥५२॥
ब्रज मैं प्रेमपुंज नित छायौ। यह सरूप ब्रज को दरसायौ ॥५३॥
ब्रजवल्लभ ब्रजमोहन स्याम। ब्रजजीवन अभिराम सुनाम ॥५४॥
ब्रज की संपति परति न बरनी। निरखत कान्ह कुँवर-हिय-हरनी ॥५५॥
ब्रजनरेस ब्रजराज बिराजै। जसनिसान निसिबासर बाजै ॥५६॥
मोकौं यह ब्रज लागत प्यारौ। देखत जामैं स्याम उज्यारौ ॥५७॥
दिपत स्यामदुति या ब्रज सौंज। ब्रजदूलह की सोभा-मौज ॥५८॥
या ब्रज की सब रीति अनूप। पूरन सदा अपूरब रूप ॥५९॥
को समझै ब्रजरस को भेद। जानै पै न बखानै बेद ॥६०॥
हियें रह्यौ धरि औरे ब्रजहेत। नेति नेति कहि कछु कहि देत ॥६१॥
ब्रज-छबि-छटा कहूँ जौ दरसै। हियें परम आनंदघन बरसै ॥६२॥
ब्रजचरित्र है अति सुविचित्र। बरनत बानी परम पवित्र ॥६३॥
रसकदंब-चूड़ामनि स्याम। जिनको मोहन यह ब्रजधाम ॥६४॥
या ब्रज सौं यह ब्रज ही आहि। ब्रज को पटतर दीजै काहि ॥६५॥
ब्रजमंडल के यह ब्रज एक। बसन सदा गहि मन की टेक ॥६६॥
सुभग सीस ब्रज चरन-कमल की। करत रहौं नित सुरत अमल की ॥६७॥
ब्रज-वृंदावन की बलि जैये। ब्रज-वृंदावन-लीला गैये ॥६८॥
ब्रजदंपति की कृपा मनैये। याही तें यह आनंद पैये ॥६९॥
ब्रज-वृंदावन सौं हित-बन है। जिन पै बरसत आनंदघन है ॥७०॥

५२—गहै–रहै (वं०)।

[५२] गहमह=आनंद की धूम। [५६] निसान=नगाड़ा। [५८] सोंज=सामग्री [६३] चित्र=विचित्र। [६४] कदंब=समूह। [६५] पटतर=उपमा।

प्रियाप्रसाद

चौपाई

राधा राधा राधा कहौं। चाहि चाहि राधा राधा लहौं ॥१॥
राधा जानौं राधा मानौं। मन राधा-रँग ही मैं सानौं ॥२॥
राधा जीवन राधा प्रान। राधा ही राधा गुनगान ॥३॥
राधा वृंदावन की रानी। राधा ही मेरी ठकुरानी ॥४॥
राधा ब्रजजीवन की ज्यारी। राधा प्राननाथ की प्यारी ॥५॥
राधा राधा राधा एक। सर्वोपर राधा-हित-टेक ॥६॥
राधा अतुल रूप-गुन-भरी। ब्रजबनिता-कदंब-मंजरी ॥७॥
राधा मदन गुपालहिं भावै। मुरली मैं राधा-गुन गावै ॥८॥
राधा-रस-प्रसाद की साधा। रसिकराय के राधा राधा ॥९॥
या राधा कौं हौं आराधौं। राधा ही राधा रट साधौं ॥१०॥
राधा बचन मौन हूँ राधा। राधा राधा राधा राधा ॥११॥
सोऊँ राधा जागौं राधा। रातिद्यौस राधा ही राधा ॥१२॥
राधा हेरौं राधा सुनौं। राधा समझौं राधा गुनौं ॥१३॥
राधा मेरी स्वामिनि साँची। छिन छिन हौं राधा-हित नाँचौं ॥१४॥
राधा जु कछु कहै सो करौं। महल-टहल ढकोर अनुसरौं ॥१५॥
राधा राधा गीत सुनाऊँ। राधा-आगे राग जमाऊँ ॥१६॥
राधा कौं बहु भाँति रिझाऊँ। लाखौं बानिनि चोख हँसाऊँ ॥१७॥
राधा की पटकौली चेरी। चित दै चहौं रहनि नित नेरी ॥१८॥
राधा अँचिलि जिमैहौं रहौं। बिहरत वृंदाबन मोहन महौं ॥१९॥
रूप-उज्यारी राधा देखौं। भागन को सुख कहा बिसेखौं ॥२०॥
राधा सब ही भाँति लड़ाऊँ। राधा रीझैं राधा पाऊँ ॥२१॥
राधा कौं कछु कहौं कहानी। परम रसीली अति मनमानी ॥२२॥

१५—ढकोर–ढौंरा (वृ० प०)। १६—सुनाऊँ–न गाऊँ (वही)।

[५] ज्यारी=जिलानेवाली। [१५] ढकोर=डंके की चोट अथवा बुलाहट। [१७] चोख=अत्यंत। [१८] नेरी=निकट।

चौकि चरन तनक झुकि जाऊं। छुवै सीस राधा के पाऊं ॥२३॥
चरन हुलाय जगाऊं जबौं। चहुंकि आँखि नित पौरिनि सबौं ॥२४॥
राधा बाधी बहुगुनो नाऊं। टारे लगि रहौं चलाएं जाऊं ॥२५॥
राधा की जूठनि हौं जिऔं। राधा को अचमनि ही पिऔं ॥२६॥
राधा को सुख सदा मनाऊं। सुख दै दै हौं हूं सुख पाऊं ॥२७॥
राधा-हित जब स्याम निहारौं। समय-उचित सुख-टहल विचारौं ॥२८॥
राधा-पिय पै बिजना ढोरौं। स्रमजल सुखऊं सब रस बोरौं ॥२९॥
पियमैं हूं प्यारी-हित पालौं। ललना-लाल परस्पर लालौं ॥३०॥
राधा-मोहन एकै दोऊ। नैन प्रान मन प्रेम-समोऊ ॥३१॥
राधा-हित अब कहत नहिं आवै। मोहन हीं राधा रुचि पावै ॥३२॥
राधा-मोहन मोहन-राधा। हिलनि मिलनि विहरनि बिन बाधा ॥३३॥
राधा प्रेम-रसामृत-सरसी। केलि-कमल-कुल-सुखमा दरसी ॥३४॥
राधा-मन मैं मन दै रहौं। राधा के मन की सब लहौं ॥३५॥
राधा को स्वभाव पहचानौं। राधा की रुचि रचना ठानौं ॥३६॥
राधा मन की मोसौं खोलै। गुपत गोसि अपनी रुचि बोलै ॥३७॥
हौं राधा की राधा मेरी। कीरति की बरजाई चेरी ॥३८॥
राधा की मनभावति लौंड़ी। राधा के आनंदनि औंड़ी ॥३९॥
राधा-चोर उतीरन पाऊं। भाग-बड़ाई कहा जनाऊं ॥४०॥
राधा मो कर पाय मलावै। भागभरी महावरौ लावै ॥४१॥
राधा कौं हौंनि हीं प्यारी। जातें तनकौ करति न न्यारी ॥४२॥
लालबिहारी हूं मों पैड़नि। राधा के गुमान की पैड़नि ॥४३॥
उरझि भरी हित हरी अंग मौं। करौं टहल रसमसे रंग मौं ॥४४॥
आई दाय को काम परै जब। बिन बहुगुनो सँवारै को तब ॥४५॥
मेरो सुख हौं हीं भर देखौं। राधा को सुख अंतर लेखौं ॥४६॥
लेखौं सुख जब जब सुख देखौं। राधा को सुख कहा बिसेखौं ॥४७॥

२८-उचित-गति (लंदन)। ३४-कुल-दुलि। ४०-जनाऊँ-गनाऊँ (लंदन)।

[२४] चौंपि=ऊँघकर। [२९] बिजना=व्यजन,पंखा। ढोरौं=झलूँ। स्रमजल=पसीना। [३८] बरजाई=घर में उत्पन्न। पारंपरिक। [३९] औंड़ी=बढ़ी,उमड़ी।

राधा को सुख मेरे सुख है। मदन गुपाल निहारैं मुख है ॥४८॥
चेरी पै अभिमान-भरी हौं। ठकुराइनि या भाँति करी हौं ॥४९॥
राधा को बलिहार भई हौं। राधा मौं अपनाय लई हौं ॥५०॥
राधा बिन कछु और न सूझौं। सुरझि सुरझि अभिलाष अरूझौं ॥५१॥
राधा औसर आगे रहै। राधा मन की गहगह गहै ॥५२॥
रोम रोम राधा की आपनि। रसिकजीवनी राधा-जापनि ॥५३॥
राधा रटि मोही ह्वै जाऊं। तब पाऊं राधा को नाऊं ॥५४॥
राधा दरसनि को जाई है संकेत नदीसुत आई ॥५५॥
राधा कौं हौं कहौं कहा लौं। ब्रजजन रजामई अहौ लौं ॥५६॥
राधा के हित बंसी बाजै। राधा रागभरे सुर साजै ॥५७॥
राधा बंसी की ठकुराइनि। सुर-परिवड़ सिद्धावलि चाइनि ॥५८॥
नाम गाम सब राधा मेरे। राधा ही के अर्थौ बसेरे ॥५९॥
जो राधा न स्याम बिन रहै। मेरे मन मैं राधा रहै ॥६०॥
या राधा की महा अगम गति। प्रेमपुंज भावनवतो परम रति ॥६१॥
या राधा को प्रेम कहै को। या राधा को नेम गहै को ॥६२॥
राधा रमन रमन है राधा। एकमेक ह्वै रहै अबाधा ॥६३॥
मिलन बिछोह कछु न सुधि परै। आचरज-रीति राधिका धरै ॥६४॥
या राधा को प्रेम अपरस है। रसमूरति को परम परस है ॥६५॥

दोहा

कहिबो सुनिबो समझिबो, राधा ही कौं होय।
राधा के हित की कथा, भूलि सुनहिं मोय ॥ ६६ ॥
राधा अकथ कथा यहौ, यह कहिबे की नाहिं।
राधा के हिय की दसा, प्रीतम के हिय माहिं ॥ ६७ ॥

५५ नदीसुत-नंदीवन (वृंदा०)। ५७-सुर-रस (लंदन)। ६४-परै-परे (वृंदा०)। ६५-परम-अरस (लंदन)।

[६३] अबाधा=निर्बाध, बेरोकटोक। [६५] अपरस=जिसका स्पर्श न हो सके।

ब्रजमोहन आनंदघन, बृंदावन रसधाम।
अखिलसृष्टि बरषत रहैं, राधा-हित अभिराम ॥ ६८ ॥
मधुर केलिरस - केलि सौं, रसना स्वाद - सुरूप।
सुफल सुबानी बोल को, राधा नाम अनूप ॥ ६९ ॥
मेरे मन दृग रीझि की, राधा ही कौं बूझि।
राधा के मन रीझि कौं, मोहि बूझि अरु सूझि ॥ ७० ॥
राधा मेरे प्रान हैं, राधा - प्रान गुपाल।
साँस - कंठ धारे रहौं, राधा - मोहन - माल ॥ ७१ ॥
आनँदघन बरसत सदा, राधा - जीवन स्याम।
उज्जल रसमै गौरता, प्रेम - अवधि अभिराम ॥ ७२ ॥
दोऊ मिलि एकै भए, ललित रँगीली जोट।
जमुना-तट निरखौं सदा, नव बेलिनि की ओट ॥ ७३ ॥
लिपट लटपटे अटपटे, भरे चटपटी चौंप।
राधा मोद - प्रमोद - रस, प्रगट केलि-कुल-कौंप ॥ ७४ ॥
ब्रजमोहन - चरनअवनि मैं, राधा - नूपुर - बिहार।
रोम रोम आनंदघन, भीजे रसिक उदार ॥ ७५ ॥
राधाहित आनंदघन, मुरली गरज रसाल।
राधा ही के रसभरे, मोहन मदन गुपाल ॥ ७६ ॥
राधा के आनंद कौं, मनमोहन - मन साखि।
राधा को अभिलाष जो, राधा - प्रिय अभिलाषि ॥ ७७ ॥
राधा रसिक - सँजीवनी, राधाजीवन लाल।
राधामोहनमैं सदैं, ब्रजघन बेलि तमाल ॥ ७८ ॥
राधा मेरी संपदा, जिय को जीवन - मूल।
राधे राधा रटैं सदा, रोम - रोम - अनुकूल ॥ ७९ ॥
राधा - मोहन - मुख अली, मुरली ह्वै दिनराति।
राधा ही राधा बजै, प्रीति मोहन धुनि जाति ॥ ८० ॥

७२-मै-मैलि (लोचन)। ७८-बेलि-केलि (वृंदा०)।

[७१] साँस०=श्वास के कंठ में। [७४] कौंप=कोंपल।

राधा नाम - सिरोमनी, राधा केलि - कुलीन।
राधा सकल कला - भरी, रसमूरति हितलीन ॥ ८१ ॥
जो कछु है सो राधिका, सो कछु और न आहि।
राधा - पद - नख - पंज को, राधा - हाथ बिकाइ ॥ ८२ ॥
राधा सब तौ सब समै, रहति बहुगुनी संग।
गान रसन - गुनगान को लै बरसावति रंग ॥ ८३ ॥
राधा अचल सुहाग कै, ललित रँगीली गौन।
रागनि भीजी बहुगुनी, रिझवति राधा - मौन ॥ ८४ ॥
राधा चाहति चाह सौं, राधा चाहनि चाहि।
राधा ही रससिंधु मैं, राधा राधा थाहि ॥ ८५ ॥
राधा सो दृग पूतरी, भई स्याम लखि स्याम।
राधा राधारमन को, अनुपम रूप ललाम ॥ ८६ ॥
राधा प्रिय-स्यामनि भरी, आनँदघन रसरासि।
स्याम - रँगमगी सगमगी, राधा रही प्रकासि ॥ ८७ ॥
राधा राधा नाम को, रसनौ सदा सवाद।
या प्रबंध को नाम है, पायौ प्रियाप्रसाद ॥ ८८ ॥
प्रियाप्रसाद प्रबंध कौ, पाठ सवारहि होत।
निस दिन मोहन मोद करे, रसना रस सुख देत ॥ ८९ ॥
राधा मंगल - भावनी, सरस मधुरता स्याम।
जमुना - तट राजत सदा, रसिक-सँजीवनि - धाम ॥ ९० ॥

८०-हैं-हीं (वृंदा०)। ८८-र्वै-दै (लोचन)।

[८३] बहुगुनी=कवि का साथी नाम [८५] चाहति०=देखने की इच्छा।
[८७] रँगमगी=अनुरक्त। सगमगी=मिली।

वृंदावनमुद्रा

चौपाई

राधा को वृंदावन गाऊँ। गाय गाय वृंदावन पाऊँ ॥ १ ॥
वृंदावन-छवि कहत न आवै। सो कैसे कहि कोऊ गावै ॥ २ ॥
कैसी राधा कैसो बन है। जामैं ब्रजमोहन को मन है ॥ ३ ॥
हरि-राधा बन मिलि रस सने। तन मन मन एकै रस बने ॥ ४ ॥
बनविहार-महिमा क्यों फुरै। बिना फुरै बन देखत दुरै ॥ ५ ॥
देखत भूली को यह रूप। क्यों बन देखत बनै अनूप ॥ ६ ॥
जिन मोहन सब ही जग मोह्यौ। ताको मन राधा-गुन पोह्यौ ॥ ७ ॥
दुहुँनि एक वृंदावन हित। राखत पुलकनि लौं धरि नित ॥ ८ ॥
नित ही संपति-हित लहलह्यौ। रोम रोम तिनकै रचि रह्यौ ॥ ९ ॥
अब कोई जो इच्छयौ चाहै। तौ रसना किहि क्यों न सराहै ॥ १० ॥
गुन अनंत लै बानी बरसै। वृंदावन आनँदघन सरसै ॥ ११ ॥
रसना घन-चातकी भई है। वृंदावन-गुन-गोभ-रई है ॥ १२ ॥
जमुना तरल तरंगनि सरसै। हित-चतुरनि श्रीहितहरि परसै ॥ १३ ॥
जमुना ही मिलि कथा सुनाऊँ। याहि के प्रसाद गुन गाऊँ ॥ १४ ॥
मिलो तरंगनि वारि फरै। तासौं रसना गुन गिरवै ॥ १५ ॥
तीरभूमि हरि रह्यौ मढ़ो बन। जै जमुना जै जै वृंदावन ॥ १६ ॥
वृंदावन-छवि जमुना आनै। रसना जमुना परसि बखानै ॥ १७ ॥
कृपा-तरंगनि सौं रसमाती। या विधि सरस भई है बानी ॥ १८ ॥
श्रीवृंदावन जमुना-कूल। सो अनुकूल कृपाघन-मूल ॥ १९ ॥
राधा-हरि वृंदावन भाँति। हिलि मिलि भई एक ही काँति ॥ २० ॥
अद्भुत छवि सौं आपिन लसै। गौर-स्याम-संगम रसमसै ॥ २१ ॥

दोहा

गौर स्याम घन ह्वै रह्यौ, गौर स्याम कै रूप।
गौर स्याम बानी भई, बरनत बनक अनूप ॥ २२ ॥

[७] गुन=गुण; सूत। [१२] गोभ=अंकुर। [२१] रसमसै—सरस होती है। [२२] बनक=सजधज।

चौपाई

लता ललित रसअलिन सुतरवर। महा मधुर पूरन सुख सरवर ॥ २३ ॥
रोमांचित अंकुर लौं रहै। पवन-गवन पंकज महमहै ॥ २४ ॥
केलि-सदन बन-केलि-स्वरूप। सुख-सिंहासन राज कुंज-भूप ॥ २५ ॥
जुगल-अंग जे रंग बिराजैं। ते बन दल फल फूलनि भ्राजैं ॥ २६ ॥
सब विनोद पगि जगमग दिपै। ज्यों रवि ज्यों छाया मैं छिपै ॥ २७ ॥
रसमय सुखमय भामी धाम। नित्य अलौकिक जग अभिराम ॥ २८ ॥
रचना कंचन सुठौर ठौर की। राधा पिय गुन रूप भौर की ॥ २९ ॥
प्रेम-रंगमगी झलनि चहुँ चख। महा अजब अभिलाष लहौं लख ॥ ३० ॥
गुंजाफल वृंदावन रहौं। रसना हित-चिंतामनि जहाँ ॥ ३१ ॥
केलि-संपदा रमाहि बखानैं। मौन धरैं अनूप गुन मानैं ॥ ३२ ॥
यह वृंदावन यह जमुना-तट। सदा सहज सोभा को संघट ॥ ३३ ॥
वे द्रुम वे बेली अलबेली। हरि-राधा-रसरंगनि भेली ॥ ३४ ॥
यह कुसुमावलि यह फल-भूमनि। ये विहंग यह अलिगन घूमनि ॥ ३५ ॥
यह पराग-रसमूलि सुख सरसै। नव मकरंद सु आनंद बरसै ॥ ३६ ॥
महकि सोर चहुँ कोउ रह्यौ है। महा मधुरिमा-निधि उमह्यौ है ॥ ३७ ॥
यह दिन यह रजनी कछु औरै। लीला ललित ठौर ही ठौरै ॥ ३८ ॥
छिन छिन बन-महिमा अति बाढ़ै। समाँहि समाँहि सनि को मति वारै ॥ ३९ ॥
आनँद अमित अपार बन छायौ। जुगल प्रेम-वितान तनायौ ॥ ४० ॥
नित नवीन रसकेलि-भवन है। बन गुन बरनत जुगल बदन है ॥ ४१ ॥
रास-विलास विविध रसमंडित। माधुरि श्रीरसराज अखंडित ॥ ४२ ॥
अब ऐसौ चाहियै तब जैसी। बन्यौ रहत वृंदावन ऐसी ॥ ४३ ॥
नित राधापिय कौ हित थापै। सुचि रुचि सहज सकल विधि तापै ॥ ४४ ॥
मुखन प्रगट गति कहीं न परई। अति अगाध महिमा बन भरई ॥ ४५ ॥
पल्लव पुंज कुंज परिपूरन। पुलिन मंजु चिंतामनि चूरन ॥ ४६ ॥

३१—रहौं—रहता ([illegible]).

[२६] भ्राजैं=(शोभे में) चमक की भाँति लगाते हैं। ये रंग बन के दल आदि में शोभ रहते हैं। [३१] जहाँ=जटित करे।

अकथ अगम्य अलौकिक सोहै। को है जो बन दूखनि जोहै ॥४७॥
दृग रसना घन-रस-जस-लायक। देहै घन उदार सुखदायक ॥४८॥
सोई लखि या रसहिं भाखिहै। चाखि चाखि अभिलाषि राखिहै ॥४९॥
मोकौं सदा मगन यह मन है। राधाजीवन-जीवन-धन है ॥५०॥
बसौ निरंतर आंखिन आगैं। पल पल जोति अपूरब जागैं ॥५१॥
बल मेरो हौं वृंदावन को। धन-रखवारो है मन-धन को ॥५२॥
आनँदघन वृंदावन बर्सै। महामधुर रसधारा रसै ॥५३॥

कवित्त

वृंदावन सोभा नई नई रसमई गोभा-
कहत थकै न स्याम-नैन पहचानहीं।
राधिका-दरस को सुदेस आदरस यहीं,
चाहीहै करत जब जब जैसो जानहीं।
देखैं रंगमूरति बसे हैं इक संग दोऊ,
रूप की तरंगैं घनआनंद बितानहीं।
जमुना के तीर तेरो प्रगट दुरयौ है अति,
निगम अगम नाहिं लखैं बखानहीं ॥ ५४ ॥
स्याम धामैं बसै यह बसै स्याम-हियें सदा,
तामैं फिरि राधा बसैं क्यौं इन सो निहारियै।
अहो वृंदावन [illegible] प्रगट दुरयौ है एक,
मोहन को जीवन ईठि भए तो विचारियै।
तन देह मन लौं अगोपि [illegible] अद्भुतो,
तिन हीं को कृपा कांछु अंजन निचारियै।
महा [illegible] माहिं ऐसे दीसि परयौ,
दीसत न काहू बिन [illegible] लाल-प्यारियै ॥ ५५ ॥

५३-बसै-बसौ (४९)। ५४-नहीं-नाहिं (वृं०८)। हैं-है (लंदन)।
५५-वृं०-मत आनंद की गोद।

[५४] गोभा=अंकुर। दरस=दर्शन। सुदेस=सुंदर। आदरस=दर्पण।
[५५] ईठि=इष्ट, प्रिय।

याहि दीसैं स्याम दीसैं दीसैं स्याम दीसैं यह,
ऐसो वृंदावन कहौ कैसैं कवि गाइहै।
दीसत दुरयौ सो स्यामसुंदर-सुभाव जियें,
हरयौ मति हरैं हरि हरि किसे गाइहै।
पल तैं परैं है अयौ [illegible] यहै वृंदावन,
रोचैं रस जानैं ईसहू मैं चकसौ मई।
नाहिं और [illegible] पायो निधि है मयांक सुधा,
मधुर त्रिभंगी [illegible] ॥ ५६ ॥
वृंदावन-माधुरी अचंभे सौं भरो है देखौ,
स्याम को अनूप रूप त्यौं ही [illegible] दिखियै।
अंग अंग-संग-अकसीक ह्वै रह्यौ अदाई,
ताते भौंहपनी राधा [illegible] अवरेखियै।
सुबन बस्यौ है सुखबस्यौ है कालिंदी-कूल,
आनंद को घन रसमूरति बिसेखियै।
देखत दृगनि सो अन्नानी पै [illegible] जाहि,
मानन कृपा ही पै [illegible]-गुन पेखियै ॥ ५७ ॥
वृंदावन पहुँचे को मंग हौं माहिं न [illegible],
पाइहै [illegible] रस-पावन कयों पाइयै।
राधा-प्रिय-केलि की कलानि की [illegible] नीकें,
[illegible] नाइयै।
[illegible]
भानुजा-भवन-रज [illegible] अजाइयै
[illegible] परम दूरि,
आनंद के अंबुद कौं [illegible] बरसाइयै ॥ ५८ ॥

———

५६-[illegible] (वृं ८)। [illegible] (नहीं)।

[५६] [illegible]। सकलास=प्रसाद। परासई=स्पर्श करें। [५८] भानुजा=राधिका।

ब्रजस्वरूप

चौपाई

ब्रज को सुख-सुरूप कछु कहौं । कहि कहि परमानंदहिं लहौं ॥१॥
बसत स्याम अभिराम जहाँ हैं । सब सुख सेवक सदा तहाँ हैं ॥२॥
परम प्रेमपूरन ब्रजदेस । ब्रजजन बंदत सेस महेस ॥३॥
ब्रज के लोग महा बड़भागी । सुंदर स्याम सहज के लागी ॥४॥
जीवन को फल ब्रजजन देखैं । देखैं कान्हैं मानत लेखैं ॥५॥
कमलनैन ब्रजजन-मनहारी । नंद-जसोदा - प्रान प्यारी ॥६॥
थिर चर सबही कुंवर कन्हाई । बिबिध भाँ ब्रज को बसवारो ॥७॥
धनि यह ब्रज धनि ये ब्रजबासी । कृष्णचंद्र - चंद्रिका - प्रकासी ॥८॥
या ब्रज निस दिन - उत्सव रहै । जाकी उपमा को कछु न है ॥९॥
कहौं कहा धौं ब्रज की गाइ । बरसत निस आनंद - प्रवाह ॥१०॥
मुरली - नाद मोहि सब गावें । पुरवत सुख-समाज अभिलाषें ॥११॥
गाथी गोप गाय सब - पगे । प्रान जस प्रान कान्ह सों लागे ॥१२॥
ब्रज-मोहन देखैं जिवैं । नैनन रूप-सुधा भरि पिवैं ॥१३॥
यह सुरूप सुख समुझत नेई । इनहिं स्याम सुंदर सुख देई ॥१४॥
स्याम - संग के रंग निहारैं । रीझि रसिक सबकुछ तन वारैं ॥१५॥
ब्रजसमाज देखें बनि आवै । कोउ कोउ किहि भाँति बनावै ॥१६॥
जो सुख सबनि अगोचर आहि । कैसें बरनि बतैए ताहि ॥१७॥
ब्रजछबि देखन के दृग चाहि । परमानंद और नहिं ठाहिं ॥१८॥
जिनको ब्रज जी ये दिखरावैं । तौ ये संत दृष्टि-फल पावैं ॥१९॥
निरवधि आनंदमय ब्रजधाम । निवसत सदा स्याम अभिराम ॥२०॥
परिकर प्रेमपुंज संग सदा । बिलसत लीला-सुख - संपदा ॥२१॥
ब्रज बिनोद - सागर रसधार । अति अगाध अति अगम अपार ॥२२॥
कहिहैं कहा महाकवि रचनी । कवनी मिष्ट नंद-नंदन-बरनी ॥२३॥

३—बंदत-वंदत (टु० ७)। ११—पुरवत—पुरवत (वही)। १८—है—सो (वही)। २२—अपार—अपार (लंदन)।

[२३] कवनी=(कमनीय) सुंदर ।

लगनि देखि अद्भुत छबि हीसैं । ब्रज - रजमती रतौ उजड़ईसैं ॥२४॥
नंद नंदसुत लौकैं बसैं । गोकुल गाँव गोपनि गन लसैं ॥२५॥
अब ही सों अब तौ दिन रातैं । मन मिलि रंगिन तन के हातैं ॥२६॥
प्रेम-नेम और जीवन आनंद । आनंद - रहित सुतंत्र निरंतर ॥२७॥
गोकुल नाथ कहाँ लौं कहिये । मन अरु धाम अलंबै लहिये ॥२८॥
साथ सखन सों रसिक सुहाए । बिहरत बिलास परम छबि छाए ॥२९॥
सदन मनभाये गली सुनीत । घर घर मंगल - मोहन गीत ॥३०॥
देखत बनै बनै बरनै न । ब्रज दरसें तेई चर नैन ॥३१॥
ब्रजमोहन जीवन सब जा के । पूरन करत मनोरथ ती के ॥३२॥
ग्वालग्वाल-कोलाहल छिन छिन । नित उत्सव मोहन-जोहन-हित ॥३३॥
गोप गोप सामा सुखसाज । जय ब्रजमंडन जय ब्रजराज ॥३४॥
तिन संग नित नित सुख पैये । देखत देखत मन न अघैये ॥३५॥
अति उतंग सोभित चौपारैं । ललित चौंतरे बरनन न्यारैं ॥३६॥
ब्रजमोहन बिहरन रसठान । खेलैं निकसि सुहल चौगान ॥३७॥
चहूँ ओर सुभ सुंदर पथरा । दिन हो लसत सांवरे सरवर ॥३८॥
अमल अपूरब दरपन कैसा । ब्रजमोहन - छबि जोवन जैसा ॥३९॥
साँझ सकारे खेलनि मोहन । पैरनि हरनि कदम - छोहन ॥४०॥
रितुरितु सुमननि सहज की बिलसन । सदा एकरस लसन सु हुलसन ॥४१॥
जसुदानंदन - संग ब्रज आयौ । ताते लागत परम सुहायौ ॥४२॥
जब लखियै तब तब मन भायौ । ब्रज भोजन चौंकाओ आयौ ॥४३॥
आनंदनिधि ब्रजमोहन - धाम । बस्यौ सदन ज्यौं चाहत स्याम ॥४४॥
भोजन साज जहाँ चौपासौं । दिन-किमान कै कहूँ न सौसौं ॥४५॥

२५ के-कौं (लंदन)। २८—धाम धाम (टु० ७)। ३२—छगन—जीवन मनोरथ (टु० ७)। ३४—बिहरन—बिहरन (लंदन)। ४०—हरनि-सग (लंदन)। ४४—धाम—आनंद संगम (लंदन)।

[२४] रतौ=अनुरक्त [२५] नगोंकुर=नंदगाँव । [२६] हातैं=दूर । [२७] तत=तंत्र । [३६] चौबार=चौपाल, गाँवों में घर के बाहर की बैठक । [४५] सासम=(तुलना) सारस ।

उमहि उमहि बरसै आनंदघन । या रस भीजे राजत ब्रजजन ॥४६॥
घमड़ि स्याम घन झरहि लगावैं । ब्रज की छबि देखें बनि आवै ॥४७॥
हरियारो नित ही हरि-प्यारो । मन-उजियारो ब्रज उजियारो ॥४८॥
बरहे ठौर भरे जित तित । हिय-फुहार की भलक रहति नित ॥४९॥
जुहीं मुहीं सुभ गुहीं खिलाहीं । सोभा ललित लतनि लगि मिली हैं ॥५०॥
भूमि अँध्यारी है घन घोरनि । ब्रज बोलें घन बारौ मोरनि ॥५१॥
दसहि वहति झाईं झिंकार । जित तित मान्यौ प्रेम-पुकार ॥५२॥
दिन अधरानि परत नहिं पायौ । ब्रज आनंदघन ओज भिजायौ ॥५३॥
निपट कौंधनि कांधनि भोरी । ब्रज-उजियारे पै आनि मोही ॥५४॥
सिथिल कसूंभी पाग झकोलो । अलबेलं की भलक रंगीली ॥५५॥
आभा संग अलबेली अनेक । हरि-हित भरि भरि अबलौं टेक ॥५६॥
दरसत न कहूँ कढ़त नहिं पलकौं । कही न परति हिये की ललकौं ॥५७॥
बन मैं मन मैं विहरत डोलें । तिन के नाचनि गावनि बोलें ॥५८॥
सघन कदम-तरु भूर भरावन । रतना छबि पावन बहु गावन ॥५९॥
बन व्यापक सुभगता की पैठ । आवनि अगम्यासिनि औसैठ ॥६०॥
कान रमैं ब्रज सोभित सदा । ब्रज बरसत सब सुख संपदा ॥६१॥
गिरि गोधन हरियारो रहै । सोभासों नित बासो गहै ॥६२॥
झूमे रहत गिरि-सिखर बादर । बोलत मोर भाँति भरे आदर ॥६३॥
नव घनस्याम चंद्रिका धरैं । अपनो भाग निहारयौ करैं ॥६४॥
गुंजमाल तन धातु विचित्र । लसत बनै ठनै सब मित्र ॥६५॥
निरखि लाल जिनकौ चित मोहन । ब्रजमोहन ब्रजबन अवगाहन ॥६६॥

४८—उम-घन ([illegible]) ; ५०—[illegible] ([illegible]) ; ५२—[illegible] कामिनि [illegible] ; ६०—[illegible] ([illegible]) ; ६१—[illegible] । निज—[illegible] ([illegible]) ।

[४९] बादि=नाहैं । [५४] कंविरि=कमली । सोहो=ओढ़नी । [५५] कसूँभी=पीला । पाग=पगड़ी । [५८] बोलें=बुलाते हैं । [६०] [illegible] पत्तों का चब जाना । [६१] सीमा=अपार । [६२] नित=नित्यवास सदा चौमासा ही रहता है । [६५] धातु=मिट्टी ।

ठौर ठौर की सोभा नई । ब्रज की बानिक अचरजमई ॥६७॥
बकुल सकुल कदंब मिलि फूले । सौरभ-बिबस पवन छकि भूले ॥६८॥
स्याम-सुअंग सुगंध समोई । ब्रजबन-बासित नित हित-भोई ॥६९॥
मरकत मजबन सोहै जु महा । ब्रजबन को सुख कहियत कहा ॥७०॥
जित तित चौंपभरे बनवारी । ब्रजजीवन बनराजबिहारी ॥७१॥
जमुना-कूल कदंबनि मूल । निर्जन ठौर केलि-अनुकूल ॥७२॥
सुथरी ठौर कुंज-द्रुम फैल । जहँ रुचि सौं बैठत ब्रजछैल ॥७३॥
सुरंग-गुंज-फल बैठि निहारत । राधारमन नाम-गुन धारत ॥७४॥
[illegible] परनि क्यौं इनकौं आरति । वृंदाबन बन मौन पुकारति ॥७५॥
चनक मूँद खग मृग सब चकैं । मदन गुपाल केलि-रस छकैं ॥७६॥
ब्रजस्वरूप देखत ब्रजलोचन । ब्रजबन रुचिरोचन दुखमोचन ॥७७॥
नित ब्रज बसत लसत ब्रजनागर । यह ब्रज अद्भुत रस कौ सागर ॥७८॥
कृष्णचंद-हित बाढ़यौ रहै । ब्रजमोहन जू कौ ब्रज यहै ॥७९॥
गन ब्रज यह ब्रज यह ब्रज मोहि । सूझि परयौ ब्रज कौ रज टोहि ॥८०॥
ब्रजबन स्यामस्वरूपहि सूझै । बिन रज लहैं न कोऊ बूझै ॥८१॥
ब्रजस्वरूप अति निगम-अगम है । रजहि मिलै तैं मिलत सुगम है ॥८२॥
अंजन यहै सुभ हू यहै । ब्रजरज-सरन गहै रज रहै ॥८३॥
ब्रजरज-सरन गहैं रज नाहीं । ब्रजमोहन-लीला-निधि ताहीं ॥८४॥
मगन रहैं लीला-सुख माहीं । ब्रजरस ब्रजमोहन सौं कहीं ॥८५॥
नित नित चौंप नई चित भरैं । या ब्रज की सुख-संपति हेरैं ॥८६॥
लीला ललित नित नयौ भाव । अब कछु ऐसो सहज सुभाव ॥८७॥
नित ब्रजमोहन-केलि निहारौं । पाय पाय प्रानन हौं वारौं ॥८८॥
नित गोचारन नित गोदोहन । नित नव रंग रसिक ब्रजमोहन ॥८९॥

६८—बकुल—[illegible] (वही) ; बिबस०—[illegible] बिबस भ्रांत (वही) । ६९—समोई—समेय । ७०—[illegible] (वही) । ७२—निर्जन—निजगाँव (वही) । ७७—रोचन रोचन । ८९—नवरूप-रूप ही (वही) ।

[७६] चनक०=खुलना और बंद होना । [८३] रज=राजस, महत्त्व ।

दान-केलि नित आदित-पूजन। नित कोलाहल नित ब्रज कूजन ॥९०॥
नित त्यौहार बार ब्रजजन कैं; नित रस भीजैं सुंदर घन कैं ॥९१॥
कातिक खोरि ब्रज बाग गरधारे। कहा कहीं लागत आनि प्यारे ॥९२॥
निकसन लसन साँवरो छैल। रोकत मन-नैनन की गैल ॥९३॥
अटक-भटक की भेद अटपटी। हियकनौड़ चित चाह-चटपटी ॥९४॥
ब्रज घर घर गोपिन के गीत। मधुर स्वर रसढरे पुनीत ॥९५॥
कान्ह-कथा सोवत अरु जागत। सोधनि आगनि आचिरज पागत ॥९६॥
ब्रज गोपालमई ह्वै रह्यौ। ब्रजसरूप कछु परत न कह्यौ ॥९७॥
सो जानै जो यह ब्रज निरखै। करै पान आनंदघन निरखै ॥९८॥
कछु ब्रज कछु रस कछु ब्रजरूप। जु कछु सु सब कछु परम अनूप ॥९९॥
ब्रजरस पियत पियत ही जियौं। जियत जियत ब्रजरस ही पियौं ॥१००॥
मोकौं यह ब्रज सदा सहाय। मन दृग अंखित लियौ दुहाय ॥१०१॥
ब्रजरस पियत पियत न अघाऊँ। बहकि एक ब्रजरस बरराऊँ ॥१०२॥
रात बीत एकै ब्रज दीसै। ब्रजरस परसि नवाऊँ सीसै ॥१०३॥
ब्रजगोपिन की हिलग हिय बसी; मतिगति भाँति ब्रजदेवि गुनगसी ॥१०४॥
ब्रजस्वरूप बरनै ब्रजबानी। और कौन की बुद्धि अघानी ॥१०५॥
ब्रजभाषा रसनै अवनावै। तौ ब्रजकथा तथा कहि आवै ॥१०६॥
ब्रजरस उफनि बढ़ै हिय-सोत। रसना ह्वै ह्वै प्रगटित होत ॥१०७॥
चढ़ै रंग ब्रजरस की बातहि। सब पावै ब्रजरस की घातहि ॥१०८॥
चित चढ़ि रहै जुगल ब्रजजन कौ। ह्वै जु रहौ ऐसो गति मन कौ ॥१०९॥
या ब्रज ही सौं बान बन्यौ है। ब्रजजीवन रसरीति-सन्यौ है ॥११०॥
ब्रजमोहन ब्रजबधू-बिलास। नित पूजवत ब्रजबसि मो आस ॥१११॥

९०—कूजन—ऊजन (वृंदा०)। ९१—बार—द्रुम (लंदन)। ९५—ढरे—करे (वही)। ९७—कह्यौ—नहीं है (लंदन)। ९८—निरखै—बरखै (वृंदा०)। १०१—सुहाय—सुहाई (वृंदा०)। १०५—अघानी—बखानी (वृंदा०)। १०८—ब्रजरस—या रस (लंदन)। १०९—चढ़ि—बढ़ि (वही)।

[९०] कूजन=धूम। [१०२] बरराऊँ=बकूँ (सोते समय स्वप्न देखकर बकना बराना है)। [११०] बान=स्वभाव।

ब्रज बसि ब्रजबासिन कौं आस। सुफल भयौ मेरो ब्रजबास ॥११२॥
हौं या ब्रज अरु यह ब्रज मेरो। सुगम लह्यौ ब्रजबास बसेरो ॥११३॥
आनंदघन ब्रजरस-घन पक्यौ। ब्रजमोहन मादक-गुन छक्यौ ॥११४॥
नित ही ब्रजरस की रट लागी। रसना आनँदघन-घन पागी ॥११५॥
ब्रजरस अमल खरैं तें खरौ। मो बिन और गरैं जिन परौ ॥११६॥
ब्रजरस अब तौ गरैं पर्यौ है। रस ही लै रसरूप ढर्यौ है ॥११७॥
ब्रजरस ही हिय-सींव भर्यौ है। रसना ह्वै अपढार ढर्यौ है ॥११८॥
मनमोहन ब्रज की ये बातैं। को समझै अरु कहियै कातैं ॥११९॥
कोऊ कहावै आपै सुनै; अपने गुन सौं रसना गुनै ॥१२०॥
मनमोहन ब्रजरस की बात। कहत सुनत रसिका न अघात ॥१२१॥
ब्रजरस ब्रजरस ही सब रस है। ब्रजरस आनँदघन-सरबस है ॥१२२॥

———

११२—सुफल—सफल (वही)। ११४—मादक—[illegible] (वही)।

[११८] अपढार=आपसे आप ढलना।

गोकुलचरित्र

चौपाई

गोकुल में रस उमड़्यौ रहै । आनँदघन जहँ घमड़्यौ रहै ॥ १ ॥
गोकुल की छबि कवि क्यों कहै । गो जब लौं गोकुल नहिं गहै ॥ २ ॥
महा मधुर रस रसना पगै । गोकुल के गुन गुन मैं खगै ॥ ३ ॥
जगै जोति गोकुल की मन मैं । दीसै घिरि फबै रूपघन मैं ॥ ४ ॥
गोकुल को सुरूप तब दरसै । रोम रोम बानी रस बरसै ॥ ५ ॥
सो गोकुल गोकुल को मूल । नंद-जसोमति-हित-अनुकूल ॥ ६ ॥
जगमगात गोपिन के ऐन । गोकुल को सुख बरनि बनै न ॥ ७ ॥
घर घर कृष्ण बिराजत सदा । लिये ललित अपनी संपदा ॥ ८ ॥
हित-बितान घर घर पर तनै । गोपी गोप लसैं सुख-सनै ॥ ९ ॥
कान्हरूप-रस निसिदिन पियैं । प्यासे रहैं महा रुचि हियैं ॥ १० ॥
या गोकुल के स्वामी गरवारे । बिहरैं गोकुलचंद पियारे ॥ ११ ॥
चहल पहल चौंपनि सौं हालनि । चोंसभरी बोलनि मुसकालनि ॥ १२ ॥
रस की उमड़ कछु न कहि आवै । गोकुल-सुख देख्यौई भावै ॥ १३ ॥
नवल बधू गोकुल की सुनी । परसैं लाल खिलारी गुनी ॥ १४ ॥
पनघट खरिक ताकरस छाकैं । अद्भुत-फल सवाद फल पाकैं ॥ १५ ॥
दीठि मान राखै जु समोय । बरनैं कौ जु मिलैं सुख होय ॥ १६ ॥
बन सहेट गोचारन-समैं । आनक रचि सु कहूँ तित गमैं ॥ १७ ॥
बनबिलास द्रुम-बेली घनी । ललित अलित रसमय सुखसनी ॥ १८ ॥
या बिधि की अनेक बिधि हेटैं । छलौं छैल को पैंडे पैंटैं ॥ १९ ॥
सबसौं सबकी साध पुजावैं । पूरन गोकुलचंद कहावैं ॥ २० ॥
घन तैं गाढ़नि पाली आवनि । एक डीठिऊ सनरस प्यावनि ॥ २१ ॥
दोहन-समै कामना दुहै । जैसी जासौं जिय की जु है ॥ २२ ॥

[२] गो=वाणी । [३] खगै=लीन होती है । [१४] सुनी=लाल-मुनी, लाल पक्षी की मादा । [१७] कहूँ=कदाचित् । तित=वहाँ । [१९] हेटैं=सहेट-स्थान ।

रूपरासि रसपोखे अंग । फूलमाल उर बरसै रंग ॥ २३ ॥
सुठि सूछम केसरी लपेटा । गँसि भरयौ चित-चौंप चपेटा ॥ २४ ॥
चिकने केस घूँघरे घनैं । बिमल कपोलनि आलैं बनैं ॥ २५ ॥
छबि की छूट । छलनि कैं छूटैं । जिन ही छलनि नैन-मन लूटैं ॥ २६ ॥
भौंह भेद की भरी अमैंठी । सूधे लसैं जाति हिय पैठी ॥ २७ ॥
नैन मैन की मैन सँजोए । मिलैं डीठि उर होस न जोए ॥ २८ ॥
गिरा घेरई महलि त्रान लै । करै अनसुनी सकल मान लै ॥ २९ ॥
गिरि बन कुंज खरिक अरु वाखरि । हित-मलंग पै परि पन-चाखरि ॥ ३० ॥
जब ज्यों जहाँ जीविका लहै । जिय मिलाप न्यारे मिलि रहै ॥ ३१ ॥
ज्यौं कोऊ यह सुख अनुमानैं । गोकुल बसैं रसैं अवि गानैं ॥ ३२ ॥
सबको जीवन नंदकिसोर । सब रस रूप दियें निसि भोर ॥ ३३ ॥
सब अभिलाष-कलपतरु मोहन । अद्भुत लता लहलहै गोहन ॥ ३४ ॥
फलन ह्वै फल चाखै अभिलाषै । अद्भुत तरु-बेली-रस-राखै ॥ ३५ ॥
सब अचरज है अचरज भानै । अद्भुत रस के बस हम जानैं ॥ ३६ ॥
यह गोकुल-हित नित ब्यौहार । मंगल मोद सदा त्यौहार ॥ ३७ ॥
गोकुल दरसै सदा रसीलौ । आनँदघन उमंग-बरसीलौ ॥ ३८ ॥
मचियै रहै चुहल चायनि की । गुपत प्रगट आरअप भायनि की ॥ ३९ ॥
भूमि-भाग महिमा को बरनैं । मन ह्वै रीझि कहत है बरनैं ॥ ४० ॥

---

[२४] सुठि=सुंदर । सूछम=पतला महीन । लपेटा=पगड़ी । गँसिन=रुकाई । [२५] आलैं-गोले वा स्थान में । [२६] छलनि=छल्लों से । [३०] वाखरी=घर । [४०] बरनैं=पद को, कविता को ।

प्रेमपहेली

चौपाई

मोहन इत हूँ निकसे आय । हौं ठाढ़ी अपने जु सुभाय ॥ १ ॥
डीठि डीठि मिलि भयौ मिलाप । छुटि छुटि मिली आप ही आप ॥ २ ॥
फूलि भूलि वेऊ अरु हौं हूँ । रहे लोभ लगि इत अरु गौं हूँ ॥ ३ ॥
उनकी वे जानैं क्यौं कहियै । पै अपनौ मन कहूँ न लहियै ॥ ४ ॥
बहुत पची अपनो सो ऐंचि । हँसि चितवनि लै गई जु खैंचि ॥ ५ ॥
छुटी रहति क्यौं हित की गोभा । देखैं स्याम-सुधानिधि सोभा ॥ ६ ॥
उघरि परैगी गैल गरबारै । बात नेह की समझि सवारै ॥ ७ ॥
देखौ चंद लिये तैं कैसैं । जियरा आनन बाँध्यौ जैसैं ॥ ८ ॥
अब कबहूँ कछु गही गहनि है । कहि कैसैं रहि सकै रहनि है ॥ ९ ॥
भोर साँझ इत ह्वै हूँ आवै । गायनि लै चायनि सरसावै ॥ १० ॥
देखत सबै सुनावत मोहीं । कहा करौं तब सूझति नाहीं ॥ ११ ॥

[३] गौं = घात । [५] पची = परेशान हुई । [६] गोभा = अंकुर, अंकुवा, अभिव्यक्ति ।

रसनायश

चौपाई

रसना तेरी बलि बलि जाऊँ । सुमिरै स्याम-सुधानिधि-नाऊँ ॥ १ ॥
रसना रस की अवधि सुजान । निसदिन करै कृस्न-गुनगान ॥ २ ॥
रसना तेरो भलो सुभाव । जानै हरिचरितन को चाव ॥ ३ ॥
रसना है तू ही बड़भागी । मधुसूदन-गुन सौं अनुरागी ॥ ४ ॥
रसना तु ही सकल रसरानी । हरि भजि सफल करी तैं बानी ॥ ५ ॥
रसना तु ही सबनि हि जानै । ब्रजमोहन के चरित बखानै ॥ ६ ॥
रसना तो सी तु ही न दूजी । नित ब्रजजीवन-रस पी तू जी ॥ ७ ॥
रसना को तेरो जस भाखै । नित ब्रजबधू-रसासव चाखै ॥ ८ ॥
रसना तैं ही सौभग पायो । नंदकै जसुमति-लाल लड़ायो ॥ ९ ॥
रसना तो सी तु ही सभागी । नित राधा राधा रट लागी ॥ १० ॥
रसना तू मोकौं अति भावै । दंपति-बिसद-बिहारहि गावै ॥ ११ ॥
रसना तू ही रसबसि पूरी । ब्रजधन-कथा सजीवन-मूरी ॥ १२ ॥
रसना तु ही मनोरथ-बेली । हरि-राधा-रसरंगनि भेली ॥ १३ ॥
रसना तू रस-रतन-मंजूषा । खुली लसै जिमि निसि ऊषा ॥ १४ ॥
रसना तु ही रसामृत-सरसी । हरिगुन-अमल-कमल-रुचि सरसी ॥ १५ ॥
रसना हित-चिंतामनि-माला । हरिगुन-गूँथित परम रसाला ॥ १६ ॥
रसना तू सब सुख की स्वामिनि । रची रहति हरि सौं दिनजामिनि ॥ १७ ॥
रसना तू सुखदायनि मेरी । नित हित-हरि-नामावलि फेरी ॥ १८ ॥
रसना सोवत जागत जागी । कृस्न कृस्न रटना रुचि पागी ॥ १९ ॥
रसना प्रेमनेम-हित-जल्पा । राधाधवहिं सुमिरि भई धन्या ॥ २० ॥
रसना बदन-सदन की सोभा । कृस्न-मयंक-चंद्रिकनि लोभा ॥ २१ ॥
रसना रसिकनाथ सौं बाँधी । भली भाँति गुनगन गसि गाँधी ॥ २२ ॥

[१४] ऊषा = प्रभात, दिन । [२२] गसि = कसकर । गाँधी = गुँथ गई है ।

रसना मेरौ जनम सुधारयौ। ब्रजपतितनय-नाम-धन धारयौ ॥२३॥
रसना हरि-विनोद-हित-नैना। पन-पिंजर बोलति रस-बैना ॥२४॥
रसना तू अनुरागनि पाछी। गोविंद-गुनगान गरिमा साछी ॥२५॥
रसना सदा रसमसी राजै। रसनिधान सौं अति रति साजै ॥२६॥
रसना तू नित ही हित सरसै। मधुर किसोर-नाम सुख परसै ॥२७॥
रसना यह रस पियत न अरसै। चातक-रुचि आनँदघन बरसै ॥२८॥

---

[२५] पाछी = पीछे का पक्षी। [२८] अरसै = आलस्य करे।

गोकुलविनोद

नंद-गोकुल बरनि धानौं विसद जोति-निवास।
जहाँ नित्यानंदघन अद्भुत अखंड विलास ॥१॥
स्याम रुचि सुचि सरस सीतल नदनिकटजमुना-कूल।
हहहहैं तरु सघन सुंदर लसत सुषमा-मूल ॥२॥
ललित कुसुमित फलित बलित बिसाल बेलि तमाल।
बरसि नीर समीर बिलुलित भ्रमित मधुकर जाल ॥३॥
अति सुदेस सुगंधमय दीपित सुपेसल भूमि।
पुहुप-पुंजनि हरषि बरसत रहत तरु घन झूमि ॥४॥
मुदित केकी कुल कुलाहल करत रहत अनूप।
सकल रितु सुख सब समय जहँ अमित उत्सव-रूप ॥५॥
जगमगत मंगलनिकर-ओपित अमल आवास।
चैन चरितनि चुहल चहुँदिस परम प्रेम-हुलास ॥६॥
मलय-द्रुम-छबि फबि रही सुभ सुखद द्वारहि द्वार।
अगरबासित बगर नित ही मोद-सौरभ-सार ॥७॥
नंद-मंदिर कलस कौतुक बनि रह्यौ भरि भाव।
मनहु मनिनायक बिराजत अति अभूत जराव ॥८॥
रुचिर बंदनमाल राजति मनि जलजदल नूत।
सदा मंगलचार नूतन बर बिनोद अभूत ॥९॥
लसत बिलसत रहत नित गोपाल ग्वाल अनूप।
नंद-जसुमति-प्रान ब्रजजन-नैन-उत्सव-रूप ॥१०॥
गोप-गोपी-बृंद गोधन महा गहमह मोद।
परम रसमय गान धुनि नित कुलचरित-बिनोद ॥११॥

१—हुलास = उल्लास (हर्ष)।

[४] पेसल = मनोहर। [७] मलय = चंदन। बगर = घर। मोद = गंध; हर्ष। [८] नायक = माला में बीचोबीच का बड़ा गहना; पदिक। [९] बंदन॰ = बंदनवार। नूत = नवीन।

खचित बिसद बिसाल अगनित रुचिर-रचना-ऐन।
कलपतरु बिचबिच बिराजत धेन-हित सुखदैन ॥१२॥
सरस गोदोहन जहाँ गोबिंदसाला-धाम।
प्रात संध्या केलि-कोलाहल परम अभिराम ॥१३॥
नित्य गोचारन मनोहर सुभग जमुना-तीर।
बेनुबादन-माधुरी आभीरनंदन-बीर ॥१४॥
अखिल-सुख-सुषमा-सदन बिहरत सखा बलबीर।
परम कौतुकरूप स्यामसरीर गुनगंभीर ॥१५॥
पुलिन बन गिरिकुंज क्रीड़ा अतुल आनँदरासि।
मदनमोहन परम सोहन अंगरंगनि भासि ॥१६॥
सुहृद सखिनि समाज को सुख देखि बिथकित नैन।
बनबिहार अनेक बिधि के अमित अचरज-ऐन ॥१७॥
खिचि-मिचावादिक भूलि सुमिरत सम्हरि मतिगनि माधि।
पचत नित नित रचत हित नित अमित रस आराधि ॥१८॥
सो सहज ब्रजअवनि की जीवनि निरखि निमिभोर।
भूमि-भागनि बरनि बंदत निरखि नंदकिसोर ॥१९॥
नित नई लीला ललित बिधि करत नंदकुमार।
नर अमर खग मृग बिमोहन अति रसामृतसार ॥२०॥
रसिक नटवर भेस परम सुबेस रूप अपार।
ब्रजबधू आनंदघन-लीला-सरस-आसार ॥२१॥
मंजु मुरली-गुंज अति सुखपुंज परज रसाल।
चातका गोपी-स्रवन-पुट पूरि हारति निहाल ॥२२॥
परम रम्य अनूप बृंदारन्य सुखद प्रदेस।
रास-रससागर तरंगित लखि सरद राकेस ॥२३॥

१२—केलि०—केलि कुलाहल परम अति (वृंद०)। १४-बादन—वादन (लंदन)।
१८-भूलि-फूलि (वृंद०) । १९—भूमि-भूमि (लंदन) ।

[१२] धैन=धेनु। [२१] आसार=वृष्टि। [२३] राकेस = पूर्णिमा का चंद्रमा।

ललित अति रसपलित तरुन तमाल कंचन-बेलि।
राधिका-हरि-भाव भरि सूचत सदा नव केलि ॥२४॥
फूल फल दल मूल रस-अनुकूल सम सब काल।
कुसुमभव आदरस बन घन दिपत जोतिनि जाल ॥२५॥
तहँ निरंतर नंदनंदन करत बिबिध बिनोद।
ब्रजनृपति-रसतृपित-हित नित बरसि प्रेम-पयोद ॥२६॥
गान अद्भुत तान बर बंधान निर्त सुदेस।
परम अभिनय-निपुनतामय भरि अतुल आवेस ॥२७॥
इहि बिहार बिनोद प्रमुदित सदा गोपीनाथ।
रसिक राधारवन लीनें जुवतिजूथनि साथ ॥२८॥
परम गह्वर रुचिर सुचि रुचि-पुंज मंजुल कुंज।
नव-प्रसून-पराग-मंडित सरस मधुकर-गुंज ॥२९॥
माधवीथल-रचित पेसल बिसद अद्भुत भौन।
तहँ निवेसित स्याम स्यामा परमपद सुखदैन ॥३०॥
अमित आनँद उमग की गति कहि सकै मति कौन।
तिन कृपा सौं होत अनुभव गहति बानी मौन ॥३१॥
अमित अंगनि ओप अनुपम महारूप-प्रकास।
करौं नित हित-सहित हूँ सो नैन-मन मैं बास ॥३२॥
सहचरिनि के बृंद संग लै जात जमुना-तीर।
अति उमड़ जलकेलि-हित तिहि उचित सजि सजि चीर ॥३३॥
चीकने मेचक रुचिर मुंचित सुकुंचित केस।
निमि रसाल सु लचि रही फबि पीक अंजन-लेस ॥३४॥
घूमरे लोचननि की गति अति मिलित मद छाकि।
अलकनी बरुनी-अनी पर लखि रहत चित चाकि ॥३५॥

[२७] निर्त = नृत्य; सुदेस = सुंदर। [२९] गह्वर = गुप्त स्थान।
[३०] निवेसित = स्थित। [३४] मेचक = काले। मुंचित=मुक्त, खुले।
कुंचित = टेढ़े। [३५] घूमरे = मतवाले।

अधर निकि बीरी-रचनि की खुलि रही रुचि-रेख ।
दसन-खत अनुरागसूचक परसि नख - उल्लेख ॥३६॥
गंड रद - मुद्रावली कर मुकुर मुद्रा देखि ।
लाज लालस भरनि दृग हिय सुख-समय अवरेखि ॥३७॥
सरस परिमल लपट झपटनि भृंग तजत न पास ।
सुहृद अति ढिग ह्वै निवारति मानि मन मैं त्रास ॥३८॥
लाल को लंपट - दसा देखत लसति भ्रुव भंग ।
मंद मुसकनि - संग उपजति चाह अमुन-तरंग ॥३९॥
प्रानप्रिय सहचरि विसाखा नरम बचननि बोलि ।
आनना नवबधू - मुख लैं देति घूँघट खोलि ॥४०॥
मंजु मंजुल कुंज ढिग ही तरनितनया - घाट ।
पुरट मनि मरकतनि की तति जहाँ मंजन-ठाट ॥४१॥
बहुत बिधि जलकेलि के सुख लेत देत सुजान ।
रूप - जोबन - मद-छके मिलि करत मादक-पान ॥४२॥
मानसर सुभ थान तिहिँ ढिग नव तमालनि पाँति ।
चढ़ि सतेमनि बढ़ि महा रुचि करत सुख बहु भाँति ॥४३॥
कमल-कुल-मंडलनि मधि सधि साधि राखत नाथ ।
माधुरी के भास दंपति रचत रुचिर बनाथ ॥४४॥
सलिल सींचनि दृगविमोचनि सुख सरोजनि केलि ।
झीन पट तन लपट अनुराग निरखि छाकत छैल ॥४५॥
कबहुँ पैरत चुभक लैं लै दूरि सौं नुरि जात ।
अनि तृषित रस प्यास रसनिधि नेकहू न अघात ॥४६॥

३७—मुकर—मुकर (लंदन)। ४०—देति—देति (वृंदा०)। ४१—ठाट—बाट (वृंदा०)। ४६—रसनिधि—मरनिधि (वृंदा०)।

[३६] दसन० = दंतक्षत। उरसि=छाती पर। [३७] गंड०=कनपटी। रद० = दाँतों की गोल छाप। मुकर = दर्पण। [४०] सहचरि = सखी। नरम = (नर्म) परिहास। [४१] पुरट = सोना। तति = पंक्ति। मंजन = मार्जन, स्नान। [४३] सतेम = फुरती, शीघ्रता। [४६] चुभक=डुबकी।

ठौर मनि - चौकान पै छबिभौंर लीने साथ ।
आनि ठाढ़े होत सम मिलि बसन टपकत पाथ ॥४७॥
नख-चरन - मदमंतिका-रुचि रचनि जानत मैन ।
रचति मसि नति हलति अनसा लेति चुंबन चैन ॥४८॥
पहिरि पट संजमत केसनि मृदुल अंग अगोछि ।
बाँधि मनिमुकुर-आभा - ओघ पद पद पोछि ॥४९॥
चंद्रमल्ली - पुंज की नव कुंज बिहरत आय ।
जहाँ वृंदा अति भली बिधि रचौ बनक बनाय ॥५०॥
पदकमथ मंडल मनोहर मृदुल आसन आजि ।
रूपरासि किसोर दोऊ दिपत बैठे बिराजि ॥५१॥
बरन बरन दुकूल आनि सुखमूल सजत सँवारि ।
जलज - भूषन भावते जगमगे अंगनि धारि ॥५२॥
सरस सौंधे बहुत बिधि के रचत चोलिन चोरि ।
पहिरि पहिरावत परस्पर उपजि मनोसिज कौपि ॥५३॥
बिबिध मेवा मधुर लोने धरे उर अभिलाषि ।
कुंदबेली हितनबेली प्रीत मदाहत चाखि ॥५४॥
बहुरि बीरा सुखद सौरभ अदन रदन रसाल ।
चंदन बिच बिच बचन रसमै लसत जोतिनि जाल ॥५५॥
ललित रागिनि तान की धुनि रचि रहे रिझवार ।
स्रवनपुट सहचारिनि के पूरत महा रससार ॥५६॥
मीनसादन - स्वाद परम प्रबीन ललिता संग ।
उपज मन को लेति मनु ह्वै सरस बरसति रंग ॥५७॥

४७—चौकान—चोकेन (लंदन)। ४९—ओघ—ओप (वही)। ५३—परस्पर—परापर (लंदन)। ५५—बीरा—बोरा (वही)। ५७—ह्वै—दै (वही)।

[४७] चौक = वर्गाकार चौकोर पत्थर। पाथ=जल। [४८] मदर्मतिका= मदमंतिका, मालका, मेंहदी। नति=विनय। [४९] संजमत=एकत्र करते, बटोरते हुए। ओघ=समूह, भाव। [५०] मल्ली=बेला। वृंदा=राधा। [५१] पदक= पैर के चिह्न। आजि=बिछाकर। [५५] अदन=खाना।

मुरलिका मधि स्यामसुंदर रचत सुर-बिस्तार।
नादरस-सागर तरंगित होत बारंबार ॥५८॥
रीझहू रीझति बिबस ह्वै लखि रसिक रिझवार।
द्रुमलता अरु बर बिहंगम लहत पुलक अपार ॥५९॥
पवन थंभित थकि सरित जल जहाँ मोहन नाद।
सरसुती भूली अपुनपौ कहै कौन सवाद ॥६०॥
समय चित्रित चकित चेतन रही नाहिं सम्हार।
धन्य बृंदारन्य रम्य अगम्य चिन्मय बिहार ॥६१॥
एकरस दंपति मुदित नवकेलि कैं आधार।
घमड़ि सुर-रस मांहि निज आनंदघन-आसार ॥६२॥
काहि सुधि निसि भोर कौ इहिं केलि-आसव-पान।
आपने गुनरूप कौ निज करत हैं मिलि गान ॥६३॥
ये कलाधर प्रेम के लाड़ नैन अतुल अखंड।
मनविनोद-प्रसाद सौं पावन अखिल ब्रह्मंड ॥६४॥

———

५८—तरंगित—तरगनि (वृंदा०)। ६४—मन-धन (वृं०)।
[६२] घमड़ि = बरसकर। आसार = वृष्टि।

ब्रजप्रसाद

चौपाई

नंदगाँव बरसानैं बसौं। सोभा निरखौं हरषौं लसौं ॥१॥
दुहुँ घरनि की चाहयौ ओर। गावत फिरौं साँझ अरु भोर ॥२॥
मोहन-राधा-मंगल-गीत। अति मनभावन परम पुनीत ॥३॥
सुख सोहिलौ सनाकैं सदा। या ब्रज मद आनँद संपदा ॥४॥
जसुमति नंद कीर्ति वृषभान। ब्रज पालत लालत निज प्रान ॥५॥
इनके घरनि सदा त्यौहार। नित नित ब्रज मैं हित-ब्यौहार ॥६॥
यह सुख देखि जियैं हँसि खेलि। बरनौं ब्रजमंडन की केलि ॥७॥
धन्य धन्य मेरो बड़भाग। या ब्रज सौं सरस्यौ अनुराग ॥८॥
या ब्रज कौ सुख हौं ही जानौं। या ब्रज बसि जस-रसहि बखानौं ॥९॥
हौं ब्रज कौ ब्रज मेरो निज हौ। पाल्यौ पोस्यौ इनकै हित हौ ॥१०॥
ब्रज के खरिक खोरि नित देख्यौं। भागनिकाहिं लेखैं लेख्यौं ॥११॥
ब्रजबासिन कौ निज परिवार। मन-बाँछित सुख देन अपार ॥१२॥
ब्रज की सौंज सदा सुखदाई। सहज माधुरी कही न जाई ॥१३॥
गोधन खरिक खेत अरु क्यार। गोरस दहल नाज अरु न्यार ॥१४॥
सुखी सदा ब्रजपति के राज। सिद्ध करत मनचीते काज ॥१५॥
रसभीज्यौ ब्रज रंग स्याम कैं। मंगल गहमह धाम धाम कैं ॥१६॥
ब्रजसंपति सों नैननि परसौं। या ब्रज कौं नित देत असीसौं ॥१७॥
यह ब्रज सुबस बसौ ऐसैं ही। या ब्रज बसौं रसौं जैसैं ही ॥१८॥
बन बगदें ब्रज कै नित हेरे। ग्वारनि गायनि के दिन भरे ॥१९॥
बिहरत मोहन मदन गुपाल। कदम पसेंदू ताल रसाल ॥२०॥

१५—नीति-चित (वृंदा०)।

[४] सोहिलो = मंगल। [१४] खरिक = गोचरभूमि। क्यार = केदार, क्यारी। दहल = कुंड। नाज = अनाज, धान्य। न्यार = (नियार) भुस आदि। [१९] बगदें = लौटें। [२०] पसेंदू = कोई पेड़। रसाल = आम।

छाँहि छाँहि चायनि भरि बैठति । बन के सघन सदन मैं पैठति ॥२१॥
बहुत भाँति के सुखनि सकेलनि । किलकनि मुसकनि बिहरनि खेलनि ॥२२॥
नैनन के तारे ब्रजमोहन । सदा बिराजौ सोहन जोहन ॥२३॥
सरस सरोवर जमुना-तीर । बिहरत सदा कान्ह बलबीर ॥२४॥
जित तित ही नित सुखनि समाज । धन्य धन्य ब्रजपति को राज ॥२५॥
मोद बिनोद गीत गावनि है । नित नित ब्रजमोहन आवनि है ॥२६॥
गोधन-सिखर सोई गहैं । फूलि फैलि गोधन कों चहैं ॥२७॥
ऐसे ब्रज कौं देखन रहौं । ब्रज की सोभा कैसैं कहौं ॥२८॥
यह ब्रज दरसै जगत-उज्यारो । अति प्यारो ब्रजलोचन-तारो ॥२९॥
रोम रोम सींचे ब्रजरस मैं । ब्रज बसि बिबस फिरौं ब्रज बसि मैं ॥३०॥
ब्रजबीथिन ब्रजबागनि फिरौं । छकौं थकौं ब्रज हेरौं हिरौं ॥३१॥
यह ब्रज मोकों आनि हो भावै । जित तित मोहन मोहि दिखावै ॥३२॥
ब्रज को भेट महेंद सुहाई । रह्यौ सदा आनंदघन छाई ॥३३॥
भजि भजि रहत कान्ह ब्रजबासा । मो मन आँखिन के सुखरासा ॥३४॥
सबै ठौर ब्रज स्याममई है । मन नैननि यह सहज भई है ॥३५॥
ब्रज मैं मोहन मोद नयो है । ब्रज मो कौं सुखसैन भयो है ॥३६॥
यह ब्रज भरे भाग मों मांहि । ब्रजमोहन की मूरति जोहि ॥३७॥
ब्रज-जीवन-ब्रज जीवन मेरो । रस-पावन रस-पोषन मेरो ॥३८॥
लखिबे को सुख ब्रज मैं बसै । यह ब्रज मेरी आँखिन लसै ॥३९॥
जो कछु चैन होत ब्रज हेरैं । लहत सु मोहन बसि मन मेरैं ॥४०॥
ब्रज के चरित कहत नहिं आवैं । मो मन लोचन चाहि सिरावैं ॥४१॥
भूरि भाग मेरे ब्रज बसि कै । सगरो हित ब्रजरूप दरस कै ॥४२॥
ब्रजनायक ब्रजराज-दुलारो । रूपरासि ब्रज को उजियारो ॥४३॥
सोभामगन माहिं ब्रज दरसै । नेह-मेह मोहन पै बरसै ॥४४॥

१९—मोहि—मोह (उदय) ।

[२१] छाँहि = छाया भी छाया में चाव से बैठती है । मुसकनि—प्रसन्न होती है । [२७] गोधन—गोवर्धन पर्वत । गोधन = गायों का झुंड । [३१] हिरौं = खो जाऊँ ।

ब्रजरस मैं भीज्यौ ब्रजनायक । ब्रज मैं मोहि महा सुखदायक ॥४५॥
जित जैयै तित मोहन पैयै । ब्रज बसि ब्रज को उड़ौ समैयै ॥४६॥
ब्रज कौ भाग भाग सौं मोहन । सफल करत नित नित मो जोहन ॥४७॥
स्यामरूप आनंदनि भरयौ । मोहि सींचि या ब्रज मैं परयौ ॥४८॥
यह ब्रज मोहन यह ब्रजमोहन । दुहूँ एक मैं लागत सोहन ॥४९॥
ब्रज की निधि देखि मन फूलै । यह ब्रज मोकौं हित-अनुकूलै ॥५०॥
मो मन भायौ ब्रजआनंद है । चहूँ कोद आनंदप्रमोद है ॥५१॥
यह ब्रज नित सुखसिंधु कलोलै । जग को चंद सदा ब्रज डोलै ॥५२॥
आँखिन को सुख ब्रज-दरसन है । आनंदघन बरसन सरसन है ॥५३॥
अहोभाग या ब्रज कौं लखौं । ब्रज की औधि न कबहूँ नखौं ॥५४॥
ब्रज कौ बास दयौ मन-नैननि । याको रस बरसत है बैननि ॥५५॥
कहाँ कहौं या ब्रज की बात । ब्रजमोहन लखि बैन सिरात ॥५६॥
ठौर ठौर ब्रजमोहन लखियै । महा रूपमाधुरी परखियै ॥५७॥
या ब्रज सौं हित-चित को नातो । ब्रज बसि ब्रजमोहन-रस-मातो ॥५८॥
सजल स्यामघन ब्रज ब्रजमोहन । मन अरु नैन भावतो दोहन ॥५९॥
ब्रज को नाम कछु लागत प्यारो । लखि ब्रजमोहन होत न न्यारो ॥६०॥
ब्रज दरसै दरसै ब्रजमोहन । लग्यौ रहत मन-लोचन गोहन ॥६१॥
बिहरौं ब्रज की गलियनि गलियनि । मानत मनमोहन की रलियनि ॥६२॥
ब्रज ओर भोर साँझ लौं चितऊँ । ब्रजमोहन के कौतुक चितऊँ ॥६३॥
ब्रज को सुख-सवाद मन पोषै । ब्रज मोकौं सब ही बिधि तोषै ॥६४॥
यह ब्रज मेरो मंगल-ऐन । ब्रज मंगल-स्वरूप मन-नैन ॥६५॥
ब्रज मैं छिपै स्याम की जोति । सो दृग जगमग जगमग होति ॥६६॥
ब्रज के सुख कहि सकै कौन । देखत रहौं कहौं गहि मौन ॥६७॥
ब्रज अपनो रस उफनि बहावै । भावक कहूँ कहन क्यौं आवै ॥६८॥
कहा कहौं ब्रजसुख की कहियै । देखत देखत देखत रहियै ॥६९॥
ब्रज को नाम लेत हिय हेत । अनाहद चाहि चित चेत अचेत ॥७०॥
कछु कोउ परै कहा ब्रजरीति । ब्रज पूरन ब्रजमोहन-प्रीति ॥७१॥

[५४] औधि=सीमा । नखौं=लाँघूँ । [६२] रलियनि=क्रीड़ा ।

ब्रजमोहन-सनेह ब्रज भोयौ । ब्रजमोहन ब्रज-मोह-समोयौ ॥७२॥
निपट लटपटे ब्रज अरु मोहन । निरखत ब्रजहिं अटपटे सोहन ॥७३॥
जैसो यह ब्रज लागत नीको । तैसो ही सरूप ब्रज ही को ॥७४॥
अहो अहो ब्रज अरु ब्रजनायक । ललित किसोर परम सुखदायक ॥७५॥
ब्रज मैं मोहन-मुरली बजै । ब्रजगोपिनि-समाज सुख सजै ॥७६॥
गैल घाट ब्रज के रसमसे । ब्रजमोहन की लीला लसे ॥७७॥
ब्रजसनेह सौं मानि करयौ है । यह ब्रज लै ब्रज माहिं धरयौ है ॥७८॥
या ब्रज सों यह ब्रज ही आहि । यह ब्रज भाखि और सुधि काहि ॥७९॥
ब्रजकिसोर ब्रजमोहन स्याम । ब्रजजीवन ब्रजनायक नाम ॥८०॥
ब्रज मैं करत खेल मनभाए । ठौर ठौर आनँदघन छाए ॥८१॥
यह ब्रज आँखिन आगैं रहै । सूझै बूझै यह ब्रज यहै ॥८२॥
यह ब्रज एक गहि रह्यौ मन कौं । ब्रज ही पालै पूरन पन कौं ॥८३॥
अति उदार ब्रजराजकुमार । नित या ब्रज बरसत सुखसार ॥८४॥
चलत और गायनि लै गन कौं । पालत ब्रजजन के हित-पन कौं ॥८५॥
ब्रजघन बरसि आनंद रसै । ब्रजमोहन आनँदघन लसै ॥८६॥
या ब्रज की हौं बलि बलि जावैं । धनि ब्रज धनि ब्रज मोहन नावैं ॥८७॥
यह ब्रज देखि नैन-मन मोहै । या ब्रज की पटतर ब्रज सोहै ॥८८॥
ब्रज अनूप ब्रजमोहन-रूप । आँखिन बस्यौ सरूप अनूप ॥८९॥
देखि जियौं ब्रज-सुंदरताई । स्यामरूप-सुषमा ब्रज छाई ॥९०॥
यह ब्रज माहिं मोहनै दरसै । दरसि दरसि आँसनि हिय सरसै ॥९१॥
यह ब्रज अचिरज-रस सौं भरयौ । चकि भरि मैं ध्यासनि ही भरयौ ॥९२॥
मोहन ब्रज को मोहन रूप । देखत बनै सरूप अनूप ॥९३॥
सींचे दृगनि सुरस के सोतन । उमगि परयौ ब्रज को रस सो तन ॥९४॥
ब्रजसरूप नैननि मैं छायौ । ब्रजमोहन मोहन ब्रज पायौ ॥९५॥
ब्रज को ब्रज सों नैननि जोहै । मोहन ब्रज मोही को मोहै ॥९६॥

७३—मोहन—सोहन (वृंदा०) । ७७—घाट—बाट (वही) । ७८—करयौ—कह्यौ (वृंदा०) । ८०—जीवन—मोहन (लंदन) । ८६—घन—बन (वृंदा०) ।

[७३] लटपटे = एक में लिपटे । [९४] सोत = स्रोत । तन=ओर ।

ब्रज को सुख ब्रजमोहन सजै । ब्रज मैं सुजस-दुंदुभी बजै ॥९७॥
ब्रज-जुवराज सदा सुख भोगी । को समझै ब्रजबिरह-संजोगी ॥९८॥
बिछुरि मिलन मिलि बिछुरन ब्रजरस । या ब्रज मैं पूरन अचिरज-रस ॥९९॥
ब्रजानंद ब्रज पूरन महा । या ब्रज को सुख कहियै कहा ॥१००॥
यह ब्रज देखि देखि ही रहियै । मौन गहावै तौ कछु कहियै ॥१०१॥
अकथ कथा है या ब्रजरस की । बिबस करत ब्रजजन पावस की ॥१०२॥
ब्रज के बसै बसै ब्रज हियैं । बढ़त ध्यास ब्रजरस ही पियैं ॥१०३॥
यह ब्रज परम प्रेम-फुलवारि । ब्रज बसि नवरंग स्याम निहारि ॥१०४॥
भए नैन ब्रजचंद-चकोर । निरखत रहत साँझ अरु भोर ॥१०५॥
यह ब्रज महामोद को मूल । या ब्रज भरी भावती फूल ॥१०६॥
लग्यौ रहत ब्रजरस को चसका । ऐसो है चसको ब्रजरस का ॥१०७॥
रससरूप ब्रजमोहन स्याम । आँखिनि बसे रहत ब्रजधाम ॥१०८॥
सोचन आगम हीं ब्रज दरसै । ब्रजमोहन आनँदघन बरसै ॥१०९॥
ब्रज ब्रजमोहन अति रससने । दोऊ आहिं एक ही सने ॥११०॥
मोहिं महा देखत ही भावै । ब्रजमोहन ब्रज सुनि दरसावै ॥१११॥
अहो अहो ब्रजरस की रीति । अहो अहो ब्रजबास-प्रतीति ॥११२॥
अहो अहो ब्रज को अनुराग । अहो अहो ब्रज को सोभाग ॥११३॥
अहो अहो ब्रज को सब लोग । नित नित मोहन-रस को भोग ॥११४॥
अहो अहो ब्रज को ब्यौहार । नित ही ब्रज मोहन त्यौहार ॥११५॥
अहो अहो ब्रज अहो अहो है । ब्रजमोहनहिं मोहि अति सोहै ॥११६॥
यह ब्रज देखि सिराने लोचन । यह ब्रज निरखि थिराने लोचन ॥११७॥
ब्रजसरूप सौं डीठि खची है । महामोद की रचनि मची है ॥११८॥
जैसो यह ब्रज लागत प्यारो । जानत ब्रजलोचन को तारो ॥११९॥
ब्रजमोहन ब्रज है मेरे धन । ब्रजमोहन ब्रज सौं मेरो पन ॥१२०॥
ब्रज-सुख-नामा मन-दृग बसै । ब्रजमोहन-सुरूप-बिधि लसै ॥१२१॥
ब्रज को बास निरंतर रहै । ब्रजमोहन-लीलारस बहै ॥१२२॥

११४—मोहन—सोहन (लंदन) । १२०—ब्रज सौं—मन को (वृंदा०) । १२२—बहै—यहै (लंदन) ।

[१०५] छूक = प्रसन्नता । [१२२] बहै=प्रवाहित हो ।

ब्रज आनँदघन उनयौ दरसै। झूमि झूमि मोहन रस बरसै ॥१२३॥
भरयौ पपीहा चौगिनि मोहै। ब्रजरस ब्रजमोहन-मन सोहै ॥१२४॥
रसस्यामनि बरसै या ब्रज मैं। मन मगीथ रहयौ अचरज मैं ॥१२५॥
जै जै ब्रज जै जै ब्रजनायक। जै जै ब्रजसमाज-सुखदायक ॥१२६॥
ब्रज है बस्यौ नैन अरु श्रौनैं। मन ब्रज बस्यौ बस्यौ तजि गौनैं ॥१२७॥
ब्रजरस इक जस ब्रज कौ गायौ। ब्रजजीवन-रस-ब्रज धाम चाख्यौ ॥१२८॥
रसना ब्रजरस नीकैं चाख्यौ। सोधि साधि हियरा भरि राख्यौ ॥१२९॥
ब्रज बास अविरल बढ्यौ हुलास। सफल भयौ मेरौ ब्रजबास ॥१३०॥
यह ब्रजबास न कबहूँ छूटै। ब्रजसरबसु दै दै मन लूटै ॥१३१॥
अब तौ ब्रज मन-मोहन छयौ। ब्रजमोहन-लीलारस-पग्यौ ॥१३२॥
मन तन ब्रज ह्वै व्यापक भयौ। अंतर सबै दूरि भजि गयौ ॥१३३॥
ब्रजप्रसाद तन मन कौं मिल्यौ। उमिगि उमिगि ब्रजरस मैं झिल्यौ ॥१३४॥
मन तन मिलि ब्रजरस है बसै। याही तैं नित ही ब्रज बसै ॥१३५॥
जिनहि रहै तिन ब्रज मैं रहै। याकौ मरम न कोऊ लहै ॥१३६॥
ब्रजमोहन अंतर मैं पैठि। निज ब्रजसहित बसे तन पैठि ॥१३७॥
तन मन एकमेक ब्रज-रंग। ब्रजमोहन ब्रज एकै संग ॥१३८॥
ब्रज कौ बास निरंतर आहि। यह ब्रजबास मिलै धौं काहि ॥१३९॥
ब्रजप्रसाद ब्रजवासिहि पायौ। ब्रजरस यौं तन मनहि समायौ ॥१४०॥
या तन मन मैं ब्रज ही बसै। कौन लहै या तन-मन-दसै ॥१४१॥
तन-अभिमानी मरम न पावै। ब्रजानंद-रस मनहि न भावै ॥१४२॥
ब्रजप्रसाद-रस मन तन-न्यारौ। ब्रजरसमय तन मनहि विचारौ ॥१४३॥
ब्रजप्रसाद-रस रसना भिदै। पावै भेद भरम सब छिदै ॥१४४॥
ब्रजप्रसाद-रस स्वादहि लहै। रस ही परम-सवादहि कहै ॥१४५॥
ब्रजप्रसाद-रस-महिमा भूरि। निगमागमनि बताई दूरि ॥१४६॥
ब्रजप्रसाद-रस चेटक महा। जो पावै सो गावै कहा ॥१४७॥
धन्य धन्य यह ब्रजप्रसाद-रस। रसिक-मुकुटमनि सरस कृपाबस ॥१४८॥

१३१—सरबसु—रसबसु (वृंदा०)। १३७—पैठि—बैठि (लंदन)।

[१३५] बसै=वश में। बसै=बसता है।

प्रान पलैं या ब्रजप्रसाद तैं। गिरा रसवती या सवाद तैं ॥१४९॥
ब्रजप्रसाद रसस्वाद प्रबंध। महा मनोहर मधुर सुगंध ॥१५०॥
ब्रजप्रसाद रस-रसिकनि संगसि। पैयै परम प्रेम-पन-पंगसि ॥१५१॥
ब्रजप्रसाद ब्रज रसिया दियौ। रोम रोम रसमै इन कियौ ॥१५२॥
ब्रजप्रसाद ब्रजरस-उदगार। रसिक-सजीवन प्रान-अधार ॥१५३॥
ब्रजप्रसाद कौ पायौ पारस। नित ही गुन गाऊँ तजि आरस ॥१५४॥
ब्रजप्रसाद कौ पूरन भाग। लह्यौ बढ्यौ उर भरि अनुराग ॥१५५॥
भजो भूख पै तृपति न तनकौ। कहा कहौं जीवन सुख मनकौ ॥१५६॥
ब्रजप्रसाद-महिमा मन दीजै। पाय पाय जीजै रस पीजै ॥१५७॥
ब्रजप्रसाद पायौ अनयास। पाय पाय अद्भुत बिलास ॥१५८॥
ब्रजप्रसाद तैं अब दुख टरे। तन मन परमानंद-रस-भरे ॥१५९॥
ब्रजप्रसाद कौ पूरन पोष। रसबस लह्यौ प्रान-परितोष ॥१६०॥

१५१—रस—सुख (लंदन)। १५३—रस कौ अगार (वृंदा०)।

मुरलिका-मोद

चौपाई

मोहन की मुरली बन बाजी। मादक अधरनि आय बिराजी ॥१॥
धुनि सुनि छाकनि छाय रही है। प्रानानि मिलि मँडराय रही है ॥२॥
सुर की भरनि धीर कौं रितवै। बिषम मार हियरा पै बितवै ॥३॥
सुंदर मुसकौंहैं मुख सोहै। नैन-कटाछन मरमहिं पोहै ॥४॥
पूरनि मैं सुख-सुषमा पूरै। चेटक चटक चोंपि चित चूरै ॥५॥
रुचिर अमलांस दसन अधर दुति। सो जानै जिन जोही यह छवि ॥६॥
भौंह भाल नासिका निकाई। अँगुरिनि नचन संग अधिकाई ॥७॥
नाद रूप के रूप रचौ है। एकमेक ह्वै प्रगट मचौ है ॥८॥
सुघरसिरोमनि राग रच्यौ है। मुरली सौं अनुराग मच्यौ है ॥९॥
बन-बेलिनि धुनि पूरि रही है। जमुना-गति क्यौं परति कही है ॥१०॥
दुहूँ तट सुरनि पाटि धौं राख्यौ। थकी छकी सु कौन रस चाख्यौ ॥११॥
पुहप-पुंज कुंजनि झर लाग्यौ। धुनि-बस द्रवीभूत गुन जाग्यौ ॥१२॥
दृग लगाय खग-रूप निहारैं। स्रवन-नैन-फल संग बिचारैं ॥१३॥
थिर चर कौं अंतर धुनि ब्यापी। बिषम रागिनी कान्ह अलापी ॥१४॥
सब सुख भाग निकट ह्वै पावैं। हम घर घिरी उदेगनि छावैं ॥१५॥
अब ऐसी गति आनि बनी है। कानन सालति सुरनि अनी है ॥१६॥
बिन बाजेहू बजति रातदिन। कौन भाँति की गहनि गही इन ॥१७॥
घायल ज्ञान धूमि घुरि सूझै। सुर धामुही बरनि घिरि जूझै ॥१८॥
बिष की लहरि सुरनि संग सरसै। तीखी ताननि सरसै बरसै ॥१९॥
मुरली किन को बैर बिसाही। किधौं बिधाता याकौं चाही ॥२०॥
जगै आप अरु हमैं जगावै। तातौ धुनि उर आग लगावै ॥२१॥
क्यौं ब्रजबसैं कौन बिधि जीवैं। बिष सौं नाद अमृत लौं पीवैं ॥२२॥
बिसबासी कान्हौं बस याके। कछु न बिचारत या रस छाके ॥२३॥
याही सौं अनुराग बढ़यौ है। को जानै इन कहा पढ़यौ है ॥२४॥
ब्रजमोहनहूँ मोहि लियौ है। इकै बहुरि कौन को हियौ है ॥२५॥

११—धौं—सौं (लंदन)।

[१२] उमगन्दफन्दकी। [१८] सूझै—मूर्छित होता है।

अधरनि तैं न होति छिन न्यारी। ब्रजजीवनहीं जिय की प्यारी ॥२६॥
पूरन प्रेम प्रगट पन पालै। घरघालनि औरनि घर घालै ॥२७॥
जु कछु करै सु याहि सब छाजै। निधरक भई रैनदिन गाजै ॥२८॥
धनि सुबंस सिरि प्रगट भई है। सब सुघरासि सकेलि लई है ॥२९॥
याके पाय पूजिबे लायक। रच्यौ रहत जानैं ब्रजनायक ॥३०॥
कौन काज गुनरूप हमारौ। जौ परसै नहिं प्रानिनि प्यारौ ॥३१॥
परस रहौ दरसहू न पैये। कौन भाँति यह जीव जिवैये ॥३२॥
निसंक न सकत रहत घर घेरी। जरि किनि जाहु लाज की बेरी ॥३३॥
अब मन त्यागि लागिहैं गोहन। अंक भरैं निसंक ब्रजमोहन ॥३४॥
कोऊ कहा हमारौ करिहै। उर मैं अरयौ भावतौ हरि है ॥३५॥
जिन बजाय सुधि बुधि सब हरी। प्रेम परनि ताही सौं परी ॥३६॥
सब कछु जाहु रहौ पन पिय कौ। मुरलीधर जीवन या जिय कौ ॥३७॥
अब तौ सुरसवाद-सोहिली। जोन्हरूप ब्रजचंदहि मिली ॥३८॥
कौन सकै करि न्यारी हमैं। अपने रसन रंग मिलि रमैं ॥३९॥
पिय संग सुख लहि लहि जियैं। आँखिन भरि सुरूप-रस पियैं ॥४०॥
बसौ सखी मिलाप रचावैं। नाचैं मिलि जो नाच नचावैं ॥४१॥
सरस रास बृंदावन माँही। जमुना-तीर कलपतरु-छाँही ॥४२॥
आछी भाँति लेहि रस अपनौ। धुनि सुनि ज्यौं दरसौं उर सपनौ ॥४३॥
मुरलीधर चिर जियौ प्रानधन। नित सरसैं बरसैं आनँदघन ॥४४॥
मुरली-सुर सुरवा-रस भरै। कान्हनि ह्वै प्रानानि पर ढरै ॥४५॥
हिन-झर लग्यौ निरंतर ऐसैं। अंतर सहयौ परत अब कैसैं ॥४६॥
पिय सुजान बंसी सुर-जान। चाह बढ़ि मिलौ करैं रसपान ॥४७॥
हिय न दरै न पूरनपन कौ। भई चातकी आनँदघन कौ ॥४८॥
श्रीबृंदावन श्रीजमुना-तट। जुगल घाट सब बिधि सुख-संपट ॥४९॥
माघ मास श्रीकृस्न पच्छ सुचि। संबत्सर अठानवे अति रुचि ॥५०॥
मुरली-सुर-सुख कहत न आवै। सो जानै जो सुनि गुनि गावै ॥५१॥

३६—परनि०—परमता तिहि सौं (छं०)। ४५—ह्वै—है (लंदन)।

[३३] बेरी—बेड़ी, बंधन। [३८] सोहिली=शोभित।

मनोरथमंजरी

राग बिहागरौ] [इकताल मूलताल

राधामदन जुगल कौ हौं सेज बनाऊँ ।
दूध-फेन फाँको करै वर बसन बिछाऊँ ॥ १ ॥
बासंती नव कुसुम लै रचि रुचिहि रचाऊँ ।
नव पराग भरि भाव सौं तिन पर बगराऊँ ॥ २ ॥
गौर स्याम नव पाट की डोरीनि कसाऊँ ।
रतन झबा मुकतान की झालरैं झुलाऊँ ॥ ३ ॥
सूर्थी-गुन गन गाँस की रचना सरसाऊँ ।
संगम ओज मनोज के रंगनि दरसाऊँ ॥ ४ ॥
एक उसीसौ दुहुँनि कैं अनुकूल धराऊँ ।
करतल सौंधौ साधि कैं मुख-बिंबन बसाऊँ ॥ ५ ॥
मनि-पीकौ ढिग राखि कैं झिन-भौंज सजाऊँ ।
काँचित बाँचित मधुपान के भाजननि भराऊँ ॥ ६ ॥
मनि-चषकनि राँचि राखि कैं रुचि-रंग बढ़ाऊँ ।
महल-टहल बहु भाँति की हित-सहित सधाऊँ ॥ ७ ॥
लाल बिहारिनि कौं तहाँ रससीलिनि ल्याऊँ ।
सुखद भावती तलप की अभिलाष पुजाऊँ ॥ ८ ॥
उमग लाज-छबि छैलता दृग देखि सिराऊँ ।
या बिधि निज करतूति कौ नीकैं फल पाऊँ ॥ ९ ॥
समभि समय रसभेद की बतिथानि सुनाऊँ ।
भीतर की कैसें कहौं उठि बाहिर आऊँ ॥१०॥

२—भाय—भाव (लंदन)। ७—'लंदन' में नहीं है ।

[३] पाट=रेशम । झबा=झब्बा, गुच्छा । [४] सूर्थी=धुई । [६] सौंधौ=सुगन्ध । रुचित=कुप्पिका [८] तलप=सेज ।

द्वार-झरोखनि जवनिका रुचि लै छुटकाऊँ ।
हेरि रहौं तब लाड़िली-हित हुलसि सिराऊँ ॥११॥
कछु कहँ लगि कान सौं सुनि जीव जिवाऊँ ।
ता सुख की संपति सच्यौ मनमाँझ दुराऊँ ॥१२॥
नैन-सैन जोबन-छकी लखि भाग मनाऊँ ।
पान-पात्र मादक-भरैं रुचनी भरि प्याऊँ ॥१३॥
आपुस की रसबसनि कौं कयौं बरनि बताऊँ ।
भेदभरी बतरानि कौं समझौं बहराऊँ ॥१४॥
जुगल बदन मद-मदन की लाली लखि छाऊँ ।
उझिल सेज अनुराग की मतिलकनि लकाऊँ ॥१५॥
चोरी सरस सुगभमी रुचि जानि रचाऊँ ।
फूलमाल इक दुहुँनि कौं सकुचनि पहिराऊँ ॥१६॥
औसर अवसि चल्यौ परौं कछु उकति उठाऊँ ।
आँचर खैंचि रहौं प्रिया कौं कछुक छुटाऊँ ॥१७॥
मोहि भुज भरैं लकनि मौं जिय समभि लजाऊँ ।
ठेलनि अति रसबाद की हठि दुहुँनि हँसाऊँ ॥१८॥
परम चतुर रसरीति मैं हौं हितू कहाऊँ ।
महामोद माँनि भइ ज्यौं ज्यौं अनखाऊँ ॥१९॥
अकथ कथा हित-रीति की हौं कहा चलाऊँ ।
हौं जानौं कै वे सखी यह तोहि जनाऊँ ॥२०॥

१४—कहू कछु (वृंदावन)। १५—मद—मन (वृंदा०)। १६—सचाऊँ—बनाऊँ (लंदन)। १७—उमगि—उकति (लंदन)। छुटाऊँ—छुड़ाऊँ (वहीं)।

[११] जवनिका=परदा । छुटकाऊँ=डाल दूँ, खोल दूँ, खींच दूँ । [१३] रुचनी=रुचनेवाला । [१४] रसबसनि=प्रेमपूर्वक मिलना । [१७] उसरि०=उठकर चलना चाहूँ । उकति=उक्ति, बात ।

भाजि इकौसे ह्वै रहौं कनसुखी लगाऊँ ।
सुनि सुनि सौंचनि प्रान की नाहीं मन हाऊँ ॥२१॥
मानि बधाई चाव सौं मंगल गुन गाऊँ ।
बैठि आपनी ठौर हीं मृदु बीन बजाऊँ ॥२२॥
केलि-रसमसे मिथुन कौं सुख-नींद अनाऊँ ।
या विधि मनभायौ करौं जगि रैनि बिताऊँ ॥२३॥
बड़े भोर अनुराग सौं मंगला जमाऊँ ।
अति रति-मतवारेनि कौं सब भाँति जगाऊँ ॥२४॥
फिरि फिरि पट तानैं नऊ बहुरयौं अहुराऊँ ।
निकट जाय पग चाँपि कै हित-हाथ जगाऊँ ॥२५॥
आरस-भरे अभानि पै चुटकीनि चिताऊँ ।
अलक-तिलक-सेवा-सबै आरसी दिखाऊँ ॥२६॥
बनैं ठनैं गाढ़िलीनि कौं आँगन पधराऊँ ।
वारि वारि कै अपुनपौ अंगुरी चटकाऊँ ॥२७॥
निरखि सुगमनी डगनि कौं भुज गहि सम्हराऊँ ।
नित नूतन रसरीति कौं चित चौंप बढ़ाऊँ ॥२८॥
तिन्हैं रुचैं सोई करौं रासियानि रिझाऊँ ।
मिलि बिछुरैं बिछुरैं मिलैं हौं कहा मिलाऊँ ॥२९॥
सहज रँगीले नाद कौं जिय-बीध बसाऊँ ।
चित-चातक आनँदघन रस-बरस रमाऊँ ॥३०॥

२१—इकौसी—फुरकीनी (वृं०)। २४—प्रात—बात (वहीं)। ३०—गहन—नारस (वृं०)।

[२१] इकौसी=ओट और एकांत में। कनसुखी०=छोड़ दूँ, छिपकर बातें सुनूँ। हौंऊँ=हौं मां। [२३] अनाऊँ=बुलाऊँ, लाऊँ। [२५] अहुराऊँ=खड़ा हूँ, सौंप दूँ। [२६] चिताऊँ=चैतन्य करूँ। अलक०=केश सँवारने और तिलक लगाने के समय। आरसी=दर्पण। [२७] बनैं०=सँवरकर, सजाकर। अंगुरी०=उँगली चटकाऊँ। [२९] रिझाऊँ=आनंदित करूँ।

ब्रजव्यवहार

चौपाई

नंदराय को ब्रज अति सोहै । नित नित ब्रजमोहन-मन मोहै ॥ १ ॥
प्रेमपगे जनमगे बिराजैं । सुख-समाज साजत ब्रजराजैं ॥ २ ॥
मोद-बिनोदनि भरयौ सदा है । यामैं सर्ग समान कहा है ॥ ३ ॥
घरघर चुहल चैन की रहई । नित नित सोभन की गहमहई ॥ ४ ॥
नगर नरनारिन की छबि देखैं । जीवन जनम मानियत लेखैं ॥ ५ ॥
खेलयौ करत कान्ह जिन बीथिनि । जसुमति-ललन आपनी रलियनि ॥६॥
सबको जीवन सब दृग-तारौ । जसुमति-बारौ अगम-उजारौ ॥ ७ ॥
मैया को सुख कहत न आवै । कमलनयन लखि नैन सिरावै ॥ ८ ॥
बहुत खेल खेलत रुचि-रंगनि । निरखि सिहाति समाति न अंगनि ॥९॥
सरस सपूतो भागभरी है । सब सुखनिधि सु लिलार धरी है ॥१०॥
गोपकुवरि स्याम के संगी । घुमड़े रहत नेह-नवरंगी ॥११॥
ललित लला सौं सबै लड़ावति । जसुमति-हित-गति कहत न आवति ॥
सबको बासरि सब मिलि खेलत । दौरि दौरि सुखरासि सकेलत ॥१३॥
नंदराय के घर सुख जैसो । ब्रज की बासरि बासरि तैसो ॥१४॥
पूरन परमानंद सौं भोगी । ब्रजजीवनि ब्रजसुखनि सभोगी ॥१५॥
गोधन लै बन चलत भोर जब । महाप्रेम की चुहल मचत तब ॥१६॥
हित को भोर चलत ब्रजमोहन । मन-दृग तित पीठ लागत गोहन ॥१७॥
प्रेम मगन सबके उर मलें । ब्रजमोहन बन कौं जब चलें ॥१८॥
गवहि घेर करत इकठौरी । चहुँरंग धेनु धूमरी धौरी ॥१९॥
जित तित ग्वार झुंडनि निकसत । मोहन त्यौं निहारि हँसि बिकसत ॥२०॥
हिलनि मिलनि मोहन सखान की । लखत बनै नाहिन बखान की ॥२१॥
या बिधि सकल होत इकठौरे । गोचारन बन बिहरनि दौरे ॥२२॥
मिलवति गाय धाय ब्रजबाला । निरखनि मनहिं मिलैं नँदलाला ॥२३॥

[४] गहमहई=धूमधड़का। [६] रलियनि=क्रीड़ा। [९] सिहाति=प्रशंसा करती है। [१३] बासरि=घर। [१८] सरक=वैदूर्य।

मन घन ओट चोट हिय माँही। फिरि घर जैबे कौं मन नाहीं ॥२४॥
सिसुनी बिरमि करति लगि बातनि। गोरी भोरी भरी सुभाँतिनि ॥२५॥
साँवति गायनि चौकसि कियें। छिन छिन चितै चितै मुख जियें ॥२६॥
सोचनि हियें सौंमि की चितवनि। कहत न बनत चलैं फिरि चितवनि ॥२७॥
टहलति गाय टहलि चित जात। कहा कहौं ब्रज-हित की बात ॥२८॥

दोहा

ब्रजमोहनमैं ह्वै रह्यौ, ब्रजजन जेतिक आहि।
सबकी मति गति साँवरो, और कछू सुधि काहि ॥२९॥

चौपाई

बन पैठत गैयन संग मोहन। सखा साथ सब ही बिधि सोहन ॥३०॥
बरहे सघन सदा सुखदायक। हरे सजल हरि-गोधन-लायक ॥३१॥
बन बिनोद बिहरत बनवारी। बन घन मचत कोलाहल भारी ॥३२॥
अप अपनी रुचि सौं हाँकि सानत। कान्ह कदम सोई मिलि मानत ॥३३॥
इक मन इक तन बनबन डोलत। गावत रीझत किलकत बोलत ॥३४॥
ब्रज के लोग महा बड़भागी। सदा स्यामघन सौं लौ लागी ॥३५॥
ब्रज मैं बसत सुरति बन बन मैं। सबको भाव मदन के मन मैं ॥३६॥

दोहा

उरझ अनोखी प्रेम की, ब्रजमोहन के साथ।
सब ब्रज मैं एकनास हैं, ब्रजमोहन के भाग ॥३७॥

चौपाई

बन कौं चलत कलेऊ करिकै। कछुक पिछौरिनि ढँकिनि धरिकै ॥३८॥
पहरक बीति गएँ बन गएँ। छाक चली बन मैं मन दएँ ॥३९॥
ब्रजजननी को हित क्यौं कहियै। सब ब्रज ब्यापि रह्यौ नित महियै ॥४०॥
पठवति छाक कोवरी भार। उत तैं चलति दूध की धार ॥४१॥

[३१] बरहे=नाले। [३८] पिछौरिनि=दुपट्टों में। ढँकिनि=ढाँकों में लटकाकर। [३९] छाक=कलेवा। [४१] पठवति भार=भेजते समय। छाक०=कोमल कलेवा। उर=छाती।

बिंजन बिबिध सजोए छाकनि। कही न परति मोह की छाकनि ॥४२॥
जसुमति गोहनि को हिय-हेत। स्याम राम ब्रज-सिसुनि समेत ॥४३॥
घर घर ब्रजप्रेम को एक रस। अपने अपने भाव-चाव-बस ॥४४॥
जित तित छकिहारी जुरि चलीं। लगति रवौनी ब्रज की गलीं ॥४५॥
सीसनि धरें छाक की डलियनि। तकनि गुपाल-मुख की बगियनि ॥४६॥
चौंपनि भरी चमक सौं चलैं। ललन-दरस कौं दृग कलमलैं ॥४७॥
कानन कैं मुरली-धुनि सोधति। ठीक पाइ लिए हाँ कौं ओधति ॥४८॥
चाहि गुपालहिं टेरि पुकारति। उमगी परति प्रेम की आरति ॥४९॥
इन तें सुनि गुपाल की टेरनि। ठुमकि चढ़ि हेरि पीत पट फेरनि ॥५०॥
मधुमंगलहि पठावनि माँहीं। जाकैं छाक ताकहीं गाहीं ॥५१॥
लेत दौरि सिरन तें उतारि। भोग-सौंज हित रहत निहारि ॥५२॥
जैरि को मिलवनि छाक के पातन। बिंजन बिबिध सवाद अघात न ॥५३॥
मैयनि को हित छैयनि पालैं। बन की केलि नवल नँदलालैं ॥५४॥
छकिहारी धावति लै छाकनि। बदन देखि डारत दृग-आकनि ॥५५॥
बहुरि बहुरि छकिहारिनि आवनि। जेंवन-सुख जननीनि जनावनि ॥५६॥
भोजन-सुख सुनि महा सिहानि। सहज मोह मैयन की बानि ॥५७॥
यह नित ब्रजहित को ब्यौहार। ब्रज मंगल बिनोद त्यौहार ॥५८॥
कछु दिन गएँ बगादि ब्रज-आवनि। ब्रज पर आनँदघन-बरसावनि ॥५९॥
नट गोपाल-भेष सब सजैं। बैन संग दल आगैं बजैं ॥६०॥
गायन धूरि धुँधरी महा। आवनि को सुख कहियै कहा ॥६१॥
चाहि आवनि बिलोकनि गोपी। नागर-बिरह-चटक सौं ओपी ॥६२॥

[४२] बिंजन=व्यंजन। छाकनि=कलेवा। छाकनि=तृप्ति। राम=बलराम। [४५] छकिहारी=छाक ले जानेवाली। रवौनी=सुंदर। [४६] डलियनि=डालों। बगियनि=समय, बेला। [४८] कानन०=कानों से मुरली की ध्वनि की आहट लेती हैं। ठीक०=निश्चय कर लेने पर कि इधर से ही ध्वनि आ रही है उधर ही को चल पड़ती हैं। [५४] छैयनि=बच्चों को। [५७] सिहानि=ललसा। बानि=टेव, आदत। [५९] दिन०=दिन रहते। बगादि=पलटकर लौटकर। [६२] ओपी=शोभा पर।

रज-रँगमगो छबीलो मोहन। आवत गावत गोधन गोहन ॥६३॥
उमँगि प्रेम-नाग्र-गोधन-ठाट। सोहत पूरन है ब्रज-बाट ॥६४॥
मंद मंद गति सौं ब्रजचंद। दृगनि सिरावत आनँदकंद ॥६५॥
दृग मिलि भेंट भावती होति। रज लौं चढ़ति दीठि हित-जोति ॥६६॥
खुलि खुलि मिलि घूँघट-पट टारि। चौंपनि भरति पलक अँकवारि ॥६७॥
हिय भरि नेहदसा-पन-पगी। आरति जोति चहूँ दिसि जगी ॥६८॥
पैठत पौरि गौरि जसु साथ। रोम रोम की लेति बलाय ॥६९॥
मोदभरी आरती उतारति। पानी वारि पियति जिय पारति ॥७०॥
सदन चूमि आँगन रज पौढ़ति। झपत नंद पग धोय अँगोछति ॥७१॥
हँसि बैठति लै लालहिं गोद मैं। फूलौ अँग न समाति मोद मैं ॥७२॥
मधुर कौर कछु सुकर खवावति। ब्रजजीवनहिं जसोद ज्यौं अघावति ॥७३॥
गोदोहन-सुख कहत न बनै। मन कौ खरक खरिक-रस सनै ॥७४॥
दुहनि दुहावनि जो रस दुहै। इन ब्रज-खरिकनि ही मैं सु है ॥७५॥
मधुर किसोर कमलदल-लोचन। सबही विधि सबकी रुचि रोचन ॥७६॥

दोहा

अतुल रूप-गुन-माधुरी, क्यौं मन नैन अघात।
लगे रहत दिनरात यौं, ब्रज बसि याही घात ॥७७॥
प्रेम-बनिज-व्यौहार कौ, लगी रहत ब्रज पैंठ।
निपट सुधाई मैं दुरी, ब्रजबासिन की ऐंठ ॥७८॥
आनँदघन ब्रज की कथा, कहियै कहा बखानि।
मगन होत मन श्रवन हूँ, परम प्रेम पहचानि ॥७९॥

चौपाई

जिन के सुख-समाज की बातैं। कहिबे मैं नहिं आवति घातैं ॥८०॥
नंदरँगी गिरिधर सुखदाई। ब्रज बसि व्यापी प्रेम-मगाई ॥८१॥

[७३] सुकर=स्वकर, अपने हाथ से। [७४] खरक=खड़क, बिता ; खरिक=पशुओं के बाँधने का स्थान। [७८] बनिज=वाणिज्य। पैंठ=हाट। सुधाई=सीधापन; [illegible]। ऐंठ=अकड़, बाँकपन।

सो ब्रज प्रेम चहूँ दिसि फैल्यौ। ब्रजबासिन ही मौं यह खेल्यौ ॥८२॥
ब्रज को ईस नंद बड़भागी। जाकी सुजस-जोति जग जागी ॥८३॥
जसुदा-कूँख भागनिधि-खानि। प्रगट्यौ कृस्न-रतन सुखदानि ॥८४॥
ब्रज-अगार मधि नायक सोहै। लीला ललित भाँति मन मोहै ॥८५॥
कबहुँक ग्वालिनान गिरधारी। गिरि-घटिया कौ सैल बिचारी ॥८६॥
ब्रज गोपिनि कौ आवनि गैल। ताकौ रोकिबे सांवरे छैल ॥८७॥
मतु करि सखनि संग समझायौ। बड़े भोर को ठिकु ठहरायौ ॥८८॥
मुरली-धुनि संकेत सुनाय। जित तित तैं सब लए बुलाय ॥८९॥
निकसे लै गोधन गिरि-घाँई। बने सबै मनमोहन दाँई ॥९०॥
खेलत चले भले यौं रागे। ब्रजजन-छबि निहारि अनुरागे ॥९१॥
महा कौतुकी कान्ह किसोर। हेरत हँसत जात सब ओर ॥९२॥
भागनि भरी हरी ब्रजभूमि। देखन फिरत स्याम घन झूमि ॥९३॥
बिहरत बिहरत गिरितट आए। दान लेन अभिलाषनि छाए ॥९४॥
गैयाँ बगरि चरन बन लागीं। मोहन-मुरली-धुनि अनुरागीं ॥९५॥
सुरति स्यामसुंदर मैं जिनकी। जिनहिं परस है यह गति इनकी ॥९६॥
कौन कौन की हिलगनि कहियै। ब्रज की लगनि देखि चकि रहियै ॥९७॥
गिरि चढ़ि कान्ह निहारत गायनि। भरे दानलीला-रस-चायनि ॥९८॥
सुबल सुबाहु तोष मधुमंगल। सुंदर सुखद चतुर हित-उज्जल ॥९९॥
इनहिं आदि सहचर बहुतेरे। रहत नंदनंदन नित नेरे ॥१००॥
ब्रजमोहन तन मन सँग डोलत। प्रीति-कथानि परसपर बोलत ॥१०१॥
ब्रजदेवी देवी-पूजन-हित। गिरि-घटियाँ ह्वै निकसति हैं नित ॥१०२॥
दानीराय कान्ह की सैननि। समझि समझि हित पावति चैननि १०३
पैंडर पाय आय गिरि छेंड़ी। धरि रहे ललित लकुटियनि बेंड़ी ॥१०४॥
घटिया घेरि जगाति लगाई। नंदलाल कौ आज्ञा पाई ॥१०५॥
बचन-चोख रसमाते बढ़ावत। गारी करावत गावत भावत ॥१०६॥
कान्ह किसोर एक दिन ठाढ़े। महारूप गुन जोबन बाढ़े ॥१०७॥

[८४] भाग०=भाग्य के खजाने की खान। [८५] नायक=माणिक। [९०] घाँई=ओर ; दाँई=दाहिनी ओर। [१०४] पैंडर=पीछे पीछे ; बेंड़ी=छेड़छाड़ की। [१०५] जगाति०=कर लेने का ठाट ठट लिया।

चपल चखन ब्रज-तरुनी ताकत । रास-केलि-कौतुक-रस छाकत ॥१०८॥
अटकत झगरत गोरस मिस कौं । बोलत अधर बचन हँसि रिस कौं ॥१०९॥
छलौं छैल की घात अनेक । नागनायक सब लायक एक ॥११०॥
कुंज-पुंज गहवर गिरि-कंदर । बिहरत सुंदर रसिक-पुरंदर ॥१११॥
ग्वाल केलि कोलाहल माचत । लूटन दह्यौ ग्वाल मिलि नाचत ॥११२॥
फैलि परत गोरस-रस-झगरौ । बिसरत नाहिं नेह नित झगरौ ॥११३॥
अनमिल बचन-रचन मन मिलें । खिलें बदन आनँद-रस-झिलें ॥११४॥
बहुत भाँति बिलसत ब्रजमोहन । सफल करत ब्रजजन-मन जोहन ॥११५॥
ब्रजरस-भेद न कोई पावै । बेदौ नेति नेति करि गावै ॥११६॥
सबको प्रेम निज ब्रज बिस्तरयौ । कोमल हृदनि दूरि लै भरयौ ॥११७॥
सरस केलि को सकै निहारि । बड़भागिनि गोकुल की नारि ॥११८॥
सब तजि भजति एक नँदनंदन । रसिकसिरोमनि सब जगबंदन ॥११९॥
सिव-अज लीला देखत मोहन । रस-उनमद चरन-रज दोहन ॥१२०॥
सबको अगम सुगम सो इन है । जातें प्रबल प्रेम ब्रज निज है ॥१२१॥
तातें ब्रजजन-कृपा मनैये । चरन-रेनु बल उनके पैये ॥१२२॥

दोहा

ब्रज को प्रेम प्रचंड अति, अमल अखंड अपार ।
सुरनर मुनि बरनत थका, या ब्रज कौ ब्यौहार ॥१२३॥
ब्रजबासिन की अमल गति, समझि सकै नहिं कोइ ।
नंदराय के बास बसि, जो ब्रजबासी होइ ॥१२४॥
यह लीला निरखैं तबैं, अचरज प्रेम बिकार ।
जा-रस बस बिह्वल सदा, रसिया नंदकुमार ॥१२५॥
सर्वोपरि ब्रज की कथा, महा मधुर स्रुतिसार ।
कृस्नचंद के हित भरयौ, या ब्रज कौ ब्यौहार ॥१२६॥
अजित जानि आपबस किये, प्रबल प्रेम के फंद ।
ब्रज ब्यापक लखियत सदा, पूरन परमानंद ॥१२७॥
ब्रजजन जीवन स्याम के, ब्रजमोहन ब्रजप्रान ।
निसिदिन ब्रजलीला-मगन, पूरन प्रेमनिधान ॥१२८॥

जहाँ तहाँ मचियै रहै, सुख-समाज की भीर ।
मुरलीनाद-सवाद-बस, रसिक छैल बलबीर ॥१२९॥
धनि धनि रसना रसभरी, बरनति ब्रज-रसरीति ।
मोहन ही के गुननि तें, किये आपबस जीति ॥१३०॥

चौपाई

अपने गुननि बँधे रिझवार । पूरन प्रेमी नंदकुमार ॥१३१॥
लीला-रस लै रसना सानत । सो सुख है निज गुननि बखानत ॥१३२॥
सुनि सुनि रीझत रसिक उदार । ब्रजब्यौहार रसामृत-सार ॥१३३॥
ऐसा कौन कहि सकै यह रस । ब्रजमोहन की एक कृपा-बस ॥१३४॥
मन अरु बचन कृपाबस होय । मतिगति ब्रज-गति रहै समोय ॥१३५॥
नव कछु उमगि उघरि ज्यौं परै । रसहीं कै बस रस बिस्तरै ॥१३६॥
महा मनोहर ब्रजब्यौहार । ब्रजजीवन की कृपा-अधार ॥१३७॥
मोहन ब्रजब्यौहार बखान्यौ । हियें पैठि रसना पै आन्यौ ॥१३८॥
अपनो रससवाद-सुख लेन । या बिधि मोहिं महासुख देत ॥१३९॥
नातरु अकथ कथा को कहै । मन अरु भेद-बचन क्यौं लहै ॥१४०॥
ब्रजरस कहत सुनत अधिकार । दियौ कृपा करि नंदकुमार ॥१४१॥
तातें कछु बरन्यौं ब्रजप्रेम । रसना गह्यौ रसअर्थ-नेम ॥१४२॥
ब्रजमोहन बहु ब्रजब्यौहार । कहा कहौं रसरासि अपार ॥१४३॥
ब्रज बसि ब्रजमोहन-रस गाऊँ । ब्रजमोहननि सुनाय रिझाऊँ ॥१४४॥
ब्रजब्यौहार-मगन ह्वै रहौं । ब्रजजन हीं की गति मति लहौं ॥१४५॥

दोहा

जीवन ब्रजब्यौहार है, ब्रजजीवन ही प्रान ।
कहौं सुनौं समझौं सदा, ब्रजब्यौहार सुजान ॥१४६॥
जो सुख ब्रजब्यौहार को, सो कछु कहत बनै न ।
अरु रसना कौं यह कथा, बिना कहैं नहिं चैन ॥१४७॥

चौपाई

कहि कहि थकित होति फिरि कहै । या रस रसना को जस लहै ॥१४८॥
ब्रजब्यौहार भाग है मेरो । जबै धाम ब्रजबास बसेरो ॥१४९॥

ब्रज मैं सोऊँ ब्रज मैं जागौं । निसि दिन ब्रज ही सौं रस पागौं ॥१५०॥
ब्रजव्यौहार देखि ही जियौं । ब्रजजीवन-लीला-रस पियौं ॥१५१॥
ब्रजरस भीजि ब्रजबासिन डोलौं । संग धरैं उनहीं मन बोलौं ॥१५२॥
ब्रजबन-सोभा चकित निहारौं । ब्रजरस-पान प्रान-पन पारौं ॥१५३॥
ब्रजव्यौहार परम धन लह्यौ । ब्रजरस पूरि नैन है गह्यौ ॥१५४॥
परम प्रेमनिधि ब्रजव्यौहार । ब्रजनायक ब्रजराजकुमार ॥१५५॥
ब्रजमंडल आनँदघन बरसै । लीला ललित प्रेम-रस सरसै ॥१५६॥
लहलहात ब्रज सुख बनबेलि । महामधुर लीला-रसकेलि ॥१५७॥
मुरली-गरज रंग-रस-धारा । ब्रजबन व्यापि जगावनि भारी ॥१५८॥
ब्रजतिय-हिय-सरवर रसभरे । लाज-पाज तजि उमगनि ढरे ॥१५९॥
प्रबल प्रेमप्लव उफनि धर्यौ है । ब्रजबन यह रस पूरि रह्यौ है ॥१६०॥
चातक-लहरि धरैं सँग डोलौं । महाभाव रुचि आनि कलोलौं ॥१६१॥
त्रिभुवनमई मुकुटमनि गोपी । लोकलाज-मरजादा ओपी ॥१६२॥
पहुँची परम प्रेमनिधि पाई । इनकी महिमा बेदनि गाई ॥१६३॥
रसिक-मुकुटमनि सीस चढ़ाई । आनँदघन पूरन पन लाई ॥१६४॥
गोपिनि की गति कहति न आवै । गोपीनाथ-सनाथ कहावै ॥१६५॥
जाकी माया जगत नचावै । सो नटनायक इन्हैं रिझावै ॥१६६॥
तनमय भई रहति निसिबासर । प्रेम-क्रिया को भाँति इनकी सब ॥१६७॥
सरबोपरि गोपिन को प्रेम । जिनमों नंदसूनु को नेम ॥१६८॥
सिरिजि रहत ब्रजमंडल जिनके । हरि-हित-सहित मनोरथ इनके ॥१६९॥
परमानंद-कंद की प्यारी । कबहूँ कहूँ होति नहिं न्यारी ॥१७०॥
निरवधि प्रेम-परम नहिं लखैं । ब्रह्मादिक बपुरे अज तकैं ॥१७१॥
इनके गुन मुरलीधर गावत । परम प्रेम रसपुंज बढ़ावत ॥१७२॥
रसिकराय चूड़ामनि स्वामी । गोपीवल्लभ नायक नामी ॥१७३॥
ब्रजपति सरस बिनोद मगन मन । निपट किसोर स्यामसुंदर घन ॥१७४॥
सुखनिधान कैं सुखहिं मनावति । जीवनि जीवन अपनपौ हारति ॥१७५॥
इनकी प्रेम-सगाई ऐसी । देखी सुनी न कितहूँ जैसी ॥१७६॥

[१५०] पाठ=सोव । [१६०] प्रव=प्रवाह । [१६९] सिरिजि=सिरजकर ।

तन मन बचन कृस्नहीं सौं रति । कृस्न परमगति ही जिनकी गति ॥१७७॥
जो रसराज प्रगट इन कियौ । सो आनंद हरि हू को हियौ ॥१७८॥
ब्रज को सहज प्रेम रससागर । जिहि दिन मगन रहत नटनागर ॥१७९॥
ब्रजबन-बीथिन सदा अवगाहत । परम प्रेमरस-पंथ निबाहत ॥१८०॥
नित नागरि रसिक नँदलाल । .... ॥१८१॥
नित बिलास नित रास रचावैं । परम प्रेम को चुहल मचावैं ॥१८२॥
हरिमुख-चंद-चकोरी लोचनि । अतुल प्रेम की ओपीं गोपी ॥१८३॥
या रस की लीला अचिरजनिधि । बिधिहू लखी नहीं याकी बिधि ॥१८४॥
मोहनि महा परम रसमूली । सब काहू कौं देखत भूली ॥१८५॥
ब्रज नित प्रेम-महोदधि गाजैं । पूरन गोकुलचंद बिराजैं ॥१८६॥
अद्भुत अमित अखंड कलाधर । गोपी-मनरंजन सुंदर बर ॥१८७॥
दुख-तमहरन अपूरब ताको । निसिदिन उदित भावतो जाको ॥१८८॥
रैन-नागन कौं जोति बढ़ावैं । प्रेम-गगन रहिहू बिकसावैं ॥१८९॥
सुजस-चंद्रिका फैलि रही है । सुख-सोभा क्यौं परति कही है ॥१९०॥
लीला-अमी-किरनि हित पोखैं । मेटत बिरहताप-दुख-दोखैं ॥१९१॥
मित्र-मंडली-मध्य उजागर । सब बिधि नई कला गुन-आगर ॥१९२॥
निहकलंक आनंद-सरूप । जै जै जै ब्रजचंद अनूप ॥१९३॥
याहि देखि ब्रजजन मन जियैं । महामधुर मूरति मधु पियैं ॥१९४॥
महाभाग था ब्रज के लोग । करत कृस्नलीला-रस-भोग ॥१९५॥
यह ब्रज सदा प्रेमरस-मंडित । बिहरत नित्यानंद अखंडित ॥१९६॥
रसना यो जो यह रस चाखैं । छिनछिन नवसबाद अभिलाखैं ॥१९७॥
या ब्रज की आमोद अनुराग । जे बरसैं सेई बड़भाग ॥१९८॥
ब्रजरस परम धरैं ते धरैं । अनुरागी याको जन भरैं ॥१९९॥
तेई दृग जे ब्रजरज आँजैं । ब्रजरस पगि पगि मन माँजैं ॥२००॥
ब्रजब्यौहार रीझ रँग राँचैं । यह सुख पाय पाय हिलि जाँचैं ॥२०१॥
ब्रजब्यौहार बिचारैं चलैं । ... न आवत जानत भलैं ॥२०२॥
यह निसि दिन ब्रज ... । ब्रजमोहन-हित नित ... ॥२०३॥
भई चाह चित ... नित बढ़ै । छिन छिन रंग चौगुनी चढ़ै ॥२०४॥

नित बिहार नित नवल सिंगार । नित संकेत नित नित अभिसार ॥२०५॥
नित संदेस नित मिलन-उपाव । नित नित चाव नित नयौ दाव ॥२०६॥
नित संजोग नित मिलन-चटपटी । परम प्रीति की रीति अटपटी ॥२०७॥
नित प्यासे नित ही रस पीवत । नित ब्रजजीवन देखें जीवत ॥२०८॥
ब्रजब्यौहार प्रेम बसें दरसें । नित नित नयौ नयौ सुख सरसें ॥२०९॥
नित नित चित हित की गति परसें । नित ब्रजजीवन इनहीं बरसें ॥२१०॥
ब्रजरस पियें लगै सब सीठौ । या ब्रज महामधुर रस मीठौ ॥२११॥
ब्रजब्यौहार सोईं अति भायौ । रुचि रुचि रसना ब्रजरस गायौ ॥२१२॥
ब्रजरस को सवाद अति आहि । क्यौं हो रीझन कहियै काहि ॥२१३॥
को है या रस को अधिकारी । अपरस प्रीति-रीति अति न्यारी ॥२१४॥
औरै दृग जे ब्रजहिं निहारैं । औरै मन ब्रज को ब्रत धारैं ॥२१५॥
यह ब्रज यह ब्रज यह ब्रज एक । यौं हिय ब्रजरस ही की टेक ॥२१६॥
कहौं सुनौं ब्रज ही की बात । ब्रज बसि लखौं साँझ परभात ॥२१७॥
ब्रज ही सौं प्रानन को नातौ । ब्रज बिहरैं मोहनरस-मातौ ॥२१८॥
ब्रज के टूक माँगि ज्यौं खाऊं । ब्रज-सरवर-जल प्रानिन प्याऊं ॥२१९॥
ब्रज के द्रुम बेली लखि रहौं । जड़ता गहि तिनसौं रति कहौं ॥२२०॥
ब्रजमोहन - लीलारस जहाँ । गोपकुँवर के कौतुक तहाँ ॥२२१॥

दोहा

ब्रजनायक नेही नवल, बिलसत ब्रज निज धाम ।
प्रेम-अवधि नव ब्रजबधू, मधुर केलि अभिराम ॥२२२॥
यह ब्रजरस - संपति सदा, मेरें सरबस मूल ।
बृंदाबन आनंदघन, राजत जमुना - कूल ॥२२३॥
ठौर ठौर ब्रज बिपिन की, नैननि रही समाय ।
नित दरसत बरसत लसत, आनँद-अंबुद छाय ॥२२४॥
प्रेमसरोवर अमल बर, ढिग कदंब - तरु - पाँति ।
भानुकुँवरि - बिहरन सुथल, कांति अपूरब भाँति ॥२२५॥
सोभा-भर लाग्यौ रहै, भूमि सघन तरु बेलि ।
रच्यौ रुचिर रचना सुचिर, आनँद-पुंज सकेलि ॥२२६॥

रूप रितु-हित सोभित, सरस करियै कहा बखान ।
कोकिलनी पछीनि मिलि, खेलनि की रहठान ॥२२७॥
मनभावन सावन-समै, मिलि झूलन-हित चाय ।
सोभा - भर उफनात सर, देखें बनै बनाय ॥२२८॥
अमल धवल नव घाट के, झूला झूलें बिसाल ।
अमल रूप रचना सरस, मंडित ताल - तमाल ॥२२९॥
जूथ - जूथ - संग झूलहीं, राधा राजकुमारि ।
दीपत द्रुम दल फूल फल, अंबरज-रूप निहारि ॥२३०॥
मचि झुरमुट झूला चलत, जल छ्वै लौटै भून ।
बरसानि रूप - अलीनि की, बढ़न भरे अलि कुंज ॥२३१॥
भूषन बसन सरूप गुन, ललित लहलहे अंग ।
सोहत गीत सुकंठ मिलि, किलकनि बरसति रंग ॥२३२॥

चौपाई

भीतर बाहिर तुमहीं तुमहीं । अँखियाँ देखन कौं अति ललहीं ॥२३३॥
मूँदें मूँदें ब्रजलोचन - तारे । मोहन मधुर स्याम उजियारे ॥२३४॥
हुती कहा अब उघरि परे हौ । इके रहौ बहु सुनति भरे हौ ॥२३५॥
चेटक चटक रूप चित चोरत । देखत देखत ही मन ओरत ॥२३६॥
कौन भाँति की बानि धरे हौ । जित तित लोचन-संग लगे हौ ॥२३७॥

———

२३१—मचि बिच (सं०) । २३२—सहज—सुरूप । सोहत—मोहत (वही) ।
मिलाइए पृष्ठ २१५ पर के 'प्रेमसरोवर' से ।

गिरिगाथा

दोहा

श्रीकरतल - रस - परस भव, भींज्यौ दरस अनूप ।
गिरिनायक बंदन करौं, सेवा नवनव - रूप ॥ १ ॥
ललक पुलकमय विपुल वपु, हरिमंदिर हिय जास ।
जगमगात अभिमनि सदा, लीला विमल विकास ॥ २ ॥

चौपाई

गिरि गोबरधन-छबि कछु बरनौं । पाऊँ नाम अरथ गुन सरनौं ॥ ३ ॥
मन पाऊँ तब रसना आनौं । गोबरधन बर लहि गुन गानौं ॥ ४ ॥
नगमनिमयी सिखर सुचि सोहैं । चकित नैन आभा-सुख जोहैं ॥ ५ ॥
सोहैं जोहैं हरिहिय गोहैं । को है अब याकौ सर कौ है ॥ ६ ॥
निर्झर-निचय अचय रस सरसैं । गोबरधन आनँदघन बरसैं ॥ ७ ॥
द्रुम-प्रकार-रचना यौं कहियै । चढ़त चेतना जड़ हू रहियै ॥ ८ ॥
केलि थकी अति भली अनूठी । निकट इकौंसी रंग अँगूठी ॥ ९ ॥
विविधि समय सुख सौंज भरी हैं । गिरिधर-हित गिरिराज भरी हैं ॥ १० ॥
जियें रहैं मोहन-मन हाथ । हरि कर धरैं नमाय गिरिनाथ ॥ ११ ॥
प्रेमसिंहासन परम उतंग । ब्रज-जुबराज करत जहँ रंग ॥ १२ ॥
विविधि अपूरब केलि-रससे । तामैं स्याम अभिराम नित बसे ॥ १३ ॥
रूप भूप वैभव जगमग अति । चंवर सिंगार-सार बरही-तति ॥ १४ ॥
बरन बरन विहंग रँग-भोग । बचन-रचन-सुख-स्वाद-संजोग ॥ १५ ॥
पुहुप - वृष्टि वाटिका सुहाई । विटप बेलि अभिलाषनि छाई ॥ १६ ॥
निज पद-विहरन परस-प्रसाद । लहत सदा गिरिराज सवाद ॥ १७ ॥
इहि प्रसाद हरिनाम-निरत बर । धनि धनि गिरिवर धनि गिरिवरधर ॥ १८ ॥

[३] जास=जिसका । [४] बर=बरदान । गानौं=गाऊँ । [५] जोहैं=देखता है । [६] को है=कौन है । सर=समानता । कौ=के लिए । [७] निचय=समूह । अचय=आकर । [९] इकौंसी=एकांत । [१४] बरही=मोर । तति=पंक्ति ।

गिरि को हृदय मृदुल अति देखौ । पघिलति सिल पद-परस बिसेखौ ॥ १९ ॥
कठिन बात गिरिप्रेम-नेम की । मूरति ब्रजजन-कुसल-छेम की ॥ २० ॥
दान-केलि-रस - आगर हियौ । भानुकुँवरि-हित मारग कियौ ॥ २१ ॥
दानिराय को अति रसदायक । गोरस है सो रस गिरिनायक ॥ २२ ॥
प्रिय सख्य-सखी-समाजहिं साजैं । सर्वोपरि गिरिराज बिराजैं ॥ २३ ॥
निरवधि रस को पारस पावै । गिरि की गरिमा गनत न आवै ॥ २४ ॥
फूल फल जल हरि परिकर पोषैं । सब रितु सुखनि सानि परितोषैं ॥ २५ ॥
कंदर मंदिर [भ्रांति] रुचि राखैं । रसिक-पुरंदर हित अभिलाखैं ॥ २६ ॥
इन्द्रजाल मनिमाल जगावैं । नेहप्रकास - दसाहिं दिखावैं ॥ २७ ॥
हरिराधा-गहन हृदय-भरनी हैं । केलि-कलानि सकेलि करनी हैं ॥ २८ ॥
हरि को हितू न फेर दूजौ । चलौ या गिरि के पद पूजौ ॥ २९ ॥
पूजै याहि मनोरथ पूजैं । गिरिवर चरन-रजनि कछु छूजैं ॥ ३० ॥
गोपकुमारनि को अति प्यारो । गायनि देत चाय सौं चारो ॥ ३१ ॥
नदी-भूमि गोधन की माला । सिखर धरौ व्रजपति को लाला ॥ ३२ ॥
सुकृत-पुंज-फल गिरि हौ पायौ । दीसत यौं निज सीस चढ़ायौ ॥ ३३ ॥
अति उन्नत गिरि-भाग-निकाई । गिरिधर बेनु बजाय दिखाई ॥ ३४ ॥
मुरली - टेर ब्यापि गिरि रहै । सुनि मुनि सरस रूप-सुख लहै ॥ ३५ ॥
द्रवीभूत गुन प्रगटैं जबहीं । जड़ता तौंति सहायक तबहीं ॥ ३६ ॥
गिरिवर - प्रेम विधि-धरमैं जानैं । गिरा बखानौं निज अनुमानैं ॥ ३७ ॥
महालील गोपाल गोपसुत । गोधन गमन ग्वाल-गोधन-जुत ॥ ३८ ॥
गिरि को गुपत मतौ को पावै । हरि-राधाहित हृदय दुरावै ॥ ३९ ॥
पुजवत साध सबै विधि साधैं । हित अराधि रिझवैं हरि-राधे ॥ ४० ॥
सेवारीति - महंत महामुनि । गिरि-महिमा कहि कौन सकै गुनि ॥ ४१ ॥
नित्य-केलि गिरिगाथा फल है । परम मधुर रस भरयौ अमल है ॥ ४२ ॥
सीस धराधर - ईसहिं नाऊँ । जुगल - केलि-चिंतामनि पाऊँ ॥ ४३ ॥

[२४] पारस=उत्तम पदार्थ । [२६] कंदर=कंदरा । [३०] पूजै=पूजने से । पूजैं=पूर्ण होते हैं । [३८] महालील—महालील, महालीला करनेवाले । गोधन=गोवर्धन । गोधन=गायों का झुंड । [४३] धराधर=पर्वत ।

गिरि को सरनहि गिरिहौं निरखौं। होत फिरौं न्यौछावर हरषौं ॥४४॥
गिरि को मोंहि भरोसो भारी। जिन गिरि रहैं हरैं गिरिधारी ॥४५॥
अति लघु मति गिरि महिमा महा। रहि न सकौं अरु बरनौं कहा ॥४६॥
गिरि कैं गरब गनत नहिं काहू। गिरिवरधर-पन-पंज-निबाहू ॥४७॥
गिरि की कृपा गिरिधरैं परसौं। गिरि-गुन गनौं सुनौं गिरि दरसौं ॥४८॥
आस बास या गिरि मैं रहौं। दृग गिरिवरधर सुंदरस लहौं ॥४९॥
गोवरधन मंगल को आलै। ब्रजबासिन को हित नित पालै ॥५०॥
ब्रजधर-मंडन सदा सहायक। गिरि-महिमा बरनैं ब्रजनायक ॥५१॥
गिरिवर धारि गिरिवरधर सोहैं। ब्रजलोचन लखि ब्रजजन मोहैं ॥५२॥
गिरि को हित गिरिवरधर करैं। गिरिधर-हित गिरिवर विस्तरैं ॥५३॥
गिरा मौन मैं गिरिधर गहौं। गिरि की कृपा गिरिधरैं लहौं ॥५४॥

दोहा

श्रीगोवरधन नाम गुन, सो रस ताको भाग।
महाप्रभु रसरासि कौं, पायौ पूरन पाग ॥५५॥
सुख-समाज गिरिराज कर, रह्यौ दृगनि दरसाय।
मन तन रस भीजे लस्यौ, आनँदघन बरसाय ॥५६॥

———

पदावली

भैरव] (१) [मूलताल

मंगलनिधि ब्रजराजकिसोर, मंगल लसैं चारयौं ओर।
मंगल घर अरु बाहिर मंगल सुख निरखत मंगल निसि भोर।
मंगल बरसाने दृग। प्रात समय मंगल रुचि रच्यौ हिमोर।
आनँदघन सबही विधि मंगल बाजनि मंगल मुरली-घोर ॥

भैरव] (२) [चौताला

अब मेरो स्वारथ हू परमारथ तिहारे हू हो हरि हाथ
तुमही धौं तुमतें जाँचत हौं देहु दया करि नाथ अथ सुख साथ।
गाय गाय ज्यौं त्यौं जीवत हौं गावै विरद विदित गुन-गाथ।
प्रान-पपीहन के आनँदघन मीन-दीन-पन पाथ ॥

तथा] (३)

अपार गुनग्राम हौं कहा गाऊँ।
बौरहि गई थकित मति गति होति, तुमलौं कहौं धौं हैं क्यौं करि आऊँ।
अमित पारस की तरल तरंगनि विसमय बूड़ि न ठिक ठहराऊँ।
हे कृपाल आनँदघन मो जन बोहित सुहद कृपा जौ पाऊँ।

भैरव] (४) [इकताला

गोपाल तुम्हरेई गुन गाऊँ।
करहु निरंतर कृपा कृपानिधि बिनती करि सिर नाऊँ।
दरस न मोहन मूरति हिय सौं देखि देखि सुख पाऊँ।
आनँदघन ह्वौ बरसौ सरसौ प्रान-पपीहा ज्याऊँ ॥

भैरव] (५) [चलती इकताला

तुम्हारी सौं मोहिं तुम बिना कछु न भावै।
सोचनहीं निसि तारे गननि हौं ए सपनौहूँ न आवै।

२–दीन०–दीन (तनना)। ४–तुम्हरेई–तेरेई (सतना)। ४गावौं०–परौं गावै (वही)। ज्याऊँ–जिवाऊँ (अंदन)।

[१] घँमोर=लखून। घोर=ध्वनि। [२] पाथ=जल।

हियरे बीच रहौ न लहौ गति कोऊ कहा जनावै ।
प्रान-पपीहनि आनँदघन दैया कौन जिवावै ॥

तथा] (६)

अनु रे मेरी प्रीति लगी हो ।
कल न परति है घरि पल छिन बिन देखें प्यारे ।
कठिन कठिन बीतत दिन बितत रैनि तारे ।
कब ह्वैहौ सनमुख मनमोहन उजियारे ।
कहा कहिये पिय तुमसौं बसत हिय मँझारे ।
आनँदघन चातक-जन कबहूँ न बिसारे ॥

भैरव] (७) [चौताला

मुरलिका विहंसि आछी तानन रचना करै
बाँके बाँके भेदनि भजाइ मन दई, को धीरज धरै ।
मुखविलास देखबोई सार्थ बहुभाँति अभिलाष भरै ।
प्रान-पपीहनि हित आनँदघन लाइ बरसनि भरै ॥

विभास] (८) [चौताला

आय यह पाँरी परनि लागी हो, लाल फिरि जानि जान देहु घर अपनैं ।
तुमहिं कहा सोच भुर की यह लगि मोहि परै जिय कपनैं ।
आनँदघन ढरौं न अरम जौ तौ देई देखौ जपनैं पुजापै थपनैं ॥

तथा] (९)

जागौ जागौ हो निसि के मतवारे,
भोर भयौ लागे बोलन सुक-सारी है पहचारी ।
गुरुजन-सोच नहीं तनकौ जिय कौन सुभाय तिहारौ ।

६—अनु=अजु (अहना) । रे—है (वही) । कबहूँ न—कबहूँ भयौ (वही) ।
७—बाँके भौनि—भजाइ (अहना) । मोहि—मो जिय है (वही) ।

[८] भुर को=अधिक । अरम=भेद । देई=देवी । पुजापै=पूजा की सामग्री ।
[९] सारी=सारिका, मैना । पहचारी=पहल-पहल । अरम=भेद ।

ब्रज के लोग गहत हौ चवाई माहि नहैं डर भारौ ।
आनँदघन तुम छाय रहे कहँ, काहू सौं भरम हमारौ ॥

विभास] (१०) [इकताला

रही निसि पाछिली घरी चारि ।
सुरत-रँगमगे जगे पगे रस अंग अगन अँगरानि ।
निपट अटपटी चाह-चटपटी नाहिंन सकत सम्हारि ।
आनँदघन अभिलाषनि झौर चारौं करत उधारि ॥

रामकली] (११) [रूपताल

मदनगुपाल की बाँसुरी बाजै ।
राग अनुराग-सागर तरंगित किंधौं मधुर मकरंद ब्रजचंद-मुख राजै ।
लोचनमोचन महा रोचक रसाल धुनि मादक मनोज उनमाद उपराजै ।
सुनि रहि सकै नाहि सकै धीर कौन तिय चितवत काहि
छाड तजि गुरु-लोक-लाजै ।
प्रान-चातकनि के तोषपन तोष-हित जीवन-अधार आनँदघन गाजै ॥

रामकली] (१२) [चौताला

को पावै थाह हमारे मन की ।
स्यामसुंदर निरखें निरखें भयौ गति कहा दीन प्रान की ।
निरखैं निपट निठुरता सीखे बलिहारी वा पन की ।
प्रान-पपीहनि के लागैं रहै आसा आनँदघन की ॥

विभास] (१३) [चंचरताल

कैसैं धीरज रहै जब हमैं मुरली-धुनि बौरावै हो ।
कानन पैठि महामादक रस प्यावै मनहिं घुमावै हो ।
तानन बान चलावै भावै घायनि मारि जिवावै हो ।
आनँदघन स्यामनि बरसावै परै उघारि भिजावै हो ॥

१०—अँगरानि—अरसानि (छतरपुर) । झौर करत—झकोरि (वही) ।

[११] कंद—मूल । [१२] पावै=समझे । [१३] घुमावै=चक्कर में डालता है ।

एमनि] (१४) [मूलताल

तेरी आछी री माँहि सुनत बँसुरिया
सुधि न रहै तन की तनकौ तेरी सौं ।
थकित होति सुख जोति जगमगत मनु नों रहत जाइ मन बन पै
पर मैं परी रहति गुरुजन-बेरागिनी सौं ।
कैसें करियै भरियै कौ लौं कुल की कानि जंजर जेरी सौं ।
आनंदघन रसपियन जियन कौं प्रान-पपीहा तरफरात है बर-मेरी सौं ॥

टोडी] (१५) [मूलताल

रैनि उनींदे नैन बिराजैं ।
सिथिल भए रस भीड़ रसमसे निरखि कोकनद लाजैं ।
अरुनाई पगि पलकैं आलस-बस मस कै खुलनि मिलनि मो काजैं ।
प्रान-पपीहनि हित आनंदघन रूप आनि सुख साजैं ॥

रामकली] (१६) [चौताला

बरजि री बरजि दे अनोखे छैल कौं मेरे हाथ मुरली न आनि बजावै ।
हौं सुनि सिथिल इन पग मैं उन गहि रस सब सोंधा धबाय चलावैं ।
जिय की मिलन जोति जो जानैं तौ इन बातनि कहि कहा पावैं ।
चातुर ह्वै आतुर आनंदघन छाइ परागु प्रान-पपीहा तावै ॥

केदारौ] (१७) [एकताल

रासमंडल मैं नाचत दोऊ तकट धिकट धिधिकट
धिलांग थेई थेई तत्थेई ।
होड़ाहोड़ी भेद भँजावन नत मुक ध्रुक कत कथुगातक
ध्रुंगाधिधि लकट थेई ।

१४—जैंहर-जेजर (वृंदा०) । १गा०—रसपान करन (लंदन) । १६—हर-हौं (सतना, वृंदा०) । नवान-बजाइ (लंदन) ।

[१४] जैंबर०=(जर्जर) पुरानी, शक्तिहीन । तेरी=तरसी । तरफरात=हृदय की व्याकुलता । [१६] छाइ०=अत्यन्त छाकर । तावै = संतप्त करता है । [१७] तकटधि० = बोल हैं ।

हाव भाव लावन्य कटाछनि प्यारी पियहि परम सुख देई ।
आनँदघन रस रंग पपीहा रीझि रीझि आँखौं भरि लेई ॥

मलार] (१८) [चकताल

तान-सुर तार सौं जमाई है मोहन मुरली मैं मलार ।
प्यारी के गावत अद्भुत रंग उपजत भौंहनि तरंग बाढ़त
अंग अंग अनंग-सुख-समुद्र अपार ।
दृग-बिलास सुख-बिकास भौंहनि मधुर हास भास
पानिन रंजित अधर दसन बिथुरे बार सिंगार-सार ।
आनँदघन रस आसार भींजन रीझत उदार
आपुस मैं होत मालती-माल मरकत-हार ॥

कल्यान सुध] (१९) [मूलताल

पहिरी सुनि चोलिनि सौं भौंहें सँवारी सारी सूही ।
भाग सुहाग अनुराग रंग को आप बढ़ी जु कछू ही ।
गोरे बदन पर अलक झलक आछी उर पर माला जाही जूही ।
आनँदघन पिय के रस भीजी रीझनि भरत मदूही ॥

हमीर] (२०) [मूलताल

ब्रजमोहन को प्यारी तेरी भाग बड़ो ।
मुरली मैं तेरे गुन गावत जाकी धुनि मोहि जंगम जड़ो ।
तेरे लाड़ की कहा कहियै जाहि लाड़त लालन अलकलड़ौ ।
आनँदघन पै तो हित चातक सौतिन कै यह साल गड़ो ॥

१८—जमाई-बजाई (सतना), रचाई (वृंदा०) । भौं-नं (लंदन) ।
२०—लालन-लाड़न (सतना, वृंदा०) । कह-कहियै (वही) ।

भौंहौं=गोद, अंकवार । [१८] तार=ऊँचे स्वर में । भास=भासित होता है । मालती अर्थात् राधा । मरकत=पन्ना अर्थात् श्रीकृष्ण । [१९] सूहीं=लाल । ही=थी । जाही—जाती, चमेली । जूही=यूथिका । ही=हृदय । [२०] अलकलड़ौ=दुलारा ।

भैरो] (२१) [एकताला चलती

आए जु आए भोर, भले ही
रंग रंगीले छबीले मया करि रात निसि जागे
हग अनुरागे पाग-रंग-तमोर ।
बंदी चलि कौ बिजन डुलावत स्यामल भए नए कुसल किसोर ।
आनंदघन रस बरसि कित हूँ लाए हौ इहि ओर ॥

कल्याण की कनरो स्याम] (२२) [मूलताल

अब मेरी तुमसौं पुकार है हो,
ब्रजमोहन प्रान-अधार पुकार है हो ।
कान खोलि किनि सुनियै हा हा सुंदर सुघर सुजान उदार ।
दरस तुम्हारे नैन चिचारे तरसत तरसत लागि सदार ।
दीन पपीहन के आनंदघन आनि लीजियै बेगि सम्हार ॥

सोरठ] (२३) [इकताला

राज म्हानें ओलू आवै ।
ऊभी ऊभी थारी बाट तकाँ छाँ यों बिन बिरहा अधिक सतावै ।
म्हाँरी थांके [redacted] टहलनी भँवर कमल-फूल-बास लुभावै ।
प्रान-पपीहौं रा आनंदघन थे निरमोही क्यूँ न बसावै ॥

परज] (२४) [इकताली

बैरनि म्हारी बाँसली है बंरा घड़ी दिन पाड़ै छै ।
अहा घणी रा मोनसौं नै कीनी लाजि बिगाड़ै छै ।

२१—कुलक-सुकुल (दतना) । २३—ओलूं—ओलू (बृ०) । फुल—फूल (सतला, बृ०) : क्यूँ स्याँ (रतना) ।

[२१] तमोर=तांबूल । बिजन=(व्यजन) पंखा । [२३] राज—प्रिय । ओलू=विरह की स्मृति । ऊभी०—खड़ी खड़ी । तकाँ छाँ=प्रतीक्षा करती हूँ । थांके=आपके बिना । म्हाँरी—मेरे ऐसी आपके महल की सेविकाएँ हैं । क्यूँ न—किसी प्रकार बस नहीं चलता । [२४] दिन०=दिन पारती है, सुदिन कर रही है । मोनसौं=मनुष्यों को ।

काँईं करों न क्यों बस चालै घर बैठ्याँ मैं ताड़ै छै ।
थेंईं घड़ी रहै आनंदघन छौना बात लगाड़ै छै ॥

अड़ाना] (२५) [मूलताल

कहूँ नैन मन कहूँ मैन-रस-चसमाहि जु परे जु कान्ह बिचारे ।
अनुरागलता लौ मिलौ सुदिनो ये ये रस ढंग नित नित जु निहारे ।
अलबेली बनितान गहन ही सुघर सांझ कैं सोचैं हारे ।
आनंदघन अचरज-भर लागौ डहडहैं पै लिपट उघारे ॥

गौरी] (२६) [मूलताल

सब जग कान काल ह्वै दौरे अब मेरी स्याम-रंग-रंगी दीठ ।
कज-पकड़ारौ सनमुख डोलै लाज दै रही पीठ ।
कैसो घूँघट कहाल पीन लौं करौं फबीठ सुनि मुघर बसीठ ।
उघरि परी आनंदघन पर्मैडौन कनक दोऊ नीठि ॥

केदारौ] (२७) [मूलताल

लालन लीजै जु फिरि लाजे वहै तान केदारे की मुरली मैं हाहा ।
ललिता लखि बीन मैं पंचानि ही हूँ कछु सुप लै दिखराऊं
कौन सरजैं आहा ।
या कांग धौं धुन गाइ जित हौं दरसन इयाँलो सुनि कों लाहा ।
रीझ लाल आनंदघन परमैडौन कियो नाम सें रस-चौमासो
जियौ हियौ मांझ नाहा ॥

बिहागरो] (२८) [रूपताल

आज प्यारी पिय के मिलन की रागि है ।
खोल खिलि सुभग सगम समय रंगीली री अंग अंग अनुराग है ।

२५—अनिरगलता—अनिरगल (बृ०), य कर (गंग०) । २८—सुग—सुनी (बृ०) । रंगीली—रंगीली (सतला, बृ०) : अंग—अंगि (बृ०) ।

काँईं=क्या । बैठ्याँ मैं=घर बैठे हुए को । थेंईं=पोछे पड़ी रहती है । छौना=इसकी बात प्रकट कर देता है । [२५] मैन=मदन, काम । कान्ह=कान्ह, कृष्ण । सांझ=सांझ । डहडहैं=प्रफुल्लित होते पर भी लपटते उघाड़ते । [२६] मुघर=चतुर । बसीठ—दूती । नीठि—कठिनाई से । [२८] रागि—प्रेम ।

बहु बिधि बिलास रस रास-सुख स्रम-पगी-जगमगी
जुगल थर संगम हितानि है।
आनँदघन घमँड केलि-संपति रमँड़ प्रीति रसमसनि सरसाति है॥

[भूलताल
रामकली] (२९)

रास करि कीरति सब पर छाई।
माई साँवरे प्रीतम लाड़ लड़ाई, अनेक भाँति अभिलाष पुजाई।
मनही मन मैं करति बधाई, ललित ललित जहाँ की तहाँ पाई।
कौन सकै कहि भाग बड़ाई, सुक सनकादिक बेदनि गाई।
अतुल प्रेम को रास रचाई, त्रिभुवन मैं कीरति अधिकाई।
रसिक-मुकुटमनि सीस चढ़ाई, आनँदघन रसरंगनि छाई॥

[चंपक
रामकली] (३०)

हौं झूठी तुम साँचे काहा हरि मोहुं करौ किनि साँचौ।
तिहारी गुहारि सदा चाहत हौं जौं न परै भ्रम खाँचौ।
जग जंजार असार लोभ लगि नाचि थक्यौ बहु नाचौ।
अब आनँदघन सुरस सींचियै लगै नहीं दुख-आँचौ॥

गवार] (३१)

आसा तुम्हैं सौं लागि रहै।
कृपापियूष-दोष सौं पोषित अति लहलहनि लहै।
हौ जिहि तुम अबलंब कलपतरु सौभग-बेलि बढ़ै।
चढ़ि गुन बिटपनि सबहि बढ़ै नित किहूँ सिथिल न ह्वै।
मन-थाँवरे बिराजौ थिर ह्वै सिंह रस राखि यहै।
फूलै फलै निरंतर माधव सोभा कौन कहै।
बिसद बिसाल बितान प्रान लौं सिमिटनि फैलि गहै।
झूमि झूमि झालरैं छबीली सीतल सौरभ है।
चरन-मूल अनुकूल रोपियै था बिधि चित्त चहै।
निहचैं बारि डोरिये चहुँ दिस चिंता-भार न रहै॥

[२९] स्रम=स्वेद। हितानि=प्रेम करती है। रसमसनि=लगन, सरसता।
[३०] खाँचौ=रेखा, बाधा। [३१] बितान=चँदोवा। थाल=टेक।

जिय की गाय हरौ आनँदघन करुन जानि गहै।
जीवन-धाम पाइ कै तुमसे क्यौं दुख-घाम सहै॥

बिहागरौ] (३२)

रावलि मैं आनंद महा है।
कीरति कन्या जनी जसवती निज भागनि को लह्यौ लहा है।
जसुमति करति बधाई चायनि मन ही मन हित कह्यौ कहा है।
आनँदघन अभिलाष-लता पर रस-बरसनि की उमह महा है॥

रामकली] (३३)

आँखिनि गही अति अनखानि।
पीठि दै मो मन तरकि तोरी तिनक लौं कानि।
ह्वै गई औरै किधौं डर चंचलनि बढ़ बानि।-
मनें सपनेहूँ कहूँ तनकौ नहीं पहिचानि।
निरखि स्यामसुजान-छबि जांक अधिक ढुरी मुसकानि।
ललक-बस लाज पलक रस अँचवति बिसारि अघानि।
तब न कछु समुझी सहज रुचि रीझ की अरसानि।
अब दुसह घाती महा बिरहा बिच परयौ आनि।
कौन सौं कहियै दसा लहियै सदै सुखदानि।
मौन ह्वै रहियै हियैं दहियै दहकि अकुलानि।
प्रान मन गति मति सुरति सौंपे सबै पर-पानि।
दैन कौं दुख वे निगोड़ो लै रहीं रखवानि।
बलति भव औरौ अँध्यारी रूप-जोबन-खानि।
द्वैज ससि ह्वौ हा करौ निज काज इन दुखियानि।
जरति पुनि जल ढरति धरति न धीर पीर सिरानि।
दरस-अंजन लखि लहैं आनँदघन सियरानि॥

[३२] रावलि=राधा का महल। कीरति=राधा की माता। [३३] तिनक=तिनका। कानि=मर्यादा। अघानि=तृप्ति। अरसानि=दूर पड़ना। पानि=हाथ में। रखवानि=वासस्थान। अँध्यारी=अँधियारी। द्वैज=द्वितीया का चंद्रमा जिसे सब देखते हैं।

हमीर] (३४) [चलती चरचरी

यै आनंदकंद बंदि लै हरिचरन ।
परम सुख की सींव दुख - समूह - हरन ।
सिव बिधि मुनि नारदादि रहत सदा सरन ।
मोद - पयोद रस - निवास प्यास - हरन ॥

नट] (३५) [चंपक

ऐसैं ही ऐसैं जात दिन बीते ।
स्यामसुँदर देखैं बिन भटकत लोचन रीते ।
बिरहा प्रबल हराइ हाइ दी नेम-धरम सब ही इन जीते ।
आनँदघन कब बरसैं दरसैं जु होहिं चित-चातक चीते ॥

नट] (३६) [चंपक

अवधि टरी न आए ब्रजनाथ ।
कौन हमारी सुरति करावै मनहूँ रह्यौ रमि साथ ।
पंथ निहारत होहिं मंद परी रसना थकी गुन - गाथ ।
आनँदघन अब यह जिय आवति मारि फेरियै माथ ॥

तथा] (३७)

हमारी सुरति कब धौं तुम लैहौ ।
अवसर बीत्यौ जात जानमनि बहुरि आय कहा कैहौ ।
आनंदघन पिय चातक कूक - थकैं पछितायोई पैहौ ॥

सारंग] (३८) [मूलताल

अब मेरो तुमसौं लग्यौ है सनेहरा ।
ब्रजमोहन प्राननि प्यारे दृग - तारे रूप - उज्यारे ।
कह्यौ न परत कछु रह्यौ न परत है सह्यौ न परत छिन छेहरा ।

३८—अब—अति (सदना, दंदा०) ।

[३५] रीते=खाली । चीते=चैतन्य । [३६] मारि० = मारपीट कर सिर को दबाव से फेर दूँ । [३७] कहा०=क्या करोगे । पछिता-योई० = पछताना ही हाथ लगेगा । [३८] छेहरा=विरह । मेहरा = वृष्टि ।

नघरि उघरि अब बरसन लाग्यौ अचरज को यह मेहरा ।
आनँदघन दिन दूलह तुमहूँ बाँधौ जू घन - सेहरा ॥

ऐमनि] (३९) [मूलताल

मोरे मितवा तुम बिन रह्यौ न जाय ।
बिषम बियोग जरावै जियरा सह्यौ न जाय ।
निपट अधीर पीर-बस हियरा गह्यौ न जाय ।
आनँदघन पिय बिछुरन को दुख कह्यौ जाय ॥

गौरी सिरपन] (४०) [चंपकताल

कब ह्वैहौ हो नैननि के पाहुने मो हिय है लौ लागी ।
अँसुवनि जल सौं पखारि पायँ हूँ ह्वैहौंगी सभागी ।
मन मेरो मँडराय रात दिन बनि अभिलाष बिकल बैरागी ।
प्रान-पपीहनि के आनँदघन है पुकार पन - पागी ॥

गौरी] (४१) [मूलताल

मेरी तुम्हरी लगनि अनसह न सहि सकैं बाम ।
राई लौन भरौं तिन आँखिनि जिनहिं न देख्यौ भावै यह धन-धाम ।
मोहिं तुम्हैं धुर को सँजोग - सुख थिर चिर रहौ अठ जाम ।
आनँदघन बरसौ सरसौ हित तेई दुहेली दहौ दुख-घाम ॥

बिभास] (४२) [चौताल

निपट निपुन लाल उठधारे आए हौ इत उत झाँकत ।
दुरत न क्यौं हूँ रँगरैनि उघारत अपने सौं बहुतै ढाँकत ।
चोरी करि चपरावत सौंहनि काहे कौं इतनौ फाँफट फाँकत ।
आनँदघन पिय नागर आगर औरनि जु सबनि एक लग हाँकत ॥

पूर्वी] (४३) [चरचरीताल

निपट निठुर तिहारी बानि दैया तुम यौं ही करी पहिचानि ।
ब्रजमोहन पै मोहे कहूँ न कहा जानौ अकुलानि ।

४१—दुहेली—हरी लौं (मंदन) ।

दिन०=प्रतिदिन दूल्हा, नित्य दूल्हा । घन०—घन का मुकुट । [४१] अनसह= असह्य । धुर को=पर्यंत । दुहेली=अभागिन । [४२] चपरावत=बहकाते हो । फाँफट०=फूहड़-फक्कड़ फाँकते हो, झूठी बातें करते हो ।

हम भोरी तुम चतुर सनेही कौन रची बिधिना यह बानि ।
आनँदघन ह्वै ब्यापहि मारत प्रान-पपीहनि जानि ॥

पक्का कलिंगरा] (४४) [चरचरी

असाँनू चेटक लाइ गया। की करों कुछ होर न सुझदा ।
साँवला सोहन मोहन गभरू इत बल आइ गया ।
चमक पई बलाइ बिरह दी किथे हाइ गया ।
मुरली-तान सुनाइ आनँदघन साणु चलाइ गया ॥

सारंग] (४५) [चौताला

चंचल नैननि री मन मोह्यौ ।
मोहन मो तन जब हँसि हँसि जोह्यौ ।
अनियारी कजरारी कोरनि ह्वै छ्वै हियरा पोह्यौ ।
अब तनकौ धीरज न लगत हाथ अपनौ सो मैं बहुतै टोह्यौ ।
आनँदघन चितवनि मिठास चित-चातक हित छाइ
किन बिछोह-दुख दोह्यौ ॥

मालव] (४६) [सूलताल

दैया कैसैं भरिहौंगी, पिय को इक भावं बिछोह दुख ।
सासु ननँद की डाटनि तनकौ मनहिं न धरिहौंगी
अपनी भायौ करिहौंगी ।
कौथनि नगर धवाइ चलि चूके कानि हरिहौंगी ।
चाहि व्याकुल की लौं तरफनि तरफरिहौंगी ।
आनँदघन हित प्रान-पपीहा अब लौं मोहन परिहौंगी ॥

ललित ख्याल] (४७) [सूलताल

मैं अपनौ प्यारो अंजन करिहौं ।
साँवरो रूप अनूप उज्यारो पलकनि आँखिन भरिहौं ।
कैसैं देखन दैहौं काहू अपनियाँ डीठि इकौसैं धरिहौं ।
आनँदघन मिलि जीव जिवैहौं अति रसरंगनि ढरिहौं ॥

[४४] होर=और, सांग। गभरू=प्रिय। बल=ओर। चमक०=शरीर में बिरह की कसक जगाकर। [४७] इकौसैं=एकांत में, अलग।

मालव] (४८) [सूलताल

बन नैं ब्रजमोहन आवन की बेर भई है ।
गोधन-धूरि धुँधरी देखैं आँखिन जोति नई है ।
मुरली-धुनि सुनि प्रान जगे हैं बिरह-व्यथा टरि दूरि गई है ।
आनँदघन पिय आगम उलही उर अभिलाष-जई है ॥

बिभास ख्याल] (४९) [चरचरीताल

आई है उनींदी तू सुनि राधे पिय के सँग सब निसि की जागी ।
झपि झपि आवत नैन तेरे घुरि घुरि आनँदघन-रस लागी रस-पागी ।
आगैं आव बलैया लैहौं अंगनि रंगनि की छबि दागी ।
मुख रहि री हौं बिजन डुलावौं जिय की जीवनि प्रान-सभागी ॥

सारँग] (५०) [चौताला

गोकुल घर घर कान्ह-कहानी ।
कहि कहि सुनि बितवत निसि दिन प्रीति न परत बखानी ।
मोहन रस पीवनहीं जीवत चाह सिषा छिन छिन सरसानी ।
सज्जन-मन-पूरन आनँदघन जीवन-धन सुखदानी ॥

पूर्वी] (५१) [चरचरीताल

मेरो मन मेरे हाथ नहीं कहा करौं री बीर ।
ब्रजमोहन के बिछुरन की निपट अनोखी पीर ।
कैसैं दुराऊँ हे सखी नैननि भरि आवत नीर ।
आनँदघन पिय के दरसे बिन प्रान-पपीहा अधीर ॥

तत कल्यान] (५२) [सूलताल

मोसौं अनबोलैं क्यौं बन पिय के प्रानन की
प्यारी हाहा किन बैन भनैं ।

४८—गोधन—गोपन (लंदन)। सुनि०—धुनिसुन प्रान निरखे (मतना)। टरि—दुरि (वही)। ४९—झपि०—घुरि घुरि (मतना)। मुख—मौन। प्रान—बान (वही)। ५१—मेरो०—धीरज धरिहौं (संग्रह)। देखौं०—ब्रजमोहन जाने (वही)।

[४८] गोधन=गाय। जई=अंकुर। [५१] बीर=हे सखी। [५२] भनैं=भाखना, कहना चाहता है।

मेरी साँस समझ तौ राखै सोच हियेँ अपनै ।
मेरो चातक ह्वै जीवत रस दै आनंदघनै ॥

सारंग] (५३)

हाइ हाइ दिन बीति चले ।
अब ब्रजनाथ साथ बिन सजनी दी हराइयै जीति चलैं ।
इनहू कौं समझाइ सुनावै छाँड़ि प्रीति की नीति चले ।
तदपि बिसास कियौ आनँदघन तब क्यौं दै परितीति चले ॥

राग बिहागरो] (५४) [इकताला

राधा - मदन गोपाल की हौं सेज बनाऊँ ।
दूध फेन फीको करै वर बसन बिछाऊँ ।
बासंती नव कुसुम लै रचि रुचिहिं रचाऊँ ।
नव पराग भरि भाव सौं तिन पर बगराऊँ ।
गौर स्याम नव पाट की डोरीनि कसाऊँ ।
रतन भरी मुकतान की झालरैं झुलाऊँ ।
सूचौ - गुन गस गाँसि की रचना सरसाऊँ ।
संगम - ओज मनोज के रंगनि दरसाऊँ ।
एक उसीसौ दुहुँनि कैं अनुकूल धराऊँ ।
करतल सौंधौ साधि कैं सुख-बिलस बसाऊँ ।
मनि-चौकी ढिग राखि कैं हित-भाँति सजाऊँ ।
रुचित उचित मधु - पान के भाजननि भराऊँ ।
लालबिहारिनि कौं तहाँ रस - रीतिनि ल्याऊँ ।
सुखद भावती लाल को अभिलाष पुजाऊँ ।
उमँग लाज - छबि छैलता दृग देखि सिराऊँ ।
या बिधि निज करतूति को नीकैं फल पाऊँ ।
समझि समन रसभेद की बतियानि सुनाऊँ ।
भीतर की कैसैं कहौं बहि बाहिर आऊँ ।
द्वार झरोखनि अवनिका रुचि सौं छुटकाऊँ ।

[५४] मिलाइए पृष्ठ ३१८ पर की 'मनोरथमंजरी' से ।

दौरि जोहिं तब लाड़िली - हिय हुलसि सिहाऊँ ।
कछू कहैं लगि कान सौं सुनि जीव जिवाऊँ ।
ता सुख की संपत्ति सखी मन माँझ दुराऊँ ।
नैन - सैन जोबन - छको लखि भाग मनाऊँ ।
पान - पात्र आदिक - रसैं रुचतौ भरि प्याऊँ ।
आपुस को रसमसनि कौं क्यौं बरनि बताऊँ ।
नेहभरी बतरानि कौं समझौं बहराऊँ ।
जुगल बदन मद-मदन की झालौ लखि हाऊँ ।
चंचल भेल अनुराग की मति झुकनि छकाऊँ ।
बीरी सरस सुगंधमैं रुचि जानि पचाऊँ ।
फूलमाल इक दुहुँनि कौं सकुचनि पहिराऊँ ।
औसर लखि चल्यौ चहौं कछु उकति नेठाऊँ ।
आँचर ऐंचि रहैं प्रिया हौं कछुक छुड़ाऊँ ।
मोहिं भुज भरैं झकनि सौं जिय समझि लजाऊँ ।
हैसनि अति रसचाव की हठि दुहुँनि हँसाऊँ ।
परम चतुर रसरीति मैं हौं हितू कहाऊँ ।
महा मोद मानैं भटू ज्यौं त्यौं चलिआऊँ ।
अकथ कथा हित-रीति की हौं कहा चलाऊँ ।
हौं जानौं कै वे सखी यह ताहि जनाऊँ ।
भाजि इकौसी ह्वै रहौं कनसुवौ लगाऊँ ।
सुनि सुनि सींचनि प्रान को नाहीं अघाऊँ ।
मानि बधाई चाव सौं मंगल गुन गाऊँ ।
बैठि आपनी ठौर हौं मृदु बीन बजाऊँ ।
केलि - रसमसे मिथुन कौं सुख-नींद भनाऊँ ।
या बिधि मनभायौ करौं जागि रैनि बिताऊँ ।
बड़े भोर अनुराग सौं भैरवी जमाऊँ ।
अति रति-अलसानेनि कौं नव भाँति जगाऊँ ।
फिरि फिरि पद तानैं बढ़ै बहुरयौ अहुराऊँ ।

निकट जाय पग चाँपि कै हित-हाथ जगाऊँ।
आरस-भरी जँभानि पै चुटकीनि चिताऊँ।
अलक-तिलक-रचना-समय आरसी दिखाऊँ।
बनै ठनै लाड़िलेनि कौं आँगन पधराऊँ।
वारि वारि कै आपुनपौ अँगुरी चटकाऊँ।
निरखि झगमगी झगनि कौं भुज गहि सहराऊँ।
नित नूतन रसरीति कौ चित चौंप बढ़ाऊँ।
जिन्हैं रुचै सोई करौं रसियानि रमाऊँ।
मिलि बिछुरैं बिछुरैं मिलैं ऐसी कला मिलाऊँ।
सहज रँगीली जोट कौं हिय-बीच बसाऊँ।
चित-चातक-आनँदघनै रस-परस रमाऊँ॥

बिलावल] (५५)

मन मैलो न होइ सो कीजै।
हा सुरसरि हरि-सुजस-रूपिनी गुन-गरिमा महिमा सुनि जीजै।
सरनागतहि परमगति-दायिनि दीन-मलीन-हीन-सुधि लीजै।
आनँदघन-हित बरस दरस पद-परस प्रबोध-प्रसादहि दीजै॥

ख्याल भैरो] (५६) [मूलताल

जियरा मैं क्यौं समझाऊँ।
रूप-बजारे अँखियनि तारे ब्रजमोहन देखे बिन हाऊँ।
ठौर न पावैं उठि उठि धावैं गहि गहि ल्याऊँ।
फिरि गुरझावैं दैया री यह पीर निगोड़ी निपट लजावै कहाँ दुराऊँ।
मेरे मन की कोई न जानैं जैसैं हौं दिन रैनि बिताऊँ।
प्रान-पपीहनि की यह बेदनि आनँदघन बिन काहि सुनाऊँ॥

ललित ख्याल] (५७) [मूलताल

अब तौ परि गयौ नैननि चसकौ, अरी ब्रजमोहन-दरस-परस कौ।
मनहूँ संग लग्यौ चलि उनके रह्यौ नहीं मो बस कौ।
मति गति सिथिल भई देखतहीं हियरौ धरधर धसकौ।
आनँदघन पिय कान धरैं जौ प्रान-पपीहनि ससकौ॥

[५७] चसक=तरसना। धसकौ=धड़कन। ससकौ=सिसक।

सारंग] (५८) [चौताल

नीके रहौ जू प्रानपति तुम निहारी लागौं हमहिं बलाइ।
कोटि कोटि जुग रोम रोम सुख आनँनि फलहु फलाइ।
विधिना की सुदृष्टि नित नितहीं रिपुदल डारौ दलमलाइ।
आनँदघन बरसत हितु मानिकै कुसल-कथाहि चलाइ॥

गौरी] (५९) [मूलताल

कान्ह कान्ह रट लागी मेरी रसना कू।
जब तैं बन गवनैं बनवारी तब तैं ये अँखियाँ अभागिनि
इकटक तरसैं भौंकैं।
मुरली-धुनि सुनिबे कौं आरति प्रान बसेरो काननि चौंकैं।
वे आनँदघन इत चित-चातक कौं आनि कित कौं छावैं
अब किन ह्वै आवैं मारग सूझैं बाँकैं॥

गौरी] (६०) [चपकताल

तनक सी मुरलिया पै बड़ौ अचरज नाद।
जाहि सुनत मीठे लागत मीठे सब स्वाद।
ये गुन क्यौं न होहिं री सजनी जाहि सदा हरि-मुख-प्रसाद।
आनँदघन सब मिलि रस बरसनि सरसनि प्रेम-प्रमाद॥

सुध कल्यान] (६१) [चौताला

चटक कठतारनि की अति नीकी लटक मौं नाचै
मटक-भरयौ मोहन।
कर-चरन-न्यास अभिनय-प्रकास मुख सुख-बिलास
मन उरझै सुघराई सोहन।
त्यारौ उघटति कंठ किलक आछी दसन-चिलक
आली पिय के जोहन।
आनँदघन रस रंग-घमंड मौं ललिता मृदंग बजावति
पवन भरनि सौं परनि आवै गोहन॥

६१—सोहन-मोहन (मतना)। किलक—तिलक (लंदन)।

[५९] चौंकैं=व्यग्रता। घौं=ओर।

काफी] (६२) [चौताला

कौन हठ परी है हौं न जानौं मानप्यारी कब को हा हा करत।
तेरो ज्यौं तनकौ कठोर कबहूँ न पायौ दैया अब किन ढरत।
हौं हूँ फिरि तासौं न बोलिहौं मो बिन कहा धौं काज न सरत।
आनँदघन अरु तोसो निठुर सौं पपीहा प्यासनि मरत
सब दुख क्यौं हूँ सहयौ न परत॥

कल्यान] (६३) [मूलताल

कान्ह तिहारी मुरली मैं कछु टोना है हो।
खग मृग मोहित होत वहै गति हमहीं कौं ना है हो।
तानन बानन भिदैं न कैसें जाको बांध बिमोना है हो।
आनँदघन रस-प्यासनि बरसति बस यासौं ना है हो॥

हमीर] (६४) [मूलताल

मेरे मन मैं मोहन मूढ़ मुरनि मढ़ी।
को पावै यह पीर अटपटी जिय की गति अति रति जागि चढ़ी।
सौं लौं दुराय सकी तौ लौं निबही अब न दुरहि बनो कठिन बढ़ी।
आनँदघन घमंडन उघरति तू हितू तातैं तोसौं कहति यह निपट गढ़ी॥

सूहनि बिहाग ख्याल] (६५) [चचरी ताल

सुहागिनि राधा रानी।
स्यामसुंदर ब्रजराज-दुलारो जाकैं बस अभिमानी।
सोभा को सिर छत्र बिराजै बृंदाबन रजधानी।
जीति लियौ कियौ रूप-पपीहा आनँदघन रसदानी॥

६२—सब०—सबहूँ न (सतना), सब नयौं न (वृंदा०)। काम—काम (लंदन)।
६४—डीठ—ढीठ (लंदन)। ६५—दुलारो—लाड़िलो (सतना, वृंदा०)।

[६२] कठतार=करताल, एक बाजा। न्यास=रसना। अभिनय=नाम। किंकन=ध्वनि। चिरेक=बालक। परन=मृदंग आदि बाजों के बोल के बंध। [६२] हा हा=दीनता-सूचक अव्यय। [६३] बिमोना=रोकनेवाला। [६४] पावै=समझे। जागि=जागरण अर्थात् अधिक। रति०=प्रेमाधिक्य से युक्त।

नट] (६६) [मूलताल

मोहि लियौ मन मेरो मोहन बनवारी कहा करौं मोहि कछू न सुहाइ।
सोचति हौं दिन-रजनी सजनी हा हा बताइ कहा धौं करौं उपाइ।
नंदनंदन की आसनि साँसनि भरि न सकौं जिय कलमलाइ।
आनँदघन बिन प्रान-पपीहा तरफत हैं कहा बनी है हाइ॥

धनासिरी] (६७) [मूलताल

तुम तन मोरी लगनि लगी है तुम बिन रहिय न जाइ रे।
घरी पल महिकौं जुग से बीतैं बेगि सम्हारौ आइ रे।
बिरहा महिकौं अधिक सतावै कछु न बसावै हाइ रे।
प्रान-पपीहा तरफत हैं आनँदघन हाहु सहाइ रे॥

खमाच] (६८) [चंपक ताल

मोहन मुरलिया बजी है, हौं कहा करिहौं मोरी दैया।
मनहिं घुमावैं मति बौरावैं री बैरहि लेन सजी है।
लाज-लपेटी कहाँ लौं रहिय धुनि धीरज की करनि धजी है।
आनँदघन रस आसनि प्यासनि अब कोऊ अपनी न जी है॥

सारंग] (६९) [चौताला

बंसी बजै ब्रजमोहन की बन महियाँ।
स्यामसुंदर जमुना-तट बिहरत सघन कदंब की छहियाँ।
मादक नाद सवाद महा छके घूमत खग मृग नग जहँ तहियाँ।
आनँदघनहिं निरखि सुरबनिता अभिलाषनि भीजी
भूलि पतिनि गरबहियाँ॥

बिहागरो] (७०) [मूलताल

जहाँ जहाँ री हरि पिय पै जैहौं माहि भिदो है मुरली-तान।
रोकौं रहति कौन कौ अब हौं कहति पुकारैं खोलि कान।
घूमत मन अपनैं बस नाहीं लग्यौ है बिषम अति बिरह-बान।
प्रान-पपीहा पलैं तबहीं जब आनँदघन को करैं रस पान॥

६७—रहिल—रहौं (सतना, वृंदा०)। ६८—मति—तन (सतना, वृंदा०)।
७०—आंक (सतना)।

[६७] महिकौं=मुझे। धजी=धज्जी, टुकड़ा। [६९] खग०=पशु-पक्षी और पर्वत।

बिभास] (७१) [चौताला

बरनि मेरी रसना ब्रजमोहन की रसकेलि ।
अद्भुत मुख-मयंक को सार धरै किन भाँति सकेलि ।
मधुर रिझाइ सदा फल जामैं फलित ललित अभिलाष-बेलि ।
आनँदघन - गुन-रूप - चातका गसि लोकैं खुलि खेलि ॥

आसावरी] (७२) [चौताला

सुन्दर कान्ह ब्रजवासी तिहारे दरस-रस की हौं प्यासी ।
तुमहीं सौं मन लागि रह्यौ अब सब तैं भयौ है उदासी ।
ऐसी भाँति मरियत भरियत नित एक गाँव बसि भए प्रवासी ।
प्रान - पपीहनि के आनँदघन दैया निपट बिसासी ॥

टोड़ी] (७३) [चौताला

हरिचरनन की रज आँखिन आँजौं मोहि यहै
अभिलाष रहै नित ।
कहा धौं पाऊँ कहा जतन बनाऊँ पाँख बिना तरफौं इत ।
को पावै यह पाँर अटपटी चाह चटपटी चूर करै चित ।
पवन बीर तेरे पाय परति हौं आनँदघन पिय हेत न
ढरकि जाहु हा हा करि हित ॥

रामकली] (७४) [चंपकताल

तिहारे कौन कौन गुन गाऊँ ।
इन अपने अनेक औगुन पै तुमहिं दयाल पाऊँ ।
सबही बिधि सुधि लेत देत सुख हौं अचेत बिसराऊँ ।
आनँदघन उदार मृदु सुरभि कृपा भरोसे छाऊँ ॥

सारंग] (७५) [रूपताल

मनमोहन की बँसुरिया, बँसुरिया बाजै बिरह-भरी ।
सुनि व्याकुल प्रान होत हमारे रह्यौ न परत घर एक घरी ।

७१–रिझा०–हित सबै (सतना)। गुन–रस (वही)। ७२–बिषासी–बिसवासी (लंदन)।

[७१] सौंनि=संचित करके । गसि=कसकर । [७२] भरियत=दिन भरती हूँ । बिसासी=विश्वासघाती ।

कैसें कैसें कुल-कानन बहियै कान्ह कुँवर सौं बसाति न री ।
आनँदघन नित उमड़ि घुमड़ि कै हम ही पै लागैं रहत झरी ॥

तथा] (७६)

तुमहिं निरखि औ प्रानन वारौं ।
तौ पुनि इनहूँ पै वारनि कौं कहौ कृपानिधि कहा बिचारौं ।
सफल होइ आँखिनि सब दिन को एकै बेर बिरह दुख टारौं ।
सकृतौ सुकृति-जनम-जस जीतौं तिनके कृतहिं समझि हरि हारौं ।
इहि अभिलाष लाख लाखनि बिधि प्राननाथ गहि मौन पुकारौं ।
सुचित रुचित आवै मो काजैं आनँदघन चातक-व्रत धारौं ॥

तथा] (७७)

भरोसैं जीवौ आनि गह्यौ ।
बानिहै कृपा किये हौं हा हरि मैं निरधार बह्यौ ।
जिहिं तिहिं भाँति रूप-गुन-धामहिं कथत जनम निबह्यौ ।
त्यौं अब तिनके मरम-परस कौं सूछम समय लह्यौ ।
प्रान तनक सनमुख ह्वै यह पन दृगनि गह्यौ ।
हा हा हा फिरि हा हा सुखनिधि बिरम न जात सह्यौ ।
नंदकुमार उदार चतुरमनि बिषम बियोग दह्यौ ।
आनँदघन हरि सुरस सींचियै चित-चातक उमह्यौ ॥

तथा] (७८)

फूले फले अरु उबरे फेते ।
कैसें कै कहि सकौं रावरे मनमोहन अगनित गुन जेते ।
निकट दूरि लहि परत नहीं कछु आनँदघन रस-मगन सचेते ।
हाइ हाइ बिसवासी बालम कबहूँ तौ आँखिन सुख देते ॥

सारंग] (७९) [चौताला

बंदौं तिहारे चरन - सरोरुह ।
सिव-बिधि-हृदय-सिंघासन-मंडन चिंताहरन कामदुह ।

[७७] सौंतनि=सम्यक । सकृती=एक बार में हो । [७८] बिरम=बिलंब । [७९] कामदुह=कामधेनु ।

कालिंदी कैं कूल केलिबस बिहरत वृंदाबिपिन कुंज-कुंज ।
आनँदघन मन नैन प्रान मधि बसहु कृपा-गुन गन-गुंज ।।

रामकली]　　　　(८०)　　　　[चौताला

सुमिरि मन हरिपद साँचौ रे ।
झूठैं राचि बृथा कित धावैं डगमग खाँचौ रे ।
सुथरो सुथिर जहाँ नहिं पहुँचत माया लाँचौ रे ।
कृपा-गुनहिं गहि क्यौं न, क्यौं न लागै भ्रम लाँचौ रे ।
अति अखंड आनँदघन दरसैं फुरति न आँचौ रे ।
तिहिं रस सरसि होत किन कबहूँ जड़ रोमाँचौ रे ।।

सारंग]　　　　(८१)　　　　[चौताला

सब कछु पहिलैं दै दान कियौ हरि अब हौं अनचाहु जिहीं चाहौं ।
एक तुम्हैं तुमहीं तैं जाचौं हौं इहिं जोग कहा हौं ।
कृपानाथ कोमल उदार नित बिसद बिरुद अवगाहौं ।
सुरस पपीहा ह्वै आनँदघन तिहिं बल पनहिं निबाहौं ।।

राग भैरव]　　　　(८२)

राधा हरि करत ललित केलि बेलि-कुंज मैं ।
आनँद - उन्मद रँगे अनंग - रंग - पुंज मैं ।
अंग अंग लपटि लिपट रसभ्रम लटपटत री ।
सुरत-समर-बीर-धीर कोपि न तनक हटत री ।
चौंपनि मों लुभि चुभि तन बिबिध घात सहत हैं ।
अति सुमार मार - सार बारपार बहत हैं ।
कंचनि तैं उमगि निकसि निकसि भिरत हैं ।
कलित दलित बिगलित कच गिरि उठि उठि गिरत हैं ।
आनँदघन अद्भुत छबि दंपति - बिलासिन फबी ।
रुचिरन रँगमगा धरनि जै - जुत बृंदाटबी ।।

कुंज=घेरे मैं । गुंज=गूँजे, गुंजित । [८०] खाँचौ=बोझ । लाँचौ=दोष, विकार । [८२] मार=काम के शस्त्र । बारपार=आरपार हो जाते हैं ।

भैरव]　　　　(८३)　　　　[चौताला

कब सरस करिहौ या नीरस मन कौं, धौं ।
दरसैहौ निज रूप अनूपम बरसि कटाच्छ सघन कौं ।
लपनि रचनि अरु नचनि बहुत बिधि जिनतैं खचि
खचिहैं तुम तन कौं ।
जीवन-धन उदार आनँदघन जाचत चातकपन कौं ।।

सारंग]　　　　(८४)　　　　[चौताला

कौन जानै री या मुरलिया मैं कहा भेद बजै ।
तनक भनक स्रवननि मैं परतहीं मनु न रहत ठौर
लोक-बेद-कुल-कानि तजै ।
तन की सब सुधि भूलि जाइ कोऊ कैसैं आज कै साज सजै ।
हा हा करि पायनि परि को आनँदघन पियहिं नैंक बरजै ।।

गौरी]　　　　(८५)　　　　[इकताला

हमारी सुरत्ति करौ ब्रजनाथ ।
तुम बिन हम अब निपट दुखारी जैसैं मीन बिन पाथ ।
निसि दिन गाइ गाइ जीवनि हैं सबरेई गुन - गाथ ।
आनँदघन रस बरसि पोषियै प्रानपपीहा साथ ।।

रामकली]　　　　(८६)　　　　[सूलताल

अब कछु बाधा नाहिं रही ।
मदन गुपाल मिले सुखदायक साधा सबै लही ।
रोम रोम अति हरष भयौ है जोबन सफल सही ।
आनँदघन या रस की संपति कैसैं परति कही ।।

रामकली]　　　　(८७)　　　　[चलती इकताल

मैं स्याम दरस पायौ, भयौ अब सब बिधि मनभायौ ।
बहुत दिन तैं लगी हुती आसा जिय गाढ़ी ।
.... ।
सुंदर बदन सुखसदन की उपमा नहिं दूजी ।

[८३] रूप=छोर । [८५] पाथ=जल ।

प्यासे नैंन प्रानंनि की साधा सब पूजीं ।
महा मोहन मधुर मूरति सुख-समूह सरसै ।
मुसकनि चाहनि मो पर अनुराग-रंग बरसै ।
दृष्टि-मिलनि अंतर-खिलनि अंग अंग छाई ।
देखि सखी या तन आनँदघन - सरसाई ॥

रामकली] (८८) [झपताल

नंदनंदन - चरन बंदन करौं हौं ।
राधिका-नख-उरज-राग-रंजित ललित अति
रस - बलित क्यौं कमल सरबरौं हौं ।
रुचिर लंच्छन सु अँगुठा - मूल फूल क्रम
जौ चक्र छत्र लखि चख सुख भरौं हौं ।
अरध पद लौं सुभग तरजनी - संधि तैं
सूछम सुरेख ओंचित चित धरौं हौं ।
मध्यमा - तर मंजु कंज अपदाक धुज
दृग-अलि तहाँ इंग कहन फरहरौं हौं ।
छिगुनी-तरैं थाह अंकुस कुलिस लसत
मन-गज गरब-गिरि थकनि अनुसरौं हौं ।
मंगल सदन चारि साथियें इन तरैं
जुत जंबु फल चारि तकि सुख करौं हौं ।
तिन मधि बरुयौ अठकोन सब सिधि-भौन
दाहिने चल बाम करि भव तरौं हौं ।
बाम अभिराम अँगुठा-मूल संख सुभ
मध्यमा - तरैं नभ निहारि न टरौं हौं ।
तिन हू तरैं धनुष-पनिच मिस चढ़ि रह्यौ
तातैं सु गोपदन नेक बिसरौं हौं ।

८८—वंदन-कमल (पृ'द'०) पद०—श्री भँवर सुपन्दर (सतना)।
[८८] सरबरौं=उपमा दूँ । छन=पास । क्रम=क्रमशः । रुचित=देखी ।

तिन्हिं तर त्रिकोन पट चारि मध्य रसभाग
अरध विधु मीन दुति किहि पटतरौं हौं ।
करन कौं बाम पै दाहिनो मोहि नित
हिय चिंता लगाइ रुचि धानि पकरौं हौं ।
उदित ससि सरद के कोटि नख-पाँति पर
वारि भुवन - चकोरनि दुख हरौं हौं ।
सुंदर गुलफनि पीठि तकि डीठि थकि रही
मनसा रहति परिकनिहीं अरौं हौं ।
छुद्र घंटिन अवनि सीस - आभरन जुग
गति कलाधर हंस - रसिक हरौं हौं ।
बिहरत सुजान प्यारी - सहित जमुन-तट
मनपद आनँदघन बिसरौं हौं ॥

तथा] (८९)

राधिका - चरन बंदन करि बखानौं ।
पाइ जिन बल नंदनंदनहिं हाथ करि
चैन भरि नैन मधि देहुँ थिर थानौं ।
बाम अँगुठा मूल लसै चक्र जगमगत
हिय हरित-करन दल - दुख-दलन आनौं ।
अरध पद लौं ललित तरजनी - संधि तैं
सूछम रेख अनिमेष दृग आनौं ।
मध्यमा तर - कमल धुज अमल दुति जलज
मन - मधुप सुखपगन प्रान - धन मानौं ।
तिन तर पुहपलता लहलहनि महमहनि
हित कलित ललित चित-भाँवरैं ठानौं ।
छोर-धन! छिगुनी निकट करी - समकरन
डगर मदमत्त मन करसन प्रमानौं ।

थकनि=छकना । साथिये=स्वस्तिक । चन = सहारे । धाम०=संसार को कौड़ी करके, संसार से विमुख होकर । पनिच=धनु'ष, धनुष की डोर । [८९] जमकै=दोनों (कमल और ध्वज)। थावरैं=थाले में । करी०=हाथी को वश

पुनि चक्रतर रुचिर बलय अरु छला - छवि
कवि कहि सकत कौन मौन अनुमानौं ।
अरुन एड़ी उदित अरध बिधु मुदित लखि
पिय नैन - चकोर जुग चौंप चित सानौं ।
यौं सुभाइ श्रम पद केलि - लीला - रसद
अति बिसद मति तिहिं प्रसाद पहचानौं ।
सुनिय एड़ी सकल कामधुज स्याम तन
रति - समर - समय फरहरनि गुन गानौं ।
तापर मनोरथ सुरथ अरु खिलाम [illegible]
तिनि रुनैं उतैं गदा सकति करि ध्यानौं ।
अँगुठा सुमूल सुभ सख सोभित महा
सारदा - ध्यान-हित चित-निधि निधानौं ।
पिय - हिय - निवास बैंदी सुनिस्रा नवैं
तातर सुकुंडल निरखि लजन भानौं ।
रासमंडल - रसिक परदोन देव विमान
निधि - पोत चित चाहत लुभानौं ।
मनसा - सिंघासन सुदेस आनंदघन
तापर बिराजि सुधि रुचि रसिक थानौं ॥

(९०)

रसिक राधारमन रसत रसरास रचि ।
सरद - रजनी उदित चंद लखि मुदित मन
अगनित आभीर-बनिता-संग रंग सचि ।
रूप - लावन्य गुन - माधुरी अमित अति
गनि रोम-रोम-रचना कोऊ न सकति पचि ।
जोरि कर मंजु मंडल मनोहर चलति
नव ललित लव-सहित लसत सब सुमिल नचि ।

में फसनेवाला अंकुश । रसद=रसदायक । सकति=शक्ति, बरछी । बैंदी=बिंदु । सुदेस=सुंदर । [९०] आभीर=गोप । रोम=समूह । ललित=गति,

गान कल तान परिमान संधान जुत
हरत हिय कहत सुर सुद्ध संक्रमन जचि ।
मानत न नृपति पुनि पुनि सघन - पुट पूरि भूरि
जीवनमूरि धुरि तृपित प्रान अचि ।
सुखिर आनंदघन जंत्र संचरित रव-संकुलित
सुर चकित थकित चित तुमुल मचि ।
तरुनि तिनकी तिहिं अतन-तमक-चमक-श्रम
द्रवित हिय होति अभिलाष आरसि निल नचि ।
आनँद-पयोद सु बिनोद-आसार-जल मधुर
रसनिधि तरंगनि बिराजत उगचि ।
ह्वै सकल-मीत मन-नैन या माधि पगहु लगहु
ललित अखिल एक ठहिं परचि ॥

कान्हरा] (९१)

हरि भजि लै मन मेरे भाई ।
हरि भजि निरमल भए बिकारी अब तेरी हू बारी आई ।
बाद-सवाद-बस पच्यौ तच्यौ सु तहाँ न तनकौ तृषा सिराई ।
आनंदघन सौं चातक-पन गहि ताहि असेष सुख-संतलभाई ॥

केदारा] (९२) [रूपताल

कीरति-गुन गाइ लै रे मन याइ सौं, ऐसी रसना लड़ाइ लै ।
सकल सुरति - सार अविकारकारी महा मंगल सुधाहि अँचाइ लै ।
जीवन-अधार धारन करि सुधरि भलैं अंतर निरंतर बसाइ लै ।
चातक-निचय - चौंप-बिबस ह्वै एकरस आनँदघनहि बरसाइ लै ॥

तथा] (९३) [चंपक

हरि नाम लै रे लै रे लै मन हा हा ।
जीवन जनम सफल ताकौ यह लाहा ।

बिरास । जच=तौलना । पुट=दोना । धुरि=लीन होकर । अचि=आचमन करके । सुखिर=बाँसुरी । अतन०=काम का आवेश । आसार=वृष्टि । उगचि=उद्रेक । अखिल=अजनबी, अपरिचित ।

सेस महेस सुरेस आदि गुन गनत सुछंदनि माहीं ।
आनँदघन रस प्रान-पपीहनि ध्यावैं सो कब आही ॥

बिलावल] (९४)

गुड़-सुख माख्यौ नव-विधि सेयौ देख्यौ हरि सों लोग नयौ ।
इत तें गयौ न उत लौं पहुँच्यौ बीच बीच ही भरमि छयौ ।
लखियौ जू रिझवार रसिकमनि अब सौं तुम दिन औंढ भयौ ।
हँसौ लसौ बरसौ आनँदघन जीवन जस है जनयौ ॥

(९५)

अब तुम तब तुम जब तब तुमहीं तुम बिन कब हौं हौं तुम हौं ।
यह छवि नयननि कहौ कहाँ तें सीखे तुम्हें तुम्हारी सौं ।
आपु आप परि लौंन फौरे धरि करत अटपटी बातनि क्यौं ।
आनँदघन सुजान दृग-तारे लख्यौ न परत अनोख्यौ गौं ॥

सारंग] (९६) [चौताला

पुरान पुरुष परमेसुर, ग्यान दाता बिग्यान बिधाता
मोहू पैं ढरिये परम गुरु ।
अपार हौं अति दीन हौं बिचारि लेहु उर ।
प्रान-पपीहनि के आनँदघन होत आप ही घुराघुर ॥

तथा] (९७)

एक गाँव के बास बसियत है हो पै और सब लखें बिदेस ।
कौन कौन भाँति जिय समझाऊँ पाऊँ नहिं धीरज को लेस ।
आनँदघन सुजान हू सुरति बिसारि दई ऐसी मारियत याही अँदेस ॥

तथा] (९८)

अहो प्यारे कित गई सिहारी वह दरकौंही बानि ।
पहलौं चौंप चाड़ सुधि करि देख्यौ परेख्यौ यहै अबैं सब छीजी पहिचानि ।
मृग पारधी की भाँति कहा कीनी नाद-रस प्याइ बान मार्यौ तानि ।
आनँदघन पन राखि प्रान तजि सनमुखहीं रह्यौ बड़ाई लाभ बड़ी हानि ॥

[९४] औंढ०=अप्रतिष्ठा हुई । [९५] हौं तुम०=तुम हो तो मैं हूँ । सौं=शपथ । गौं=घात । [९६] घुराघुर=आधार । [९८] पारधी=व्याध ।

तथा] (९९)

साँवल गौंड़न कियौ सो भलैंई किधौं पै क्यौं नाह रे अनकहीं ।
मरमि जरति निसिदौस परेखैं जु मन की मन ही मैं रही ।
ऐसी तुम्हैं जो बनी हो बिसारौ मैं बस कौन हम मौन गही ।
भूलैं भाइ सुधि लीजौ कबहूँ कहूँ आनँदघन बिनती चही ॥

तथा] (१००)

डोलति घर आँगन बिलखी सु न बोलति पिय के बिरह भई बौरी ।
पल पल तपत उसासनि आँसनि जाति गात पानि सौरी ।
इत उत चितवति निसिदिन आँखि-आस-दृग लगि रही री ।
आनँदघन पिय कौं मिलन आतुर याते चाहति होन भँभोरी ॥

तथा] (१०१)

तुमसौं बिनती करियै हो किहि भाँति जाहि तुम मानौ सो
मोहि देहु सुबाल बताइ ।
हरनि छबीली अपनी ओर ताही त्यौं तकत दिन रैनि बिहाइ ।
चित चातक की प्यास भरे सुद्रस रस-बरसौ आइ महा
आनँदघन छाइ ॥

तथा] (१०२)

अब तू है री दृग अंजन ।
कब की ह्वैं आई दिन बिनती करि पठाई अरबरानि ह्वै है मनरंजन ।
अलप सतौ गुन तलप रंगन पीसि रद सौं पोंछि पोंछि नवकल कंजन ।
आनँदघन सुजान रसनायक कोटि-मदन-मद-गंजन ॥

(१०३)

लगीं हैं मनहीं औरै होन ।
हैं जलचर बिचरत अनेक पै आमिल मीन-नति-गोत ।
जत अनंत उलूक आदि दै देखत चंद-उदोत ।
कहुक चोर की चौंप न्यारियै अनल सुधा को सोत ।

[९९] अनकहीं=मौन । परेखैं=पछतावे में । [१००] भँभोरी=एक पतिंगा, गुबरैला । [१०२] अरबरानि=व्यग्रता । तलप=सेज । [१०३] जंत=जंतु ।

जहाँ जगमगात प्रेम-दिवाकर तहाँ नेम खद्योत।
आनँदघन रस तृषित पपीहनि कहूँ अमी तें ओत॥

(१०४)

मोहि भरोसो है हरि-हित को।
जाहि सुमिरि बिसरै चित-चिंता सुखदायक नित नित को।
ता करि आँपि लोक-परलोकहि नाहीं सोच इत उत को।
विधि निषेध जंजार निवेरयौ अब धौं साँसौ कित को।
तिन को जगनि जानि सुख सोऊँ बड़ो आसरो जित को।
सुख नींद उसनींद भगाऊँ सो रखवारो बित को।
महा दयाल सुभाव सँभारो सागर कृपा अमित को।
आनँदघन चातक-मन पूरन भयौ भावतो चित को॥

पूरिया] (१०५) [सूलताल

तूँ नेंक दरसन दै रे निरमोही नैन तरसत हैं आज।
कहा करौं कछु बस न चलत मेरो बैरिनि भई यह लाज।
तन मन की सुधि भूलि जाति सब सनक सुनत तव बंसी-बाज।
आनँदघन इन प्रान-पपीहनि रटना ही सौं काज॥

हमीर] (१०६) [चंपक

तेरी मूरति देखिबे कौं मेरे लालची नैन भए।
तरसत तरसत रहत रैन दिन ऐसी चाह छए।
प्यारे कान्ह तैं कहा कीनी जु दिखाइयौ न दीनो आए।
आनँदघन ये प्रान-पपीहा भरोसे ही रटए॥

बिहागरो] (१०७) [चंपक

हरि-मुख देखन की सु माई मेरी अँखियनि बानि परी।
लोकलाज सौं काज कहा रह्यौ अब यह जानि परी।
गुरजन-सिख सुनि सुनिबे की डर अरसानि परी।
आनँदघन इनसौं प्रान-पपीहनि हिलगनि आनि परी॥

अमी—अमृत। ओत=चैन, आराम। [१०४] साँसौ=संशय, संदेह। उस-नींद=उचरी नींद, उचटी नींद। बित=धन।

यमन] (१०८) [चौताला

सकुचनि सौंहैं निहारि न सकियै।
लालन मनगुनहूँ बड़भागिनि गुरजन-डीठि निसकियै।
ओट भए मुरझानि होत सब अंग सिथिल ह्वै थकियै।
आनँदघन रसपान करन कौं प्रान-पपीहनि लगियै रहति टक जकियै॥

बिभास] (१०९) [चंपक ताल

तुम देखौ री मुरलिया तानिनि रंग करै।
सुनी अनसुनी कैसैं कीजियै सुधि बुधि तुरत हरै।
प्रानन पैंडे पैरि निकसनि ऐसी को जो धीर धरै।
बिरह-ताप मेटति आनँदघन रस करि रसहिं ढरै॥

तथा] (११०)

मोहि जगाइ जगाइ जागी री वाके जिय की न जानियै बात।
इक टक नैन लगाइ लगैं हौं ज जाइ रह्यौ सकवानी भई इहि गात।
तऊ नई नई रुचि छिन छिन इन भाँतिनिहीं जु होत प्रभात।
आनि गति काहि न परति आनँदघन इत आवत उत जात॥

बिभास] (१११) [सूलताल

चितवनि अरसीली बोलनि सु रसीली डोलनि डोली डोलनि।
पिय समीप निसि-सुख की झलक मुख सिथिल अलक अरु लगी
लोचन कपोलनि पीक-लीक छबीली।
अंग अँगरानि जँभानि आनि झुकि मरगजी सारी अति सु बसीली।
मुकुर देखि अवरेखि मनहिं मन आनँदघन कछु भौंहनि होति हसीली॥

तथा] (११२)

मन उमंगे गुरजन नहिं कयौं हूँ चलन भवन पग परत पिछौंडे।
इक आरस-गरुआनि और अकुलानि बड़ी यातें ठठुकि
ठठुकि फिरि फिरि चितवत हिय-पानि-कनौंडे।

[१०८] डटि०=डरकर से नहीं सकती। जकियै=जुन हो। [१११] मरगजी=मैली, सलवट पड़ी। बसीली=सुगंधित। अवरेखि=विचार कर।

पुनि हिग आइ अंग भरि भेंटत मगन होत अति रति-रस औंडे।
सिथुरत रहत न बनति आनंदघन भूमि आसरा जब गुरजन मोंडे।।

बिभास] (११३) [चौताला

तेरी ललाय लोचन भरि भरि तोहि दीजै आँखिनि गुलरी।
कान ह्वै प्रान सुधा सींचति आरस भरि बोलनि तुतरी।
बारी सिंगार आज की छबि पै हा हा न जाहि कहूँ इत उत री।
आनँदघन हौं हो देख्यौ न देख्यौ पै रहि न सकें अदभुत री।।

तथा] (११४)

सब रैनि जगाई री प्रानेसुर आतैं ढरनि जम्हाई छाई।
अंगनि आरसताई लेत जम्हाई लागत मोंहि सुहाई।
अंतर को रस-सरसाई नीकैं दैखि दिखाई काच-घटा को दीनहाई।
रोमरोम कामांकुर प्रगटे आनँदघन बरसि सु लहलहे हरषाई।।

तथा] (११५)

ए तेरी आँखिनि में अलसानि भरी सब गोलनि हूँ ते ओसी।
मेरेई नैन सबनन ह्वै ह्वै रूपजालनि प्रानीन पोखी।
मोहि तऊ नीकी लागति ज्यों ज्यौं होति हरखौं रोच रोपी।
आनँदघन सनेह-चिकनाहट पै ढुरत नहिं अति चोखी।।

तथा] (११६)

रस की बतियाँ करि करि रैन बिताई री प्यारी ढरनि अकनई भई आछी।
अति सुख लूट मची पिय सौं मिलि काहू कौ बातैं दुराव करति
तेरे अंग अंग दरसत साखी।
आनन ओप अनूप बढ़ी त्रिभुवन रूपनि करति पाछी।
आनँदघन जान रसिक रसबस ह्वै तू नखसिख बनी नीकी विधि काछी।।

तथा] (११७)

तैं रस-बस करि लीनौं री प्रानप्यारो न्यारौ नेकौ होन न चाहत।
तेरी सौं हिय जिय हिलगनि घरीघरी पलपल छिनछिन सु उमाहत।

[११३] औंडे=गंभीर-गहरा। मोंडे=भरे। [११४] रोम०=रोओं। हरषाई=हरियाली। [११५] ओसी=टेढ़ापन। चोखी=तीखापन। [११६] साखी=साक्षी। पाछी=पीछे। काछी=सज धजा।

घर आँगन बन बीथिनि जित तित तेरोइ रूप ढरनि अवगाहत।
धनि धनि भाग सुहाग रंग आनँदघन सब ब्रज सु सराहत।।

बिभास] (११८) [इकताला

साँवरे संग रंग रैनि-रस बिलसी कहति नैन सैननि चनाइ।
अधर अकनई नई भई कछु मुख सुख-ओप बढ़ी सुभाइ।
अंग अंगनि जँभाति जानि झुकि लड़कि लड़कि बोलति लजाइ।
आनँदघन प्राननि प्यारी या छबि की मोहि लाग्यौ अघाइ।।

बिभास] (११९) [झपताल

रसमसे नैन अलसौंहैं आलसौंहैं निधलौंहैं।
झपकौंहैं मृदु हँसौंहैं मोहैं जाहैं कछु लजौंहैं
मन मोहैं घूमत मैं झिरझौंहैं ललसौंहैं।
सुभाय चपलौंहैं कौंहैं उमगौंहैं सनेह चिकनौंहैं
अनखौंहैं लड़ौंहैं।
कटाक्ष करौंहैं सुसील ढरसौंहैं आनँदघन प्राननि बसौंहैं।।

बिभास] (१२०) [चौताला

मैं तुमसौं कितेयौ बार कही पै तुम नेकौ नाहिं गही।
ब्रज को लोग सहज ही लवाई इन जन हूँ कै लन हैं साथ सही।
तुमहूँ न मानत कछू काहू को लाज निडर नित ही निचटी।
आनँदघन जिय सौं जिय मिल्यौ पै अब कहा कसकि रही।।

(१२१)

जिनके मन सुविचार धरे।
गुरुपद-परम-पुनीत-प्रसादहि पाइ प्रेम आनंद भरे।
जग तें बिमल बिवेक-देस बसि दुरजन कौं नित दूरहि करे।
सील पानि परिधान आन बिधि अनासक्त ह्वै करम करे।
साधन के सुभ असुभ न जानत नित निहपथ रचि सोच टरे।
सावधान अति बिरह-धारे मिलि सुरूप इहिं न्यार धरे।
अमल अनूप बिदेह रूप धरि थिर मति करि निज गति बिचरें।

[१२१] धरे=ग्रहे रहते हैं।

जिनके पद पावन की रज मैं अखिल लोक-उपकार भरे ।
कुसल-रसासव अनिमिष पान मैं पूरन पूरन काम करे ।
तत्त्वबोध की झलक झलक बस ढकी गाँस ज्यौरनि उघरे ।
कब धौं मिलिहैं हाइ हमहूँ वे मंत्र-कल्पतरु कृपा-फरे ।
सोभामूल कृपा-सुख बरसत सरसत छाया हरे हरे ।
सुभ सीतल सुरभित धारावलि सींचे गौ उद्धार-भरे ।
आनँदघन अमोघ रस-दायक प्रान रहत अभिलाष-अरे ॥

(१५२)

अब तौ अब गह मोहिं अतैयै ।
जिहिं गह गहे परौ पुरुषोत्तम ताहि कब लौं छलनि सतैयै ।
दूरि कित रहौ उघरि नाचे पै या बिधि दीनहिं कहा दतैयै ।
कहि कित लेहु अपनो संगी बहुरंगी लखि लाजहु ततैयै ।
अवसर गए कौन जन स्वामी हौठ्यौ दै जदुनाथ जतैयै ।
आनँदघन जग सुजस छाइ कै पतित पपीहैं लिपट न तैयै ॥

सारंग] (१५३) [चौताला

कैसो नीकौ सीरी सुखद पवन जमुना तीर तरु वारौ ।
तहाँ बैठि मधु पियत जियत अधरनि सौं मिलि रसिक राधा लके मनवारौ ।
अति रसपगन चटक मँहि मानन कबहूँ होति हाहा मतवारौ ।
हँसनि चौंप केलि आनँदघन भीजनि श्रम अम बार्यौ ॥

तथा] (१५४)

अनखनि सुधियौ न बोलै ।
डोलियैं डगनि डगनि जोबन-छबि काहि पै ढैरी डोलै ।
मेरोई मुख मोहूँ सौं दुरसनि ऐसी प्रकृति कित पाई अहो लै ।
आनँदघन की घमँडनि घमँडनि उघरति सब अंगनि
पानिप आप अतोलैं ।

पूरन=पूरित, भरा । गाँस=द्वेष । ज्यौरनि=विवेचन । उघरे=प्रकट होने पर ।
[१५२] गह=पकड़ । दतैयै=डरे रहने को विवश करते हो । ततैयै=व्याकुल को ।
न तैयै=तपाओ मत । [१५३] चटक=चमक । अम=श्रम का अनुकार ।

तथा] (१५५)

ये नीके नीकै सगुन भए ।
लालन लिखे सुनि हिये तें सब दुख दूरि गए ।
बरज उमँगि सरकत बँद तरकत फरकत आगम अंग भए ।
प्रान-पपीहनि हित आनँदघन सब रस लै उनए ॥

बिभास ख्याल] (१५६) [चलती

प्यारे तिहारे मिलिबे को औसेर, लागैं रहसि भरी जिय मैं ।
तरसत नैन रैन दिन बरसत दरसत जग अंधेर ।
कीजै कृपा लीजै जिवाइ दीजै दरसनि इक बेर ।
व्याकुल महा कहा करों क्यौं मेरी परी बिरह कें घेर ।
प्रान-जीवनधन आनँदघन पिय सुनहु कान दै टेर ॥

तथा] (१५७)

निमोंनियाँ तुम बिना ऐसी हुइयाँ ।
दरस दिखावौ आनि जिवावौ नातर एवी मुइयाँ ॥

भैरौं] (१५८) [मध्य

बिरदै सुमिरि बेसहारनि सहारौ ।
अकारन करुना, कहा करनी निहारौ ।
सुकृती-कुल ह्वै मिलौ तुमहि तौ कहौ या बिधि कृपानिधि पतितपन तिहारौ ।
संकटहरन प्रभु प्रभाव कित दुरि रह्यौ दलमलत दीन यह प्रबल मतवारौ ।
ताप आतप तलफि बिललिय मुरझात जननाम आनँदघन कौन हित धारौ ॥

राग बिभास] (१५९) [चौताला

डगमगे चरन धरन हैं दोऊ आरस-बस निसि जागे ।
कुंज भवन मैं बड़े भोर ही परम सुरति-रस-पागे ।
बिथुरे चिहुर जगमगे आनन गरबाँहियाँ दिये अति नीके लागे ।
तन मन आनँदघन घमँडनि लखि लोचन भए हैं सभागे ॥

१५७—हुइयाँ—कुइयाँ (सजना) ।
[१५७] निमोंनियाँ=अभागी । [१५९] चिहुर=केश ।

विभास] (१३०) [चौताला

कछू रह्यौ अंजन फैल्यौ सो कौ कहूँ कहूँ लगी है कपोलनि पीकौ।
हौं वारी फिरि भली लगै या बानक पै सुखदायक मो जी कौ।
छूटे चिकुर कंचुकि-बंद टूटे अधर बसन छत है अबही कौ।
भाग सुहाग भरी आनँदघन बरसत सरसत पाप पपीहा पी कौ॥

राग देशकार] (१३१) [चौताला

बलिहारी हौ कान्ह न पाई परनि अटपटी बानि।
मन औरै मुख और ठौर ठौर ठानत डोलत पहिचानि।
व्रजराजा के कुलनंदन हौ तुमहि कौन की है हो लाज कानि।
आनँदघन पिय रसप्यासनि हमहूँ सौं करत आनि सरसानि॥

कानरौ विलावल ख्याल] (१३२) [मूलताल

माशूकाना मुरलीवाला मैंडा यार है।
चश्मां चश्मा आनंदा घुम्मर पावंदा क़िस्मत मेरा घर-बार है।
तुझ बिन तकरार नाहक नहीं मंकदा लगा नबेला प्यार है।
मिहिर नजर मुँडि वेख्यो सो ऐ आनंदघन दिलदार है॥

सोरठ] (१३३) [चौताला

मेरी बानी मैं बनवारी बसौ, एक मुरली करि गुन गसौ।
अमर अलाप अलापी ना होइ निथलताई तजि नीकैं कसौ।
मुरली-सुर सौं सनेह लगाये ज्यौं गावै रसिका-सुरम-जसौ।
आनंदघन छिन सरसौ बरसौ रोइ करत हौ कहा भौं हसौ॥

सूहिया कल्याण] (१३४) [चंपक

गोबरधन धरियाँ खेल कियौ हो।
नंद महर के कुँवर कन्हैया कोमल बात कैसें कहि आवैं
बहुबांध रस लै नियौ हो।
इंद्र बापुरो गर्व खिसानौ निज व्रज नीकैं राखि लियौ हो।
बरस मरसि अघाट आनँदघन सींच्यौ चितनि हियौ हो॥

[१३०] नी=श्री. राधा। अबहीं०-इसका। [१३२] [illegible]
कपड़ा। नैंका=सौंरा। घुम्मर०=चक्कर काटता है। बार=द्वार। बल=और।
मिहिर=कृपा। मुँडि०=मुड़कर देखना।

रामकली] (१३५) [चंपकताल

गाउ रे श्री रसना गुन गुपाल के।
गोपीनाथ गोविंद गोपसुत गुनी गोतप्रिय गिरिवरधर रसाल के।
राधारमन रसिक रसनागर नागर नवल सुनयन बिसाल के।
आनँदघन भजजन-उमरेधन परम-प्रीति-पन-पाल के॥

गौरी ख्याल] (१३६) [मूलताल

तुमहीं हो हरि गति मेरी।
सबै ठौर सब भाँति सब समय पति मेरी।
तुमहीं मैं तुमतें निहचल रहौ मति मेरी।
आनँदघन चातक लौं रावरी रति मेरी॥

कानरौ ख्याल] (१३७) [मूलताल

सलोने स्याम सौं मन लाग्यौ री।
गनत नहीं कुलकानि नेकहूँ अब ऐसौ अनुराग्यौ री।
छिन पल कल न परत बिन देखें इनहीं के रंग पाग्यौ री।
आनँदघन हित भयो है परबस औरै सब कछु त्याग्यौ री॥

कानरौ दरबारी (१३८) [चौताला

जमुना मज्जन सिंगार हिये मैं बाढ़त लोल रूप निहारि।
तरल तरंगनि अनि रति रंगनि मंडन ग्याग्रहि मज्जन भुजानि पसारि।
संगम करत कान्ह मनरंजन पै परम प्रीति पन धारि।
नवघनमैं आनँदघन घमंडनि अद्भुत रस-बहुवारि॥

राग हमीर] (१३९) [चंपकताल

गोरचंद्रिका माँहि चाहि रहै हौं हूँ वाहि निहारौं।
चकित होति कोर लेत मोहि घूँघट कैसें सुधारौं।
व्रजमोहन को नई तकनई रंग भरी दृगि पैं कहा धारौं।
रीझ रसमँड आनँदघन घमंडनि प्रान-पपीहनि पारौं॥

१३५—रस-रस (रसना)। भयो है—प्रथम (३।८।०)।

राग बिभास] (१४०) [इकताला

लाग्यौ री अब तौ मन तुममैं कैसें हूँ करि होत न हासी ।
सुनहु कान्ह अँखियनि के मारें निपट कठिन है नेह को नातौ ।
मोहन मूरति देखि लुभानी डमकत नहीं और की घाँ तौ ।
आनँदघन कुलकानि-संखला डारी तोरि मदा मदमातौ ॥

गवार] (१४१)

जसुमति लालहिं लेहु लड़ाइ ।
करौ क्यों न यों सफल भली बिधि जोबन सो धन पाइ ।
यह सुख सोभा अरु यह औसर भयौ जन्यौ है आइ ।
गोपराज के मास बसौ मन जो लौं कछू बसाइ ।
स्याम सलोनन ब्रजजन-जीवन रहत एकरस छाइ ।
हिलनि मिलनि चालनि डोलनि खेलनि अरु अपनें भाइ ।
यह जमुना यह रमन भूमि ह्वाँ देखन कौ है दाइ ।
रची बिधाता अति अभरेनी रंग चढ़ै तौ चाइ ।
रस-चसकौ जो परै जीभ कों जियै अघाइ गुन गाइ ।
प्रान-पपीहनि पोषि पालियै आनँदघन बरसाइ ॥

राग बिलास] (१४२) [चौताला

आरी चखियनि डांठ चालियै घर कौं चली निसि ये तौ मचाँय परे हैं ।
इन प्रानि कबहूँ न अघाने ये धुर के रसलोभी रसिक छैल
अति ख्याल-भरनि भरे हैं ।
चोरी मैं चौचंद मठताई चतुर कहाइ निसंक अरे हैं ।
फूँकि फूँकि पाव धरि ब्रज बसियन ये आनँदघन छाइ छाइ उघरे हैं ॥

ऐमनि बिहा] (१४३) [चलती इकताला

आली मैं कैसें भरौं कहा करौं प्यारे ब्रजचंद बिना ।
रैनि अँधेरी बिरह सतावै कल परै नहीं पलौ छिना ।
क्यों हूँ क्यों हूँ होत भगारौ बाट निहारौं सखी दिना ।
आनँदघन पिय भूलहि गई प्रान-पपीहनि की सुधि ना ॥

[१४०] संखला=(श्रृंखला) कड़ी । [१४२] धुर के = अत्यंत ।

बिलावल] (१४४) [इकताला

प्रान सनेही साँवरे सुधि दीजै हाहा ।
एक तिहारे आसरे लगि जीजै हाहा ।
जो जिय भावै आपकों सो कीजै हाहा ।
रैनि दिना अँसुवानि सों उर भीजै हाहा ।
बिरह तचैं सियरो परै तन छीजै हाहा ।
मन तुम तन मँडरात है नहिं थीजै हाहा ।
जित तित हित अनमोहन भजै क्यों धाजै हाहा ।
ज्यों तरसत प्यासनि भरौ रस पीजै हाहा ।
आनँदघन छाए कहाँ दै मीजै हाहा ॥

बिभास] (१४५) [झूलताला

ऐसें और कौन दुलरावै, राधा मोहन कौं जैसें जैसें हौं गाऊँ ।
हिय उमंग अनुराग रंग रागनि तरंग सौं रीझनि भीजि भिजाऊँ ।
एक बरन मैं जुगल-बरन बर बरनि बरनि बानी बर पाऊँ ।
रोम रोम सुख संपति लहि आनँदघन बरसाऊँ ॥

पंचम ख्याल] (१४६) [झूल

मेरो कह्यौ सुनि लै री राधे हाहा मान न कै री राधे ।
ब्रजमोहन साँवरिया को तोरे तो बिन ब्याकुल है री राधे ।
बिनती करि करि मोहिं पठायौ बहुत भाँति सों नै री राधे ।
आनँदघन पिय तृषित पपीहा बिस तजि कै रस दै री राधे ॥

(१४७)

आरति करत बियोगी नैन ।
मोहन मूरति देखेंही बिन देखत हैं दिन रैन ।
हिय-जिय-कला सनेह-मँजाई जगमगाति जोति मैन ।
आनँदघन घन-पल पपीहा लौं चाहत सुख-चैन ॥

[१४४] नहिं थीजै=स्थिर नहीं होता । धाजै=धैर्य धरे । बीजै=(विद्युत्) बिजली ।

अड़ानो] (१४८) [सूलताल

क्यौं जू कान्ह कहौ मिलवौं विलसनि मैं कौन ठगौरी ।
चाहनहीं चित जात थिरम ह्वै लागि रहत छिन-छौंरी ।
कैसैं आपुनपौ साधि राखियै सब सुधि टरति होति बुधि बौरी ।
आजौ रीझ भाजि आनँदघन मिल्यौ चहति भरि कौरी ।

भैरव ख्याल] (१४९) [चलती इकताल

मेरी अँखियनि के आगैं रहियै प्यारे ।
सहि न सकैं अंतर कारे रावरे तारे ।
हित की गति को बूझै तुम बिन और न सूझै रूप-उज्यारे
व्रजमोहन मतवारे ।
आनँदघन जीवनधन तुमहीं सौं लाग्यौ मन बिन
देखे छिन छिन रहैं प्रान दुखारे ।
तलफ दसा यहाँ हाहा तुमहीं कहौ कैसैं कै धिनवैं ये बिरहा बिचारे ।

दोहा] (१५०)

पनघट जौं जैयै अली, करै ननदिया सोर ।
घट घट सुधि भूलैं तबै, देखैं कान्ह किसोर ॥

रामकली] (१५१) [सूलताल

ए जू स्याम रसीले रंगनि रँगीले अनत जाइ रति मानी ।
अपनो सो सबुनै दुराव करि आए मोहन बात कहति क्यौं छानी ।
नैन बैन अति सिथिल लगे क्यौं चित चैन नांय बिनचांन पहिचानी ।
आनँदघन अनत गरजे बरसे सरसे हम जानी हैं जू जानी ॥

बिभास] (१५२) [कपोतताल

राग रागनी के नीके नीके भेद मोहन मुरली मैं बजावैं ।
सुनि सुनि सजनी जिय तैं गुरजन की लाज भजावैं ।

१४८—लाजौं—लाजौ (सदना, इं० १०) ।

[१४८] बौरी = बुध । कौरी=(क्रोड़) गोद । [१५१] छानी=ढकी, छिपी ।

भाल भौंह नैन अधर मुख सुखमा कछू कहत न आवै देखि भावै ।
तालनि के त्यौंनार उघटि आनँदघन ह्वै रस बरसावैं रीझ भिजावैं ॥

बिभास] (१५३) [सूलताल

रंगमहल मैं अति रति-पागे राधा-मोहन जागे हैं ।
लालनि अभिलाषनि यौं भोर भोर भए उर लागे हैं ॥

(१५४)

गुन गावत मन और न आवै ।
ऐसी करो रसीले मोहन प्रेम-छाक धरि सुरझ न पावै ।
थकैं छकैं रसविवस निरंतर लोरसता सजि तनक न धावै ।
आनँदघन मन पोषि पालियै चातक भयौ एक रट लावै ॥

सोहनी ख्याल] (१५५) [सूलताल

कोई है निसैंस सखी कान्ह मिलावै ।
सौंहणी सूरति नूँ अखयाँ तरसदीं आनँदघन मुख आणि दिखावै ॥

[illegible] ख्याल] (१५६) [सूलताल

मेरो मन मोहन सौं मान्यौ ए सलोनी मूरति जब तैं हेरी ।
अब तौ जानि परी पर धाहि उमगि उमगि बरसे री ।
आनँदघन कहा करौं सास ननदिया रहति न इनकी चेरी ॥

भैरव राग] (१५७) [सूलताल

सुखदाई मुख दै दै सुख ही दीजै ।
ब्रजमोहन अँखियनि तारे मन भाई सोई कीजै हो जस लीजै ।
मन बस करि यौं सुरति बिसारी इन बातनि अब क्यौं करि जीजै ।
प्रान-पपीहनि कै आसा नित आनँदघन रस पीजै ॥

सारंग] (१५८) [चौताला

तू लाड़िली री मोहि लाड़त लाड़ै लाड़नि ।
अलबेली अँखियनि रसभीजी चितवनि चाड़न उकसंपति काढ़नि ।

१५३—रंगमहल—अंगमहल (लंदन) । हरख—एह (वही) ।

[१५२] त्यौंनार = ढंग ।

[१५५] दिखावै=दिखाए । [१५८] लाड़ौ=प्यार भी । चाढ़=चोव, संभा ।

तेरी निकाई पै सखि निकाई हँसनि जगति जोति जब कपोल-गाड़नि ।
आनँदघन पिय-हित नित भर करि छाड़ि नई छिन छाड़नि ॥

हमीर] (१५९) [मूलताल

प्रिय मूरति देखन कौं नैन तरसत हैं ।
मोहन-मुख-लालसा श्रवन उघरि उघरि बरसत हैं ।
लोकलाज-त्यौं तनकौ न ताकत अति ही अरसत हैं ।
आनँदघन हित चातक च्यौंपनि पल पल सरसत हैं ॥

हमीर] (१६०) [चंपकताल

लाल रजियारे नैननि के तारे हमारे आइ क्यौं न सुधि लेत ।
तब सब बिधि सुख दै दै बिसासी अब ऐसैं दुख देत ।
मन तैं तनकौ न टरत परेखौ जु कहा भयौ वह हेत ।
प्रान-पपीहनि के आनँदघन सुरत भरौ घन-हेत ॥

(१६१)

हरि सब काज सुधारे मेरे ।
दूरि दूरि लौं मन फिरि आयौ गहि पाए अति नेरे ।
सोवत जागत चलत जितहीं तित लत रहत हैं फेरे ।
आनँदघन प्राननि के संगी मोहन मूरति हेरे ॥

(१६२)

प्रेम तौ गोपिनि ही को भाग ।
जिनकै नंद-सुवन सौं साँचो रच्यौ राग अनुराग ।
कहियै कहा निकाई मन की जो कछु लागी लाग ।
सर्बसु बिसरि बिसरि सुधि साधी महामोह की आग ।
ब्रजमोहन की महा मोहनी अनुपम अचल सुहाग ।
आनँदघन रस केलि झालरीं नव बृंदावन बाग ॥

इमन] (१६३) [इकताला

मोहि बिरहा करैं नकबानी ।
कैसें कहौं कासों कहौं जिय की बिथा न दुरै अँखियनि को पानी ।

गाड़=गड्ढा ।

नये नेह गौ ब्रजमोहन हम सौं परी पहिचानि पुरानी ।
आनँदघन हित प्रान-पपीहनि अपनी पैज हठानी ॥

सारंग] (१६४)

गोपाल भरोसें सोइयै ।
जागि जागि भ्रम भूलि सोच मैं क्यौं यह अवसर खोइयै ।
जो कछु नहिं सुहाइ सोई भई हानि है होइयै ।
आनँदघन सौं चातक-पन गहि परम प्रेम-रस भोइयै ॥

सारंग] (१६५) [चौताला

जमुना तरंगनि माझी सुनि सुनि मोहन-मुरली-नाद ।
स्याम-रची हित-मचनि मची भाँवर भरति रहै पूरन प्रेम-सवाद ।
रसिकराय के अमित-रस-भरा केलि-सदन-धन की मरजाद ।
आनँदघन घमँडनि जाकै तीर आभीर-सकुनि-भीर महामद उन्माद ॥

गांधार] (१६६) [चंपक

जहाँ जहाँ गुन रूप के बिना न पाइयत तहाँ तहाँ तुम ही हौ सवादी ।
जिनहीं तिन सौं बाँधि बाँधि मन देत खाँच लेत जाने महा रसवादी ।
मोहि कहा दोष आप गुन भरे अनबादी हौ अनादी ।
आनँदघन घमँडत गरजत बरसत सरसत रस मोहन मुर-
लिया के नित नादी ॥

राग बिहाग ख्याल] (१६७) [मूलताल

लई कन्हैया ने हौं घेरि ।
खोरि साँकरी माँझ सँझौखें आइ गयौ कितहूँ तैं हेरि ।
कौरी भरि उर धरी औचकाँ सकलौं काहि सुनाऊँ टेरि ।
आनँदघन धुरि मराबोर करि पठई घर लौं निपट अबेरि ॥

१६७—हौं-हो (सनना) । उर-भी (सनना), औरे (वृ० सं०) ।

[१६३] पैज—प्रतिज्ञा का हठ हो रहा है, प्रतिज्ञा पर अड़े हैं ।
[१६५] मरजाद = मर्यादा ; सीमा । [१६७] सँझौखें=सायम् होते ही ।
कौरी = (क्रोड़) गोद ।

(१६८) [चंचक
दुरिया]

हिय तें न टरते होत पल पकी ।
फिरि ताकी सुधि लेत क्यों न पिय बिराग न मानौ कहे कौ ।
हियौ कठिन कियौ ब्रजमोहन है टरत न गहि लाइकौ टेकौ ।
आनँदघन हौ एक हमारैं चातक तुमहिं अनेकौ ।

(१६९) [चौताला
एमनि]

बारी हौं वारि डारी आछी बनक पै नंद के कुँवर कन्हैया ।
कोटि काम हूँ तें अभिराम मधुर सलौनो स्याम मूरति
अँखियनि जोति जगैया ।
स्रवननि सुधा पियास बिसावत मोहन मुरली-तान सुनैया ।
प्रान-पपीहनि हित आनँदघन नित ही रस-बरसैया ॥

(१७०) [मूलताल
नट]

गईं लगाय चटपटी पिय के चित कौं ।
घूँघट मैं मुसिकाहिं अँखियनि तैं जु जताई हित कौं ।
भाँवरि भरत रहत मनमोहन चौंगिनि ही नित इन कौं ।
आनँदघनहिं पपीहा करि तब अब तरसावति हित कौं ॥

(१७१) [मूलताल
केदारो]

मितवा रे तुमी सन मोरा लागोला नेह कैसैं छूटै ।
आनँदघन पिय प्रानपपीहा आस लागि जीवत है यह सौं तोरैं हूँ न टूटै ॥

(१७२) [चलती चरचरी
ख्याल केदारो]

कैसैं भरौं तुम बिना अब मोहि कठिन कठिन बीतत पल-छिनवाँ ।
तुमरे देखन कौ औसेर लगी रहै चसमौं निसि-दिनवाँ ॥

(१७३) [मूलताल
ललित ख्याल]

मोरा मनवाँ है तुमी सन लागोलो,
रूप-उजारे अँखियनि तारे प्रानलि प्यारे ।
ब्रजमोहन पिय तुम्हरे कारनवाँ घरे बलि सगरी रैन जागोली ॥

१६९—मधुर-ललित (सतना) । मोहन—मधुर (वही) । १७१—लागी॰जौ॰—लागो लगन (सतना) । १७२—तुमरे—तिहारे (वही) । १७३—ब्रज॰—स्यामसुंदर (लंदन) ।

[१६८] टरते=दूर ।

रामकली ख्याल] (१७४) [चरचरी

तुम्हें काहू को कछु कहा अजू भए कान्ह कठोर महा ।
नेह कनावड़ नैंक नहीं कहूँ अपनी गौं के अहा ।
जगि जगि रैन बिसारि बिसासी लेत फिरत नित नयो लहा ।
आनँदघन पिय प्रान-पपीहनि की गति कौन कहा ॥

गंधार ख्याल] (१७५) [मूलताल

आंवो साँवलड़ा मैंडी जान ।
देखण कारण अखियाँ तपदीं रत्त-दिहाड़े तेंडा ध्यान ।
मुरली सुनाइ साँनूँ चेटक लाया सोहन सजन सुजान ।
प्रान-पपीहीं दे आनँदघन बंदी हाँ कुरबान ॥

पूरब बिहाग ख्याल] (१७६) [चरचरी

साँवला दिलजान मैंडा है ।
प्रान-पपीहीं दा आनँदघन सोहन सजन सुजान ॥

एमन] (१७७) [मूलताल

सजना जान तेंडा नेह नवेलड़ा ।
साडरे प्रान-पपीहीं दा आनँदघन प्यारिया लगा इस्क अवेलड़ा ॥

पाज] (१७८) [मूल

ढोलन वेकहीं जीवानी ।
नैन-पियाले भरि भरि मेंगे रत्त-दिहाड़े मैं पीवानी ॥

राग मारू] (१७९) [आड़ चौताला

आज हमारैं आयेला घनस्याम आनँदघनावरौ मनाइस्यौं ।
फूलाँ केस गुँदाइस्याँ काजलरा रेख बनाइस्याँ ।
साँधा ओली काँचली कसाइस्याँ, मोत्याँ हार ढुलाइस्याँ ।
आँगनाँ चंदन लिपाइस्यौं गजमोत्याँ चौक पुराइस्यौं ।
पीयाँ दीवला जगाइस्याँ चित्रसारी ढोलीयौं बिछाइस्याँ ।
हँसि हँसि कंठ लगाइस्यौं आनँदघन भाइ बरसाइस्याँ ॥

१७४—कहू—कहा (लंदन) ।

बिहागरो] (१८०)

क्यौं सुख दै दुख बहुरि देत हौ।
हरत हियो बस करत हँसनि मैं ब्रजमोहन फिरि सुधि न लेत हौ।
तुम्हैं कहा काहू को चिंता नित निधरक सब सुखसमेत हौ।
आनँदघन अंबरन मरु बावत अचै अचै चातकनि चेत हौ॥

मालकौस ख्याल] (१८१) [चरचरी

अरे हाँ रे तोरे दरसन कौं तरसै मोरा जियरा घरी पल।
आनँदघन पिय छाइ रहे कहूँ जानौं कहीं वह बिथा न परै
परेखवौं निसिदिन कल॥

सारंग] (१८२) [चौताला

लै अनबोली कब लौं रहैगी मोसौं हितू सौं अचगरी।
रिस तौ उनसौं मोसौं कहा अब आजु करति अगरी।
जो ऐसी जानती तौ तुलती न नेकाउ हित के भरोसे ह्वौ छैं डगरी।
आनँदघन अभिलाषनि उनए चाहत छ्वैहैं मग री॥

सारंग] (१८३) [इकताला

नैन-मद छाकी गुजरिया मतवारे मोहन के संग लागी डोलै।
मुरली-नाद-सवाद रीझि रही घूमनि झूमति उरझि उरझि मन खोलै।
बन-कुंजनि बिहरत गजगमनी अति कमनी रवाँनी को लै।
आनँदघन-रस रूप-चातकी चोंपनि बाढ़ी उर अनुराग अनोलै॥

सारंग] (१८४) [चपक

मोहन मूरति बिसरै नहीं, कैसैं मन बहरैयै।
जागि जागि लूटैं अँग भरै आँखि जगमगे घूमि
झूमि रहै तहाँ तहीं।
भूले से दिन रैनि बितैयै सुनियै समझियै न गुरजन की कहीं।
आनँदघन मँडराति रहै मुरली-धुनि काननि प्राननि
भिजवै माँगति हमहि मुहौंचहीं॥

[१८२] अचगरी=शरारत। अगरी=अधिक। [१८४] मुहौंचहीं=दर्शन।

परज] (१८५) [मूलताल

श्री गोपाल गोकुलबिहारी प्यारी बिहारी आवनि निहारियै।
चरन-धरनि मैं धरनि होति धनि कहा कहौं फिरि कहा वारियै।
नखसिख ललित सलोनी मूरति नैन जुगल लालसा धारियै।
आनँदघन भरु लागैं लागैंहिं प्रान-पपीहनि रुचि बिचारियै॥

आसावरी] (१८६) [चंपक रूप भेद ताल

बँसुरिया मैं कहा भिय लै भरयौ निपट बिसासी स्याम।
जाकी तानन्हि काननि परसत घूमत मन करट काम।
आन हाथ आन पाइ हूजियत कैसो धाम अरु कैसो काम।
आनँदघन रोम रोम छाइ होइ ब्यापत बिरहा-घाम॥

सारंग] (१८७) [मूलताल

सनमुख चाहन दौं चित चाहै लाल निगोड़ी रोकनि आनि।
मोहन-रूप माधुरी पान करन कौं नैननि बानि।
घूँघट कानि कान ल्यौं सजनी चपजी जिय मैं अति अरसानि।
रीझनि भिजए प्रान-पपीहा आनँदघन रसखानि॥

मल्हार बिहाग राग] (१८८) [मूलताल

राधा माधौ बिहरैं बन मैं।
हरी भरी कुंजनि जमुनातट फूले फूलें मन मैं।
मदन-केलि-सुख-पगे जगमगे जगी सकुनई तन मैं।
सरस-परस तन घन परसत आनँदघन भींजे पन मैं॥

भैरों] (१८९) [इकताला

प्रान मेरे तुम संग लागि रहे ब्रजमोहन।
इतने पै बिरह मैं जीवति ये अपराधी तजत न गोहन।
सब बिधि तुम्हैं तुम्हैं चाहति हौं स्याम सुजान सुभाय के सोहन।
अपने पपीहनि राखि लीजियै आनँदघन पिय बिरह-बिछोहन॥

१८७—कानि—इज्जत (लज्जा)।

सावंत] (१९०) [इकताला

चुनरिया भीजन लागी परे कौन रसबार ।
रंग रहै तो कहियै लालन भजौ न कानि अनवार ।
ब्रजमोहन जू मोहन छाँड़ौ गाँठे बाँधे सरस सवाद ।
आनँदघन हठ घमँडनि छुटि छुटि घेरौ जौ मन बाद ॥

एमन बिहाग] (१९१) [चरचरी चलती

मुरली कौन रंग सौं बाजै ब्रजमोहन बनवारी की ।
जाकी धुनि सुनि बिकल होत हिय कुल की कानि लोकलाज लाजै ॥

केदारो] (१९२) [सूलताल

तुमसौं मेरी प्रीति लगी पै तिहारी कौन ठौर ।
साँची कहौ मनभावन हाहा कहा मनावन और ।
मोही मैं जौ औरनिहूँ सौं तौ मोहिय तिनहूँ की रौर ।
आनँदघन पिय अचरज-भूषन रसिक-छैल-सिरमौर ॥

(१९३)

सबतैं न्यारो है हरि मीति ।
रे मन मद-विकार-भरयौ तू निबरि मैल कौं मीति ।
निज सरूप सौं सम्हारि छूटि लगि भूलनि भलैं भुलाव ।
औसर है हारी जिनि हारै दाव दैन को दाव ।
चेतन तैं जड़ भयौ संग-वास अजहूँ तजत न संग ।
तन तैं निष्काम विदेह देह धरि रचि आनँदघन रंग ॥

सारंग] (१९४) [चंपक

कान्ह कितेक दिननि तैं याही डगर डोलिबौ लयौ है ।
तुहूँ देखियति अब तब ठाढ़ी ओट अटा कौं जान्यौं नेह नयौ है ।
ऐसी बतियनि दुरति कहाँ लौं मोहि कछूक जनाव भयौ है ।
दरसौ परसौ बरसौ सरसौ आनँदघन उनयौ है ॥

[१९०] अनवार = कालगू बान । गाँठे = पचच गए । [१९२] ठौर = ढंग । रौर = हलचल ।

नट] (१९५) [चंपक

मनमोहन प्रानप्यारे मेरी अँखियनि हिलग परी ।
रोके रहति न घूँघट पट की ओट चटपटी खरी ।
बिन देखें कल पलकौ नहीं धरैं लालच रहति भरी ।
आनँदघन पिय कितहू लागे इन की सुधि बिसरी ॥

(१९६)

जयति जयति नरसिंह प्रह्लाद आरतिहरन बराह बिपुल
बल बिनोदकारी ।
पूरन प्रताप आरतम-बिहंडन खंड खंडनि प्रचंड उग्र तुंडचारी ।
सर्वेश्वर सर्वदा सुहृद सम समर्थ सम्यक सुतंत्र साक्षिधारी ।
सत्यसंकल्प - संदोह संसर्ग संग्राम जृंभा असुरसंघहारी ।
अरुन अति तरुन लोपम तरनि बरन वर लोचमोचन त्रिलोचन बिहारी ।
सुर सनक सुक स्वयंभू संभु संतुत महामंगलकारन अभय भारी ।
बंदन करौं कृपाधाम अभिराम पद भूभार हारन अटल मुरारी ।
तृपित जन दुखित परितोष पोषन भरन आनँदघन अखंडित बिहारी ॥

काफी गाइसी] (१९७) [अड़ताल

गुन गाइ लै गोकुलानंद के ब्रजचंद सुखकंद सुछंद के ।
सकल रससार स्रुतिसार मोहन महा आधार सनक सुक संद के ।
मंगल मुकुटमनि मनोरथ-कल्पतरु उदार अति अद्भुत अमंद के ।
ललित लीला-बलित संपदा-संकुलित अतुल जग अमल जगचंद के ।
क्रीड़त सदा सुहृद - संग जमुनातीर लड़िले जसोमति नंद के ।
कृपाघन - मूल आनँदघन अनुकूल हरन दुख - द्वंद भ्रम-फंद के ॥

सारंग] (१९८) [चौताला

श्रीराधा - चरन करि मन ! मेरे बंदन ।
मोहन मधुप भरयौ अभिलाषनि रहित जोत मकरंदन ।

१९७—छंद-हंस (मतना) ।

[१९६] तुंड = मुख । संदोह = समूह । [१९७] संद = सनंदन ।
[१९८] श्रीरा० = राधा ।

बनमाली रतन-सिर-मंडन जगमगात दुति अदित अमंदन ।
नैन पपीहा लौं आनँदघन रटत निरंतर छंदन, गति स्वच्छंदन ।।

सधा] (१९९)

जब जब सुधि आवै मोहन मनवारी की तब
तब तन निकसि जाइ ।
कहा रहति दरसन हौं पर मैं यासौं यौं न समाइ ।
मुरली-भनक दसौं पैं सतावै आन दसा होत आन पाइ ।
बिरह-घाम ब्यापत अति मो पर आनँदघन मँडराइ ।।

गौड़ी] (२००) [सूलताल

तूँ जब चाही री मुसिकौंहीं अँखियनि तब तैं उन मन मानौ ।
मोहन रसिकराय रसनागर सब ही बिधि सुखदानौ ।
प्रीति घटै चित चोप-रंग घटै सो कीजै सुनि सुघर सयानौ ।
आनँदघन पै तासौं हित मति चातक तैं अधिकानौ ।।

मसान] (२०१) [चरचरीताल

गोरी सुरँग सुही चुहचुही निपट बहिरैं राधा गोरी ।
साँवरे-सरस-कोर कपोलनि हिलि मिलि झिलमिली खिलौ
झूलैं जोबन-उमंग-भोरी ।
नथ के मुकता पानिप-भरे भाल पै दिपति लाल बेंदी मधुर
अधर बोरी-रचनि उघरि करति चित की चोरी ।
आनँदघन पिय को हियौ तोरी - कसनि गसनि बसौ
लंक लचक संक धक भरति हगनि भरी री ।।

राग मल्हार] (२०२) [चौताला

कान्ह की बँसुरिया रंगनि बरसै ।
राग अमृत की नवल घटा घमँडी अनुरागहि सरसै ।
संकीर तानें तेई चपला की चमकैं धुनि-ब्यापनि धुरवा-गन दरसै ।

२०२—बँसुरिया—मुरलिया (जजना) । रंगनि—नाद । दरसै—परसै (वही) ।

[१९९] बसौं=पड़ी रहती हूँ । [२०१] कोर=किनारा । [२०२] संकीर = संकीर्ण ।

मोहन मादक मधुर कहा रसनै आनँदघन पिय के अधरनि परसै
याहि सुनि मुनि क्यौं न हियरा तरसै ।।

आसावरी] (२०३) [चंपकताल

भागी रैनि जागे री ये खिसौंहें नैन हरिमग हेरि ।
ब्रजमोहन अवधि बदि लुभानै पायौ कबहुँ न यौं चैन ।
कहा करौं मन क्यौंहू न समझत बनहि दरस दुखदाई मैन ।
आनँदघन पिय चौंकनि छाए भाए अजौं उत तैं न ।।

राग केदारो] (२०४)

मुरली मेरेई गुन गावै ।
सुनि री सखी स्यामसुंदरि क्यौं न महारस पावै ।
हौं ही भई बाँसुरी उनकी याही तैं अति भावै ।
अतुल प्रेम के भेदभाव को यौं कहि कौन सुनावै ।
याकी अकथ कथा है हेली ज्यौं भति गतिहिं घुमावै ।
फिरि आनँदघन पिय त्यौं मेरेई प्रानपपीहनि तावै ।।

राग धनासिरी] (२०५) [चंपकताल

नंदनंद जिय मैं बसैं आखें देख्यौई चाहैं ।
चोंप चटपटी की गति आँसहीं अटपटी खिन मानौ ये कराहैं ।
दसा हौं ही जानति जैसें चूकसि उठति प्रीति-परेखनि गहरे याहैं ।
वे आनँदघन प्रान-पपीहनि को सुधि भूलें बरष कहूँ नाहीं ।।

टोड़ी] (२०६) [चौताला

तेरी निकाई लोही दई है बिधाता राधे रूप रती भरिपूरि ।
रति रंभा सची रमा उमा आदिकनि के गरब डारे री चरननि चूरि ।
रसिक - मुकटमनि ब्रजमोहन मनमानी जानी बखानी
बेदनि महिमा भूरि पदवी परम दूरि ।
आनँदघन के प्रान-पपीहनि रस-संपति-दैनी जिय की जीवन मूरि ।।

२०३—हरि—पूरि (ब्रजना) ।

सारंग] (२०७) [चौताला

तुम्हरे सुख सुखी कब ह्वै है मन ।
सकल ठौर तें बुधि एक तुमहीं सौं ठहरि है पन ।
ब्रजमोहन प्यारे किन मोहौ रँगीले रिझवार ब्रजजन के धन ।
अपनो पपीहा पतिजोगी पोषौ रसमय आनँदघन ॥

देसी] (२०८) [मूलताल

मुरली मैं मोहन मंत्र बजावै कान्ह छबीलो छैल ।
ब्रजगोरिन के गोहन लाग्यौ अटक्यौ न मानैं अरैल ।
प्रेम-लहर तन मनहिं घुमावै गाढ़ निगोड़ो लिपट ब्रिसैल ।
रोम रोम आनँदघन घमंडनि बिरह-व्यथा की फैल ॥

बिहागरो] (२०९) [चंपक

भावती बनितनि लगि लगि छतियनि लपटि रसभरे रसाल ।
जोबन रूप अनँग-रंग-रले मदमाते करत रँगीले ख्याल ।
छैल छबीले रसिया मोहन अभरनि जगमगे लाल ।
आनँदघन रस-भीजे रीझें बिलसत हुलसत गाढ़नि चौंपि बिसाल ॥

कालिंगड़ा ख्याल] (२१०) [पंचम सवारी

कान्ह बाँसुरी बजाइ रह्यौ, सुनि सुनि कैसें करि जाइ रह्यौ ।
मनमोहन मुरलि आनि अरैं, कुलकानि सखी तब कौन करैं ।
बन बेलिन मैं धुनि छाइ रहै, मन गति ब्रज ही अरुझाय रहै ।
घनआनँद यौं बरसौ नित है, मेरे प्रान-पपीहनि सौं हित है ॥

दोहा] (२११)

सुधि आएँ पिय मिलि गिलनि, यौं याही मन माँहि ।
सरसौं सो फूलति सखी, देखत फूली नाँहि ॥

ऐमन बिहाग ख्याल] (२१२) [पश्तो

असी दिलजान ढोलन पाया, रब्बे कीता साडे दिलदा भाया ।
ब्रजमोहन आनँदघन प्यारा पपीहा दे पर आया ॥

२०८—मानैं०—हरमाले (पाठान्तर) ।

सारंग] (२१३)

कहाँ जमुना याँ काय कौं रहिये ।
तेरे तीर बिना या मन की पीर कहाँ निधरक ह्वै कहिये ।
ब्रजमोहन बिन यह तेरो तट औरैं भयौ आय कैं चहियै ।
नव तमाल-तर आनँदघन भए अब ऐसैं बियोग-भार दहियै ॥

रामकली ख्याल] (२१४) [सवारी

निसदिन लागी है औसेर तुम्हरे दरस की ब्रजमोहन प्यारे ।
आनँदघन पिय कान करौ किनि प्रान-पपीहनि टेर ॥

धनाश्री ख्याल] (२१५) [मूलताल

क्यों मिस्यौ मैं सैंठो बैरी मानू सो निबाहि लैंवीं ।
दरस दिखावौं ना तरसावौं आनँदघन प्यारिओ प्रान-
पपीहों दा की आहि लैंवीं ॥

गौरी ख्याल] (२१६) [मूलताल

अब तौ लागी लगनि तुम सौं है ।
तुमहिं लगी ब्रजमोहन किनहूँ अपनी अपनी गौं है ।
तुमहिं बहुत तुम एक हमारैं गति चकोर ससि कौं है ।
आनँदघन पिय बरसि सिरैयै हिये परेखनि दौं है ॥

गौरी] (२१७) [रूपताल

छवि-सरन तकतहीं मरन-भय भाजै ।
हरि-सरन प्रान कौं परम अवसान-पद जहाँ सुख-संपदा संतत बिराजै ।
धाम धामी और दाम-सेवा-समय एक रस निरंतर दुंदुभि बाजै ।
देस अद्भुत महाविभव कहियै कहा आनँदघन घमंड
अमित छबि छाजै ॥

सारंग] (२१८) [चौताला

बंसी की धुनि सुनियत याही ओर आए निकरे कान्ह किसोर ।
नैना उतहीं लागि रहे गए गाय-चरावन भोर ।

२१६—तुमहिं०—छिन-छिन कल न परत बिन देखैं (पाठान्तर) ।

मन तन संग सदाई डोलत गिरि बन कुंज खरिक अरु खोर ।
प्रान-पपीहा आनँदघन हित आँखिनि भए हैं चकोर ॥

परज] (२१९) [इकताला

ब्रजमोहन प्यारे की मुरलिया बाजि रही ।
सोवन देति न सोवति बैरिनि ऐसी टेक गही ।
तानिनि बानिनि प्रानसि बेधै निरदय निपट चही ।
इतने पै धुनि सुनियै भावे गति नहिं जाति कही ।
मेरी सी गति सेवियै किधौं औरनि हू की यही ।
बन कै बेर परी तरसति हौं आनि बनी सु सही ।
आनँदघन पिय बस करि राखे पूरन प्रीति-नही ।
गरब-भरी गरजै सौ लेखै रस की रासि लही ॥

राग धन्यासिरी] (२२०) [चौताला

ऐसैं ऐसैं मुरली बजैबो कान्ह कहो कब तैं नाँच्यौ है ।
तान किधौं बान बेधि जिवावन विषम बान साँच्यौ है ।
अबला बिचारीनि के मन हरन-करन कौं पन बाँध्यौ है ।
आनँदघन बनए ही रहत तुमहूँ बस याकैं अरु मन नौ मद आँच्यौ है ॥

सोरठ] (२२१) [चंपकताल

उनींदी अँखियनि छबि फबी है ।
चौंधनि भई है जगार भावते संग संग मैं झपकि झपकि
उघरति इधारी ही नचि लसनि आरस दबी है ।
अधरराग-अनुरागीं पागीं इनकी उपमा बनति नबी है ।
आनँदघन मिलि भामिनि दामिनि अति रस-ढरनि ढबी है ॥

बिभास] (२२२) [चौताला

तिहारी कौन टेव है प्यारे सदा तैं ऐसैं हीं करि आए ।
जानत नाहिं पराई कनावड़ गौं हौं गौं ललचाए ।

[२१९] नही=नथ दी, गूँथ दी । सौ०=सौ प्रकार से । [२२१] जगार=
जागरण । नबी=नवीन । ढबी०=ढकी है ।

इन बातनि मोहि भले नहिं लागत अपनी सौं बहुतै समुझाए ।
चाली मैं चरजोरी कहत हौं आनँदघन पिय नई रसिकई छाए ॥

आसावरी देवगिरी] (२२३) [इकताला

राधा मोहन को यह नेह निपट नवेलो है जितहीं ।
बिछुरि मिलत मिलि बिछुरि परत हैं चाह-उमाह-गाढ़े चितहीं ।
तांको जोट अनूप रूप गुन सुनी न कबहूँ देखी इतहीं ।
आनँदघन रसरंगनि बरसत नये बने ब्रजबन जित-तितहीं ॥

टोडी] (२२४) [मूलताल

आजो री तेरे अधरनि अंजन-रेख खुली है ।
नवल केलि रस-केलि अलित लट बिमल कपोल झुली है ।
बस करि राखे रसिक बिबस कै अतुल अतन कैं तेह तुली है ।
आनँदघन पिय रीझनि भीजे दर लगि लगि न झुली है ॥

सुघ] (२२५) [सूल

ततथेई ततथेई थेई ततथेई तत तेथेई तेथेई ताथुंगा थुंगा ततथेई थेई ।
उघटत रसिकराय नटनागर नव नागरि सुधंग सौं लेई ।
तान गान संधान मान संगति रीति प्रमान अति जेई ।
आनँदघन पिय रीझ भीजि भुज भरि मनिमाल वारनै देई ॥

आसावरी] (२२६) [इकताला

मिहँदी रचनी लगि लसी है नवेली कै हाथ ।
छुटे बार मुख ओप उदौही अलि गावत गुनगाथ ।
ब्रजमोहन की नवल दुलहिया सोहति ललित सहेली साथ ।
आनँदघन पिय उमगनि बनए भरत सुबल कौं बाथ ॥

पूरिया धन्यासिरी ख्याल] (२२७) [चलती चरचरी

हमैं न बिसारि दीजै हो हा हा हा हो सनेही स्याम ।
जिय धरिबे कौं न ठौर कहूँ और तुम ब्रजमोहन हौ यदु-
नायक साँच यह प्यारौ नाम ।

[२२४] अतन=काम । तेह=वेग, उमंग । लगि=चौंककर । [२२६]
रचनी=रचनेवाली । सुबल=एक सखा । बाथ=अँकवार ।

मन भावरौ न क्यौं हूँ समझै पावै नहीं तनकौ बिसराम ।
आनँदघन पिय प्रान-पपीहा आस लागि जीवतु हैं
निसिदिन रटत तिहारो नाम ॥

अड़ानो] (२२८) [मूलताल

स्याम घन तेरिये घों घुरि बरसै ।
घुमरि घुमरि मुरली-गरजनि मैं सुर के धुरवा सरसै ।
रमझ्यौ रहत रैनिदिन राधे रसमूरति चातक लौं तरसै ।
आनँदकंद नंदनंदन त्यौं कौंधि कहूं दै दरसै ॥

सारंग] (२२९) [चौताल

घमंडि रह्यौ री बन बेनुनाद कैधौं मदन-दुहाई ।
सुनि थकित सरिता समीर थकित पखान जड़ जंगम गति पलटाई ।
अबला बिचारिन कौं कहा धीरज ऐसें कैसें आवति रहाई ।
आनँदघन मकरंद द्रवित द्रुम सारँग सरस बजाई ॥

सारंग] (२३०) [चौताला

जो सुख होत है इन अँखियनि ब्रजमोहन को मोहन मुख चाहि ।
सो एई जानति कै श्रौ कैसें कै कहियै ताहि ।
अंग अंग की झलक ढलक लखि मैन मनहिं हारत अवगाहि ।
इतने पै आनँदघन पिय की मुरली-धुनि सुनि कितहूं की सुधि काहि ॥

आसावरी पंचम] (२३१) [मूलताल

मैं वारी मैं वारी वारि जावौं, वो वो वो ।
आरज असाकी सुनि ब्रजमोहन सोहन मुख दिखलावौं ।
तुझै माजू असौ प्यारा जो निझौनी कैधौं दिल परचावौं ।
प्रान-पखावौं है आनँदघन रिमि झिमि रिमि झिमि आवौं ॥

[२३१] असावौं=हमारी । दिखलावौं=दिखाइए । माजू=आप ।
असौ=हम लोगों । कैधौं=कैसे । आवौं=आइए ।

गंधार राग ख्याल] (२३२) [मूलताल

ब्रजमोहन सौं प्रीति लगो है अब तौ मेरी ।
कहा करैगी सासु ननदिया रहति न इनको घेरी,
आनँदघन रस भिजवनि हेरी ॥

पंचम ख्याल] (२३३) [मूलताल

अब तौ जानी है जू जानी ब्रजमोहन सुखदानी ।
मेरो तिहारो भाग ननदिया दुरि किवाँ पहिचानी ।
चौंकत भई रहति है अरिनि जौऊ निकसियै पानी ।
वाकैं उर सूखति आनँदघन इन के भार नकवानी ॥

सभा राग] (२३४) [ताल

ए री रूप-अगाधे राधे, राधे राधे राधे राधे ।
तेरे मिलिबे कौं ब्रजमोहन बहुत जतन हैं साधे ।
तलफैं निसिदिन लगी रहै जक तू न धरति पल आधे ।
आनँदघन पिय चातक जीवनि हा राधे आराधे ॥

धनासिरी] (२३५) [चंपक

कौन पै गावत गनेस बनै हो ।
गुन अनंत महिमा अनंत नित निगमौ अगम भनै हो ।
जो जाको अनुमान जानमनि मानत मोहिं मनै हो ।
चातक चोंप चटक त्यों चितैबो वंचित आनँदघनै हो ॥

ललित] (२३६) [मूलताल

रसिया को रस लै आई है, तेरी अँखियनि मैं छकि छाई है ।
अति रतिरँग-बढ़वारे भए की मुख सुख-ओप सुहाई है ।
भूषन-बनक बनी कछु औरै अँग अँग नवल निकाई है ।
उघरि परी आनँदघन घमँड़नि कैसें दुरति दुराई है ॥

विभास] (२३७) [इकताला

सुनौ ब्रजमोहन छैल सुजान निबाह इन बातनि क्यों होइ ।
औ कबहूं कछु मिस करि आइयै तुम न सजन सुख भोइ ।

२३३—भार—भर (सतना) ।

मोहि कहा सिखिबो नहि चहियै ऊबत हौं मन इहन घँघोइ ।
आनँदघन रसरासि सरसियै अति न भली है खोइ ॥

मलार] (२३८) [सूलताल

आयौ आयौ चौमासो आवन सौधे हैं घन स्याम ।
मेरो क्यौं चनहीं सौं लाग्यौ जिनको है मनजीवन नाम ।
अवधि-आस लगि बहुत बचे हैं तचे प्रबल अति बिरह-घाम ।
आनँदघन त्यौं प्रान - पपीहा तकत आठहू जाम ॥

रामकली] (२३९) [रूपताल

हरिचरित - सुरसरित - मज्जित सुबानी ।
महामोहन मधुरस - बलित ललित अति सुभग सुछंद
सुधि काव्य - कुल-रानी ।
मदन सोभासदन उरस महिमा बरस परस सर्बार्थदायक महत मानी ।
भजनरति - रमन आनंदघन भावकी बिसद अद्भुत
अखंडित जगत जानी ॥

गंधार] (२४०) [मूलताल

ऐसें आरती करौं ।
सुथिर थार हिय बिसद बीच लै प्रेम-प्रदीप धरौं ।
उज्जल दसा सनेह-सँजोई जोति जगाइ ढरौं ।
भाव-पुहुप प्रतीति सौं संजुत वारनि वार अरौं ।
मोहन-मुख जगमगनि पानि पै निरखत हरष भरौं ।
आनँदघन उमाह आरति कौं हरिहि बढ़ाइ हरौं ॥

बिलावल] (२४१)

तुम्हैं लियैं हौं कहाँ फिरौं ।
ललित धीर बलि बीर जानमनि छिमासील अनखाइ भिरौं ।
हौं जगदीस कोऊ पूजत माया को गसि हेरि हिरौं ।
असुचि असाध कामना-किंकर चिनि क्यौं इन आस घिरौं ।

२३९—सोभा—छबि (बदला)। तदर्जि—रमनि (वही)।

मन बुधि चित अहंकार एक तुम करहु कृपा कितहूँ न फिरौं ।
आनँदघन घन पालि पोषियै पायनि पै गिरि धरनि गिरौं ॥

बिलावल] (२४२)

दुसह दुरासा दूरि करौ ।
अंतरजामी अजित कृपानिधि हारि परयौ हहरानि हरौ ।
अपनोई बिसवास दीजियै अधम-उधारन बिरद भरौ ।
आनँदघन घन पालि पोषियै दीन पपीहा ओर ढरौ ॥

आसावरी रामकली] (२४३) [चंपक

भुरहरैं ही कान्ह कहौ कित भूले ।
रैनि - रमसमे नैन बिराजत मनहुँ कोकनद फूले ।
रुचिर अधर मसिरेख रही लगि अति रतिरस अनकूले ।
आनँदघन घुरि घमँडि सजल भए अलकनि धुरवा भूले ॥

धनासिरी] (२४४) [चंपक

हमारी इतनी बिनती चित धरियै ।
अपने दासनि के आसनि कौं काहू बिधि कछु करियै ।
सुनहु रसीले कान्ह छबीले तनिक दया त्यौं ढरियै ।
आनँदघन हौं प्रान - पपीहैं पोषि पालि लै भरियै ॥

कान्हरौ] (२४५) [इकताल

अपनो ओर राखियै ऐसौ ।
यह मन मंद अभंद नंदसुत जानि बूझि जग भटकत जैसौ ।
सब दिसि तैं हारि हारयौ करौ हरि आसा लागि द्वारि परयौ जैसौ ।
आनँदघन हौं प्रान-पपीहै पालि पोषि राख्यौ पालौ घन जैसौ ॥

रामकली] (२४६) [चंपक

तिहारी आस लागि जग जीजै ।
अतिहीं अधम अनाथ कृपानिधि आप उचित सो कीजै ।
ऐसौ कौन भेंट है माधव जो लै तुमकौं दीजै ।
दीन पपीहा तुम आनँदघन एक भरोसें भीजै ॥

[२४१] न फिरौं=कहूँ न जाऊँ ।

बिलावल] (२४७)

साँगि मन ब्रजबासिन के दूक ।
तजि बिजन-सबाद छल श्रम के यहै बिचार अचूक ।
प्रान राखि अभिलाषि स्याम कौं लोकलाज दै लूक ।
आनँदघन रस प्रान-पपीहा ह्वै बन मैं करि कूक ॥

नट] (२४८) [चंपक

या मुरलिया कैसैं काम किये ।
हमारे हियरा काढ़ि लिये तानानि गुननि गाँसि गसि गसि
बिसबासी-हाथ दिये ।
निकसत नहीं भभक स्रवननि तैं नैन रहे भरि ये ।
आनँदघन रस - आसनि अब लौं चातक-प्रान जिये ॥

बिभास] (२४९) [चंपक

हरि मेरी सम्हारि हौं सैं रहैं ।
बिछुरि बिछुरि हौं जात मिले मैं पैठैं सुत गहैं सु गहैं ।
कहा भयौ भूले से रहियत मो सचेत नित हैं ।
सोए जगैं जगैं ढिग बैठे मौनहु भेद कहैं ।
पूरन पन प्रानानि के संगी सुख दै स्रम न लहैं ।
आनँदघन उदार जीवनधन अपनें सील सहैं ॥

बिभास] (२५०) [इकताला

मेरी रसना लाड़िली भई, जसुदा के लाल लड़ाइ लड़ाइ ।
लड़कि लड़कि बोलति सो लखौं अति रसरंग-रई ।
कहि न सकति या सुख-सवाद कौं ऐसैं औंड़ गई ।
आनँदघन हित चतुर चातकी नित चित चोंप नई ॥

२४७—रस०—बिंस जिवन (सतना) । २४९—मैं—मैं (सतना) । पैठैं—गहैं । भेद—बात । पूरन०—प्राण आधार सदा के संगी । जीवन०—जगजीवन (वहै) ।
२५०—लड़कि०—लड़कि लड़कि उनहीं सौं बोलति (सतना) ।

मालकोस] (२५१) [चौताला

अंतर मैं बैठे कहा दुख देत निकसि क्यौं न
आवत अँखियन आगैं ।
ये तुम्हारे मुख देखन कौं जागि जागि अनुरागैं ।
इनकी दसा बनें गहि नित देखैं हैं नहिं पल पल जब त्यागैं ।
आनँदघन बिन चातक चोंपनि प्यासमरी पन पागैं ॥

सुघराई कल्यान] (२५२) [रूपकताल

पन-पूरन प्रेमी प्रबीन पुनीत पुरुषोत्तम परमानंद ।
चीरहरन चिंतामनि चतुर चमतकारी अचरज-चरित सुछंद ।
मोहन मुरलीधर मंगल मुकटमनि महामधुर मूरति मदन कहा मंद,
अद्भुत अखंडित आनंदघन रसकंद ॥

रामकली] (२५३) [झूलताल

हो जी हो जी प्यारा जी मन भाया ।
नँदराजकुमार भलाँ रा माता आया ।
म्हानै तो प्यारो आँसू मताबै थे औठैं बिलमाया ।
अधरौं अंजन माथे चलतौ लाग्या छै म्हारा सुहाया ।
सबर्या रैनि आनँदघन बरस्या पगाई म्हां पर छाया ॥

रामकली] (२५४) [चंपक

तिहारो रस कौन बखानि सकै ।
रस ही रस जो हरै महा रस तौ मति छकनि छकै ।
रसबस ह्वै रससों रहै हिय रसना लागि सुजस-जकै ।
आनँदघन ब्रज-मधु-भाव की घमँड निहारि थकै ॥

ललित] (२५५) [चाचरी ताल

नंदकुमार उदार मनहार कीजै हौ हमारी सम्हार ।
अंतरजामी सब सुख स्वामी तुमहीं लौं है पुकार ।

[२५३] भलाँ रा=जसोदा के भव । आँसू=स्मृति । थे=आप । औठैं=यहाँ ।
चलतौ=महावर । सबर्या=सब । पगाई=प्रभात में ।

दीन हीन बलहीन जानि कै माँगौं लाभ गुहार ।
दीन-पपीहनि के आनँदघन जीवन-प्रान-अधार ॥

बिलावल]　　(२५६)

बँसुरिया सौति तें अधिक दहै ।
मन धन लियें फिरति मोहन कौ यह गति कौन कहै ।
देखन हूँ को चोर, कानि बस को ये मूल महै ।
परी न रहन देति घर हू मैं साँसनि गनति रहै ।
चाहति कियौ कहा इतने पै कल पल एक न दै ।
आनँदघन पिय बसौ हिये पै बैठी बैर बहै ॥

सारंग]　　(२५७)　　[चौताला

लहकन लगी री बसंत-बयारि मन बनवारी त्यौं लग्यौ बहकन ।
जानौं न आगैं कहा करिहै जब लग है पलास-बन दहकन ।
मदन मरक कबहूँ कि काढ़िहै औरौ पुहप लागे बरन बरन महकन ।
आनँदघन पिय आए मिलहु इत कुहकि कुहकि लागी कोकिला गहकन ॥

श्री वृंदावनी सारंग]　　(२५८)　　[सूलताल

सुनहु सयाने स्याम तुमसौं कहति सरोतर ।
ऐसे ढीठ ढिग ढुकौ ताके मोह निहारौ गोतर ।
ये रसवाद भले न भावते करियै वही होइ जो होतर ।
आनँदघन पिय नई उमँग मों देत दरसरधौं कीजत अजौं अजोतर ॥

पूरबी]　　(२५९)　　[सूलताल

न जानौं कब आवैंगे हिय उमग्यौ है औसेरनि ।
साँझ परी सुनियत न अजौं वह कानन पिय टेरनि ।
मुरली बजाइ आइ मो द्वारैं नेहभरी अँखियनि हँसि हेरनि
आनँदघन अभिलाष उमँग की बाढ़ी घेरनि नरकै कहौं भौं सबेरनि ॥

२५६—बहै—चहै (सतना) ।

[२५७] मरक काढ़िहै=बदला लेगा । [२५८] सरोतर=साफ, स्पष्ट । गोतर=गोत्र की । होतर=होने योग्य । दरसरधौं=लालसा । अजोतर=स्वच्छंद ।

हमीर]　　(२६०)　　[चंपक

उन्हें कहा मेरी सी चटपटी है, कान्ह सदा के निठुरके ।
ये रसलोभी आहि पाहुने को जानें पै घर के
अपनी गौं उठि गौहन लागत मजलैंस छबीले भरे अर के ।
आनँदघन कहूँ अवधिनि कौंधत कितहूँ बादरे भर के ॥

कान्हरो]　　(२६१)　　[चंपक

सुख तौ एक नँदनंदन तुलराएँ ।
कौन काढ़ि सकै हाल हिये जो मोहन-मूरति आएँ ।
भूलि जाति सुधि हू की सब सुधि रूप-छटा दरसाएँ ।
आनँदघन रस प्रानपपीहा प्यासनि पियत अघाएँ ॥

भैरो खयाल]　　(२६२)　　[चरचरी ताल

अँखियाँ भई हैं दरस-पियासी आव रे जियज्यावन प्यारे ।
हिय उमग्यौ है रहत न रोक्यौ साँवरे ब्रजचंद इहाँ रे पधारे ।
जब तें सुनी है मोहन मुरलिया तरफरात से प्रान बिचारे ।
दीन पपीहनि ज्याइ लीजियै आनँदघन रसरासि सुधारे ॥

बसंत]　　(२६३)　　[चौताला

वृंदावन मधि मधु रितु आई अति छबि पाइ सुहाई ।
कुसुम कुंज सुखपुंज मधुप-गुंज कोकिला-सुर की झाईं ।
बिलसत हैं अपनी रुचि संपति दंपति के बिनोद अधिकाई ।
आनँदघन रस-उमँड घमँड सौं मुरली-तान बजाई ॥

बसंत]　　(२६४)　　[इकताला

प्रगटी है बसंत-गुन-सोभा आबौ री बन देखन जैयै ।
बरन बरन फूलनि के भूषन रचि रचि रुचि सौं राधा को सिंगार

२६०—छै०—गौहन हैं भरे अरबर के (सतना) । बादरे—भर के (वही) ।

[२६०] निठुरके=बेलटके । अर=मद, हठ । बादरे=बादल । [२६३] झाईं=प्रतिध्वनि । [२६४] सोभा=अंकुर ।

गूँथि मालती-माल मनोहर ब्रजमोहन कौं लै पहिरैयै ।
आजु मनोज-पंचमी सुभ दिन रंग बढ़ैयै हिलिमिलि आनँदघन बरसैयै ॥

हिंडोल] (२६५) [सूलताल

तू मन मानी है उनकैं तौ मन मान्यौ है मान ।
सो मन भायौ करति क्यौं न भिलि पिक-पुकार भरि कान,
रितुपति आयौ देग निसान ।
मदन सहायक सखी संग ही लै कर तीखे तीखे बान ।
सैन रैन पराग धूँधरि लखि भजिये वेगि सुजान अकिल
आनँदघन पिय प्रान ॥

ख्याल हिंडोल] (२६६) [चलती

स्याम सौं रँगीली राधा खेलैं बसंत बरसि सरसि दरस परस राग रंग ।
गावति तान तरंग उमंगनि आनँदसदन बदन लसनि
भृकुटि नचनि मान भंग ॥

ललित] (२६७) [सूलताल

छतियाँ दलमलै गुलाल अनोखौ खेल सीख्यौ नँदलाल ।
कैसैं कै निकसियै गैल गरबारैं अचकौ उचकि करै बनमाल ।
घात लगाएँ फिरै रैनि दिन फागुन लाग्यौ किधौं जँजाल ।
मोही सौं कहि कहा बैर है औरौ बसति बहुत ब्रजबाल ।
मेरेई नगर मचावै चौचँद गावै निपट उघारे ख्याल ।
आनँदघन घुरि लाजनि भिजई कासौं कहौं सखी ये हाल ॥

देवगिरी] (२६८) [सूलताल

गोकुल गरबारैं होरी खेलैं रंगभीनो ब्रजमोहन छैल ।
नवल बधुनि कौं तकि तकि भिजवै रोकि रहत पनघट की गैल ।
उघरि उघारैं गारीं गावै तारी दै दै हँसत हँसैल ।
आनँदघन अचगन करि छाँड़ि जोबन-मातो निपट अरैल ॥

२६५–रैन–रैन (लहरा) । २६७–कैसै०–निकसि न सकिये (सतना) ।
सखी–सद (वही) ।
मनोज०=बसंतपंचमी । उस दिन कामदेव की भी पूजा होती है ।

रागनी धनासिरी] (२६९) [सूलताल

हो हो होरी हो हो होरी खेलत नीकौ रंग रह्यौ है ।
राधा - मोहन हिलनि - मिलनि - रस कैसैं परत कह्यौ है ।
नित यह फाग सुहाग-भाग नित अवसर लाहु लह्यौ है ।
आनँदघन ब्रजबन जमुना-तट सुखसागर उमह्यौ है ॥

अड़ानो] (२७०) [चंपक

झूलत फूल - डोल फूल - भरे दोऊ ।
राधा-मोहन गुन-रूप-रासि पटतर को नाहिंन कोऊ ।
जमुना-तीर सघन बृंदाबन अति कुसुमित हुलासमय सोऊ ।
चैत-चंद सुखकंद चंद्रिकनि जगमग जगमग होऊ ।
महामोद-परिमल बिनोद-भर महकत मलय-समीर-समोऊ ।
मधुर गान कल तान आनँदघन हिय पर मनहि बिलोऊ ॥

पूरब] (२७१) [सूलताल

ऐसी होरी ऐसें खेलौं उघरि उघरि ब्रजमोहन सौं मनमानी ।
एक को कसरि काढ़ि सब तौकैं लेउँ भावतो दाव चाव सौं
अब मैं यह जिय ठानी ।
कानि करौ कौन की सजनी भई बहुत दिन थौं नकबानी ।
आनँदघनहि भिजाऊँ सौं हौं तेऊ भए फिरत रसदानी तनहूँ परिहै जानी ॥

पूरब] (२७२) [इकताला

गुजरिया तू रँगराची मोहन कैं अनुराग ।
होरी मैं उनहूँ को तोसौं नीको लागो लाग ।
छूटे बार मुख-ओप अनूठी जगमगि रह्यौ है सुहाग ।
आनँदघन चित चतुर चातकी पगी प्रेम-पन - पाग ॥

बिभास] (२७३) [इकताला

सिहारो कान्हर कौन सुभाव ।
मोही सौं जब तब औरन हौं सब मिलि करैं बनाव ।

२७१–ऐसी–ऐसें (सतना) । चाव-भयौ । हौं०–वृषभानुजा मोंची (वही) ।
[२७१] ऐसी=इस वर्ष । एक=गत वर्ष ।

कहा भयौ जौ हारी आईं तुम अटकरत अटपटो दाव ।
नयौ खेल कितहूँ तैं सीखे हाँसी को सतिभाव ।
हँसो ठठोलं छठैं छमाहैं तुम्हैं नित नयो चाव ।
आनँदघन कोऊ अखिं पै हा हा टारि किन जाव ॥

विभास ख्याल] (२७४) [चरचरी

तुम उनहीं सौं होरी खेलौ जिनसौं खेलि रहे हौ लाल सगाँहीं ।
नैन गुलाल भराए अंजन रस को रैनि जगाँहीं ।
इतने पै मो तन मुसिकत हौ धुर तैं निपट लजाँहीं ।
घर आए को बरजैं बीड़ियें कै भरी पायँ लगाँहीं ।
आनँदघन अब उघरि नचे हौ अपनौ यौं बरसाँहीं ॥

ललित] (२७५) [मूलताल

आए नैन गुलाल भराएँ, होत कहा है डीठि दुराएँ ।
सौंधौ-भोर-चतुरई ठानत, भोर गँवारि तिहारे भाएँ ।
अंतर को उघरनि सब इन है काच-घटी-रँग उपमा पाएँ ।
आनँदघन रसमसी धुरनि की अब लीजैं निज तोरि बलाएँ ॥

मालव] (२७६) [मूलताल

सब रँग होरी खेलौं तुम संग ।
मोहि तुम्हैं बनि आई अब तौ मन मान्यौ है यह ढंग ।
गुरजन दुरजन कहा करैं निधरक भरि लपटैहौं अंग अंग ।
आनँदघन पिय भीजि भिजैहौं बरसैहौं गाढ़ गहिरो रंग ॥

ललित] (२७७) [इकताला चरचरी

मटकि मटकि गारि गावैं लटकि लटकि डफ बजावैं ।
मनमोहन के मन की मोहनी छांव छकी छकावैं ।
फेंट फिलक दसन-चिलक अनन दृग सिरावैं ।
अधरनि की लाली ललित लालै ललचावैं ।

२७४—भरगौंहीं—भरगौंहैं (शतक) ।

[२७३] खौलत=छेड़छाड़ करते हो । अटकरत=ताक लगा रहे हो । [२७४] धुर तैं=आरंभ से, पहले से । [२७५] सौंधौ०=सुगंध चुरानेवाला चोर ।

छुटी अलक बदन-झलक रूप-छलक छावैं ।
पानिप की ओप उमँड़ स्यामहिं सरसावैं ।
माल-झुलनि अँचरा-फुलनि अलबेली गति आवैं ।
सौभग वर लंक-लचक संकहिं उपजावैं ।
अंग अंग रस-तरंग रंगनि सरसावैं ।
आभा-दरभि रसिक छैल के नैन-मीन लिवावैं ।
भँवर-भीर सहज नार अमि अधीर धावैं ।
रसिया पिय भावना मैं निबस चोर ठगावैं ।
सखि-समाज संग लिये चाँचरि मचावैं ।
कुमुदिनी कै मंडल ससि परतर क्यौं पावैं ।
भागभरी रागभरी फाग यौं मनावैं ।
भीजि भाजि उमंगनि आनँदघनहिं भिजावैं ॥

सारंग] (२७८) [मूलताल

गोकुल गलिनि मच्यौ है खेल, बाढ़ी अति रँग-अरगट मेल ।
खेलत छैल खिलारी मोहन जोबन-छाक छबीले ।
नौकस चपल चतुर ब्रजगोरीं आईं साजि अपअपने मेल ।
गावैं चोखी ठठोली बोलैं रस की ठेलाठेल ।
चोकनि चरचनि भरनि अरु भाजनि उलटनि उमगि उमंग पगपेल ।
आनँदघन बरसत रुचि सरसत फैलि परी रस-रेल ॥

धनासिरी] (२७९) [इकताला

रसिक छैल नँदलाल खिलारो और के हम जाने ।
अब करि भए निपट हौ टैंठिक आनत नहीं आँखि तर
काहू फागुन-मद-उमदाने ।
भँवर-भाव रस लोभ फिरत हौ बौंधनि बगर दरत सँवराने ।
मसि मजीठ रंग रचे अधर दृग आनँदघन बरसाने,
तिहारे गुन नहिं परत बखाने ॥

२७९—टैंठिक-ढीठक (सतक) ।

[२७९] टैंठिक=शरारती ।

अलहिया बंगाली] (२८०) [मूलताल

नंदलला सौं खेलौं होरी ।
कैसें दुराति मच्यौ इहिं औसर उघरि परी हित-चोरी ।
रोकी रहति न सासु ननद की रहा लैहौं बरजोरी ।
प्रान-जीवन आनँदघन पिय कौं गहि राखौं मन-कोरी ॥

बिहागरौ] (२८१) [इकताला

साँवरो होरी खेलै अपनी गोरी-संग ।
जमुना कैं तट सघन कुंज मैं भीनौ प्रेम-उमंग ।
चोवा-चित्र रचत चोली पै परसत लोने अंग ।
उमँड़ि घुमँड़ि आनँदघन बरसत सरसत अति रति-रंग ॥

बुड़िया धनासिरी] (२८२) [इकताला

होरी खेलि आए लैलन मेरे रसिक छैल छिनवार ।
नैन रसमसे बैन रसमसे रूप-छके रिझवार ।
हिय खरकत गुलाल किलि काहू कैं कहूँ भई भावती जगार
आनँदघन झुरहरैं उनए बरसत रस-बहुवार ॥

ललित] (२८३) [मूलताल

ए मेरी ननदी री कहि कहा करौं ।
तेरे बीरन परदेस रमि रहे फागुन के दिन कैसें भरौं ।
इत ब्रजमोहन होरी गावै मुरली-धुनि सुनि सिथिल परौं ।
आनँदघन मोही पै घुमँड्यौ रीझि लाज सौं कौ लौं अरौं ॥

पंचम] (२८४) [इकताला

होरी खेलै छैल छबीलो मोहन साँवरो ।
रंग-रँगीलो रस-बरसीलो मोहि लियौ गोकुल गाँवरो ।
बरुनिनि सौं तरुनिनि हिय बेधत कँवलनैन चोखो नाँवरो ।
आनँदघन धुरि भिजवै रिझवै सबही भाँतिन है जिय भाँवरो ॥

केदारौ] (२८५) [इकताला

रंग-रँगीले सौं आज, होरी दाँव बन्यौ है ।
लाजौ उमँगि उमँगि खुलि खेलत जग्यौ है मदन कौ राज ।

अंग अंग सुख रंग सींज सजि सकिल्यौ है अभिलाष-समाज ।
चौंपि चाह रोमनि भींजौ आनँदघन भिजवन-काज ॥

धनासिरी] (२८६) [इकताला

कहूँ किनि होरी खेलौ रंग रहै मो संग ।
लिहारौं गुलाल फारक मौं अँखियनि ब्रजमोहन नवरंग ।
जौ मन फगुवा दै तुम आए मैं पाए अभिलाष अभंग ।
सुघरि उघरि आनँदघन बरसे इकस नहीं ये ढंग ॥

सूहा] (२८७) [चरचरी

रस राखि होरी खेलौ खिलार जाने हो जू उदार ।
आनँदघन बनए नए छैल अजू हठि हौस किरी गरहार ॥

सहानो] (२८८) [इकताला

गुलाल-भरी यूँ आई है ।
आँचरा द्वै रसमसो महा दलनि दुरि दुरि देत दिखाई है ।
ललित कपोलनि आँछूँकै पाई लालो लसनि सुहाई है ।
आनँदघन रसकेलि-कलानिधि अंग अंग रँगनि भिजाई है ॥

धनासिरी] (२८९)

फागुन बन्यौ होरी को दाव ।
मिथुना रच्यौ रंगीलो अवसर बाढ़ि रह्यौ हो चित मैं चाव ।
राधा-मोहन के हिय हिलगनि रचति हुती बहुरंगनि भाव ।
सो सब सहज उघरि आई अब दव चहुँघा चपरि चवाव ।
सखियैं रहति चौंप की चोपरि सरस खिलार सुदेस बनाव ।
बिलसौ लसौ हँसौ आनँदघन रंगै रंगै बरसौ रस-राव ॥

सावंत] (२९०) [इकताला

होरी के खेलत नाहीं पै बनि आवै यह इतराइ पै लगई ।
दामिनि तैं सौगुनी चपल चाँपनि मनभावन भरई नैंक न बरई ।

[२८६] फगुवा=फाग की भेंट, उपहार। [२८८] आँछूँकै=साफ कर देने पर, पोंछ देने पर भी। [२८९] राव=ध्वनि ।

पहिलैं कौंधन भरति चखनि मैं चौंधनि फिरि जो मन भावै सो करई ।
आनँदघनहि पपीहा करि राख्यौ राखै ऐसैं औतिनि इरमरई ॥

धेनसि] (२९१) [इकताला

गोपी ग्वाल गुपाल संग रंग होरी माची है ।
झपट लपट झपट छोरि पट झटकनि गहि झकोरि लाग्यौ
सरस औसर लखि उघरि नाची है ।
अब अपनो रीझ बूझ सब तन तकत हौं सूझ अति रस
बड़भारि सुख की सींव साँची है ।
स्यामसुंदर आनँदघन राधा कैं रस भीजि रहे ब्रज बन
गिरि खोरि हित-सनेह सौंधी है ॥

अड़ानों] (२९२) [चौताला

गावैं होरी छैल ब्रजमोहन नवरंगी सितार तार सुर तान सौं ।
नटवा निपट निपुन रासमंडल मैं अभिनै - भेद बतावै,
गीत रीति परवान सौं ।
राधा नवेली कैं रँग भीनी रँग मूरति रसिकमनि मन्मथ-
मान हनै नैन-बान सौं ।
सहचरि चुहल चौंपि ही चहूँ ओर आनँदघन तत बितत
सुघिर घन आछी आछी ठान सौं झाँकी परन उड़ान सौं ॥

देसी बरारी] (२९३) [इकताला

मनभायौ त्यौहार मनायौ मान्यौ है भाग फागु लागैं हौं ।
उघरि उघरि खेलत रस झेलत रीझनि भीजि रहे आगैं हौं ।
सब रँग साज-समाज लियैं रँग गावत रागनि अनुरागैं हौं ।
ब्रजजन जीवनधन आनँदघन राधा - मोहन - पग पागैं हौं ॥

हिंडोल] (२९४) [चौताला

आदि हिंडोल गायौ आदिनाथ हौं हूँ गावन चाहौं ।
भक्तराज गुनरहित-गुनीसुर गंगामौलि महोत्सव-मूरति काहौं ।

[२९२] सितार=एक बाजा । परवान=प्रमाण । तत०=नृत्य के भेद । परन = बोल ।

गिरिजापति गिरिवासी चंद्रचूड़ चिंतामनि नित निगमनि साहौं ।
आनँदघन कौं ब्रजजीवन-गुनगान गरज दै राखौ निरंतर चाहौं ॥

विभास] (२९५) [सूलताल

निपट निडर खिलार हौ देखे होरी को खेल यह कौन ।
आनँदघन पिय झूमेई आवत आँखियाँ पकरि हठि गई
लगावत कहाँ लौं गहै कोऊ मौन ।
कित कौं ओरहीं आई जमुना जल तुम घर तैं लै निकसे सौन ।
चतुर छैल है देत गँवारयौ देहदसा लखि लरैंगी
ननदिया भूलि आई हौं हौन ॥

बिहागरौ] (२९६) [इकताला

छैल साँवरिया खेलै रसहोरी अपनी गोरी राधा कैं साथ ।
सहचरि - भीर तीर जमुना कैं पहिरैं नव रँग चीर ।
केसू केसरि रंग कमोरीं झोरीं गुलाल अबीर ।
नाच चाव बहु भेद भाव सौं चाचरि चुहल मचाइ ।
चलति कटाछ सहित पिचकारी तन मन लागति जाइ ।
चित चकोर चौंपनि चितवन मुखचंदहि पलक बिसारि ।
भीजि रह्यौ अनुराग रंग मैं रीझनि सरबस वारि ।
कुंज केलि कौतुक नित नितहीं रच्यौ रहसि यह फाग ।
गावत सरस कंठ रसगारी भरि लाग्यौ अनुराग ।
फगुआ देन लेन कौ जो सुख सो कहि सकत न बैन ।
आनँदघन रस उमँड घुमँड सुख लेत पपीहा नैन ॥

ऐमन] (२९७) [सूलताल

इहाँ मैं खोले किवार त्यौं ही आनि लगढ़ि गरैं परैं ।
परवारे को भेष बनाय आयौ लंगर नाक लगाय छल सौं घोलि दई ।
ऐसैं होरी दाव लियौ है जैसैं गासे पैज परैं ।
आनँदघन ब्रजमोहन ग्रुरि छुरि भिजई खरैं भरैं ॥

[२९५] सौन=गुलाल । हौन=अपनापन । [२९७] लगढ़ि०=लिपट गया । पैज=प्रतिज्ञा, शर्त ।

ख्याल ऐमन] (२९८) [चर्चरी

सुघर खिलार थाकी बहियाँ क्यों मरोरी ।
बहियाँ क्यों मरोरी गिरिधर निधरक झकझोरी ।
सौंहि निहोरि खिलन निकसी आनँदघन तुम करत बरजोरी ।
ए रही ईंया कौन भाँति सों खेलत होरी ॥

सारंग] (२९९) [इकताला

सब रंग होरी को तैं राख्यौ राधे सरस खिलार ।
निपट रँगमगी चितवनि तेरी निपट नयौ रस चाख्यौ ।
मोहन पै मनभाव्यौ फगुवा लियौ बहुत दिन कौ अभिलाख्यौ ।
आनँदघनहिं मिलै तू आई यह सुख परत न भाख्यौ ॥

विभास] (३००) [इकताला

कन्हैया मोही सों रसवाद रचै री, न्यौज लगौ यह फाग ।
अपनी सी हौं बहुत बचौं पै निपट निडर यह कैसें हू न बचै ।
छाँह न छुवावत हो कबहूं यह बहुत दिना कौ लागि पचै ।
अब लौं होरी को मिस पायौ कानि कौन कौ काहू न उघरि नचै ।
ताकै लगावै हूकयोई माथैं डोलत है निज लाज अचै ।
आवौ मिलि गहि गहि भिजैंये आनँदघन कौं जैसें मैन लचै ॥

सारंग] (३०१) [अध

पहिरि निकसे कान्ह केसरी बागौ ।
चारु चोवा-चित्र बाहुमूलनि खुल उमंगि भेंटनि प्रगट
बरत जिय-लागौ ।
सबनहिं सों गुराई मिलि छवि फबति सुदेस समझि
भामिनी प्रीतिपन पागौ ।
आनँदघन घमड़ आनि औसर बन्यौ सरस डीठैं
सरस कीजिये फागौ ॥

[२९८] सुघा = चतुर । निहोरि = कठिनाई से और विनय करने पर । [३००] न्यौज० = ईश्वकार्य में लगे, समाप्त हो जाए । हौं = मैं । अचै = पीकर । लचै = दबे, नष्ट हो । [३०१] बागौ = अंगा, जामा ।

हिंडोला] (३०२) [चौताला

नीकौ लुल्यौ री तेरैं भाल ए नव बाल गुलाल-टीकौ ।
राग-रचावन रंग-बढ़ावन प्यारे लालन के जी कौ ।
भई है इकौसी-फाग कहूँ तैं हूँ फगुवा लियौ है लगौंहीं ही कौ ।
आनँदघनहिं सजल कियौ तैं दामिनि यह फाग
भाग है री राधे तो सो कौ ॥

हमीर] (३०३) [इकताला

आए बन तें गोपाल जसोमति आरती उतारै ।
राई नौन वारि वारि तिनुका तोरि डारै ।
आँचर तें उमगि उमगि चलति दूधधारैं ।
मोदमगन मैया मन छैया - छवि निहारै ।
बदन चूमि हिय लगाइ मंदिर लै पधारै ।
ताते जल पाय पखारि गोद मैं बैठारै ।
मधुर मोदक जननी - कर कछुक मुख जु डारै ।
आनँदघन हित घमंडनि कहाँ लौं बिचारै ॥

सारंग] (३०४) [इकताला

चतुर खिलार खेल की हाँसनि भए फिरत हो
हो निपट सायक से ।
ते औरै जे तुम रंग राचौं तुमहूं रचे तिन्हैं लायक से ।
मिस ही मिस ढिग ह्वै आवत लै गुलाल कर जानि
परे हो रसनायक से ।
आनँदघन अब उघरि रचे हो नित ही रहत अथ फागु नायक से ॥

धनासिरी] (३०५) [इकताला

होरी खेलिहौं उमग्यौ है मो चित चाव ।
लाजहिं सौंनि कहा करिहौं अब सूझि खेलन कौ दाव ।
अपने मन की कसरि काढ़िहौं कौ लौं करौं दुराव ।

[३०२] इकौसी = एकांत में । [३०३] छैया = बच्चा, शिशु । [३०५] सौंसि =

इन फागुन हौं आज जिवाई मारत हुते पचाय ।
तरसति ही दरस कौं परस कौं बिधना रच्यौ बनाय ।
आनँदघन अबीर-घमँडनि मैं करिहौं कौंचि मिलाय ॥

सारंग] (३०६) [इकताला

नई पाहुनी आई है तू यह आई फागै नफनाइ ।
कालि कान्ह की डीठि परी कहुँ आज भोर तें इत मँडराइ ।
बरजति ही निकसै छिनि पनघट मेरो कह्यौ न मान्यौ हाइ ।
वा रसलोभी को हियरा हठि तैं चाई लावनिहि अगाइ ।
कबहूँ बैठि रहै छिनि घर मैं कित डोलति बिछियानि बजाइ ।
मेरो कह्यौ सुनि चलत ठौर तें रसिक छैल छकि घूमै न्याइ ।
आपनि बन्यौ आनि यह औसर जो कछु तेरें है चित चाइ ।
दै चुकि होरी कें सिर यह जस नीकें आनँदघनहि भिजाइ ॥

परज] (३०७) [चौताला

सुघराइ ऐसैं कोऊ है गुलाल चलावत खेल
किधौं लखि भाय ।
भलौ भई पाकी आँखिन परचो ही तौ बतबढ़ाव
रही जु सकल गँवैलो हाव ।
रंग राखि रस राखि खेलियै जैसैं बढ़ै चित चौगुनो चाय ।
आनँदघन घमँडनि मैं उबरे अपनो सो करति दुराव ॥

सारंग] (३०८) [चौताला

यह बृंदावन यह जमुना-तीर यह सारंग राग ।
यह भागभरी भूमि यह तरु-लता-भूमि यह बिहंग-
बड़भाग राधा मोहन को सुहाग बाग ।
याकी लहलहनि याही मैं पाइयति सींच्यौ आनँदघन अनुराग ।
नैननि को फल चाहिबो समझत स्यामा-स्याम सेवत हैं
कोऊ नित ही जाग ॥

संचित करके । हो=भी । [३०६] लावनि=लावण्य, सौंदर्य ।

सारंग] (३०९) [चौताला

सारंग पूरयौ री बनवारी बंसी मैं कैधौं बैर बिसाह्यौ ।
सुनि की भिरनि हियो पघरयौ जाइ हाइ बिसासी कहा करन है चाह्यौ ।
तीखी तानन चपल करैं मति जियराहू दुरि मिलन समाह्यौ ।
आनँदघन रीझनि भिजयै सोचनि सुखवै ऐसैं कौ क्यौं परिहै निबाह्यौ ॥

धनासिरी] (३१०) [चौताला

आँखिन सौं आँखि मिलाइ होरी खेलियै ।
मन की मरक काढ़ि सब दिन की निधरक ह्वै रस झेलियै ।
अंजन आँजि माँड़ि रोरी मुख हँसि गरबाहीं मेलियै ।
गहक करन को दाव न राखै तू धुर की अलबेलियै ।
मोहनलाल तमाल बाल बर तू सुहाग नवबेलियै ।
रिझै भिजै आनँदघन पिय कौं रस लै आजु अकेलियै ॥

धनासिरी] (३११) [सूलताल

हौं कहा करौं री दैया फागुनवा आयौ ।
दिन चारिक तें बिरह निगुड़यौं कैसो मूड़ चढ़ायौ ।
ब्रजमोहन भए निपट बिलासी यौं इन अवसर पायौ ।
औसेरनि औंसति आनँदघन नव रंगनि भर लायौ ॥

सारंग] (३१२) [इकताला

मदमाती फागुन ओज की ।
छैल कान्ह कौं लाइ लगौंहीं गावत गारी चोज की ।
लोनो बदन रंगौंहैं अधरनि फूलनि कहा सरोज की ।
मोहन भँवर भयौ सँग डोलत तकत गैल तिहिं खोज की ।
चित्रित डफ चिचित्र कर औड़श गति मति हरन मनोज की ।
आनँदघन की घमँड होति लखि झकसनि लसनि उरोज की ॥

[३१०] मरक=हौसला । [३११] निगुड़यौं=निगोड़े ने । औसेर=मनोवांछा-जन्य व्यग्रता । औंसति=व्याकुल होती है ।

धनासिरी] (३१३)

लगै जौं चटक चौंप की चोट ।
तौ क्यौं अहो परै प्रानन के प्रानन सौं पल ओट ।
पाथर तें पोढ़े जड़ मेरे मनहीं की कछु खोट ।
तौ लौं कहा होइ नहिं जौ लौं कसकै लोटपोट ।
स्याम सजीवन की बातैं सुनि चेतनहूँ को टोट ।
चरन-धूरि ब्रजगोरिन की चाखत है निलज निखोट ।
वृंदावन - रस भिदै न याके कपट कुटेव अगोट ।
द्रुम-बेलिन लखि फुरै सु कैसैं कलित रँगीली जोट ।
भरि दै री जमुना करुना करि हरि रस आसा-ओट ।
घटिहै कहा कृपा-कादंबिनि चातिक छींटनि छोट ॥

नट] (३१४) [चौताला

उमहि उमहि रस बरसत राधा मोहन सोहन सबके जीवन-प्रान ।
नव घन दामिनि रीझनि भीजे पहिलेहिं पुनि रसभीज्यौ फागुन पायौ नेहा नवल समान ।
चैन-रुपनि दुहूँ ओर घाँइ चुहल चाचरि सोर ढोल-ढमक धाप मंगल सुनत सफल होत कान ।
आनँदघन सुखसमूह सुर भूले लखि कुतूहल छायौ केलि-बितान ॥

बिहागरो] (३१५) [इकताला

होरी खेलैं राधा गोरी साँवरे प्रीतम संग चाँचरि चौंप रचाइ ।
जोबन जगी जगमगी सखिन मैं अति आनी मीठी गारी दै लालहि लेति लुभाइ ।
पानभरे मुख बिथुरी अलकैं दुति सुख की पानिप कछु कह्यौ न जाइ ।
रीझनि भरि भिजए आनँदघन पिचकारिहिं रंग रह्यौ छैल कैं छबि देखन की दाइ ॥

३१३—पोढ़े—ओछे (सतना)। गोरिन—ओरिन (कंदन)।
[३१३] लोटक० = लोटपोट । अगोट = आधार । आसा० = आशा और प्राप्ति के बीच का व्यवधान । कादंबिनि = मेघमाला ।

सहानो] (३१६) [इकताला

मोहन अब तौ रँगनि भरौंगी ।
मोसौं औरि दौरि कित जैहौ देखौंगी सु करौंगी ।
आजु रँगीलो दाव बन्यौ है काहू तें न डरौंगी ।
आनँदघन रस भिजै रिझैहौं या अर तें न टरौंगी ॥

परज] (३१७) [इकताला

अटपटे पेचनि आए निपट अटपटे लाल ।
होरी को मिस पाइ दाइ रचि लोने फेंटि गुलाल ।
खेलति होइ री खेलियै तासौं लखे अनोखे ख्याल ।
आनँदघन बरजोरी बनए परि कि करत उरसाल ॥

येमन] (३१८) [इकताला

हौं इनके रँग वे मेरे रँग भीजि भीजि रीझनि मोसौं रसहोरी है ।
भली भई फागु के दिननि मैं उघरि परी हितचोरी है ।
प्रीतिरागिनि गीतनि गावत ब्रज घरघर केसरि घोरी है ।
आनँदघन राधिका दामिनी जगत-उजागर जोरी है ॥

गंधार] (३१९) [इकताला

हो होरी खेलै अलबेलो नंद महर को ।
चंदमुखी लखि बढ़्यौ रूपनिधि रंग अनंग लहर को ।
चोरत लै मन नैन सबनि के पूरन प्रेम - गहर को ।
गुपत प्रगट भिजवन आनँदघन रसिया आठ पहर को ॥

बिभास] (३२०) [इकताला

आजु कान्ह कुँवर की बरस-गाँठि है आवौ री मंगल गावौ सब बर नारि ।
ब्रजमोहन-मुख सुख-सोभानिधि भागनि को फल लेहु निहारि ।
जसुमति-बारौ अँखियनि तारौ जापै सरबसु दीजै वारि ।
आनँदघन चिर जियै लड़ैतो बिधि पै माँगति गोद पसारि ॥

रामकली] (३२१) [चंपकताल

नंद कौ आनंद कह्यौ न परै हो ।
कान्ह कुँवर कुलमंडन प्रगटे को इहि सुकृत फरै हो ।
गोकुल गाँव तीर जमुना कैं सोभित सुभग घरै हो ।
जसुमति जाकैं घरनि सपूती दीपति भवन भरै हो ।
भई बधाई-भीर सुहाई हेरत हियौ हरै हो ।
बहुत भाँति चातक-जन गन पै आनँद मेघ भरै हो ।।

बिभास] (३२२) [इकताला

चरन सिहारे सब सुफलदायक ।
रमन-भूमि ब्रजमंडल-मंडन सुनहु साँवरे गोकुलनायक ।
रसबिलास-संपदा-धामा सुखनिधान सुमिरिबे सु लायक ।
आनँदघन अमोघ रसमूरति सरनागत भयहरन सहायक ।।

राग सहानौ] (३२३) [चरचरी चलती

सुहेलरा आजु नंद कैं आनंद ।
घर बाहिर गहमह महा कहा कहौं देखेंई बनै ब्रज बाढ़ौ ओप अमंद ।
जसुदा की कूख सिराली भई है सबके मन भानी प्रगटे
सुखदानी कुलमंडन ब्रजचंद ।
आनँदघन-घमँड महौ अद्भुत छबि फबी जहाँ दृग-चकोर
चित-चातक-हित नित रसकंद ।।

सारंग] (३२४) [झपताल

मंदिलरा गहगहो गाजैं बाजैं बधाई ब्रजपति के घर ।
ढारैं जसुमति जन्यौ स्याम सोनो खंजन अति मुदित नचत नारी नर ।
को कहि सकै भागनि की निकाई अद्भुत मनोरथ-महीरुह लाग्यौ सुफर ।
पूरन करी आस-प्यास निज जननि की सबनि पर आनँदघन घन भर ।।

३२१–घन०–गान (सतना) ।

धनासिरी] (३२५) [मूल

सुभ दिन आजु को सखी री जनमे मोहन स्याम ।
घरघर महा महोच्छौ ब्रज मैं पूरे मन के काम ।
नंद जसोमति अति बड़भागी सब बिधि रस-जस-धाम ।
आनँदघन बरस्यौ सरस्यौ हित जगजीवन अभिराम ।।

धनासिरी] (३२६) [मूल

मिलि चलहु बधाएँ जाहिं कीरति कुँवरि जनी ।
सुख की रासि बिधाता दीनी आज भावती बात बनी ।
देखौ री देखौ किनि सजनी दिसि दिसि बाढ़ी ओप घनी ।
गोकुलचंद - चंद्रिका प्रगटी अतुल प्रेमरस - रंग-सनी ।
बाजति अति गहगही बधाई चैन चुहल चहूँ ओर ठनी ।
गोप ग्वारिनि गहमह मची रावरि-छबि नहिं परति गनी ।।
भागनि को भागनि को फल जोहैं निरखि मुख पूरन
करहिं आस अपनी ।
आनँदघन बरस्यौ इहिं औसर धनि धनि धनि यह दिन-रजनी ।।

संकराभरन] (३२७) [मूल

सब ब्रज सुख समुद्र ह्वै बाढ्यौ प्रगटे गोकुलचंद सुछंद ।
गरजि चढ्यौ असाध मंगल-धुनि दूरि गयौ दुख-दंद ।
हरषे द्रुम-बेलीं नरनारीं प्रेम-पियूष - मयूख अमंद ।
आनँदघन अनेक रस बरसत धन्य जसोदा-नंद ।।

रामकली] (३२८) [चंपकताल

नंदभवन की सोभा आज देखेंई बनि आवै ।
कमलनैन सुखदैन प्रगट भए भाग - भेद को पावै ।
जो कछु ब्रज को भाग उदै भयौ सो कहि कौन बतावै ।
आनँदघन अनेक रस बरसत सब जग मंगल गावै ।।

३२५–महा०–महामोद छबि (सतना) । ३२८–उदै–अगट (सतना) ।

[३२६] रावरि=रावल, राधा की जन्मौरी ।

रामकली ब्यास] (३२९) [सूलताल

बाजी गति बाजै मंदिलरा स्यामसुंदर के जनम-समै ब्रजपति-घर ।
आनँदघन की घमँड घोर चहुँ दिसि लाग्यौ है रस-झर ॥

धनासिरी] (३३०) [मूल

बरजत बरजत अँखियनि ब्रजमोहन-मुख चाख्यौ ।
धीरज धन दै हाथ पराएँ बिरहा-बिषहि बिसाख्यौ ।
अबहिं कहा काहि दोष दीजियै इनहीं करमनि नेम निबाख्यौ ।
मन मोहन लगाय आनँदघन तनहूँ धन लै गाख्यौ ॥

भैरव] (३३१) [चरचरी

गिरिधर आनँदकंद ।
ब्रजजन-लोचननि चंद रसमय आभा अमंद मंडित-गोपाल-वृंद ।
नित नित लीला सुछंद गिरिबन तनया-कलिंद सुंदर बदना-
रविंद मुरली धुनि मंद मंद ।
जयजुत गोकुलानंद बंदित सुर-अरि-निकंद महा मधुर
बय किसोर गोपबधू-हृदय-फंद ।
आनँदघन अद्भुत अभिराम स्याम प्रेमधाम नाम रूप
जीवनधन धनि जसुदा धन्य नंद ॥

बिभास] (३३२) [चंपकताल

स्यामसुंदर ब्रजराज-दुलारे मेरी अँखियनि के तारे हैं ।
मोहन मुख देख्योई भावै गुननिधि रूप-उज्यारे हैं ।
बेनु बजावत लटकत आवत मदगज गति पर वारे हैं ।
आनँदघन रस पीवत जीवत चातक-प्रान सुखारे हैं ॥

भैरव] (३३३) [चौताल

जगतारन करुनासिंधु मुरारि दीन असरनहारनि लेत सम्हारि ।
अधम-उधारन बहुबिधि सुखबिस्तारन स्वामी दयाल पन-
पूरन पालन व्रत धारि ।

[३३०] गाख्यौ = गहाथा, सोचता फिरा ।

अघ-बारन-कंठीरव दारुन दुखदल-बिदारन गुन
अपारन को सकत बिचारि ।
आनँदघन रसधारन सकल संतापनिवारन घमँडि बिराजत
प्रान-पपीहनि पारि ॥

बिलावल] (३३४) [सूलताल

संकर गिरिजापति नंदीसुर चंद्रचूड़ गंगाधर ।
आदिनाथ कैलासनिवासी भक्तराज भवभय-हर ।
महाईस जगदीस जोगिमनि महादेव सिव संभु दयापर ।
आनँदघन सुरूप गोपेसुर, मंडित-बृंदाबन-थर ॥

आसावरी] (३३५) [इकताला

धनि ब्रज-आँगन जहाँ घुटुरुवनि ऐसो बालक डोलै हो ।
धनि धनि रानी जसोमति की जासौं लड़कि तोतरे बोलै हो ।
मोहन स्याम सकल ब्रजजीवन बालबिनोद कलोलै हो ।
आनँदघन हित घमँडि गोद मैं बैठ्यौ ब्रजपति मो लै हो ॥

कान्हरो दरबारी] (३३६) [चौताला

बृंदाबन-महिमा कौन बरनि सकै जाहि जानत एकै मोहन ।
मंजुलद्रुम-बेलिनि-दल-फल मैं दरसति राधा मूरति यह
सुख जानत जाके जोहन ।
श्रीपद सरस परस नित हितमय अनुपम भागनिकाई गोहन ।
दंपति चातक-जुगल आनँदघन करत मनोरथ-दोहन ॥

धनासिरी] (३३७) [झप

ऐसो को जो तिहारे गुन गाय जानै गाय जानै तुम्हैं रिझाय जानै ।
हीन रसना जौ कछु बखानै तौ कृपा के प्रसाद को पाय जानै ।
कृष्न कमनीय कोबिद कृपन जानमनि तुम बिना कौन ये भाय जानै ।
प्रान-चातकनि के आनँदघन सुनौ बिरही बिचारो बराय जानै ॥

३१६—अनुपम—अतुल (सदना) ।

[३३३] बारन = हाथी । कंठीरव = सिंह ।

देव गंधार] (३३८) [मूल

तिहारो सुख जो मन मैं आवै ।
तौ मेरे भागनि की महिमा को कवि बरनि बतावै ।
जमुनातट कुंजनि की सोभा लखि आनँदघन छावै ।
श्री बृंदावन राधा मनोहर बसिबोई नित भावै ॥

आसावरी] (३३९) [चंपकताल

बिछुरिबे को दुख न जानत हैं स्याम ।
बीच दियें हीं मिले बिसासी ये कपटिन के काम ।
हम भोरी बेकाज बिकाई निज सरबस दै उलटे दाम ।
निधरक छाय रहे आनँदघन हम बिलखति ये धाम ॥

(३४०)

सुख-सवाद स्यामहिं सुमिरैं सब ।
गाढ़े भए गए छुटि सहजैं निज सुरूप रस-परस लस्यौ अब ।
नेह देह जगमगा ज्योतिमै भाव-भेद करि लगे द्वार दब ।
आयौ घमँडि महा आनँदघन उघरि परी अति अगम दसा दब ॥

टोड़ी] (३४१) [चौताला

साँचे सुर के बिस्तार साँचे तार लाँबिये साँची तानन मुरली साँचत ।
भौंहें भंग त्यौरी तरंग-रंग संग-बिलासिनी के नीके नैन नाँक नाचत ।
मन के हरन हैं कान्ह सहज सखी तापै इते भेदपन क्यौं बाँचत ।
आनँदघन पै बहुत गतिन सौं मदन-आँच तन आँचत ॥

सारंग] (३४२) [चौताला

गावत सुघरराय सारंग तीखे चोखनि सौं ।
निपट रसीली ठाट लाग लैन ललित भाँतिन संपूरन सुख पोषनि सौं ।
गुननि मुकटमनि कान्ह सिंगार अतुल कहत पोषी धुनि जोखनि सौं ।
आनँदघन ब्रज कलपतरु कालिंदी-कूल नैन स्रवन प्रानन मन तोषनि सौं ॥

३३९—जानत—जान (सतना) । ये—निज (संग्रह) ।

[३३८] राधा० = राधा के निवास से मनोहर ।

सूहा] (३४३)

गोरी गोरी री अति गोरी जमुना तू क्यौं लागसि स्याम ।
कामघटी ज्यौं सुभर भरी रँग महामधुर रस बाहिर लसत ललाम ।
राधा ही को हिय अभिलाष घुमेरत भौंरनि हैं अभिराम ।
भानुकुँवरि आनँदघन कैं बस तोहि बढ़नि बढ़िये देखति आठ जाम ॥

रामकली] (३४४) [चंपक

देवी पूजि पूजि बर पायौ ।
चीरचोर चितचोर और को सरबसु दै अपनायौ ।
को समझै यह प्रेम नेम-गति पूरन पन दरसायौ ।
रसमय बचन-रचन आसा-बल उर आनँदघन छायौ ॥

मलार] (३४५) [चौताला

मोहन मूरति मेरी आँखिनि आगैंई रहै ।
ज्यौं खोलौं मूँदौं त्यौं त्यौं ही त्यौं ही दृष्टि गहै न बातौ कहै ।
चख आँकौं भरि भरि भेटनि को अभिलाषनि बावरो हिय उमहै ।
आनँदघन पिय के संजोग-बियोगनि पापी जियरा दुखसूल सहै ॥

केदार मलार] (३४६) [चंपक

तुम्हैं को रिझाइ सकै हो बड़े रिझवार ।
रती साँच सौं रीझि रहत हौ सो मोहि भयौ है पहार ।
झूठैं सवाद हिल्यौ झूठौ हिय तजि साँचो रससार ।
अब आनँदघन उमँडि घुमँडि कै करौ कृपा-आसार ॥

सारंग] (३४७) [इकताला

ब्रज के रूखनि लै दरसैयै ।
रमनभूमि-ब्रज अंजन बन घन सोभा-सुख सरसैयै ।
जमुना-तीर भीर मनभाई प्रीति-रीति परसैयै ।
सबे बने हैं प्रान-पपीहा आनँदघन बरसैयै ॥

ऐमनि ख्याल] (३४८) [मूलताल

मोरा मन बाँधिलौ है, तोरे गुन सौंज छबिलवा रसिक रसिलवा ।
आनँदघन उजियारे ब्रजमोहन छबिमतवारे हँसि नैन बान
भरि साँधिलौ है ॥

सूहो ख्याल] (३४९) [चलती

हमसौं परदेसी की प्रीति करी प्रीति करी कि अनीति करी ।
तब ब्रजमोहन आनँदघन ज्ञान कथ लागी है औसेर - करी ॥

बागेश्री देवगंधार] (३५०) [चौताला

ऐसौ कौन पै मति है जो तिहारे गुनरूप - रमनि बखानै ।
सुनौ राधामोहन एक भरोसौ है जू कृपा की अद्भुत गति है
यहै सुनि सुनि बाढ़ी अभिलाषा अति है ।
बलि बलि जैयै कोमल सुजान की आति पैये निरंतर रति है ।
आनँदघन हौं सींचि हरी करौ आसा-बेली बार बार यहै नति है ॥

हमीर] (३५१) [झंपकताल

अँखियनि लागीई रहै देख्यौ धौं कौन घरी को ।
एक दिना अटक-भटक भई री भटू ता छिन तें न भलोलो मिटै
मोहीं को न परइ भरोसो निरमोही को ।
नैन-सैन मैं बैन कहि गयौ अधखुले अधरनि प्यारी जी को ।
आनँदघन कहूँ कौंध कहूँ झर ब्रजमोहन सब भाँतिनि है सब ही को ॥

परज ख्याल] (३५२) [अपनी चलती ताल

हो सुदिन सनेहरा लाग्यौ हो रसिक छैल छबीले रँगीले मोहन सौं हो ।
सबरे भाग आनँदघन उमड्यौ हँसौंही भौंहनि रसीले जोबन सौं हो ॥

देव गंधार] (३५३) [चौताला

गान गंधर्व गुनी गिरापति गुरु गनेस गुन गनए गावत हैं तिहारे ।
गाइ गाइ छकि छकि जकि थकि जीवत हैं अनस कहि हारे ।
सेस महेस निगम असेस गति पावत नाहिं बिचारि बिचारे ।
ब्रजमोहन आनँदघन हौ चित - चातक - पन - रखवारे ॥

भैरो] (३५४) [चौताला

हरौ मेरे हिय तें यह दुखसूल, करौ किनि अब याको कछु सूल ।
जान न देहु कहूँ कबहूँ राखौ जू चरन - कमल के मूल ।

३५१—जकि—भीम (चतना) । मोतर—जोबन (नहीं) ।

अपनैंई गुन - गननि गसौ सुधि एक रहै और भरै भूल ।
रतिरस रीझैं पपिहा कीजै आनँदघन ह्वै अनुकूल ॥

बहरा] (३५५) [चलती कव्वाली

रसिक छैल नँदलाल मेरी अँखियनि बसे रहैं ।
हिय जिय भरि मोद समोद प्यारे नैक न हैं ।
सोवत जागत रागत पागत लागत गौहन गैल गहैं ।
मौनहू मैं सुनि सखी कछु सैननि बैन कहैं ।
आनँदघन घमँडि घमँडि उघरि सुख-सवाद लहैं ।
ब्रजमोहन बिलासी इते पै कियौ कहा चहैं ॥

टोड़ी] (३५६) [झंपकताल

बजावै कान तीखी तान टोड़ी की ।
मुरली अधर धरैं सुंदर मदन मैनमद-घूमरे नैन केसरि-
खौरि छूटी अलकैं औ मुरि परसनि री ठोड़ी की ।
अपनैंई मन रीझि, रीझि लहौं ताही सौं होड़ाहोड़ी को ।
सुघर-सिरोमनि आनँदघन छबि देखि रीझि भीजि सुधि
काहि लाज निगोड़ी को ॥

सारंग] (३५७) [चौताला

बाँसुरिया सौं कछु न बसाइ ।
अपनो सो मन गाढ़ौ करियै पै ये उतहीं चलि जाइ ।
तानन बानन प्रानन बेधति बैरिनि इतने हू पै हिताइ ।
आनँदघन घर बैठे भिजवति सोचनि सुरझति हाइ ॥

सारंग] (३५८) [चौताला

हिलगनि मन की निपट दुहेली ।
कासौं कहौं हौं ही जानति जैसें निसिदिन भरति अकेली ।
लपटी रहति स्यामसुंदर सौं दीरघ आस - बेली ।
आनँदघन पिय अनत उनए औसनि परति न झेली ॥

३५६—अपनैंई—मन हूँ (अपना) ।

[३५७] हिताइ = प्रिय लगती है, भाती है । [३५८] औसनि = अमस ।

रामकली] (३५९) [मूलताल

सिहारी पीर प्यारे तुमहूँ तैं अति प्यारी ।
पूरि रही है पिरौंहीं हिय मैं होति न कबहूँ न्यारी ।
याको सुख दुख कहियै कैसैं अकथ कथा और रसना बिचारी ।
आनँदघन पिय याकी घमँडनि दुरति न जाति नथारी ॥

रामकली] (३६०) [चरचरी

ब्रजबासी कान्हा हौ, हो कबहूँ तौ सुधि दीजै ।
लागी रहै औसेर परी घरी खरी कठिन परी हरी हरी
जियरा क्यौं धीजै ।
दुसह परेखनि कैसैं मन समझैये हाहा कहौ तुमहीं कहा कीजै ।
आनँदघन पिय अचरज-रस बरसौ कोऊ सूखै कोऊ भीजै ॥

वृंदावनी सारंग] (३६१) [इकताला

बंसी मोहन की फँदवारी ।
मदनमोहन सुघाख बजाइ हमारे प्रान - गरैं गहि डारी ।
सुरस अधीर पीर को पावैं दरसन - आस - जिवारी ।
आनँदघन रस पियैं जियैं वौ ये बिरही ब्रतधारी ॥

देसी बरारी] (३६२)

मन लाग्यौ री बंसीवारे सौं, ब्रजमोहन छबि-मतवारे सौं ।
दृग - चकोर अरु प्रान - पपीहा आनँदघन उजियारे सौं ॥

(३६३) [इकताला

दुपहरी जेठ की क्यौं कटिहै ।
ब्रजमोहन को नेह सखी री कुंदन भयौ निघटि है ।
कसि कसि बिरह-कसौटी सोधत फिरि गारैं कौं हटिहै ।
आनँदघन प्रिय प्रान-पपीहनि क्याइ लेइ कहा घटिहै ॥

३६०—रुख—भार (सतना) । ३६१—मोहन—मौह (लंदन) । ३६२—मतवारे—मतिवारे (सतना) ।

[३६३] निघटि=शुद्ध होकर । गारैं=गलाने पर । को०=कौन हटेगा, फिर भी गलने को प्रस्तुत है ।

सारंग चौताल] (३६४) [चरचरी चलती

न रहै मेरो मन बिन देखैं ब्रजमोहन उजियारे ।
आनँदघन रसपान करन कौं प्रान पपीहा निसिदिन रटत बिचारे ॥

बिहागरो] (३६५) [मूलताल

तुम सौं न नेह लगैयै ब्रजमोहन हौ बिसासी ।
पावत नाहिं पराई बेदनि डोलत भँवर बिलासी ।
अपनो गौं दुरि हिलत मिलत हौ रस लै देत उदासी ।
आनँदघन पिय हूँ बरसौंहैं राखत आसनि प्यासी ॥

सारंग] (३६६) [चौताला

प्रीतम याकी बयारि जब जब मो तन परसति ।
वा छिन प्राननि की गति कैसैं कहौं जो अरबरनि सरसति ।
ताप सीत दुख सुख को संगम देखि देखि मति आंत ही थरसति ।
आनँदघन पिय मिलन-लालसा रोम रोम ह्वै बरसति ॥

तथा] (३६७)

जागि री जागि मति मेरी जागि लै जागि लै री ।
रसमूरति ब्रजमोहन सौं नीकैं पागि लै अनुरागि लै री ।
मति है वो किनहूँ मति भरकै बृंदाबन-द्रुम-बेलिनि मैं लागि लै री ।
आनँदघन पिय की मुरली-धुनि सुनि सुनि गुन रागि लै री ॥

ऐमनि] (३६८) [चंपक

हँसि हँसि करैं बातैं रँगीले दोऊ मदमाते ।
गौर स्याम अभिराम अंग अंग हिय उमग याही गाढ़ी
अति सरस परस ललचाते ।
नई तरुनई की ओप भई मुख - सुख समोद पुलकाते ।
रीझि चौंप आनँदघन बरसत मिलत हार करि हाते ॥

३६५—आसनि—आपनि (रातना) ।

[३६६] थरसति=भ्रस्त होती है । [३६७] मति = बुद्धि । मति=मत, नहीं । जागि०=तन्मय हो । [३६८] हाते=दूर ।

खंभाइची] (३६९) [इकताला

मुरलीवाले ने असाडा दिल लीता नी ।
रत-दिहाड़े किथाईं न लगदा की जानाँ क्या कीता नी ।
साँवली सूरति मोंभी अँक्खीं डाढा चेटक दीता नी ।
आनँदघन बल होया पपीहा इसक-पियाला पीता नी ॥

ऐमन] (३७०) [चलती

सुरति लगी रहै मनमाँ ।
ब्रजमोहन आनँदघन पिय के बिन देखे कल न परै पल माँ ॥

सारंग] (३७१) [चौताला

मुरली कुंजनि बाजि रही ।
ब्रजमोहन कौं दसौंस तैंकैं मुख-सुख साजि रही ।
हौं ज्यौं झुरति जुरति घर घेरी सासनि लाजि रही ।
आनँदघन बस कोर गरबीली निसिदिन गाजि रही ॥

तथा] (३७२)

राधे हैं वृंदावन-बास ।
तेरी है मन धनहि धरि रहै तबहूँ ताही पास ।
महामधुर रसकेलि-माधुरी फुरै हियें अनयास ।
हरीं भरीं सुखभरीं निकुंजैं नौ नौ रंग-बिलास ।
जमुना-तीर ललित बंसी-धुनि अद्भुत धर्मी-निवास ।
कृपा-समुद्र घमंडनि आनँदघन बेगि पूरियै आस ॥

केदारो] (३७३) [मूलताल

जब वह मलार मुरली मैं गावै तब धुनि सुनि सिर धुनि रोऊँ ।
कहा करौं हिय बिकल जाय छै बिषम बिथा कैसैं गोऊँ ।
मुख-देखन-लालसा मरनि हौं रातिदौस या बिधि खोऊँ ।
आनँदघन गुन सुमिरि सुमिरि कै नखसिख बिरहा-बिष भोऊँ ॥

[३६९] असाडा=हमारा । रत०=रातदिन । मोंभी=भूमनेवाली । अँक्खीं=आँखों में । डाढा=दृढ़, गहरा । चेटक=जादू । बल=ओर ।

तथा] (३७४)

बंसी बजाइ बजाइ हाइ ज्यौं तरसावै बिसवासी कान्हा ।
आनँदघन पै तीखी तानति बिष-बानति लौं बरसावै ।
सदा मग सुख ही को दुखिया हरकि हरकि फिरि मुरलि बजावै ।
चाहि न पीर कछू याकी वह जित भावै तित ही धावै ॥

बिलावल] (३७५) [मुरली ताल

जमुना अपनो दरसन दै री, मोहि तेरियै आसा है री ।
नीको कुंज बनाइ रसीली रसहि पिवाइ ज्याइ किनि लै री ।
धीरसमीर भौंर-सुख-सोभा लसत बसत दंपति रसमैं री ।
आनँदघन की घमँड निरंतर रहै जु यहै बिनती नित नै री ॥

तथा] (३७६)

तुम्हैं रिझाऊँ हौं हूँ रीझौं ।
ऐसैं रीझौ खीजि कहत हौं रातिदौस इन सोचनि छीझौं ।
ब्रजमोहन ही मोह कीजियै निगुनीयै गुन सुमिरि अरीझौं ।
आनँदघन पिय जिय बिचारियै उचित न औसि उदेगनि सीझौं ॥

तथा] (३७७)

छैल छबीले ब्रजमोहन रसीले ।
दच्छिनता-लच्छननि लसीले रजनि जगे लोचन अरसीले,
भावत आवत ढीले ढीले ।
मधुर किसोर चौंप-चटकीले चतुरसिरोमनि गुननि गसीले ।
नवजोबन-मधुपान-छकीले महामोहनी-मंत्रनि कीले ।
अंग अंग अति ही दरसीले सब बिधि प्रीति-रीति-सरसीले ।
आनँदघन धुरि ढुरत ससीले, प्रान-पपीहनि हित बरसीले ॥

[३७६] खीझौं=खिझ हूँ । अरीझौं=उलझ जाऊँ, बँध जाऊँ । औसि=उमस खाकर । सीझौं=पकूँ, परेशान होऊँ । [३७७] दच्छिनता=दक्षिण नायक की विशेषता, अनेक नायिकाओं से प्रेम । कीले=मंत्र-प्रभाव से प्रभावक-गति । ससीले=शीलसंपन्न ।

सारंग] (३७८) [चौताला

सरनागत-स्वामी सरबदयाल अंतरजामी ।
जिन जिन जहाँ जहाँ सँभारे तहाँ धाए कृपानिधि गरुड़गामी ।
मो सो न और अधमनि मैं दूसरो कपटी कुटिल कामी, भनि नामी ।
आनँदघन अघओघ-महाघन सुदृष्टि-जिवावन बेद भरत हैं सामी ॥

ललित] (३७९)

मोहिं मेरे अंतरजामी भेटे ।
तन-मन सुख-सीतलता बाढ़ी जनम-जनम-दुख मेटे ।
जगमोहन पै मनमोहन ह्वै कृपाकंद परि पेटे ।
आनँदघन उदार चिंतामनि सुकृत-समूह-समेटे ॥

संकराभरन] (३८०) [चरचरी

तेरी गति-लैन की निकाई ।
नट नागरि पिय की मति देखि रीझि बिकाई ।
रूप जोबन गुन-गरिमा सबतें अधिकाई ।
आनँदघन सरस ताननि मुरलिकायौं छिकाई ॥

टोडी] (३८१) [चौताला

को पावै ये भेद जो गावै मेरो बैरागी जियरा ।
ब्रजमोहन के बियोग सँजोग भरयौ है हियरा ।
अँसुवनि जल सौं अधिक जगति जोति परेखनि होत मनौ दियरा ।
आनँदघन अवसेर-अँध्यारैं दुसह-दसा को दियरा ॥

देसनि] (३८२) [चंपक ताल

हिंडोरें झूलनि को रस पायौ अंग-संग सुख लेत ।
गौर स्याम जोबन-माते सहि न सकत छिन छेत ।

३७८—सरनागत—सरनैगत (लंदन) । सामी—हामी (सतना) । ३८१—दियरा—पियरा (सतना) । ३८२—अंग—अंस (लंदन) । उमँहि०—रीझि रीझि (सतना) ।

[३७८] सामी भरना=स्वीकृति देना, समर्थन करना । [३८१] दियरा=दीया । अवसेर०=प्रतीक्षा की पीड़ा के अंधकार में दुस्सह दशा की बत्ती दीपक की भाँति जल रही है । [३८२] छेत=विच्छेद, वियोग ।

रूपनिकाई अनूप कहा कहौं फूलनि के भूषननि समेत ।
उमँहि घुमँहि आनँदघन बरसत सरसत हैं हिय हेत ॥

अड़िया ख्याल] (३८३) [मूलताल

तारे फानूसों का करौं गोरा जिय तरसै ।
आनँदघन पिय दरस औसेरनि अँसुअनि मेहा बरसै ॥

आसावरी ख्याल] (३८४) [चरचरीताल

न जानियै कौन भाँति मिलौ बिहारी भँवर की सी रीति ।
आनँदघन ब्रजमोहन प्यारे ठौर ठौर रसबाद छिकौ दई दै नई परतीति ॥

सारंग] (३८५) [चौताला

बनवारी बन बन बिहरत डोलत हैं आपने रंग ।
कहूँ चरावत गाइ कहूँ चढ़ि आइ तरुनि बंसी-धुनि पूरत कहूँ
गावत ग्वालनि संग ।
ब्रजगोरिनि के नैन स्रवन मन मोहन लागेई रहत अभंग ।
नंद-जसोदा-प्रानजीवन आनँदघन ब्रजमोहन सबको सब अंग ॥

सारंग] (३८६) [चौताला

कब लौं धीरज धरौं मोहिं उन बिन अब न सिहाय ।
निपट बिसासी निकसे मोहन बातनि मोह बढ़ाय ।
उनके मन की कछु न समझि परै मेरो तौ लीनौं जीराय ।
अलप अवधि पढ़ि बहुत रहे छाय ।
आनँदघन पिय प्रान-पपीहनि औसेरनि औसाय ॥

देवगिरि] (३८७) [चंपक ताला

आइ सुधि लेहु सवेरी स्याम ।
औसर गएँ बहुरि कहा ऐहौ ब्रजजीवन धरि नाम ।
रही निपट मुरझाइ बिलखि बाल प्रबल बिरह के घाम ।
आनँदघन रस सींचि हरी करौ बेलि बिचारी बाम ॥

[३८७] सवेरी=शीघ्र ।

पूरिया धनासिरी] (३८८) [मूलताल

हम सौं सब कहि कहि वे बतियाँ ।
सुनहु प्रान सुखदैन परेखनि क्यौं जारत हौ छतियाँ ।
इत ऐसैं दिन पारि बिलासी उत बितवत सुख-रतियाँ ।
आनँदघन कितहूँ किनि बरसौ ये बरुनी बैसतियाँ ॥

पूरबी] (३८९) [चौताला

बाजै घन मधुर बैन सुनि न रह्यौ परत भवन ।
देखन कौं दृग दरबरात प्रान मिलन खरबरात सिथिल होति
अंगनि गतिमति तितहीं करति गवन ।
लोकलाज उरझि उरझि रहियै मन सुरझि सुरझि कासौं
कहियै परी जैसैं काम लागी तनहि पवन ।
रंगभरस दरस परस आनँदघन सरस होइ तरसि तरसि
कौ लौं कीजै जियरा बिरह-अनल हवन ॥

बिभास] (३९०) [चौताला

रसमसे नैननि आए हौ लागत निपट सुहाए हौ ।
कौन सींचत रतियाँ बस करि सब रैनि जगाए हौ ।
सूधैं चितवौ क्यौं [नीचे] चितवत हौ बिधना रसिक बनाए हौ ।
आनँदघन रस बरसि सिराए इतहूँ आए हौ अजू सजि
भागनि पाए हौ ॥

[बिलावल देवगिरी ख्याल] (३९१) [मूलताल

कहा करैगो कोई री मन ब्रजमोहन सौं मान्यौं री ।
लोभी लग्यौ तुरत उठि मोहन हाथ न आवत आन्यौ री ।
उघरि परी सौंधे की सी चोरी सबनि मरम यह जान्यौ री ।
आनँदघन हित प्रानपपीहनि अति पूरन पन ठान्यौ री ॥

[३८८] बैसती=भोली, भोरी । [३८९] दरबरात=छटपटाते हैं । खरबरात=हड़बड़ी कर रहे हैं । [३९१] उघरि०=सुगंध की चोरी की भाँति बात खुल गई ।

सारंग] (३९२) [मूलताल

बिसवासी हौ भए बातनि भोरि भोरि मन मेरौ ।
अनाकनी दै रहे हाइ अब कोऊ किनलौं किनि टेरौ ।
ब्रजमोहन इन घातनि ही हित मुरली-धुनि करि घेरा घेरौ ।
भूलेहूँ आनँदघन प्रान-पपीहनि त्यौं हेरौ ज्यौं फेरौ ॥

पूरिया] (३९३) [चौताला

साँचे सुरनि गावत मोहन राग-रंग-बिनानी ।
धुनि-प्रकास तैसो सुख-बिलास रस चुहल चटक सरसानी ।
ताननि की ल्यौरनि त्यौरनि रई, रसन-क्रांति मिलि होति रवानी ।
आनँदघन नैननि अरु स्रवननि चोंपि चढ़ी मनमानी ॥

सारंग] (३९४) [चंपक

जिन सौं दान लै ही लै रहे हौ ते न होहिं यह ग्वारि सुनौ नए दानी ।
अलगे ही बतराव लगौंहीं छाँह छिऐं हूँ आप ही परिहै जानी ।
छोरि साँकरी डगर सदा की आज कहूँ तैं अरबरि ठानी ।
आनँदघन रसबाद करौ किन रसिक बिनानी गरज-प्यास पहिचानी ॥

बिभास ख्याल] (३९५) [मूलताल

ऊधिर्हि तो आँखिं तो आँखिं ता मैंडे कोल ।
तैंडे नाल जिंद लगी मुझ तो निमाणी दे मान गुमाणी
कदी तौ हम हँस हँस बोल ।
साँवली सूरति पर घोल घोल घत्ती असां हाँ बिन मोल ।
प्रान-पपीहाँ दे आनँदघन दिल दी घुंडी खोल ॥

देवगिरि ख्याल] (३९६) [मूलताल

ऐसी करी हम सौं दैया क्यौं जू बनवारी ।
दरस पियास कै यौं तरसावत अटपटी बानि तिहारी ।
बातनि मोह बढ़ाइ बिसार्यौ एक बेर सब सुरति बिसारी ।
प्रान-पपीहनि ज्याइ लीजियै आनँदघन हितकारी ॥

[३९३] बिनानी=जानकार, सुजान । ल्यौरनि=बिस्तार । त्यौर=ढंग । रई=लीन, युक्त । रवानी=प्रवाह की दृढ़ता । [३९५] मैंडे=मेरे यहाँ ।

आसावरी ख्याल] (३९७) [मूलताल

बसि करि करि क्यौं बिसारी प्यारे निसदिन
जियरा अति ही व्याकुल रहत परेखैं ।
आनँदघन ह्वै बिरह तचावत वैसी करि ऐसी ठानी दैया किहि लेखैं ॥

गूजरी] (३९८) [चौताला

चटपटी लगाइ गए पिय मन कौं ठगी हौं बातनि मोह मढ़ाइ ।
भूलैं सुरत्यौ नाहिं न बिसासी कासौं कहौं दुख हाइ !
रसलोभी ललचाइ रहे कहूँ ब्रजमोहन ईं भँवर सुभाइ ।
आनँदघन हित प्रान-पपीहनि निसदिन रटत बिहाइ ॥

मलार शुद्ध] (३९९) [इकताला

गौर-स्याम-घनतनि की बरसिवा झूलत लहरैं लेतु ।
गहिरयौ सरस चोंप सौं स्यामा उमगि परयौ हिय हेतु ।
उफनि उठ्यौ संगम-सुख-सागर लोने अंग दिखाई देतु ।
पिय मन मगन होत अभिलाषनि बंधत न धीरज-सेतु ।
मधुर मधुर गावनि मलार-धुनि सुनि रीझतु भीजतु चितु चैतु ।
छुटे चिहुर आनँदघन बरसतु भरत मनोरथ-खेतु ॥

सारंग] (४००)

जाको मन बाँसुरी हरयौ ।
सो निकसै न रागसागर तैं सुर कै फेर परयौ ।
धुनि-मँडरानि कान प्रानति मैं इकलग बास करयौ ।
छकी रहति मति-गति मनोज-रति मादक भेद भरयौ ।
सुखरासि छबि-तरंग-झकझोरनि बूड़नि संग तरयौ ।
लोकलाज मरजाद मेटिकै प्रेम उमंग ढरयौ ।
बिसरि गई सुधि बुधि सब दिसि को उर अभिलाष भरयौ ॥

तथा] (४०१)

मारति है मुरली की गाजनि ।
सुनि सुनि धुन्यौ जात हिय सोचनि सुरत सीस गुरुजन की लाजनि ।

३९९—गौर—फिरत (लहरा) ।

स्रवन बीच मँडरानि रातदिन जकि जकि बिसरि परति गृहकाजनि ।
झुकति सास ननदिया झकति क्यौं झुकति न चढ़ति पैज की पाजनि ।
क्यौं तरफत स्यामसुँदर-छबि देखन कौं अभिलाष-समाजनि ।
आस लागि जीवत चातक लौं आनँदघन जीवनघन गाजनि ॥

पैमनि] (४०२) [इकताला

कान्ह सों त्यौं चितयौ ललचाइ ।
सो दोहनी मुरि गई तनि जइ भई नई पहिचानि, जानि
जिय ख्यरकै खरिक-सुधि हाइ ।
मोहन मन-मोहन करि लीन्हौ आइ घरहि पराए पाइ ।
पठई सरबोरि करि पल मैं आनँदघन रससैन-भरी
बातनि बातनि बरसाइ ॥

भैरव] (४०३)

तरनितनूजा तोहि तकौं ।
चंचलता तजि भजि नँदलालहिं मन करि तेरे तीर थकौं ।
धीरसमीर सुबेस ठौर ठिक ठहरि भली बिधि पनहि पकौं ।
सावकास ह्वै घनो पुलिन तैं बिसद पुलिन मँडराइ सकौं ।
सरस सिंगार अनूप स्याम कौ लखि पखि मादक रूप छकौं ।
निरवधि रस की रासि रसीली तरल तरंगनि संग बकौं ।
उघरि परौं अनुराग उमँग मैं नाद-बिबस मरजाद ढकौं ।
नव ब्रजबधू-बिमोहन लीला लपटि एकटक टेक टकौं ।
एरी कुँवरि कलिंदनंदिनी बिनती बिरचि बिचारि चकौं ।
महिमा अमित कृपा आनँदघन पाँयनि चातक-जलप जकौं ॥

रामकली ख्याल] (४०४) [मूलताल

डगर न छाँड़ै मेरी साँवर कन्हैया ।
आनि अचानक घेरि लेत कैसैं बचौं अकेली हौं दैया ।

४०३—चकि—चकि (लंबा) ।

[४०१] पाजि=बाँध । [४०३] सावकास=छूटकर ।

हौं सकुचौं वह ढीठ न मानै निडर निपट रसदान-लिवैया ।
आनँदघन धुरि लाजनि भिजवै ऐसैं गोकुल को है रहैया ॥

केदारो] (४०५)

राधारमन की बलि जावँ ।
सघन वृंदावन मनोहर अति मधुर रस-ठावँ ।
गौर स्याम ललाम संपति रमि रह्यो द्रुम-बेलि ।
महा अनुपम रूप-सोभा लहलहनि रस केलि ।
आपु बन बन आप तनमय ह्वै रहत निसि-भोर ।
यह बनक याहीं बनै यहीं ओर याही ओर ।
देखि भूलत भूलि देखत अतुल अचरज-मूल ।
चाहि चौंधनि चौंधि चाहनि परसपर अनुकूल ।
नई रुचि नइयै रचनि छिन छिन नवल नित रीति ।
धन धनहु आनँदघन सौं चितहि-चातक जीति ॥

दरबारी कानरो ख्याल] (४०६) [चरचरी ताल

कौन देस बसायौ है निरमोही कान्ह हमारी
अँखियनि ऐसैं उजारि ।
आस बढ़ाइ उदास भए बिसवास कियौ घनआनँद प्रान-
पपीहनि प्यासनि मारि ॥

बिभास] (४०७) [चंपक ताल

तुमहिं रिझाइ रिझाइ रीझि हौं है हरषौं सुनहु रसिक रिझवार ।
मोहन गुननि गाइ ब्रजमोहन तिनतैं सुरहिं आकरषौं ।
मन दै मनहिं समोद सींचियै याकी घटी बढ़ी कौं लौं परखौं ।
आनँदघन ढुरि ढुरि घन पोषौ सु रसहि निरंतर बरसौं ॥

अड़ानो] (४०८) [चौताला

नंद महर को कान्ह किसोर छबीलो मेरेई बगर नित आवै ।
मुरली मैं रसभेद-भरी बतियानि सुनाइ रिझावै ।
मन अरबरत दौरि देखन कौं सास ननद की त्रास तनु तावै ।
आनँदघन हित प्रान-पपीहा तरफरात रहैं बीर पीर को पावै ॥

राग संकराभरन] (४०९) [चरचरी

मंडल मधि लटकि लटकि नाचत पिय प्यारी ।
फैलि फबति काछनी लग लेति लहर सारी ।
पहुँचनि धुरि मंजुल कर कंज तरल तारी ।
रूप अजिर गरजनि छबि बरसत निमिष ढारी ।
सुखमय मुख मधुर हसनि दसन-दुति उज्यारी ।
सरद चंदकांति छुटनि पाँति छेकि डारी ।
भृकुटि नचनि ग्रीव लचनि अंक लहक न्यारी ।
थेई थेई कहि कंठ-किलक पिय लिय जिय-बयारी ।
उरसि मुकतमाल हाल हेरन हियहारी ।
कंचुकि गुन-गसनि रसिक-लोचन फँदवारी ।
चोंप चुहल मचि रचि सुर करि अलापचारी ।
बिरल राग रूप रचत सबन-मोहकारी ।
ससि-मयूख-रंजित बन रसनिधि-बढ़वारी ।
आनँदघन ललित फलित केलि-बेलि-चारी ॥

राग कान्हरो] (४१०) [इकताला

मोरमुकट बनमाल पीतपट कटितट क्षुद्रघंटिका
ए नूपुर बजाइ गति लेत मटक सौं ।
लसित हास मुख-सुख-प्रकास कुंडल-उजास दृग-भुव-बिलास
कर-चरन-न्यास भुज ग्रीव डोरि धुरि चलत लटक सौं ।
आछी भाँति तान गावत थाँकी रीतिन सुर-ग्राम-ग्रास
नाहि चोख चटक सौं ।
आनँदघन मन धीर बापुरो कैसैं ठहराय आय जहाँ पैठत
री यह रूप भूप साजि काम सुभट कटक सौं ॥

(४११)

आज बनि बनि ब्रजबाल बाल मोहनलाल-संग रंग-
भरी रासमंडल नाचति ;

[४१०] ग्राम-संगीत में स्वरों का समूह । ग्रास=संगीत-भेद

नई नई गति लेति लटकि ग्रीव-ढुलनि भृकुटी-मटक मुख-बिलास
ललित हास होड़ाहोड़ी आखिन चित चोंपि-चुहल मचावति ।
तान गान मान के संधान जे बिधान बिदित तेई तेई आनि अति
अनुपम संगीत-रीति साँचवति ।
आनँदघन अद्भुत छबि बरनैं कौन कोबिद कबि रूप-गुन
लावन्य-माधुरी की लीक खाँचति ॥

ऐमनि] (४१२) [इकताला

रासमंडल बनि नाचत राधा-मोहन रसमगन ।
अंग अंग अति गति मटक देखियत झनकत नूपुर पगन ।
छिति पर सखी नछत्रजुत बिधु सगन गगन ससि धरत लखि दृग न ।
आनँदघन कलतान गान सुनि को न लग्यौ डगमगन ॥

रामकली] (४१३) [झपताला

पलक पट ह्वै रही रोकि मनसाँ मैं ।
अलकनि बनाइ बरुनी सघन साँकरनि जटि निकट बिकट
करि अगम उर-धामैं ।
हौं न जानौं कि यह नट छली छंद सौं कौन मग ह्वै दुरि
निकसि मिलि गयौ स्यामैं ।
इनहि कहि कौन बिधि रोष आनँदघन बाँधि निज गाँठि
गथ लोह के दामैं ॥

केदारो] (४१४) [सूल

मुदित मन नाचत री बनि रासमंडल मैं मधुर
मूरति पिय प्यारी ।
नई नई गति अति ललित रसवलित लेत लटकि पद
पटकि मटक सौं चोंपि-चटक-भरे भारी ।
सहचरि-गन गावति कल तानि उहउहे आनन पावन
रंजित मोहन धुनि कानन सुखकारी ।
चहूँ कोद भाद्यौ प्रमोद आनँदपयोद बरसत दंपति-
सोभा-संपति-बिसतारी ॥

[४१३] गथ=पूँजी ।

बिलावल] (४१५)

हरि - राधा रहसगहनि मिले ।
कछु निसि रहैं चलो उठि घर कौं मन-मदगज फिरि परत पिले ।
अंग अंग आरस-रस-बस झूमत महासुरत-सर-केलि हिले ।
गुरजन-भय अंकुस करि प्रेरित आनँदघन छलबलनि ठिले ॥

आसावरी] (४१६) [चौताला

वारे तुव दृग पर मृग बारे ये छबिभारे सलज डरारे ।
इनकी गति आगे मति हारे ये नव वन भ्रमित बिचारे ।
घूँघट घिरे हरत मोहन मन चंचल बिमल सहज कजरारे ।
आनँदघन अनुपम अनियारे चित चुभि लागत प्यारे ॥

पूरबी] (४१७) [चौताला

आँखें तेरियै देखी बनकहूँ ये सब काहू पै परति न कहीं ।
याही तैं खंजन मृग मीन कमल इनको पटतर नहीं ।
सरस कुटिल मंथर सधीर सित असित सुछबि लै बिराजि रही ।
इनके गुनगन गनि को सकै जिन बिबिध आनँदघन
पिय बस कीन्हे मिसहीं जब मुसकि चहीं ॥

सारंग] (४१८) [चंपक रूपक भेद

माल तौ सासौं कहियै जासौं कियैं निकु ठहरै ।
घरिक साँझ मन मूढ़ली ढरकि फिरि परिहै मोच कैसें बहरै ।
हाहा हित की बात मानि किनि भौंह-हँसनि-तक
करि-कर जिनि अहरै ।
कागद-नाव जलधि को तरिबो आनँदघन गुन गहरै ॥

हमीर] (४१९) [चंपक

बगर बगर तैं मोहनी जोहनी बाल दोहनी लै निकसीं
बिकसीं गाय - दुहावन ।
दिन आगैं अँखियानि चकोरिनि स्यामसुँदर - मुख मृदु
मयूख पियूष प्यावन ज्यौं-प्यावन ।

रसमूरति अँग अंगनि तिन है लपटि परताप-सिरावन ।
आनँदघन पिय बरसि सरसि कटाच्छ-धारनि सौं होत मनोरथ-सावन ॥

ललिता] (४२०)

पुरानी परि गई पहिचानि, लगी तुम्हैं नेह नए की बानि ।
भौंर की भाँवरि भरत फिरत हौ रसलोभी तजि कानि ।
सौंहैं सौंहैं आन दुते पर ग्वारि गँवेली जानि ।
नखसिख साँच के साँचे ढारे आनँदघन गुनखानि ॥

बिभास धुरपद] (४२१) [चौताल

स्यामसुंदर की मुरली बाजै, यह सुरभेद सौं स्रवन सुनत
सुधि बुधि सब बिसरै रह्यौ न परत बिन देखैं ए री ।
हाहा परति हौं पाय उपाय बताय जिवाय लै जैहौं बिन बिन
छिन सौं तेरी चेरी हौ पर वारौं फेरी ।
कासौं कहौं बिथा या जिय की कोऊ जानत नाहिन हिय की
मन हौं मन मुरझाय रहति हौं तन परबस गुरजन की घेरी ।
आनँदघन पिय कौं जब देखौं तब हौं जनम सफल करि लेखौं सुही
हितू तोही सौं इतनी बिनती मेरी ॥

टोड़ी] (४२२) [रूपक

बजावै साँवरो बंसी जमुनातीर ठाढ़ौ बनघट-औंहूं कैसें गैयै ।
घट घट मँझार तजि निकसौं धैयै मोहिनी सुनि सुनि लुभैयै ।
वाकी छबि हेरि तन सुरति बिसरैयै उनमगत पग डग भरनहूँ न पैयै ।
जोउम आनँदघन उलटि घर ऐसी सी निपट ही अटपटैयै ॥

जौनपुरी] (४२३) [मूलताल

हेली मोहिं ढोसी लागी री हरिमूरति हेरन की ।
बिसरति नाहिं बिसारेहू छबि हँसि हँसि दृग-फेरन की ।
मुरली-माँझ जमाय नाम गह गति छिन सौं टेरन की ।
आनँदघन उठि गई आड़ अब सब गुरजन-घेरन की ॥

४२२-उलटि=लौटि (सलग) ।

[४२२] औंहूं=डीवार, कगार । [४२३] ढौसी=ढौरी, धुन ।

भैरो] (४२४) [मूलताल

रसमसे लाल तिहारे नैन कहत ये निसि जगिबे के चैन ।
भली करी भोरहीं भाग रागभरे हमैं आए सुख दैन ।
सौंहैं देखि न सकत दीठि-डर नखसिख बने नवल छबिऐन ।
आनँदघन प्रानन सींचत हौ बोलि अमीनिधि बैन ॥

रामकली] (४२५) [मूलताल

रैनि उनींदे नैन तिहारे हो लाल सुहावने लगे ।
सीतल कियौ हियौ जु दरस दियौ भावते भाग जगे हो ।
भेरियै ठौर भोर भए पै तुम आज अनूपम रूप पगे ।
अँग अँग रँग बरसत आनँदघन प्रानन आनि खगे ॥

बिलावल] (४२६) [मूलताल

मोहि न करि रे लकबानी लंगर होति अबार जान दै
जान दै जमुना पानी ।
कहा तेरे हैं आयौ राज काज तजि खौरत औरै काज
तोहि ठठवारि परबसे न जानत बात बिरानी ।
भरि भरि ढरकि गईं साथिनि हौं कौन परी की पिरी
हाय कबहु न आयहै पूछैंगी जब ननद-जिठानी ।
आनँदघन हठ सठ स्वारथ लगि जानी हो पहिचानी ।
रावरी अब सु बावरी जु फिरि परयाई इहि
गैल निगोड़ी आजु तैं करिहौं सयानी ॥

परजदेसी] (४२७) [मूलताल

हेली साँवरो सलोनो कित जाय हाहा नेकु बताय ।
अब इहि गैल छैल छबि सौं मन लै गयौ संग लगाय ।
कहा नाँव कहा ठाँव न जानौं ठग्यो अचानक आय ।
चलत न पाय उपाय कछू नहीं क्यौं जैहौं घर हाय ।

[४२५] खगे=धँस गए । [४२६] खौरत=खेलते हो । ठठवारि=हँसी-ठट्ठा । परबसे=अपपति ।

नैननि हुईं अनाथ भईं दईं धन अरु मीत गँवाय ।
परी सोच - सागर आनँदघन तीर कहूँ न लखाय ॥

गौरी तिरबन]　　(४२८)　　[कपोतताल

अँखियाँ उठि उठि उठि दौरै मन की ओर अली ।
भोर के नंदकिसोर गए इहिं गैल-ओर सु तब तें लागी हैं आवन-आस ।
सुंदर बदन छबिपान-बिबस ये पलहू न धरति कलं बाढ़ी है पूरन प्यास,
मोहूँ सौं भई उदास ।
कहा धौं बावरे भई दई अब लौं ज्यौं त्यौं करि राखी इनकी
दसा देखें आवधि त्रास ।
वे आनँदघन हैं हो भटू को लहै उनकी गति गौरी गावैं कि बिभास ॥

बिभास बिलावल]　　(४२९)　　[चौताला

आई रसमसी उठि नई भोर भावते सौं हिलि
मिलि सब सुख लूटि ।
रँगीले नैन ढीले बैन छबीले मुख अलकैं रहीं छूटि ।
अधर दसन-छत राग रची लसि मुकतमाल-लर लटकी टूटि ।
अँगिया दरकि दरसत नख-खोज सुरति-रन-ओज मनोज-
बिसिख आनँदघन मनहु सरोज-सुभट-घट बेधे हैं कवच फूटि ॥

संकराभरन]　　(४३०)　　[चौताला

ज्यौं ज्यौं भिरति सुखद सुदेस हिमरितु रात की सियरानि ।
त्यौं त्यौं सरकि सरबस ढरकि लगि लगि लगि रहत हियरानि ।
रूप अनूप अमल सुगात मिलि मिलि रोम रोम समात कहि
आवति न सो नियरानि ।
आनँदघन तऊ बिच आय अरबरानि देखि खिसाय पुनि पुनि
लगत यह खियरानि ॥

ऐमनि बिलावल]　　(४३१)　　[चौताला

तेरी बलाय लीजै बार बार तोहि कीजै आँखिन पुतरी ।
कान ह्वै प्रान सुधा सींचति आरस भरि बोलनि तुतरी ।

[४३०] सियरानि=शीतमयी स्थिति ।

वारौं सिंगार आभा की छबि पर हारी कहूँ न जाहि इत उत री ।
आनँदघन हौं हौ देखौं पै रहि न सकौं अदभुत री ॥

रामकली]　　(४३२)　　[चौताला

सुरझँई बोलत डोलत मोहन सौंचे बैन ।
चोरी करि अपराधत सौंहनि निपट लजौंहैं नैन कहत निसि-चैन ।
अधर अंजन-रेख पलक पीक-लीक उर नखछत कीने बसन छिपै न ।
सबही अंग उघरत आनँदघन झूमि झूमि पग हमैं आए सुख दैन ॥

बिलावल]　　(४३३)　　[इकताला

आँखिन को सुख जमुना देखैं ।
रुचिर कूल रसमूल परस ही होति सिंगार सुअंजन-रेखैं ।
राधा - मोहन-रूप - माधुरी आछी उघरि परैं सो लेखैं ।
आनँदघन की घमंड निरंतर अंतर भाव-तरंग बिसेखैं ॥

गौरी]　　(४३४)　　[इकताला

जमुना देखे ही दुख भाजै ।
इंद्रनीलमनि इंदीवर - दलहूँ की उपमा लाजै ।
सब सुखरासि रसामृत - सींवा बृंदाबन मैं राजै ।
आनँदघन ब्रजमोहन पीव के अंग - संग रंग साजै ॥

गौरी]　　(४३५)　　[चंपक

मोहन राधा के अनुराग लखौ मुरली मैं गुन गावै ।
बासर बिरह-सरहु धर सालत बन बन डोलै ऐसैं ज्यौं बहरावै
पीत बसन-दुति देखि देखि पलकनि सौं परसि नैननि कौं मनु मनावै ।
आनँदघन यौं प्रान - पपीहनि रस - प्यासनि परचावै ॥

गौरी ख्याल]　　(४३६)　　[सूलताल

सहोली मैं कद लगा इश्क छिपावाँ ।
गुजे घाव दिलों दे अंदर कित वल कूक मचावाँ ।

४३५-सरहु-सरक (सतना) । ४३६-सहोली-सैयौनी (संदर) ।

[४३६] सहोली=सखी । गल=बात । गुजे०=हृदय में गहरे आघात की वेदना हो रही है किस ओर पुकार करूँ । माहल=प्रबल । दरस०=दर्शन की मदिरा ।

मुरलीवाले ने माहना कीती दारू - दरसन पावाँ ।
वेखें बाजू जिंद न रहन्दी किस विध इस परचावाँ ।
बेमेहरा दी राहाँ आनँदघन कैनूं आखि सुनावाँ ॥

पूरबी] (४३७) [मूलताल

कालिंदी जमुना सूरतनया कूलतरंगिनी ।
सप्तसिंधु - भेदिनि जगतारिनि वृंदावन - सुख - सीवाँ
पीतांबर - भगिनी ।
मधुर केलि आनँदघन अनुराग - त्रिभंगिनी ।
यमानुजा जमत्रास - निवारिनि हरि-लीला - रस-रंगिनी ॥

मालव राग] (४३८) [मूलताल

बरजि रही री इन अँखियन कौं पै ये अमैंड़ नहिं मानति ।
मोहन-मुखछवि - छाक छकि कुलकान्यौं ना उर आनति ।
ढरकि उरकि अरराइ परति हैं घूँघट-पटहिं पटकि अरुझानी ।
आनँदघन हित चातक - चौंरनि रावितोख ज्यौं ठानति ॥

सारंग] (४३९) [चौताल

कहा सुख होत है जमुना के दरसन को ।
मधुर किसोर रूप रसरैनी चाहतहीं मन-पटहिं चढ़त
रँग चौंप-चटक सरन को ।
मुरली - तान कान मँडराइ रहति ऐसो गुन तरल
तरंगनि के परसन को ।
उमग - ओघ अमोघ बाढ़त आनँदपयोद बरसन को ॥

लग—गल (लंदन) । मुके—मुक्के (सतना), मुक्के (...) । माहना—माहना (सजना) । रहन्दी—रहीं । राहाँ—राहों (पड़ी) ।

वेखें०=बिना देखे प्राण नहीं रहते । बेमेहरा०=इस निर्दय के रंग-ढंग किसे कहकर सुनाऊँ । [४३८] ज्यौं०=हृदय को बंधन में कसती रहती है । [४३९] सरन०=पूर्ण होने के लिए । ओघ=बाढ़ ।

रामकली] (४४०) [चौताला

जब तें तुम दई है दिखाई तब तें याको मन न रहाई ।
सब सुखदायक ब्रजनायक सुनौ बिकल भई है महाई ।
भँवर भए डोलत हौ चित तित नित नित लेत हौ नए सुहाई ।
आनँदघन ब्रजमोहन सोहन पपीहनि गति कहाई ॥

ख्याल] (४४१) [मूलताल

तुम छाँडौ मेरी बहियाँ ओर भए रसबाद करन
किन आए मोसौं इहा जू ।
आनँदघन घुरि किनहूँ बरसे उघरि उघरि अब कितहूँ
सरसे नहीं जाहु जहाँ पायौ है रस-लाहा जू ॥

सारंग] (४४२) [चंपक ताल

स्याम मनोहर जमुना - तीर मुरली - धुनि पूर ।
थावर रहति मुरझाई जित तित निकट दूरि थिर-चर-
गति पलटति सब ही चित चूरै ।
को जानै इन कहा धौं ठटी जू इते पै अबल है कह्यौ काम क्रूरै ।
आनँदघन की घमँडि रैनि दिन छिन न चैन मेरो अँखी
घिरि निपट बिसूरै ॥

रागिनी देवगिरी] (४४३) [चंपकताल

गागरि हूँ रे उचाइ लंगर अठिलात कहा अब ही जौ
कोऊ कितहूँ तें देखि पाइहै परिहै कठिन महा ।
या गोकुल को लोग चबाई करत फिरत है चाही चहा ।
आनँदघन इत घमंड छाड़ि दै पायनि परति इहा ॥

सारंग] (४४४) [मूलताल

हौं तौ रीझनिहीं भिजई मोहन मुरली की मीठी मीठी तानन ।
मोइ रही निसिदिन हिय जिय धुनि कहा करौं कल नाहिं
कहूँ अब कछुवै सुहात आन न ।

[४४०] महाई=बहुत ही ।

कासौं कहौं यह बिथा सजनी घूमि घूमि रहै बिरहा-घालन ।
आनँदघन बन घन रस बरसि बरसि तरसावत है प्यासे प्रानन ॥

सारंग] (४४५) [चपताल

कृपा-कादंबिनी जमुना बिराजै ।
मोद-मूरति दरस प्रेमपूरित परस स्याम रस बिमल जस संपदा साजै ।
अद्भुत अनूप भूतल लसति बसति नित हितमय नाम कीर्तन भ्रम भाजै ।
आनँदघन उमँडि तीर बिहरत रमहि ब्रजबधू बसकरन बंसिका गाजै ॥

रामकली] (४४६) [चंपक

महाराज ब्रजराज पूजि गिरिराज परम आनंदे ।
बल मोहन लै संग रंग सौं दाहिने नै दै बंदे ।
गोपी-गोप-समाज भाव भरि फूले फिरत सुछंदै ।
आनँदघन गरजनि जै जै धुनि सुनि मघवा-मद मंदे ॥

परज (४४७) [मूलताल

जमुना जमुनाहीं रहिहौं हौं ।
मधुर किसोर केलि चिंतामनि रसना लै जपिहौं हौं ।
बृंदावन सौभग-सींवा कै रुचिर पुलिन अहिहौं हौं ।
आनँदघन कदंब-कुंजनि सद सुख-पुंजनि ठटिहौं हौं ॥

रामकली] (४४८) [चंपकताल

बृंदावन बसि कान्ह आज नीकैं निसि बितई ।
किये मन भाए चैन डोलत सु रसीले नैन आरस-रँगीले
नैन इकटक प्रानप्यारी-छबि चितई हौ ।
प्रगटी भागनिकाई राधा रूपनिधि पाई बिलसे हौ
सुखदाई अंक भरि भरि सब संक रितई ।
आनँदघन उदार परसत सोभासागर करौं नितहीं बिहार
मरगजैं हार प्रीत-गीत जितई हौ ॥

४४५—मोदक—मोद-मंडित (सतना)।

[४४६] मघवा=इंद्र । [४४७] अहिहौं=बसूँगा । [४४८] रितई=खाली कर दी । मरगजैं=मसले हुए ।

कालिंगड़ा] (४४९) [इकताला

वारी हौं वारि डारी हौं आज की तिहारी या छबि पै ।
रसिक छैलबिहारी ऐसी न कहूँ निहारी कैसैं कही जाय काहू कबि पै ।
जावक-तिलक भाल निपट लग्यौ रसाल मिल तोरि डारियै
नवल नीको फबि पै ।
आनँदघन पिय रसीले लजीले नैन नवल कै वारौं लाल रबि पै ॥

टोड़ी ख्याल] (४५०) [मूलताल

हेला हौं कैसैं कै जाउँ जमुना-जल आगर छैल ठाढ़ौ
गैल माँझ करै बोली ठोली ।
मनमोहन आनँदघन रुनयौ ही रहै काहि कहा रहौं
दैया ऐसौ अबोली ॥

ईमन] (४५१) [मूलताल

कैसैं कैसैं मन बहराऊँ, गहत गहत न रहत है ।
लोनो मुख सुखनिधि देखैं बिन आँखिनि कहा दिखाऊँ ।
सुनि सजनी राधा के कहैं बिरह बिकल अपनपौ न पाऊँ ।
सरस परस आसा आनँदघन क्यौं भरोसैं छाऊँ ॥

मलार] (४५२) [मलताल

आए आए री बादर अलिहीं सुहाए धुनि बरन बरन ।
स्यामसुंदर मुरली मैं मलार जमाइ रहे सुर धुरवा से लागे हैं ढरन ।
जमुना-तीर कदंब-तर ठाढ़े बनक ठनक उर अभिलाष भरन ।
आनँदघन रसरंग-झरन कामताप-हरन ॥

सोरठ] (४५३) [चौताला

झूलिबौ करति हरि-हिय कै हिंडोरे हँसनि राधे लाड़-गहेली ।
तैं ही रस लै जान्यौ री या प्रीति-पावस को भाग-सुहाग-नवेली ।
हुलसि झुलावति बिजन दुलावति रीझत भीजि चाह-सहेली ।
सावन मनभावन आनँदघन बरसावत सौं मिलि झुलियै अलबेली ॥

४५१—कैसैं-बिथुरैं (सतना)। कहैं—टेरै (लंदन), मेरे (इ० दा०)।

सारंग] (४५४) [इकताला

परै श्री ब्रजराज - परस - सवाद ।
ब्रजमोहन को चरन - धरन - छबि लोचन लेहु प्रसाद ।
प्रान पोष पावैं पल पल मैं मादन मुरली-नाद ।
आनँदघन लीला - रस चाखैं बढ़ै प्रेम - उनमाद ॥

रामकली] (४५५) [चंपकताल

कीरति - कुख - उजियारी लड़ैती राधा प्रगट भई हो ।
मंगलबेलि सकल ब्रज छाई सुकृत - समूह - जई ।
परम प्रेम की रासि रसीली बाढ़ी है ब्रज - ओक नई ।
ब्रजजीवन की प्रानसजीवनि मोद - बिनोदमई ।
जाकी चरनरेनु कमलाहू चोंपनि सीस चढ़ाइ लई ।
आनँदघन घमँडनि कों बरनैं बहु बिधि तपति गई ॥

बिहागरो] (४५६) [इकताला

रावलि मैं अति ओप बढ़ी ।
गोकुलचंद अनूप चंद्रिका सुकृतनि कीरति - कुकुम कढ़ी ।
श्री बृषभानु गोप भागनि की महिमा कैसैं परति पढ़ी ।
चिर जीवौ लली लड़ैती राधा आनँदघन गुन-रूप-मढ़ी ॥

सारंग] (४५७) [इकताला

श्रीपति पायनि चायनि पाय ।
नायनि को कर परस होत ही हियो चढ्यौ हुलसाय ।
चित्रा चतुर चोप सौं ल्याई देखि रसमसी राय ।
आनँदघन रस उमँड घमँड मैं घूँघट खुल्यौ बनाय ॥

गंधार] (४५८) [चरचरी

तेरे मुखचंद को चकोर, सुंदर ब्रजचंद छैल नंद को किसोर ।
अति अनूप रूपरासि चाहत निसिभोर, अद्भुत सुधावृष्टि

४५४—पोष—पोष (लंदन)। लीला०—सार लगी निरंतर (सदना, २३०)।
४५८—बृष्टि—छब (सतना)।

[४५६] मढ़ी=युक्त ।

होति चितवत दृगकोर ।
सुनि सुजान राधे हिय कीजै न कठोर, आनँदघन प्रान-पपीहै
दीजियै न ओर ॥

कनरौ स्याम] (४५९) [सूलताल

हौं कहा करौं है, गोकुल गाँव बसि कैसैं भरौं है ।
जमुना-तीर कान्ह बंसी बजावैं, वाकी धुनि सुनि मेरो जियौ बौरावै ।
तानन बानन बेधै प्रान, और दसा कहा करौं बखान ।
अपनो सो हौं करौं दुराव, उघरि परे पै कौन उपाव ।
जासैं ननदिया सासु रिसाय, काहू बिधि कछुवै न बसाय ।
छांह छियनहूँ को न अघाय, गोल गरबारिन चलै चबाव ।
मो ही जो गति लागी मोहि, कै औरनि हूँ सूझति तोहि ।
जो कछु ही सो दई जनाय, हाहा अब हित की सु बताय ।
आनँदघन या बिधि रही छाय, बिरह-ताप बारत तनु ताय ॥

टोड़ी] (४६०) [चौताला

ग्यान ध्यान धारना समाधि धरि धरि देखे पै न देखे ।
ईस निरीसन हूँ जो कहूँ लखे तो चटपटिन दरस न परेखे,
अपनंगे इच्छा बिसेखे ।
मोसे अनकछू को गनती कहा अब एक कृपा-गुन सुनि अवरेखे ।
आनँदघन हौं ढरौ तौ ढरौ दुख - पुर परैं सब लेखे ॥

बिभास] (४६१) [चौताला

जनम जनम गुन गाइ आगैं अजहूँ गावत आगैंहूँ गाइहौं ।
जो सुख होत सु हौं ही जानौं न सकत जनाइहौं ।
प्रान-अधार सदा के संगी तुमहीं तैं तुमकौं पाइहौं ।
दीन पपीहनि के आनँदघन आस बढ़ाइहौं ॥

सारंग] (४६२) [चौताला

अंजन दै गी राधे न परि गहर, है हा हा ।
निकलक मार टरी जाति मनभावन ब्रजमोहन-मिलन-उमाह ।

४६०—सुनि—२१ (सदना)।

सखी त्यौं मुलकि मुलकि दरपन गहि आनि धर्यौ चित नवरंगी नाहा।
उमँहि उठी आनँदघन घमँडनि रंझनि भींजि दुरि चखां आहा॥

सारंग] (४६३) [इकताला

ब्रज को बिरह सह्यौ न परै।
बनवारी की भाँवरनि हिय दाह गह्यौ न परै।
देखि देखि अनदेखें हू अपरस-दुख लह्यौ न परै।
आनँदघन भरिपूरि चाह - रस - स्वाद कह्यौ न परै॥

धनासिरी] (४६४) [मूलताल

चोवो नगस निखावाँ तामैं घाली घाली जावाँ।
सुण वो साँवलिया गोकुल-वालिया दी नानू ना सरसावाँ॥

संभाइच] (४६५) [मूल

छैलवा रंग-रँगिलवा रंग-रँगिलवा रसिक-रसिलवा।
मनमोहन दिन दूलह छबिलवा जोबन - छकिलवा।
प्रान - पपीहनि हित आनँदघन रस - बरसिलवा।
अपनो तनमन सरबसु वारौं अरी नीको लाड़-लाड़िलवा॥

ऐमन बिहाग] (४६६) [मूलताल

बंसी कहा बैर परी है।
कानन धुनि सड़गति रातदिन कल नहिं एक घरी है।
तानन बानन बेधे हियरा ऐसैं अरनि अरी है।
जौ गोकुल बसियै आनँदघन लागी बिरह - झरी है॥

टोड़ी ख्याल] (४६७) [चरचरी ताल

घुम्मर पाँवदीं बिद तुसाँ नाल नैसन रंगला चंगला जमाल।
ब्रजमोहन आनँदघन प्यारिया निपट गरीब पपीहाँ नू पाल॥

बिहागरो] (४६८) [इकताला

बलिहारी गोकुलचंद की।
भादौं - अरध राति माहैं तिथि प्रगटनि ज्योति अमंद की।

[४६२] निमखक=नीरव, निर्जन। मुलकि=प्रसन्न होकर।

मिट्यौ तिमिर ब्रजलोक-सोक को दयौ धरक दुख-दंद की।
भागनिकाई को बरनै आनँदघन जसुदा - नंद की॥

बिभास] (४६९) [चंपकताल

दोऊ रूपरासि प्रेमरासि सब सुखरासि करिकै
बिलास नीकैं चले हैं भवन कौं।
रीझि गरबाहीं दियैं मुख देखि देखि लियैं मन मन हाथ
लियैं अति रति ओप बाढ़ी रमनी रमन कौं।
बृंदावन-कुंज तम-पुंजनि कै निकसत अंगनि प्रकास सोई
साधन गवन कौं।
आनँदघन सधीर ठाढ़े ह्वै सुधारैं चीर रँगीली-जमुना-
तीर जानिकै पियारी सोभा सुधा अँचवन कौं॥

सारंग] (४७०)

जै जमुना मंगलकारिनी।
जमानुजा तमतापटारिनी बिबिध फंदनिरवारिनी।
मधुर किसोर केलि-रस - रैनी बृंदाबन - भू - चारिनी।
मोहन ही मन - पटहिं चटक दै भाव रंग - बिस्तारिनी।
गोपी-गोप ग्वार - गैयाँगन सब कौं सब सुखधारिनी।
नित ओप्मा - परम तैं सरसी दरसी नित्यबिहारिनी।
तीर गए मोहन मन आवत निहचय परिचय - पारिनी।
देख्यो कहूँ सुनी आगैं हूँ जगजननी जगतारिनी।
देखैं बनै कहत क्यौं आवै महिमा अमित अपारिनी।
आनँदघन रसरासि - रसीला नीरसता - अघ-हारिनी॥

सारंग] (४७१) [इकताला

जै जमुना जीवौं तोहि री।
तेरैं तीर गाय बलबीरहि बिहरौं यह है मोहि री।
बृंदाबन मैं बसौं निरंतर तो लखि रही जु सोहि री।
तो सी तुही महारसधारिनि मैं नहिं पाई टोहि री।

परिचय रचै स्याम रंग बाढ़े कृपादृष्टि सौं जोहि री ।
आनँदघन भर लगै निरंतर अंतर निज गुन पोहि री ॥

कान्हरौ]　(४७२)　[इकताला

हिमरितु दंपति अति सुखदाई ।
गिरिकंदरनि-रचावत मंदिर लखि निज संकेत ठौर ठहराई ।
नव मखतूल तूल तें कोमल दल-बल कल अनुकूल महाई ।
रसिकराय रसनिधि राधा-हित रचि पचि सुंदर सेज बनाई ।
पीत बसन बिछाइ हिय तापर भुज-भरि प्रानप्रिया पधराई ।
सो सुख कछू कह्यौ क्यौं आवै अतुल अभंग प्रेम अधिकाई ।
हिलनि मिलनि उर मिलनि रिझनि रुचि खिलनि अभूत बिलास-निकाई ।
आनँदघन संपै घुरि घमंडनि बिबिध केलि की झरी लगाई ॥

टोड़ी]　(४७३)　[चंचल

कहा तू अंजन दै करिहै हे ।
पिय को हिय तैं हरयौ सहज ही अब यौं कहा हरिहै हे ।
तेरो गहरु लाल की आरनि कौ लौं सही परिहै हे ।
बात कहत मतराइ निहारति बहुरि कहा लरिहै हे ।
आनँदघन सौदामिनि ह्वै मिलि चंद चल्यौ ढरि है हे ॥

रामकली]　(४७४)　[चंचल

अहो हरि आए महा दरबार मैं. कहा बनि आवै टहल दरबार मैं ।
साधुसिरोमनि घर मैं साधन चोखे गँसे परचार मैं ।
सजग सिथिल सब अंग देखियत पैरे निपट मनोरथ-सर मैं ।
दूँज चंद की पाँति प्रगट उर आनँदघन रस-भर मैं ॥

बिलावल]　(४७५)　[मूल

कैसे रहत कहाइ सनेही रसिक छैल ब्रजमोहन स्याम ।
बृंदाबन के चंद छबीले बड़ो अँधेर छुपात हौ बाम ।

[४७२] संपै = झंपा, बिजली । [४७४] दरबार=उतावली ।

कपटी कुटिल कालिमा-मूरति बरसत बिषहि सुधाधर नाम ।
बीच दियें ही मिलौ बिलासौ ऐसेन के ऐसे ही काम ।
कहा करौं क्यौं भरौं भावते तनकौ नहीं मनै बिसराम ।
भँवर भाव डोलत रसलोभी उसरि कीजियै तुमहिं प्रनाम ।
मिलौ महूरत साधि परब लौं गाहि न परौ छल-बल के धाम ।
प्रानदान-सुख तुमहिं दिखावत चितवत बिसम परेखनि जाम ।
चाहति चाँदनि चकोरी अखियाँ बिरह-भरनि परीं तन-छाम ।
आनँदघन घुरि दुरे रहत क्यौं करि चातकी पियावत घाम ॥

तथा]　(४७६)

गरब-बारुनी-छके छबीले झूमत फिरत सखि अक भोर ।
अति गंभीर चेतना बेरी करतो बिबस काम के जोर ।
रूप - भूप सीरासन - मंडित कुवलय-केलि कलिंदी-ओर ।
बृंदाबन घन कुंज - पुंज तहँ साह भए बिहरौ चितचोर ।
बरन बरन तन लेप ललित गति अलक सिंगार के छोर ।
निपट निरंकुस घिरे न किनहूँ तोरि संक - साँकरैं कठोर ।
भँवर भहरानि दान - बस मच्यौ महा मजबीथिन सोर ।
करपन बिकल माधुरी अबला बिदुकि रहति खरिक गिरि ओर ।
चूरत कठिन कपाट कानि के पैठत घर घर करत ढँढोर ।
धीरज आइ हारि आनँदघन करत बिबिध सुख सरनि झकोर ॥

ऐमन कल्यान]　(४७७)　[मूलताल

कछु लखी न परै तिहारे जिय की कान्हा कपटी ।
अपनी सौं हरि आनि मिलत हौ तहीं जाहु जहाँ सीखे हो झपटा-झपटी ।
काहे कौं रसबाद करत हौ मो सत हौ लगी दौरि लपटी ।
आनँदघन बिसास-बूँदनि अब आए हौ करन रपटा-रपटी ॥

ललित]　(४७८)　[चौताला

बसन सुधारि बदन पखारि सुधरि आए तौ मेरे ऐन ।
सब बिधि साधि साधु ह्वै निबटे पै कहाँ लौं दुरत ये रैनि-जगौंहैं नैन ।

काहे कौं पती पटम रचत हौ मन हलें मुँह चिकने बैन ।
आनँदघन भोर ही चबात उघरि उघरि दुखदैन ॥

काफी] (४७९)

लै राखौं अपने पायनि तर ।
यह मन भटकि आयौ अंग कुलन कमललोचन करुनाकर ।
याकी दसा देखियै मोहन दानिसिरोमनि लै थापौ घर ।
लैहौ तौ देहौ सबही कछु चिंतामनि अधमनि चितहर ।
मरम भरयौ मँडरात निरंतर निहचै रचै न एक घरी घर ।
हा हा है हो हरि फिरि हाले कीजै निज चरन-चकचर ।
भूल्यौ फिरत भरोसो भारी तुम से नाथ न ऐसो खलबर ।
महा बिजाती बिरत मोहमय थक्यौ चपल छाँडत नाहिन छर ।
प्रेमसिंधु के कूल बास दै लीला - मगन करौ निसिबासर ।
सोच-ताप-मोचन आनंदघन अपनो करि लगाइ दीजे भर ॥

(४८०)

गोकुल कै कान्ह मन मोह्यौ ।
डगर चली हौं जाति सहज ही मो घाँ मुसकि जोह्यौ ।
अब तब तैं धीरज न धरत है अपनो सौ बहुतै टोह्यौ ।
आनँदघन रीझनि सौं भिजयौ मुरली की ताननि पोह्यौ ॥

सारंग स्याल] (४८१) [मूलताल

मन कौं खिलवारि नवेली ग्वारि रँगमगी फिरति
जगमगे स्याम के संग ।
गोरे तन पहिरि पतंगी सारी झमकि झपकि गावै गारी
भिजावैं आनँदघन पिय रसरंग ॥

बिलावल] (४८२) [मूलताल

जमुना आगैं जमुना पाछैं जमुना देखौं सब ही ठौर ।
बनवारी कौं ढूँढि थकनि मैं जमुना ही सौं मेरी दौर ।

[४७८] बैन=घर । पदम=छल-छंद । [४८१] पतंगी=रंग-बिरंगी महीन साड़ी ।

याकै तीर सदा सुखि खेलत राधारमन रसिक-सिरमौर ।
अब आनँदघन घमँड भरोसे या बिन काहि ताकियै और ॥

धन्यासिरी] (४८३) [चंपक

हौं न जानौं हौ हरि भली बुरी तुमहिं रुचे सो करियै ।
अपनो जानि जिवैहौ कबहूँ इन अभिलाषनि मरियै ।
अंतर की गति देखि दयानिधि अपनेई गुन ढरियै ।
आनँदघन हौ दीन पपीहा पालि पोषि लै भरियै ॥

तथा] (४८४)

लीला को मरम न जान्यौ जाइ ।
कैसैं कै करियै उपासना समुझन मति बौराइ ।
एक कृपाई गुन उर आएँ रंचक टिक ठहराइ ।
दे आनँदघन की सुधि धारै सहजै दरसै आइ ॥

कमोद] (४८५) [मूलताल

मैं न जान्यौं री कछु ऐसो भेद गोकुल निपट अनीति ।
कान्ह कहा काहू को लेत और छिन करि लीनी प्रीति,
चबाइनि सौं नहीं सकियै जीति ।
या बिधि को अमरनाम लियौ बिधि रही भाँति सौं मिलि पर्तीति ।
आनँदघन को बचन सुनत ही लहलहाति रसरीति ॥

कान्हरो] (४८६) [चौताला

यह सुख कैसैं कहिबे मैं आवै जाहि मन बिचारै हू न पावै ।
जौं पावै तौ प्यारो गँवावै इतनियौ कौन सुनावै ।
बृंदावन धाम दंपति सुख - संपति निगमौ दूरि तैं दूरि बतावै ।
तिनहीं की कृपा भए आनँदघन सरस मौन गुन गावै ॥

सारंग] (४८७) [चंपक

गुन गाइ गाइ ज्यौं ज्याइ लियौ ।
सुनहु बिसासी ब्रजमोहन मैं यह धौं कहा कियौ ।
झूलने पै दरसौ न देत हौ काहे को है तिहारो हियौ ।
आनँदघन तुम छाइ रहे हौ जरति भरति जु कछु बिधना है दियौ ॥

टोड़ी] (४८८) [चंपक ताल

कोऊ है या समुझावै मन रोकत टोकत है पराई बहू बेटीं ।
ढीठ भयौ ढिग ढुक्यौई आवत बातैं कहत कपट - लपेटीं ।
घरी द्वैक मैं समुझि परैगी आजु भले कौं भोर अखेटीं ।
आनँदघन जोबन बनयौ देहैं बैबलान की कान्यौं मेटीं ।।

सारंग] (४८९) [चंपक ताल

बनवारी साँवरि आगैं रहौ बोलत क्यौं न बिलासी ।
बन मैं बंसी बजावत डोलत घर मैं भए हौ मवासी ।
काननि धुनि मँडराति रहति है तुम नव बेलिनि भँवर बिलासी ।
आनँदघन उघरनि लौं बनए रासत हौ कित प्यासी ।।

सारंग] (४९०) [इकताला

बिरहा होरी खेलन आयौ ।
कहा कहौं ब्रजमोहन जू जैसो इन सांस पठायौ ।
रंग लियौ अबलानि अंग तैं धीर-अबीर उड़ायौ ।
प्रान अरगजैं राखि रहीं हैं तुम हित-धाम बसायौ ।
नकवानो करि नाक नचावत धींगड़ महा मचायौ ।
थोरा चैन न रहन देत है अगिन चाइ चरचायौ ।
भजी फिरति खिचारि हमचलई यह डोलत संग धायौ ।
तुम्हरी ठौर रौरे पारी इन कै तुम प्रेरि पठायौ ।
कहियै कहा बिगोवनि याकौ रस मैं बिरस बढ़ायौ ।
सुघर स्याम आनँदघन पिय तित छाए इत यह छायौ ।।

बिलावलि] (४९१) [इकताला

जमुना देवी दीनदयाले ।
अधमतारिनी जगउधारिनी मो से बहुत पतित प्रतिपाले ।
राख्यौ लै निज सरन कृपा करि दूरि कियौ जे जे दुख साले ।
आसा-बेलि सींचि आनँदघन हरैं बढ़ाइ लालसा लाले ।।

[४८९] मवासी=वह किले का रक्षक, घर से न हटनेवाला ।

सारंग] (४९२) [चंपक

कहाँ जाइ बिरमि रहे हौ कान्ह कंत आयौ है बहुरि बसंत ।
देखि देखि तेई हाल होत बेलिनि पै अलि मैमंत ।
झूलत फूलत रमत भमत रस रासत चाखत हैं द्रुमवंत ।
आनँदघन द्रुम यौं सुरझति लहियैं न तिहारो संग हा जिनि लीजै अंत ।।

सूहा] (४९३)

देखौ देखौ हो बड़भागी राधामोहन अनुरागी ।
सजनन को सुख लेत सदाई ऐसी कछू लग लागी ।
पूरन-प्यास-भरे रसमूरति गति-मति अति रति-पागी ।
आनँदघन संजोग - भर भीजे बिरह - बैरागी ।।

नट] (४९४) [इकताला

हरि होरी खेलत रस राख्यौ ।
प्यारी पै हठ आँखि अँजाई सरस परस-रस यौं चाख्यौ ।
धनि यह फाग कियौ जन ऐसैं सफल हियै को अभिलाख्यौ ।
आनँदघन बिनोद-भर झुरमुट लखैं बनै न परत भाख्यौ ।।

धनासिरी] (४९५) [मूल

थे कैयाँ होली खेलो म्हारा कान्ह जी ।
औरां कौं धोखा सूं म्हारी अँखियाँ मूकी मेलौ ।
परा रहौ जौ इसौ कूंड छै थासूं होसी मेलौ ।
आठ पहर अमला रा मोटा हेलो देता डोलौ ।
आनंदघन भूल्याई आवौ कोई गालौ देलौ ।।

जैजैसिरी] (४९६) [इकताला

अति रस बाढ़्यौ री बाढ़्यौ पिय प्यारी कौं होरी ठानत ।
भरत भजत झपटत लपटत सनेह सौं तन मन सानत ।

४९६—बनांत—बरांन (नगना) ।

[४९५] कैयाँ=कैसे । परा=दूर । इसौ०=ऐसा कौन है । होसी=होगा ।
मेलौ=साथ । अमला०=नशे में चूर । हेलौ=पुकार ।

राधा - मोहन की रँग - रचनि फैसैं बनति बखानत ।
आनँदघन विनोद चमकनि सुख सखि नैनाई आनन ॥

गौरी] (४९७) [चरचरी

तैं कहा है टौंना कीनौ अरे अरे साँवरे ।
मुरली मांझ ठगौरी गौरी पूरत हौ मेरो मन हरि लीनौ ।
केसरि खौरि तुमरे नैना मिथुरैं अलक बदन रँगभीनौ ।
आनँदघन रीझनि लै भिजई वा पर सरबसु वारने कीनौं ॥

ऐमनि ख्याल] (४९८) [मतताल

तिहारे दरस की आस, अँखियनि लागि रही हो ।
ब्रजमोहन आनँदघन पिय आनि अब सिरैयै हिय दौं लपट उसास ॥

मलार ख्याल] (४९९) [चलती चरचरी ताल

बरसै श्रमजल-बूँदनि रसीलो साँवरो नयो मेह ।
आनँदघन की घमँडनि ब्रजमाहन सोहन उज्यारी चाँपनि
सौं रमँझ्यौ अनर्नो चातकी के गेह ॥

पूरबी] (५००) [चौताला

राधा राधा रटि राधा राधा रटि मेरी रसना रसीली भई ।
ज्यौं ज्यौं ज्यौं पीवति या रस कौं त्यौं त्यौं प्यास नई ।
ब्रजजीवन की परम सजीवनि मो निज जीवनि आनि लई ।
आनँदघन उमंग - भर लाग्यौ है रही नाममई ॥

पूरिया] (५०१) चंपक

लखियै लखियै रहति है राधे देखति हौं कौ लौं
कान्ह सौं न रचिहै ।
तेरी यह सतराँहीं बानि तेरी ई मानि कब लचिहै ।
मुरली-धुनि संकेत बचि रही फूलनि सेज सँवारी मचि है ।
आनँदघन अभिलाषनि उनए दामिनि लौं कब नाचिहै ॥

टोड़ी जौनपुरी ख्याल] (५०२) [मूलताल

सुंदर ब्रजमोहन प्यारे नीके लागौ जू ।
जितहीं चित बरसौ आनँदघन नित हौं नवल रस पागौ जू ॥

रामकली ख्याल] (५०३) [मूलताल

रैनि-उनींदे नैन लालन लागत हैं अति नीके ।
पीके - पगे अनुराग - रँगे या नवल छबीली ती के ।
इनकी सरस अधखुलनि आगैं परे हैं कोकनद फीके ।
आनँदघन झूमेई आवत निपट लगैं हैं जी के ॥

केदारो] (५०४) [चंपक

बसि रहे तरनितनैया-तीर, कान्ह राधिका भामा बृंदाबन मैं ।
सब निसि जागि रस पागि पागि उर लागि भुज भरि,
रगनि भरी जोन्हक जगमग मैं निपट रँगमगे उमँगनि अधीर ।
आनँदघन बरसत सरसत परसत तरसत तरसनि आपुस मैं
साँवल गोर सरीर ॥

देसनि ख्याल] (५०५) [मूलताल

बनवारी रे तैं तो बावरी करी
बिसवासिनि बिष-भरी बँसुरिया तनिक बजाइ सब सुरति हरी ।
मन की बिथा कौन सौं कहियै बोलत जैसें घरी घरी ।
आनँदघन सनेह-भर झूमनि पर चाहि अब बपुरि परी ॥

गौरी ख्याल] (५०६) [मूलताल

मेरी अँखियनि लाग्याँई रहै साँवरो उजियारो ।
आनँदघन ब्रजमोहन रसीलो प्रानन को रखवारो ॥

कालिंगरा] (५०७) [इकताला

गोकुल नौं कान्ह जी मूँनै भावै छै ।
बनमाला-पहिरयाँ ग्वाला-सग गऊआँ - चारयाँ आवै छै ।
काँमड़ गारी नद जी री प्यारी मधुरी बैन बजावै छै ।
आनँदघन ब्रज रूपौ ब्रजमोहन रस-बरषा बरसावै छै ॥

पूरिया] (५०८) [पंचमताल

आनि गानि रागनि भरनि है डगमगी रँगमगी भई पिय-संग ।
जोबन - रूप सुहाग राग भरि नवल दुलहिया जगमगी ।
लाड़-लड़ीली रस-बरसीली लसीली हँसीली सनेह-सगमगी ।
आनँदघन पिय प्रान पैठि रही ढीली हगनि लगमगी ॥

सारंग]

(५०९)

परेखनि उरके जाल हिये ।
ब्रजमोहन पिय भए अमोही फँसैं परत सिये ।
बिषम बिलासिनि बंसी-धुनि करि ब्याकुल काढ़ि लिये ।
मन मैं कोलिन खोलि कपट-पट निपटै खैल किये ।
सरद सुहाई रातिनि के सुख तब ता भाँति दिये ।
दुसह दिनेस-बिरह ताचे अब वे निलजे प्रान जिये ।
जमुना-तीर ताकि बूड़त क्यों जहँ जहँ सुरस पिये ।
आनँदघन उद्वेग-भार भ्रूमैं परत न छाँह छिये ॥

तथा]

(५१०)

ब्रज को बिरह न बरन्यौ जाइ ।
गिरधर भए तुम्हारे भारे पल पल कठिन बिहाइ ।
देखैं बनैं न परत बिचार्यौ चहूँ ओर अकुलाइ ।
दुख-दौं लाइ द्वारका छाए आनँदमेह कन्हाइ ॥

सारंग ख्याल]

(५११)

[सूलताल

चपल चतुर कान्हर प्यारे सूधैं चितवौ मेरी ओर ।
ब्रजमोहन आनँदघन तुमहिं कनौंड़ कौन कौ बरसत हौ रीझ झकोर ॥

जैत]

(५१२)

[सूलताल

रिसाइहौं मनाइ करि करि मनुहारि ।
अब तुम लेहु निहारि रसिकवर समुझि सँभारि ।
जाके अंग संग सुख चाहियै ताकी सहियै रारि गारि ।
आनँदघन तुम सुघरराय रस राखियै बिचारि ॥

रागिनी बिलावल]

(५१३)

[इकताला

ब्रजमोहन की बल्लभा राधा बनरानी ।
सोभानिधि सौभाग्य-सींव बिधना-बरबानी ।
धन्य पिता बृषभान जू जगमनि बड़रानी ।

[५०८] अगमगी=बँसम ।

धनि कीरति कुलवती महिमा अगजानी ।
भादौं सुकला अष्टमी तिथि परम रवानी ।
जनमी लली सुलच्छनी जिहिं कुल सिरानी ।
श्रीदामा की पीठि पै लाड़नि सरसानी ।
दृगनि ज्योति लखि होति है भोरियौ सयानी ।
सरस बधाई चाव सौं बरसानै मानी ।
नँदरानी को हित-कथा क्यौं परति बखानी ।
ब्रजमंडल मंगल महा सुषमा अधिकानी ।
आनँदघन बरषा भई मनसा हुलसानी ॥

गौरी]

(५१४)

श्री चैतन्य दयानिधि धीर ।
कलिकालीन मलीन दीन जन पावनकरन परम गंभीर ।
भाव अभंग तरंग-त्रिभंगित महामधुर रसरूप सरीर ।
बोहित-नाम चढ़ाइ बहुत जन प्रेममगन करि पठए तीर ।
पूरन चंद नंदनंदन को उदय सदा उमगनि की भीर ।
निज जन रतन-जाल सुभ राजत धुनि हुंकार उसास समीर ।
त्रिविधि ताप तैं जरत जीव जे सीतल किये परस-पयनीर ।
करुनादृष्टि वृष्टि सौं सींचे जय जय जय आनंदसुधीर ॥

परज]

(५१५)

[इकताला

हो आजु रावलि रंग रह्यौ ।
कीरति कन्या जनी सुलच्छनि सुनि गोकुल उमह्यौ ।
मंगल की मनि प्रगट भई निज प्रकास चह्यौ ।
सुर-समूह पुहुप बरसैं परम सचु लह्यौ ।
बंदनि या रस को जस भेव सौं कह्यौ ।
आनँदघन सुभ संजोग अब सब निबह्यौ ॥

[५१३] श्रीदामा=राधा के बड़े भाई । [५१४] त्रिभंगित=तरंगित । परस=स्पर्श । आनँद०=आनँद के बादल (चैतन्यदेव); आनंदघन (कवि) ।

रागिनी मलहटी] (५१६) [झपताल

झूलत हिंडोरना स्याम-स्यामा प्रेम-रसमसे ।
रूप-जोबन-भरे रहसि रंगनि ढरे जगमगे चखन अतिहीं लसे ।
सिथुरे सुथरे बार हियैं फूलनि हार रँगभरे बसन परिमल-बसे ।
मधुर बृंदाबिपिन सरस जमुना-तीर द्रुम-बेलि केलि-गाँसनि गसे ।
आनँदघन घमँडि राग बरसत रसँडि पावस बिलास प्यासनि ग्रसे ।।

टोड़ी] (५१७) [मूलताल

सुमन हिंडोरनौं हुलसि झुलावत,रसिक छैल अपनी प्यारी कौं ।
अतुल रूप की उमगनि मेल मैं परे नैन,मन फूलत झूलत
झाइनि मतवारी कौं ।
जमुना-तीर सघन बृंदाबन सेवत सुख-हित-हरियारी कौं ।
आनँदघन रीझनि भर भिजवत बेली सुकुँवारी कौं ।।

बिभास] (५१८) [चंपक ताल

कुलही दै डलही स्याम-रूप-गोभा बैठे कान्ह ब्रजपति की गोद ।
रुचिर खिलौना लीने मुख छबि देखि देखि मन मगन-मोद ।
वारि वारि मनिमाल देत बड़भागी नंद पूरन बिनोद ।
बरस-गाँठि कुलमंडन की बरसत सरसत आनंदपयोद ।।

भैरव] (५१९) [चंपक

झुलावति ब्रजरानी कनक-पलक पौढ़े ललन ननक ।
देखि देखि सुखसदन बदन अति फूल-भरी,बिधिना
बनाई मनभाई बनक ।
मोहन पूत लह्यौ बड़भागनि जस बरनत सुक सेस सनक ।
गोकुल-जीवनधन आनँदघन जसुदा जननी नंदराय जनक ।।

गंधार] (५२०)

आजु के दिन की हौं बलि जावँ ।
कुलमंडन की जनम-बधाई बाजति गोकुल गावँ ।

[५१८] कुलही=टोपी । गोभा=अंकुर, अभिव्यक्ति ।

महाभाग ब्रजरानी जू के बंदन कीजै पावँ ।
जिन हित घमँडि रह्यौ आनँदघन जसुदानंदन नावँ ।।

सारंग] (५२१) [इकताला

हौं कहा जानौं इन साँवरिया मुरली मैं कहा धौं बजायौ ।
सुनि मेरो मन तरफरात तब तैं न धरत कल मैं बहुतै बहरायौ ।
सनमुख ह्वै कै जान सलोनो मोहन-मूरति क्यौं हू न होत गहायौ ।
ब्रजमोहन आनँदघन मोही पै अति छायौ बिरह-ताप तनु तायौ ।।

कमरी ख्याल] (५२२) [मूलताल

देखन की लगी डौरी है ।
साँवरी मूरति जब तैं निरखी परी ठगौरी है ।
इतने पै यह बैरिनि बँसुरिया अतिहीं खोरी है ।
रीझनि लै भिजई आनँदघन मति भई बौरी है ।।

भीमपलासी] (५२३) [चंपक

बलैया लैहौं आजु के दिन की राधा प्रगट भई है ।
मंगलमनि महिमामनि सोभा की मनि सुहागमनि बिधिना दई है ।
नीके रही महा सुख-संपति सुकृति-बेलि की सरस जई है ।
कीरति-कुख धन्य आनँदघन जाको कीरति बरनत निगम नई है ।।

सारंग] (५२४)

जमुना-सरन मरन जो होइ ।
तौ जो परियै भली भाँति सौं यामैं फिर संसय नहिं कोइ ।
नित्य-बिहार हित-साखी पैयै लाही बड़ौ भरम सब खोइ ।
आनँदघन अभिलाष घमँडि मन-तनहिं सौरभ-रज भरौं समोइ ।।

धनासिरी] (५२५) [चंपक

भूलि मेरे मन न और कछु आवै ।
ब्रजबन की बीथिनि अरु कुंजनि फिरिबोई नित भावै ।
ब्रजमोहन जू छैल छबीले गुन रसना गसि गावै ।
आनँदघन हौ सुरस बरसियै चातक टेर सुनावै ।।

[५२२] खोरी=बुरी, कष्टदायिनी ।

रागिनी भीमपलासी] (५२६) [मूलताल

बन बजी बँसुरिया कैसैं रहौं घर दैया ।
कलमलात जियरा मिलिबे कौं को है ओट-धरैया ।
ज्यौज लगौ यह लाज निगोड़ी करिहै कहा बचैया ।
उघरि चुरैगी आनँदघन सौं अब हम करैं बलैया ॥

भैरव] (५२७) [चौताला

प्रात उठे री स्यामा-स्याम कुंज तें निसि-बिलास-अरसाने ।
मंद मंद गति अति रति पागे लागे चाँदनि परम प्रेम सरसाने ।
अंगनि द्युति द्रुम-बेलिनि फैलति सुंदर सुख सुखमय दरसाने ।
गौर स्याम आनँदघन दामिनि देखत नैन सिराने
जमुना-तीर बरसाने ॥

पूरबी] (५२८) [चौताला

नादमहंत गिरिजाकंत दीननि के दयावंत ।
तुम्हारी कृपा तें निसदिन गाऊँ श्रीहरि-गाथा जैसैं गाइ आए संत ।
बरदराज सब काज सँवारन मंगलमूरति अनघ अनंत ।
आनँदघन कौं ब्रजजीवन त्यौं सरस राखियै जानि आपनो जंत ॥

नट] (५२९) [चंपक

पाथर हियौ पर्यौ ही डोलै हरि के दुसह बियोग ।
अचरज महा कहा कहियै अब बन्यौ नवल संजोग ।
दोऊ अति पिसि रह्यौ पिसनि मैं आगि-उदेग भर्यौ ।
जानै नहीं साँवरे सुंदर चेटक कहा कर्यौ ।
ज्यौ लै गए कौन धौं जारत यह कछु सुधि न परै ।
बिबिधि जातना भर्यौ निगोड़ो जीवै नाहिं मरै ।
निपटैं जड़ पै एक चेतना-चिंता-चोट सहै ।
आनँदघन पिय हित सियरो परि औरैं दहनि दहै ॥

५२६—ज्यौज-भाग (संपद) ।

[५२८] जंत= (जंतु) जीव, व्यक्ति ।

बिलावल] (५३०) [[illegible]

मचो कुतूहल चाँचरि की नंद महर के द्वारैं ।
आईं उमहि ब्रजबधू चौंपनि चतुर खिलारैं ।
सुमिल सुगीतनि गावैं निपट रसीली भासनि ।
मोहन मनहिं घुमावैं प्रेम-लपेटी गासनि ।
अद्भुत छकनि अनौठी प्यारी परम सुगारीं ।
जसुमति-ललहिं सनमुख लाजनि ढकी उघारीं ।
रूप-गहगहीं गोरीं बैस डहडही गातनि ।
गोकुल की ठकुराईं अनौठनी सब बातनि ।
मिहँदी रचे करनि इफ बिबिध बिचित्र बिराजैं ।
महा मनहरन हाथनि परस सरस गति बाजैं ।
झूमर झमक रमक सौं भाँवरि भरन लगी हैं ।
झूलनि झूलनि अलकनि की मिलि मुख-ज्योति-जगी हैं ।
कान्है करषि हरष सौं चाहति नाच नचावन ।
चौकस चपल चिकनियाँ अपरबी चाहत बचावन ।
गुलचनि रुचिर कपोलनि डलचाति धीरज हिय कौ ।
प्रगट परस होरी मैं जिय उचावत है पिय कौ ।
लंक बिहारी मोहन किये सरम लज-बालनि ।
गौंसनि हाँसनि सौं सनि समझि सहल इन ढालनि ।
खिच खिच रचत चपलई मोहन चतुर खिलारी ।
मरम-परस की घातनि लखि बृषभानुदुलारी ।
नई लगनि के लालन फागुन भरि पुरए हैं ।
छाँह छिपन हूँ दूभर नदरि उररि सुरए हैं ।
लगत निपटहीं नीके मोहन रूप-उजागर ।
दरस परस रस सरबस नायक नगधर नागर ।
बदन गुलाल-रँगमगो दिपत अबीर-अँध्यारैं ।
मदन-कुलाहल कौतुक गनत न बनत बिचारैं ।
ग्वार गरबगहिलिनि ह्वै बैननि स्यामहिं बोलैं ।

बुधिबल बरनि न पावत थिरि नवबधू कलोलैं ।
दृगनि खिंचनि कर पट की लपट झपट रँग-रपटनि ।
भरनि भुजनि फिर चलटनि दलनि दमोचनि नपटनि ।
अलकनि छुटे मोहन की गोहन लागति बाला ।
नैन भौंह कर नचनि लचनि कटि डोलन माला ।
दाव छैल के चावनि चौगुन चौंप चढ़े हैं ।
ग्वार ग्वारनिनि टोल आपनी पज बढ़े हैं ।
फागुन फबी सु मिलननि हुलसनि हाँस लई है ।
यह सुख सोभा संपति दंपति भाग भई है ।
घोष घमँकि आनँदघन अति रस-रमँड मची है ।
भीजि रीझि रसमसनि ससै छबि दृगनि खची है ।
सगुन साथ त्यौंहार सदा बिहरैं हरि भामिनि ।
महामोद-मदवारि कौन बरनै दिन जामिनि ।
नित बसंत रसबंत कंत कामिनि सुख भोए ।
बसौ लसौ मन नैन चैन के ऐन अहो ए ।
भाग-भरी ब्रजबधू सनेही स्याम सभागौ ।
इनहीं के अनुराग पागि रसना गुन रागौ ।
ऐसैं देखत रहौं रहस आनँदकंद के ।
महा रसवती राधा कौतुक कृष्नचंद के ॥

धनाश्री] (५३१) [इकताला

ब्रज माची सरस धमारि होरी रंग रह्यौ ।
घोष नागरीं फगुवा माँगन आईं जसुमति-धाम ।
प्रेमपगे रँगभगे जगमगे निरखे मोहन स्याम ।
गावति गारीं दै दै तारीं मति सौं डफहि बजाय ।

५७४—दिपंत=दिपत (सतत) ।

[५७५] भोजनि=बोली से । लगौंही=लगती । हुरिहार=होली खेलनेवाली । चपटयौ=कुरसी की । गुलचनि=कपोल पर हाथ की मुट्ठी से किए आघात । उरति=उमंगित होकर ।

आँगन मैं औसर की चाँचरि चाँपनि रही मचाय ।
कैलि फबी छबि छकी सिंगारैं चंदमुखी चहुँ ओर ।
घेरि लिये गहि किये आपबस कान्ह-किसोर चकोर ।
काजर दै मुख मीँडि गुलालहि झारति फगुवा देत ।
सैननि हो मैं सुघर साँवरे हाहा करि हँसि देत ।
पूर्न्यौ सुदिन समदि सब सुखनिधि बढ्यौ महा समुदाय ।
गोद भरति रोहिनी जसोदा मोद कह्यौ क्यौं जाय ।
या घर यह सुख सदा बिराजौ देति असीस बखानि ।
आनँदघन रस रह्यौ जह्यौ जस नित त्यौहारनि मानि ॥

बिहागरो] (५३२) [इकताला

देखि सुहाई सरद की जामिनि रंगभीनी ।
पूरन ससि प्राची प्रगै बिहरनि रुचि कीनी ।
मोहन मदन गुपाल कौं बृंदावन मोहै ।
जमुनातट कुसुमित महा अवनीमनि सोहै ।
बेलनि-अगमगे द्रुमलता अति सघन सुहाए ।
त्रिबिधि पवन सुखमैं बहै कहिये सु कहा ए ।
बिसद पुलिन रसरास कौ अभिलाष बढ़ावै ।
नटनायक नँदलाल को मन पकरि नचावै ।
राग भागनिधि ब्रजबधू तिनकौ मनि राधा ।
जाके हित मुरली धरी धुनि प्रेम-अगाधा ।
रूप अनूपम साँवरो गुनरासि रसीलो ।
नाद-स्वाद-स्वामी सदा अति छैल छबीलो ।
कहि न परति सुर-माधुरिमा जिन सुनी सु जानै ।
परम प्रेम-फँदवारि है ध्यानिनि गहि आनै ।
चाँदनि सुहक मची महा गोपीं चलि आईं ।
अगनित पूरन ससि मनौ धरनी पर धाईं ।
रची मंडली भावती राजति चहुँ ओरनि ।

५३१] समदि=भेंटकर ।

मधुर हँसनि हुलसनि महा दृग सौं दृग जोरनि ।
हिलनि मिलनि मुखचंद की अति उमँग-भरी है ।
प्रीति-पगी रस-रँगमगी मन परनि परी है ।
दरस परस रसबढ़नि की गति कहै सु को है ।
आनँद-उदधि-तरंग मैं मति की मति मोहै ।
अद्भुत गान-कलान की रचना सरसी है ।
ललित रीति संगीत की सुषमा दरसी है ।
मच्यौ महारस रास है वृंदावन माहीं ।
या सुख-सोभा की कछू उपमा कौं नाहीं ।
चटक मटक गति-लटक सौं नाचैं पिय प्यारी ।
आपुस मैं रीझनि रचे बरनौं कहि वारी ।
कुंडल अलक कपोल की झिलमिलनि फबी है ।
चकचौंधी लागति लखैं दुति दृष्टि दबी है ।
बिबिधि बिनोद प्रमोद मैं सनि रहे रसीले ।
मुकुट चंद्रिका डुहुनि के झुकि लसत छबीले ।
मगन महारस-केलि मैं मोहन ब्रजबाला ।
सुरवनिता रीझनि छकीं वारैं मनिमाला ।
थिर चर सब रस मैं पगे सुधि रही न काहू ।
राधा मोहन हिलि मिले हित-रीति-निबाहू ।
राग-भोग-संजोग को अति पुंज बढ़यौ है ।
महा निसा जकि थकि रही ससि कढ़नि कढ़यौ है ।
आनँदघन बरसत सदा भीजे या रस मैं ।
परम रसमसे रीझ सौं दोऊ परबस मैं ॥

टोड़ी] (५३३) [चंपक

घेरि मन राखत हौ अबलानि बिना रस तैं मिस ठानि दान को ।
कान्ह लाड़िले अनीति करौ जिनि डरौ न देखवानि है
ढँग सीखौ सयान को ।

गैल चलो कमैंदई छाँड़ौ यह तौ है जू अयानो भान को ।
आनँदघन घुरि घुरि जबरत हौ हत न भलो निदान को ॥

टोड़ी] (५३४) [चौताला

पिय को परम रस तैं ही पायौ ।
सुनि राधे अनुरागमंजरी ब्रजलनि धीच दुरायौ ।
इनकी कूल फैल परी नखसिख लहडहौ मुख मुखमदन सुहायौ ।
मनमोहन आनँदघन री रीझनि झमड़ि घमँड़ि रमँड़ि
रमँड़ि सरसायौ ॥

संकराभरन] (५३५) [जतिताल

रास मैं रसीलो मोहन सरस रंग राखै ।
मुरली-धुनि मोहनी करि पवन पंग राखै ।
मुकुट-लटक गति कौं मटक संग सुधंग राखै ।
महा अद्भुत रूप धरे मोहि अनंग राखै ।
राधा के हित नटचा निपुन अति उमंग राखै ।
आनँदघन चातक-मन एक संग राखै ॥

राग केदारो] (५३६) [चौताला

ऐसो मन कहाँ तैं ढूँढ़ि ल्याइयै जो पै फिरि हरि हौ मिलाइयै ।
अरु तेई आँखैं जिनसौं निरंतर यह सुख दिखाइयै ।
कहा बनाइयै कैसैं बहराइयै तपनि महाइयै ।
आनँदघन के हेत रैनदिन सोचनि छाइयै ॥

राग स्याम कल्यान] (५३७) [इकताला

नटबर नंदलाल रासमंडली रची हो ।
राधा-संग जमुना-पुलिन परम प्रीति मची ।
महामोहन मुरलिका-धुनि तान-मान खँची ।
सरद-निसा गोपिनि मिलि सुख की रासि सची ।

[५३३] कमैंदई=शरारत । अयानो=कच्चा । भान=प्रकाश । निदान=अंत में । [५३५] पंग=पंगु, गतिहीन । सुधंग=बाँके, बढ़िया ढंग से ।

अभिनय संगीत - रीति नचनि देखि नची ।
रूप जोबन गुन - गरिमा रोम रोम खची ।
यह सोभा देखेँई बनै बरनिबैँ बची ।
आनँदघन रस की रासि कैसैं जाति अची ॥

राग केदारो] (५३८) [चौताला

सब निसि बिलसत रास-रसी है ।
राधा के अंग-संग रंग राचे नाचे मोहन परम-प्रीति सरसी है ।
कुसुमित बृंदाबन जमुनातट पूरन सरद-ससी है ।
आनँदघन भामिनि दामिनि मिलि अदभुत छबि बरसी है ॥

ऐमनि] (५३९) [इकताला

नंद - नंदीसुर बास जहाँ बड़भागनि पैयै ।
नित उठि मोहन-मुख निहारिबो पुजवत है जिय-आस ।
हम वै दूरि बसति तरसति हैं झुरि झुरि भरति उसास ।
इक दिन गाइनि लै इत निकसे बाढ़ी अँखियन प्यास ।
तब तैं आनँदघन औसेरनि प्रान - पपीहा उदास ॥

आसावरी] (५४०) [इकताला

जमुनातीर बजावैं बँसी स्यामसुँदर नवरंगी हो ।
गागरि भरन न देवै अचगरो तीखी-तान-तरंगी हो ।
केसरि-खौरि चुभरे नैना चंदन - चरचित-अंगी हो ।
मनिकुंडल जगमगत कपोलनि मधुर हँसनि छबि-संगी हो ।
उर बनमाल बिसाल बिराजित मोहन-मदन त्रिभंगी हो ।
रीझनि भोजि थकी निरखतहीं घनआनंद उमंगी हो ॥

फाग] (५४१) [मूलताल

हियरा सुर-साल करै मुरली ऐसे हाल करै मुरली ।
प्रान समोइ लेति तानन सौं अटपटे ख्याल करै मुरली ।
बसति ससति सीं घिरी घरनि मैं ये जंजाल करै मुरली ।
आनँदघन रस बरसि बिलासिनि बिरह की ज्वाल करै मुरली ॥

सारंग] (५४२) [चौताला

जहाँ जहाँ डोलत री बनवारी तहाँ तहाँ मन मेरो मँडरात ।
सुरलि सहेली सँग नहिं छाँड़ति बन बन बीथनि बीथनि पग
पग पाँवड़े लौं बिछि जात ।
यह सुख लौं मेरो जियराई जानत कहा भयो तनु तजि मुरझात ।
आनँदघन को बिरह सँजोग हू तैं इन बातनि सरसात ॥

सारंग] (५४३) [चौताला

कहा हौं बैठियै रहौं, हठीली बोलति नाहिं बुलाएँ ।
कौन कौन भाँतिनि समझायै अनोखी तोसौं कहौं ।
मनि आएँ ठनगन ठानति है सबोंपर राधे तोहि लहौं ।
आरत हूँ पपईं आनँदघन तातें पैज गहौं ॥

सोहनी] (५४४) [इकताला

सुन वे बेपरवाह निमाणी दाहानल बुझदा ।
प्राण-पपीहा नू आनँदघन तुझ बाजू होर न सुझदा ॥

सोहनी] (५४५) [आमाताल

अवे साडे दिल दी मुराद पुजाईं ।
साँवले सजन साँई जिद निमानी तपदी आनँदघन सोहन
मुख चुक बिच्छोईं मिहर नजर बरसाईं ॥

सोहनी] (५४६) [मूलताल

बो बो सानू ना तरसाईं, जिद कीती कुरबान
तैंडे इस रूप सोहिल साँईं ।
प्रान-पपीहा दे आनँदघन हा वे मेहर नजर बरसाईं
इत नल बाँई चोल चुमाईं ॥

धनासिरी] (५४७) [इकताला

मैंडा दिल तैनू लोड़ै तू क्यों मुलखा मोड़ै ।
इस वो निमानी नू बिरह सिकें दा तैनू की परवाह
आनँदघन तहा जिना दा भाग जिना नाल तुसी वो मोहबत जोड़ै ॥

[५४३] ठनगन = मान, रूठना । पपईं = चातकी । [५४४] बाजू = वर्ज्य, अतिरिक्त । होर = और, अन्य । [५४६] चुक = किंचित् ।

सारंग] (५४८) [इकताला

सिंघासन प्रेम को गिरिराज ।
मज तुव राज बिराजत नितहीं सँग लै सुहृद - समाज ।
याकी गुन-गरिमा याही मैं भरि सेवन सुखसाज ।
जै जै मंगलमनि आनँदघन थिर अनुचर सिरताज ॥

सारंग] (५४९) [चौताला

हरि-चरननि सौं निन्हारि करि लै ।
मन मेरे तू मानि कह्यौ या सुख-संपति घरि भरि लै ।
मन-महीमंडन मजरमनी - उर - मंडन तिनहीं के हित हरि लै ।
आनँदघन अद्भुत अरबिंद पपीहा-मधुप-मन धरि लै ॥

सथा] (५५०)

ऐसी बजाई है घनश्यारी बंसी बन, है सुनत सुनि काहू
पै न रह्यौ मन ।
उमँग उदेग ओप लागे नं पुलकि पसीजि चले हैं सब तन ।
रीझनि रमँडि घमँडि आनँदघन बरसि बहावन अवलनिपन ॥

आसावरी] (५५१) [मूलताल

ठगिया बसत है री याही गाँव ।
जमुन-तीर तें मनु न हाथ मेरे, अब न रहत घर पावँ ।
परी है ठगौरी मानो वहै दौरी बौरी भई जागत बररावँ ।
साँवरे बरन आनँदघन भिजई जानौं न कहा धौं नावँ ॥

ललित] (५५२) [मूलताल

चले किनि जादू लला तुम सूधें आपनी गैल ॥
काहे कौं उरमत काहू सौं भली भई भए छैल ।
दान दान धौं हा करि राख्यौ गोकल खोरि खरेई फरैल ।
आनँदघन रसदाईनि उनए फिरत गनाधत सैल ॥

रोड़ी बराड़ी] (५५३) [मूलताल

सुरति सबेरी लेहु बिथासी यालम जियरा अति अकुलाय ।
अब न बिरम करियै ढरियै हरियै दुख हाहा ननकु आइहै धाय ।

[५५२] सैल=मौज ।

कहा कहौं जौ तुमही न समझौ अपनी करि यौं दई भुलाय ।
आनँदघन रस बरसि सरसि नव अब लाई यह लाय ॥

बिहागरो] (५५४) [मूलताल

निपट बिरहिया लोग ब्रज को, स्याम-सनेह-सगमगे
सब ही रूप - रँगमगे नैन ।
मिलि मिलि बिछुरि बिछुरि फिर मिलि मिलि पावत चैन कुचैन ।
मौन धरे मचि रही चहूँ दिसि कान्है कान्ह पुकार ।
आनँदघन भर लाग्यौ सदाई घर बन बरस बढ़वार ॥

पूरबी] (५५५) [इकताला

उरझिबो करै री हम सौं नंद महर को बचगरो ।
घाट घाट रोकत टोकत है सबही गुननि को अगरो ।
गोकुल निपट अनीति चलाई चलन न पावत डगरो ।
मुरली बजाइ बजाइ करत बस टरत मयानप सगरो ।
आनँदघन यौं घमँडि मचावै गोरस मिस रस-झगरो ॥

गंधार] (५५६) [इकताला

कालिंदी - कूल की सँकरानि ।
आवति है छिन छिन छिन छिन ही प्रेमपगी अकुलानि ।
राधा - मोहन - रूप माधुरी परसि बरसि थकि जानि ।
आनँदघन रस - भीजनि रीझनि आनि परी यह बानि ॥

सथा] (५५७)

निरख्यौं बृंदाबन सुखखानि ।
द्रुम - बेलिनि सौं भई भलें हैं इन अँखियनि पहिचानि ।
जमुना - तीर भीर लहरनि की राधाप्रिय - रहठानि ।
आनँदघन रस - भीजनि रीझनि बाढ़ि परी ललचानि ॥

सथा] (५५८)

मदनगुपाल की बलि जावँ ।
हरषि सिरात हियौ सुनि सजनी हेली महा मनोहर नावँ ।

५५४—पा०—घर रावरे रस (सतना) ।

[५५३] लाय = आग ।

स्याम रूप रँग पागि लियौ है सगरौ गोकुल गावँ ।
ब्रजजन-जीवनघन आनँदघन रमौंह रह्यौ टग ठावँ ॥

भैरव लंब] (५५९)

निधि मुनि सत्तम सब बिधि उत्तम हरि-हित-नारद नमो नमो ।
सुखक-कारक पर-उपकारक रस-आसारद नमो नमो ।
भ्रमतम-नासक प्रेम-प्रकासक सुखससि सारद नमो नमो ।
भवनिधि-पारद गान-बिसारद जय जय नारद नमो नमो ॥

सारंग] (५६०) [झपताल

बरजि री या छबीले हठीले कौं कहा पौरि पिछवार ढूकत डोलै ।
घर बैठे आनि अनखौंहैं करत कौंकरु चलावत निडर याहि
किन सीख दीनी महा लैं ।
चमँक्यौ रहत रातिद्यौस आनँदघन जोबन के मद आँख्यौ न खोलै ॥

रामकली चार] (५६१) [चौताला

सच्चिदानंदघन सुख देति ।
कृपारस-पूरन सदाई उमँगि लहरैं लेति ।
स्यामसुंदर-संग रंगनि अंगराग रमेति ।
नीर-महिमा-माधुरी कौं बदति बानी नेति ।
तीरभूमि निहारि हिय तैं जाति जड़ता चेति ।
दुरित आनँदघन निरंतर परसि नाहिन लेति ॥

राग भैरव] (५६२) [एकताला

आवौ आवौ हो सनेही स्याम बहुरौ लगाई बेर ।
रूप-उजियारे टारौ बिरह महा-अँधेर ।
सुंदर बदन सोभा देखन कौं प्रानप्यारे नैननि कै निपट
ह्वै लागियै रहै औसेर ।
अवधि बितानी रैनि जागत बिहानी हा हा रसिक रँगीले
छैल उरझौ नबेलो मेर ।
आनँदघन सुभाय अनत बिराजे हाय स्रवन परी न
हाय काहू दुखिया की टेर ॥

[५६१] रमेति=रमती है। नेति=विच्छेद। [५६२] मेर=प्रीति की तरंग।

रामकली] (५६३) [मूलताल

अधम-उधारन मैं तुम जाने ।
दीनानाथ कृपानिधि स्वामी सदा दयारस-साने ।
सोचहरन सुखकरन क्षमापति अति उदार उर आने ।
पतित पपीहनि के आनँदघन जीवनधन पहिचाने ॥

[illegible]] (५६४) [मूलताल

होरी खेलि खेलि ब्रजनागर छैल सौं छबीली कुँवरि
रावे राखो न कसरि ।
लियौ दाव अति चौंप चाव सौं रँगीलै ललन मुख आई
है गुलालहि अलग मसरि ।
हाथ लगाइ हाथ कियौ मोहन रूप-कौंध चाँधि रह्यौ है धसरि ।
आनँदघनहि भिजै रस रिझयौ दामिनी कहा बिचारी
कछु उपमा कहिबे कौं न सरि ॥

आसावरी] (५६५) [चौताला

नैननि मन रोम रोम कान्है कान्है कान्ह रम्यौ है ।
कोउ बेचति कोउ लेति गुपालहि गोरस लौं घर घर
फिरत कहाँ नीकौ नेह जम्यौ है ।
गोकुल प्रेम की पैंठ सदाई जहाँ जगमोहन ऐसौ अम्यौ है ।
आनँदघन अचरज रस भीजि भीजि रीझि रीझि सुक सन-
कादिक सेस संकर गिरीस सीस रज-अकसोस नम्यौ है ॥

भैरव] (५६६) [झपताल

सकल-सुखमा-सदन मनराज राजै ।
राधिका मदनमोहन निवासित सदा अति मधुर केलिहित संपदा साजै ।
तरनितनया-तीर जगमगत ज्योतिमय पुहुमि पै प्रगट
सब लोक-सिरताजै ।
अद्भुत अनूप आनँदघन रससरूप महामंगलकरन पूरन कला जै ॥

५६४-सरि-सरि (संदन) ।

[५६४] मसरि = शिथिल होकर ।

बिलावल] (५६७) [चंपक ताल

आवति चली कुंज-गह्वर तैं कुंवरि राधिका रूपमढ़ी ।
मोद-विनोद-भरी मृदु मूरति का बिरचि या घाट घढ़ी ।
बरनौं कहा गुराई मुख की अलक-सँवराई-संग बढ़ी ।
बंक चितवनी सरल बान लौं पर इकसार दुसार कढ़ी ।
सहज मधुर मुसिकानि सलौनी मौन मोहनी-मंत्र पढ़ी ।
अधर पानि पै निरखि चुरयौ हिय उतरति क्यौं जु घुमेर चढ़ी ।
सुनि री सखी चुहटनि जियरा की तू ही एक उपाय-अढ़ी ।
स्वाद ध्याइ बस आनँदघन कौं रसना चातक-चोंप-रढ़ी ॥

ललचारी बिहाग] (५६८) [इकताला

राधे राधे राधे राधे श्री राधे राधे ।
ब्रजजीवन के प्रान-जीवनधन येई बरन आराधे ।
आनँदघन चातक-रट लागी मुरली-सुर मैं साधे ॥

सावंत] (५६९) [इकताला

कान्ह-कथा कान्है सुनाइयै ।
तनक इकौसैं ब्रजमोहन कौं भागनि बल जौ कहूँ पाइयै ।
जो कछु दसा नैन मन जिय की सो कैसैं काहू जनाइयै ।
जाकी लाई लाइ लगन की आनँदघन ताहीं सिराइयै ॥

सारंग] (५७०) [इकताला

सुमिरन स्याम कौं मन लाग्यौ ।
मन सुमिरन सौं लग्यौ न क्यौं फिरि सरस-परस-रस-पाग्यौ ।
सोवत जगत न उहटै कितहूँ हित ऐसो कछु जाग्यौ ।
रीझनि झूमि झूमि आनँदघन गुरु गरजनि अनुराग्यौ ॥

[५६७] गह्वर=भीतर, गहराई, गर्भ । का=क्या । घाट=डौल । घढ़ी=गढ़ी, बनाई । इकसार=एक ओर बान । दुसार=आरपार बान । घुमेर=नशा, चक्कर । अढ़ी=करनेवाली । रढ़ी=रटती है । [५६९] इकौसैं=एकांत में । बल=सहारे, द्वारा । लाइ=आग । [५७०] परस०=आलिंगन के आनंद में लीन । उहटै=हटे । गुरु=गहरी, भारी ।

सारंग ललित] (५७१) [चौताला

आनँदमंगलरूपा दरसन सूरसुता को ।
जब जब देखियै नयो नयो लागत रूप अनूप जु ताको ।
राधा-हरि-सहचरि-समूह मिलि बिहरनि-कूल-कुतूहलता को ।
रसना ध्याय रही आनँदघन जस याको प्रभुता को ॥

सारंग] (५७२) [अद्धताला

धरम अरु धीर मन प्रान अरु ध्यानहूँ हेरि हरि लेत हरि देत प्यारे ।
सो बहुरि कौन कौं देव कहि देव किनि कपटी कठोर गिरधर उज्यारे ।
कंदरा मंदिरनि बसत सालनि छैल गैल गाहत अँधारे-सबारे ।
बरसि हौ आनँदघन उघरि मोहन जगत दान मिस ठानि हठ निडर भारे ॥

गौरी] (५७३) [सूलताल

राधामोहन राधावल्लभ राधाजीवन राधाप्रान ।
राधा-बदन-सरोज-मधुव्रत सदा करत राधा-रसपान ।
राधा राधा ही रट लागी राधा बिन सुमिरत नहिं आन ।
नित हित-घमँडनि सौं आनँदघन मुरली मैं राधा-गुनगान ॥

आसावरी] (५७४) [इकताला

होरी होरी खेल मचायौ गोकुल-गैल-गरबारैं ।
ब्रजगोरिनि भोरिनि घातनि लगि डोलत साँझ-सबारैं ।
चंचल चतुर चिकनिया मोहन गोहन परयौ है हमारैं ।
आयौ घेरि कनौड़ो करिबे कौं लौं धूम सहारैं ।
भिजै रिझै आनँदघन को सब दिन की कसरि निकारैं ॥

हिंडोल] (५७५) [चौताला

आजु बन्यौ री सुखदैन स्याम लाल पहिरैं बागौ बसंती ।
चोवा-चित्रनि कसो है छैल-छवि रूह उर राजति बरन
बरन फूलनि की बैजंती ।

५७४—चंचल—चौकस (सजग) ।

[५७४] धूम=ऊधम ।

रूपनिकाई अनूप कहा कहौं जोबन-उमँग निपट लहलहंती ।
तेरें हित आनँदघन घमँड्यौ जुरि घुरि रस रासियै
सुनि राधे सुहागवंती ॥

हिंडोल] (५७६) [कपोती ताल

आओ री मिलि गावौं बजावौं बसंतपंचमी है आई ।
राधा लै वृंदावन चलियै देखन सोभा सुनियति मोहन मुरली सुरभाई ।
कोकिला कुहकनि औरौ भृंग चुहकनि लागति स्रवननि अति सुखदाई ।
आनँदघन की गरज सुहाई माची है मदन-बधाई ॥

सारंग] (५७७) [चौताला

नवल बना री नवेली बनी राधा को ।
ब्रजमोहन नीको नाँव रसीलो भागभरे दुलहा को ।
जमुना-तीर सघन वृंदावन मंडित मंडप-सुमन सदा को ।
आनँदघन हित बसँहिं भाँवरैं भरत रहत धनि धनि सुहाग याको ॥

सारंग] (५७८) [झंपकताल

टेर मुरली की मोहिं टेरिबोई करति है ।
चितै चितै मन मैं तें भीर भीर बिषम पीर लै भरति है ।
कठिन जोग घर ही मैं भोगियत बिरह-आगि उर-बीच बरति है ।
आनँदघनहिं परस सीतलता परति है, परति है ॥

हिंडोल] (५७९) [चौताला

बसंत फूल्यौ री वृंदावन मैं आइ ।
निसदिन बसंत-मूरति ब्रजमोहन के देखन कैं चाइ ।
ताहि सफल करि राधे माधवी है हिलि मिलि खिलिबे को दाइ ।
आनँदघन पिय तो हित झूमि झूमि मुरली रहे हैं बजाइ
अब तू दामिनि लौं धारि पाइ ॥

हिंडोल] (५८०) [इकताला

बिहरत वृंदावन रितु बसंत राधा रमनीमनि कान्ह कंत ।
प्रफुलित जमुनातट बिबिध कुंज, घूँघरि पराग अलिपुंज-गुंज ।

५७६—सुरभाई—सुर गाई (सतना) ।

गावत हिंडोल नव तान तार, गुन-रूप-रासि दंपति उदार ।
यह सुख सोभा बरनी न जाइ, तन मन आनँदघन रह्यौ छाइ ॥

हिंडोल] (५८१) [चौताला

रँगमगे अंग नित बसंत खेल ।
सजल गुराई लोने गात मानौ केसरि रँगरेल ।
सहज सुगंध सौंधौ कपूर हास चिकुर चिकनई चोवा फुलेल ।
अधर-पकनता गुलाल रोचना आनँदघन पिय हित
सब सुख-सौंज सकेल ॥

राग हिंडोल] (५८२) [सूलताल

राधे रमनीमनि रूपमंजरी तेरी हँसनि बहुत बसंत कौं हँसति ।
कहा कहौं हौं हूँ रीझि रही ऐसी नखसिख लौं जोबन-गोभ लसति ।
रँगीलो बदन सुखसदन बिराजत भ्रुकुटी पासि मति गतिहिं गसति ।
मधुर माधवी सरस बिकास बिलासभरी तू आनँदघन ब्रज-
मोहन पिय-हिय-जिय मैं बसति ॥

कलिंगरा] (५८३) [मुकताला

स्याम प्यारे हमसौं होरी खेलन आए भोरैं कित के ।
ब्रजमोहन सोहन सुखदायक सब बिधि लायक नित के ।
निपट रँगमगे सौंधे-सगमगे जावक-आँखि कनौड़े हित के ।
आनँदघन चित चौंपनि उनए उघरे भाग भुरहरैं इत के ॥

धनासिरी] (५८४) [झूलताल

दरद बंदा नू दरद घनेरा है माशूकाँ बेदरदाही ।
सुन वे साँवलिया कुड़िया दे उपर को हुया फिरदा सिपाही ।
तैनू दरद सुने दरसे मैंडा यार निगाही ।
प्रानपपीहा नू जिलायाँ आनँदघन मिहिर-नजर वाहवाही ॥

गंधार] (५८५) चौताला

जिन सब कछु साध्यौ हौ जिन साधी साधुजननि-संगति ।
पतितपावन पुरुषोत्तम पदवी पावन की परम गति ।

[५८२] गोभ=प्रस्फुटन । पासि=फँसाकर । [५८४] कुड़िया=दोष ।

धोइ धोइ मन-बसन बासना रच्यौ है रागरुचि - रंगनि ।
आनँदघन रस-परस - प्रसादहिं पाइ पर्यौ पन-पंगति ॥

देवगंधार] (५८६) [मूलताल

झूलनि झुलावैं, रसिकबिहारी अपनी प्यारी कौं ।
अंक भरें पुटली पै बैठे मुख लखि जीव जिवावैं ।
छुटे बार मुक्तानि हार मिलि डरकि डरकि सुरझावैं ।
सरस परस बीरौ खवाइ आनँदघन रस बरसावैं ॥

रामकली] (५८७) [चौताला

ब्रजपति-मंदिर मैं रंगबधाई प्रगटे हैं कुँवर कन्हाई ।
भाग - बली जगमनि कुलमंडन मन - नैननि सुखदाई ।
स्यामसुंदर दिनहोनी होनी जनमत मैया-कूँखि सिराई ।
आनँदघन अनेक रस बरसत जससरिता सरसाई ॥

केदारौ] (५८८) [इकताला

बाजति रंगबधाई गोकुल नंद कैं ।
औरैं ओप चढ़ी सुनि सजनी पद भए ब्रजचंद कैं ।
नैन चकोर भए सुख - सींचत परसि मयूख अमंद कैं ।
दुख-तम दूरि गयौ हिय-जिय तैं निरखत आनँदकंद कैं ।
बंदीजन बिरुदावलि बाचत मुदित बिप्र-धुनि - छंद कैं ।
पूरब पूरन - भाग आनँदघन जसुमति नंद सुछंद कैं ॥

बिहागरौ] (५८९) [इकताला

गोकुलचंद - चंद्रिका प्रगटी सब ब्रज लोगनि रबानी ।
कोटि कोटि पूरन सारद ससि नवे भए हैं मानौं ।
उत ब्रजपति कैं अति गहगह इत गहमहाति बरसानौं ।
मातृमंडन बड़भाग - सिरोमनि नंदराइ बृषभानौ ।
दुहुँघनि कौ इकमनी रीति को कौतुक कहा बखानौं ।

[५८६] पुटली=पटुली, पाटा । [५८८] पूरब=पूर्व जन्म का ।

राधा मोहन नाम रसीले जीवन कौ फल जानौं ।
हनै उनै आनँदघन बरसत नम - सावर सरसानौं ॥

देवगंधार] (५९०) [चौताला

गंगा गंगा गंगा गाथ लै री मेरी बानी ।
दुरित-दवागिनि दूरि करन जाको परम पावन पानी ।
हरिपद-रति मति गति अति दाइनि कीरति बिमल पुरान-बखानी ।
मोह-तिमिरनी जगतरनी मैं जानी भागीरथ आनी ॥

रामकली] (५९१) [चौताला

सुदिन कहै जाहि भेटिहौं स्याम ।
तन की तपनि बिपति हरि जैहै पैहै मन बिसराम ।
बहुत भाँति के सुखनि मौं चहै रसमूरति ब्रजजीवन नाम ।
आनँदघन घुरि घमँडि रमँड सौं हरि हैं बिरहा-घाम ॥

सभा] (५९२)

बंसी बाजि बाजि घर घालै, परबसी सौं कोऊ न बोलै चालै ।
ब्रजमोहन को अधर सुधा लै देति सौति के सालै ।
जाकी धुनि आवै सोइ गाथ रसबस करि छिन छाड़न लालै ।
आनँदघन गरजै सो लेखैं परम प्रीति - पन पालै ॥

हमीर] (५९३) [चौताला

कहाँ परी बान जाई हो निसासी मोहन ।
ठौर ठौर के पाहुने प्यारे तुमहिं काहू सौं मोह न ।
अबला बपुरी भोरी बिचारी चतुर छैल गोधे नई टोहन ।
आनँदघन कहूँ कौंध कहूँ झर करत फिरत रस - जोहन ॥

हमीर] (५९४) [इकताला

मन मेरो फेरि लेतु है, गिरि गोधन सौं अति हेतु है ।
सीतल सुंदर सुखद कंदरा हरि - राधा - संकेतु है ।

५९२—घन-प्रति (लंदन) ।

[५८९] इकमनी=एक मनवाली । सावर=सागर ।

फूलन के फल दल जल कै गोविंद गैयन सुख देतु है ।
आनँदघन छबि छाइ रहौ तित नित ह्वां मो चित चेतु है ॥

पूरबी] (५९५) [इकताला

आवै आवै नंद महर को मोहि जानि याही गैल ।
रसभीजी चितवनि सौं चितहिं लगाइ लेत है छैल ।
इकटक लागि रहति नैन अँखियाँ मेराऊ मन भयौ अरैल ।
नचति सुरँगी आनंदघन सौं अब कौन को दबैल ॥

आसावरी] (५९६) [मूलताल

जौन देखें तौन देखौं हौं तौ देखें ई सुख पाऊँ ।
गरब-गहेली गोरी ग्वारि जाकी पटतर कौं न पाऊ ।
सुनि सजनी हित हित की बातें हितू जानिकै तोहि जताऊँ ।
आनँदघन पै चातक चोंपनि टेरें भरोसैं छाऊँ ॥

टोड़ी] (५९७) [मूलताल

मेरे भाग जागे री जागे री मैं देख्यौ मोहन-दरस ।
आँखिन को सुख कहत न आवै जैसैं सब अंगनि तें
पहलें पायौ परस सरस ।
बहुत बरुनी-अरुबार भरे री करे सुबस अभिलाष बरस ।
आनँदघन त्यौं घनैं घुघार उन्हें अब सब सौं उपज्यौ है अरस ॥

टोड़ी] (५९८) [चौताला

देखौ देखौ जमुना की लहराइ जो कछु इनहीं में बनि आई ।
राधामोहन-सिंगार-रस-पूरन उमंग-भरन नित देखियति लहराई ।
उमँग-भरी अभिलाष-लहबरी मुरली-धुनि सुनि सुनि ठहराई ।
आनँदघन छबि अब कहिबे कौं सरसुति-मति चहराई ॥

आसावरी] (५९९) [मूलताल

राम नाम ये नाम अब तू लै सिखि सिव सुनि रे सठ ।
जिनकी पाँहि भुज-मंड खंड खंडनि प्रचंड जस तिनसौं रे करै कौन हठ ।

[५९७] अरस=आलस्य ।

साधु-मतो क्यौं मानै कुमति जाको सबै सयान पर्यौ भठ ।
आनँदघन अद्‌भुत प्रताप - भार पजरि भुज्यौ रावन-कठ ॥

केदारो] (६००) [चौताला

फूली सरद - जुन्हाई जैसी मल्लिका बेलि ।
रजित सजित बसननि पहिरैं राधा मोहन जगमगे करत रँगमगी केलि ।
जमुना-तरंगनि अति दुति बाढ़ी चंद्रकिरनि झिलिमिली मेलि ।
आनँदघन दंपति रस बरसन हुलसि गरैं भुज मेलि ॥

ललित] (६०१) [मूलताल

जुवती ऐसैं काम करै, अपनी बरनि अरै ।
जिन को छैल छबीला मोहन मेरी डीठि परै ।
मन मिलि गयौ मिलत अँखियनि हौ आई घूमि घरै ।
अपनो सों बहुतैं समझाऊँ नैक न धीर धरै ।
चलत चवाव चाव सुनि लागत क्यौं हित-टेक टरै ।
उघरि घुरँगी आनँदघन सौं अब सब डारि डरै ॥

भैरो] (६०२) [इकताला चलती

सदा दया दीनबंधु बिनती सुनि लीजै ।
पतितपावन करुनानिधि बिरद-लाज कीजै ।
बिधि-अबिधि-बिचार-हीन अति मलीन मन कौं ।
जड़ता मैं जनम खोद चेत्यौ नहिं छनकौ ।
तुम सैं प्रभु तुम ही हौ अपनी ओर देखौ ।
मेरी करतूति कहा लेखैं ही परेखौ ।
जगतारन पारन हौ मोहूँ पार करियै ।
नाथ को भरोसो भारी अब तौ कर पकरियै ।
असरन के सरनदायक धुर तें सुनि आयौ ।
यहै बात सुरति राखि सब कछु बिसरायौ ।

६०१-बहुतैं०-समझत बहुतेरा (सतना) । सुनि०-चित चाइल (२६) ।

[५९९] भठ=भाड़ । कठ=काठ ।

चिंतामनि अभिराम कहि कहा जताऊँ ।
बिन माँगे देहु मोहि मोहन गुन गाऊँ ।
सोए हूँ जागत हौं आगैं ढिग बैठे ।
मौन धरैं बोलत हौं जागैं हिंगै पैठे ।
सफल ठौर सबैं समय प्रानसंगी नित के ।
आनँदघन जीवनधन दीन जननि हित के ॥

राग हमीर] (६०३) [मूलताल

हौ हरि हमसौं बतियाँ कब साँची बोलौगे ।
कपटी कान्ह कौन दिन दैया मन की गूँज खोलौगे ।
अवधिनि बाँद बढ़ि आस बढ़ावत अपनौं गौं इन डग डोलौगे ।
आनँदघन पिय बरसि परेखनि छतियाँ कौ छोलौगे ॥

सोहनी ख्याल] (६०४) [मूलताल

आव रे आव रे मिलि खेलैं होरी ।
बहुत दिननि लाजनि भीजो भागनि फागुन है आयौ ।
ब्रजमोहन आनँदघन प्यारे कानि-कनौड़ि कौन कों करिहौं
करिहौं रे अब तौ मन भायौ बिधना बाम बनायौ ॥

टोड़ी] (६०५) [चंपकताल

लालन-आवन त्यौं ही ननदी बुलावत लिपट भौंकरो साहौ ।
को जानैं कब बिधना बनैहै निधरक देखन-लाहौ ।
ता छिन की पछिताति मलोलनि दुख तैं बाट बढ़यौ दुखदाहौ ।
आनँदघन पिय परस दूसरो दरस चटपटी चाहौ ॥

गंधार] (६०६) [मूलताल

तारे गनत गनत निसि बितई ।
मनभावन-आवन की गैलहिं हौं जानति ज्यौं चितई ।

६०४—आन—बनक (छलना); बनाव (६६१०)।

[६०४] आन=साज, अवसर। [६०५] साहौ=दरवाजे के पारस भाग के दोनों पत्थर, यहाँ द्वार।

भलैं सखी तू ताहि पत्याई जाकों हित जित तितई ।
आनँदघन त्यौं ढीठि भिखारी भरि भरि अँखियन रितई ॥

ऐमनि] (६०७) [इकताला

ब्रजमोहन जू निपट बिसासी प्रीति किधौं काढ़त हौ बैर ।
घर तैं निकसि जाहु कैं आवौं कहा लगाइ रहे औसेर ।
मानक नहीं छाँहि छुवैबे कौ घर घर भौंच रह्यौ है घैर ।
सुनि सुनि हियौ लहरात साँवरे चित चढ़ि गयौ मोह कौ मैर ॥

सारंग] (६०८) [इकताला

ब्रजरानी पठई सँवारि बहुत बिधि अपने लड़ैते लला कौं छाक ।
भूखभरयौ चढ़ि रूख चौंप सौं लागि रह्यौ मधुमंगल ताक ।
लै आई छकिहारी चाहनि उमहत देखि हरी हरियानि थाक ।
आनँदघन ब्रजजीवन जेंवत हिलिमिलि ग्वार तोरि पतानि-ढाक ॥

काफी] (६०९) [मूलताल

सब गोकुल-गैल-गवारैं होरी माँचि रही ।
ब्रजमोहन मानौं डोलैं, अब लैंहै दुरि कहि को लैं ।
घरघर नय ताक लगावैं, फिरि ऐसो औसर पावैं ।
साँवल छबि सहज ठगौरी, मन हरकि लगावैं दौरी ।
छलछंद सुघातनि ठानैं, हथचलाई कौन बखानै ।
या नगर झमेल मचावै, अठपहरा ऊधम भावै ।
मोसौं मन हौ मन भीज्यौ, फागुन मिस गौं गहि रीझ्यौ ।
कैसैं कै वासौं बचियै, यह फागु मचौ मो मचियै ।
कहि अति ही आतुर पाऊँ, आपनौ सो लै ठहराऊँ ।
मन मेरोऊ बिझकारै, चपरैं पै को निरवारै ।
कौ लौं गहि घाकौं रोकौं, सुनि सजनी बूझति तोकौं ।
मन नैन चख्यौ यह जैसैं, हा हा कहि तू हौ तैसैं ।
यह सबकौ हियौ घुमावै, रोमनि सौं भौंजि भिजावै ।

[६०८] छाक=कलेवा। मधु०=एक सखा। छकिहारी=छाक ले जाने-वाली। ढाक=पलाश।

अंतर बाहिर खुलि खेलैं, भोवैं भरि नेह फुलेलैं।
यासौं काहि क्यों नहिं रचियै, लाजहिं लै कौं लौं सचियै।
होरी को लाहौ लैहौं, फगुवा लै गुलचा दैहौं।
आनंदघन भलें भिजैहौं, रीझनि भरि भेंटि लिजैहौं॥

टोड़ी] (६१०) [चौताल

जब जब निकसत मोहन द्वार, मेरैं लैं आवत पहुँचाइ दैत नैन।
बगर बुहारयौंई करत अँसुवन-झर कहूँ न धरत ये चोंप चाव चैन।
दूरयौं तैं समीप कौ सुख लेत फिरि क्यौं अलग ह्वै लगन मोहि दुखदैन।
इकटक चितवत चितवत रितवत उघरि परैंगे आनँदघन रसऐन॥

देवगिरि] (६११) [सूलताल

बनवारी के सँगवा फिरिहौं, गुरुजन-डगनि कहा घर घिरिहौं।
ब्रजमोहन सौं सनमुख ह्वै है भावभरी भटभेरनि भिरिहौं।
अब लौं ऐसियै जिय आई प्रीतम के पन तें क्यों फिरिहौं।
आनँदघन पिय को आँसेरनि को हौं इन अँसुवन भार भिरिहौं॥

राग बिभास] (६१२) [इकताला

खेलि कितहूँ आए हौ हरि होरी सो मनमानि ये नई।
निसि की जागनि गुलाल-भरे दृग भरकनि मोहिं भई।
सोंधें रच्यौ मई नकबानी तुम भिजए हौ सुंदर गई।
नखछत सुलें छबीली छतियाँ मो हिय दाग दई।
फगुवा ताहि मोंहि चकचौंधी यह रसरीति नई।
आनँदघन इन किस भूमत हौ सरकौ नैंक दई॥

रामकली] (६१३) [चरचरी

कहा मेरे मोहन आगे हौ देत नहीं छिन चैन।
तुम अति आतुर बोलत हौ इत भैन महा दुखदैन।
न्यौत खरौ यह आज निगोड़ी देखन कौं तरसत हैं नैन।
आनँदघन अब उपरि नचौंगा और चपाव भलै न॥

[६११] फिरिहौं=विमुख होऊँगी। [६१२] चकचौंधी=चकचौंध। सरकौ=हटो, दूर होओ।

केदारो] (६१४) [चंचल

संग लगाएँई डोलै, मुरली के जो रति।
कहा करैं बपुरी ब्रज-अबला गरब-गाँठि गहि खोलै।
सुनि सुनि औरै होति थिर चर गति और विचारिनि को मते कोलै।
आनँदघन है रीझनि भिजए क्यौं न बड़े बोल बोलैं॥

रामकली] (६१५) [चौताला आड़

अब लौं राखियै ब्रज माहिं।
स्यामसुंदर सुंदर सुहृद सुनि अब बिलम करियै नाहिं।
बेलि ता द्रुम वे सरोवर निरखि नैन सिराहिं।
गोपी गोप ग्वारिक गोधन देखि जब दुख जाहिं।
दूध दधि माखन सुगोरस पोष पान अघाहिं।
बहुत दिन के दूबरे ये कहौ क्यौं बिललाहिं।
चैन ही की चुहल चहुँ घाँ रावरे गुन गाहिं।
मोदघन बरसत सदाईं इत अधिक अकुलाहिं॥

सारंग] (६१६) [इकताला

जब सुधि आवत जमुना-तीर।
चलति सलति करति लौं छाती दुसह दुहेली पीर।
राधा-बिरह-वेदना-ब्याकुल जिनहि कूकती जाय।
तेई तहाँ मिलाय नाहिं नभ करते हाय सहाय।
गायनि जल देते सुख लेते मुरली मधुर बजाय।
कहियै कहा अधम गति ऊधौ परे कहाँ सब आय।
कब धौं फिरि ह्वैहै वैसो दिन चित चूरत है चाय।
विष सो लगन राजसुख इत को हित आनँदघन छाय॥

पंचम] (६१७) [झपताल

गोपी गुपाल मिलि खेलत सरस फागु गोकुल
सुगंध मचि के गरयारैं निकसि।

[६१४] खोलै=काढ़ लेती है। [६१५] मोद०=आनंदघन।

कछु कहि न परति अति उमँग मन दृगनि की चौंधनि
सुदेस जु अनुपम रूप ब्रज रह्यौ लसि ।
एक मोहनहिं अमनित तरुनि तकनि प्रथमहिं छाँहि
अँकवारि मैं भरति कसि ।
छैल खिलवार दच्छिन सुलच्छन भरयौ सवनि त्यौं
सनमुख होत हँसनि हुलसि ।
बहुरि भूमक मचनि रचनि चाँचरनि की चलनि
चौंकनि भमकि भिभकनि परसि ।
खेलत के रंग निरत रंग-चढ़वार आति कोटिक मनोज-रति-
ओज दुरि दबत खसि ।
कचनि की फैल ठहरहे बदन रँगमगे बहुत निसि बीच
प्रगटत निकरि सरद-ससि ।
जोति की जगनि जगमगनि जावत नैन गौर साँवल
ओप संगम परयौ दरसि ।
धूँधरि गुलाल की निपट चढ़ि मढ़ि गई रसनि रँगरेल
फैली चहूँ दिसनि धसि ।
अंग परिमलनि मिलि बिबिध सौंधे ढरकि पवन को
गवन अरबरत जिहिं सुबास बसि ।
गारि गावैं कुच कला-कौतुकनि ढोल की ठनक डफ-
गरज स्रवननि सरसि ।
पिचकनि छुटनि बहुरंग रस की लुटनि पुहुप-गेंदुक
छटनि जुटनि लै दाव हँसि ।
औसर अनूप को रूप कहत न बनै अद्भुत बिनोद बानी
थकित गुननि गसि ।
रीझ भींजे रहत सदाय सुख लहत लाल ललना ललित
आनँदघन बरसि ॥

राग बिलावल] (६१८) [कपोतताल

दिनदैव दिवाकर दिवाकर दीनदयाल ।
परमधाम पुन्योपेत पुनीत परिपूरन प्रताप दूरन चूरन-भ्रम-तम-जाल ।

वंदनीय विभु विग्यान-प्रकासक विकासक सुहृद हृदय
विमल कमला-माल ।
आनँदघन उर-उदयाचल मैं अब उपजै हरि अनुराग अमोल लाल ॥

भैरो] (६१९) [झपताल

हा कृष्ण हा कृष्ण हा कृष्ण हा हा !
दीजियै मोहि निज दरस को लाहा ।
हा कृष्ण हा कृष्ण हा कृष्ण कैसैं ।
मुकट बनमाल मुरली धरे जैसैं ।
हा कृष्ण हा कृष्ण हा कृष्ण आवौ ।
राधिका सनमुखैं छैल तन काछौ !
हा कृष्ण हा कृष्ण हा कृष्ण प्यारे ।
सुघर सुंदर परम रूप-उजियारे ।
हा कृष्ण हा कृष्ण हरौ हिय-पीरैं ।
भीर नति छिन सखैं क्यौं धरौं धीरैं ।
हा कृष्ण हा कृष्ण हा कृष्ण आवौ ।
मधुर मूरति दिखै आँखिन सिरावौ ।
हा कृष्ण हा कृष्ण हा कृष्ण क्यौं जू ।
आस लागयौ जियौ ताकि तुम त्यौं जू ।
हा कृष्ण हा कृष्ण व्याकुल महा हौं ।
ज्ञानमनि धारि बरनौं कहा हौं ।
हा कृष्ण हा कृष्ण कोमल हियो है ।
दीन पै ऐसो कठिन क्यौं कियो है ।
हा कृष्ण हा कृष्ण सुनियै पुकारैं ।
जीवन-अधार हौ लागौ गुहारैं ।
हा कृष्ण हा कृष्ण बिरहा सतावै ।
दरस-रस बरसियै महा नन्द पावै ।
हा कृष्ण हा कृष्ण सकल सुखधामी ।

६१८—दिवाकर-दिव्य रूप (सतत) । बिमल-कमला (वेदी) ।

नाम की आस है कृपानिधि नामी।
हा कृष्ण हा कृष्ण आस निहारौं।
गिरिधर सुहृद सुखद सुंदर बिहारी।
हा कृष्ण हा कृष्ण हा कृष्ण गाऊँ।
आनँदघन प्रान - चातक जिवाऊँ॥

हमीर] (६२०) [चंचक

कहियै कहा हरि हिय की आरति जु कछू बड़ी राखै ताकि तोहि।
रूपनवेली निहारि तोहि नैंक जिन आँखियनि आई ननहिं जोहि।
जब मिलिहै तब करिहै कहा धौं कबहुँ वह घरी मिलिहै मोहि।
आनँदघन अभिलाष सकल हग हा हा कहि पठई तोहि॥

बिभास] (६२१) [इकताला

परसवौ करत मुहर लौं मिहरियनि खोटी खरी महर को कन्हैया।
ताहू मैं फिरि होरी माची अब कैसें बचियैगी ईया।
चौचँद की चाचरि मचावत आठ पहर को छैल खिलैया।
आनँदघनहि कहूँ जौ भिजवै बजै फागु मैं बाँधि बधैया॥

गंधार क्याल] (६२२) [मूलताल

ब्रजमोहन प्यारे आइयै आइयै।
अजू तुम अजू तुम भले बने हौ और दिननि तैं
उजियारे छबि-मतवारे।
जावक-तिलक छुटी अलक नवींदे नैना घूम घुमारे,
आनँदघन घूम घुमारे॥

टोड़ी] (६२३) [चंचक

कहा मन मिलाएँ होत अनमिल सौं जाको सहज
चंचल परयौ है सुभाइ।
दिन दस मौं लागि ताही लेत चपुरी अमलानि सुराइ।

६२१-मुहर-महर (सजना)। बजै-बनै (लंदन)।
[६२१] बजै० = फाग में मिलकर बधाई बजने लगे। सूब पदनामी हो।

करत फिरत बिसास बधुवनि के ब्रजमोहन कहूँ मोसौं न दाइ।
कहूँ उघरि कहूँ घमँड आनँदघन रचत नए नए दाइ॥

धनाश्री] (६५४) [इकताला

क्यौं नकबानी करत हौ अनमिलैं होरी खेलौ।
बेपरवाह किती करत मोहि इत उत भावती भरि सुजनि सकेलौ।
रजनी-रँग-भीजे तुम आए हरद रंग मो अंगनि रेलौ।
सौहैं न होत गुलाल-भरे हग खरकनि मो पुतरिन गहि मेलौ।
नखछत-सूलनि पीर मचिवत है अधरज झकझोरनि रस मेलौ।
आनँदघन पिय नए खिलारी भूमि भूमि छल-बलनि झमेलौ॥

रामकली] (६५५) [चरची

सलोने सोहन प्यारे ब्रजमोहन उज्यारे।
स्याम नवल नेही रसिक अँखियन तारे।
रैनि-जगे भले लगे नैन घुमारे रँगमगे डगमगे पधारे, छबि-मतवारे।
जावक - तिलक बिथुरीं अलक सरस सँवारे।
आनँदघन जनै बनै भाग हमारे॥

आसावरी] (६५६) [मूलताल

साडे गा हाल न बुझदा है गुज्झी गल्लाँ कैनू आखि सुनावाँ।
ब्रजमोहन दी बेपरवाहियाँ महरम किसे भी न पावाँ।
दरद दिवानियाँ खरी निमानियाँ कोथी दिल परचावाँ।
आनँदघन बेमिहरी दी हाँसी असो वी रो रो अड़ लावाँ॥

कमरी] (५२७) [मूलताल

मुरली बन मैं बाजै है।
सुनि सुनि रह्यौ न परत घर ननदी को करै काजै है।
याकी गति मति चलै ठौर तैं धीरज भाजै है।
आनँदघन मोहन - मुख लागी क्यौं नहि गाजै है॥

(६५८)

गोपीनायक गोपीवल्लभ गोपीजीवन गोपीप्रान।
गोपीकिंकर गोपीमोहन गोपीमंडन गोपीमान।

गोपी-सरबस गोपी-मंगल गोपी-मंडल-केलि-निधान ।
गोपीनागर रति-सुख-सागर गोपी आनँदघन रसदान ॥

टोडी] (६२९) [चौताला

आगम रितुराज के रतिराज-रंग तेरे अंगनि झलक्यौ ।
रोमराजी पर अति छबि राजी हियरा हुलसनि ललक्यौ ।
सुख की उठ औरई कछु अंतर को रस बाहिर छलक्यौ ।
आनँदघन जोबनधनि सुनि राधे सौतिन को मद ढलक्यौ ॥

भैरव] (६३०) [मत्ताताल

आए हौ जू आप हौ मेरे मन भाए हौ ।
स्याम उनींदे अँखियनि तारे भागनि जागि जगाए हौ ।
या छबि पर न्यौछावरि छिन छिन प्रानति के धन पाए हौ ।
आनँदघन ब्रजमोहन प्यारे नखसिख रंगनि छाए हौ ॥

आसावरी] (६३१) [चौताला

चौपनि घुरि बरसे महादानी नंदराय ।
सरस बरस-गाँठ ब्रजमोहन की फूल्यौ अंग न समाय ।
सबकौं सब कछु भरि देत अघाय ।
मैया को उछाह कहा कहियै लाला कौं सिंगारति लेति बलाय ।
हँसनि हुलसि चौक चाँदनी रचि लै बैठारति बहु धन
वारति मंगल गीत गवाय ।
जीवौ कोरि बरस असीसन द्विज बंदीजन बोलत बिरदाय ।
गोकुल परम कुलाहल को धुनि जित तित सुनियति
आनँदघन रह्यौ छाय ॥

ऐमनि] (६३२) [आडाताल

साँवरे ब्रजमोहन मो ही रहौ न परत मोहन मूरति
देखे बिन घरी पल हेली ।
कहा करौं कैसैं मन समझाऊँ ब्याकुल जियरा धीर न
धरत लागियै रहति तवेली ।

[६२९] रतिराज=काम । रोम०=रोमावली । उठ=दीप्ति ।

सुधि बुधि बेनु बजाय हरी सब परी रहति घर परबस
कासौं कहौं यह दसा दुहेली ।
आनँदघन हँसि चितवनि कौंधनि प्रानपपीहनि ओस
ठगौरी है मेली ॥

टोडी] (६३३) [इकताला

डोल की डुलनि मैं बिराजे झूलनि हार-बारनि की मोतिन
सिंगार अपार ओप लसैं गोरे साँवरे अंग ।
अतुल रूप-जोबन की तुलनि मैं झलकत नए नए रंग ।
सरस फाग खेलि खेलि झेलि सकल सुख रीझैं भीजैं रुचि-तरंग ।
जमुना-तीर कुसुमित बृंदाबन नित नित ही आनंदघन
बरसत सखि-समाज लिये संग ॥

टोडी] (६३४) [चौताला

जा पै तुम अपने हाथ ढरौ हौ कान्ह प्यारे
ताहि चाखौ सु करौ ।
रोकि रहत मन नैन गैल छैल छलियौ आनि अरौ ।
सोवत जागत कछु न स्यौरि परै मोहन गुन लै सुभर भरौ ।
इनमैं पै आनंदघन पिय उनए उघरे नहिं जानि परौ
पराए मरम हरौ ॥

केदारौ] (६३५) [चौताला

बूँदैं परतिं थोरी थोरी बहुत नीकी लागैं ।
नवजोबन-मदमाते दंपति सरस परस-रस पागैं ।
मरझाई दियैं झूलत फूलत सुखमाभरन तिलौंनियौं बागैं ।
आनँदघन अभिलाषनि घमंडे मधुर मधुर सुर रागैं ॥

सारंग] (६३६) [इकताला

जब तैं मन स्याम को धाम भयौ ।
लोकलाज-भय जाम को सब ही सोच गयौ ।

[६३२] तवेली=तापवेली, हृदयदाहक । [६३५] तिलौंनियौं=सुगंधित । बागैं=जामा ।

देखतहीँ मनमोहन-मूरति रंग-तरंग-रयौ ।
डीठि मिले घुरि मिल्यौ दूरि तैं संगम-स्वाद लयौ ।
अब कछु कहि न परति गति वाकी छिन छिन उमँग-छयौ ।
उनयौ रहत सरस आनँदघन नित ही चाय नयौ ॥

अलहिया बिलावल] (६३७) [इकताला
नित बिहार बृंदावन राधा-मोहन करत रहैं ।
सहज रँगीले छैल छबीले हित-चित-लाड़ लहैं ।
निस ब्रज नित ब्यौहार नित नए तब मन पवनि बहैं ।
नित ही हिय भूमैं आनँदघन जमुना-नीर गहैं ॥

कनरी] (६३८) [मूल
साँवलिया मेरे मन को लागू निस दिन आवै ।
चितवनि चाँप जनावै आवै बंसी-टेर सुनावै ।
रीझ-लाज-बसबस यह जियरा कल नहीं पलकौ पावै ।
हित चित की झूमनि आनँदघन की मौं फांड़ दुरावै ॥

केदारौ] (६३९) [मूल
फूली चाँदनि सुहाई मधुरिन को बनमाली बिहरत रास ।
मधुर मालती के सिंगार सजि पहिरि बिमल रस-वास ।
साँवल गौर अनूप रूप गुन मोहन गति भंजन बिलास ।
आनँदघन मुरली-धुनि घमंडनि नागरि भेर अनवास ॥

बिभास] (६४०) [चौताला
अचानक मूँदी री अँखियाँ औचपाई अहन
मोहन पाछे ह्वै आय
नौ जमुना के तीर इकौंसैं न्हाय बसन पलटाय सुखावति
केस कही तैं बैरी निकस हो हाय ।
जौ कोऊ कहूँ देखि पावतो तौ कहा करती हाय ।
आनँदघन अनबोलनि इनपाई देखिबे इन बातनि उयौं अनखाय ॥

६३६—२६—२२ (सतना) । ६४०—हास मोहन (वही) ।

[६३८] लागू = प्रेमी । [६३९] बस = सुवासित ।

ऐमनि] (६४१) [चारताल
मोहन सौं नैना लागे चितवत रहत चकित इत
उतहीँ निसिदिन इकटक टेक गही है ।
इनकी पीर न पावै कोऊ अंजन-रंजन एक चही है ।
आनँदघन हित सरसत बरसत लोकलाज कुलकानि बही है ॥

रामकली] (६४२) [मूलताल
इतनी माँगौं हौं हरि हाहा ज्यौं मन फिरै रावरे पाइनि ।
छिन बिछोह जिनि होहु मोह चाहौं अति गाढ़ी बिनती करत हौं चाइनि ।
सुहृद स्याम नटनायक मोहन गोहन लेहु लगाय सुभाइनि ।
आनँदघन हौं सुरस सरस करौ सच्यौं ललक के लाइनि ॥

कानरा] (६४३) [चौताल
रबिकुल-मंडन खलखंडन राम सकल सुखधाम प्रगट भए ।
हित-चितकनि महा-मनरंजन को फल बिधना आजु दए ।
जननी-जनक-सुकृत कहा बरनौं सुमनि परे दुख दूरि गयौ ।
अवधि पुरी आनँदघन उनयौ सुरसमूह दुंदुभी बजावत हरपत
बरपत पुहुप नए ॥

सुघरा] (६४४) [चंपक
कौन के ऊपर ये अटके नैना ।
काजर बिन हौं करत हैं घाइल फिरि ले मान चढ़ाए ।
सूधे सहज हैं साजत पै इते पर बंक बनाए ।
जानति हौं आनँदघन पिय त्यौं तानि तानि बरसाए ॥

तथा] (६४५)
यह मेह मोही पै बरसैंहौ ।
रसभीजी चितवनि चितइ भरि चौंप-चटक सरसैंहौ ।
मेरी अँखियनि गति कहा कहौं जब मोहन मुख दरसैंहौ ।
उघरि जु गौंगी आनँदघन सौं को लौं जिय तरसैंहौ ॥

६४३—चित-कानि—चितकानि (सतना) ।

देवगिरी] (६४६) [मूलताल

कैसैं मिलन बनै गोरी को।
रातिद्यौस सोचन ही मरियै क्यौं हूँ दुख न दुरत या ही को।
स्याम-रूप रीझीं ये अँखियाँ और कछू लागत नहिं नीको।
चातक-रट लागी सुनि सजनी आनँदघन जीवन है जी को॥

टोड़ी] (६४७) [मूलताल

बेगि लै आव री लालबिहारी मानपिया कौं।
कमललाल उनकै दरसन कौं राखि लै विकसि जिया कौं।
हितू आनि कै तोसौं कहति हौं चेरी मानि आधीन तिया कौं।
आनँदघनहि मिलै सियरी करि बिरह-बरत हिया कौं॥

तथा] (६४८)

आवौं औ तू आवौं जान मैंड़री गलियाँ।
ब्रजमोहन नैं डे दरस पियासियाँ पंडरा उडीकाँ अखियाँ॥

कानरो बागेसुरी] (६४९) [चंपक

अहो प्यारे हम सौं प्रीति करि कहि अति चाहुनि
काहू कौं अंतर-पट राख्यौ।
कपटनि की यह रीति सदा की कहूँ न साँच रस चाख्यौ।
भँवर-भाव जित तित डोलत हौ छिन छिन नयौ
सवाद अभिलाख्यौ।
आनँदघन कहूँ घमँड कहूँ झर यह दुख परत न भाख्यौ॥

गौरी] (६५०) [चंपक

ललन न आए अबार भई।
मो बिरहिनि की सुरति नवीनी कहूँ नई पहिचानि ठई।
दिन चातक लौं निपट निठुर भए पहिलो बिनहारि बिसारि दई।
अब ऐसो जिय आवति आनँदघन पिय सौं कहिहौं दौरि गई॥

[६४८] मैंड़री=मार्ग में खड़ी प्रतीक्षा कर रही हूँ। [६४९] बाहुरंग। [६५०] अबई=कमर।

हिंडोल] (६५१) [चाचरी

आजु मोहि तुम्हैं बन्यौ खेल सरस बसंत को।
भागनि फागुन के आगम मनभायौ औसर आयौ मिलि
कामिनि कामिनि-कंत को।
गहिरे रंगनि भीजि भिजैहौं लैहौं सुख गुन-रूपवंत को।
ब्रजमोहन आनँदघन प्यारे बरसैंगो रस परम तंत को॥

बिभास] (६५२) [इकताल

राधा मोहन कुंज झरोखी झलक सौं दोऊ मदमाते होरी के।
फागुन ओट उघरि आए गुन-हित चोराचोरी के।
सरस सिंगार धीर भरि खेलत रूप वैस जोरी के।
आनँदघन बरसत रस-रंगनि झकझोरा-झोरी के॥

रामकली] (६५३) [जाझाताल

राधा - रंग - बिलासी, कान्ह !
गोकुलजीवन प्रान - छबीली गिरि - गोबरधन - बासी।
जमुना - तीर - बिहारी मोहन कुंज - कुटीर - निवासी।
आनँदघन ब्रजमंडल - मंजुल बट - संकेत - उपासी॥

रामकली] (६५४) [चंपकताल

कान्ह को भँसुरिया है उनमादी खेलति रहै बारहमासी फाग।
ब्रजमोहन याकै रँग राचे नित ही नयो अनुराग।
अधर कै रस दै लै अधरासव मन मान्यौ फगुवा सुहाग।
आनँदघन पिय भिजए रिझए धनि धनि याको भाग॥

तथा] (६५५)

मुरली गुपाल की धन बाजै
याकी तानति सौं रस भीजि रिझावति बिजवति आजै।
याकी धुनि सुनि सब सुधि बिसरै कौन करै गृहकाजै।
आनँदघन पिय प्रेमधन - पगी याहि सबै कछु छाजै।

[६५१] तंत=तत्त्व। [६५३] उपासी=उपासक।

मोहन-अधर महा मादक रस पीवति क्यौं नहिं गाजै ।
याकौ भाग कहत नहिं आवै हरि-कर-कमलनि राजै ॥

राग बिहागरौ] (५५६) [जाग्रताल

घोष-नृपति नंदसदन बजति है बधाई ।
प्रगट्यौ कुलमंडन ब्रजमोहन सुखदाई ।
गहगह सौं सुनियत धुनि लगनि अति सुहाई ।
ढोल-ढनक झाँझ-झनक गोमुख सहनाई ।
नरनारी नाचति मिलि आनँद अधिकाई ।
बोलत हैं बंदीजन बिरद की बड़ाई ।
हरद दही भींजि रहे फागु सौं मचाई ।
दूध माखन गोरस की सरिता उमगाई ।
धर अंबर औरै कछु सोभा सरसाई ।
पवन परम पावनि कौं बहुत रुचि सहाई ।
गहमह अति माचि रही भई अमनि भाई ।
घरघर ब्रजमंडल मैं मंगलनिधि आई ।
कहि न परति जसुमति के भाग की निकाई ।
कुलचंद उदै भयौ कुल सुख-सिराई ।
सफल भयौ ब्रज सुधाम बिमल आस पुजाई ।
अवसर को सुभ फल चहूँ ओर पाई ।
देखत सुर बनिता मिलि पुहप-झरी लाई ।
थिर चर कै मोद बढ्यौ हित की अगराई ।
ब्रजपति के मन की उमग अति उदारताई ।
धेनु धन अनेक दियौ कीरति जग गाई ।
जसुदा कौ लालन ललन चिर जियौ कन्हाई ।
आनँदघन ब्रजजीवन बिलसौ ठकुराई ॥

बिलावल] (५५७) [मूलताल

नंद तिहारौ लाल जियौ, हो ।
बड़ी बैस बड़भागनि बिधना ऐसो पूत दियौ ।

[५५६] गोमुख=नरसिंहा ।

ब्रजरानी को कुल सिरानौ ब्रज सब सफल कियौ ।
भयौ हमारे मन को भायौ हुलस्यौ सजन हियौ ।
बहुत भाँति याके सुख देखौ तुमसौं कौन बियौ ।
उनै उनै बरसौ आनँदघन खेलौ खाहु पियौ ॥

सारंग] (५५८) [मूल

बधावनो नंद के भवन भयौ ।
ब्रजमोहन सौ पूत बुढ़ापै बिधना आहि दयौ ।
जसुमति रानी कुख सिरानी नित हित-लाड़ नयौ ।
यह सुख-सोभा सरसौ बरसौ आनँदघन उनयौ ॥

जैतश्री] (५५९) [मूलताल

वृषभान-भवन मैं मंगल को निधि है, हो ।
कीरति-कुख-मंजूष प्रगट भई सुख-संपति-सिधि-है हो ।
इनको भाग कहा कहि बानौं कछुक कहौ बिधि है हो ।
आनँदघन रावलि हित बरसन्यौ सरसत रस-रिधि है हो ॥

गौरी] (५६०) [मूल

लाड़िली राधा की सरस बधाई गाऊँ ।
कीरति-कुल-उजियारी कौं अति मीठौ भाग सराहूँ ।
भागभरी के भाव चाव सौं निस बासरि मनाऊँ ।
आनँदघन रस बरस नरम हित याही आँगन छाऊँ
यह न्यौछावरि हौं हीं पाऊँ ॥

बिभास] (५६१) [इकताला

कीरति भई जगत-उजियारी भागभरी राधा के जाएँ ।
भाग-बड़े वृषभानु पिता को जग जान्यौ मंगलमनि आएँ ।
और आप बड़ी ब्रजमंडल नरनारी रँगमगे बधाएँ ।

५५७–गाऱै–के सुत बहयौ (प्रति०)। लाड़–भाव (वही)। ५५९–मैं मुख-रुखि (प्रति०), मयूष (वही०)। रिधि–निधि (वही)।

[५५७] बैस=वयस, उम्र। बियौ=दूसरा। [५५९] सिधि=सिद्धि, समृद्धि। [५६०] मास=मास्पीरि।

नंद जसोदा अति ही फूले सुत-सनेह अंतर सरसाएँ ।
गोकुल ग्वालनि की छिन-संपति कैसें आवति बरनि बताएँ ।
नित नित सुख सोहिले दुहूँ घर आनँदघन भीजि गुन गाएँ ॥

सारंग] (६६२) [चंपक

घरघालू बँसुरिया कों कोऊ हटकै ।
बैठी रहन न देति घरी घर मोहन परी है निपट कै ।
धुनि सुनि बिसरि जात सुधि सबई मान तान-गुन उनहीं अटकै ।
लाज रीझ आनँदघन चमकनि मन परबस मन भटकै बन
बनचारी ज्यौं लटकै ॥

देसी] (६६३) [चौताला

आजु मेरें आए मया करि मोहन अलिहीं रति-रस-पागे ।
अधर अंजन-रेख पलक पीक-लीक झपकि झपकि निसि जागे ।
बैठौ जू हौं बिजन ढुराऊँ स्रमजल मुखकेँ स्याम सभागे ।
आनँदघन अलकनि धुरवा छूटे मोहि निपट नीके लागे ॥

राग जयत] (६६४) [चंपक ताल

घूमरे नैन अहजहीं गावरे इते पै सब निसि जागि आए हौ ।
बार बार झपि जात जम्हात लगत नीके लाखी चौंपनि झुकन न पाए हौ ।
कैसें कैसें छूटे छबीले रस निचोरि सरोबार पठाए हौ ।
आनँदघन पिय बैठौ मया करि बरसि बरसि छाए हौ ॥

राग केदारो] (६६५) [झपताल

राम जगधाम अभिराम प्रगटे अवधि मधुर मधुमास नवमी उज्यारी ।
दसरथ-निकेत जस-मंगल-उपेन बपु अतुल-बल-बिक्रम-बिनोदकारी ।
सानुज सछंद निज जनवृंद सुखकंद रविकुल-प्रकासक प्रतापधारी ।
करुनानिधान कीरति बिमल गंभीर धीर बरबीर भूभारहारी ।

६६५—उपेन०—उनए, जग मुख (वृंदा०) । सछंद—सुछंद (मनो०) ।

[६६२] घार०=घर बिगाड़नेवाली । [६६४] घूमरे=नशीले । झुकन=झुकना, अर्थात् आराम करने, सोने का अवसर नहीं मिला ।

मंडित अलंक धुनि मंगल सकल पुरी औसर अभूत सुषमानिहारी ।
जयति कौसल्याकुमार आनँदघन असुरमंदन सनातन बिहारी ॥

सारंग] (६६६) [मूलताल

मोहन मुरली मैं धुनि पूरे सुर की चोखनि मौं चित चूरै ।
सुनि ज्यौं ही जानै जैसें यह परबस परयौ बिसूरै ।
मुख उजास मौंहनि बिलास गति मति मोहै मन मैन-मरूरै ।
आनँदघन घर बैठेंऊ भिजवै ज्यौं गाथिनि री लोकलाज
कुलकानि गरब-गरूरै ॥

धनासिरी] (६६७) [मूल

होरी खेलन दै री ननदिया ।
कान्ह गरवाएँ ऊधम पारयौ सह्यौ न परत मोपै री ।
जु कछु कहैगी सोई करौंगी फागुन मैं जस लै री ।
आनँदघनहिं भिजाय रिझाऊँ आजु यहै पन है री ॥

सारंग] (६६८) [मूलताल

गोकुल बधाई माई बगर बगर, प्रेम-कुतूहल माची डगर डगर ।
ब्रज को चंद नंद-घर प्रगट्यौ चहूँ दिसि होति ज्योति जगर जगर ।
सोभासदन बदन मोहन को देखि जो जिये टगर टगर ।
जसुमति-भाग धन्य आनँदघन जग-बिसाल छायौ नगर नगर ॥

गौरी] (६६९) [मूलताल

ललौ री बधाए नंद कैं आनि आनंद ।
मंगल गावैं नैन सिरावैं भाग सफल करि लेखें देखें मोहन ब्रज को चंद ॥

कान्हरो] (६७०) [इकताला

कहा कहौं जसुदा मन को मोद ।
मोहन-मुख निहारि जो बाढ्यौ लै बैठी भरि गोद ।
अंगुरी अधर परसि दुलरावति गावति बालबिनोद ।
आनँदघन रस बरसि बढ़ायौ जनम जनम को नोद ।

६७०—कुँवर कान्ह—दुलरावति (मनो०) ।

[६६५] सछंद=सपरिकर । [६६८] टगर०=ध्यान देकर देखना । [६७०] मोद=हुलास ।

गौड़]　　(६७१)　　[इकताला

आई रितु सुखदाई पावस की सुहाई सीतल मधुर
पिक चातक और माते मुरवा।
स्याम घन मैं चपला-चमकनि चहूँ ओर छूटै दर्वांन धुरवा।
चलि राधे वृंदावन विहरन औसर बन्यौ है मनोरथ-पुरवा।
आनँदघन पिय बैन बजावत अति आरति सौं तोहि
बुलावत लै रीझनि भीजे सुरवा॥

ऐमनि]　　(६७२)　　[सूल

राधा-मोहन को सुख सींची तोहि गाय गाय जीजै।
ब्रज वृंदावन बसत रसत अपने चायनि भायनि नितबिहार मैं मन दीजै।
परम प्रेम को सिंधु अमित अति जिनहीं को हित बोहित कीजै।
आनँदघन रसरासि पाय कै क्यौं जग-छीलर छीजै॥

ऐमनि]　　(६७३)　　[सूल

रंग रह्यो है निपट हो लाल सौं होरी खेली।
चोंपनि रची रहस रुचि-आँचरि जोबन-रूप-नवेली।
बस करि लियौ भावती फगुवा अंगनि अति रति-रंगनि फैली।
आनँदघन पिय जिय की जीवनि रस की रासि सकेली॥

टोड़ी]　　(६७४)　　[इकताला

मेरे मन नैननि के भाए, राधामोहन छैल सुहाए।
होरी-खेल के बसन बनाए, अंग उमंग रंग सरसाए।
नीके लगत कहा ए, चोंपनि रांचि रुचि-राग जमाए
परम अनूप रूप दरसाए, नादक धुनि मति-प्रान छकाए।
जमुनातीर आनँदघन छाए, सरस बिलास पुंज बरसाए,
ऐसेई लखौं सदा ए॥

सधा]　　(६७५)

मोहि तुम हौ सुख दरसन हौ, स्याम उजियारे नैननि के तारे।
इतने पै जौ न रीझौ तौ प्रान परेखनि पीसत हौ।

[६७१] पुरवा=पूर्ण करनेवाला। [६७२] छीलर=तलैया। छीजै=छूजै।

तुमहीं जु दीसि परी सोई देखौ पलहूँ न खीसत हौ।
आनँदघन पिय ज्यौंति पपीहनि प्यास परोसत हौ॥

बिभास]　　(६७६)　　[चौताला

भुज भरि भरि गहैं लगाई री सु तू छतियाँ प्यारैं।
आनन पियराई धरक हियराई लड़ाई बहुत भाँतियाँ प्यारैं।
पीक कपोल सुहाए छाय लगी लागियैं आवनि आखैं
मदमातियाँ प्यारैं।
अंग अंग कठ अनूठो भई आनँदघन घुरि घुरि ढुरि
ढुरि भिजई रिझई सब रतियाँ प्यारैं॥

बिहागरो]　　(६७७)　　[इकताला

भरोसो रावरो हमैं।
पिय ब्रजचंद कौन धौं टारै तुम बिन ताप-तमैं।
हौं हरि दुख हरिहौ करि सुख क्यौं रूप रमैं।
आनँद-अमी-बरस सुदरस ह्वै भींज्यौ स्याम समैं॥

कानरो]　　(६७८)　　[इकताला

आवन दै होरी धौरी गहि।
कहा नचावति मोहन अबगरी लेहौं दाव भावतो गहि।
बहुत रह्यो बचि रचिहौ तब जब कोऊ कछु सकत नहिं कहि।
आनँदघन घुरि भरौं भिजैहौं अब नौ रहत मसोसनि सहि॥

सुद्ध बिलावल]　　(६७९)　　[ताल गीत

नंदनंदन-चरन चुंबन करि भलैं मन मेरे।
सदा वृंदावन-बिलासी नवनिजा-तट नेरे।
राधिका संग रासमंडल ज्योति-मंडल घेरे।
मोद परम पयोद चातक प्रानजीवन हेरे॥

[६७५] खीसत=नष्ट करते हो। परोसत=परोसते हो। [६७६] लड़ाई=प्यार की हुई। कठ=कड़ा। [६७८] अबगरी=बुद्धिमती।

पूरबी] (६८०) [चंपक.

मेरी अँखियनि बानि परी मोहन-मूरति देखें बिन न रहति ।
लख मिलि देति बहुत बिधि सिख सखी ये अमैंड़ तनकौ न गहति ।
कहा करौं कैसें करि राखौं उमगि उमगि काहू त्यौं न चहति ।
आनँदघन रस भींजि रीझि रहीं आँसेरनि जल बहति बहति ॥

(६८१) [आड़ चौताल

ब्रज को बिरह बरनै कौन ।
रहत बिचार बिचारि हिय तैं गहति बानी मौन ।
स्याम बिछुरे कहाँ कैसैं ह्वै रह्यौ सब ठाम ।
बिछुरि मिलि मिलि बिछुरि जीवन मीन देखत नाम ।
यह सँजोग बियोग ब्यापनि बचन क्यौंहूँ समाय ।
मन कहाँ या रस-परस कौ सुनत जड़ ह्वै जाय ।
ते नहीं ढूँढ़ें नेह माँहीं यहैं यह धूम ।
हाय ब्रज-ब्यौहार-गति अति मतिहि बिलुनति घूम ।
लाल ब्रजमोहन अछोहैं रैनिदिन दृग-संग ।
घमँडि घुरि घुरि उघरि गरमस धाँपि-थेटक-रंग ।
रमन मजबन गिरि जमुनतट मचि रह्यौ यह खेल ।
भावनद चहुवार आनँदघन महा रसरेल ॥

धनासिरी] (६८२) [मूलताल

कछु न सुधि परति हिरानो हाय ।
ब्रजमोहन को बिरह सखी री जो जिय ब्यापत आय ।
मेरो कहा रौर मन भाचा जहाँ जहाँ कान्ह-पुकार ।
आनँदघन भर अरयौ कहाँई देत न नैन उघार ॥

सारंग] (६८३) [इकताला

जमुनातीर की बतियाँ ।
ब्रजमोहन के संग रंग मैं सरद-ससी रतियाँ ।

[६८१] घूम=नशा; चक्कर। बिलुनति=रसा रंगा पृथक कर देती है।
धूम=तेजी से।

सरकति नहीं सरक हियरे तें हूक उठति छतियाँ ।
आनँदघन पिय चासनि टपकति बरुनी पैंसतियाँ ॥

बिहागरो] (६८४) [इकताला

रंगमहल मैं ललन बिहारी ।
बैठे आन प्रसंग रति-बाढ़ें ढिग लौं प्रानपियारी ।
सेज-बसनि छबि बसी हिये मैं लटकि रही उजियारी ।
आनँदघन बृंदाबन रस-भर जमुन-पुलिन सरसारी ॥

टोड़ी] (६८५) [चौताल

उमड़ि उमड़ि घुमड़ि घुमड़ि घुरि घुरि जुरि जुरि खेलत
राधा-मोहन रस-फागु रवानी ।
बिकसि बिकसि निकसि अपने अपने कुंजनि तें झूमत झुकत
झपटि लपटि बातनि घातनि करत गहत अनेक बनी मनमानी ।
मचत रचत पचत बचत नचत लचत फिरत घिरत मोरत
झकझोरन करि ऐंचातानी ।
आनँदघन भिजवत बिझवत भीजत रीझत रस लेत देत मन-
नैननि सुखदानी ॥

देस] (६८६) [इकताला

देखौ हो राधा को भाग फाग माहीं बनि आई है ।
ब्रजमोहन ब्रजराज लाड़िलो भींजि रह्यौ याकें अनुराग ।
पूरयौ करत सदा मुरली मैं अरु गुनहू याही के राग ।
याकौं रचि ब्रज मध्य रचायौ चटक चढ़्यौ पूरन घन-पाग ।
याके अंग-रंग की रचनि मनोभिज्ञ लौं भनि रह्यौ सुहाग ।
कहा न परति काहू के हिय को नित नित निपट नवेलो लाग ।
खेलन कौं पायौ मनभायौ सुंदर बृंदाबन सो बाग ।
हित-चौंचरि चमकनि आनँदघन नित उत फबी इन्हें यह फाग ॥

धनासिरी] (६८७) [चौताल

रसना गुपाल के गुन उरझी ।
बहुत भाँति छलछंद-बद बकवाद-फंद तें सुरझी ।

ब्रजमोहन-रस-चसकैं बीथी ढिलग-जाल गांस गुरझौ ।
आनँदघन रसधानि - चातकौ आन-कथा-रुचि मुरझौ ॥

होरी] (६८८) [मूलताल

ललित लतानि हिंडोरैं झूलत राधा-मोहन रीझनि भीजैं ।
रूप अनूप गौर साँवल मिलि परसत तरसत सरसत बरसत
दरसत पुलक-पसीजै ।
जमुना-तीर कुंज मंजुल मैं अति रति-बाढ़ै अधिक अधीजै ।
वृंदावन आनँदघन घमँडनि पूरन - प्रीति - पतीजै ॥

(६८९)

इच्छानि मनोरथदायक रथ चढ़ि निकसे मोहन स्याम ।
मंजुलगात विराजत अतिहीं पहिरैं मोतिन - दाम ।
सुरँग लपेटा सीस लपेटैं अलक - पेच परि सोहैं
मनिकुंडल जगमगत कपोलनि चाहत ही मन मोहैं ।
केलि - कमल गुँजौ सो पाँ तकि सुमके छैल बिहारी ।
छबिनिकाई निरखि भिकाई ह्वै हूँ चकित निहारी ।
सुबल सारथी अधिक पियारौ चपल-संभ्रम जाकौ ।
ताहि जनावत मरम हिये को निपट मन मिलौ जाकौ ।
गोकुल चारु चौहट्टैं चौंपनि देखनि कौं सब झूमैं ।
मादक रूप छकैं नरनारी विवस रीझ-रस घूमैं ।
कौतुक हेत भावतौ नागर डोलैं अपनैं चायनि ।
नगर गरवारे गैं हैं सा शिपि रचन रंगीले दायनि
पुहुप - झरी जितहीं तित लागैं सबकौं सब विधि भावैं ।
असुरारंजन नंदलला दिन आनँदघन बरसावैं ॥

सुघराभरन] (६९०) [इकताला

देख्यौ देख्यौ राधा को वृंदावन देख्यौ ।
जीवन जनम करम अपनौ सब भाँति सफल करि लेख्यौ ।

[६८८] अधीजै=अधीन, अधीर । पतीजै=विश्वास । [६८९] दाम=माला । सुरँग=लाल । लपेटा=पगड़ी । परि=ओपकर । पोर=छोर । सुबल=एक सखा । जाकौ=जिसको । दिन=प्रतिदिन ।

जमुना के तट सजल स्यामघन सब दिन सहज सुहायौ ।
दंपति सुख - सरसनि निज मंदिर हित-मंडप नित छायौ ।
सब तैं ऊँचौ लसत सुढ़ाम पै दीसत दूरि दुरायौ ।
अमल अखंडित अतुलित महिमा अद्भुत निगमनि गायौ ।
मोहन महा मदनमोहन कौ बालक बरनौं कैसें ।
दरस्यौ परस्यौ करौ सदाईं आनँदघन यह रीमैं ॥

तथा] (६९१)

सलोने साँवरे सौं मोहौ मुरली मधुर बजाय ।
जमुना-जल कौं जाति हो मेरी अँखियनि लाग्यौ आय ।
नैनति मैं ललचानि सौं हियौ सा त्यौं उन मुसिकाय ।
ता छिन की गति कहौं कहीं मेरी अजहूँ हियो घुमाय ।
देख्योई भावै सखी चित्र देखैं ज्यौं अकुलाय ।
उमगि सुरँगी आनँदघन सौं सूझौ यहै बनाय ॥

सारंग] (६९२) [इकताला

जौ कोऊ वृंदावन बसि जानैं ।
सब कछु तज भजै हरि-राधा मन पूरन पन ठानैं ।
छक्यौ रहै भरि भाव निरंतर करि लीला-रस पानैं ।
रसिक-संग कवि-रंग रचै नित प्रीति-रीति उर आनैं ।
चकित नैन चाहैं द्रुम-बेली दंपति-हित पहिचानैं ।
घूमत फिरैं नीर जमुना के निधवन ह्वै गुन गानैं ।
आन-बास रज ह्वै मैं रासौं सपन न कौं भ्रम भानैं ।
आनँदघन रस भींजि रीझ सौं जनम-सफलता मानैं ॥

बिहागरौ] (६९३) [मूलतान

मेरौ मन मोहन मान्यौ है ।
देख्यौ करौं साँवरी मूरति यह पन ठान्यौ है ।
मुरली तान-बान हिय बेध्यौ कसि करि तान्यौ है ।
रीझनि घमँडि भरौ आनँदघन मैं हूँ जान्यौ है ॥

[६९१] घुमाय=चक्कर आ रहा है । बनाय=भली भाँति ।

गौरी चैती] (६९४) [सूलताल

को पावै मेरे मन की पीर।
सही न परति कछु कही न परति है कैसैं धरौं कहा करौं धीर।
साँवरे बरन मनहरन छबीलौ डीठि परयौ जमुना कैं तीर।
जोबन-उमगनि रँगमगे अंगनि देखि भई हौं अधिक अधीर।
कदम-तरैं बनमाल गरैं लखि उर माही अभिलाषनि भीर।
रोम रोम भिजई आनँदघन रितयौ घट नैननि भरि नीर॥

कलिंगड़ा] (६९५) [इकताला

आवैं आवैं हो देख्योई भावै बजियारो स्याम सुहावै।
गोकुल को कान्ह कहावै मनमोहन बैन बजावै।
सुनि चेटक मनहिं लगावैं रसभीजी तानन गावै :
चितवनि मैं चोर जनावै नैनोऊ क्यौं ललचावै।
कोउ कौ लौं हिलग दुरावै आनँदघन उघरि भिजावै॥

आसावरी] (६९६) [चौताला

कान्ह गुवार नें गैयनि घेरि घेरि मन घेरयौ।
प्रीति-रीति परतीति जनाई गोरी कहि कहि टेरयौ।
हौं सुनि समझि रीझि भीजी उरझि सुरझि रहि परत निबेरयौ।
आनंदघन तन चोपनि घमड्यौ बरषै है फिरत न फेरयौ॥

सारंग] (६९७) [सूलताल

मोहिं न कल है सुनि पलकौ घर मैं मोहन मुरली बाजै।
उमगि उमगि मन बन कौं धावत गनत नहीं कुल-लाजै।
ऐसैं कैसें धरौं कहा महा कठिन उदेग उपराजै
आनँदघन सौं उघरि घुरौंगी उघरि पैज कौ पाजै॥

बिलावल] (६९८) [इकताला

छबीलो रसिकराय नवरंग।
सुंदर वर मुरलीधर प्यारो ब्रजमोहन सब अंग।

[६९७] उघरि=खोलकर। पैज=प्रतिज्ञा। पाजै=बाँध को।

ब्रज की सोभा मंगलमूरति ग्वालमंडली-संग।
बनैं ठनैं बरसत आनँदघन दिन अनुराग अभंग॥

(६९९)

आरी घनघटवा आनि अरै।
अटपटि-प्यास-भरी ब्रजमोहन पलकनि ओक करै।
रुचिर चाय सचुपाय निहारै मेरोऊ धीर हरै।
उघरि उघरि भिजवै आनँदघन चोंपनि लाय झरै॥

(७००)

आरी घनघटवा जान न देइ।
मुरली बजाय हरै घट-पट सुधि मन अपबस करि लेइ।
जितहि जाउँ तित आड़ौ ठाढ़ौ टरत न मारग सेइ।
रोम रोम भिजवै आनँदघन हियरा मदन-सलेह॥

बिलावल] (७०१) [इकताला

अरी तेरे कान्ह को बलाय मोहिं लागौ।
आँखिन को तारौ सब गोकुल-प्यारौ जीवौ जागौ।
याके सुख सब ही कौं सुख है हाँसौ आँखिन आगौ।
घनें वनें आनँदघन बरसौ बैरिनि के उर दागौ॥

(७०२)

नित समाज ब्रजराज कौं, नित गोधन की भीर।
नित नित मंगल गाइये, कान्ह कुँवर बलबीर॥

सुघराई] (७०३) [चंपकताल

कान्ह की देखौ हो सुघराई।
सुघराई सुर सौं मुरली मैं अपनोयै तान बजाई।
मोहिं जनाई मैं हो पाई उनकी हित-अगराई।
आनँदघन पिय घर बैठे हू रीझनि भींजि भिजाई॥

[६९९] ओक=चुल्लू, अंजली। [७००] आड़ौ=बीच में। सलेह=पीड़ित, मुर्झाया करके।

विभास] (७०४) [इकताला

अनोखे ये दिन होरी के।
कैसैं कै कोप भरैं करैं कहा अति बरजोरी के।
ख्याल करत ख्यालनि अचगरो नंद महर को छैल।
लै करि संग इकमनैं ग्वारनि रोकत बन घट गैल।
तनक न कानि करत काहू की तकत नवेली बाल।
फागुन के मिस मसलि गुलालैं पकरि करत उरमाल।
आवौ घेरि अनोखौ करियै कान्ह ऐंठि गुनचाय।
आनँदघनहि भलैं करि भिजवैं रिझवैं नाच नचाय॥

सारंग] (७०५) [इकताला

फागुन राच्यौ है ब्रज बालनि बालनि माच्यौ है खेल खिलारन।
ग्वारमंडली लै ब्रजमोहन डोलत गैल-गारधारन।
निपट अटपटो औसर पाएँ सकल अटारिन द्वारन।
कहूँ झपट कहूँ लपट कहूँ कछु को बरजै मतवारन।
आजु सखी या ओर भोर तें ऊधम रैन अपारन।
दूभर परयौ पनघट जैबो हरि कौं साँझ-सवारन।
हाँसी को सतिभाय करत है पैठत ठेलि किवारन।
थर थर कँपति रहति आनँदघन अरसत गोराधारन॥

कनरी] (७०६) [सूलताल

अरी गंगा हौं तेरो गुनगायक अब तू अपनोई गुन करि री।
मधुसूदन-पद-प्रीति बढ़ै नित ऐसी भाँतिन ढरि री।
जगत-जीव-निस्तारिनि जननी दीन जानि हिय को दुख हरि री।
आनँदघन रस छाकैं आऊँ तेरैं तीर कहत हौं पायनि परी री॥

विभास] (७०७) [चौताला

हरि-पद-जनित जगत-पावन जल जानि गंगा सीस धरैं हर।
और कहा कहि महिमा बरनियै यह देखौ सर्वोपर।

[७०५] गोराधारन = मूसलधारा।

मोहिं मिलौ महामंगलदायिनि मगन रहौं नित हीं याके बर।
सरस दरस रसदान गान गुन लाग्यौ आनँदघन-झर॥

भैरौं] (७०८) [चौताला

अगनित गुन रावरे गुपाल।
तिहारी कृपा तें पहौ कृपानिधि गनि गनि करि राखौं उरमाल।
मुरलीधर स्यामसुंदर बर राधामनि नैन बिसाल।
आनँदघन उदार ब्रजजीवन सब ही भाँतिनि दयाल॥

सारंग] (७०९) [इकताला

ब्रजमोहन देख्यौ चेटकी।
कहा कहौं कछु कहत न आवै बात अचानक भेट की।
लई लुभाय सुभाय तुरत हीं, चितवनि चाँपि-लपेट की।
मूरत नाहिं भटू कैसें हू भरनि सु पलकनि जेट की।
अब कित कहाँ हूँ कल परति न वा छिन करि मो सैन समेट की।
आनँदघन प्यासनि व्याकुल है हितू कहनि हौं पेट की॥

बिलावल] (७१०) [इकताला

तुम्हैं जु कछु आछी लगै सो करियै स्याम।
मन चाहै तन-संग ह्वै बन मैं बिसराम।
ब्रज रमाधव तें जाचहीं रज अगम सुधाम।
तहाँ कौन हौं बापुरो अति असुचि सकाम।
सुहृद सुजान उदार हौ करुनानिधि नाम।
ब्रजनायक लायक सुनैं गाऊँ गुनग्राम।
सोच-विमोचन हौ सदा लोचन-अभिराम।
कृपा-दृष्टि तें सब सधै यह कितिक काम।
सुंदर सुगम सुमिरत रहौं निस आठौं जाम।
आनँदघन हौ चातकहि कै मेटौ दुख-घाम॥

सारंग] (७११) [इकताला

मुरलियावारे साँवरे नैंक ठाढ़ौ रहि रे।
मान लै चल्यौ हाथ करि मेरो को धौं कहि रे।

[७०९] चेट=कुटी।

गोकुल गाँव अनीति होति है गैल चलत सकियै न निबहि रे ।
चेटक-गुननि भरयौ आनँदघन निरकयौ परस्यौ अबहि रे ॥

टोड़ी] (७१२) [मूलताल

जियहु जसोदा मैया जियौ पिता ब्रजराज ।
या ब्रजमोहन कैं हित आइ लड़ावन चाहन दिन दिन सुखनि समाज ।
यह धन धाम बिराजौ जुग जुग या घर सौं सब ही को काज ।
रसै उनै बरसौ आनँदघन ब्रजमंडन सिरताज ॥

मलार] (७१३) [चौताल

सुरति - सुख - बेली सरसति रंगनि ।
ललित लहलही चपला - कौंधनि चौंधति नव-घन-अंगनि ।
स्यामजल-कन पुहुपावलि-प्रगटनि कूजित कोकिला-काकली-संगनि ।
जमुना-तट बृंदावन आनँदघन भर लाग्यौ है उमंगनि ॥

ललित] (७१४) [मूलताल

घरघालू बँसुरिया बैर बढ़ी है ।
ब्रजमोहन मुँह लाइ बिगारी अति ही गरब चढ़ी है ।
देखि बुलाइ ठौर तैं मति - गति चेटक - मंत्र पढ़ी है ।
तान-बान बरसति आनँदघन हियरा जाति कढ़ी है ॥

बसंत] (७१५) [इकताला

खेलौंगी बसंत रँगीले प्रानपिय सौं ।
न्यारे न करौंगी छिन काँको भरि हिय सौं ।
ब्रजमोहन उजियारे नैननि के तारे कैसें कै मिलन
दैहौं काहू आन तिय सौं ।
आनँदघन सुजान गुन-रूप के निधान राखौंगी समोइ
मोइ जियराहि जिय सौं ॥

देसि रागिनी] (७१६) [इकताला

मन न रहै मेरो ब्रजमोहन पिय सौं निधरक होरी खेले बिन ।
दुरि दुरि मुरि मुरि की जौं रहौं री चिधिना कियौ है ऐसो दिन ।

अपने रंगनि भलें भिजऊंगी जैसें हौं भिजई घर मैं इन ।
आनँदघन सनेह की घमँडनि जानो है अब सबहिन ॥

सारंग] (७१७) [चंपकताल

जानिहौं जौ आज अछूते नचौगे ।
होरी - मिस करि नाक नकबेसर पै मम नीकें नचौगे ।
चपल चखनि काजर भरिहैं करिहैं तेई हाल लाल ज्यौं लचौगे ।
आनँदघन रिझवैंगी भिजैं छूटन को छंद क्यौं रचौगे ॥

धनाश्री] (७१८) [मूलताल

राधा कै हिंडोरै हाहा तनक झुलाय कब की कहसि
यौं हीं अब न डुलाय ।
अंग-संग रंग की उमंग उर बढ़ी अति कहाँ लौं धीरज
धरौं मन अकुलाय ।
रँगीले रिझवार सजहु बधु-सिंगार सोभा-सुख हेरें रहें सुरति भुलाय ।
जतन खतन लागि रहौ जू आनँदघन गाँव की पाहुनी कहि
सोहौंगी झुलाय ॥

नट] (७१९)

को है जू बिसाखा यह पाहुनी निहारी ;
साँवरे बरन मन हरति लजौंहीं बानि ऐसी धौं लगनि
कहूँ कबहूँ निहारी ।
मेरे मन भावति है मूलें तौ झुलाऊँ याहि हौं तौ याकी
ऊठ को परख पचि हारी ।
झूलि फूलि रस लेहु बरसौ आनँदमेह गहबर बन
ये बिहंगम बिहारी ॥

केदारो] (७२०) [चंपक

जो तुम बनावौगे सोई बनिहै मेरो सोच कहा ।
अब लौं तुम सब नीकी बनाई बनाइही नीकी महा ।

७१८—तनक-तन को (लंदन) । अंग—अंग (वही) । झुलाय—झुलाय (बृंदा०) । जतन०—जतन-खतन (मतमः) ।

[७१८] ललन=लाल, उचार ।

मंगलमूरति सब सुखदायक अघनायक गुन-निकर अहा ।
दीन पपीहा ज्यौं हरिजी आनँदघन टेक लहा ॥

कालिंगरा] (७२१) [इकताल

बृंदावन नीकौ लागै है ।
सजल सघन स्यामसुंदर-प्रेम-पागै है ।
जमुना के तट मोहन महा हियरा खागै है ।
आनँदघन मुरलिका-धुनि कोकिला रागै है ॥

गंधार] (७२२) [मूलताल

सुण सुण वे तुमीनियाँ मोहन प्यारियाँ चलदा क्यों नहीं गाहीं ।
रब्बे दी वल नजर न करदा न डरदा गरमियाँ दी आहीं ॥

गंधार] (७२३) [चंपकताल

जमुना-जनक जगत-उजियारे अदिति-कुमार दृगनि के तारे ।
जलज-बंधु तिमिर-प्रकासक चंदवंस कुलदेव हमारे ।
सविता सूर सकल सुखदाता परिपूरन प्रताप जस भारे ।
आनँदघन की यहै सुरभ दीजै दरस देखि गावै नंददुलारे ॥

बिहागरौ] (७२४) [इकताला

खेलत सरस फागु नवल रँगधाम राधिका गोरी मोहन स्याम ।
प्रेम रूप अनुराग उमंग मौं दरस परस रसमसे परसपर
भरि ढरि रंग ललाम ।
कहा कहौं रहौं चाहि चकित ह्वै अंग अंग अभिराम ।
झुरमुट मचनि रचनि छबि भावरि नचनि लचनि सुख-
मचनि चौंप वारियै कोटि रति-काम ।
जमुना-तीर मधुर बृंदावन बिलसत सदा कुंज-बिसराम ।
फगुवा देनि लैनि मनमानी आनंदघन घुरि घमँडि
उमँडि हित बरसत आठौ जाम ॥

सावंत] (७२५) [मूलताल

होरी रे होरी रे कान्हा कहा करि पाई ।
गोहन लाग्यौ रहत दिन दिन अब निकसैगी रसिकाई ।

[७२२] रब्बे=ईश्वर की ओर ।

आजु हमारे हाथ चढ़यौ तू चपरि गयौ करि करि लँगराई ।
छलबल ल्याय लाग भूल्यौ आनँदघन सबै उघरि आई ॥

भैरव] (७२६) [मूलताल

मंगल आरति जगमंगल की करियै मंगल रूप निहारि ।
मंगल ब्रज मंगल बृंदावन मंगलदायक जमुना-बारि ।
मंगल गोपी गोप बेनु हित गिरि गोधन मंगल-बिस्तारि ।
मंगल मुरली-धुनि आनँदघन मंगल गुन-लीला वर धारि ॥

बसंत] (७२७) [चरचरीताल

कुसुमित बनराज आज देखें ई बनि आवै री ।
जमुनातट सघन स्याम कैसी छबि पावै री ।
पवन-बस पराग-पुंज कुंजनि पर छावै ।
मधुप-गुंज मंजु घोष आनँद उपजावै री ।
तरु बेली-बलित ललित उमंग उर बढ़ावै ।
नूत-मुकुल-कलित मुदित कोकिल गावै री ।
मुरली-रस जु रली धुनि सुनियै अति भावै ।
तेरे गुन गाय गाय भेद सौं बुलावै री ।
चलि बलि अब निकरि गहर समझि चौंप चावै ।
सरस दरस परस साधि औसर के दावै री ।
बृंदावन-रानी तू बैठी बिरुदावै ।
आनँदघन तोसौं मिलि अति रस बरसावै री ॥

बिभास] (७२८) [इकताला

मेरो चित्त चाहै री नित चाहै निधरक भेटौं सुंदर स्यामैं ।
रूप जोबन गुन कहा करौं जौ आवै न प्रीतम-कामैं ।
ख्यौज लगौ गोकुल-भरम निगोड़ौ मोहि कहा मीठो है यामैं ।
आनँदघन जीवनधन मेरैं जोधनि लै लै नामैं ॥

बिभास] (७२९) [चरचरीताल

प्रानअधार हौ तू मेरे सुंदर नंदकुमार ।
दरस तुम्हारे नैन भिखारे तरसत बरसत हैं दिनराति आइ देहु इक बार ।"

दया लेहु जिन देहु अनाकनी तुम तौ परम उदार ।
आनँदघन पिय सुनियै हा हा दीन-पुकार ॥

सारंग] (७३०) [सूलताल

आवति है मुरली की टेर ।
गिरि घाँ तैं जमुना त्यौं सुनियति अहै गैयनि उझा दैबे की बेर ।
चलौ सखी पनघट जैयै पैयै मोहन-दरस लागी कब की औसेर ।
आनँदघन अभिलाष घमँड हिय बढ़्यौ रहति है साँझ-सबेर ॥

कल्यान] (७३१) [इकताला

सलौनो स्याम उज्यारौ ब्रजलोचन को तारौ ।
लाक लगाय फिरत फागुन मैं जोबन को मतवारौ ।
आँखिनि पैठे हियरौं बैठे क्यौं हूँ टरत न टारौ ।
रँगनि भिजै रिझवै मनमोहन गनत न साँझ-सकारौ ।
मसरि गुलाल कसरि मच काढ़े चेटक-भरयौ ठगारौ ।
नकबानौ करि खेल हसै पै लागत है अति प्यारौ ।
जित मैंधै चित सनमुख पैयै खौरि लगै अपहारौ ।
आनँदघन रसबादनि छायौ कान्हर गोकुलवारौ ॥

रामकली] (७३२) [चर्चरीताल

सलोने साँवरे गुपाल आँखिनि लागि रहे रूपनिधि
रसाल, केसरि की खौरि रचैं भागभरे भाल ।
चितवनि चित चोरि लेति घूमरे नैन बिसाल ।
कुंडल झलक भृकुटी मटक लटक-भरी चाल ।
कौस्तुभमनि कंठ दिपत उर बर बनमाल ।
सुंदर सुंदर दीरघ भुजा मोहन-ब्रजबाल ।
आनँदघन जीवनधन रसिक नंदलाल ॥

[७३१] खौरि०=हुल्लड़ करके कष्ट भी देता है और आपसे आप अनुकूल भी हो जाता है ।

राग गौर सारंग] (७३३) [सूलताल

जै जै जै श्री बामन बिसाल ।
कृपासिंधु महासील नरोत्तम नितहीं नित दीनदयाल ।
सत्यव्रत सत्यस्वरूप सत्यप्रतिज्ञ पूरन कृपाल ।
सच्चिदानंदघन अनघ त्रिबिक्रम-पद-नख-जल जग सुजस-जाल ॥

ऐमन] (७३४) [चंपकताल

मुरलिका केतिक छंद पढ़ी है ।
लगियै रहति मोहन-मुख चातैं अतिहीं गुमान बढ़ी है ।
हम कहा जानैं भोरी बिचारी गवेलिनि की मति मोहमढ़ी है ।
आनँदघन पिय रीझ-भिजे इन हाथ किये इन चेटक-चाँप चढ़ी है ॥

आसावरी] (७३५) [चौताला

मेरो काहू सौं न अब कछु काम है ।
जिय को जीवन नैनन को तारो प्यारो उजियारो मोहन स्याम है ।
कोरि चवाव करौ किन कोऊ मो कौं तौ वाही को पन आठौ जाम है ।
आनँदघन रसमूरति मैं मेरे प्रान-पपीहनि बिसराम है ॥

मलार] (७३६) [इकताला

बदरा उनै आए बरसन लागे रस ही रस ।
ब्रजमोहन संग हौं बन भीजी रीझि परी उनकैं बस ।
अंबर निपट भिजैं घर पठई रुकत नहीं करि हारी बहुत कस ।
उघरि लुगाँगी आनँदघन सौं अब सब तजि सजि षटदस ॥

राग सारंग] (७३७) [चंपक

अजौं मुरली की टेर वहै सुनियति है होइ नहिं कानति ।
निकसति नाहिं कहा धौं करिये पैठि रही पापी प्रानति ।
मोहनमूरति आगैं ठाढ़ी मन की रीझ नहिं बनति बखानति ।
भौंह तानि हँसि हेरि आनँदघन बरसत रस-बूँदनि बानति ॥

आसावरी] (७३८) [इकताला

अब मोहिं राखि लीजियै अपनैं चरन-कमल की छाँह ।
डगमगात हौं सुनौ हो गिरिधर एक तिहारी बाँह ।

[७३६] षटदस=सोलहो सिंगार ।

रह्यौ न काम कछू काहू सौं पालत प्रान रावरी आँह ।
आनँदघन दुखताप मैटियै कीजै कृपा - सिरोंह ॥

धनाश्री] (७३९) [मूलताल

हमकौं तिहारी है हो सरन हरि ।
जगमंगलकारी जदुनंदन अंतर - ताप - हरन ।
अंतरजामी सब - सुखस्वामी बंछित - पूरनकरन ।
करुनानिधि उदार आनंदघन जीवन - पोषन-भरन ॥

टोड़ी] (७४०) [चौताल

गैयनि चराय चराय गौं गहि करत कान्ह केलेऊँ काम ।
गिरि गोबरधन चढ़िया पेरत हेरत हौ नव धाम ।
हौं जानति ऐसैं हीं मोहन गोहन लागत सोहन स्याम ।
आनँदघन कहा भूमैं आवत पर जान देहु किनि फिरत बरावत घाम ॥

तथा] (७४१)

स्याम सलोने सौं आई है मनभाई रति मानि ।
अंगनि औरें ओप पमोजै अँखियनि मैं सिथलानि ।
बगरे बार भौंनें सार मैं झलकति अधर नई अरुनई-मरसानि ।
आनँदघन पिय रीझ घमंड सौं भरि भेंटी रस सानि ॥

सारंग] (७४२) [चर्पटी ताल

बरसानेवारी राधा नंदीसुर को मोहन ।
निपट रसीली छबीली जोरी देखि सिरात जोहन ।
इनको प्रेम सदा ब्रज व्यापक सबके मन-दृग इनहीं मोहन ।
आनँदघन रसभीजे बिलसौ स्याम मनोहर दोहन ॥

धनाश्री] (७४३) [रूपकताल

मेरी कहा सकति जौ गुन गाऊँ, गुन गाऊँ मन परचाऊँ ।
जिनको पार न पावत कोऊ तुम लौं हीं कैसैं आऊँ ।
लीला ललित परम पुरुषोत्तम क्यौं सुरूप पर ठहराऊँ ।

[७३९] आँह=भरोसे । सिरोंह=शीतलता । [७४०] बरावत घाम=घाम बचाते हो, कष्ट देने में लगे हो । [७४१] सार=घर ।

भूले भ्रमत बड़े बिधिहू से कौन रंक का निधि पाऊँ ।
सुनौ स्यामसुंदर मजनायक यह रस लौं रसनैं प्याऊँ ।
आनँदघन उदार जगजीवन कृपा - भरोसैं ढाऊँ ॥

तथा] (७४४)

आजु राधा बलि प्रगट भई ।
जसुमति सुनत चली कीरति कैं नखसिख मोदमई ।
कलियाँ किये सुथरे नाखहि चित हित-चोंप नई ।
अंजि बधाई को सब साजि कै नीकी भाँति लई ।
भाग - सुहाग - भरी को सोभा त्रिभुवन ओप गई ।
सुन - सोहिलो मगावत मन मैं आतिहीं रंगमई ।
नंद परम आनंदनि भीजे हिय मैं उमंग छई ।
हुलसि हुलसि भेंटत वृषभानैं जोरी सुकृत-जई ।
गोकुल रावरि एकमेक ह्वै प्रेमघटा उनई ।
कही न परति आनँदघन घमंडनि अथ बरन्योप गई ॥

(७४५)

बरसाने की नोज सुहाई । हरिप्यारी सबहिनि मन भाई ।
कीरति अबहि न्हवाई राधा । अपनी लाड़ली हित - साधा ।
मेहँदी रची रुचिर कर - पाइनि । ललित ललौ कौं मजति बनाइनि ।
पाटी पारि दियौ दृग अंजन । वारौं कोटि सरद के खंजन ।
सुरँग ओढ़नी हियनि अंचिरी । छबि-फांव पै बलिहार जाँव री ।
भूषन बनक बनक क्यौं कहियै । देखत देखत देखत रहियै ।
रूपमाधुरी बरसति रंगनि । फूली मात समात न अंगनि ॥

सारंग] (७४६) [चौताला

मेरे अरु गुपाल के बीच मनि कोऊ परौ हो ।
मोहिं उन्हैं रसखेल मच्यौ है जो जाकैं जिय मैं सु भरौ हो ।
बारह मास फाग सुख या ब्रज मैं इन बे मो रंग ढरौ हो ।
जौ होरी-औसर बिधना रच्यौ तौ आनँदघन दुरि घमंडनि उघरौ हो ॥

[७४६] ढिग=किनारा ।

ललित] (७४७) [चलती ताल

सलोने स्याम प्यारे बैन बजाय बिमोहि लई ।
जमुना-तीर कदम-तर ठाढ़ी भोरहीं भेंट भई ।
देखनहीं मनमोहन मूरति सब बिधि बिसरि गई ।
आनंदघन पिय हँसि चितवनि मैं नखसिख लौं भिजई ॥

सारंग] (७४८) [इकताला

जेठ दुपहरी को सुख लेत ।
राधा मोहन सहज सनेही करि बन घन संकेत
लीला-मगन रहत रससागर उमँगत हिय भरि हेत ।
झूमि झूमि बरसत आनँदघन भरत मनोरथ-खेत ॥

सुघराई] (७४९) [चंपकताल

बदराऊँ नए नए नए ।
स्यामसुंदर मनभावन आवन के सगुन भए ।
मोहिं भरोसो है उनको वरि मोसों अवधि गए ।
आनँदघन पिय बरसि रसिक हैं चातक-प्रान तए ॥

मलार] (७५०) [इकताला

पचरँग पाट बिचित्र पबित्रा पहिरैं मोहनमदन गुपाल ।
उर बिसाल पै अति द्युति बाढ़ी प्रजगोगिन मन-लोचन-जाल ।
जुग दियें कियें नटवर बपु केसरि-खौरि बिराजति भाल ।
छके नैन अनियारी भौंहैं हँसि हेरनि मैं करत निहाल ।
अबिरल कुटिल रुचिर अति मेचक छुटे छबीले अलक बिसाल ।
मनिकुंडल मिलि बिमल कपोलनि हलनि हलत मति की गति हाल ।
जमुना-तीर लसत नवरंगी धरैं बैन बर तरैं तमाल ।
कही न परति राग-रचना की घिर घर सुनत होत बेहाल ।
निस-उतसव-सुरूप ब्रजमोहन करत रहत रसरंगनि ख्याल ।
रीझि-भिजें राख्यौ सबहीं ब्रज आनँदघन गुन-रूप-रसाल ॥

[७५०] पाट=रेशम । पबित्रा=रेशमी डोरों की माला । मेचक=काले । हाल=तुरत ।

बिभास] (७५१) [इकताला

एक पालनैं झुलावति जसुमति कीरतिकुँवरि आपनैं लालैं ।
कही न परति अति आनँद की गति वारि देति मनि-मोतिनि मालैं ।
ओढ़ि ओढ़ि आँचर बिथना पै माँगति कुसल प्रीति-पन पालैं ।
फलैं फलैं बरसौ आनँदघन गोकुल रावलि करत निहालैं ॥

पूरबी] (७५२) [इकताला

ए देखौ देखौ मुरली की बिराजनि ।
ब्रजबधूनि की सुधि बुधि कौं हरति गाजा बाजनि ।
अपबस करि लेति है नित नित सजति सुख-समाजनि ।
आनँदघन रीझि भीजि करै कौन काजनि ॥

सारंग] (७५३) [मूलताल

कान्ह चरावत गैया बन मैं ।
जिनहिं जिन ठौरनि ह्वै निकसत पैठत मेरे मन मैं ।
खदू भयौ पायनि लगि डोलत अति व्याकुलता तन मैं ।
ब्रजमोहन हँसि चितवनि भिजई कौंधनि आनँदघन मैं ॥

टोडी] (७५४) [इकताला

सलोने ब्रज बगराई है, अपने रस की ठगोरी ।
ब्रजमोहन सब ही बिधि सौं रसरीति चलाई है ।
काहू की कछु कही न परति अतिहीं अँगराई है ।
आनँदघन मुरली-धुनि घमँडनि प्रेम-दुहाई है ॥

जैतसिरी] (७५५) [इकताला

मोहिं दीजै जू ब्रजबास ।
सुनौ नंद वृषभानराय जू पुजवौ जिय की आस ।
जोके रहौ राधिका-मोहन दिन दिन अधिक हुलास ।
आनँदघन लाके गुन गाऊँ दुहुँ घर के चहुँ पास ॥

७५४—बगि भी टेन (संगा) ।

[७५१] ओढ़ि = पसारकर ।

आसावरी] (३५६) [आड़ चौताला

नंद तिहारैं दिन दिन ऐसोई रहौ।
कान्ह कुँवर कुलमंडन कैं मुख देखियै भाँति लहौ।
जसुमति-प्यारी आँखियनि तारौ निरखहीं हियहिं चहौ।
गोकुल-जीवनधन आनँदघन बनै बनै सबहौ॥

(३५७)

मनमोहन चितचोरन प्यारे मन मोह्यौ चित चोर्यौ जू।
जो जो करौ सोई सोहै सो तुम्हैं रूप को जोरो जू।
आइ अचरि ठगी उर कौं अब कहुँ जोरौ कहुँ तोरौ जू।
नई चाँप चलए आनँदघन जिय न दई डर थोरौ जू॥

पूरिया धनासिरी] (३५८) [चौताला

कौन जानै किनहिं किनहिं तुम कपट फिरत बैसौं बनि।
काहू सौं बदत बोल कितहूँ करन मोल कहूँ लै महत
भोल ठगत बिसासी सबनि।
अयस होति भारी ब्रज-अबला चतुर छैल ठगी अपनैंई छपनि।
आनँदघन ब्रजमोहन रसरंगी तुम्हैं सोहै नई नई कपनि॥

मालव] (३५९) [एकताला

सब-सुख-सोभा-मूल बृंदाबन धन मेरैं।
राधा-मोहन गाऊँ न्हाऊँ जमुना साँझ-सबेरैं।
प्रेममंडली दरसन पाऊँ धीरसमीर बंसीबट नेरैं।
आनँदघन झर सदा लगाऊँ नित्यबिहार-हित हेरैं॥

गौरी] (३६०) [एकताला

बढ़ि चली पिय पै को बेढ़ारैं।
मुरली की धुनि साँची साथिनि मो गति-मतिहि सम्हारैं।
आँखियनि दरस-लालसा बाढ़ी को कुलकानि निहारैं।
दरस-चाँप-तरपरी हिये मैं आनिहीं ऊधम पारैं।
औंध्यौ हिय हरि-हेत-फँदा मैं को धौं अब निरवारैं।
प्रान-पपीहा पीवैं जीवैं आनँदघन रसधारैं॥

टोड़ी] (३६१) [चौताला

ज्यौं ही ज्यौं ही चाहौं त्यौं ही त्यौं तनि तुमहीं बिस्तारौ।
तुमहीं गावौ तुमहीं सुनि समझौ यामैं कहा है हमारौ।
एक रूप मैं अनेक आभा दिपैं सुघरराई त्यौनार तिहारौ।
आनँदघन झर लाय रहे ऐसैं क्यौं हूँ न परम उघारौ भलैं
भलैं हौ जू बड़े रिझवारौ॥

टोड़ी] (३६२) [चौताला

मुरलिया मैं त्यौनार भरे हैं।
धुनि सुनि हिय बेहाल होत है इन ये हाल करे हैं।
याकी घातनि परनि मैं घूमनि गुरजन-लोग डरे हैं।
मुँह लगाय ब्रजनाथ बिगारी ऐसे रीझि परे हैं।
लागी रहति गोहन दिनरजनी जिन के नैंन धरे हैं॥
आप अमैंड भई गरजनि है लाज के साज हरे हैं।
कान्ह कुँवर ब्रजमोहन मोहै याही ढार ढरे हैं।
कछु न रहति काहू थिर चर कौं सबके मरम छरे हैं।
सुबस बसी गोकुल पै इन अब ऊलट रचे खरे हैं।
सुखबलि भिजवति रिझवति खिजवति धीरज धरम दरे हैं।
आनँदघन रसबस करि राखे नाद-सवाद ररे हैं।
याहि सबै कछु फबै सखी री पूरन पुन्य फरे हैं॥

भैरव] (३६३) [चौताला

गुन गुपाल के गाय मन, भटकत फिरत वृथा कौं।
इनहीं मैं बिसराम लहैगो दुरि दुरि फिरि आय मन।
सीतल भयौ न कितहूँ धीरे लखि लखि रह्यौ मुरझाय मन।
आनँदघन रसपान करौ किन ऐसैंहै सचु पाय मन॥

मालकौंस] (३६४) [कपोलताल

ताल-सुर-भेद जानत एकै मोहन ब्रजनायक।
नटनागर रूपउजागर गुनसागर सबही बिधि लायक
ऐसो कौन सुघर सुरगायक।

[३६३] सचु=सुख।

जाकी मुरली सुनि मोहे थिर जंगम बँधे, सरस महा-
व्यापक सुरसायक ।
आनँदघन रस-तानहिं छायौ बृंदावन गोपीजन मन-नैन-
प्रान सींचे स्रवननि सुखदायक ॥

गौरी] (७६५) [चौताल

को पावै उनके मन की बात ।
काहू कौं काहूँ परेखौ ए ब्रजमोहन कपटनि के नायक
इत आवत उत जात ।
कहूँ सैन कहूँ बैन कहूँ तोर कहूँ जोर गौं गहि डोलत साँझ-प्रभात ।
आनँदघन रसछादनि उनए गुननि भरे सब गात ॥

धनासिरी] (७६६) [मूलताल

फागु-सुख बिलसैं मोहन स्याम, हित मिलि गोपबधू अभिराम ।
गोकुल गाँव तीर जमुना के सुंदर पुलिन पुनीत ।
उमँग भरे सजि साँज खेल कौ गावत होरी गीत ।
रमनीमनि वृषभानुनंदिनी साजें सखिनि समाज ।
गोपकुँवर मंडल मैं राजत ब्रजमोहन सिरताज ।
बरनौं कहा रूप-गुनमहिमा महाभाग दुहूँ ओर ।
अतुल उमँग अनुराग रँगमगे अरस-परस चित चोर ।
चाचरि मचनि चोंप-चोखनि सौं गावनि रसनिधि गारि ।
कंठ किलक मधुरिमा मनोहर........................ ॥

ऐमनि] (७६७) [इकताला

राधा-मोहन सौं हित-होरी माची नीको दाव बन्यौ है ।
जोबन की लहलहनि दुहुँनि तन मन अनुराग-सन्यौ है ।
रूपनिकाई अनूप कहा कहौं मानैं छबि छन्यौ है ।
सरस खिलार भीजि रहे रीझनि गाढ़ौ रंग छन्यौ है ।
सब ब्रज इन ही के रंग राच्यौ सुखसागर उफन्यौ है ।
आनँदघन अभिलाषनि घमँडे सुजस-बितान तन्यौ है ॥

[७६६] अरस०=आलिंगन ।

ललित] (७६८) [आड़ाताल

उन्हैं तुम्हैं आछी फाग मची है ।
निपट नवेली चोंप-चटक सौं प्रीति की रीति रची है ।
नैन गुलाल-भरे अरसौंहैं यातें डीठि लची है ।
स्याम हौं अँग रँग बोरि पठाए काहू बिधि न बची है ।
झकझोरनि बँद टूटे छूटे बर नवरंग खची है ।
कौन खेल अब खेलियै तुम सौं बुद्धि बिचारि पची है ।
मनमान्यौ फगुवा दै आए सो गात उघरि नची है ।
आनँदघन इतहू हित छाए पन-परतीति जची है ॥

रामकली] (७६९) [चौताल

अति रँगभीजी राति बसी है, प्रानप्यारे पै ।
लगनि छबीली छाकी डोलनि भुज भरि नीकैं कसी है ।
अंगनि रंगतरंग उठनि कछु और उर लसी है ।
आनँदघन हुरि घुरि चोंपनि सौं भिजयौ स्याम रसी है ॥

रामकली] (७७०) [मूलताल

राधे लाड़-गहेलरी प्रीतम प्रान-सहेलरी सरस सुहाग-सुहेलरी ।
मोहनमदन गुपाल हिये की हिलग-हमेलरी ।
अपने बृंदाबन की सोभा आचरज-बेलरी ।
आनँदघन रसप्यासनि सींचै नेह-नवेलरी ॥

हिंडोल] (७७१) [इकताला

बारियै या छबि पै बहुत बसंत तू मदनगुपाल लाल कौं री
माला उर-बनमाल भई है ।
अंग अंग रतिरंग प्रगट भए भरी फूल हिय को नख-
सिख लौं तेरी रची बिधना ताही लै दई है ।
सो नैनानि को सुख ही हौ समझति नीकी बसंतपंचमी नई है ।
आनँदघन पिय रीझनि भाँति घमँड-रस राख्यौ आनि
रसरासि लई है ॥

पूरबी] (७७२) [इकताला

हो हो हो होरी बोलौं।
राधा-मोहन जोबन-उमगनि अपने रंग कलोलौं।
सुंदर बदन अनूप निकाई। फैलि रही ब्रज रूप-जुन्हाई।
कहाँ न परति हित-मादिकताई। सब ही की मति मोह-छकाई।
सहज रंग रचि रहे सदाई। फिरि मनभाई फागु मनाई।
चौपनि चाचरि धूहल मचाई। नचनि परी जो बहुत दुराई।
आनँदघन रसभीजि लगाई। हिलग-लता काबरी सुहाई॥

सारंग] (७७३) [इकताला

केसरि-खौरि किये जोबन-मद पिये निडर छैल
डोलत है नंद को मोहन स्याम।
हाथ मैं गुलाल लियें औरैं कछु छल हियें काहू पै दाव सें
दियें यहौ बोच मँडरात कौन धौं काम।
जसुमै जान कौं कब की अरथरनि कौं लौं धंसेहु रहियै धाम।
आनँदघन झूल्याँई देखियै यह ऊधम गोकुल हो हो आठौ जाम॥

सारंग] (७७४) [इकताला

धनि धनि राधा को भाग-सुहाग धनि याही फाग।
ब्रजमोहन पै इन लै मोल्यौ घर ही घर यह राग।
याही को रँग राचनी अति चोखो अनुराग।
इनही आनँदघन रस भिज्यौ दै पूरन पन-पाग॥

रामकली] (७७५) [मूलताल

मिठबोलन डोलन चंगेरा महरदा लाड़-गहेलरा।
साँवला मोहन गोकुलवालिया जिंद-चहेलरा।
मुझ जेहा इसनूँ बहुतेरी मेंडा दा अकेलरा।
प्राण-पपीहाँ दा आनँदघन खरा नवेलरा॥

पूरबी] (७७६) [चौताला

ब्रजनाथ बनैसैं मो मन बसियौ।
जसुदानंदन बलि जैयै इतनो कहा अब कसिबौ।

७७३—दियैं—किये (सतना)।

ब्रजधन-लीला मगन रहै मनमोहन-गुन-गाँसनि मैं गसिबो।
आनँदघन हौ प्रान-पपीहनि कौं ज्यौं तरपनि बरसिबो॥

धनासिरी] (७७७) [इकताला

राधे अब कैं चाचरि बहुरयौ दै अब तेरो ही चाचरि रंग।
फागुन मास फब्यौ भलैं मिलि खेलन कौं पिय के संग।
हौं रीझी तेरी उर पै तेरे नेह नाह सुहाग।
रोम रोम आनँद भरि पिय राच्यौ तेरैं अनुराग।
तेरो चाचरि राचनी अब तेरो ही त्यौहार।
तातैं रंग रहै सबै रस भीज्यौ रसिक रिझवार।
तेरी भौंहनि-भरनि मैं थकि घूमैं ब्रजनायक छैल।
बदन-चटक मटक-टक सौं रोकै मन-लोचन-गैल।
ब्रजगोरी गावैं सबैं तेरी चाचरि के गीत।
भिज्यौ रीझनि चौंर सौं अपनो आनँदघन मीत॥

सारंग] (७७८) [इकताला

मुरली-धुनि सुनत डोलिये संग।
मोहन-मूरति देखि बाढ़ति उर अभिलाष-तरंग।
घर बाहिर के कछू कहूँ नौ धरौं नहीं तिल एक।
कैसैं टरति भई हियरा तैं पूरन पन की टेक।
बस करि लई रसीली तानिन नहिं सुहाय कछु और।
रोम रोम भिजई आनँदघन रसिक छैल-सिरमौर॥

सावंत] (७७९) [इकताला

राधा-मोहन की हित-बात हाति रहति नित नैननि सैननि।
मिलन-स्याम रस-आमनि लागे ताकन है हाँसी का पात।
मोधनि बगार जमुन-जल जित तित ताकैं रहत साँझ परभात।

७७७-सजन०—किधौं ब्रजमोहन (सतना) तेरी०—तेरी रीझनि पै तेरी लहलहौ (वही); तेरो उर पै तेरे नेह नीर (वृंदावन)। सबै—सदै (सतना)। धकि—थकि (सतना) चटक—चंद (वही)।

[७७६] लसिबो=भास देना।

जोबन चाव न समात हिये मैं उमगे परत गात लखि गात ।
भागनि फल्यौ फागु को औसर निडर खेल रंगनि सरसात ।
मसरि गुलाल कसरि सब काहू आरति-भरे पियत ह्वै जात ।
सजीवन-सुख सहेट-फल चाखत परम मरम हिलिमिलनि हिलात ।
मन मोचन सींचत आनँदघन सदा रहौ इनकैं कुसलात ॥

सारंग] (७८०) [इकताला

मतवार मोहन होरी को ।
जाहि सहजहीं रस को चसको घातनि माहि बरजोरी को ।
लहुवा भयौ फिरत दिन-रजनी लगुआ गोरी भोरी को ।
मीठो महा मिल्यौ मुँहमाग्यौ उघरि उघरि गुर चोरी को ।
भींजि रह्यौ रंगनि भर भिजवै ब्रजमोहन है ओरी को ।
या ब्रज यह औसर आनँदघन अति रस ढोराढोरी को ॥

सहानो] (७८१) [इकताला

कन्हैया रंगनि भीजौ मोहि रंगनि भिजावै ।
छाँटि-पिचक भरि भेदभाव सौं मो तन ताकि चलावै ।
नैननि सैननि होरी खेलैं करत सबै कछु जो जिय भावै ।
रीझनि रसँहि सनँहि आनँदघन उघरि उघरि झर लावै ॥

भैरव] (७८२) [झम्पताल

बहुतनि सौं बहुत भाँति रमै एक स्याम ।
चेटक की मूरति है ब्रजमोहन नाम ।
जाहि देखि कछु न देखियै दीसैं सब ठाम ।
आँखिनि भरि देखन को साधैं आठ जाम ।
ब्रज अचरज रस भीनौ अद्भुत गुनधाम ।
आनँदघन जीवनधन जिय को बिसराम ॥

ऐमनि] (७८३) [चौताला

सुंदर मुख माड़्यौ रोरी तैं माड़्यौ मोहन को धनि यह फागु-बानी ।
जैसैं मन चाहत हौ तैसैं दुहुँनि मत रचि मानी ।

[७८०] लगुआ=लागू, प्रेमी ।

परम दोस या आसा जितयौ अब बिधना यह बानक बानी ।
आनँदघन पुरि झुरि रस बरसौ चिर जियौ जोरी सहानी ॥

मरहठी रागिनी] (७८४) [झम्पताल

मोहन लाल कौं मल्हाऊँ सरस बधाई गाऊँ ।
जसुमति के भागनि बरनि रसनै लाड़ लड़ाऊँ ।
सुंदर मुख भागनि फल आँखिनि लै दिखाऊँ ।
दिन दिन या घर को बहु भाँति भाँति मनाऊँ ।
लाड़िले के सुख-सुहेले बाँधि बधाई गाऊँ ।
नितहीं मंगल नंद के मंदिर दौरि दौरि आऊँ ।
आनँदघन भागभरी के आँगन झरि झाऊँ ॥

कान्हरो] (७८५) [चौताला

को पावै हो ब्रजरस को भेद ।
जानत पै न बखानत मन ही मन अनुमानत बेद ।
श्रीगोपीपद-रज-प्रसाद-बल अगम सुगम और साधन सकल खेद ।
आनँदघन याहीं रस भींजो रंगि पीतबसन-छोर छोरि
सुखवत मुख-स्रम-सेद ॥

रामकली] (७८६) [आड़ चौताला

राधा-रूप गौर उर फुरै ।
स्याम रूप अनूप राधा स्याम अंतर दुरै ।
प्रगट परमानंद मूरति नैन-पुतरिनि तुरै ।
पलक-संपुट उघरि घुरि घुरि या दरस घन घुरै ।
प्रान चातकपन पलै रुचि ठाढ़ि बिरहा-जुरै ।
केलि सकल अकेलि मनसा थकै सब कछु फुरै ।

मरहठी रागिनी] (७८७)

राधा राधा गाऊँ राधा प्रान कौं रिझाऊँ ।
राधा के गुन-रूप बरनि रसनैं रसाऊँ ।

[७८३] माड़्यौ=गुलाल से रंग दिया । बानी=बनाई । सहानी=लाल रंग से रँगी । [७८५] सेद=स्वेद, पसीना । [७८६] फुरै=उकेल कर, देकर ।

राधा कैं हौं सुख मैं सुखी मोहन रस प्याऊँ।
अरस-परस रसदरस आनँदघन छाऊँ ॥

सारँग] (३८८) [इकताला

होरी झुरमट माच्यौ नंद महर कैं द्वार।
आईं झूमि नव नव बधू झुंडनि ओपनि भरीं खिलार।
रूप अनूप कहाँ लौं बरनौं उपमा लहौं नहीं उनहार।
चंदवृंद चपला चामीकर वारौं चंपकहार।
सुंदरस्याम-सनेह-सगमगीं सहज रँगमगीं ओप अपार।
ब्रजमोहन की महा मोहनी साजैं सरस सिंगार।
गावति गारीं अति रसढारीं सफल करति फागुन त्यौहार।
कंठ-किलक मैं दसन-चिलक लखि छकत छैल रिझवार।
पीकनि भरि भिजवति रुचि-रंगनि पिचकनि धारनि
पिय-हिय धार।
चाचरि चुहल चाव द्वारनि सौं करति कटाछनि मार।
रूपबिबस गिरिधरन लाल कौं अपबस करति भरति अँकवार।
मन कौ मरक काढ़ि सब दिन कौ पाड़ति धूम-धमार।
नैन आँजि मुख मसकि गुलालहिं बेंदी देति लला कैं लिलार।
जीति लेति अबला बलबीरहि हँसि पहिरावति हार।
बहुत भाँति के नाच नचावति हो हो करि बोलति ललकार।
फगुपट देति हठीली भाँतिनि सकुचत रसिक उदार।
झगरति झटकति मुलकति पुलकति फगुवा माँगति करति भमार।
अति अद्भुत औसर कौ यह सुख बिलसत प्रान-अधार।
अपने कान्ह कुँवर की सोभा दूरि भए देखत सब ग्वार।
कछु न बसाति पचत बहुतेरो ठाढ़े करत पुकार।
प्रबल प्रीति की रीति प्रगट लखि काहू रह्यौ न तनकौ सम्हार।
सुर बिमान चढ़ि कौतुक भूले बिरसत बिबिध बिहार।
या रस मगन रहत दिन-रजनी सजनी स्याम लहत सुखसार।
सब ब्रज रँग भिजयौ आनँदघन रसिया नंदकुमार ॥

रामकली] (३८९) [मूलताल

आए हौ लाल रँगमगे बागैं। या बानक निरखे नहिं आगैं।
नैन गुलाल-भरे से लागैं। कै भए अरुन कहूँ निसि-जागैं।
नीकैं लसत अधर मसि-दागैं। बहु रँग-रचे फागु अनुरागैं।
नखछत लगैं गहे भरि भागैं। हाहा करि छूटे खुल खागैं।
भँवर-भीर लीला-जस रागैं। मान नग परिमल-गुन तागैं।
आनँदघन झूमैं पन पागैं। उपरि उघरि डोलैं डर त्यागैं ॥

सारँग] (३९०) [इकताला

मोहनमदन गुपाल बँसुरिया मैं री आजी सारँग पूरैं।
लाज कानि कुल की बिसरावैं औंध-चटक चुहटनि चित चूरैं।
कहा करौं कैसैं करि राखौं उमँगि उमँगि मन बिकल बिसूरैं।
उघरि सुरँगी आनँदघन सौं मोहि न सकत अब मदन-मरूरैं ॥

सोरठी] (३९१) [मूलताल

अनै वंसीवालिया कान्ह गुवालिया कदी तौ सानू
भी मुख दिखलाव।
मैंडरी जिन्द तुसाडे नाल लगी मैं धोली ब्रजमोहन मतवालिया ॥

रामकली] (३९२) [इकताला

रसिकनी राधा राधा है।
जाके मिलिबे कौ मोहन कैं नित ही साधा है।
ब्रजमोहन सोह्यौ इन आछैं रह्यौ न बाधा है।
परम प्रेम रस-निधि आनँदघन प्रेम-समाधा है ॥

हिंडोल] (३९३) [इकताला

नव वृंदाबन नव मनिमंदिर नव कंचन नव रतन-सिंहासन।
नवल कुँवर गोपीनाथ बिराजत सोभानिधि भरे नवल हुलासन।
नव भूषन नव बसन नवल तन महकत भीने नवल सुबासन।
नवल रूप नव नेह भरे दृग नवल भृकुटि वारौं समर-सरासन।
नव गुन रूप अगाधा राधा जगमगाति ढिग नवल प्रकासन।

[३९१] धोली=धौली-सावी।

नव सहचरी सजैं नव नवसत दंपति छवि निरखति चहुँ पासन ।
नवल गान नव तान ताल नव नवल भेद नव नृत्य विलासन ।
नवल रीझ नव रँगरस-भीजनि आनँदघन बरसत मृदु हासन ॥

सारंग]　(७९४)　[चौताला

अति सुगंध मलयज घनसार ।
मिलाइ कुसुम-जल सौं छिरकाइ उसीर सदन बैठे मदन-
मोहन संग लैं राधा भामिनि प्यारी रति-रंगनि
जमुन-नीर बानीर-कुंज मंजुल विधि पवन सुखपुंज
परम रोमांचित होत छबीले अंगनि ।
वृंदावन संपति दंपति विलसत हुलसत ऐसैं अपनी उमंगनि ।
आनँदघन अभिलाष भरे खरे भीजे संगम-रस-सागर
की अतुल तरंगनि ॥

सारंग]　(७९५)　[इकताला

रँगीली जोरी की बलि जाँव, ललित रूप-गुन-रासि ।
कदम-मूल मन घर है जाकौ जमुना-कूल सुठाँव ।
गोरी साँवरो रसनि भाँवरी निरखैं सुखनि सिहाँव ।
आनँदघन जीवन-धन-दायक राधा-मोहन नाँव ॥

सारंग]　(७९६)　[चौताल

या रस कौं हौं हौं बखानौं ऐसैं ।
वृंदावन जमुना-तट विहरत राधा-मोहन जैसैं ।
छिनहीं छिन या सरस सभाई लेत देत सरकत तेई तैसैं ।
आनँदघन याकौ घमंडनि कौ उपरि लखै कोऊ कैसैं ॥

बिहागरो]　(७९७)　[चंपकताल

कहाँ पाऊँ हो हरि हाय तुम्हैं ।
मेरी निपट अनाथ दसै दैया कौन कहै समझाय तुम्हैं ।
मोकौं पलकौ कल न परति है तुम जानौ क्यौं बिहाय तुम्हैं ।
प्रानपपीहा पुकार सुनावत आनँदघन अकुलाय तुम्हैं ॥

[७९३] समर=स्मर, काम । नवसत=सोलहो शृंगार ।

कानरो]　(७९८)　[चंपक

जिन तुम पाइ लिये जिय हौ मैं ते कित औसर खोवत ।
तुम जे जगाए ते क्यौं सोवत ।
लीला लोभ खगींहें नैंही अँखियाँ रूप समोवत ।
ब्रजमोहन आनँदघन प्यारे तारे अंतर गोवत ॥

परज अरगजा ख्याल]　(७९९)　[झूलताल

लगन की बात अटपटी है ।
जब तैं निरखे ब्रजमोहन चित चौंप-चटपटी है ।
अँखियनि के चालैं घर मैं निसि-दिनि खटपटी है ।
लख्यौ चहति वर मोहन-आनन प्रेम-लटपटी है ।
सुंदर बर औसेरनि हियरो निपट अटभटी है ।
आनँदघन पिय दरस-पियासनि जीहि रहचटी है ॥

(८००)

एक लगन दुहुँ ओर लगी ।
ब्रजमोहन मौं लिलग राधिकै राधा-रस घनश्याम पगौ ।
ब्रज-बीथिन ब्रज-नगर गोमंनिथ मन मैं मिलन-बिचार ।
अति रसभरे खरे प्यासे मिलि अचरज प्रेम-बिकार ।
इनकी दसा कहत नहिं आवै मति-गति आनि जड़ होति ।
देखत सुनत थकित जड़ जंगम चकित निहारत जोति ।
अति रसकंद अमंद प्रेमनिधि राधा-मोहनलाल ।
आनँदघन मज्जन जमुनातट सुखसमाज सब काल ॥

राग]　(८०१)

आव आय कै निकसि जात हौ मोहन मन कौ गहनैं ।
अति अटपटी चटपटी मातैं बनत नाहिं कछु करतैं ।
जोगी की गति गहैं वियोगी सुरति साँस-आधार ।
जब दरसौ तब की तुम जानौं निरमोही निरधार ।
दीसि परे सब भाँति दूभरे दृग मन कौ समझैं ।

[७९९] रहचटी=मार्ग चाटनेवाली, मार्ग देखनेवाली । [८०१] गहनैं=पकड़ ।

बिन सूझैं बिन बूझैं हौ हरि आसनि जीव जिवैये ।
अति उदार ब्रजचंद छबीले या निबाह त्यौं हेरौ ।
बहुत्यौ बह्यौ रहट ज्यौं सोचनि तरफनि आय निवेरौ ।
मनभावन जित तित तुम्हीं निहारि हाथ कहूँ किनि लागौ ।
बनवारी पुकार सुनि लीजै सोवत से कहा जागौ ।
मनौ रावरौ छलौ छलनि सौं डिग बसि रहौ अलग से ।
नेही ह्वै करि निबहे ग्यानी परखि परे नव नग से ।
दया लेहु तौ देहु दरस जू अरस करौ जिन हाहा ।
जीवनधन तुम बिना जियैं अब कहौ कौन सौं लाहा ।
ज्यौं विधि बिचारौ तुमहीं सब लायक सब जानौ ।
लीला-गुन सुनि ग्रसे बसे हैं इतनौ नातौ मानौ ।
प्रीतम ते परमातम ठहरे यह धुरि ही तैं ठानी ।
सोई गति लै मिलत आजु लौं मानिनि के सुखदानी ।
देखैं जियैं तिन्हैं ये बातैं कहौ कौन विधि पावैं ।
गाथा गनैं सिहारी कौ लौं थाह न क्यौं हूँ पावैं ।
आसा कै आवेस अगोचर अब कौ लौं भटकैहौ ।
ब्रज-बीथिन भटकाय भली विधि अटक-भटक मिटि जैहौ ।
हरौ सूल सुखमूल साँवरे सुंदर जग-उजियारे ।
आनँदघन इक बान जानि कै अरस करौ दृग तारे ।
अचरज हौ सौं भरे भावते सुनि सुनि बढ़ौ उमाहैं ।
आस लगाए अलगनि मौहैं आँखैं देख्यौ चाहैं ॥

सारंग] (८०२) [इकताला

ब्रज के द्रुमनि निहारि रहौं ।
इनहिं देखि जो कछु देखति हौं सो धौं कहा कहौं ।
स्याम सुजान रसिक ब्रजमोहन बैस लहलहनि बाढ़े ।
मुरली-धरैं दृगनि के दरसन इन तर देखति ठाढ़े ।
मोर चातक कोकिला-कूकनि लेति करेजो कोरैं ।
यह बैरिनि बसत मैं अधिकौ आगम धरति मरोरैं ।

सरसन लागौ स्याम सिकनौंहैं प्रान सजीवन सौंहैं ।
ये बगुला यौं चढ़े मूड़ पै बरषि लगावत दौंहैं ।
सघन गगन पर नवघन झूमनि मनहिं चुराए लेति ।
बीच बीच चपला चमकनि कौ जानैं कहा सुधि देति ।
घन-घमंडनि मनभावन छबि-राजनि नैननि भरि हमारैं ।
आनँदघन औसर को सरकनि जीवन सहित सहारैं ॥

धनाश्री] (८०३) [चंपकताल

यहै सुख जनम जनम प्रभु मोहि देहु ।
गुन गाऊँ ब्रजनाथ रावरे ब्रजरसिकनि खोरिनि मैं गेहु ।
ब्रजलोचन ब्रजबासिनि मैं बसि सूझि परै या ब्रज को नेहु ।
दीन पपीहा दुरि बरसौ कृपारसिक आनँदमेहु ॥

सारंग] (८०४) [इकताला

जमुना देखौ देखौ भावै ।
देखत देखत राधा-मोहन रंग-तरंग दिखावै ।
देखौ कहा यहाँ यौं देखौ देखैं ही बनि आवै ।
गाढ़ दृष्टि आनँदघन घमंडनि उघरि उघरि झरि लावै ॥

राग सारंग] (८०५) [चंपकताल

नंदनंदन सौं नैन लगे री ।
अब नहिं रहत हटक हटके दुखें खिन अहन नीर निमिखौंस जगे री ।
सुंदर स्याम मनोहर मूरति ललित त्रिभंग हिये मैं खगे री ।
आनँदघन-हित प्रानपपीहा मिलन-प्यास-बस बिरह दगे री ॥

काँनरौ] (८०६) [चौताला

हरिकथा-रस के सवादी संत ।
मेरैं जान पुरान बेद मत लेइ महा महंत ।
धनि सुकदेव परीछित राजा होऊ भाग-अनुराग-बंत ।
आनँदघन रसभीजो रोमांचित इनकी महिमा अनंत ॥

भैरव] (८०७) [सूलताल

राधामोहन राधावल्लभ राधाजीवनप्रान ।
राधारससम राधासरबस राधारंगी रूपनिधान ।

राधारंजन राधाअंजन राधाप्रीतम स्यामसुजान ।
आनँदघन राधा-हित-चातक मुरलीधर राधागुनगान ॥

सारंग] (८०८) [इकताला

भागनि भरी जसोदा मैया मन को मोद कहाँ ।
गोद लियें लालहिं दुलरावति यह सुख देखि रहौं ।
वाही के पायनि प्रसाद को, लेस असेस लहौं ।
गोकुलचंद नंदनंदन को निसिदिन बंदौं गहौं ।
नव सुकुमार बैस मनमोहन भजजन-जीवनप्रान ।
ऐसे सुत के मुखहिं सपूती देति पयोधर-पान ।
सुखकर पियन जियत अरु ज्यावन जननी-जिय-आधार
प्रबल मोह की उमँग-तरंगनि द्रवित दूध की धार ।
भींजि लेति आँचर सौं ह्याईं निधरक सकति न चाहि ।
अतुल अगम क्यौं बरनि बनाऊं हित-गति अकथ कथाहि ।
नंदघरनि की भागनिकाई सुत लखि कही न जाई ।
अतिलहूँ चिर जियौ सभागी ऐसी जननी पाई ।
नित मैया की मया मनाऊं आऊं देखन दौरि ।
कुलमंडन को लिन न्यौछावरि पाऊं गाऊं पौरि ।
चहल-पहल गोपी-समाज को बालविनोद-कलोल ।
सुख-सिहानि जसुमति हिय समकै सुनत तोतरे बोल ।
दिन न्यौहार महर के आँगन अचरज रूप निहारैं ।
सुदिन मद्दत मंगलनि सबनि के मन कौं रहनि सम्हारैं ।
दामोदर माविन्रै को सुख लाड़िलहूँ हरि जाचैं ।
इन बातनि बड़भागिनि मैया कुँवर कौतिकन राचैं ।
सुत-हित-चौंप-चाय सौं भींजी आनँदघन भर लाग्यौ ।
जसुमति-कुख सदा सुख सींचत सब ब्रज हित अनुराग्यौ ॥

सारंग] (८०९) [सूलताल

हरि राधा को रस गावै, ऐसी रसना को पावै ।
कोटि कोटि कंदर्प-दर्प हू लहत न लेस गावै ।

अकथ कथा अनुमान न आवै बानी कैसें बरनि बतावै ।
आनँदघन अभूत दामिनि मिलि अचरज हीं बरसावै ।
दंपति एक कृपा दरसावै ॥

कानरो] (८१०) [इकताला

जिनकै मन हरि-अनुराग रचै ।
अति रसमगन भए लोलायस नैन स्वरूप लचै ।
ब्रजबन केलि सदा अवगाहत भाखत बचन जचै ।
जमुनातीर बास करि निहचै भावतरंग मचै ।
महामधुर रसरासि रसिकजन अनमिल संग सचै ।
सजल नैन अभिलापनि प्यासे बिरह-बिकार रचै ।
घूमत रहत एक जक लागी मादक मधुर अचै ।
पूरे मति सूरे भ्रम चूरे पन पकि नाहिं कचै ।
बृंदाबन आनँदघन घमँड़े दुरि धुरि उघरि नचै ।
अति उमगत पद पाय निरंतर कहूँ न लोभ लचै ॥

कानरो] (८११) [चौताला

मेरैं कौन काम हौं हूँ काम कौन को ।
नँदनंदन सौं उरझ्यो अब तौ नाहिंन औरहू लौन को ।
ह्वै ही गई साँपसूँघी सी सिख-बिष जागि गति गही मौन की ।
प्रानपपीहनि चौंप-चटपटी आनँदघन अचौन को ॥

कानरो] (८१२) [सूलताल

मुरली-टेर सुनाय ठगी हौं, नंदमहर के कान्ह अचगरैं ।
धरम धीर कैसें धौं साधौं गुरु की संग लगी हौं ।
मोहन-मूरति आँखिनि आड़ी याही तैं निसिद्योस जगी हौं ।
आनँदघन रीझनि भरि भिजई चेटक-चटक दगी हौं ॥

———

परिशिष्ट

गोवर्धन-पूजन] (८१३) [कहरवा

गिरिराज दाहिनो देत आनंद सौं नंद वृषभानु परिकर-सहित देखौ ।
बाल-गोपाल-गोधन-कुसल-छेम-हित नित लहन यहि पूजि सब लेखौ ।
कान्ह कुल-मंडन धर्यौ जदपि अमरपति प्रगट दरस्यौ देवतागिरिवर सुवेखौ
आनँदघन नंदनंदन उदार की लीला ललित अमित अद्भुत बिसेखौ ॥

वेणु-नाद] (८१४) [दादरा

आव रे जिय-ज्यावन प्यारे ; अँखियाँ भई हैं दरस-पियासी ।
हियो उमग्यौ है रहत न रोक्यौ साँवरे ब्रजचंद हहा रे ।
जब तें सुनी है मोहन मुरलिया, तरफरात ये प्रान बिचारे ।
अपने पगहिन अधर लीजिये आनँदघन रस रासि सुधारे ॥

रूप-माधुरी] (८१५) [आड़ा चौताला

नित आइये की गैल ।
रहत गोहत गहत बाँहियैं सब सखी अलबैल !
लखि बारक कोऊ निकसत मदन आभा फैल ।
चौंपि चोर चकोर कौ, चख भए रूप-भरैल ।
अब कहा सोचति सखी सुनि सखी आरति-मैल ;
मुरलिका कल बिकल धुनि की, जाति समझि अठैल ।
जौ कहूँ जिय रीझि भीजो हरि करि हठ मैल ।
उघरि मिलि आनँदघन सौं कौन की सु दबैल ॥

दानलीला] (८१६) [रामकली, इकताल

गोरस जो चाहै तो दीजिये जो रस चाहै सोउ दियो क्यौं जाय ।
देखि बिरानी धरोहरि पै मन बहकावै ऐसो ढोठ न काहू सुभाय ;
औरनि लौं मो हू सौं बरजत नित-नित कैसैं निबाहियै हाय ।
आनँदघन रसबादनि घमड़यौ कोऊ काहू दिन देहिगो समझाय ॥

८१५—कोऊ—कहूँ (छंद०) । ८१६—बाहू—कहू (गतत) ; बांहुगो—देहुगो (छंद०) ।

[८१५] भरैल=भरनेवाले । मैल=मलिनता ।

(८१७) [मूलताल

बहुत दिनन को दान दुराखौ लेहौं गहि जानि एकौ मूड़ न भाखौंगो ।
ब्रजमोहन दानी सब जानत साँचो मोहनि आखौंगो ।
आनँदघन रस रिझै भिजैहौं तब सब देहै जोइ जोई अभिलाखौंगो ॥

(८१८) [झंपताल

रहौ जू रहौ महा आपनी गैल भए रसिया मान के ।
छोटपने के दान चाव रचि फेरन हौ अबलोनि आनि भरे जोबन गुमान के
बाढ़े बाढ़े बोलत एड़े डोलन लोभी हौ रसपान के ।
आनँदघन रसबादनि बनए भिसहौ मिस छिन हूँ के आवन जिधर आन के

बिरह-संदेश] (८१९) [मूलताल

रूप-उज्यारे अँखियन तारे ब्रजमोहन प्रानन के प्यारे तुमसौं कहा कहियै ।
तिहारी आसरनि कैसैं सहियै मनहिं मनावनि गहियै रहियै ।
तुमहिं न सोच कछू काहू को अहो लगी जानति है बहियै ।
आनँदघन पिय बरसि सरसि तन अब यौं दुसह परेखनि दहियै ॥

खंडिता] (८२०)

छाड़ौ जू तुम छाड़ौ मेरी बहियाँ ।
भोर भए रसबाद करन कित आए मोसों हाहा ।
आनँदघन पुरि कितहूँ बरसे, उघरि अब इतहू भरसे कहा ।
वहीं जाउ जहाँ पायौ है नयौ लाहा ॥

(८२१) [आड़ा चौताल

गोरे बदन बिथुरे केस ।
रैन जागे मैन-पागे नैन अंजन सुदेस ।
मृदु कपोलनि पीक-लीकैं भाल स्रमकन-लेस ।
मुदित आनन-कांति पर वारौं करौं नय राकेस ।
अंग-अंग उतंत भोर छबि की, बनी सहज सुबेस ।
निरखि हुनि आनँदघन-दृग भयौ चैन बिसेस ॥

८१६—तारे—हारे (छंद०) । ८२०—छाड़ौ जू—छाड़ौ जू (छंद०) ।
८२१—नय—नहु (वही) ।

वियोग-व्यथा] (८२२) [रूपताल

उझकि झुकि आवौ लाल दुवारें मोहन स्याम उज्यारे।
दूर भजेंऊ भजति भाव तें क्यौं हित बोलि बिसारे।
मन उरझ्यौ हो सुनि सुनि गुनि गुनि मोहन गुननि तिहारे।
अब आनँदघन सुरस सींचियै चातक-प्रान बिचारे॥

उपालंभ] (८२३) [तालधारा

जमुना-तीर की बातैं।
जानति हैं हियें स्याम रावरे सरद की रातैं।
को जानत हो ऐसैं करौगे ब्रजमोहन घातैं।
आनँदघन रस-रीझनि भीजें कहियत है यातैं।

नयन-बाण] (८२४) [चौताला

मृगसावकनैनी री नैं छलबल नंदकुमार गोह्यौ।
मोहन लयौ लगाय लगैं ही मदन-पारधी की मेंदनि
लगचौंहीं अँखियन जोह्यौ।
बृंदावन जमुना के तीर हरियारी ठावँ तहाँ टोह्यौ।
आनँदघन हित पारि फंद-फँद बिषम बान सौं मरम पोह्यौ॥

यमुना-महिमा] (८२५)

सरस दरस जमुना को पाएं परम प्रेम-परस पाइयै।
भाव-लहर-बढ़वारि होति हिय राधामोहन गाइयै,
अपूरब रस मैं न्हाइयै।
बृंदावन सोभा की सीमा थकि थकि याही कौं धाइयै।
आय तीर सब पीर बहाइयै आनँदघन छाइयै॥

विरह-संदेश] (८२६) [तालजाला

लागी है रे निरमोहिया तोहि मों प्रेम को लाग।
घर मैं बैठि कहाँ लौं राखौं या बिरहा-बैराग।
अब तो सब बर हारि सदा सँग बिहरौंगी बन-बाग।
प्रान-पपीहन कै आनँदघन उचित न क्यौं हूँ त्याग॥

पूर्वराग] (८२७) [इकताल

जमुना-तीर कान्ह डोलै है। मैन भरी बाँसुरी पै मोहिं बोलै है।
सासु-डरन साँस भरी छतियाँ छोलै है।
प्रान प्यासे आनँदघनहिं मिलबै को लै है॥

निर्मोही प्रिय] (८२८) [तालताला

कहा बनि आई रे जियरा! तोहिं करि निरमोही सौं मोह।
अब तौ आनि परयौ कितहूँ तें नैना बीच बिछोह।
काहू की पहिचान परेखनि तें हौं कियौ अपनो हित द्रोह।
वे आनँदघन तू है चातिक, वे चुंबक तू लोह॥

मुरली-माधुरी] (८२९) [सूलताल

सुधि यौं न रहै तन की तनकौं मनकौं मुरली की सुनत ही कान।
तान-बान लगि घूमत घायल प्रान तऊ चाहत चलि जान।
रीझि मुरझि अरबरनि उरझि समझत न सकत बढ़ि, मगन-गान।
आनँदघन पिय की मिलन अभिलाखत सुर-बिमान चढ़ि कौन
सुकृत-अभिमान॥

शंकिता] (८३०)

तिलक महावर को अति सोहै।
लाल आजु की बानिक मो मन आगे हूँ तैं मोहै।
मूढ़ पदारथ लहै अनुरागिनि अब ताको पटतर कौं को है।
ऐंठि भाग उनयौ आनँदघन उघरौ परत अहो है॥

राधिमान] (८३१) [रूपताल

ऐंडी ऐंडी सिर धरें दईंडी।
अब सब दिन को गान कान्ह को देख यहै है लखि पाई गिरि-डौंडी।
रूखौ परिखन रीति ब्यारि किन बहुत बार यौं गई अमैंडी।
आनँदघन सौं मिलि चलि दामिनि नातर मथिहै दधि की दरैंडा-दरैंडी॥

[८३०] बानिक=सजधज। पटतर=समता। ऐंठि=ऐंठकर अर्थात् भली भाँति। उघरौ=रहस्य की बात उद्घाटित हो रही है। [८३१] ऐंडी=अभिमान से ऐंठी। दईंडी=(दधिभांड) दही की मटकी। डौंडी=घाटी, उपत्यका। अमैंडी=मर्यादा को न माननेवाली। दरैंडा=(ढकेलना) अभिमान से बलपूर्वक गिरा देना।

प्रेम की रहन] (८३२) [चौताल

नेही सो बिदेही और जग माँझ कौन है ।
बिरह को ताप महा आनँद को सीत सहै,
नाहीं कछु कहै जाके मन मन मौन है ।
जीवत अदृष्ट-बल खाय पै न जानै स्वाद,
खाटो कटु तिक्त मीठो किधौं यह लौन है ।
बृंदावन-प्रभु प्यारो बस्यौ रहै नैनन मैं,
देखन कौं बावरो सो भयौ फिरै भौन है ॥

मन की बात] (८३३) [इकताला

मन की बात नहीं जानै री, जब तैं देखे मोहन सोहन स्याम ।
कैसैं रहौं कहौं अब का सौं को अब मानै री ।
पर अरि रही रसीली मूरति प्रानन आनै री ।
चातक-रट लागी आनँदघन पानै पानै री ॥

रूपमाधुरी] (८३४) [रूपताल

मोरचंद्रिका सीस धरैं यह साँवरो चेटक है धौं को ।
पैठि परत आँखिन ह्वै अनेरो याहि निरखि पल लै निबहै धौं को ।
फिरि थाकी मोहन मुरली सुनि धीरज करि धरि सकनी रहै धौं को ।
गुपत प्रगट भिजवै आनँदघन मन की गति पति बिसरि रहै धौं को ॥

बिरही कृष्ण] (८३५) [मूलताल

राधा राधा रटै स्यामैं पर राधा बल राधा ।
चायनि भरि गायनि लै निकसत दुरि मिलिबे की साधा ।
ब्रज बसि कैसैं बनत कुलीननि लोकलाज गुरुजन की बाधा ।
आनँदघन चातक लौं जीवत रसभरम प्रान समाधा ॥

[८३२] बिदेही=देहाध्यासरहित । जीवत०=अदृष्ट के बल से वह अनेक वस्तुएँ खाता है, पर उनका स्वाद नहीं जानता । [८३३] अरि=अड़कर । आनै=लाती है । पानै=पानी । [८३४] चेटक=जादू । धौं को=न जाने कौन । अनेरो=अनोखा । [८३५] साधा=उत्कंठा । समाधा=समाधान ।

(८३६)

मंजन करि कंचन-चौकी पर बैठी बाँधति केसनि जूरौ ।
रुचिर भुजनि की उचनि अनूपम ललित करनि बिच झलकत चूरौ ।
लाल-जटित बर भाल सुबेंदी कछुक रह्यौ फबि माँग सिंदूरौ ।
आनँदघन प्यारी-मुखछबि पै वारौं कोटि सरद-ससि पूरौ ॥

यमुना-महिमा] (८३७) [राग टोड़ी

कृष्ण-तरंगिनि रस-रंगिनि जमुना जाको दरस
परस सरस करत हिय नैननि बैननि ।
कहा कहियै देखि देखि रहियै लहियै जे जे अपूरब चैननि ।
बृंदावन बिनोद दरसावनि भानुकुँवरि लगियै रहै नैननि ।
याके तीर बलबीर धीर आनँदघन घमँडि घमँडि बरसत
लसत बरसत केलि-कुंज-ऐननि ॥

मोहन-रूप] (८३८)

तेरी लटकि चलनि पर वारी, वारियै वारि वारि डारी रे ।
ब्रजमोहन रस-भीनी मूरति लगति प्यारी रे ।
हँसि चितवनि मदछाकी अँखियनि जीय-जियारी रे ।
रिझै भिजै लीनी आनँदघन रसिकबिहारी रे ॥

उपालंभ] (८३९) [आसावरी, इकताल

निमाणी जिंद लगी वे तेंडी नाल ।
वेखणी कारण तपनी ये कान्ह वेखि असाडे हाल ।
तुझ लग मैंडा कुझ बस नाहीं चलदा ज्यों भी त्यों भी करो वे बेहाल ।
आनँदघन हुण बंदियाँ विचारियाँ यौं जानो वे तुसाडे ख्याल ॥

८३६—लग—दिल । भटना) ।

[८३६] चूरौ=कलाई पर के कड़े । बेंदी=माथ पर पहना जानेवाला गहना । [८३७] ऐन=अयन, घर । [८३८] वारियै=निछावर होता हूँ । जियारी=जिलानेवाली । [८३९] निमाणी=अनमान करनेवाला । वेखणी०=आपके दर्शन के लिए । तपनी=तपती हूँ । वेखि=देखो । असाडे=हमारे । मैंडा=मेरा । कुझ=कुछ । हुण=अब । बंदियाँ=दासियाँ । तुसाडे०=तेरे विचार ।

गोपिका-प्रीति] (८४०) [इकताला

गोकुल की नारि नवल अनुराग-भरी रहैं स्यामसुँदर
देखन कौं छिनछिन हीं।
मधुर रूप-रस पिवहिं जियति आनँद उमगि उमगि छिनछिन हीं।
इनको सुख येई पै समझतिं रहि न सकतिं उन देखें बिन हीं।
रोम रोम भीजी आनँदघन यह रस तौ पायौ है इनहीं ॥

पूर्वराग] (८४१)

नैना मेरे लागे री, स्यामसुंदर व्रजमोहन पिय सौं।
बिन देखें नहिं चैन सखी री निसदिन इकटक जागे री।
लोकलाज कुलकानि बिसारी उनहीं सौं अनुरागे री।
आनँदघन-हित प्रान-पपीहा कुहुकि कुहुकि पन पागे री ॥

कन्हरी बिलावल] (८४२) [सूलताल

बंसी बजावै रँग सौं, जमुना के तीर कन्हैया।
हौं दौरति ही सो हौं इकौंसें औचक दीठि परि गयौ दैया।
रूप-गहर मन जाय परयौ है जैसैं भँवर जाजरी नैया।
उघरि उघरि भिजवै आनंदघन तानिनि बिष बानिनि बरसैया ॥

(८४३)

आँखिन लाग्यौ री गोपाल।
जमुना-तीर गई गागरि लैं भरि लाई जंजाल।
औचक दीठि परयौ ब्रजमोहन ठाढ़ो गहैं तमाल।
चितवनि मैं भिजई आनंदघन ये पनघट के हाल ॥

वेणुवादन] (८४४) [राग कान्हरो

कहा बिष घोरयौ है बँसुरी मैं, अरी इन साँवरिया रसवारी।
घूमत मन, धीरज न धरत ज्यौं करि देख्यौ कसु री मैं।

८४३—गई-उठि (संग्र.)।

[८४१] कुहुकि=चिल्लाकर। [८४२] इकौंसें=एकांत में। गहर=गहरा। जाजरी=टूटी-फूटी।

एक गाँव बसि कैसैं भरियै कठिन कसक पँसुरी मैं।
अब आनँदघन उघरि घुरैंगी तोहीं यह जसु री मैं ॥

पूर्वराग] (८४५)

बनबासी कान्हा चित चढ़यौ री, तातैं मोहिं घर-आँगना न सुहाय।
सुधि बुधि मोषि लई सुनि सजनी मुरली तनिक बजाय।
जिय की दसा कहति नहिं आवै घूमि घूमि मुरझाय।
उघरि मिलैं बनिहै आनँदघन अब तौ मो पै रह्यौ न जाय ॥

कानड़ा बिलावल] (८४६) [मूलताल

रँगी साँवरिया तेरी ललक न बरनी न जाय।
जब जब देखौं तब तब भूलौं अँखियन चाली आय।
रहि न सकौं मिलि सकौं न घर-डर मनहीं मुरझौं हाय।
सोचनि रहौं कछु न जिक उबरै अरु कछुवै न बसाय।
देखि जिऊँ तोहीं आनँदघन हाहा जनि तरसाय ॥

वेणुवादन] (८४७)

बैन बजावै बनमाली अरी आँ कलमलाउँ सुनि घर मैं।
गोरन परयौ सखी ब्रजमोहन तानिनि बेधत मरमैं।
कैसैं रहौं कहाँ लौं राखौं हारत धीरज - धरमैं।
आनँदघन सौं उघरि मिलौंगी झुरसति बिरहा-भर मैं ॥

पूर्वराग] (८४८) [राग कान्हरो

कहि सुघर सनेही स्याम मिलगो कब री।
हेली. मेरो जियरा व्याकुल होत है अब री।
चितवनि मैं करि गए ठगौरी इत ह्वै निकसे जब री।
कहा करौं कछु बनि नहिं आवै अति गुरजन की दब री।
उघरि परैगी बात भरम की लखि लैहैंगे सब री।
आनँदघन-रस भीजी रीझी लै मिलि काहू ढब री ॥

८४६-जनि—जिय (सजना)।

[८४४] कसु=खींच-तान। भरियै=सहँ। [८४६] चाली=चालन किया। [८४७] मरमैं=मर्मस्थल। झुरसति=झुलसती हूँ, जलती हूँ। [८४८] दब=दाब। भरम=भेद, रहस्य। ढब=ढंग, तरीका।

संयोग] (८४९) [राग कान्हरो

निमाणियाँ नो मस्ती, वो होवे चंगी रहै, तैंडी जान ।
ऐसी वे तुसाडे दरस-भिखारी, होवै सौदा दस्त-ब-दस्ती ।
तैंडे वे कारणाँ फिरणा दिवानें हुसन-परस्त अलमस्ती ।
आनँदघन ब्रजमोहन जानी तैंडे सलब दी मस्ती ॥

पूर्वराग] (८५०)

जेमन करियाँ कान देखि, सेई करिबों, प्रान-सखी विसाखा
विनती मनैं धरिबो ।
बाँसी-धुनि सुनि सुनि आवै बिकार, मदन-अनल ज्वाला अंतर मझार ।
स्यामें रम रस कथा बूझिले ना पारों आनँदघन ब्रजमोहन विहारी ॥

राग कान्हरो मिलाफल] (८५१) [मूलताल

हो जी साँवला थे तो भला बिलमाया ।
ब्रजमोहन आनँदघन ऊभी ऊभी वाट जोंकाँ थे ओठे क्यू
आया, नहीं आया, परचाया ॥

पूर्वराग] (८५२)

एक ही नगर बसत बनमाली पै मेरी आली आँखि लौं आँखि न हेसत ।
हित जताय चित कठिन कियौ री अधिक अधिकहु तैं प्रान परेखनि पीसत ।
निकट आय मनभायौ करत किन, दूर तैं क्यौं विष - बरनि कसीसत ।
आनँदघन अब विधि ये सुखी रहौ निसिदिन जात असीसत ॥

गोवर्धन-प्रशस्ति] (८५३) [सारंग, रूपताल

गिरिराज-कंदरा-मंदिर अमंद अति मंदार-तरुवृंद-आकुल विराजैं ।
सुख-सेज सौरभ सकल सौंज अनुकूल अनुचर-निकर वर प्रमोद सौं साजैं ।

८४९—चंगी—चंगी (सतना) । ८५०—धुनि०—धुनिबो य बाँबकारी (सतना) ।
ज्वाला०—ज्वाला अंतर मा करी (वही) । ८५१—बिलमाया—विरमाया (सतना) ।

[८४९] मस्ती=रंगीली । दस्त० = हाथोंहाथ । हुसन०=प्रेम साधक ।
अलमस्ती=मौजी । सलब० = मजे की । [८५०] जेमन० = जिस प्रकार कृष्ण
को देखूँ वहां करूँगी । बूझिले०=समझ नहीं सकती । [८५१] थे=आप ।
ऊभी=खड़ी । वाट०=मार्ग जोहती हूँ । ओठे=यहाँ । परचाया=यहीं परच गए ।
[८५२] कसीसत = खींचते हैं ।

कुसल वृषभानुजा-संग विहरत जहाँ समै-रुचि साधि कै करत हित-काजैं ।
जयति गिरिनाथ ब्रजनाथ-हिय हाथ किय आनँदघन सुजस-दुंदुभी बाजैं ॥

वृंदादेवी-स्तुति] (८५४) [सारंग, चौताल

वृंदादेवी वृंदावन-सेवी राधा-मोहन को हितकारिनि
नित नित चित-चिंतन-फल दै दै रिझए भिजए बिहारी-बिहारिनि ।
मोहिं मिलौ महामंगल-स्वामिनि निज बनवास-आस-पन-पारिनि ।
याहि मनाऊँ या गुन गाऊँ आनँदघन रस रसनें ध्याऊँ सब ही
विधि है अंतर को ताप निवारिनि ॥

वेणुवादन] (८५५) [सारंग, चौताल

निकसि निकसि मन तन तैं बन-तन कौं जाय हाय याहि कहा धनि आई ।
कबहूँ कबहूँ मुरली की टेर सुनि आवत नाहि रह्यो यौं बौराई ।
घर मैं रहे कहा याकौं घर मन ठहरयौ मासु ननँद न्याय रहत रिसाई ।
आनँदघन - हित अँसुवनि भींजी सोचनि सूखति मेरी माई ॥

चेतावनी] (८५६) [परजी, रूपताल

सुमिरन करि रे मन सार, यह सब धोखा है संसार ।
हरिचरनन चिंतवन करि निरंतर जिन ही लावै बार ।
छिनहीं छिन जात वै बीति यौं चेति तू कौन काको बंधु कैसो परिवार ।
आनँदघन - बरिस अमृत - रसधार करि पान ह्वै अमर निरभार ॥

पूर्वराग] (८५७) [इकताला

गुजरिया गुपाल कै रंग बोंधी गोहन लागियै डोलै ।
करति नहीं कुलकानि तनकहू जोबन-रूप-छकी सु गुमान भरियै न बोलै ।
ज्यौं ज्यौं चलत चलाय चहूँ दिसि त्यौं ही त्यौं रस-सिंधु कलोलै ।
आनँदघन मुखचंद निहारै चातक-चोप चकोरनि टारै अति अनुराग अतोलै ॥

८५४-लावै०—लगावै पार (वृंदा०) । ८५७—रंग-गुन-(वृंदा०) । सु-
मति हि । चात—उर (वही) । कलोलै-हिलोलै (सतना) ।

[८५३] मंदार=कल्पवृक्ष । आकुल = घिरा । सौंज = सामग्री । निकर=
समूह । समै०=समयानुकूल । [८५६] सार=तत्त्व । जिन लां०=देर मत कर ।
ह्वै=अपयस । [८५७] गुजरिया =(गुर्जरी) गोपी । बोंधी=(विद्ध) रँगी ।
कलोलै = लहराती है अर्थात् स्नान करती है । तोलै=अर्थात् आपकी है ।

मर्यादोक्ति] (८४८) [चौताल

अरी मेरी अँखियनि बानि परी मोहन-मूरति देखें बिन न रहति ।
सब मिलि देत बहुत बिधि सिख सखी ये अमैंड़ तनकौ न गहति ।
कहा करौं कैसैं करि रोकौं उमगि उमगि काहू र्यौं न चहति ।
आनँदघन रस भीजी रीझी अँसेरनि जल बहनि दहति ॥

विरह-व्यथा] (८४९) [राग सारंग, तालझाला

सुजान तोरे देखन कौं मेरो जिय तरसै घरी घरी छिन छिन पल ना ।
घर-अँगना न सुहाय हाय अब कहा करौं क्यौं भरौं तोरे बिन कल ना ॥

पूर्वराग] (८५०) [मालव, मूलताल

दुरजन बाहिर गुरजन घर मैं ।
लाल गरधारैं बोल सुनायौ प्रान परे खरभर मैं ।
निपट भटपटी भोर सखी री को पावै या मर मैं ।
आनँदघन ब्रज रस-झर लायौ हौं ही बिरहा-झर मैं ॥

पूर्वराग] (८५१) [गौरी-ईमन, रूपकताल

आई री बहुरि दुखदाई साँझ ।
दिन देखन कौं दाँव दूरि तैं बनत बनवारी सौं अब
ताहू मैं परी है लाँझ ।
उनहूँ कौं उदेग मोहीं सौं भाँवरि भरत गलीनि माँझ ।
छाँह-छिवन दूभर आनँदघन इतर देहरी करत झाँझ ॥

वेणुवादन] (८५२) [राग गौरी, इकताल

मुरली मैं कौन ठगौरी है ।
स्रौननि सुनी तनक मनकौ छिन सुधि बुधि तजि भई बौरी है ।

८४९—छिन-पल (वृं० दा०)। ८५१—इतर० = लतर बदीली (वृं० दा०)।

[८४८] अमैंड़=मर्यादा को न माननेवाली। न चहति=नहीं देखती। अँसेर=[illegible] धारा। [८५०] गरधारैं=गली में। खरभर=मुश्किल। बिरहा=बिरहाग्नि। [८५१] लाँझ=(लंघन) बाधा। छिवन=छूना। दूभर=कठिन। इतर=और, भिन्न। देहरी=देहली के पास, निकट ही। झाँझ=शोर।

उठि उठि चलत न रहत भवन डग लागी देखन को दौरी है ।
आनँदघन पिय कौ प्यारो मुख हम हो सौं अनि खौरी है ॥

चेतावनी] (८५३) [राग गौरी, इकताला

मन ! बन तें बाहिर जिन जाय ।
राधा-किसन-मिलन-सुख स्यामहिं पुरवत यहै बनाय ।
दिनहीं धरि राखत उर-अंतर, निसि तैं निपट सहाय ।
तक-तक लता-लता मैं दरसत भरयौ सुदंपति-भाय ।
याही मैं भाँवरी भरयौ करि बिलसत हाहा खाय ।
आनँदघन सौं चातक-पन गहि रस लै प्यास बढ़ाय ॥

वन-विहार] (८५४) [गौरी, इकताल

गोकुल घौं के ग्वार, डगर बताइ रे हौं भूली ।
बिछुरि परी सहचारिन संग तें डोलत बन खिलखाइ रे ।
साँझ निकट घर दूरि साँवरे हियरा सोच सताइ रे ।
सुनत ही झूमि आए आनँदघन दोनी गैल बताइ रे ॥

रूपमाधुरी] (८५५) [तालझाला

अरे अरे साँवरे तैं, कहा टोना कीनौ ।
मुरली माँझ ठगौरी गौरी पूरत ही मेरो मन हरि लीनौ ।
केसरि-खौरि घूमरे नैना बिथुरी अलक बदन रँग-भीनौ ।
रीझनि लै भिजई आनँदघन सो पर सरबसु वारनै दीनौ ॥

प्रेम-मिलन] (८५६) [मूलताल

गोपाल प्यारे, भला किया ।
मरी पियासी अँखियानूँ जीव-जियावन दरस दिया ।

८५४—खिलखाइ-बिन जाइ (वृं० दा०)।

[८५२] ठौरी=धुन। बौरी=बुराई। [८५३] बन=वृंदावन। पुरवत=पूरा करता है। बनाय=भली भाँति। निसि तैं=रात होते ही। सहाय=सहायक। हाहा खाय=दीनता दिखाकर। [८५४] घौं के=घोष के, वाले। खिलखाइ=खिलखाकर। [८५५] गौरी०=गौरी रागिनी बजाते ही। घूमरे=नशीले।

उमरदराज गरीबाँ दी बस्तीं कीतो मिहर सवाब लिया।
आनँदघन ब्रजमोहन जानी कुरबानी मुख देखि जिया॥

उपालंभ] (८६७)

घनस्याम पियारे ये बातैं।
मन और मुख और बतावत छाँड़त नाहिं कपट की घातैं।
काहू पै हिलगी झूमत हौ काहू पै त्यौं चितवौ रातैं।
रसिक छैल रिझवार नित नए ये छल बल सीखे हैं का तैं।
करत फिरत बिसवास भोरिनि के, चतुर-सिरोमनि हौ तातैं।
उघरि उघरि बरसत आनँदघन बनि आई तुम हौं मँडरातैं॥

श्रीराधा-चरण] (८६८)

मृदु तरवनि मैं लसति ललाई।
झमकि जहाँ पग धरति लाड़िली मनहु अरुनता आनि बिछाई।
महा रुचिर बर गोरी गुलफनि मुकतावलि फबि रही सुहाई।
संभ्रम होत निरखि नैनन दुति झलमलाति अति अद्भुत झाँई।
जगमगि रह्यौ सुरँग जावक पै सरस रसिक रचना जु बनाई।
नवल अंग की मंजु मयूखनि चहुँ दिसि खुलि खिलि रही जुन्हाई।
बिबिध न्यास अनयास प्रकासत नटनागर लखि लेत बलाई।
तब की कहा कहौं आनँदघन जब पिय-संग निरतति सुखदाई॥

(८६९) [मुलतान

तिहारी बतियाँ उघरि परी,
हौ हौ स्याम उघारे काहे कौं सौंहैं खात।
ब्रजमोहन आनँदघन प्यारे रस के लोभी लागो अनत भरी।

८६८—झल०—जगमगात (वृंदा०)। पै—पुनि। अंग—नवल (वहीं)। नवल—रुचिर (संग्रह)।

[८६६] वरी=अति प्यारी आँखों को। उमर०=लंबी उमरवाले। गरीबाँ=गरीबों की बस्ती पर। कीतो—की। मिहर=कृपा। सवाब=पुण्य। कुरबानी=निछावर हूँ। [८६७] का तैं=किससे। [८६८] गुलफ=एड़ी के ऊपर की गाँठ। न्यास=पैर रखने की क्रिया। लेत०=बलिहारी लेते हैं। निरतति=नाचती है।

(८७०) [सोहनी ताल

जिंद निमाणी! कपदी, साँईंया मुख वेखलाणी जानी।
ब्रजमोहन बे-परवाह गुमानी वाँ वो वो तैंनूँ मैंनूँ तैंनूँ जपदी॥

नयनोत्कंठा] (८७१) [पूरबी, धमार

देखन को फल हौ मोहन देखौं।
नातरु खुली मुंदी ये कैसो आँखैं कौन भाँ लेखौं।
कहा निलोंछौं पोंछौं अँगोछौं रचि काजर की रेखौं।
आनँदघन ब्रजनाथ दरस बिन भीजी बरति परेखौं॥

गो-दोहन] (८७२) [हमीर, रूपताल

दुहत मन गाय-दुहन के साथ, कान्ह छबीलो ग्वार।
हाथ दोहनी देत लेत धीरज न रहत फिरि हाथ।
नई हिलग की चोप-चटक-न्यस चितवनि हौं मैं भरत बाथ।
आनँदघन यौं भिजवै रिझवै खिरक मैं गोकुलनाथ॥

मातृस्नेह] (८७३) [हमीर कल्याण, इकताल

जसोमति आरती उतारैं उमगि आपनो ज्यौं वारैं।
चित चहि रही ललन को बन तैं गोधन लै घर-आवनि,
अति आरति सौं बदन निहारैं।
लै बलाय, आँचर मुख पोंछति प्रेम-पुलकनि बरसति प्यारैं।
बूँधनि भरी सपूती या बिधि आनँदघन-हित कान्ह पयौ है पारैं॥

बकबूजन] (८७४)

झुरमुट लाग्यौई रहै नित नँदरानी के आँगन।
ब्रज की नवल बधू रँगभीनी, मोहन स्याम चित्त बस
कीनी, आवत मिस लै लै कछु माँगन।

८७२—चेत—लोकया—(संग्रह)। ८७३—आपनो०—आपनपौ (वृंदा०)।

[८७०] जिंद=जिंदगी। साँईंया=प्रिय। वेखलाणी=दिखलाओ। तैंनूँ=तुमको। निलोंछना—तेल से चिकनाना। अँगोछना=गीले कपड़े से पोंछना। [८७२] बाथ=अंकवार। खिरक=गाय बाँधने का स्थान, गोठ।

को लौं दुरति लरक सनेह की हियरा बिध्यौ विषम सर-साँगन।
निन-दूलह आनँदघन पिय की भाँवरि घर घर, बँध्यौ
परम पन काँगन ॥

(८७५) [मूलताल

नैना तरसत हैं, पिय - मूरति देखन कौं।
मोहन-मुख-लालसानि उनए उपरे बरसत हैं।
लोक-लाज त्यौं सनक न लाकत अति ही अरसत हैं।
आनँदघन-हित प्रान - पपीहा पल पल तरसत हैं ॥

प्रेम-पीड़ा] (८७६) [इकताल

कठिन हिलग की पीर दैया कासौं कहियै।
बिन देखें मोहन-मुख माई रैनि-दिना दुख ही मैं दहियै।
जित जित तित छुले चवाव सुनि सुनि सब ही के बोलनि सहियै।
आनँदघन पिय सौं जु भेंट तनकौ कहूँ होइ लौं कहा चहियै ॥

(८७७) [मूलताल

भटू, निपट अजान इतौ हित की पीर न जानै।
ब्रजमोहन बहुनायक छैलवा मेरी सी मोसौं अरु वाकी
सी वाही सौं कपट अटपटी बतियानि ठानै ॥

(८७८) [भूपाली

तिहारे देखे बिना मैं कैसैं भरौं दिन-रतियाँ।
कैसें मिलौं क्यौंऽब अनमिलौं तुम्हैं जो किये बिरह छत छतियाँ।
काहे कौं मन मोहि लियौ तब करि काहि कैं हित - बतियाँ।
आनँदघन कितहू बरसौ पै इतहू लगी बैलतियाँ ॥

८७५—विषम–विषस (सतना)। परम०—परसन्र (वही)। ८७६-जित०—जितहि तितहि (वृंदा०)। ८७७—भटू—बधू। इतौ—मिता (वही)। ८७८—इतहू०—इत बरनी (वृंदा०)।

[८७५] कुरमद = भीड़। मिस लै = बहाना करके। सरक = मद्य का नशा। साँग = बरछी। काँगन = कंगन, कंकण। [८७८] बैलती = ओरी, वह छोर जहाँ से छप्पर का पानी चूता है (यहाँ 'आँसू की झड़ी')।

लड़ैती] (८७९) [ईमन, मूलताल

अनखि अनखि ज्यौं ज्यौं बोलै री लड़ैती त्यौं त्यौं
मोहिं लगति अति नीकी।
मो सौ मनमेलू सौं रूसी परति अचगरी निपट पुढ़ाई ही की।
हौं तेरे नैननि बैननि है लपटानि सब जु कसक है जी की।
आनँदघन घुरि घुरि ढुरि ढुरि भिजई रिझई तू सुधि
करि लै सौंबी की ॥

जुगल-जोरी] (८८०) [ईमन, इकताल

कान्ह है गोकुल को, राधा बरसानेवारी।
है हो या ब्रज की जीवनि यह जोरी सरस बिरंचि - सँवारी।
धुर की लगनि लगी अति गाढ़ी बाढ़ी चोप-चटक जो प्यारी।
नवल नेह रस - भर आनँदघन बरसौं रहत सदा री ॥

पूर्वराग] (८८१) [ईमन, इकताला

लालची नैन हमारे देखें बिन न रहैं।
अपनो सो बरजति बहुतेरा पै तनकौ न गहैं।
मन हरि - हाथ दियौ लैं इनहीं अटपटि चोप चहैं।
आनँदघन रस चाखि मस्त भए सबके बोल सहैं ॥

पूर्वराग] (८८२) [ईमन, झपताल

असाँ मिठबोलड़ा यार निमाणाँ दा।
इक पल आँवदा कूक सुनवाँदा महरम-हाल दिवाणाँ दा।
मुरली वजाँवदा इस्क जगाँवदा गाहक हत्थ - विकाणाँ दा।
आनँदघन ब्रजमोहन प्यारिया मुझ वंज्ञा कुरबाणाँ दा ॥

८७९—जुराई—सुराई (सतना)। ८८०—बरसाने—रावल (वृंदा०)।

[८७९] लड़ैती = लाड़िली, अभिमानवाली। मनमेलू = मन मिलानेवाली, हितू। अचगरी = छेड़छाड़। सौंबी = शीतकार, सी सी। [८८०] धुर की = चरम सीमा की। [८८१] बोल = बात, व्यंग्य। [८८२] असाँ = हमारे। वल = ओर। महरम-हाल० = मुझ दीवानी के हाल से वह सुपरिचित है। प्यारिया = प्यारा।

(८८३) [ईमन, सूलताल

तू की जाणदा बेहाल निमाणियाँ ब्रजमोहन आनँदघन बेपरवाह।
ताती बात न लागी तैंनूँ प्यारे तुरी वे गरीबाँ दी आह आह आह ॥

(८८४) [ईमन, चौताल

अरी मेरे प्रानन के प्यारे हैं घनवारी।
स्याम रूप नैनन के अंजन बानिक पै हौं वारी।
पल पल कोटि कलप सम बीतत लागति नभौ दिसा अँधियारी।
आनँदघन रसदान करन हित चित चातक-ब्रतधारी ॥

पनघट-लीला] (८८५) [ईमन, रूपताल

ए आगरी भरन गई जमुना-तीर नीर भरन हूँ न पाई आई धीर रितै।
दीठि परि गयौ कान्ह अचानक ता दिन तैं नहिं चैन चितै।
और कहा कहौं पीर मरम की चितवनि मैं कछु गयौ चितै।
अब आनँदघन पिय सौं मिलौं क्यौं सुख पावैं अँखियाँ इतै ॥

पूर्वराग] (८८६) [इकताल

हेली मन हरि लीनौ इन साँवरे सलोने बिन देखें रह्यौ न जाय।
सुंदर बदन - सुधा - पान चसकें चख रहे लुभाय।
कहियै कहा सहा दहियै दुख पल पल कलप बिहाय।
प्यासे प्रान रहत चातक लौं आनँदघनहिं मिलाय ॥

पूर्वराग] (८८७) [कलिंगड़ा

तुमी सनु मोर मनुआ हे लागि रहिलौ ललना।
रूप-उजियारे निहारे बिना सु परै निस - दौस कल ना ॥

अभिलाष] (८८८) [कान्हरौ, चौताल

मोकौं सरन रहौ राखे ये चरन तेरे जहाँ मन-नैन इनहीं मैं बसेरे।
झलकत रुचि रुचिर ललकत पिय - मन चोपनि एकटक हेरे।

८८६—२६१—चित्त—(छंद०)।

[८८३] को० = क्या जानता है। तती० = गरम हवा। गरीबाँ० = गरीबों की आह बुरी होती है। [८८४] आई० = धैर्य खो आई। नहिं० = चैन नहीं है। क्यौं = क्यों, कैसे।

परसन कौं तरसत रहत नागर भागनि भल अभिसरत सु नेरे।
आनँदघन श्रीबृंदाबन - अवनी - मंडन जीवन - धन हैं मेरे ॥

पूर्वराग] (८८९) [कान्हरौ, सूलताल

स्याम सलोने सौं दृग अटके रोकें रहत न घूँघट-पट के।
रूप - रसासव छके न मानत बहुत भाँति हौं हटके।
मोहूँ अपबस किये नचावत गोकुल मोहन नागर नट के।
आनँदघन इनकौं सिख ऐसें जैसें तुष कौं फटके ॥

श्रीराधाचरण-महिमा] (८९०) [शंकराभरण, सूलताल

बृषभान - कुँवरि के चरन सरन - अभिलाषा - भरन।
सीतल-सुखद रसिक-मनरंजन कंज न ऐसे लसत बरन।
श्रीबृंदाबन-अवनी-मंडन रास-बिलास-न्यास-गति-बितरन।
आनँदघन कौं रसद बिसदवर सदा बिराजौ अभयकरन ॥

स्वादी लोचन] (८९१) [मालकौस, चौताल

लोचन स्वादी हैं छबि - रस के।
देखि देखि पिय - मुख सुख पावत त्यागी पलक - परस के।
लाड़ो मैं मुसकनि - आसव छकि नाहिं रहे मो बस के।
क्यौं कुलकानि करैं आनँदघन जिनहिं परे ये चसके ॥

अभिलाष] (८९२) [सूलताल

देखन न देहौं काहू कौं हौं आपने लाल पियारे कौं हौं।
पलकनि संपुट करि राखौंगी रूप - उज्यारे कौं हौं।
निधरक देखि न सकति डीठि डरि राखि रहि निकसति हारे कौं हौं।
आनँदघन रसमूरति ब्रजमोहन गुन - भारे कौं हौं ॥

८९०—चरन—सरन (शरणः)।

[८८९] रसासव = आनंद का आसव (शराब)। हटके = मना किया। अपबस = अपने वश में। तुष = धान की भूसी। [८९०] सरन० = शरणागत की। न्यास० = गति (चाल) का न्यास (रखना) सौंप देनेवाला है। [८९१] त्यागी० = पलकों का स्पर्श त्याग दिया, निर्निमेष रहते हैं। चसके = टेव, अभ्यास। [८९२] हारे० = विवश होकर।

गिरि-धारण] (८९३)

आजु गिरि धारयौ हो ब्रजराज के लला ।
कहि न जात छल-बल की चिकाई छबीली छिंगुनी-छोर छाजैं ज्यौं छला ।
काहू न काहू को गयौ ब्रज नीकैं राखि लियौ भई है सकल विधि भली भला ।
अतिही चकित भयौ आयकै पायनि नयौ लखि सुरपति आनँदघन की कला ॥

प्रेम-बल] (८९४) [शूलताल

उघरि उघरि मो हियैं बरसै तिहारो नेहरा-मेहरा, नेहरा-मेहरा ।
ब्रजमोहन नवरंग छबीले निहारौ बातनि घातनि कौन छेहरा ॥

जन्म-बधाई] (८९५)

आजु बधावन, सुंदर बन घनस्याम पियरवा अइलौ मोरे अँगरवा ।
घमड़ि उमड़ि घुमड़ि घुमड़ि रस राखिलौ नेह - मेहरवा ॥

स्मरण] (८९६) [केदारौ, चौताल

तुम कौं जे सुमिरि सुमिरि जीवत हैं, तिनके तुम प्रान-जीवन हौ स्याम ।
तिहारे गुननि सौं सुरति पोहि टोहि बिरह - कोंध सीवत हैं ।
दरस लालसा लगि रहे लोचन, पलक-परस नेकु न छीवत हैं ।
आनँदघन ये प्रान-पपीहा एक आस-रस प्यासन ही पीवत हैं ॥

प्रभावुकता] (८९७) [केदार, सूलताल

मोहन की चलनि चितवनि हँसनि बोलनि गावनि ठगौरी ।
सब ही भाँतिन हौं तो मोहि लई भूलि गई सुधि बुधि भई बौरी ।
छिन-पल कल न परति बिन देखैं लागिय रहति निस-दिन यह दौरी ।
चख-चातकन की तपनि तबहि तौ मिटै आनँदघन पिय दरसैं
बरसैं कहुँ जौ री ॥

[८९३] छला = छल्ला, अँगूठी । कला = विद्या । [८९४] नेहरा० = स्नेह का बादल; आनंदघन । छेहरा = अंत । [८९५] बधावन = बधाई, जन्म-बधाई । अइलौ = आए । अँगरवा = अँगना । राखिलौ = रखा । मेह० = प्रेम का बादल ; आनंदघन । [८९६] सुरति = सुध । टोहि = खोजकर । कोंध = कड़ा अंश, कोर । पलक० = निर्निमेष, रहते हैं ।

वेणुवादन] (८९८) [रूपताल

मुरली के जोरनि संग लगाएँई डोलै ।
कहा करै बपुरी ब्रज - अबला, गरब - गाँठि गहि खोलै ।
धुनि सुनि और होति थिर चर गति, भोरी विचारिनि को मति कोलै ।
आनँदघन हू बिजय रिझए क्यौं न बाँस बड़ बोलै ॥

(८९९) [सूलताल

मुख मुरली मैं केदारौ कैसैं गावै ।
जैसो जैसी जाव आवै तैसी तैसी तानि भौंह दरसावै
दृग-बिलास देखैं भावै ।
चेटक रूप साँवरो मोहन रीझि रीझि मोहूँमैं रिझावै ।
आनँदघन देखन ही भीजौं तू जानत है चित के चावै ॥

रासलीला] (९००)

रीझनि बिबस भए रसरंगी मोहन राधा के गावन
ही रस - रास मैं ।
सुरसबाद मन मोय गयौ मति-गति थिकी नैननि संग
आछे मुख-उजास मैं भौंहनि बिलास मैं ।
ऐसे रिझवार को माहि मलेगा लागी या समै ।
आनँदघन ऐसैं ही नित नित घमड़ि घमड़ि हुलसौ
बिलसौ बृंदावन जमुना-पुलिन प्रकास मैं ॥

प्रवास-विरह] (९०१) [केदारो प्रभात, तालआडा

मारौ गरजि गरजि घन ! मारौ जिया डरावौ
प्रीतम प्यारे बिना मैं कैसें भरौं हौं ।
डँसियै निसि अँधियारी कारी नागिन सियरी पवन
परसि परसि तन जरौं हौं ॥

९००—बाद-बदत मोय गई (सतना) । भी—चार (वही) । ९०१—जिया—हौं (सतना) ।

[८९८] कोलै = विह्वल हो जाती है । [८९९] केदारो = एक राग । [९००] उजास = उजाला । पुलिन = तट ।

आत्मबोधन] (९०२) [मूलताल

आए री बदरवा नीके स्याम बरन मनहरन छबीले रस-बरसीले।
आनँदघन ब्रजमोहन पिय पै उहि चलि हठ तजि
कसि कसि मोहन बचन कहौं, ढीले ढीले॥

याचना] (९०३) [आड़ चौताल

जौ तुम दियौ है ब्रजबास तौ पूरन करौ यह आस।
रसिक-संग अभंग निरखत रहौं रास-बिलास।
राग-रंग-तरंग भीजौं सरस प्रेम-समाज।
राधिका रमनी-मुकुटमनि कान्ह सब-सिरताज।
अतुल आनँद-उमँग को कछु कहि न आवत बात।
बिबस आनँदघन-घमड़ मैं सुधि न रजनी-प्रात॥

रूपदर्शन] (९०४) [बिहागरो, आड़ इकताला

रीझि रीझि मुख देखि रहे।
लाल लाडिलो की छाँह माहैं चकित भए कछुवै न कहै।
मोय मोथ मन थाँथ जात है रूप-गहर की थिति न लहैं।
आनँदघन पिय रसिक-मुकुटमनि भाग-निकाई दरसनि चहैं॥

संघट्टन] (९०५) [मूलताल

तुम हित सेज रची चलियै जू।
सुनहु प्रबीन राधिका नागरि, है यह बात निपट भलियै जू।
रसिक-मुकुटमनि पंथ निहारत नाखन दरसनि कुंज-गलियै जू।
आरति समझि गहर जिन कीजै यह रजनी फूली फलियै जू।
औसर भलो बन्यौ मिलिबे को आजु निहाल करौ अलियै जू।
आनँदघन पिय सौं हिलि मिलि कै करियै रंगभरी रलियै जू॥

९०२-कौत०—स्याम! कोरे ह्वै आपने मन भए (वृंदा०)। ९०३-बिबस—बसै (वृंदा०)। ९०४-मोथ०—मोय मोय (वृंदा०)। ९०५-निहारत-नापत (वृंदा०)।

[९०३] अभंग=अखंड। [९०४] मोय=भीगकर। गहर=गहराई। थिति=थाह। [९०५] नाखन=लाँघते हैं। आरति=उत्कंठा। गहर=देर। अलियै=सखी ही। रलियै=क्रीड़ा ही।

जिज्ञासा] (९०६)

हौं तुम सौं एक बात बूझति हौं, साँची कहौ।
मिले माँझ अनमिले से मोहन कैसी भाँति रहौ।
उघरेंहू अंतरपट राखत अपने गुननि गहौ।
चोपनि झूमि झूमि आनँदघन नित नए नेह नहौ॥

(९०७) [कान्हरो

पुकारि पुकारि हारी हो गुपाल काहे न दरसन देत।
आनँदघन कितहूँ पिय छाए प्रान-पपीहा हैं बिललाए
कौन हमारे चेत कहा हो लेत।
अब अति निठुर भए ब्रजमोहन करि करि ऐसी हेत।
औसेरनि हाहा जिन सुख्यौ सौंपी आसा-खेत॥

युगल छबि] (९०८)

मेरी आँखिन सुख दैबे बरी रंगभरी जोरी।
स्यामसुंदर रसिक छैल राधिका नव गोरी।
यहै सुरूप यहै जोबन भन यही रसीली बातैं।
येह बृंदाबन यह जमुना ये दिन येई रातैं।
इनकी कौतिक देखि देखि अपनो जीउ जिवाऊँ।
इनके गुन गाय गाय इनहीं कौं रिझाऊँ।
आनँदघन घमड़ि अरु रस-संपति बरसौं।
दंपति को मधुर केलि ऐसेंई दरसौ॥

वियोगभ] (९०९

प्यारा सोहणा, दिलजानी ढोलन पाया, रब कीता साडे दे दिल दा भाया।
ब्रजमोहन घन प्यारिया पपीहाँ दे घर आया॥

९०८-जोबन० गोवरधन (भजन)।

[९०६] अंतरपट=पर्दा, परदा। नेह०=प्रेम चखते हो, करते हो। [९०७] बरारे=हलनेवाले। अंत०=प्राण क्यों लेते हो, मारते क्यों हो। सौंपी=सौंपा हुआ। [९०८] कौतिक=कौतुक, खेल। दरसौ=दिखाई दे। [९०९] प्यारा०=हे सखी। ढोलन=दूल्हा। रब=ईश्वर। कीता=किया। साडे०=हमारा मनचाहा।

पनघट-लीला] (९१०) [मूलताल

गगरिया भरन न देत स्यामसुंदर मजमोहन रस को प्यासो डोलै ।
आनँदघन मोहिये भूल्यौ कहा कहौं चैटक चितवनि के सैनन ही बोलै ॥

(९११) [परज, तालजाप्ता

साँवला सोहणा मिठबोलन ।
महरम दिलजानी भँवरा गुंजक गलाँ दी गुंडियाँ खोलन ।
जीव जिवंदा गावँदा भावँदा आवँदा नाल लटकेंदड़ा ढोलन ।
प्रान-पपीहें दा आनंदघन रत्त-दिहाड़े छड़िया कोलन ॥

पूर्वराग] (९१२) [इकताला

निगोड़ो नेहरा बढ़ै ।
ज्यौं ज्यौं निरखत मोहन को मुख सौगुनो रंग चढ़ै ।
चोप-चटक लागी हिय है रसना गुन-नाम रढ़ै ।
हसि चितवनि कैधनि आनँदघन मति-गति मोह मढ़ै ॥

(९१३) [तालजाप्ता

देख्यौ नेही नंदकिसोर ।
हौं हूँ लई चिकनई राति-द्यौस मँडरात लगी जब देख्यौ याही ओर ।
कैसैं अपबस राखौं अपनपौ है बरबट चित चोर ।
अब आनँदघन उघरि गुराँगी लौं कर प्रान अँकोर ॥

राधा रानी] (९१४) [मूलताल

बृंदाबन - रानी राधा है ।
रास-रसिक मजमोहन पिय की पुरवनि साधा है ।

९११—गलाँ–गुलाँ (सजना)।

[९१०] चेटक = जादू । [९११] सोहणा = (शोभन) सुंदर । महरम = मर्मी । भँउरा = भ्रमर । गुंजक = गूँज । गलाँ० = बात । दी = दु (निश्चयार्थक) । लटकेंदड़ा = लटक के साथ । ढोलन = प्रिय, पति । प्रान० = प्राणरूपी चातकों का । रत्तदिहाड़े = रातदिन । छड़िया = अपनी प्रतिज्ञाओं को न पालनेवाला । [९१२] रढ़ै = रटती है । [९१३] लई० = हृदय चिकना गया; प्रेम का प्रादुर्भाव हो गया । बरबट = बरबस । अँकोर = भेंट ।

याकी छत्रछाँह सुख बसियत सकल समाधा है ।
आनँदघन चातक-मन सेवत प्रेम अगाधा है ॥

वेणुवादन] (९१५) [इकताल

बाँसली है वीर ! घणां दिन धाड़ै छै ।
भला घरां रा माणसां नूँ कानाँ लागि बिगाड़ै छै ।
काँई करां, क्यौं बस नहि चालै, घर बैठ्यौं नूँ लाड़ै छै ।
केड़ै पड़ी रहै आनँदघन छानो बात उघाड़ै छै ॥

विरह-निवेदन] (९१६) [मूलताल

बिरहा ऐसी कै सताई जू तिहारे मिलन बिन
जान अकेली न छाड़ै छाति कौं ।
स्यामसुंदर मजमोहन आनँदघन पिय तुमहिं
दया कबहुँ उपजै गति कौं ॥

वेणुवादन] (९१७) [खंभायची, तालजाप्ता

कान्हर थारी बाँसली हो मोहनो मन मोहि लीयो छै ।
तीखी लागी नानाँ कानाँ भाणी माहीं मैला कीयो छै ।
थे तो म्हारा रूड़ा राजिंदा म्हे तो थानै आपो दीयो छै ।
अब म्हानै जग खारो लागै आनँदघन रस नीका पीयो छै ॥

पूर्वराग] (९१८) [मूलताल

लगन लगी है स्याम पियारे ।
अब कैसैं यह दुरी रहति है ब्रजमोहन उजियारे ।

[९१४] साधा = इच्छा । समाधा = समाधान (सब बातों का निराकरण) । [९१५] बाँसली = बाँसुरी । वीर = सखी । घणां० = बहुत ही हैरान कर रही है । भला० = भले घरों के लोगों को । कानाँ = कानों में । काँई० = क्या करूँ । घर० = बैठे को भी पीड़ा पहुँचाती है । केड़ै० = पीछे पड़ी रहती है । छानो = (छिपी) उसकी बात खोल देती है । [९१६] ऐसी कै = इतना अधिक । छाति = छत (से मार्ग देखती है) । गति० = मेरी ओर आने के लिए । [९१७] थारी = आपकी । नैणां = नाजों, रास्ता । थे = आप । म्हारा = मेरे । रूड़ा = सुंदर । राजिंदा = (राजेंद्र) अति प्रिय । म्हे = मैं । थानै = आपको । आपो = अपनपन । खारो = कड़वा ।

इस हीं बकति तिहारेई गुन तुम मँड़रात चोप-मतवारे ।
आनँदघन इत मुरलि बिहारी ये सब भेद उघारे ।।

बलदेवजू की स्तुति] (९१९) [हिंडोल, झपताल

जयति रोहिनीनंदन उदार विक्रम - विपुल
अतुल-बलधाम अद्भुत कृपानिधि ।
जयति गौर सुंदर बरन नील-अंबर-धरन
एक - कुंडल - करन आभा निधि ।
जयति ब्रज - अग्रज व्रज - विलास मंगलसदन
कामपालक सदा मन-रसरंग-रिधि ;
करुना-सुहार्द आनँदघन वृष्टि कारि
तापमोचन, देत परम सुखसिधि ।।

सारंग] (९२०) [चौताला

जय जय जय बलभद्र धीर धीर गंभीर अखिल प्रलंबहारी ।
निज व्रजकेलि - रस - माते मुसली कृपाल:
सब ठौर सब भाँति छिन छिन मंगलकारी ।
याही तें नीलांबर धारन परम प्रीति रीति [illegible] ।
घन आनँदघन बरसत स्यामैं सरसत हित गति न्यारी ।।

(९२१) [भैरव, तालजत

बलदेव बलदेव बलदेव भाखौं, बलदेव को एक आसरो राखौं ।
बलदेव बलदेव बलदेव जाचौं, बलदेव कृपा तें व्रजरंग राचौं ।
बलदेव-दया-बल रसमत्त डोलौं, बलदेव-अनुज के नाम-गुन बोलौं ।
बलदेव सो एक बलदेव देखौं, बलदेव-कृपा को पुंज नर लेखौं ।
बलदेव सब काज मेरे सुधारे, आनँदघन बरसि दुख-ताप टारे ।।

९१९—अग्र—[illegible] । (९२०) ।

[९१९] एक० = बलरामजी के एक ही कान में कुंडल रहता है । करन = कर्ण, कान । अग्र = श्रीकृष्ण । रिधि = ऋद्धि, समृद्धि । [९२०] प्रलंब = एक दानव । मुसली = मुसल धारण करनेवाले । [९२१] राचौं = लीन होऊँ, डूबो । अनुज = श्रीकृष्ण ।

(९२२) [ललित, सूलताल

मद-विघूर्नित लोचन गोरोचन-बरन रोहिनीनंदन
बल हलधर गाजैं ।
गोपाल-मोह-गरबरित-हृदय व्रजजन लीला साजैं निज सुख-काजैं ।
मंगलनिधि अच्युत अनंत प्रभु सदा मगन अपनी रुचि छाजैं ।
आनँदघन नीलांबर-धरन उदार दीनहित जस-निसान जग बाजैं,
सुमिरत ही सब दुख भाजैं ।।

श्रीरामजन्म-बधाई] (९२३) [रामकली, चौताल

दसरथ-नंदन को जनम-उछाहु, जनम-उछाहु ।
निरवधि करुना - अवधि - अवधि मंडन प्रगटे महाबाहु ।
कौसिल्या की कोखि सिरानी अति अपूरब पुन्यनि लाहु ।
फूले संत सुर-हित अनुकूले असाहन के उर दाहु ।
आनँदघन अवधेस-दान-झर बाढ्यौ जग मैं सुजस-प्रवाहु ।
निज दासनि को सुख कहा कहियै दिन दिन अधिक उमाहु ।।

(९२४) [टोड़ी, इकताल

जनमे राम जगत के जीवन, धनि कौसिल्या धनि दसरथनंदन ।
अवधपुरी माँझ महामोद छबि नरनारी फूले आनंदन ।
आनँदघन बरसत सुख सरसत करुनाकर उदार रघुनंदन ।।

(९२५) [केदारो, इकताल

आजु मँदिरा दसरथराय के बाजैं रंग-बधाई हैं ।
कौसिल्या की कोखि सिरानी जगबंदन रघुनंदन प्रगटे, सब मनभाई है ।
अवधपुरी आनँद - झर लाग्यौ उघरी भाग - निकाई है ।
चहूँ ओर मंगल - धुनि सुनियत राम दुहाई है ।।

[९२२] विघूर्नित = चंचल । बरन = रंग । मोह = प्रेम । गरबरित = भरित । निसान = बाजा । [९२३] निरवधि = सीमारहित । अवधि-मंडन = अयोध्या की शोभा करनेवाले । कोखि = कोख ठंढी हुई (पुत्रोत्पत्ति से) । सुर-हित = देवों का हित (भलाई) । असाहू = न सहनेवाले, शत्रु । [illegible] = ज्वाल । [९२४] दसरथवंदन = दशरथ । [९२५] मँदिरा = मर्दल, मृदंग ।

(९२६) [कान्हरो बागेस्वरी, इकताल

राम जगजीवन जनम लियौ, जुड़ायौ जननी जनक-हियौ ।
निरवधि आनँद-उदधि अवधपुरी मधि घर घर
बाजति रंग-बधाई फूले फिरत नर तियौ ।
सिव बिधि सुक सनकादि सुर-समूह आनंदित
भूप-भवन भीर भई सबको जीव जियौ ।
आनँदघन भर लाग्यौ दुखदारिद दूर भाग्यौ, दसरथ
दातार जिन जो माँग्यौ सु तेहि दियौ ॥

(९२७) [आसावरी, इकताल

कौसिल्या की कोखि ककुभ सुभ पूरन रामचंद्र उदयौ ।
रविकुल सकल प्रकासित कीन्हौ अनभुत कला-बिलास ठयौ ।
दुख-तम दूरि गयौ दबि कितहूँ चाहत्यौ मन मैं मोद नयौ ।
सुजन-बंधु कुमुदावलि फूली अरि-समूह दुख-ताप तयौ ।
निरवधि सुख को सिंधु अवधि मधि घर घर उमँग-तरंग छयौ ।
मंगल-धुनि की गरज सुधा करि सुहृद-चकोरनि चैन दयौ ।
दसरथ-भाग कहा कहि बरनौं सकल दैखियत सुकृतन यौ ।
अमीदृष्टि रसवृष्टि चहूँ दिसि करुना आनँदघन जनयौ ॥

(९२८) [टोड़ी, मूलताल

मंदिलरा री बाजैं आलि हौ गहगहे प्रगट भए
या अवध नगर मैं रामचंद्र घर आजै ।
गावत मंगल मिलि बनिता-गन कहि न परत सुख
आनँद की निधि निरखि दुख भाजै ।
करत बेद-धुनि बिप्र बंदीजन घर घर तोरन-ध्वजा बिराजै ।
मनवांछित फल भए परमानँद मोलि द्विजनि कौं
दान देत मन हरखित दसरथ राजै ॥

९२७—सुर—नर (इंद्र०) । ९२८—उमँग०—मंगल रंग (वही) ।

[९२६] लियौ = स्त्रियों भी । दातार = दाता । [९२७] ककुभ = दिशा । सुधा = सुधा से । [९२८] मंदिलरा = मर्दल, मृदंग । आजै = आज ही । तोरन = फाटक । राजै = स्वयं राजा ही ।

(९२९) [मलार, इकताल

आज तेरी चूनरी को रँग दूनो पहिरें चटक-चोप सौं ।
पिय अपबस करि भलें बसायौ कुंज-सदन हो सूनो ।
तू नागरि गुन-रूप-आगरी वे नागर बर बनक दुहूनो ।
आनँदघनहिं भिजै रस राख्यौ दै सौतिन मुख चूनो ॥

प्रेमघन] (९३०) [रूपताल

तिहारो नेह चौबाई को सो मेह काहू भूमि भूमि लग बरसै ।
निकसन काहु न देत घरिक हू को लौं घिरे घरहि रहियै
अति नकवानी करि सरसै ।
एक अचिरज कछु कहत न आवै जाहि भिजावै सो सूखि सूखि तरसै ।
आनँदघन पिय उघरि अँध्यारी है नए नए रंगनि दरसै ॥

(९३१) [मूलताल

पहो कामरि की खोही, रँग राख्यौ चूनरि को ।
बन मैं बन्यौ दाव काहू मिस कोन भावनी जोही ।
जमुना-तीर बर-तरैं ठाढ़े भीजत दीमत मति-गति मोही ।
आनँदघन अद्भुत दामिनि मिलि अचिरज-रस-बरसा मोही ॥

(९३२)

सघन बृंदाबन सुहायौ राधामोहन - मन - भायौ
महल हो ये पावस आय बिराज्यौ ।
केकी कोकिलान को किलक जित तित चित चोरि लेति
तैसो मेघ मधुर धुनि गाज्यौ ।

९३१—मति०—गति रति (वृंदा०) ।

[९२९] दै० = सौतों के मुख में चूना लगाकर, सौतों को कष्ट पहुँचाकर । [९३०] चौबाई = चारों दिशाओं में वायु का चलना । नकवानी = परेशानी । [९३१] खोही = घोघी, कंबल को दो परत में लपेटकर ऐसे कर लेना जिससे शरीर ढका जा सके । बर = वट ।

तरनि-तनया की तरंगनि चढ़ति देखि बाढ़त
बिनोद मोद तन-ताप भाज्यौ ।
यहि बिधि बैठे कुंज-भवन दंपति आनँदघन
बरसत सुरति समागम साज्यौ ॥

घनश्याम] (९३३) [इकताला

आवत है हो हरि मातो मेह ।
बन हैं निबहि जाउँ जौ घर लौं, तौ निबहै नित नित को नेह ।
हठ की बात भली न भावती तुमहिं चढ़यौ मनमथ को तेह ॥

वृंदावन-महत्ता] (९३४) [चौताल

सब रितु बृंदावन सुखदाई ।
दंपति की हित संपति नित इत जित तित ही अधिकाई ।
धनि जमुना धनि पुलिन मनोहर धनि धनि लीला ललित निकाई ।
आनँदघन की घमड़ निरंतर मुरली-गरज सुहाई ॥

गोपी-प्रेम] (९३५) [इकताल

कामरियावारे की बात न क्यौं हूं जानि परै ।
हाति-बिराति अँध्यारे मैं मिलि औचक आनि परै
ऐसो छलौ बलौ अति चौकस नेकु न कानि परै ।
आनँदघन रस-बस करि राखै जौ इहि पानि परै ॥

(९३६) [मूलताल

कैसैं रहौं री अब मैं ऐसैं स्याम बिहारी बिना ।
मनमोहन आनँदघन कितहूं छाय रहे आली, कठिन
कठिन बीतत हैं मोकौं रैन-दिना ॥

९३२–तरनि–सुरति (वही) । ९३३–९४०–[illegible] (भजन) । ९३६–ऐसैं–अपने (वृं॰) ।

[९३३] मेह = बौरापन, वेग । [९३५] न कानि परै = मर्यादा का विचार नहीं करता । पानि = हाथ ।

गोपी-प्रेम] (९३७)

इकसा मार टटोलौं अबहीं ननदिया नाहीं दीनौ रवर कहा देहौं ।
आनँदघन सुजान सुनौ बिनती जिन अलबाद करौ तिहारी
सौं जान देहु जू जौ बनिहै तौ बहुरयौ ऐहौं ॥

हिंडोरा के पद] (९३८) [मलार, झपताल

देखि सखी झूलनि हिंडोरे दुहुन की, ये दुहुन की ।
चोप सौं लचकि मचकन खरे रंग-भरे कचनि तें बरसनि प्रसून की
मृदुल कलकंठ गावत महा मगन मन मधुर सुरतान लै दून की ।
यह छबि निहारि न सँभारि आनँदघन सुधि बुधि हरी सुर-बधून की ॥

(९३९)

लाड़-गहेली की तीज मनावन कौ गीति मैया
भाग भरी सब भाँतिन ।
उबटि न्हवाय सिंगारि कुँवरि कौं सुखनि सिहाय बहुत
कछु बारति फूली अंग माति न ।
रतन-हिंडोरैं झुलावति झुलावति संग सोहति साथिनि
दाहूँ की बनी ठनी रूप-रूपनी भाँतिन ।
बरसाने बरसत आनँदघन भानु-भवन मैं मंगल-गान की काँतिन ॥

लालजू की बधाई] (९४०) [भैरव, इकताल

या आँगन लाड़ के चावन हैं घर नित ही बधावनौ ।
स्यामसुँदर होनौ दिन लौनौ मंगल-मोद-बढ़ावनौ है नैन-सिरावनौ ।
जसुमति-बारौ फूल-गुंजवारौ सब बिधि हिय-जिय भावनौ ।
ब्रजजन-जीवनधन आनँदघन रस-बरसावनौ ॥

(९४१) [तालजात

आजु हमारैं काजु है री जन्यौ जसोमति मोहन स्याम उजियारो ।
आनँदघन ब्रजलोचन-तारौ चिर जियौ नंदराय-दुलारौ प्रान
कौ प्यारो ब्रज-रखवारौ ।

९४०–आंगन–इन (भजन) । ९४०–रस बरसावनौ (वृं॰) ।

[९३७] अलबाद = कलह, बखेड़ा । [९३८] कच = केश । दून = संगीत-भेद, साधारण से दूना ।

मंगल गावौ मोद बढ़ावौ भागनि के फल नैन निहारो।
छिन छिन यह दिन रहौ या घर असीस हमारो ॥

(९४२) [चर्चरीताल

बधाई नँद के भई हो मोद - विनोदमई।
स्यामसुंदर - आगमहिं गोकुल - ओप नई।
फैलि परी छिन की फलि, अंतर - सूल गई।
भागनि फल यह सुभ घरी विधि बनाय दई।
आनँदघन मंगल - धुनि ठौर ठौर रई।
थिर - चर रस - रंग भोजैं कीरति उनई ॥

(९४३) [रामकली, तालआड़ा

लला को सोहिलो गाऊँ, फूली अंग न माऊँ।
नाँदौ बाढ़ौ थिर जीवौ दिन - दिन इहै मनाऊँ।
निज मोहन - मुखचंद निहारौं नैननि हियौ सिराऊँ।
आनँदघन जसुदा के आँगन दौरि - दौरि आछेई
आऊँ रंगनि बरसाऊँ ॥

(९४४) [आसावरी, चौताल

स्यामसुंदर को जनम-द्यौस आजु आनंद नंद-सदन मैं निपट।
गावत मंगल गीत गुनीजन प्रेममगन बर बाजे बजावत नाचत
मुदित मैन से बहु नट।
कुँवर कन्हाई दगनि सुखदाई नखसिख मनिगननि अलंकृत राजत
श्रीब्रजराज के निकट।
सनगन ससि मुख - छबि पै वारौं बलि, रंगनि भरे अंगनि को
मयूखनि झलकनि झलकति अति झीने पट।

९४२—फलि-फूलि (वृंदा०)। ९४४—मनहि—भूषन (वही)। नखको—
भूषवाहि (वृंदा०)।

[९४२] फलि = फली। रई = रमी। [९४३] सोहिलो = सोहर। नाँदौ =
आनंदित होए। [९४४] ब्रजराज = नंद। झीने = पतले, महीन। सन० =
देवों का समूह।

बनि ठनि बैठे गोप ओप सौं रँगीली रीतिन सुभग सभा सजि
ठौर ठौर सोभा को संघट।
कोटि-कुबेर-संपदादायक इक इक बोल अमोल महा सोई पल-
पल सबकी रसना रट।
द्वार-द्वार नूतन किसलय की जलज-खरचित बंदन-माला अरु
नग खचित दीपत मंगल-घट।
आनँदघन अद्भुत औसर लखि पुहुपनि बरखत रतननि वारत
उमहि उमहि अंबर तें अमर-ठट ॥

(९४५) [पूरबी, तालजाता

तैंडा रंग, लाडला कान्ह जसोदे! होवे जीवणा जागणा।
इसदी बलैयाँ मैंनू लगी अँखड़ियाँ दा लागणा।
उमरदराज करी रब सँयाँ तुम जेही केही बडभागणा।
आनँदघन ब्रजजीवन प्यारिया सभ सानूँ रस-पागणा ॥

(९४६) [भैरवी, चौताल

आजु मंदल की कहकैं ए सजनी सुनि।
बरस - गाँठि ब्रजमोहन की यातैं मन खोलै बोलै धुनि।
ललहि सिंगारि चौक बैठारति मैया को सुख कौन सकै गुनि।
आनँदघन ब्रजपति बड़भागी बहु धन वारत पुनि पुनि ॥

(९४७) [ईमन, सुरताल

मंदिलरा बाजैं रंग सौं ब्रजपति - मंदिर मैं आनंद।
जसुमति - रानी - कूखि सिरानी प्रगटे हैं ब्रजचंद।

९४५—जीवणा—जीवणा (वृंदा०)।

[९४५] रंग = धन्य है। जसोदे = हे यशोदा। इसदी० = उसकी बला
मुझे लगे। अँखड़ियाँ० = आँखों में बस जानेवाला। रब = ईश्वर। सँयाँ =
स्वामी। केही० = किस किसके लिए। प्यारिया = प्यारा। सभ = सब।
सानूँ = हमको। रस० = रस में डुबानेवाला। [९४६] मंदल = मृदंग।
कहकैं = ध्वनि। ललहि = लाल (पुत्र) को।

मंदीजन जस-बिरद बखानत बिप्र वेद-बिधि छंद ।
आनँदघन सबको मनबांछित हरखत बरखत नंद ॥

(९४८) [गौरी, आडमूल

आवौ री मिलि गावौ सुहेलरा, आजु हमारे मंगल माई ।
नयौ भयौ ब्रजचंद छबीलो ब्रजरानी की कूखि सिरानी सुख
निरखन आनँद-बधाई ।
दुख्तन दरयौ करयौ सब बिधि सुख गोकुल प्रेमसिंधु अधिकाई ।
अद्भुत अमी-कला आनँदघन सुजस-जोन्ह रसबृष्टि सुहाई ॥

कुँवरानी जू की बधाई] (९४९) [रामकली, तालजात

सोहिलो वृषभान-भवन मैं, प्रगटी है मंगल-मनि राधा ।
कीरति-कुल-उजियारी प्यारी पूरन करी सकल बिधि साधा ।
ब्रजदेवी सुर-नर-मुनि-सेवी परम-प्रेम-गुन-रूप-अगाधा ।
आनँदघन रस-बरस दरस लखि सुखनिधि बढ़्यौ, हरौ सब बाधा ॥

(९५०) [हमीर, चौताल

प्रगटी है मंगल-मनि वृषभान-कुँवरि राधा नामिनी ।
ब्रजजीवन को प्रान-सजीवनि अद्भुत अभिरामिनी ।
रस-बिहारिनि गुन-अधिकारिनि परम प्रेमनिधि की स्वामिनी ।
आनँदघन-रस-रासि रसीली बृंदाबन-धामिनी ॥

(९५१) [टोड़ी, मूलताल

हौं बलिहारी राधा-नाम की ।
याहि लडाऊँ गाऊँ दिन-दिन देखि जिऊँ जल पिऊँ वारि
कीरति-कुल-उजियारी प्यारी बरसाने गाम की ।

[९४७] मंदिलरा = मृदंग या ढोल । बिप्र = ब्राह्मण वेद की विधि से मंत्र पढ़ रहे हैं । [९४८] सुहेलरा = मंगल-गीत । अमी-कला = चंद्रमा । [९४९] कीरति = कीर्ति, राधा की माता । साधा = उत्कंठा । [९५१] लड़ाऊँ = प्यार

वृषभान पिता की गोद-खिलारी श्रीदामा की पीठि प्रगट
भई सोभा-निधि ब्रज-ठावँ की ।
करौं याहि भाँति आनँदघन हौंसनि होउँ निहाल छिनहि
छिन रज लै पावँ की ॥

(९५२) [चौताल

साध पूजी मेरे मन की जू कीरति कन्या जाई ।
जसुमति के ब्रजजीवन प्रगटे देखि भयौ सुख यह सुखमानिधि आई ।
इन दुहुँ घर की एक लुगाइन जोरि चित-चाही सु बिधि बनाई ।
आनँदघन छाऊँ गुन गाऊँ नित ही सोहिलौ मनाऊँ
न्यौछावरि भरि पाई ॥

(९५३) [ईमन, तालजात

बधावा हौं ही गाऊँ री कीरति-कुँवरि कौं मल्हाऊँ ।
मंगल की मनि सोभा की निधि निरखत नैन सिराऊँ सुखनि सिहाऊँ ।
याही के सुहेलें मनाऊँ हौंसनि दौरि दौरि आऊँ ।
आनँदघन रंगनि सरसाऊँ याकी बलैया लै लै क्यौं जियाऊँ
बहु बिधि लाड़ लड़ाऊँ सब कछु पाऊँ ॥

(९५४) [जैतश्री, मूलताल

राधा की अजब बधाई दुर्लभ दुर्लभ हौंसनि गाऊँ ।
देखि देखि मुखचंद सिहाऊँ मीठी भास मल्हाऊँ ।
कीरति-कुल-उजियारी को बहु भाँतिन लाड़ लड़ाऊँ ।
जसोदा-जीवन मनमोहन-हित जोरी-अभिलाष मनाऊँ ॥

(९५५) [बिहागरो, इकताल

यह कौन बिधाता की रचना है कीरति-कूखि आनि प्रगटी ।
याहि निरखि जो सुख पाइत मो जीयहि जानै फिर याहि
बहुरि नाहिन हटी ।

९५२—९६०—भानु-बधाई (अतना . :

करें । खिलारी = खिलानेवाला । श्रीदामा = राधा के बड़े भाई । की पीठि = श्रीदामा के बाद जन्मी । [९५२] जाई = जनी, प्रसव की । सोहिलो = मंगल, बधावा । [९५३] मल्हाऊँ = दुलार से खेलाऊँ । [९५४] भास = भाषा, वचन ।

जसुमति - ललन देखि मन आवत चोरी - जुगति अनूप ठटी ।
आनँदघन चिर जियौ हमारौ जीवन की निधि जनम-जनम
की तपति कटी ॥

(९५६)

बजै वृषभानु कें बधाई कीरति कन्या जाई ।
भाग-भरी राधिका सुलच्छनि ब्रज मंगल-मनि आई ।
जसुमति रानी सुनि अति हरसी विभव अनेक बनाई ।
सुत को हित बिचार मन ही मन फूली अंग न समाई ।
मंगल मोद बधाई की धुनि गोकुल रावल छाई ।
प्रेम-बिबस डोलत नर - नागरि हित गति की अधिकाई ।
यह जोरी चिर जियौ छबीलौ मन नैननि सुखदाई ।
उनै घनै बरसौ आनँदघन सरसौ हरष - हरयाई ॥

श्रीकृष्ण-जन्म]　　(९५७)　　[टोड़ी, चौताल

आजु बधावनो नंद-भवन मैं भावनो, प्रगट्यौ है स्याम सुहावनो ।
होत कुलाहल ठौर ठौर मन नैननि सुख - उपजावनो ।
दुज मागध बंदीजन गन पै मनि मानिक धन घन बरसावनो ।
ब्रजपति की उदारता सौं कैसें करि सकत सरसावनो ।
रस - जस मंगल - सिंधु सबै ब्रज - रंग तरंग - उमंग बढ़ावनो ।
आनंदघन ब्रजचंद अखंड अमल अपूरब दरसावनो ॥

(९५८)　　[बिहागरो, इकताल

ब्रज मंगल आजु है हो ।
ब्रजरानी सुंदर सुत जायौ पूरब - भाग - उर्दै हो ।
मनभायौ सब ही कें आयौ धन्य सुदेस सबै हो ।
आजु हमारो झगरो है जसुमति मैया सौं लै हो ।
कहियै कहा महासुख सरस्यौ चिरजीव्यौ रसमै हो ।
आनँदघन ब्रजजन - जीवनधन बरसौ उनै उनै हो ॥

[९५५] तपति = ताप । [९५६] रावल = राधा का ग्राम। जहाँ वे जन्मी थीं । नागरि = नारी । हरयाई = हरियाली ।

साँझी]　　(९५९)　　[हमीर, इकताल

गुनागरि साँझी कीरति माय, कुँवरि राधा को लाड़ लड़ाय ।
अरचि परचि चंदन बंदन सौं फूलमाल पहिराय,
बिबिध मधु मेवा भोग रचाय ।
बोली बहिनोली घर-घर तें भरि भरि ओली देत सिहाय ।
कंचन - थार उतारि आरत्यौ हँसनि लगनि पाय,
लली को भाग-सुहाग मनाय ।
यह सुख-सोभा दिन-दिन या घर सरस बधाए गीतनि गाय ।
आनँदघन ब्रजजीवन जोरी रसिकन सदा सहाय ॥

(९६०)　　[ईमन, तालजाता

नाचै नाचै नवरंगी स्याम सरस साँच सौं गति लै ।
मुख की फबनि भौंह - ढरनि सबनि के चित चुरै
मुरली मैं रँगरली जति लै ।
राधा रीझि रिझावनि भावनि तान-तरंगनि कोजति लै ।
आनँदघन रस रास रचायौ पाग दई सबकी मति लै ॥

(९६१)　　[केदारो, मूलताल

रास मैं राधा सब रस राख्यौ ।
बृंदावन स्वामिनि अभिरामिनि मन जस राख्यौ ।
आनँदघनहिं मिजाज रिझायौ केलि-कला कस राख्यौ ॥

९५९ — बहिनोली-बहि दोली (प्र०) ।

[९५९] साँझी = शरद् ऋतु में फूल-पत्तों, अनेक रंगों आदि की सहायता से की गई चौकी या दीवाल पर की चित्रकारी । गुनागरि = राधा से गुनावती है । परचि = युक्त करके । बंदन = सिंदूर । बोलि = बुलवाई, निमंत्रित की । बहिनोली = सजातीय स्त्रियाँ । ओली = गोद । सिहाय = प्रशंसा करके । [९६०] जति = यति, ठहराव । पाग० = भली भाँति सिखा दी । [९६१] जस = जैसा । कस = कैसा ।

(९६२) [केदारो, इकताल

रास रचायौ राधा नागरि मोहन स्याम नचायौ नीके।
सोहां लै गति थेई थेई चटक सौं अनुपम रूप दिखाय
सिखावति ज्यौं ह्यां त्यौं जिय भावै पी के।
इनकी सीखनि सिखवनि इन पै बनि आवै हो ये
पटतर हैं आप सही कै।
आनँदघन वृंदावन जमुना-तीर बसति रह्यौ भाग
सरद-राका-रजनी कै॥

(९६३)

सरद-रितु जामिनि फूली है।
जगमगी जोन्ह छबीली छाई सरस पुलिन रस-रास रुचि
रच्यौ जमुन-कूल अति ही अनुकूली है।
राधा मोहन नाचत गावत रूप-गुन-कला रससूली है।
आनँदघन अद्भुत बिलास-भर वृंदावन मैं देखत भूली है॥

(९६४) [संकराभरन, चौताला

अगनित बनिता बनि बनि नाचत बनमाली-सँग
बन्यौ है रास बर थानिक जमुना-पुलिन मैं।
साँवरो सोहन रसिक मोहन चपल छुहल चतुर जोहन
सबनि सौं हिलि मिलि बिलसत अति आनँद मन मैं।
सरद-राका-रजनी अमल रुचि रचना रंजित सकल
जुवति मिलि बीच व्यापक कै पुरयौ त्रिभुवन मैं।
आनँदघन रस-संपति अधरज-मूरति दंपति नित
बिहार दीसत पायै हित-धन मैं॥

(९६५) [केदारो, चौताल

सकल-कला-प्रबीन वृषभानुनंदिनी रस-रास नचै।
उघटत मोहन नटनागर बर तरल ततकारनि चोपनि छुहल मचै।

[९६२] सोही=शोभित। थोक=शीघ्र। पटतर=समानता। सही=ठीक। राका=पूर्णिमा। [९६४] छुहल=विनोदी।

ललित ललित मृदंग मैं रंग राखति त्रिबिध भेद सौं सुगंध मचै।
आनँदघन प्यारी के पाइन लागत नाच की साँच रचै॥

(९६६) [केदारो, चौताल

साधि कै सुर मुरलिका मैं केदारो ठान्यौ मोहन रसरंगी।
जैसैं जैसैं जिय भावै तैसैं राधे दिखावै तान त्यौनार तरंगी।
कहा कहियै देखि देखि रहियै जिनि जिनि गाननि की ख्यौरनि मैं रंगी।
आनँदघन पिय अरु प्यारी के सुर मैं रहत अभंगी॥

(९६७)

तेरे री मुख की जोति आगैं कोटिक सरद-चंद मद लागै।
ललित हसनि दसननि की मयूखनि चमकि नंदकिसोर
चकोर-नैना नव चंद-पियूषनि सौं पागै।
अति रसभरे खरे कोमल कपोलन मैं मुसकि गाड़िबो
गालनि मैं गाड़ परत आछी छबि जागै।
आनँदघन पिय जिय की जीवनि ताहि सौं अनुरागै
सु तेरेई गुन निसि दिन रागै॥

(९६८) हिंडोल, इकताल

स्याम नवरंगी प्यारे खेलत अपनी गोरी सौं।
चोप चाव चरचाय नैन मन प्रेम-रंग-बोरी सौं।
हित-चाँचरि नित मची रहति है नइ नइ उमग दुहू ओरी सौं।
आनँदघन रस रीझे भीजे हिलगनि झकझोरी सौं॥

(९६९)

जोबन सौरभ्यौ बसंत फूल्यौ सरस गुराई गोभा निकसी।
अंग अंग नवरंग जगमगे सुख सुखमदन चंद्रिका बिकसी।

९६६-सुर-रस (वृं०)। ९६९-बिक-बिक (सतना)।

[९६५] तरल=चंचल। ततकारनि=नाच के बोल। नाच०=नृत्य की सत्यता सिद्ध हो जाती है। आँकौ०=अंक, गोद। [९६६] त्यौनार=ढंग। गान=गीत। ख्यौरनि=खोलना। [९६७] गाड़=गड्ढा।

रसिया मधुप सदु भयौ डोलै बन बोलै सो तौ सुनि पिक सी।
बसि बलि चालि हिलि मिलि खिलि स्यामा ब्रजमोहन सौं
कहा कुलकानि दै रही थिक सी॥

(९७०) [बसंत

बनि बनि आई ब्रज-बनिता बर बसंत बृंदाबन
बनमाली के हित हिलि मिलि।
कोटि काम अभिराम स्याम-छबि-हेत हुलसि लसे हैं बदन
सुख-सदन सबनि के परम प्रेम-फुलवारी खिलि।
नागर नैन-मधुप मधु-लंपट बिहरत अंग अनंग-रंग मिलि।
बहु बिधि खेल मच्यौ आनँदघन चोवा चंदन बंदन
भरत परसपर जोबन के झोरनि पिलि॥

(९७१) [हिंडोल, चौताल

मेरी राधा को साँचो बसंत यह केलि-कलपलता
मोहन काम-कलपतरु।
प्रफुलित ललित हित-बलित सदा बिराजत लाग्यौ
रहस आनंद-मकरंद-झरु।
भौंरी अँखियाँ पीवति जीवति नित रस सींचे जमुना-
तट ही बृंदाबन सुदेस भरु।
बिलसत लसत घुमड़ि आनँदघन ऐसे बड़भागी जु
बन ही मैं करि पायौ घरु॥

(९७२) [सूलताल

देखौ राधा को सुहाग, याके सरबोपर अनुराग।
कान्ह कंत बसंत-मूरति नित याके बस बड़भाग
बिहारन कौं बृंदाबन-बाग।
याकी रूप-निकाई बिधना याहि बनाई याके गुन
मुरली मैं गावत पूरत बिबिध रागिनी राग।
याहि परसि सरसत आनँदघन पगो परम मन-पाग॥

(९७३) [बसंत, इकताल

नव बसंत फूल्यौ है, जब तें हरि राधा फूले अति मन मैं
इधरि उधरि डोरी खेलन कौं हित चित चौपनि।
छाके प्रेम नेम सब थाके ताके वे दिन भरि अभिलाषनि
चितवनि ही मैं भई जु बहुत बिधि हिय जिय सौंपनि।
चाव गहगहे उमगि डहडहे बैस लहलहे जोबन कौंपनि।
दुर्लभ सुलभ अब भई भाग-बल आनँदघन रस बिबस
जियत मिलि सियत फागुन-गुन अंतर-ओंपनि॥

(९७४) [हिंडोल, चौताल

बसंत लड़ैती बनि आयौ री नव बरन बरन पुहुप-बसन
पहिरि रिझावन कौं ब्रजमोहन स्याम।
नवनागर गुन-आगर को सुख देखि बिबस भयौ
जाके रोम पर वारि डारियै कोटिक काम।
ब्रज-जुवराज उदार सिरोमनि रीझि दयौ बृंदाबन मैं
नित को बिसराम।
आनँदघन पिय तेरे रसरंगनि भीजि रीझि बैन बजावत
लै लै नाम चलि बलि बिहरन कौं सब धाम॥

(९७५) [बसंत, इकताल

होरी खेलैं रस-भीजे रीझे नंदलाल वृषभानु-कुँवरि
भरि रंग रंग-भाय अनुराग-चाय।
आछी मीठी भाखनि सौं हितकारी नारी गाय गाय
सुख-सुषमा कछु बरनि न जाय।
दुहूँ दिसि सहचरि भरित रंग भौं उमहति समुहति धाय धाय।
मच्यौ खेल बृंदाबन जमुना-तट आनंद-अंबुद रह्यौ छाय
यह छबि हेरत मति-गति हिराय॥

९७३—नव-बन (सतभा) । ७६६—हारी—हरी (वही) ।

[९७३] कौंपनि=कोंपलें । ओंपनि=ओप, चमक का बहुवचन ।
[९७५] भाखनि=भाषा, बातचीत । समुहति = सामने आती है ।

(९७६) [धनाश्री, तालीसाको

हेली होरी खेलेई बनै, स्याम सुजान पिया सौं।
औसर है मन-भावतो कुल-कानि को गनै।
जोवन को फल लीजियै यह कीजियै बनै।
भीजियै रस पीजियै सरसाय आनँदघनै॥

(९७७) [धनाश्री, इकताल

ऐसो छैल नंद को घातो, मेरी छुवत छबीली छाती।
पट की ओट पवन नहिं लागत नवजोवन की थाती।
कछुक अनूठो बिभ्रमनाय लिए आज फिरत कनवाती।
मुख सौं मुख लगाय सुख पाय हँसत करि आप-सुहाती।
औटपाय के दाय भरचौ डोलत है साँझ प्रभाती।
छल-बल करि नहिं काहू पकरत दौरि दगाती।
न्यौछ लगी री होरी, बरजोरी की जहाँ बसाती।
नातर इन अनखादन आनँदघन गत ही मिल आती॥

(९७८)

अचगरे तुमहीं देखे सब डर डारैई डोलौ।
खेल किधौं सतभाव ताकिलै कंचुकि के कस खोलौ।
जौ कोऊ लखि पावै तौ उतर देहु कहा कहि बोलौ।
आनँदघन रसबादनि भूखे तुम सौं भलो अबोलौ॥

(९७९) [इकताल

होरी खेलियै अँखियन सौं अँखि मिलाय।
मन को मरक काढ़ि सब दिन की निधरक कै रस मेलियै।

९७७–कनबाती–कनवाती। ९७८–रस–रस (रतना)।

[९७७] कनबाती–मुँह कान में लगाकर बात कहना। औटपाय=नटखटपन। दगाती=दगाबाज। न्यौछ०=देवता को अर्पित हो जाय (गाली) अर्थात् किसी काम की नहीं। बरजोरी०=जहाँ जबर्दस्ती का ही वश चलता हो। नातर=नहीं तो। अनखादन=कालम् बातों से। [९७८] अचगरे=नटखट, शरारती। कस=बंद

अंजन आँजि मीड़ि रोरी मुख हँसि गरबाँही मेलियै।
गहर करन को नाँव न राखे तू धुर की अलबेलियै।
मोहनलाल तमाल, बालबर तू सुहाग नवेलियै।
रिझै भिजै आनँदघन पिय कौं रस लै आजु अकेलियै॥

(९८०)

भले बनि आए हौ मोहन लाल रँगीले नैन भराए गुलाल।
फागु मैं भावते भाग जगे लगे नीके करौ हौं निहाल।
अंग अनूठी सुगंध के डोरे गुहौ अलिमाल रसाल।
रीझनि प्रान अगमजा डोरि करैगी आनँदघन ख्याल॥

(९८१) [इकताल

आजु निपट ढिठाई दै ढरे हौ साँवरे कसरि काढ़ि कै मन की।
भौंह नचाय कहा एंडत हौ निडर अमैंड़ भए ब्रजमोहन
घात चलि गई बन की।
ब्रज-राजा की कानि न मानत गोधन-ओट डोहू धर-धन की।
फागु देखि अति ही इतराने आनँदघन करि नाक नचौंहीं
हौं ही राधा तन की, सौंह करति हौं अपने पन की॥

(९८२) [टोडी, तालजास्ता

होरी खेल रंगनि रँगीलो छैल छबीलो नागर गोरी-संग।
चरजनि ताकि तकि छाँड़त छबि सौं कंचन की पिचकारी
भरि भरि नवल केसर-रंग।
प्यारी घात बनावत आवत धावत मूठि-गुलाल
चलावत सुंदर साँवरे अंग।
आनँदघन-रस दोउ परलोलैं भूमि झपटि लपटि
जात भाने अनँग-उमंग॥

९८१–ढरे–ढहे (रतना)।

[९७९] मरक=हौसला। मेलियै=डालिए; मेलियै=डालिए। धुर की=आरंभ, बहुत। [९८०] डोरे=सहारे। डोरि=लेकर। ख्याल=खेल। [९८१] अमैंड़=मनमानी करनेवाला। गोधन०=गाय चराने के बहाने। धन=द्रव्य; धन्या (स्त्री)। तन=ओर, पक्ष।

(९८३)

पकरि बस कीने री नंदलाल, झुरमुट करि
चहुँधा तें बहुत ब्रजबाल।
काजर दियौ खिलार राधिका मुख सौं मसकि गुलाल।
देखत बनै स्याम की सोभा, सहचरिनि के भए निहाल।
धन्य फाग धनि भाग की जागनि जामैं ऐसे हाल।
जदपि बसन कौं बहुत अरबरत छूटत क्यौंहूँ पर प्रेम के जाल।
सूधे किये बंक ब्रजमोहन आनँदघन रस-ख्याल॥

(९८४)

होरी के खिलवार, देखे।
मोहीं सौं रसवाद चलावौ नए छैल रिझवार।
गावत फिरत उघारी गारी अगवारैं पिछवार।
आनँदघन उनएई ईसन मिलत न साँझ सवार॥

(९८५)

आजु मेरे भाग मया करि होरी खेलन स्याम रसीले।
सब रँग भीजि रहे पहिलें ही स्याम रसीले।
कौन रंग भिजऊँ तुम्हैं रस-बरसीले॥

(९८६) [केदारौ, मूलताल

होरी खेलि मदनमोहन प्रीतम-संग।
सुंदर बदन गुलाल लगैयै चोवा चंदन बंदन स्याम सलोने अंग।
गैयै बजैयै चाँचरि मचैयै नचैयै री चाहि गति अति ही सुढंग।
आनँदघन बरसैयै मढ़ैयै सरसैयै सुख उपजैयै अद्भुत रंग॥

(९८७) [अड़ानो, रूपकताल

निपट लाड़िलो एरी तेरी मुसक्यान प्रानपिय-
जिय सौं खेलि लगी है।
अधर पाय भरि धाय रंग बरसाय जाय दुरि भिजवति
सुखवति हाय, कौन होरी दाय के चाय पगी है।

[९८३] झुरमुट=झुंड। मसकि=मलकर। [९८४] उघारी=खुली, बेपरद।

फूलि फूलि फैलति रस-भीनी उमँग-भरी खरी ढोरी लगी है।
आनँदघन रिझवार छैल तिहि आवन, गैल अरैल
भयौ टारत नहिं नेकु टगी है॥

(९८८) [ईमन, तालजामा

होरी के खिलार भए नए छैल अजू तुम बरबट बहियाँ मरोरी।
आवत मूड़ चढ़े अति ज्यौं ज्यौं करी कछू कानि कनौड़
बनावत जोबन जोरी।
बातनि घातनि की चतुराई चलैगी न ह्याँ ऐसी औरन भोरी।
चहचहे कहूँ रहे, धोखे फागु के आनँदघन भूले मैं
फूले फिरौ तकि ताही त्यौं टकटोरी॥

(९८९) [इकताल

नंदलाल वृषभानुकिसोरी होरी खेलत चायन सौं।
सुंदर बदन धमारिन गावत उपजावत रस-भीनो भाव
भावन गुलाल लै लै दायन सौं।
दुहूँ दिसि अली भली सब बातनि घातनि रचि आवत
खेलन कौं जोबन-भरी तमक तायन सौं।
आनँदघन पिय प्रिया नागरी दुरि मुरि दृष्टि बचाइ
जाइ ढिग रंगनि भरी विविध भायन सौं॥

(९९०)

लाल हिये लखि भरत लालसा बाल-बदन मंडित-गुलाल।
मनहिं लेत लगि चोवा बैंदी भाग-राग-जगमगे भाल।
बीर तीर छुटि अलक छबीली छलनि सहित छबि छलति हाल।
नीलमनी मिलि मनौ ढैलरी गर मोतिन खिलि जोति-जाल।
अंग अंग अनुराग-रँग-भरी सारी ओट दीने तमाल।
ओटनि लोटपोट करि डारत आनँदघन चितवत रसाल॥

९९०—मनहिं—मोहि (सतम)।

[९८७] ढगी=ठकठकी। [९८८] बरबट=परबस, जबर्दस्ती। कानि०=मर्यादा का ध्यान, लिहाज। चहचहे=चहेते। टकटोरी—टकटकी लगाकर देखते हो। [९९०] बैंदी=बिंदी। हाल=तुरंत। बीर=हे सखी।

(९९१)

लै गुलाल मुख माड्यौ पी कौ, देखौ हो साहस या ती कौ ॥
इतने पै गुलचा दै आई, चकित रहे गए कुँवर कन्हाई।
याको और कहत नहिं आवै, याकी गति दामिनि कह पावै।
लियौ दावँ हरि चखनि चौंध भरि, आई भजत हराए लौं छुरि।
मोहति करनि मौन हरि ठाढ़े, रूप-विमोहित जनु लिखि काढ़े।
होरी खेलि रंग इन राख्यौ, बहुत दिनन तें जो अभिलाख्यौ।
आनँदघन रस भिजै रिझायौ, परसि आँच हिय सुखि सिझायौ ॥

(९९२)　　[बिभास, इकताल

गोकुल मैं होरी यह कैसी, अरी दैया देखी सुनी न आजु लौं।
निधरक पकरि पराई नारि कौं अनोखत अपरस करत है निपट अनैसी।
दिन चारिक लौं अपनेई पोहर औरो रहती जौ पै जानती होति हाँ ऐसी।
आनँदघन ब्रजमोहन अति उफनाय चल्यौ अब जानि परैगी जैसी ॥

(९९३)　　[पूरबी, [illegible]

गोरी गोरी तियन की थोरी, थोरी रँग स्याम सलोने सौं खेलैं होरी।
गावैं गारी रस-ढारी प्यारी तारी दै दै फेरैं चित चोरी।
हँसि जोहैं सोहैं उमँगियैं पैंठियैं जाति हियें बरजोरी।
आनँदघन सुरझि सारै मोरी सो मोरी मैं रोरी और जानैं को री ॥

(९९४)　　[बिहागरो, सूलताल

तुम ऐसैं कैसैं खेलौ होरी।
मानस हैं कि ये नाहिं कोउ भाग जाऊँ क्यौं न, अब भई न थोरी।
औरौ बसति लुगाई ब्रज मैं मोहिं लगी कछु चोरी।
नए छैल निपट आनँदघन करत फिरत अति ही बरजोरी ॥

९९१—हो०—होराहोरी (सतना)। करनि०—करनि मनोहर (वृंदा०)।
९९४—कोउ—तुम (सतना)।

[९९१] गुलचा=गाल पर हाथ की मुट्ठी से हलकी चोट करना। हराए०=[illegible] या जादू की भाँति। सिझायौ=रससिक्त हुआ। [९९४] निपटै=निपट, अत्यंत।

(९९५)　　[इकताल

कैसैं डफ द्वार ही द्वार बजावैं, नवेली नागरि गारी गावैं।
मुख-विकास भौंहनि-बिलास जोबन-उजास
नानहि बिहास मोहन के मनहिं घुमावैं।
फाग भाग-अनुराग-भरी सुहाग की ओप बढ़ावैं।
रसमूरति आनँदघन पिय कौं नव नव रँगनि भिजावैं ॥

(९९६)

रसिक छैल नंद को नंदन मैं होरी खेलै।
भरि अनुराग दीठि-पिचकारी अचानक मेलै पलकनि ओकै मेलै।
और कहा गहि कहौं सखी री भाय बिधि करत भावती केलै।
झूमि झूमि रसिया आनँदघन रिझि भिजै रस रेलै ॥

(९९७)　　[सारंग, सूलताल

अटपटे होरी के खिलार, देखै।
बिना जान-पहचान रावरे डोलत फिरत बरहार।
नए छैल गहि गैल रहत नित करत न नेकु बिचार।
आनँदघन कैसैं कै परसैं फाग अति ऊँचौ द्वार ॥

(९९८)　　[बिभास, चौताल

निपट अरसानि सरसानी मैं जउनो मानौ है सुखदानी
साँवरे सौं सब निधि रंगरली।
सची है चाप-चाँचरि भाँति आँखिन मिलि हाथनि नाचति
भावति भाँति भली।
भई है दलनि दलमलनि छल-बलनि सुबस कियौ गिरिधरन बली।
आनँदघन रस-फाग फबी तोहि राधे रँगीली मेरी तू प्रान अली ॥

९९७—बर०—गहार (सतना)। गैल-बाँहैं (वही)। ९९८—भाँति०—मनभावनि (वृंदा०)।

[९९५] ताल०=ढंग से, ठीक ताल पर ताल देकर। [९९६] ओक=अंजली। केलै=केलि।

(९९९) [काफी, इकताल

होरी के दिन चारिक तें तुम भए हो निपट धौताल हो।
द्वै पाँच पाछे सौं आवत पकरि करत अनमाल सौं।
काहू मनौं बैर कितहू को हर दलमलत गुलाल सौं।
नकवानी करि लेत मानसैं निपटै रसिक रसाल हौ।
नैया दौरि दौरि औरन मोही सौं यौं गिदार किहि बाल हौ।
आनँदघन देखे जू देखे नए छैल नँदलाल हौ ॥

(१०००) [मुलतान

रस राच्यौ राधा होरी खेलि।
रंगनि भरयौ खिलार साँवरो हँसि चितवनि-पिचकारी मेलि।
मनमोहन की मदमातनी रची बिधाता सब गुननि सकेलि।
आनँदघन पिय भिजे रिझायौ उमगि अनुरागनि ठेलि ॥

(१००१) [माफ

लाल खिलार ही भए होरी के सौ खेल खेलियैं।
निपट लगि परे आनि परैगी छैल छबीले गावरे ढंग नए।
नकवानी हौ करत अचगरे याही नगर मैं रहत छए।
ब्रजमोहन आनँदघन प्यारे भिजवत खिझवत रिझवत कैसैं हौ भए ॥

(१००२) [परज, तालजानी

ऐसैं खेलियै, जिन जिन सौं खेलि रहे।
चतुर कन्हाइ आवत बातन मैं तुम मानत हौ मैं लहे।
इन भाँतिनि किये बहबहे कै घर ढंग सीखि गाढ़े गहे।
होरी की हौंस पुजायोई चाहत आनँदघन नए छैल चहे ॥

९९९-गिदार-गिरिधर किहि चाल (वही)। १००१-ठौर-मेलि (वही)। रिझवत-खिझवत (वृंदा०)।

[९९९] धौताल=धारसी। मानसैं=मन को। गिदारे=परखे। [१००१] छयाए=छाए। भए=भये, आश्चर्यबोधक अव्यय। [१००२] बहबहे=नटखटपने, आरासैं। हौंस=लालसा। पुजायोई=पूर्ण कर लेना चाहते हो। चहे=ऐसे।

(१००३) [भूलताल

हो छबीले मोहन सौं खेलै हित होरी
राधिका नवेली रस-रंगनि भकोरी हो।
गावत रसीली गारी हिलि मिलि ब्रजनारी
रूप-गुन-फुलवारी फूली चहुँ ओरी हो।
दरस-परस-खेल रंग की उछाह-मैल
जोवन की रेल-ठेल चोपनि सौं बोरी हो।
मोद-घन भर लायौ केलि-सिंधु सरसायौ
प्रेम की तरंग कुलकानि-मैंडु तोरी हो ॥

(१००४) [इकताल

निसि नींद न आवै होरी के खेलन की चोप।
स्याम सलोनो रूप रिझोनो उलह्यो है जोबन-कोप।
मुरली टेर सुनाय जगावै याही नगर मझराय।
हौंहूँ ठानि रही अपने जिय खेलौंगी उघरि बनाय।
कहा करैंगी सास ननदिया यह सबको त्यौहार।
आनँदघन गुलाल घमड़नि मैं करि लैहौं हियहार ॥

(१००५) [सोरठ, मुलतान

मनमोहन छैल खिलार।
होरी-रँग-भरयौ चितै चितै रँगि लेत
रँगीलो रस भिजवै इकसार।
अंग अंग छबि-तरंग उमगि इत मग रोकत सिंगार।
प्रानानि गरै हरैं गहि डारत हँसनि लगौंही-हार।
नैननि सैन जगावत गावत आवत छावत प्यार।
आनँदघन फागुन या गुन गसि लाज भई बपहार ॥

(१००६) [गौरी, इकताल

नंद महर के अचगरे कान्ह होरी करि पाई।
ऐसो लंगर ढीठ बधुनि सौं करत फिरत है बरियाई।

[१००३] मोद-घन=आनंद का बादल, आनंदघन। [१००५] हरैं=धीरे से।

आवौ सखी घेरि गहि कीजै कीजै अपनी मनभाई।
गुलचि बनाय नचाय चुहुटिचन छाँड़ि देहिं करि अधिकाई।
आँखिन आँजि भाल टिकुलो दै निरखौं छबि दृग-सुखदाई।
आनँदघन यह मतौ ठानि दृढ़ करौ न तनक सिथिलताई॥

(१००७) [भूपाली

खेलत होरी स्याम लाल सौं गोरी गोरी गोपबधूटी।
रसिक छैल रिझवारहि रिझवनि रस मैं रूप-गुन-भरी बै-संधि छूटी।
कहा कहौं जोबन की जागनि तनद्युति कोटि दामिनी लूटी।
आनँदघन पिय रचि गुलाल मैं करि राखी सब बीरबधूटी॥

(१००८) [गूजरी, आड़ौ चौताल

सुनि तू मेरी हितू हित की बात।
तेरे हित होरी रची ब्रजमोहन हौं पठई सैन सैननि ही हाहा खात।
उठि चलि बलि राधे रँग राखि लै बरस्यौ सु फागुन कुसरात।
आनँदघन पिय जिय की जीवनि रस पीजै, जीजै,
कीजै सफल गुन गात॥

(१००९) [रामकली, तालकाश

इन बिरहा फाग मचाय दई, आए नए निरदई सुध्यौ न भई।
रंग लियौ सब अंगनि तैं हौं भिजै भिजै यौं मुरझई।
याकी हथचलई कहा कहियै पल-पल हियरा होत दई।
आनँदघन ब्रजमोहन सोहन ऐसैं औसर कैसैं करत गई॥

(१०१०) [मूलताप

होरी को खेल हम ही त्यौं ठान्यौ जान्यौ, लाल तिहारो ढंग जान्यौ।
औरौ बसति बहुत ब्रजसुंदरि याही बगर कहा मन मान्यौ।
निपट निलज के गोहन लागे नयौ नेह कितहू तैं आन्यौ।
खेल किधौं लतिभाव लाड़िलै काहू कौ मान करत हौ हान्यौ।

[१००६] गुलचि=गुलचे लगाकर। बनाय=स्वाँग बनाकर। चुहुटिचन=परेशान करके, सूब गल बनाकर। [१००७] बै-संधि=वयःसंधि, पर्यां युवती। [१००९] करत०=आनाकानी करते हो।

आनँदघन अरुपागा घुमड़े इन बातन हियरा अरसान्यौ।
रंग राखि खेलियै औसर रसिकई सौं चित सान्यौ॥

(१०११) [भैरव, इकताल

होरी के मदमाते आए, लागे हौ मोहन मोहिं सुहाए।
चतुर खिलारनि बस करि पाए, अंग अंग बहु रंग रचाए।
दृग अनुराग-गुलाल भराए, खेलि खेलि सब रैनि जगाए।
ज्यौं जानैं त्यौं पकरि नचाए, सरबस फगुवा दै मुकराए।
आनँदघन रस बरस सिराए, भली करी हमहूँ पर छाए॥

(१०१२) [तालआडा

जहाँ तुम होरी खेलन गए तहाँ नए नए रस-रंग।
आनँदघन ब्रजमोहन प्यारे कहा दुराव करत हौ मोसौं
भीजे अनँग-उमंग उघरि आए ढंग।
सरबस फगुवा दै करि छूटे सरल किये गहि स्याम त्रिभंग।
कौन लाल अकखेलियै तुम सौं छैल छबीले गुननि भरे सब अंग॥

(१०१३) [नायकी तालआड़ा

होरी खेलियै सँभारि, सुनियै हो खिलारि।
कौन खेल यह भिजै भजि जैसो आँखिन मैं गुलालहि डारि।
अति ही ढीठ भयौ कहा बोलौ नेकु धौं काहू की ओर निहारि।
आनँदघन अब कौन अचंगो सबा की सौंह दैहौं गारि।

(१०१४) [सूहो, इकताल

आवौ गावौ रंग बढ़ावौ मोहन स्याम उझारे सौं खेल रचावौ।
निपट नवेली जोबन-गहेली चाँचरि मचावौ
गाहि गुलचावन भाय चलावौ।

१०११—आनँ—अंगै (भरता)। ६०—लै मुरझाए (वही)। १०१५—बिलग—चलग (रतन)।

[१०११] मुकराए=यह स्वीकार कराया कि अब ऐसा काम न करूँगा। [१०१४] गुलचावन=गाल पर मुट्ठी बाँधकर हलका आघात करना। पैज=प्रतिज्ञा।

आगनि बन्यौ फागु को औसर गोकुल के खेलवार कहावौ।
आजु तिहारो पैज यही जू आनँदघन पिय कों
भली भाँतिनि सौं भिजै रिझावौ ॥

(१०१५)

हो हो हो करि चाँचरि माची खेलत गोपी कान्ह धमारि।
हिय की हिलग बिलग बिन सबरी फागुन औसर रहे बिचारि।
खेलत खेल महा मन भाए गावत निपट रसीली गारि।
चहुँघाँ व्रज आनँदघन घमड़्यौ रस भीजे गोकुल-नरनारि ॥

(१०१६) [सोरठ

चलि री चलि राधे गोरी साँवरे सौं खेलै होरी।
तोहि बुलावन काज आवते सैननि हीं बहु भाँति निहोरी।
आईं निकसि सकल व्रजबनिता खेलन कौं चित चाहत थोरी।
रचत न रँग पिय के हिय तो बिन दुरति कहाँ लौं हित की चोरी।
तोसौं हार जीत जिय मानत औरनि सौं जीतेहू सो री।
ये आनँदघन तू छबि-दामिनि, है अति रस-बरसीली ओरी ॥

(१०१७) [सुघराई, मूलताल

नंदलला रे होरी खेलि गए बलिजो है एक ही बास।
अभिको ओटपाय करि बैर कत भूलत
कौन भरोसैं फूलत है तजि त्रास।
बोली बातनि कहा बड़ाई गहत क्यौं न बोलन मिठास।
टोकिस नयौ भयौ बोलत आनँदघन
तिनही सौं पगि लगि जिनसौं पूजी जिय-आस ॥

(१०१८) [बरवा

या गोकुल को लोग बुरौ री बोर क्यौं भरियै।
एक चवाब भरे पहिले ही बहुर्‌यौ फागुन मास।
आई उघरि सबनि के मन की निपट कपटपटी गास।
सपने स्याम न देख्यौ कबहूँ कैसौ रूप सुभाय।

[१०१५] हिलग = प्यार। [१०१७] टोकिस = शरारत।

तासौं मोहिं लगाय लजावत निलजी गारी गाय।
छाँड़ि उपाय चलौं मारग मैं धरौं न डगट पाय।
सकु न रहै अवलोक दिये बिन कहि सजनी कित जाय।
साँचो कहौं बरु झूठहिं मानै सौंह परयाय न कोय।
अब तिनही उस दैहौं आनँदघन होनी होय सु होय ॥

(१०१९) [धनाश्री

हाँ हाँ रे मोरे मीत पिचरवा तुम सन खेलौं होरी रे।
तिहारे काज सुजान सुंदर बर लाज कानि सब तोरी रे।
घरि पल इत उत जान न दैहौं गाढ़ बाँधौं हित डोरी रे।
आनँदघन बरसैहौ निसिदिन यहाँ जोबन जोरी रे ॥
[सजाना की प्रति से]

राग केदारो] (१०२०) [चौताल

देख्यौ देख्यौ हो वृंदावन बिराजैं नीकौ।
सघन स्याम जमुना के तीर प्रिय हारयारो प्यारी जी को।
हरि राधा को नित हितकारी यातें सैं याके सिर टीको।
आनँदघन अभिलाषनि बरसत सुख सब बिधि हूं को ॥

(१०२१) [ठेका

हो नकबानो कीनी इन रँगभीने मोहन।
घाट बाट बन बीथनि माँहियाँ लग्याँई रहत मेरे गोहन।
मेरे ही आय पाय डग छाँवत भौंह दुराय नचावत भौहन।
आनँदघन उनरई दरसत नेह-भारे बारि सोहन ॥

राग सोरठ] (१०२२) [मूलताल

सु तुव हिय-बेली री उलहै नी पिय-हिय-आलबाल मधि जमी।
मन बगाय पल पल तिहि सींचति परम प्रेमरस अमी।
फूले चारु मकरंद लाड़ अनुराग पराग सुगंध रमी।
आनँदघन पिय सौं मिलन-फल की अब राखति है क्यौं कमी ॥

[१०१८] कबंद = कमाना।

राग बिलावल] (१०२३) [इकताल

अपने गुन आपहि आप हरी ।
जमुना तेरी कृपा कहा कहौं जो मन-नैन भरी ।
राधारवन - रसासव - धारा रसना ह्वै लँचरी ।
लाग्यौ रहत मोद - कादंबनि नव नव रंग - झरी ॥

राग सुघराई] (१०२४) [चौताल

हिलि मिलि खेलैं गोपकुमारी सावन तीज तिनमैं श्रीराधा मुकुटमनि ।
अंग अंग अंजन मंजन महदी रँगीले बसन भूषन बनि ।
रँगीले हिंडोरें चढ़ि चाइन सौं गावत मंजुल गीत सुकंठनि ।
अंग संग सुख लेत रसिक आनँदघन स्याम सखी बनि ॥

राग केदारौ] (१०२५)

नंद के नंद ब्रजचंद श्रीगोबिंद सावन मनभावन मैं
झूलैं झूलना तैसी है हरियारी ।
अति कारी चहुँ ओर घटा तैसिय पिय-प्यारी-उर फूल फूलना ।
सहचरी झुलावैं भरी आनँद उर प्रेम भरी नील-पीत चंचल दुकूलना ।
मधुर मधुर धुनि गाय काम को गर्व नसावैं सुंदर मुख
सोभा पावैं भरे तमूलना ।
तैसेई चहुँ ओर कूकैं मोर घन घोर सुनि निसि-भोर जानियै
न सुखै अतुल सूलना ।
तैसेइ श्रीबृंदाबन तैसे दोऊ आनँदघन तैसेई हरि
राधा सुखद जमुना-कूलना ॥

राग आसावरी, भैरवी] (१०२६)

नंदसदन जनम्यौ मोहन सुत आनँद मेघ फूल्यौ हो ।
मंगलमनि कुलकलस जगमग्यौ जनम-जनम-दुख भूल्यौ हो ।
जसुमति-कूखि कलपतरुवर अति अद्भुत-फल फूल्यौ हो ।
पुन्यपुंज को सार साँवरो यह ब्रज अति अनुकूल्यौ हो ।

[१०२३] मोद०=आनंदघन ; आनंदमेघ । [१०२५] तमूलना = तांबूल ।

क्यौं कहि सकै भाग की महिमा नाहिन कोउ समतूल्यौ हो ।
आनँदघन चिरजीवौ महरि को जीवन-प्रान जरूल्यौ हो ॥

राग मलार] (१०२७) [चौताल

गज चाल चलत जोबन-मदमाती पचरँग चूनँरी पहिरैं ग्वालि ।
गौर भुजनि भुज हुरनि भाय सौं उर सरकत मोतियन की मालि ।
लंक चलनि सो नचनि नैन की गोरी पीठि पर बेनी हालि ।
मुसकि चितै आनँदघन पिय कौं करि जु गई छिन मैं बेहालि ॥

राग कमाइची, बिलावल] (१०२८) [मूलताल

स्यामसुंदर ब्रजमोहन पिय सौं नैना मेरे लागे री ।
बिन देखें नहिं चैन सखी री निसिदिन इकटक जागे री ।
लोकलाज कुलकानि बिसारी इनहीं सौं अनुरागे री ।
आनँदघन हित मानसपीहा कुहुकि कुहुकि पन पागे री ॥

राग रामकली] (१०२९) [सूलताल

आज तेरी चहेड़ी चाखौंगी चाखौंगी रस राखौंगी ।
बहुत दिनन को दान डुरायौ लैहौं गहि गनि एकौ झूठ न भाखौंगी ।
ब्रजमोहन दानी सब जानत साँचो मौहनि अभिलाखौंगी ॥

[वृंदावन की प्रति से]

सोरठा] (१०३०)

लाल तुम कहाँ तें आए जागे ।
अंजन अधरन भाल महावर चरन धरत डगमगे ।
अलसी अँखियाँ नैन घुमावत बोलत बोल न सगे ।
आनँदघन पिय उहाँई जाउ तुम जहाँ तुम्हारे सगे ॥

पूर्वांग] (१०३१)

स्याम सुजान के बिन देखें अटपटाय कहुँ ना लागै मन ।
नेकहुँ कै न्यारे भएँ नीर भरि आवैं मेरे नैननि लागे हूँ री पन ।
कहा करौं मन परबस परि गयौ इनहिं न सुख छिन छिन छीजत तन ।
आनँदघन पिय सौं कहा कहियै उसकी हाँसी और को मरन ॥

[१०२६] जरूल्यौ=(जटिल) लहरीवाले, गभुआरे केशवाले ।
[१०३०] बोलत० = बोलते समय ठीक ठीक बोल नहीं निकलते ।

होरी]　　(१०३२)　　[काफ़ी

सोसौं होरी खेलन आयौ ।
लटपटी पाग अटपटे पेचन नैनन बीच सुहायौ ।
डगर डगर मैं, नगर नगर मैं सबहिन के मन भायौ ।
आनँदघन प्रभु कर दृग मीड़त हँसि हँसि कंठ लगायौ ॥

(१०३३)　　[सारंग

सो आँके डफ बाजे हैं री, नंदनंदन रसिया के ।
अब कौ होरी धूम मचैगी, गलिन गलिन अरु नाके नाके ।
कोउ काहू की कानि न मानत, ख्याल फिरैं मद छाके छाके ।
आनँदघन सौं उमगि मिलौंगी, अब न बनै रहू ढाँके ढाँके ॥

(१०३४)

प्यारे जिन मेरी बहियाँ गहौ ।
मारग मैं सब लोग लखत हैं दूरहि क्यौं न रहौ ।
मन मैं तुम्हारे कौन बात है मोहि क्यौं न कहौ ।
कहिहौं जाय आजु जसुमति सौं नाहक मग न गहौ ।
आनँदघन तऊ नहिं मानत लरिका हौ निबहौ ॥

(१०३५)

भाजि न जाय आजु यह मोहन सब मिलि घेरौ री ।
अंजन आँजि मींडि मुख मरवट फिरि मुख हेरौ री ।
गारी गाय गवाय लाल कौ करि इत्यौ चेरौ री ।
आनँदघन बदला जिन चूकौ, भँडुवा टेरौ री ॥

['रसखान और घनानंद' से]

पूर्वराग]　　(१०३६)　　[भैरव तिताला

सोवत नगर मैं चोल्यौ को है बगर मैं ।
इक डर है मोहिं सासु ननद कौ आलियाँ गलियाँ डगर मैं ।
प्रात-समै उठे नदनँदनजू बिरहा भीजत भर मैं ।
आनँदघन अब उठहिं अबेरे सासु ननद के डर मैं ॥

[१०३३] नाका = मुहाना, जहाँ से गली मुड़ती है । [१०३५] मरवट = मुँह पर रेखाएँ बनाना ।

(१०३७)　　[टोड़ी, इकताला

न जानूँ कौन भाँति मिलौगे बिहारी सँवर की सी रीत ।
जित सुगंध पावत तित धावत हौ तुम गरजी पते के मीत ।
आनँदघन ब्रजमोहन प्यारे ठौर ठौर के रस चाखत हौ कैसैं करैं प्रतीत ॥

भाव-विनय]　　(१०३८)

करो सिव ! महर की नजर निसिदिन पगा पटो पल-छिनन ।
कासीनाथ बिसेस्वर दाता, तुम सब जग के बिधाता, तुम ही
देवौ दूध पून लच्छमी आनँदघन ॥

पूर्वराग]　　(१०३९)　　[बिहाग, चौताल

ए नैना मोहि बरजौ तू नहिं मानत मेरी सीख ।
बरजि रही, बरजौ नहि मानत घर घर माँगत रूप-भीख ।
चित चाहत है प्यारे के संग को अब कैसैं भलनौ होय ईख ।
आनँदघन प्रभु मोहन प्यारे टारे न टरत कहीं करम-रेख ॥

(१०४०)　　[तिताला

प्रीति करी सो मैं जानी रे मोहन ।
दै बिस्वास गयौ तजि मधुरा रति कुबजा सौं मानी रे ।
कपट-भरी कारो तन तेरो कपट-भरी मन बानी रे ।
आनँदघन हित चित री भावौ जानत राधा रानी रे ॥

(१०४१)　　[झिंझोटी

स्याम नैनाँ दी चोट वो, आखो मैंडे वो ।
जब ते कृपा करी नँदनंदन मिट गई कर्म की खोट वो ।
लख चौरासी भटकत भटकत स्याममगन पाई ओट वो ।
आनँदघन घनस्याम मोहिं मिल रह्यु मन मैं रहो कहूँ टोड़ वो ॥

(१०४२)　　[जंगला, तिताला

तेरे नैनाँ ने जुलम किया वे, स्याम तेरे ।
भौंहैं कमान बान कटाछन बेधा गरीबाँ दा हिया वे ।
रहंद मस्त महा मतवारे खंजन मध अंग पिया वे ।
आनँदघन ब्रजमोहन जानी मन मोह असाडा लिया वे ॥

[१०३८] महर = कृपा । [१०४१] मैंडे = मेरे, मुझे । खोट = खोटापन । खोड़ = मारग । खोट = कमी । [१०४२] खंजन० = खंजनों ने शराब पी है । असाडा = हमारा ।

चेतावनी] (१०४३) [कलिंगड़ो

बिलम न करियै हरि के भजन कौ।
करत पलक मैं और और तैं नाहिं भरोसो तन कौ।
पायि बन्यौ है अवसर नीकौ करि लै मनोरथ मन कौ।
बार बार सुमिरै गुन-पूरन सुचि जस आनँदघन कौ॥

['राग-कल्पद्रुम' से]

वृंदावन-महिमा] (१०४४)

वृंदावन आनंदघन, कछु छबि बरनि न जाय।
कृस्न-ललित-लीला-करन, धारि रह्यौ जकतोय॥

['राग-रत्नाकर' से]

(१०४५) [पंजाबी ख्याल, इकताला

नैनन देखिबे की बानि।
बरजि रह्यौ बरज्यौ नहिं मानैं छूटि गई कुल-कानि।
आनँदघन ब्रजमोहन जानौ अतर की पहचानि॥

(१०४६) [कामोद

मेरो अब कैसे निकसन हो दैया, होरी खेलै कन्हैया।
या मारग ह्वै कै हौं निकसी, मेरी छीनि लियौ दहिया दैया।
सासरै जाऊँ तो सास रिसैहै, पीहर जाऊँ खिजै भैया।
इत डर उत डर भूलि गिरी, संग मोहन नाचैगौ ताथैया।
ब्रजमोहन पिय सौंह तिहारी, भीजि गई मेरी पैंजरिया।
आनँदघन कैसें कै भीजैं ओढ़ि रहे कारी कामरिया॥

['ब्रजनिधि-ग्रंथावली' से]

(१०४७) [खंभाती

होरी खेलौंगी स्याम-संग जाय हो सजनी भागनि तैं फागुन आयौ।
वो भिजवै मेरा सुरँग चुनरिया मैं भीजवौं वाकी पाग।
चोवा चंदन और अरगजा रंग की परत फुहाग।
लाज निगोड़ी रहै चाहे जावै मेरो हियरा भरो अनुराग।
आनँदघन खेलौं सुघर बालम सौं मेरो रहियौ है भाग-सुहाग॥

[१०४४] जकतोय=जकड़ा। [१०४६] पीहर=मायका। पैंजरिया=बिछियाँ। [१०४७] वो० = वह भिजवाएगा। पाग = पगड़ी। सुघर = चतुर।

(१०४८) [रामकली

होरी के दिनन मैं तू जो नवेली मति निकसै बाहर घर तें री।
तू जो नई दुलही नव जोबन, रहि घर बैठि मानि सिख मेरी।
डगर-बगर औ घाट-बाट मैं कान्ह करत नित फेरा तेरी।
जा दिन तोहि लखै घनआनँद ता दिन होय कौन गति ए री॥

(१०४९) [सोरठ

लागी रट राधा नाम।
नवल निकुंज-पुंज बन हेरत नंद-ढुटौना स्याम।
कबहूँ मोहन खोरि साँकरी टेरत बोलत बाम।
आनँदघन बरसौ मन-भावन धन बरसानो गाम॥

(१०५०) [धनाश्री

ए रे निरमोहिया जानी तोरी प्रीत।
जब लागी मन किनहुँ न जानी अब कछु औरै रीत।
परचत हैं मग लोग बटाऊ और कुटुम सब कुल की रीत।
निसिदिन ध्यावत वा मूरत कौं आनँदघन सो मीत॥

(१०५१) [मलार

गरजि गगन छाई री, माई गरजि गगन छाई।
घटा उमड़ि घुमड़ि झूमि झूमि भूमि पर आई।
दादुर मोर करत सोर, गनत नाहिं साँझ भोर, झींगुर-झिंगार सुहाई।
रैंनि अँधियारी लगत डरारी भारी, पिय बिन जिय अति अकुलाई।
आनँदघन लखि घनस्याम रूप नैनन रह्यौ है समाई॥

(१०५२) [भैरव

सब मिलि आवौ गावौ, बजावौ मृदंग,
आजु हमारे लाल जू की बरस-गाँठ।
कनक थार भरि भरि मुक्ताफल लै न्यौछावर करवावौ।
नव नव बालक बंदन-माला द्वार द्वार बँधवावौ।
आनँदघन प्रभु कौ जनम सुनत ही लाग्यौ सुजस सुहावौ॥

बालम=पति। [१०४९] ढुटौना = पुत्र। खोरि = गली। [१०५०] परचत० = बदनामी करते हैं। बटाऊ = पथिक।

(१०५३) [मालव

ए री हौं तौ चहूँगी री ।
अपने प्रीतम को अति सुख दूँगी कर जोरे पाय गहूँगी ।
मात नगर की कानि न मानूँ देखर-गारि सहूँगी ।
आनँदघन ब्रजजीवन प्यारे चरनन लिपटि रहूँगी ॥

['घन-आनंद' से]

बिहागरी] (१०५४) [कान्हरा

तेरे नाम लगी सौं जिद निमानी ।
कित चल कूँरी कोई नहिं सुनत साँको दरद - कहानी ।
जो गुन वैसी तोसौं जीवौं मान न कर ये गुमानी ।
आनँदघन है तू तरसाकी बाँरी रागी सों रिसजानी ॥

देर] (१०५५) [ललित

तुमकौं देखत हौं कहाँ स ।
श्रीवृंदावन - ओर जात हैं रूप - रासि को खौंन ।
देखन के लागि देखन लागी देखन लागि देखौन ।
आनँदघन रसमस पपैया ज्यौं जल बिन मुरझौन ॥

लगन] (१०५६)

लागि रह्यो मन साभाजब सों, और कहूँ कछु और ऊपर सों ।
बिन रसियाँ अँखियाँ आगे मेरी ठाढ़े रहैं कछु रूप सुघर सों ।
आनँदघन प्रभु लागे नेहा प्रेम रँगीली मैं गिरधर सों ॥

(१०५७) [मालव

आइये आइये लालन, अंग संग रंग के तरंग
सुपनें री जब सब निसा जगाई ।
सब ही कौं मनमथ, सब तिय जानत नीके कै रस-बस
आनँदघन सोहिन गाजनी आई ॥

—['ब्रजमाधुरी' से]

———

[१०५३] गहूँगी=पकड़ूँगी । [१०५४] नाम=लिए, वाली । जिद=जिद्दी । निमानी=अमानी । कत=ओर । साँई=हमारी । बैरौं=देखूँ । [१०५६] पपैया=पपीहा । [१०६०] ऊपर०=ऊपर से । [१०६१] गाजनी=गर्जन, हर्ष ।

प्रकीर्णक

कवित्त

लाजनि लपेटी चितवनि भेद-भाय-भरी,
लसति ललित लोल - चख - तिरछानि मैं ।
छवि को सदन गोरो बदन, रुचिर भाल,
रस निचुरत मीठी मृदु मुसक्यानि मैं ।
दसन-दमक फैलि हिये मोती - माल होति,
पिय सौं लड़कि प्रेम - पगी बतरानि मैं ।
आनँद की निधि जगमगति छबीली बाल,
अंगनि अनंग-रंग दुरि मुरि जानि मैं ॥ १ ॥

सवैया

झलकै अति सुंदर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छ्वै ।
हँसि बोलनि मैं छबि-फूलन की बरषा, उर-ऊपर जाति है ह्वै ।
लट लोल कपोल कलोल करैं, कल कंठ बनी जलजावलि द्वै ।
अंग अंग तरंग उठै दुति की, परिहै मनौं रूप अबै धर च्वै ॥ २ ॥

कवित्त

छवि को सदन, मोद - मंडित बदन - चंद,
तृषित चखनि लाल ! कब धौं दिखायहौ ।
चटकीलो भेष करैं, मटकीली भाँति सौं ही,
मुरली अधर धरैं लटकत आयहौ ।
लोचन ढुराय, कछू मृदु मुसक्याय, नेह-
भीनी बतियानि लड़काय बतरायहौ ।
बिरह-जरत जिय जानि, आनि प्रानप्यारे,
कृपानिधि ! आनँद को घन बरसायहौ ॥ ३ ॥

[१] भाय=भाव । लड़कि=लटक या ललक के साथ । छबि=सखशा । [२] जलजावलि०=दो लर की मोतियों की माला । [३] ढुराय=मटकाते हुए । लड़काय=ललककर ।

वहै मुसक्यानि, वहै मृदु बतरानि, वहै
लड़कीली बानि आनि उर मैं अरति है।
वहै गति लैन औ बजावनि ललित बैन,
वहै हँसि दैन हियरा तैं न टरति है।
वहै चतुराई सौं चिताई चाहिबे की छबि,
वहै छैलताई न छिनक बिसरति है।
आनँदनिधान प्रानप्रीतम सुजान जू की,
सुधि सब भाँतिन सौं बेसुधि करति है॥ ४॥

जासौं प्रीति ताहि निठुराई सौं निपट नेह,
कैसें करि जिय की जरनि सो जताइयै।
महा निरदई दई कैसें कै जिवाऊँ जीव,
बेदन की बढ़वारि कहाँ लौं दुराइयै।
दुख को बखान करिबे कौं रसना कैं होति,
ऐपै कहूँ वाको मुख देखन न पाइयै।
रैन-दिन चैन को न लेस कहूँ पैयै, भाग
आपने ही ऐसे, दोष काहि कौं लगाइयै॥ ५॥

भए अति निठुर, मिटाय पहचानि डारी,
याही दुख हमैं जक लागी हाय हाय है।
तुम तौ निपट निरदई, गई भूलि सुधि,
हमैं सूल-सेलनि सो क्यौं हूँ न भुलाय है।
मीठे मीठे बोल बोलि, ठगी पहिलें तौ तब,
अब जिय जारत कहौ धौं कौन न्याय है।
सुनी है कै नाहीं यह प्रकट कहावति जू,
काहू कलपायहै सु कैसें कल पायहै॥ ६॥

[४] लड़कीली=ललकवाली। बैन=बेणु, बाँसुरी। चिताई=चैतन्य की हुई। [५] बढ़वारि=बढ़ती। कैं=क्या। ऐपै=इतने पर भी, फिर। [६] सूल०=वेदना की हूक। कलपायहै=सतावेगा। कल=चैन।

नंद को नवेलो अलबेलो छैल रंग-भर्यौ,
काल्हि मेरे द्वार ह्वै कै गावत इतै गयौ।
बड़े चौंके नैन महा सोभा के सुऐन आली,
मृदु मुसक्याय मुरि मो तन चितै गयौ।
तब तें न मेरे चित चैन कहूँ रंचकौ है,
धीरज न धरै सो, न जानौं धौं कितै गयौ।
नेकु ही मैं मेरो कछु मो पै न रहन पायौ,
औचक ही आय भटू लूट सो बितै गयौ॥ ७॥

जाके उर बसी रसमसी छबि साँवरे की,
ताहि और बात नीकी कैसें करि लागिहै।
चाखनि चषक द्युति पियौ जिन रूप-रस,
कैसें सो गरल-सनी सीखनि सौं पागिहै।
आनँद को घन स्यामसुंदर सजल आगें
छाँड़ि, धूम-धूँधरि सौं कैसें कोऊ रागिहै।
ये तौ नैन वाही को बदन हेरें सीरे होत,
और बात आली अब लागति ज्यौं आगि है॥ ८॥

हिलग अनोखी क्यौं हूँ धीर न धरत मन,
पीर-पूरे हिय मैं धरक जागियै रहै।
मिलें हूँ मिले को सुख पाय न पलक एकौ,
निपट बिकल अकुलानि लागियै रहै।
मरति मरूरनि बिसूरनि उदेग-बाढ़ि,
चित चटपटी भाँति चिंता पागियै रहै।
ज्यौं ज्यौं बहरैये सुधि जी मैं ठहरैये,
त्यौं त्यौं उर अनुरागी दुख-दाह दागियै रहै॥ ९॥

सवैया

रन-झिना घुटिबो करैं प्रान, भरैं अँखियाँ दुखिया झरना सी।
प्रीतम की सुधि अंतर मैं कसकै सखि ज्यौं पँसुरीनि मैं गाँसी।

[७] ऐन=घर। लूट०=लूट सी करके। [८] रसमसी=रसीली। चषक=प्याला। धूम०=धुएँ का पुंज। [९] हिलग=लगन। मरूर=पीड़ा।

चौचँद-चार चवाइन कै चहुँ ओर मचैं बिरचैं करि हाँसी।
यौं मरियै भरियै कहि क्यौं सु परी जिन कोऊ सनेह की फाँसी ॥१०॥

आलि! जौ बिधिना ब्रजवास न देतौ न नेह को गेह हियौ करतौ।
अरु रूप-ठगी अँखियाँ रचतौ नहिँ ज्यौं इन्हैं दीठि सौं लै भरतौ।
कहि तौ लखि नंद को छैल छबीलो सु क्यौं कोऊ प्रेम-फँदा परतौ।
दुख को लौं महौं घुटि कैसैं रहौं भयौ भाकसी देखैं बिना घर तौ ॥११॥

कवित्त

छबि सौं छबीलो छैल आजु भोर याही गैल,
अति ही रँगीलो भाँति औचक ही आय गौ।
चटक मटक भरी अटकि चलनि नीकी,
मृदु मुसक्यानि देखैं मो मन बिकाय गौ।
प्रेम सौं लपेटी कोऊ निरखि अनूठी तान,
मो तन चिताय नाग लोचन डुराय गौ।
तब तें रही हौं घूमि झूमि जकि बावरी ह्वै,
सुर की तरंगनि मैं रंग बरसाय गौ ॥ १२ ॥

छवि की निकाई यहौ मोहन कन्हाई, कछू
बरनी न जाइ जो लुनाई दरसति है।
बारिधि-तरंग जैसे धुनि-राग-रंग जैसे,
प्रतिछिन अधिक उमंग सरसति है।
किधौं इन नैननि मरालौ प्रानप्यारे, रूप-
रेलहिँ सकेलैँ दृग दौरि तरसति हैं।
ज्यौं ज्यौं उत आनन पै आनँद सु ओप औरै,
त्यौं त्यौं इत चाहनि मैं चाह बरसति है ॥ १३ ॥

सुंदर सरस लोनो लोलित रँगीलो मुख,
जोबन-झलक क्यौं हूँ कही न परति है।

[१०] गाँसी = फाँस। चौचँद० = बदनामी की चर्चा। [११] भाकसी = (भस्त्रा = भाथी) भट्ठी। [१२] डुराय गौ = मटका गया। घूमि० = मतवाली हो गई हूँ। रेल = प्रवाह, अधिकता। चाहनि० = देखने से लालसा की वृद्धि होती है।

लोचन चपल चितवनि चाव-चोज भरी,
भृकुटी सुठौन भेद-भावनि हरति है।
नासिका रुचिर अधरनि लाली सहजै ही,
हँसनि दसन-जोति हियरा हरति है।
नख-सिख आनँद उमंग की तरंग बढ़ि
अंग अंग आली छबि झलक्यौ करति है ॥ १४ ॥

ऐसे है नवेली अलबेली ओप अंग अंग,
झलकै अनंग-रंग ऐंड़न चलत है।
सहज छबीले मुसक्यानि मैं रसो सो बोरी,
अधर-तरंगनि सुधा सी उमगत है।
छके छुवैं कान वारौं कोटि तीखे बान, ऐसे
नैननि बिहँसि हेरि मैननि हनत है।
कारी घुँघरारी अलकनि के छलानि, छैल
तानन लुभाय फिरि प्रानन छलत है ॥ १५ ॥

रूप-गरबीलो अरबीलो नंद-लाड़िलो सु
डग-मग उरझ्यौ फिरत आली उर मैं।
काननि ह्वै प्राननि निकासि लेत परो बीर!
पैठि कछु गावन मधुर बंसी-सुर मैं।
डोरियै ढरैरनि निदरि लाज बेलिन कौं,
पौरि पौरि याही रौरि माची ब्रज-पुर मैं।
कैसे करि जीजै, धसि कीजै कहा महा सोच,
चारचौ ओर चलत चवाव लघु-गुर मैं ॥ १६ ॥

तेरे हित हेली! अनुराग-बाग-बेली करि,
मुरली-गरज भूमि झूमि सरसत है।
भीने अंग रंग जानि चंचला छटा सौं पट
पीत कौं उमगि लौं लैं हियैं परसत है।

[१४] सुठौन = सुंदर। [१५] ओप = दीप्ति। उमगत० = उछलता है। मैन० = कामों को पराजित करता है। छला = केशों के छल्ले। [१६] धसि० = धँसे जा रहे हैं। डोरियै = साथ लगाना। रौरि = शोर।

भादौं के समीर की झकोरनि अधीर ह्वै कै,
उमड़ि घुमड़ि याही ओर दरसत है।
लोचन सजल क्यौं हू थमैं न एकौ पल,
ऐसैं नेह-नीर घनस्याम बरसत है॥१७॥

आई आन गाँव तैं नवेली पास पायसैं सु,
गुरु-जन-लाज के समाजनि मैं आवरी।
आनँद-सरूप अलि साँवरो लख्यौ ना कहूँ,
दीठि के मिलत चढ़ि पर्‌यौ चित बावरी।
रीझि-परबस पर बस न चलत कछू,
ऐसैं ही मैं होरी को रँगीलो बन्यौ दाव री।
दिन ही मैं तिन-सम कानि के कपाट तोरि,
घूँघरि अबीर की कौं मानत बिभावरी॥१८॥

गोरी बाल थोरी बैस, लाल पै गुलाल-मूठि
तानि कै चपल चली आनँद-उठान सौं।
बायँ पानि घूँघट की गहनि चहनि-ओट
चोटनि करनि अति तीखे नैन-बान सौं।
कोटि दामिनीनि के दलनि दलमलि, पाय
दाय जीति आय झुक मिली है सखान सौं।
मीड़िबे के लेखैं कर मीड़िबोई हाथ लग्यौ,
सो न लगी हाथ रह्यौ सकुचि सखान सौं॥१९॥

भावती सहेट अंक भरि भेंटि संक मेटि,
रंक थाती छाती धरि रहे आप आप कौं।
निपट अनूठी दसा, हेरत हिरानी बीर!
बानियौं सिरानी, क्यौं बखानियै मिलाप कौं।
आगैं कहा बीती, भई तन हौं सुरति-रीती,
जैसैं सर छूटि न मिलत फिरि चाप कौं।

[१७] हेली = हे सखी। घनस्याम = श्रीकृष्ण; बादल। [१८] पास = निकट, पड़ोस। पायसैं = जेवनार में। आवरी = व्यग्र। बिभावरी = रात्रि। [१९] चहनि = देखना।

सोभा-रस-चाखैं अभिलाखैं दुखैं आँखैं,
घनआनँद उझकि ओही झुकी भूली आप कौं॥२०॥

अलप अनूप लटपटी सु लपेटी रूप,
अलग लगी सी माथैं कैसी सूध-बाँक है।
कोटिक निकाई सुघराई की अवधि सोभी,
कैसे कै रच्यो है जामैं बिधि-बुधि थाँक है।
डीठि नीठि आवै कोऊ कहि क्यौं बतावै, जहाँ
बात हू के बोझ हिय होत नसि साँक है।
चाकि चित चोरै मुरि मनहिं मरोरै मुठि,
सुभग सुदेस अलबेली तेरी लाँक है॥२१॥

लाली अधरान की रुचिर मुसक्यान-सनी,
सब मुख भोर ही सिंदूरा की सी फाल है।
जोबन गरूर गरुवाई सौं भरे, बिसाल
लोचन रसाल चितवनि बंक छैल है।
सुंदर-सलोने लोने अंगनि की दुति आगैं
मन मुरझानो मंद मैन को सो मैल है।
दुई हाथ अंसनि तैं पीरो पट ओढ़े लखि,
ठाढ़ो सिंह-पौरि दौरि परि थाकी गैल है॥२२॥

मंजु मोरचंद्रिका-सहित सीस साँवरे के,
फैली आभा फबी छबि पाग पँचरंग की।
दारिम-कुसुम के बरन भीने जामा मधि,
दीपति दिपति सु ललित लोने अंग की।
मंजन करत तहाँ मन मनिलाल के,
निहारि मोती-माल हिं बिचारि धारा गंग की।

[२०] सहेट = संकेतस्थल। सिरानी = बंद हो गई। सुरति॰ = सुधहीन। [२१] लटपटी = टेढ़ी-मेढ़ी। सूध = सीधा। बाँक = वक्रता। साँक = सशंक। लाँक = कमर। [२२] सिंदूरा = उषा की रक्तिमा। मैन = कामदेव; मोम।

आनँदनि भरो खरो मुरली बजावै मीठी
धुनि उपजावैं राग-रागिनी-तरंग को ॥ २३ ॥

सवैया

नैन किये नरजो निरनैन रती-रतन कंचन-रूपहिं तोलौं।
बारह बानि बनी ठनी षोड़स स्यामा के प्रेम छकी नित डोलौं।
जोबन-दानी के छत्र की छाँह करौं सुख-बारिधि माहिं कलोलौं।
थाहु न काहू की, लाड़-लड़ी हम गोरी गहर भरी नहिं बोलौं ॥ २४ ॥
['घनआनंद-कवित्त' से]

कवित्त

लाज अभिलाषन की चिता सुलकधनन,
सुधि करि दीन को उदेग दसा दाहियौ।
लाप के प्रलाप उनमाद के संताप व्याधि,
पापिन की आप नेकु चेति सुधि लहियौ।
जड़ता कही न जात क्यौं तौ अति अकुलात,
सैनन कही है बात मेरी ओर चहियौ।
जानौ दिलजान सौं जु मानौ वा सुजान सौं,
निसानी दै कै प्रान सौं निदान प्रान कहियौ ॥ २५ ॥

सवैया

भाउ हौं तें तन हेरि हँसे तिरछे करि नैनन नेह के चाउ मैं।
हाय दई सु बिसारि दई सुधि कैसी करौं सु कहौ कित जाउं मैं।
मीत सुजान अनीति कहा यह ऐसी न चाहियै प्रीति के भाउ मैं।
मोहनी मूरति देखिबे कौं तरसावत हौ बसि एकहिं गाउं मैं ॥२६॥

[२३] नीमा=भीतर पहनने की कुरती। मंजन=स्नान। [२४] नरजी=तौल करनेवाला। रती=रति (प्रेम); रत्ती। बारह=बारह बानी सोना, कुंदन; बारह आभूषण। षोड़स=सोलह शृंगार। जोबन०=राधा। थाहु=थाह सी, कहीं पैठना या पाना। [२५] लाप=संलाप, बातचीत। निसानी=पहिचानकर का चिह्न। [२६] भाउ=भाव, सूरत।

दृग फेरियै ना अनबोलियै सो सर से ही लगे हित जीजियै जू।
रसनायक दायक हौ रस के सुखदाई ह्वै दुःख न दीजियै जू।
घनआनंद प्यारे सुजान सुनौ बिनती मन मानि कै लीजियै जू।
बसि कै इक गाँव मैं एहो दई चित ऐसो कठोर न कीजियै जू ॥२७॥
['शृंगार संग्रह' से]

तब तौ छुरि दूरहिं तैं मुसक्यात बचाय कै और की दीठि हँसे।
दरसाय मनोज की मूरति ऐसी रचाय कै नैनन मैं सरसे।
अब तौ उर माहिं बसाय कै मारत ए जू बिसासी कहाँ धौं बसे।
कछु नेह-निबाह न जानत हे तौ सनेह की धार मैं काहे धँसे ॥२८॥
['सुजान-शतक' से]

कवित्त

बिरह बिसूरे पीर-पूरे मन सदन के,
राति-द्यौस भयौ जिन्हैं पलकौ कलप को।
औधि-आस ओसनि सहारैं हाय कैसैं करि,
जिनको दुसह दीसै पारिबो पलन को।
या बिधि बियोग ब्रज बावरो भयौ है सब,
बाढ़त उदेग महा अंतर-दहन को।
आनँदपयोद के पपीहनि पै छायौ अब,
ग्रीषम दुसह घाम स्याम के चलन को ॥२९॥
['मिश्रबंधु-विनोद' से]

मरम भिदैं न जौ लौं मरम न पावै तौ लौं,
मरमहिं भेदै कैसैं सुरति अँधोइबो।
राग ही तैं राग के सरूप सौं चिन्हारि होति,
नैनहीन कानन्नि अबूझ टकटोइबो।
अकथ कथा है क्यौंऽव गहियै अथाह ताल,
ज्यौं रिसौ बृथा है बादि औसरहिं खोइबो।

[२७] रस=आनंद। [२८] हे=थे। [२९] कल=चैन। पारिबो=बिताना।

प्रेम-आगि जागैं लागैं मर घनआनँद को,
रोइबो न आवै तौ पै गाइबो हू रोइबो ॥ ३० ॥
गोपिन की ससक कसक जौ न आई मन,
रसिक कहाए कहा रस कछू औरई।
समझि समझि बातैं छोलिबा न काम आवै,
छावै घनआनँद सु जौ लौं नेह-बौरई।
कान्ह ब्रजमोहन सौं जौ मन-परनि परी,
ताहि अवगाहत ही थकै मति गौरई।
मिलि बिछुरे को दुख बिछुरे मिले को सुख,
तिनहीं मैं व्यापी ठौर ठौर भरि रौरई ॥ ३१ ॥
करुना की रासि महा सोहै मृदु हासि,
घनआनँद की सिधि निधि मूरति सुजान की।
रूप-चतुराई सुभ सील औ गुराई ऐसी,
भई है न ह्वैहै काहू पै धौं कौं समान की।
अति ही उदारता की सीवाँ, कर आनि जानि,
गही एक टेक रावरेई गुनगान की।
काहू सौं न कछू कहौं अपनी ही सोचि रहौं,
मोहिं आस रैयै क्यौं लड़ैती वृषभान की ॥ ३२ ॥
अगम अगाध अद्भुत औरै और अति,
मति-गति थकित, न होत क्यौं हू आवरे।
सिव बिधि सक्र सनकादिक सहसमुख,
मदत मदत भेदौ भेद भए बावरे।
आनँद के अंकुर रसाल महा पोषक हौ,
सब ही के हिये मैं सहाय देत चाव रे।

[३०] मरम=मर्मस्थल। मरम=तत्त्व। पँवोइबो = मैला करना, बिगाड़ना। राग=अनुराग। राग=गीत का राग। नैन=मानस-नेत्र। क्यौं अवगाहियै= कैसे थहाया जाय। स्यौरिबो=विवेचन करना। [३१] ससक=सिसक। बौरई= बावलापन। रौरई=कोलाहल। [३३] न होत०=शिव आदि (मति के थकित

सुनत गुनत अभिलाखत बरषि बानी,
गावत गनत न बनत गुन रावरे ॥ ३३ ॥
सुनि सुनि रावरे गुननि बावरे हैं कान,
लोचन उतावरे ह्वै लोचैं हाय कैसे हौ।
साधनि मरत प्रान आसा लागि जीवत हैं,
बारनैं निहारे कहा रंक, प्यारे जैसे हौ।
दीजियै दिखाई ब्रजमोहन छबीले कहूँ,
परी घर घेरि तुम निधरक ऐसे हौ।
आप घनआनँद रसीले रहौ दिनरैन,
तरसौं न दैया देखे उघरि अनैसे हौ ॥ ३४ ॥
जहाँ राधा-मोहन की केलि को कुलाहल हौ
माच्यौई रहत बन बेलिन सरस है।
सुंदर सरोवरनि घाट पनघट भेंट,
नैन-सैन - दैन-चैन चाहतो परस है।
मानक सुठौन सहजैं ही देखैं धनि आवै,
आनद को अंकुर मनोरथ-बरस है।
दीठि चातकी ह्वै जौ लगैं तौ सौंहैं आँखिन कौ,
आँखिन को फल ब्रजभूमि को दरस है ॥ ३५ ॥
बिभाकर-कुँवरि तमालन की पाँति बीच,
बीचिनि मरीचैं बाग लागनि जगमगी।
भावना भरनि हिय, गहर भँवर परैं,
एकरस राग धुनि रंगनि रँगमगो।
चातकी भई है चाहि आनँद के अंकुर कौं
मन घन ढूँढै रीझि डोलनि डगमगो।

होने पर भी) उसके वर्णन से विमुख नहीं होते। आवरे=मलिन, यहाँ विमुख। सक्र=इंद्र। सहसमुख=शेष नाग। [३४] लोचैं=विचारते हैं। [३५] सुठौन=सुंदर। [३६] बिभाकर०=सूर्य की पुत्री, यमुना। बीचिनि=

प्रेम की पसीजनि प्रवाह-रूप देखियत,
सदा स्याम के सिंगार-सार सौं सगमगी ॥ ३६ ॥
स्याम-अंग-संगिनी बिलास-रस-रंगिनी,
अनूपम तरंगिनी कृपा सौं रही भींय है।
जमुना जननि सोनूकारिनि महा उदार,
जग-ताप-हारिनि पुनीत तेरो तोय है।
तीर पर्यौ आनि दीन हीन जानि मानि लै री,
बिनती करत हाहा हाँठ हारि रोय है।
आनँद के घन सौं पपीहापन पालें क्यों है,
बासना मलीन मेरे अंतर की धोयहै ॥ ३७ ॥

सवैया

हाथ चढ़ी हरि के अब मैं हरिबाई करै कछुवै न बिचारै।
हाथ कियौ मन सौ धन हेलो दसे पर हाथ कौं पाय पसारै।
तौहू कहा अब सोच महा परियै रहै गोहन साँझ सवारै।
मोहन की बिसवासिनि बाँसुरी तानन मैं बिष-बाननि मारै ॥ ३८ ॥

कबित्त

पूरी लगी लाग राग-बस भई भली भाँति,
थकित चली है गति गही सुचि रसिका।
हरि बनमाली करि हरिन भयौ है हियो,
कैसैं रहौं परै खिलौ लालसानि कलिका।
चातकी सु है जु ब्रजगोरी घनआनंद की,
छूटे मान तीन-बान फटी है बिकलिका।
स्रवनि कहीं न परै प्रेम-मनभावनि की,
काहू की न सुनै ऐसें सुनी है मुरलिका ॥ ३९ ॥
लाल पाग बाँधे, धरें ललित लकुट काँधे,
मैन-सर साँधे सो करत चित-छाय को।
जोबन झमक अंग रंग छकि रंक, छूटी
कुटिल-अलक-जाल जिय अरुझाय को।

लहरों में। सगमगी=छबिल। [३८] हाथ=हाथ में और कुछ ले लेने के लिए पैर फैलाए हुए है (चढ़ी है)। [३९] रसिका=कोयल।

गरे गुंजमाल उर राजत बिसाल नख-
सिख लौं रसाल अति लोनो स्याम काय को।
करत अहीर और जमुना के तीर तीर,
टोना भर्यौ ढोलत ढुटौना नंदराय को ॥ ४० ॥
रसिया रँगीलो मनमोहन छबीलो छैल,
राधा-रूप-आसव छक्यौ रहै महा अछेह।
बाँसुरी बजाय राग पूरे अनुराग ही को,
तानन घुमाय घूमै पुलकि पसीजै देह।
नेही-सिरमौर और कौन ये सवाद जानै,
आनँद को घन चोप चातक है मूल्यौ गेह।
सुनि री सहेली तू हितू है समझाय हाहा,
हौं तो हारि भयौ पै घटै न कहूँ याको नेह ॥ ४१ ॥

सवैया

जब तें डफ-बाज सुनी सजनी तब तें मति कौं कछु बौरई सी।
मन के पन की गति जोउक लखौं हितु और भई रति औरई सी।
सोचिहै जब फाग कहा करिहौं अब ही करी कान्हर औरई सी।
घनआनँद धावत गारिनि गावत आवत पावत सौरई सी ॥ ४२ ॥
रोक्यौ रहै अब क्यों न रिझै मिलि खेलनि हाँस को ओज चढ़्यौ है।
राख्यौ दुराव दुराइ हियैं अनुराग सु बाहिर आनि कढ़्यौ है।
साँवरे छैल गरबारनि गारिनि गाय कैं दोहरा एक पढ़्यौ है।
चोपनि चौगुनियै पुट लागिहै आजु तौ सौगुनो रंग चढ़्यौ है ॥ ४३ ॥

कबित्त

रूपे हैं गुपाल ग्वाल-मंडली लगाँहीं संग,
सजे खेल साजनि सौं उपमा न सरसी।
इतैं राधा नागरि बिनोद-भिजी मूरति,
सहेलिन के जूथ फूली रूप-कंज-सरसी।

[४०] मैन=मदन, काम। [illegible] ढुटौना=पुत्र। [४१] अछेह=अपार। [illegible]। [४२] बौरई=नटखटी। सौरई=शोरगुल, कोलाहल। [४३] पुट लगना=रंग चढ़ना।

घूँघरि धमारि कोन मोभी कहो परै कैसें,
कोटि काम-कटक कै भसकै धौंसर सी।
आनँद के घन की गरज ह्वै हो बोलनि मैं,
होति है परस्पर पैजनी-पसर सौं ॥ ४४ ॥
कान्हर खिलार मोद मूरति उदार रूप,
जोबन को मतवार होरी-खेल लग्यौ है।
अवसर सरस बखानें आय खेल माँड्यौ,
दरस के फल ताकौ उमंगनि पग्यौ है।
कहा कहौं कठिन दुलार-भरी भावतो के
रोम रोम राग-भाग फाग जगमग्यौ है।
सखिन समाज दामिनीन पुंज फैलि परे,
आनँद के घन पै बिनोद-झर लाग्यौ है ॥ ४५ ॥
खेलत खिलार गुन-आगर उदार राधा,
नागरि छबीली फाग-राग सरसाति है।
भाग-भरे भावते सौं औसर फब्यौ है आनि,
आनंद के घन की घमंड दरसाति है।
औचक निसंक अंक चापि खेल-घूँघरि मैं,
सखिन त्यौं सैनिन ही चैननि सिहाति है।
केसू रंग बोरि गोरे करि स्यामसुंदर कौं,
गोरी स्याम-रंग बीच बूड़ि बूड़ि जाति है ॥ ४६ ॥

सवैया

घनआनँद प्यारे कहा जिय जारत छैल ह्वै फाँकियै औरनि सौं।
करि प्रीति पतंग को रंग दिनाँ दस दोसि परै सब ठौरनि सौं।
यह औसर फाग को नीको फब्यौ गिरिधारी हिलै कहूँ होरनि सौं।
मन चाहत हैं मिलि खेलन कौं तुम खेलत हौ मिलि औरनि सौं ॥४७॥

[४४] उपमा०=उपमा स्फुरित नहीं हो रही है। सरसौं=झोंठा साकाय। भसकै=फैल रही है। धौंसर=धूलि का आवरण। [४५] लग्यौ०=लगा है। [४६] केसू=किंशुक, पलाश।

बात कहो उन नैनिन की अब हौ तौ कहौ दिन कैसें बिसैयै।
चातकी हैं घनआनँद ओर चकोरी भएँ ब्रजचंद चितैयै।
बाढ़ि परी अभिलाष-नदी अति, कौन अनाथ की नाव बनैयै।
धीर लिये सु हिये हरि हेरो दिये न दिये घर लै कहा जैयै ॥ ४८ ॥
पिय को मन है चाहिबे कौं पत्यौ जिय बैठो रहै न सम्यौ परि है।
चित सौं चपट्यौ तिन जात लियें यह बावरो कैसें गम्यौ परि है।
घनआनँद पावस आय लगी बिन धीरज क्यौं निबह्यौ परि है।
कहिहौ सु कहा कहि री सजनी बरसात लखें न रह्यौ परि है ॥ ४९ ॥
भई बन-बेलिन की गति और सुहाने ते कुंज भयानक भासे।
जेइ रूख भजावत भूख हुते तेइ दीसत हैं जियरान के ग्रासे।
हिये सियरात मिले घनआनँद औटत औटत हाय उसासे।
कहाँ लगि काहि मनाइ बिरहा ब्रज हाथ कियौ किधौं पाय-निकासे ॥५०॥
धनि वै घन-बेलि जिन्हैं परसौ पुहुपावलि गूँथि गरैं सु धरी।
फल लागि रह्यौ सुखमूल तिन्हैं जिनकै फल लै रसपान करी।
घनआनँद सींचन होंसी सबै बड़भाग को रासि रसीली भरी।
हम सूखति हैं घन-प्यास-भरी ब्रजजीवन जीव की जानि हरी ॥५१॥
पल ओट भए घन-प्यास-भरी, अकुलानि महा हिय पीसति है।
तुम हाँसि परौ न हुते पर प्यारे तिहारियै आपनि हीसति है।
घनआनँद रान चितौनि हमारी हमैं दुख-बान कसीसति है।
नित नाके रहौ हित-मूरति जू मनसा दिनरास असीसति है ॥५२॥
ब्रजमोहन रूप छके मन नैन महा मतवार प्रमानियै ते।
घनआनँद भीजे रहैं निसिद्यौस पपीहन लौं अनुमानियै ते।
उर आनियें ते जिय जानियें ते सनमानियें ते सुखदानियें ते।
जो दुराव-लखाव न जानत है इकसार सनेह पछानियें ते ॥५३॥

[४७] औरनि=हलकेपन की तुलना। ठौर=बात, ढाईं। [५०] उसासे=आवास, मर। बिरहा=इन्होंने यहाँ से पैर क्या निकाले मुझ को बिरह के हाथ सौंपते गए। [५२] कसीसति=खींचती है। मनसा=इच्छा।

काहे कौं सून मरौं सजनी अब क्यौं हियराहि उदेग दहौंगी।
जीवन-मूल मिलै घनआनँद सो सुख काहू सौं कैसैं कहौंगी।
जोबन बैर परयौ है कुटीचर काम पै बाहु अनेक गहौंगी।
लैहौं हियें लपटाय पियैं अरु हौं पिय के हिय लागि रहौंगी ॥५४॥

आनि मिलौ दुरि आपुनि यौं फिरि जागत जू बियराहि बिछोहन।
कौन सवाद परयौ तुमकौं चित चाहत ही करि लेत हौ दोहन।
चोपनि छावत हौ घनआनँद आय बढावत हौ इत छोहन।
आनि परे गुन रावरे नाम के मोहन जू तनकौ कहूँ मोह न ॥५५॥

मनमोहन गोहन छाड़त नाहिं चढ़े चित मेरहि लेत रहैं।
दिन-रैन समीप वियोग धौं कैसो, कहा जो दिखाइ न देत रहैं।
मर आय रहे घनआनँद यौं नित प्रान-पपीहा अचेत रहैं।
मरि हेत गहैं करि चेत रहैं, तजि खेत रहैं रसमेत रहैं ॥५६॥

पाय परै गति रावरी कैसैं मिलैं अमिलौ रहि मोहन मोहीं।
जीवन ही जग के घनआनँद या बिधि क्यौं तरसावत माही।
लालसा लागो रहै मिलिबे की मिलैं ढँग ये घर-माझ बटोही।
मोहन जू बसि एकहि बास कहौ रहौ काहू तें ऐसे अमोही ॥५७॥

अनचाहेऊ चाहैं मिलेऊ हँसैं, जगि बोलें बिना सुख-नींद लगैं।
बिन काज ही द्वार से फिरैं, जितहीं चलियै तित संग लगैं।
घनआनँद यौं घुरि घेरि लहैं मुरली-सुर मैं रसवाद उगैं।
कहि क्यौं मरियै कोरियैउय कहा निबहैं रहैं अलि दूर भगैं ॥५८॥
अति तीखे परेखनि सौं ब्रजमोहन नातौ नहीं कटि जायहै जू।
घनआनँद प्रान-पपीहा जिवावन आप कहा मरि जायहै जू।
मन कौन धरै जु वियोग की आँचनि नाचि तनौ कटि जायहै जू।
कबहूँक निहारी अँसेर-दरेरनि हाय हियौ फटि जायहै जू ॥५९॥

[५४] कुटीचर=कपटी। [५५] छोह=ममत्व। [५६] हेत=प्रेम। रसमेत=रसमय। [५९] नाचि=चक्कर। तनौ=शरीर भी। कटि०=क्षीण हो जायगा। अँसेर=अशांतिजन्य वेदना।

फागुन मैं उनयौ घनआनँद हेरि हरी है वियोग कौ गाँसनि।
खेल खिलार महा ब्रजमोहन, खेलत भावनि चोपनि सौं सनि।
गोरिनि घात के घेर परयौ रस चाव बचाय टरयौ कछु गाँसनि।
दाव परयौ सु गहाव भएँ हियरा भरि आँखि अँजैबे की हाँसनि ॥६०॥
खेलत फाग फिरै जित ही तित बानिनि बानान बंकबिहारी।
छैल महाछल सौं छल सौं कल सौं गल सौं लपटी ब्रजनारी।
आनँद के घन यौं उनए सरसौ बरसौ तरसावत भारी।
रंग निहारे निहारे अनेक अनूपम एक ही लाल बिहारी ॥६१॥

कवित्त

किधौं है कहा री तैं बिहारी कौं निहारी जब,
तीखी अँखियानि हियो बैंध्यौ न कसरि कै।
चित्रका लिखेई रहे रँग्यौ रंग सोहि देखैं,
रूप को चसक लागें थके हैं थसरि कै।
तोहि बनि आई सु तौ तोहि बनि आवै राधे,
बिधना बनाई तुही सकै कोऊ सरि कै।
कौंधि घनआनँद कौं भिजयौ इननि ही मैं,
हाथ कियौ लालहि गुलालहि मसरि कै ॥६२॥

सवैया

साँझ जौं लौं गुमान हौ जोबन रूप कौ कान्ह सौं तौ लगि मान सज्यौ।
घुरि घेरि कै कानि अटारि कै लाजहिं नीरस नेम लै प्रेम तज्यौ।
घनआनँद बाँसुरिया सुर झाँकि हियें सौं लगैं ब्रग भीजि भज्यौ।
अब हारतौ मारि भयान हठौ औ पै लेती बीरानि जिवाय न ज्यौं ॥६३॥
सब ओर तें खैंचि कै कान्ह किसोर मैं रासि भलें थिर आसकरैं।
ब्रजनाथ-बिशारद कुरानि समीप सदा मन कौं अनयास करैं।
घनआनँद छाय रहे निसिद्यौस मनोरथ रास-बिलास करैं।
ब्रज-बीथिनि और निसीथिनि सो उनमाद-सवाद सौं घास करैं ॥६४॥

[६०] गाँसनि=घात से। [६२] थसरि=शिथिल होकर। सरि=बराबरी। मसरि=मसलकर, मलकर। [६३] अटारि=अटाकर। सवाद=चतुरता। ज्यौं=जी। [६४] थिर०=ध्यान को स्थिर कर लें। अनयास=श्रमरहित, स्वस्थ। निसीथिनि=रात।

कहाँ लौं तिहारे गुन गुनियै गसीले स्याम,
सुखिया सुअंतर हौं अंतर पिराय कै।
भोर भएँ डोलत रसीले ब्रजमोहन जू,
कबहूँ न कहूँ नेह धर्यौ है थिराय कै।
मीठी मीठी बातैं कहि दैया बिष भोवत क्यौं,
निधरक बैठे मन मोहन फिराय कै।
बरसौ बिसासी घनआनँद कहा है बस,
हमैं यौं जरावौ हाय औरनि सिराय कै ॥६५॥
गति लेत प्यारी प्यारी न्यारियै उदक नाचैं,
लोन अंग रंगनि लगै निकाइयै भरी।
मुसकानि-आभा-फैल छाकत छबीलो छैल,
सील-भीज चाहनि रसीली बरुनी ररी।
मुरली बजाय कै नचावैं रिझवार प्यारो,
सुनि लगौंहीं बाट भौंह भेद सौं भरी।
ढोरक पै ललित ललित आँगुरीनि ढारैं,
छायौ घनआनँद चटक चोख है परी ॥६६॥
कोए बिष-भोए सुधा सींचत निहारनि मैं,
बिषम अन्यारे प्यारे लागे पैठि प्रान हैं।
पानिप सौं पूरे जोति जगैं चकचौंधी होति,
उज्जल ढरारे हरैं मोतिन के मान हैं।
घनी बंक बाँकनि की झाँकनि झुकी हैं घन-
आनँद उमाहि दाबैं धीरज सयान हैं।
छैल ब्रजमोहन हरैं न परि गोहन ये,
जोहन तिहारे करैं ऊकट उठान हैं ॥६७॥
मोहन अनूप उनै रूप ठगी आँखैं इतै,
इनकी तरफ की छबीली येई साखियै।

[६५] गसीले=गाँस से भरे, छली। अंतर=भिन्न। [६६] ररी=रटती है, व्यक्त करती है। ढोरक=ढोलक। ढारैं=चलाती है। चोख=तीव्र। [६७] कोये=

जीवति अघाय प्यास बाढ़ियै रहति महा,
महा अचरज कहौ कहा कहि भाखियै।
जानमनि जीवन उदार रिझवार छैल,
बसुधा-कुँवार गुन गहि अभिलाखियै।
चोप चातकी है भई आनँद के घन हौ जू,
सुदरस-रस दै रसीले रस राखियै ॥६८॥
लगैगी तुम्हैं हू, कहूँ कबहूँ अनेह-चोट,
मेरी सी दुहेली पीर अंतर पिरायहौ।
कहा जानौं ऐसो दिन होयगो कबै धौं दैया,
बिषम बिछोह औसरानिहि बितायहौ।
छैल ब्रजमोहन छबीले घनआनँद जू,
मोहि फिरि आपनै हू दुखनि दुखायहौ।
तातें तुम सुखी रहौ हौं ही दहौं, कहौ कब
अपदनि साँस लागे अपदहि सिरायहौ ॥६९॥

सवैया

लहालेह कहा धौं अघाय रहे ब्रजमोहन हौ उर-नैनि भरे हौ।
मिलि होति न भेंट, दुरे उघरौ, ठहरैं ठहरानि के लाले परे हौ।
बिछुरैं मिलि जात मिलैं बिछुरैं यह कौन मिलाप के ढार ढरे हौ।
घनआनँद छाय रहौ नित ही हित-प्यासनि चातक जात मरे हौ ॥७०॥

छप्पय

अक्षर मन कौं लखैं बहुरि अक्षर ह्वै भावै।
रूप अक्षरातीत ताहि अक्षरैं बतावैं।
अक्षर को यह भेद कौन जानैं बिन मानैं,
अक्षर हू मैं मौन मिलैं सारदा सुठानैं॥
अक्षर मौन समाइ-रस आनँदघन बरसत रहै।
तत्त्वबोध बीजानि मैं अक्षरगति अक्षर लहै ॥७१॥

हाथ पर पहना जानेवाला एक गहना। [६९] दुहेली=दुःखद। [७०] लहालेह=लोलुपता। [७१] अक्षर=(अक्षर) वर्ण। रूप=ब्रह्म। भावै=भाता है।

छंद

ब्रजमोहन जू मन लागि परयौ जो लागि परौ ते लेखै है।
नाहीं तौ हाहा जनम निगोड़ो यौं ही जात परेखै है।
जिन तरसायौ रस बरसायौ जग छायौ सुजस बिसेखै है।
आनँदघन प्यारे प्रान पपीहे पल पहार बिन देखैं है ॥ ७२ ॥

सीखी तरल मोच हुकनि हिय हाय हाय की लौं हनिहै जू।
धुनि धुनि सीस दीन जियरा पुनि कब लौं दुखनि हारि हनिहै जू।
ऐसैं ही ऐसैं आनँदघन कैसैं तुम्हैं बिना बनिहै जू।
सोधि अनेक भाँति बिनई हरि अंत लेन फिरि को गनिहै जू ॥ ७३ ॥

चौपाई

जो सवाद आवै हरि-रस को। मन तें मिटै भौन को धसको।
मिलै सजीवन ताहि चसको। आनँदघन भरे लगै दरस को ॥ ७४ ॥

बरवै

श्रीवृंदावन आवै सो मन भौर।
ऐसैं भटकै मन को केमिक दौर ॥ ७५ ॥

महाबरवै

सुनहु लड़ैती राधे कीजै करुना-डीठि।
मन सनमुख फेरि लीजै कब लौं पीठि ॥ ७६ ॥

सोरठा

जामैं अनबन माहिं, तामैं बनक बनी तुम्हैं।
हियो परेखनि पोहि, कहा झुलावत गुन-भरे ॥ ७७ ॥

दोहा

ब्रजबासिन की अगम गति कोँ लखि सकै न कोय।
नंदराय के धाम बसि जो ब्रजबासी होय ॥ ७८ ॥
ब्रजमोहन सुख नित नयो, तिहूँ समय रसरूप।
जिन बूझै मति सूझई, अतुलित प्रेम अनूप ॥ ७९ ॥

—[श्रीशंभुप्रसाद बहुगुना से प्राप्त]

[७२] हनिहै = बँधा रहेगा। [७७] पोहि = गूँथकर।

छंदाष्टक

कहाँ जाहिं अरु करैं कहा अब तुम तौ पिय सब गतिनि थकाई।
खिसयानि बिसभरी बँसुरिया क्यौं बजाइ करि बिबस बुलाई।
अब तें गई भई यौं बन को बल कौं करत हाइ निठुराई।
कठिन भाव कहि जिन प्रिय मारौ हा हा स्याम सरन हूँ आई ॥८०॥

रूप निहारि हारि मन लोचन ब्रजमोहन बिन मोल बिकाईं।
क्यौं यौं तजत दीन दुखियनि कौं जथाशक्ति सेवा हित धाईं।
सफल करौ किनि कृपा कल्पतरु फूलि फलि अभिलाषनि छाईं।
आनँदघन ह्वै सुरस सींचियौ बिरह-ताप-मुरझानि सताईं ॥८१॥

तजि कित गए भए हित आँखिन पिय आँकली क्यौं तुम्हैं सुहाईं।
हाहा हो ब्रजनाथ साथ बिन बिरहा उरनि मरनि ठहराईं।
छलियौ छल कर छियौ सजीवन बिथा हरौ अब अधिक पिराईं।
रस बरसाइ चातकनि मोदघन प्यास-त्रास या बिधि तरसाईं ॥८२॥

सुनि पुकार : गत गुहार किन अपनौ करि कत करत पराईं।
अबलनि बलहि सम्हार महाभुज दहिने हू न दीजियै बाईं।
आइ जिवाइ लेउ आनँदघन औसेरनि आँसनि अकुलाईं।
रसभीजी चितवनि लखाइ कर अब ऐसी आखैं दिखराईं ॥८३॥

देखौ री चलि सघन कुंज मैं तम-पुंजनि न होत लखाईं।
अनबोली ह्वै रही परिक लौं सुनि सो यौं मुरली मुरझाईं।
या दिसि होत जोति सी जागत फिरि यौं कहा भई दुखदाईं।
लेहु ढूँढ़ि चितचोर आपनो देहु देखि मुख भाग बड़ाईं ॥८४॥

मुसकनि लसनि पीतपट ओढ़नि उर बिलास बनमाल सुहाईं।
नमित नैन सुखदैन हमारैं मृदुमूरति न दूसरी ठाईं।
सतहि जगी अखियनि बिकानि कछु क्यौं करैं न बसु हम पाईं।
भले स्याम प्यारे तारे हौ दृग मिलिबो किनि दई मिलाईं ॥८५॥

धरौ चरन दुखहरन दयामनि हम हीनानि ओढ़नी बिछाईं।
मन सुख ह्वै सुखसदन साँवरे बैठौ तनक बहुत बिनराईं।
कहौ प्रीति की नीति रीति कछु जानि लियौ सब जग चतुराईं।
ये पटियाँ कित पढ़े कहौ किनि कपट छाँड़ि गोपाल गुसाईं ॥८६॥

गस जिनि गही कहौं सो ऐ पर वचित आहि अपराध छमाई ।
अतुल प्रेम की कला कारीक तुम विधि अविधि दाखि दरसाई ।
या विधि सब मन धन मैं रंकहिं दिनी कियौ अपनो अगराई
बुरो मानिबो नैक न आनिबो अब तुम ही सब भाँति भलाई ॥८७॥

त्रिभंगी

सब सुखनिधि सुख सुषमानिधि रसनिधि जसनिधि हितनिधि लहि किन तूँ ।
भ्रम-तम-भंजन सुचि रुचि रंजन मुनिमनरंजन पन गहि किन तूँ ।
आनँदघन अमित अपार सारभूत सतसंगहि ताहि अवगाहि किन तूँ ।
श्रीकृष्णनाम अमृत - द्रव मैं मन-मीन लीन ह्वै रहि किन तूँ ॥८८॥
जग-जीवन सुलभ सलिल सुख-संपति तिहि तजि तनक उमहि किन तूँ ।
मरसरित भ्रमजाल बिसाल नहीं यह सुख सुनि बेगि निबाहि लहि किन तूँ ।
आनँदघन सदा सरस सालब सतसंगहि ताहि अवगाहि किन तूँ ।
श्रीकृष्णनाम अमृत-द्रव मैं मन-मीन लीन ह्वै रहि किन तूँ ॥८९॥
मोहन - मुरली आसन - धुनि सुनि मोहित रस - बस ह्वै ।
अद्भुत अनुराग रचना अब जब प्रताप जड़ चलत जु स्वै ।
जमुना-जल अनिल गगन ससि थिरकित सबैं चकित सरूप-गुन छ्वै ।
आनँदघन गरजि गरजि बरसत ब्रजवासि-हिय-तृषा-भावना भ्वै ॥९०॥
श्रीकृष्णकथा मंगलमनि हैं यातैं सिवब्रह्मानारदसारद मुनिसुकादि रासोभनि हैं
कीरति-कुल-कलस अलस तजि सेस सुनाम असेस सिथिल गनि हैं ।
रसना हित रसद बिसद कामद निहकामनि कामधेनु धनि हैं ।
गुन - रूप - रासि मोहन मुरलीधर स्रवन कथन मन सरसनि हैं ।
ब्रज आनँदघन गोपीजन - जीवन प्रेम पयोद सुख-रसैंदनि हैं ॥९१॥
निरवधि सुखदायक रस मधि नायक ललित सुभायक नवनागर ।
राधामन- रंजन प्रीतम- अंजन मानस - मंजन गुन - सागर ।
अच्युत आनँदघन ब्रज जीवनधन मन बिहरत क्रीड़ा - आगर ।
मोहन-मुरली-कृत रमनी - मंजुल रुचि अद्भुत रजनी - जागर ॥९२॥

परमहंस-वंशावली

दोहा

श्रीगुरुपदईश्वर - कोकनद - नख-मकरंदहिं चाखि ।
मन-मधुकर आनँदघन चातक-रुचि अभिलाषि ॥ १ ॥
सुभकरनी हरनी-दुरित गुरु - सरनी सुखसार ।
भवतरनी धरनी बिसद-निज - निदेस अनुसार ॥ २ ॥
श्रीगुरुवदन - मयंक तें बहै चंद्रिका आदि ।
चित-चकोर भाषा भनी अमरभनित अवगाहि ॥ ३ ॥
श्रीनिकेत तिन परमगुरु श्रीनारायनदेव ।
हंस - रूप सनकादि सौं उपदेस्यौ निज भेव ॥ ४ ॥
विषय-जीव जल-छीर ज्यौं ब्यौरि दियौ रसदानि ।
कृपा-कलपतरु है सदा निज जनहित पहचानि ॥ ५ ॥
भव-पारद नारद भए तिन उपदेस - प्रसाद ।
बीना धरि हरिकीरतन - मगन प्रेम - उनमाद ॥ ६ ॥
कलिकालीन मलीन जन तिन उधार कैं चाव ।
करुनानिधि इहिं विधि कियौ प्रभुगुन-गान-प्रभाव ॥ ७ ॥
नारद हारद-रूप धरि भरि आवेस अपार ।
संप्रदाय - थापन प्रगट निंबादित्य उदार ॥ ८ ॥
व्यापक बिपुल प्रताप जग हरयौ मोह-अंधार ।
अमल कमल बिकसे सुहृद तरुन अरुन अवतार ॥ ९ ॥
रवि राख्यौ भाख्यौ जगत कहूँ कौनहूँ दाव ।
प्रभु की प्रभा प्रभाव कौं करि साखा-ससि-न्याव ॥ १० ॥

[२] तरनी = नाव । [३] भाषा = ब्रजभाषा । अमरभनित = संस्कृत, अमरबानी । [४] भेव = भेद । [६] भव० = भवसागर से पार करनेवाले । [८] हारद = हार्द, मानस । [१०] रवि० = भक्तमाल में कथा है कि कोई यति (जैन) इनसे शास्त्रार्थ कर रहा था, सूर्यास्त हो रहा था इससे इन्होंने उससे भोजन करने को कहा (जैन सूर्यास्त हो जाने पर भोजन नहीं करते) । जब तक वह भोजन नहीं कर चुका तब तक इन्होंने सूर्य को नीम के पेड़ पर रोक

श्रीनिवास तिनतें भए आचारज विख्यात।
श्रीजुत महिमाजुत महा जग कीरति अवदात ॥ ११ ॥
विश्वाचारज विश्वहित तिनकैं कृपानिकेत।
तिनतें पुरुषोत्तम प्रगट आचारज जस-केत ॥ १२ ॥
भई बिलासाचारजैं तिनतें कृपा अमोघ।
हरिबिलास-बिलसित सदा हरे जगत-अघ-ओघ ॥ १३ ॥
कही सरूपाचारजैं तिनकैं कृपा-सरूप।
बहुरि माधवाचारजैं तिनकी कृपा अनूप ॥ १४ ॥
आचारज बलभद्र कौं तिनतें मिल्यौ प्रसाद।
तिन करि पद्माचारजैं पूरन प्रेमसवाद ॥ १५ ॥
स्यामाचारज स्यामरत तिनकी कृपा प्रकासि।
गोपालाचारज भजौ पुनि तिन अंतेवासि ॥ १६ ॥
तिन सुदृष्टि-रसवृष्टि तैं कृपाचारजैं तोष।
हरिगुन गाइ जब 'जयति' कौं दई बंध तैं मोष ॥ १७ ॥
श्रीदेवाचारज भए तिनके सिस्य प्रवीन।
सुजन-चरन-रति-दान दै करे कृतारथ दीन ॥ १८ ॥
तिनतें सुंदर भट्ट कौ भौ सब सुंदर काज।
पद्मनाभ भट्टहि भजौ तिनकौ कृपा-जिहाज ॥ १९ ॥
पुनि उपेंद्र भट्टहि कह्यौ तिन उपदेसागार।
रामचंद्र भट्टहि मिल्यौ तिनतें भजनरस-सार ॥ २० ॥
तिनतें बावन भट्ट कौ बढ्यौ प्रताप प्रबंध।
कृष्न भट्ट श्रीजुत भए तिन उपदेस असंध ॥ २१ ॥
श्रीपद्माकर भट्ट कौं तिन सुदेस उपदेस।
स्रवन भट्ट तिनतें लह्यौ नाम-प्रसाद असेष ॥ २२ ॥

रखा। इसीसे 'निंबादित्य' कहलाए। साखा० = शाखा-चंद्र न्याय। चंद्रमा को दिखाने के लिए कोई पेड़ दिखाकर कहा जाता है कि चंद्रमा उस शाखा पर है। [११] अवदात = स्वच्छ, निर्मल। [१२] केत = केतु, पताका [१३] अघ० = पापों का समूह। [१६] अंतेवासी = शिष्य। [२२] सुदेस = सुंदर।

भूरिभाग-भाजन भए भूरि भट्ट तिन सोध।
तिनतें माधव भट्ट लैं दई मनरंजन बोध ॥ २३ ॥
स्याम भट्ट तिनतें लह्यौ स्याम-नाम अभिराम।
पुनि गोपाल भट्टहिं मिल्यौ तिन करि हरिगुन-धाम ॥ २४ ॥
भए भट्ट बलभद्र पुनि बलनिधि तिन उपदेस।
गोपीनाथ सुभट्ट कौं तिनतें नामादेस ॥ २५ ॥
तिन करि केसव भट्ट कौं मिल्यौ सु केसव नाम।
मंगल भट्ट भलैं भए तिनतें मंगल-धाम ॥ २६ ॥
उपजे काश्मीरी विपुल श्रीकेसव सुभ नाम।
सिद्धानिधि नागरी विनद तिन प्रसाद अभिराम ॥ २७ ॥
काजी कौं मार्जी कियौ माड़ौ मथुरा मैंड।
हरिजन-राजी संग लै साजी गुरुता-हैंड ॥ २८ ॥
तिन प्रसाद श्रीभट लह्यौ निरवधि रस कौ रासि।
सो संपति परति न कहा दंपति भजैं उपासि ॥ २९ ॥
जुगलचंद सुखकंद कौ मनविनोद रसभूरि।
भाख्यौ दिन राख्यौ सु तिन चित-बेली बलि पूरि ॥ ३० ॥
तिन हारद के हद भए हरिब्यास बहुदेव।
अति गंभीर आसय सरस बचनि करी जिहिं सेव ॥ ३१ ॥
महिमा विदित कहाँ कहा चंदन नगर मझार।
देवी कौं उपदेस दै मेट्यौ पसुसंहार ॥ ३२ ॥
हिंसा-हनन करयौ भलैं लयौ सुधरम जिवाय।
करुनानिधि कलिकाल मैं या विधि कियौ सहाय ॥ ३३ ॥
तिन सिस्यनि संख्या नहीं सबै महारुचि-रूप।
अमित प्रताप पुनीत जस राजैं धर्मधुज-भूप ॥ ३४ ॥

[२३] सोध = शिक्षा। [२४] धाम = मार्ग। [२८] काजी = न्याय-कर्ता। मार्जी० = मार्जन किया, दंड दिया। माड़ी = मंडित की, स्थापित की। मैंड = मर्यादा। राजी = पंक्ति, समूह। हैंड = दबदबा। [२९] दंपति = राधा-कृष्ण। उपासि=उपासना करके [३१] हारद = हार्द, कृपालु। हद = हृदय।

तिनके पाट बिराजि कै 'परमानिधि' श्रीमान ।
पद्धी कौं पदवी दई मुनिवर कृपानिधान ॥ ३५ ॥
अगम पदारथ सुगम किय भाषा हित-बिस्तार ।
.... ॥ ३६ ॥

हरिगुन-चरितनि सुरसरित महाधीर मति मीन ।
तहाँ नमित नरपति भई कहौं बड़ाई कौन ॥ ३७ ॥
जीवदया हरिधर्म - हित रच्यौ सब सुखदानि ।
श्रीगुरुद्वार दिसि बिदित नित साधुसंत सनमानि ॥ ३८ ॥
तिनके पाट लसे बसे 'मुनिवर श्रीहरिवंस' ।
अति बिबेक बिज्ञान-घन जसनिधि परम प्रसंस ॥ ३९ ॥
'श्रीनारायनदेव' कौं तिनको कृपा-प्रसाद ।
अति उदार बिद्याविपुल पूरन प्रेम-सवाद ॥ ४० ॥
सदा कृस्न-गुन-कथन-रत मत-मंडन-जय-रूप ।
बिमुखनि खंडन भगनधर-रगना - तुंड अनूप ॥ ४१ ॥
दीन-सरनदायक कठिन हरन अखिल-दुख-दोष ।
अब तिन पाट प्रसिद्ध जग करन-जीव-परितोष ॥ ४२ ॥
बिद्यानिधि बहुबिधि निपुन कृपा-अवधि रसकंद ।
बचनरचन हरिचरितमय ससि तैं अमल अमंद ॥ ४३ ॥
जग-बोहित मो हित प्रगट हरिबिनोद निजधाम ।
भवनौमनि श्रीयुत सदा 'वृंदावन' अभिराम ॥ ४४ ॥
जिसे सीस महिमा तिन्हैं ताहि कोस हूँ चोस ।
सदा बसौ मोकैं लसौ कृपा - हंस मो सीस ॥ ४५ ॥
परमहंस - बंसावली रची सची इहिं भाय ।
कंठ धारिहैं गुरुमुखी सुखदाई समुदाय ॥ ४६ ॥
कासीबासी सेष गन निगमागमन-प्रबीन ।
निंबादित्य - अनुगम सबै परम पुनीत कुलीन ॥ ४७ ॥
तिनको बंस प्रसंस जग जगमग ज्यौं द्विजराज ।
गनमंडित पंडित बिबुध सोभित सदा समाज ॥ ४८ ॥

तिन करि यह निहचय करी परंपरा की रीति ।
स्रुति श्री सुमृति पुरान की कथा पुरातन नीति ॥ ४९ ॥
आचारज हरिप्रभु सदा स्रुति भागवत प्रमान ।
.... ॥ ५० ॥

जब जब धर्मग्लानि को हित अवनी संचार ।
तब तब निज बपु धरि करैं जगत-जीव-निस्तार ॥ ५१ ॥
कृस्नप्रेम-स्वरूप है आचारज जग माहिं ।
अम्रकृत जानौ तिन्हैं यामैं संसै नाहिं ॥ ५२ ॥
इमि लोक पावन यहै धर्मदान को सींव ।
हरिगुन - माल रसाल कौं भरन करौ सुभाय ॥ ५३ ॥

प्रतीकानुक्रमणी

कवित्त

['कवित्त' से तात्पर्य मनहरण, सवैया और छप्पय से है। अंक छंदों के हैं। अंकों के पीछे के अक्षर ग्रंथों के प्रतीक हैं; जिनमें ये अक्षर नहीं वे 'सुजानहित' के हैं। कृ० = कृपाकंद। वृं० = वृंदावनमुद्रा। प्रे० = प्रेमपद्धति। दा० = दानघटा। प्र० = प्रकीर्णक।]

अंक भरी धाँकि । ३३२
अंग-अंग-आभा-संग । २११
अंग अंग आई है । १९८
अंग अंग स्याम-रंग । ३२
अंगनि पानिप-ओप । ३४७
अंग सुभसुभ रंग । ६८ प्रे०
अँगुरीन लौं जाय भुलाय रही । २६
अंजन मंजन दीठि । ५२
अंजन बीरौ ही नाम्यो करे । ८५
अंतर-आँच उसास तचै । १७०
अंतर उदेग-दाह । २६६
अंतर गहीलो सुख । ४६४
अंतर मैं बासी पै । २०२
अंतर मैं बहति । ३३०
अंतर ही किधौं अंत । ४१६
अँसुवानि निहारे । २१३
अकुलानि के पानि परयो । २२०
अगम अगाध । ३३ प्र०
अघट घटाई भरयो । ४६३
अचरज मन को । ७१ प्र०
अति ताँसे पोसानि । ५९ प्र०
अति दीनन कौ । ३५१
अति रूप की गति । २३०
अति सूधो सनेह को । २६७
अधरासव-धाम के छाके । २५३
अधिक बधिक तैं सुजान । २४४
अनखि चढ़े अनोखी । २०
अनमाइक चाहै । ५८ प्र०
अनमानियाई मन आनि । २५७
अनाकनी-आरसी । २८८
अपबस होतु सौ । ५०४
अब यौं उर आवति है । २५०
अब सो कारौ मज । ५२ प्रे०
अभिलाखनि लाखनि । ३४८
अभिलाषी पिय के । ३९०
अमल अनूपम । १८ कृ०
अलग अधी है लखि । ६६
अलप अनूप । २१ प्र०
अलि जो विधिना । ११ प्र०
अवधि सिराएँ ताप । ६२
आई आन गाँव । १८
आई है निहारी । ४५
आजु ही फाग मनाय । ५०३
आँखिन आनि रहे । ४८४
आँखिन मूँदिबो बात । ४०४
आँखि ही मेरी पै चेरी भई । २
आँखी जो न देखी । १६४
आँखै रूप-रस पाये । ४००
आछौ सिलोनो लसे । ६४ प्रे०
आछे न मानसि मोह-भरी । ३५

आनँद को अंकुर । ५५ प्रे०
आनन की सुघराई कहा । १२३
आनि मिलौ सुनि । ५५ प्र०
आनि नई न कछू । ३२५
आपु अनेक न राग को रंग । ८४
आपु तो लौं मन । ५६ प्र०
आपु औ पापु सौ । १२ वृं०
आयौ महारस पुंज । ४१६
आरनि के पैन । १५१
आरसां उसास ज्यौं । ३१४
आसन को मन आनि । ३८६
आवैं कहूँ मनमोहन । ५६ प्रे०
आवौ सखी चाँद । ११ दा०
आस लगाय उदास भए । ६
आसहि अकास-मधि । ४६
आसा-गुन बाँधि कै । ४६६
इंदीवर-दुतिनि । ४०७
इक सो अंग-अंग । ४१४
इत बाँट परी । २५०
इत आवनि जाँचरे । २५५
इतौ अनखैबौ । ३६८
उघरि दुरे तो । ३६६
उघरि नचे हैं । ३०२
उड़ि न सकत । २१५
उदै भए भोर चैन । २३४
उर आवत है अपनो । २२०
उर-मंत ज्यौं रचै कौं । ६७
उर-भौन मैं मौन को । १२७
ऊनर सौंरसी मिलें । ८७
ऊधौ विधि-दौस । ५७ प्रे०
एक आस एकौ । २६७
एक कलौ बेसलि । ३६ प्रे०
एरी तें सिखइ लौं । ७८
एरे बीर पौन । २५६
ऐ मन मेरे कहा कहौ तैं । ७३
ऐसी कृपा कीजिए । ६१ प्रे०
ऐसे परबस ही । २४ प्रे०
औगुन ही गुन मानि । ४४५, ४० कृ०
औगुन हूँ करि गात । ३० कृ०
कट-कटि-बीरी तें । १८६
कंत रमैं उर-अंतर मैं । २०७
कछु न करत माँगै । २५ प्रे०
कनकछरी भरी सु । ४८९
कमला नव साथि । ४६७
करि बैर निसांसनि । ४२५
करुना की रासि । ३२ प्र०
करुना मधुर माँगि । २५८
कहाँ एतो पानिप । २२६
कहाँ लौं निहारें । ६५ प्र०
कहा कहियै सजनी । ३६१
कहियै किहि भाँति दसा । १४०
कहिये सु कहा रहिये । २४६
कहौ जौ सँदेसो । ३३५
कहौ कछु और । ४०६
कान्ह ! परे बहुतायत मैं । ४०४
कान्हर लिन-ग । २४ प्र०
कामना-कल्पतरु । ३६३
कारी कूर कोकिला । २६६
कासु कामसुंदरी के । २७
काहू को पूज । ५४ प्र०
काहे कौ साँधि मरे । १५ कृ०
किंसुक-पुंज से फूलि । २६३
कित को ढरिगो वह । २६२
कित जाके लै जान-सजीवन । २३६
कित जोग-कथा सु । ३०२
किधौं है कहा री । ६० प्र०
किहि नेह निरोध । १५६
किहि बाल ठनी । ३५५
कौरनि की मति की । ५०५
कुल-अभिमानी सु । १०६

कुलाहल होत है । ३५६
केलि की कलानिधान । ६२
कैसें करौं गुन-रूप । ३६२
कोऊ कहा करै । ५४ क०
कोऊ न देखै न काहू । १४१
कोऊ कहूँ मोसौं कौं । ८०
कोपु विष-भोए । ६७ प्र०
कौन की सरन जैये । २४३
कौन की सुजस-जोन्ह । ८८
कौन कौन छबीन के । ४०३
कौनें हरि देख कौं । ४८ प्रे०
क्यों हैंसि हेरि हर्यौ हियरा । २१
क्यौं हठ कै सठ । १० क०
क्यौं हूँ न चैन परै । २८७
खंजन गेरे कहा मन । ४०७
खेलत हिलनाह । ४६ प्र०
खेलत फाग फिरै । ६१ प्र०
खोय दई बुधि, सोय गई । १८८
घनआनँद जान ! सुनौ । २६०
घनआनँद जीवनमूल । ७८
घनआनँद जीवन-रूप । २६७
घनआनँद जीवन-रूप सुजान । ३१०
घनआनँद प्यारे कहा । ६७ प्र०
घनआनँद प्यारे सुजान । २७४
घनआनँद मीत सुजान । ३१६
घनआनँद-रूप सुजान । ४१३
घर बन बंधिन मैं । २८७
घर ही घर घोंघ । ४१८
घातनि रातन बातनि । ५०७
घूँघट-ओट लखें । ८७ प्रे०
घूँघट काढ़ि कै लाज । १७४
घूँटि घटा चहुँघा घिरि आवौ । ८४
घूमत साँस लगी । ३४३
घेर-घबरानी । ४७६
घेरौ घट आय । ६४
गई सुधि-संग । ३३४
गलिनि सिधारी हँसि । ३७६
गति मत प्यारी । ६६ प्र०
गरल गुमान कौं । २१५
गाइन मैं सुनी । १४ प्रे०
गाढ़ें पुक टेक । १०५
गाँसनि सालन सूर । १४०
गुन बाँधि लियौ हिय हेरत हौं । ४२
गुरनि बतायौ । ५१ प्रे०
गोकुल-गाम-हेत मैं । ४७०
गोकुल-बीच कुलाहल । ४६२
गोकुल-नरेस नंद । २३७
गोकुल की वर । ४८१
गोद भरे चित । ७ वा०
गोपिन की समझ । ६१ प्र०
गोपिनि के आँसुन । ५८ प्रे०
गोपिन के रस को । ४७६
गोरी बाल थोरी । २१ प्र०
गोरे कपोलनि लालो । ४८८
गोरे कैंधौं पहिचानि । १९५
गोरे अंग स्याम । ६५ प्रे०
चंद चकोर की चाह करै । २०९
चंदहि चकोर करै । २२६
चलदल-पात की । १०७
चमकि रहो मैंदराय । ४६५
चाँदनी आई सदा रस । २४६
चाँदी आन उजास जो । ८८ फु०
चाँदनी मधि बैठि । ३७८
चलि रे सुजान । ७७ प्रे०
चाहिक-चित कृपा घन । १७ फु०
चातिक चुहन चहूँ । २८७
चातुर हौं रस-चातुर । १४६
चारिक बीस रचे । ६७ प्रे०
चाह चामीकर । १८०
चाल-निकाई लखें । ७८ प्रे०

चाहत ही रॉजी । १८१
चाह-कहवी चित । ३७
चाहिये न कछू । १३ फु०
चितवै जिहि भाँति । ४४१
चुँहटि लगाई घाव । ८० प्रे०
चूर भयो चित । ३०६
चेटक रूप रसीले । ३५३
चोप चाह चाँवनि । १५७
चोप चाह चायनि । १६७
चोरयो चित चोपनि । ३२७
छबि को निकाई पहाँ । १३ प्र०
छबि की सदन । ३ प्र०
छबि सौं छबीलो । २१ प्र०
छाए परदेस जान । १५७
छाया छिये कानति । ३२४
छैल भए नित । १ वा०
जगे सोवनि मैं । ४२८
जप-मन-धारा मन । ४४ प्रे०
जब तें बन-बास । ४१ प्र०
जब तें तुम आवन । ३४६
जब तें निहारे इन । १०१
जब-बूँद झरै । ५१
जब मैं धन मैं । ७७ फु०
जहाँ तें पधारे । २६२
जहाँ राधा-मोहन की । ३५ प्र०
जाके उर बसौ । ८ प्र०
जान भले नाहि भायौ । ३८०
जानत बड़ नए नेह । ८३ प्रे०
जान के रूप लुभाय । १४६
जान तुम्हारे नहीं । ३४०
जान प्यारी ! हैं, तौ । २२३
जान प्रबीन के हाथ । १३५
जान प्यारे आहौं । १६५
जान प्यारे नागर । १५८
जान सजीवन प्रान सखी । २६१
जान सुमारे रही । २६५
जान ही एजु जनाऊँ । ३२१
जा मुख हँसी बसी घन आनँद । २३
जाय कहौ उनि । ३ प्र०
जासौं प्रीति ताहि । ५ प्र०
जाहि जाँच चाहि । ३१८
जा दिन मान की बात । ३३२
जिन आँखिन रूप-चिन्हारि । २७६
जिनकी जिन गौंहौं । ३०१
जिन ही वहरनि सों । १०६
जित चाहत है निन । ३३६
जित मुख करौ इहि । ४३६
जिहि जिहि ठौर । ५५ फु०
जिहि पाय को धूरि लौं । ४३८, ३८ फु०
जीभ समझाति न । ५ वा०
जीव की बात जनाइये । २८३
जीवन ही जिय की । १८८
जीवनि मूरति जान । २६१
जीवहि जिवाय जाको । ३५५
जे करतूति पर्यौ । ३१ फु०
जेतो घट सोधौं । ६१
जे हग सिराए घन । १२६
जोई रात प्यारे । २७८
जोई हैं निखारौं । १७ प्रे०
जो कछु निहारौं नैन । २०१
जोबन-रूप-अनूप सरोर । ११४
जोरि कै कातिक प्रातनि । ५५
ज्यों उहि ओर बरा घन । २३३
ज्यों सुधि सों मुसकाइ रहै । २०३
ज्यौं परसै नहिं । ११
ज्यौं कहूँ न कहूँ । ३०४
झलकै अति सुंदर । २ प्र०
झलकि रूप-तरंगनि । ४७२
झुमड़ घरि कै बरसाहु । ५०१
झगमगी झमनि । १८७

जिय बैठे तू पैठि रहै । १०९
डजि के रंगनि संग । ४३६
तपति उसासन औधि । २१८
तब लौं उमगि चाहत । ३६
तब लौं तुरि तुरहि । ८८
तब हूँ सहाय हाय । १८२
तरसि तरसि प्रान । २६
तरुनाई-बारुनी । ८१ प्रे०
तिन हूँ सौं हरई । १५६
तीछन ईछन बान । २६८
तीर सी जाके सहै । ४३३
तुम दीनी पीठि । ३१०
तुम साँचो करौ हित । २४८
तुम ही गति हौ । ३५०
तुम्हैं देखि जियौं । २६५
तुम्हैं प्रान लगे । ४८४
तू ही गति मेरे । ६०
तेरी अनखानि हा । ४४६
तेरौ निकाई निहारि झुकै । ८३
तेरौ बाट हेरत । २६४
तेरे बिना हा बनाय । १२१
तेरे देखिये कौं सब । २४१
तेरे हिस हेली । १८ प्र०
तैं मुँह लगाई दासी । २०३
तोरि लाज-धामै । ४०
तोहि तौ सोच, पै । १८४
तोहि सब गावैं । २६५
थिरता अथिर सोई । ४२६
दरसन-लालसा । ५८
दसन-बसन बोली । २१६
दान के बिधान । ५६ कृ०
दाबे तकै, रस । ६० प्रे०
दिन फाग के आगनि । ४६ प्रे०
दोनों भरा लगन । ४५२, ४४ कृ०
दुख-धूम की धुँधरि मैं । १५
दुख-धाराधर भरनि । ३०५
दुरि भजौ बिलोक । ४६१
देखि धौं आरसी लै बलि नेकु । १६
देखि बिचारि बिचारि । ४६४
देखि सुजान झुकै । २१०
देखौ तुम्हैं सब । ४६२
देखौं अलबेलनि । ६१
देह सौं सनेह । २५५
देहिनी दान जौ । ४ दा०
दौरि दौरि धावनी । ६१ कृ०
दृग आगि है उमगि । १००
दृग दीजिये दीस । २६३
दृग-मीत सौं दीठिहि । ३०६
दृग फेरिनी ना । २७ प्र०
द्रुम-बेलि महारस । ३८७
द्वार ह्वै जाहुगी जू । ६१ कृ०
धनि है बन बीं । ५१ प्र०
धर ऊधर लै सु कछु । ४४७
नंद के आनंदकंद । ४६८
नंद की नवेली । ७ प्र०
नंदलाल रस । ८ दा०
नई भलनई भई । ८६ प्रे०
नाथ ह्वै हौं जाग्यौ फिरै । ४३३
नाद को सवाद । ५०६
नाम कौ न नेम । ४३ प्रे०
नाहिं पुकार करौं सुनि । ३८५
नित लाल-भरे हित । ३३३
नित हौं अनूप । ३००
नित ही चित ही । ४६३
निरखि सुजान प्यारे । २५
निसदौस उदास । ३११
निसदौस खरी । २५५
नीकी नई केसर । ७४ प्रे०
नीकी नई गुन-कर । ४७७
नीकी नासापुट हू की । ६८

नीके नैन पैन आय । ८१
नीके भए आंत । ३७१
नेकु उर धारौ । ९ कृ०
नेम लियौ सब । १ कृ०
नेहनिधान सुजान । ११८
नेह सौं भोय सँजोय । ५०७
नेही कौ बिलोकनि । २४३
नेही नैन आरत । ४३३
नेही-सिरमौर एक । १०४
नैन कहा सुनि है मन । ४३२
नैन किये नामी । २४ प्र०
नैन किए अति आकुलि । ४२२
नैन की सैन मैं । ८६ प्रे०
नैनन मैं लागि जाय । २७४
पन ऊँचो दीठि । ६० कृ०
परकाजहि देह कौं । ३६६
परदेस बसे बस । ४६१
परे रहौ कान । १ कृ०
पल भीर भए दल । ५८ प्र०
पलकौं कलपै कलपी । २७७
पर-पत्र-संपुट मैं । ६५
पहले अपनाय । ३८
पहिलैं घनआनँद सींचि । ८
पहिलैं पहचानि जु । ३६०
पाती गाम कियौ । ७७ प्र०
पाती मधि छाती छत । २०६
पावस अनूप रूप । ४०५
पावस-घूम खरी । १८५
पावस-सीतो मिलाय गुड़ी । २०२
पाप के पुंज सकेलि । २१२
पाय परे गति । ५७ प्र०
प्रानन के प्यारे प्रान । ११६
प्रानन प्रान हौ । २३५
प्रान-पपीहा पर नाचैं । ४६
प्रान परे निरमोही के । १३०
पिय के अनुराग सुहाग । ७६ प्रे०
पिय को मन है । २६ प्र०
पिय नेह भरे । ६१ प्रे०
पीठि दिये सब । ४३०
पीर को भीर ... । ४३
पीरी परि देह । १३६
पीरे पीरे फूलन को । ... प्रे०
पीतम सुजान मेरे । २४
पीतम के दौरहि । ४६३
पूरन चंद के । ८७ प्रे०
पूरन प्रेम को मंत्र । १८८
पूरी ... नाग । ३६ प्र०
प्रेम-अमृत-मकरंद । ७३ प्रे०
प्रेम की पीर ... । ४३१
प्रेम के पाने परे । ४०८
प्रेम को पयोनिधि । ११६
पीवै घनआनँद । ७०
प्यारे को सो सपनो । २८७
प्यारे सुजान के । ३१८
प्यारे सुजान को । ३५४
फल होत दिये सम के । १३४
फागुन महीना की । ४२२
फागुन मैं उनयौ । ६० प्र०
फाके सवार परे । ८ कृ०
फैलि परी अर अंबर । ४४
बंक बिसाल रँगीले रसाल । १८
बृंदाबन धाम की । ३४ प्रे०, ४८ मु०
बृंदाबन-माधुरी । ३३ प्रे०, ५२ मु०
बृंदाबन सोभा । ६० प्रे०, ५४ मु०
बंसी मैं मोहन-मंत्र । ५३ प्रे०
बधिकी सुधि लेत । २५८
बरसैं तरसैं । ४३४
बलकै बलकै मुख । ३ कृ०
बसि नैन हियें । ४० प्रे०
बहुत दिनान की । ५४

बात कनौड़ी कहा कहिये । १४८
बात कहौं उन । ४८ प्र०
बात के ऐस तें । ३८३
बासर बसंत के । ६१०
बाल सुजानन की घन । ३०८
बारि भरि-कुमार । १५२
बिकस नहिं न लख्यौं । १८०
बिकल बिषाद-भार । ४२६
बिन मूक असूक बिरोध । १४५
बिना माँगे देत । ४६ कृ०
बिभाकार-कुँवारि । ३६ प्र०
बिरच्यौ किधि वेंध न । २८१
बिरह की बेदनि । ४६०
बिरह तपन पाले । ३११
बिरह-दवाग्नि । ५०
बिरह-बिनूर पंथ । २६ प्र०
बिरहा-रवि सों घट । २०४
बिष की दवा है के । २४५
बिष ही बिसासी जन । १६८
बाँनि की रूप । ४४०
बैंगी जी बिसासी मोह । १०८
बैन कृपा किधि मौन । ५ कृ०
बैनन मैं बोली । २६६
बैरी बियोग को । २५०
बैस की निकाई । ५६
बैस नई अनुराग । ३५ प्रे०
बैस है अकेली । १०५ प्र०
ब्रज की छबि ते हैं । ४६३
ब्रज वृंदावन गिरि । ६२ प्रे०
ब्रजनाथ कहाय कहाय । ४८६
ब्रजबासिन की सहज । ५४ प्रे०
ब्रजमोहन गोहन । ५६ प्र०
ब्रजमोहन राधिका की । ३६ प्रे०
ब्रजमोहन रूप-लुक । ५३ प्र०
भई बन-बेलिन की । ५० प्र०
भएँ अनभयौ सौ । ४०८
भए अति निठुर । ६ प्र०
भरि जोबन-रंग । ४८०
भले ही रसाले । ४६८
भावनी सनेह । २० प्र०
भावते के रस ... । १६८
भाव भरे चाव । ६५ प्रे०
भूलि न कबहूँ प्रेम । ४६ कृ०
भूलनि कोऊ है सुख । २३०
भूपन की भूषन । ४० प्र०
भोर तें साँझ लौं । ८५ प्रे०
मंजु गुंज करै । ७ कृ०
मंजु मोरचंद्रिका । ६६ प्र०
मंजुल मंजुल-पुंज । १८१
मग हेरत दीठि । २४६
मन की उमाहैं । ४८८, ६३ कृ०
मन के मनोरथ । ४३४
मतिमान हूँ के मान । ४६ प्रे०
मद-उनमाद । १८१
मन जैसें कछु तुम्हैं । २६५
मन-पारद कूप लौं रूप चहैं । ११
मन पारद ज्यौं न रहै । ४००
मन मेरो अनेरो । ४५७
मनमोहन सौं । ४२५
मनमोहन नाचैं रहैं । ४२६
मरम भिदै न । २० प्र०
मरिबो बिसराम गनै । २४०
महा मनमिलन । १००
मही-कूप सम गनै । २८५
माँगत सुजान मिले को । ०३६
माधिक रूप रसाले । १३६
माधुरी गहर उठै । ४५४
मानस की बन है । १७७
मिलत न क्यौं हूँ । ४८८
मिलन तिहारो । ४४४, ६८ कृ०

मिहँदी लगि पायनि रंग लहै । ८८
मित के पलाकि । ५६ प्रे०
मीठे महा मढ़ते मुनरासि । १५
मनि मनभावन । ४६०
मांगि सुजान अनीतिन करी छिन । ७
मुकुट मनोहर मैं । ४७१
मुख-चाहनि की चित । २५०
मुख-चाहनि चाह । ७४
मुख देखत की । ४६४
मुख देखि जियौं । १८ प्रे०
मुख देखें मोहन । ४६०
मुख-नेह-सवाई । २२३
मुख हेरि न हेरनि रंक मयंक । १०
मुसकानि सबै अंग । २५२
मूरति सिंगार की । ३०८
मेरी मति बावरी । २०५
मेरे प्रान सींचन । ४८६
मेराइ जान जी मानत मोहि । ५
मेरो चित चाहै । ६२८
मेरो जीव तोहि चाहै । २४६
मो पलका नहि जाय । २०७
मो रस-आसनि जो है । ८६
मो चित जी सुम्हैं । ३०६
मोरचंद्रिका की । २३०
मोहन के बदन । ४१ प्रे०
मोहन चलत बने । ५८ प्र०
मोहन अनूप रूप । २७६
मोहन-मूरति की । ४८६
मोहि दोहि-कारक ही । ६०
मोहि दूर-दोष । १९३
मोहि निहारि नू नू । ४०३
मोहि मेर जिय की । १२८
मृदु मूरति लाल । २५३
मोह नेह बिहारी । ४४३
याहि भायैं आवन की । १८५
याहि दीसैं स्याम । ५६ सु०, ३२ प्रे०
यहै मन है हरि । ४०५
रंग भरयौ उन । ५०२
रंग भरयौ सु न । १३ सु०
रंग लियौ अबलानि के । ४०
रतिरंग-पागे प्रीति । २६
रति-सौति हर्यौ । ३१
रति-सुख-वेद । २३२
रस-आरस भोय भर्यौ । १७
रस पीवन थाकि । ४५४
रसना बजमू सुनाम । ५० प्रे०
रसमूरति स्याम सुजान लख्यौ । १०
रस-रंग-भरी मृदु । ४३६
रस-रीति जागी जिय । ३५६
रससागर नागर स्याम लख्यौ । २३
रसहि पियास प्यासे । १५५
रसिक रंगीले भली । ४२७, ३६ कृ०
रसिक रसीले हौ । ३५८
रसिक-सिरोमनि । २०८
रसिया रंगीले सब । ४१ प्र०
रहौ न कैसें । ३५ कृ०
रहौ मिलि भाँति । ७१ प्रे०
राजदुलार-भरी । १२ सु०
रातिद्यौस कटक । २०५
राधा नवयौवन । २५४
राधा नवेली सहेली । ३०४
राधा-रूप-साधा । ६३ प्रे०
राधा-हरि-चारनि । ३५ प्रे०
राधे सुजान हरी चित है । ३०४
रावरो रूप की रीति नई । ११४
रावरे गुनानि बाँधि । ६६
रावरे रूप की रीति अनूप । ४१
रास मैं सुरस । ४२०
रिसभरी मोहिबे को । १८८
रिस-रूसनी कहिये । ६६

रीझि निहारि न बूझि परै । ७५
रीझि बिकाई निकाई पै रीझि । ३४
रीति यौं चेटक की । ६० प्रे०
रूपै है गुमान । ४४ ग०
रूप-उजियारे गात । २६१
रूप की उज्जल पाँति । ६७
रूप के आरसि झाँकि है सौंहैं । ७३
रूप-निधान दिखाई दियैं । १८२
रूप-पारधी जी । १९ प्र०
रूप-गुन-आगरि । १५२
रूप-गुन-पैंड़ी सु । १०६
रूप-गुन-मद । ५०
रूप-चमूप सज्यौ । ४८
रूप दुकन्नी तुम्हैं देति । १५०
रूप धरे धुनि लौं घन-आनँद । ५०
रूप-निकाई अनूप । ४४६
रूपनिधान सुजान सखी बिन । २
रूपनिधान सखी । २
रूप-मतवारी घन । २०७
रूप सुभाय लगी । १०
रूप सुरस के राज । ४५४
रूप-सुधारस-प्यास । ४५८
रैन-बिना घुटियो । १० ग०
रोक्यौ रहै अब । ४२ म०
रोम रोम रसना ह्वै । १८४
लखौं नहीं आनन । ८८ क०
लखियै रहै लालसा । २३६
लगी है लगनि प्यारे । २४२
लगियै तुम्हैं हूँ । ६६ प्र०
लरिकाई-प्रदोष मैं । ३६६
ललचौंहीं चाहनि भई । ३४४
ललित उमंग-बेली । ७७
ललित तमालनि सौं । ६०
ललित लसौंहीं सु । १५२
लौंकि लड़कि आवै । ७६
लहलहैं कहा धौं । ७८ प्र०
लहौं मन दिया लखि । ७६
लाल अभिलाषन । २५ प्र०
लालनि भौंनि भरे । ५५
लाजनि लपेटी । ९ प्र०
लाल-ओसी चाहनि चहकी । २७५
लाल के मनहीं मैं । ४६०
लाल पाग बाँधे । ४० प्र०
लाल लपेटी सुहाँ । ३८८
लालसा जानि न मन । १३०
लागी अभिलाष कौ । ७२ प्र०
लेहु भेषा गहि । ६ प्र०
लै हौं रहै वाँ सदा मन । १०७
लोयनि लाले गुलाल । १२५
वेई कुंज पुंज । २६७
वह माधुरियै सौं भरी । १५५
वहाँ जमुना है । ७८ प्र०
वहै मुसक्यानि । ४ प्र०
संग लगी फिरौ हौ । ४५६, ४७ कृ०
साँझ ही लौं गुमान । ६३ प्र०
सखि भूपै सुहाग । ३३०
सजनी रजनी-अंदिन देखैं बिना । १४
सदा कृपानिधान ही । ३५२
सदा देव मूरति । ३८ कृ०
सपने की संपति लौं । ६८ प्र०
सब और तें ऐंचि कै । ६४ प्र०
सबद-सुरूप पाहूँ । ४४६
सब ठौर मिले पर । २०६
सब बिधि लायक । २०३
सब सौं मिलि रहिहि । ६४
सभी के सरूप धरि । ३६४
सहज-उज्यारौ रूप । २६६
सहज सुगंध भीति । ६६ प्र०
सहज सुहायौ राधा । १६४
साँच के साजन-भरे सुर । १११

साँवरे हैल की आनि । १४४
साँवरे-गुमान-रंग । २६ कृ०
साँसनि सजि सुधानि । ४०१
साँसा-कुल टूटि । २९६
सावन जिनके तें । २६ कृ०
सावन-पैंछ गये । २४ प्र०
सावन ही मन रँगे । ११५
सावन-भावन हैं । ३३८
साहस सयान जान । १६
सिसुताई-निसि । ८८ प्रे०
सींचे रस-राग । ६३ प्रे०
सोनग सुंदर मोहन । ९ प्र०
सास ... । २०५
सुंदर सरस । ४४ प्र०
सुंदर सुजान जान । १३८
सुरनि समाज साज । २१७
सुख-भोर करौ मन । १६०
सुधा तें स्रवत विष । २८४
सुधि करें भूल की । ४४५, ३४ कृ०
सुधि भूलि गई लिखि । ४२६, ३५ कृ०
सुधि होत सुजान । १६३
सुनि कै ... न रावरे । ४६६
सुनि बेनु को मादक । ४५२
सुनि री सजनी रजनी । १६४
सुनि रे मधुमंगल । ९ द्रा०
सुनि सुनि रावरे । १४ प्र०
सुरझै किन रे । ५४ कृ०
सुरति करौ तौ । १७५
सूझ परे सुनि झाँक । ४७५
सूझै नहीं सुरझै । २६५
सूने घर दृग-भौन । ४६८
सोंध की बास उसासहि । १६३
सोऊँ न सोयबो । २२५
सोधु मढ़ुलैरो, मेरो । ३०८
सोधु है असानि । २३६
साँझै सनी भनकै । १८ प्रे०
सोभा को निकेत । ८६
सोभा-बरसाती सुभ । १५६
सोभा लोभ लागि संग । ११८
सोभा-सुनक की संधिलाई । १०३
सौंपन भाग लगै । ५०
स्याम-पंग संगिनी । ३७ प्र०
स्याम घटा लपटी थिर । २३८
स्याम मनोहर भाम । ३८९
स्याम धामै बसे । ३२ प्र०, ५५ कृ०
स्याम-तन-ऐंठी दीठि । ४८ प्र०
स्याम सुजान सखी । २० द्रा०
स्याम-सुजान-हियैं । ४ कृ०
हम आपनी सों । ४३१
हम एक तिहारे । ३१६
हम सों पिय सौंचियै । ४०१
हम सों हित कै कित । २५७
हमैं तुम्हैं ... । २६१
हरि कें हिय मैं । ३ कृ०
हरि-नेह-गुँफौ लहि । ७८ प्र०
हरि राधा जहाँ जहाँ । ४८०
हरि हू के ... । ११ कृ०
हाथ परौ हरि के । २८ प्र०
हाय दिखाई सनेह । २३१
हारे उपाय, कहा । ४३७, ३७ कृ०
हाहा करि हारी । २२२
हित के सँजोगी तौ । ७१
हित-पूरनि पै दिया । ६६
हिय भूलि न कबहूँ सुधि क्यौं । ६
हिय की गति जानत । ३८४
हियै मैं जु आरति । ४०६
हिलग अनोखी कहौ । ६ प्र०
हौन कहूँ उत मौन अधीन । ४
हुलसि भरी मुसकानि । २६२
ह्वै उनए सु नये न । २ द्रा०

होंसें सुरे हुरे हलवे । ८४ पृ०
हांनि सों महली पै । ४१७
हौ गुनरासि रहौ । २० पृ०

अँखियनि लाग्यौई रहै । २५१
अँखियाँ भईं हैं दास । २६२
अँखिया उड़ि उड़ि । ४२८
अंजन दै गो रहै । ४६२
अंतर में बैठे कहा । २५१
अगनित गुन गावै । ७०८
अगनित चलिमा मनि । ६६४
अचगरे तुमहीं देखे । ६७८
अचानक भेंटी री । ६४०
अजौं सुरनौं की ढेर । ७३७
अटकनि हुनै निपट । ५६ पृ०
अटपटे पेंचनि । ३२७
अटारे होरी के । ६६२
अनी मिरचोलणा । ८८२
अति रंगभीजी राति । ७५६
अति रस बाढ्यौ री । ४८६
अति सुगंध मलयज । ७६४
अमम-उजारन मैं । ५६२
अनमनि सुखियाँ न बोली । १२४
अमलि कनखि ज्यौं । ८७६
अनी हिमभाग कोउन । २१२
अनु रे मेरी प्रीति । ६
अनोखे थे हिय । ७०४
अपनी और हालिन देखी । २४५
अपने गुन आगहि । १०८४
अपार गुनदाम हौ । ३
अब कछु भाषा नाहिं रह्यौ । ८६
अब तुम नय तुम । ६५
अब तू दै री रूप चौतन । १०२
अब तौ जानी है तू । २३३

कौ सु भले की कहा । ४८३
कै निसवासिल । ६३
कहै कौन यहाँ भाग । ३०७

पद

अब तौ परि गयौ । ५७
अब तौ आतो लालसि । २१६
अब तौ यह गह । १६८
अब मेरे तुमसौं । ४६
अब मेरा तुमसौं । १८
अब मेरा स्वारथ तू । २
अब मोहिं रासि । ७३८
अब यह पीरी । ८
अब लै राखिये । ६१५
अपे वंसीवालिया कान्ह । ७६१
अब साहि दिज री । ५४५
अरी गगा हौं तेरी । ७४६
अरी चलि चलि बढ़ि । ६४४
अरी तेरे कान्ह कौं । ७०१
अरी पनघटवाँ आलि । ६६६
अरी पमघटवाँ जान । ७००
अरी मेरी अँखियनि । ८५८
अरी मेरे आनन के । ८८४
अरी मैं कैसे भरौं । ६४६
अरे अरे साँवरे, तैं । ८६५
अरे हाँ रे तोरे । १८१
अवधि दरो न आए । ३६
असौंनू चेटक लाह । ४४
अहवाँ, हिमजानो । ६०६
कहौ प्यारे कित्ते गाई । ६८
कहौ प्यारे हमसौं । ६४६
अहौ हरि आए । ४७४
आँखिन की सुख । ४३३
आँखिन पाँखी री । ८४३
आँखिन सौं आँखि । २१७

आँखिनि माँहीं आनि । ६२
आँखिं लखिबे दिखौ । ४१७
आनि वो आयौं वो आनि । २६५
आनौ साँवरौ । १०५
आछ्यौ आछ्यौ लालन । १०५७
आइ सुधि लेहू । २८७
आई रसमसी उठि । ४५६
आई रितु सुहाई । ६३१
आई री बहुरि हुलास । ८६१
आई है उनींदी तू । ४६
आए आप ही बादर । ४५२
आए तू आए भोर । ७१
आए नैन गुलाब । २०५
आए बन तैं गोधन । ३०२
आए री बदरवा आए । ६३६
आए री बदरवा नीके । ६०२
आए ही तू आए ही । ६३०
आए ही लाल रँगमगे । ७८६
आगम रितुराज के । ६२६
आछी गति बाजे । ३२६
आज मेरी चूनरी । ६२६
आज मेरी महँदी । १०१६
आज प्यारी पिय के । ८८
आज बनि बनि ठन । ४११
आज हमारे ठाकुर । १७६
आजु कान्ह कुँवर की । ७२०
आजु के दिन की हौं । ५२०
आजु गिरि धारनौ हो । ८८३
आजु निपट दिखै हैं । ६८१
आजु बधावन, सुंदर । ८६५
आजु बधावनो नंद । ६५६
आजु मनो री सुख । ५७५
आजु मदन को । ६४५
आजु मंदिरवा दरस । ६२५
आजु मेरे आए मया । ६६३
आज मेरे आए । ६८५
आज मोहि तुमहिं बन्यौ । ६५१
आजु राधा मनि । ७४८
आजु हमारे काज । ६४१
आदि हिंडोल गायौ । ७६४
आनँद मंगलदाता । ५०१
आनि बन्यौ होरी । २८६
आप आय कै निकसि । ८०१
आयो आयौ चौमासा । ७१८
आयौ सज्जन विकार भरयौ । ५१ पृ०
आरति करन । १४७
आलौ री नंद भवन । ७२४
आवत है हो हरि । ६३३
आवनि पानी कुँवर । ५६७
आवनि है सुरनौं की ढेर । ७२०
आवन दै मागी । ६७८
आव रे नाव रे निति । ५२४
आवे रे रैन-स्यामन । ८१४
आवौ थो तू आवौ । ६४८
आवै आवै नहि । ५६५
आवै आवै रे । ६६५
आवौ आवौ हो सनेही । ५६६
आवौ गावौ रंग । १०१४
आवौ री मिलि गावौ । ५७६
आवौ री मिलि गावौ सुहेलरा । ६८८
आसा तुमहीं सौं लागि रही । ३१
इतनी माँगी हौं हरि । ६४२
इन लकै अब उघरे । ८८
इन विरह फाग । १००६
उछरि उघार माँ छिपै । ८६४
उठि चली पिय पै । ७६०
उनींदी अँखियाँन । २२१
उन्हीं कहा मेरी सौं । २६०
उनहिं तुम्हैं चाही । ७६८
उमँडि उमाँग घुमँडि । ६८५

उमहि उमहि रस । ३१४
उलहनो कहि री हम । ५५५
एक गाँव के बास । ६७
एक पलकौं भुलावनि । ७५६
एक सरक हूँ । ८००
एक ही नगर बसत । ८५७
ए गागरी भरन गई । ८८५
ए जू स्याम रसीले । २५१
ए मेरी अंखियनि मैं । ११५
ए हेली देखी मुरली । ४५७
ए नैना तोहि बरजौं । १०३६
ए मेरी ननदी री । ८८३
ए री रूप-सुधा पे राखे । ३२४
ए रो हौं तो चाहुँगी री । १०५३
ए रे निरमोहिया । ९०५०
ऐहो कामरि को ओढ़ी । ८३५
ऐहो ऐसी फिर । ८३१
ऐसो होरी खेलें । ३७१
ऐसो कहो हमसों । १६६
ऐसो कौन पै माति है । ३५०
ऐसो चाहिं सैं बन । ५५०
ऐसे आरती करो । २४०
ऐसे ऐसे मुरली । २२०
ऐसे और कौन । ९४५
ऐसे खेलियै जिन । १००२
ऐसे हो ऐसे लाल । १५
ऐसो को जो लिहारे । २३७
ऐसो ढैल मंद को । १७७
ऐसो मन कहाँ लौं । ५३६
कछु न सुधि पावति । ६८२
कछु रह्यौ अंजन । १३०
कछु लख्यो न परै । ४७७
कठिन हियरा को पीर । ८७६
कन्हैया मोही सौं रसवाद । ३००
कन्हैया रंगनि भीजे । ८८१
कब लौं धरिन । ३८६
कब सरस करिहौ । ८३
कब हूँ हौ नैननि । ४०
करो सुख ! मथुरा को । १०३८
करो सु क्यौं चित चाह नहीं । ५३ ५०
करी नो-कुल को । ५५६
कहाँ पाऊँ मार नाहि । ५६३
कहाँ नाइ बिराम करे । ४६२
कहाँ पाऊँ हौ हरि । ७६७
कहा करेगो कोई । २६१
कहा करौं असुधा । ६७०
कहा तू अनन हैं । ४७३
कहा बनि आई है । ८०८
कहा मिथ बोलत है । ८६४
कहा नन मिलाहिं होत । ६९६
कहा मेरे गोकुल । ६२३
कहा सुख होत है । ४३६
कहा हौं कीजिये । ५४३
काजर कहा हरि । ६९७
काहि सुघर सनेही स्याम । ८८८
कहूँ किनि मोसों बिली । ४८६
कहूँ नैन मन कहूँ । ३५
कान्ह-कथा कहिहैं । ५५६
काम्ह कान्ह रह । ५६
कान्ह कितेक दिननि तें । ९६४
कान्ह को देख्यौ । ७०३
कान्ह की बाँसुरिया रंगनि । २०२
कान्ह की बाँसुरिया है । ६५४
कान्ह चरावत गैया । ७५३
कान्ह बिहारी मुरली । ६३
कान्ह गुमान नै नैननि । ९९६
कान्ह मो दधौ चितयो । ४०२
कान्हर प्यारी बाँसुरी । ६१७

कान्हर हैं गोकुल । ८८०
कान्हा बाँसुरी । २१७
कामरिया की बात । ६३५
कालिंदी जमुना । ४३७
कोकिला-कुल-बोलत । ५५५
कोरनि भई जगमग । ६६२
कौ हो है उजाहो । ५४८
कुसुमित नगर आज । ७९७
कृपा कलपतरु । ९४ ७०
कृपा-हारविनी । ४४५
कोमल-गुन गाइ लो । ६०
कुटल-नगमनि रस । ८३७
केसरि भीर किये । ७७३
कैसी नीकी सोरी । २४३
कैसे कैसे मन । ४५१
कैसैं बफवार हो । ६६५
कैसैं धीर-रहै । २२
कैसैं भरौं गुम बिना । १७२
कैसैं मिलन बने । ६४६
कैसैं रहौं री अब । ६६६
कोई है निसैयैं । १५५
कोऊ है सो समुझावै । ४८८
को पावै उनको । ७६५
को पावै धीर । २२
को पावै मेरे मन । ६६४
को पावै से भेद । ३८२
को पावै हो सब । ७८५
कोई न बिसाखा सह । ७१६
कौन के जगी ये । २४४
कौन जानै किनहिं किनहिं । ७५८
कौन जानी री या । ८४
कौन देस बसायो है । ४०६
कौन पै गावत गावत । ७३५
कौन दुख परी है । ६५
कौसिल्या की कोखि । ८२७
क्यौं जमुना याँ । २१६
क्यौं जू काम्ह कहौ । १४८
क्यौं लकवानी काम सौ । ६२४
क्यौं रैनियाँ मै नैहीं । १२५
क्यौं सुख दै जुग । १८०
खेलत सरस फागु । ७२४
खेलत होरी स्याम जाल । १००७
खोलि कितहू आए । ६१२
खेलावत बसंत रंगोला । ७१५
गंगा गंगा गंगा । ५६७
गई उनराग पटपटी । १३०
गनरिया मरन न । ६२७
गज चाल चलत सोचन । १०२७
गन गोपी गुमा । ३५३
गनि गनि लगति । ५०८
गरजि गगन लागे । १०५१
गरत जाली-तके । ४७६
गाइ कै री रसना । १३५
गागरि दै रे उपाइ । ४४३
गावत सुबरसाय । ३४२
गावै होरी खेल । २८२
गिरिधर आनँदकंद । ३३१
गिरिराज-कंदरा-मंदिर । ८५३
गिरिराज दाहिनौ देत । ८२१
गुजरिया गुमान के संग । ८५७
गुजरिया तू रँगराधा । २७६
गुन गाइ गाइ अभी । ४८७
गुन गाइ लै गोकुलानंद । ६६७
गुन गावत मन । १५४
गुन गुपाल के गाय । ७६३
गुलाल भरी हूँ आई है । २८८
गूढ़-गुन साख्यौ नव । ६४
गैयनि चराय आय । ७४०
गोकुल की नारि नवत । ८४०
गोकुल के कान्ह । ४८०

गोकुल गाइयाँ गोरी । २६८
गोकुल गाँवनि सन्यौ है । २०८
गोकुल घर घर । ५०
गोकुल-चंद-चन्द्रिका ५८६
गोकुल की कान्ह । ५०७
गोकुल बधाई माई । ५४८
गोकुल में होत यह । ६६२
गोकुला घाँ के ग्वार । ८३४
गोपाल तुम्हरई गुन । ४
गोपाल प्यारे भला किया । ८६६
गोपाल भजो सोइये १६४
गोपी ग्वाल मिलि । ६१५
गोपी ग्वाल गुपाल । २६१
गोपीनायक गोपी । ६२८
गोबरधन धारी । १५४
गोरस जो चाहै तौ । ८१६
गोरी गोरी की कात । ३४३
गोरी गोरी दिनन की । ६६३
गोरे बदन बिथुरे । ८७१
गौर-श्याम-चारनि को । १६६
ग्वालि ध्यान धारना । ४६०
घनस्याम पियारे । ८६७
घर्साक रह्यौ री बन । २२६
घरघर बँसुरिया । ७१४
घरघर बँसुरिया की । ६६२
घुम्मर पँवरी । ४६७
घूमरे नैन सहज सरी । ६६४
घेरि बन राखत । ५३३
घोरप नृपति मद ६५६
चंचल नैननि री । ८५
चटक केलादनि की । ६१
चटपटी लगाइ गए । ३६८
चतुर खिलार खेल की । ३०८
चपल चतुर कान्हर । ५११
चले फिरि जाहु । ५५२
चरन निहारै सब । ३२२
चलि री चलि राधे । १०१६
चलौ री बधाई नंद । ६६६
चितवनि चकचौंधी । १११
चुनरिया भीजन लागी । १६७
चौपरि खुलि काहे । ६३१
चोरो हरस दिखाओं । ४६४
छतियाँ छजमनै २६७
छबीलो रसिकराय । ६६८
छाड़ौ जू तुम छाड़ौ । २२०
छैल छबीलो मनमोहन । ३७७
छैलना रँग रँगीलाल । ४६५
छैल साँवरिया खेले । २२६
जगतारन करना । ३३३
जनम जनम गुन । ४६१
जनमे राम भवन । ८२४
जब जब निकसत । ६१०
जब जब सुधि आवै । २६६
जब तैं तुम दूरि है । ४४०
जब तें सब स्याम । ६३६
जब सब मल्हार । ३०६
जब सुधि आवति । ६१६
जमुना अपनो दरसन । ३७५
जमुना कालिंदी जमुना । ४८१
जमुना जनक जगत । ७४३
जमुना जमुनाही । ४४७
जमुना तरंगनि चावौं । १६५
जमुना-तीर कान्ह । ८२७
जमुना तीर की बतियाँ । ६८६
जमुना-तीर की बातें । ८२३
जमुना तीर बजावै । ५४०
जमुना देखी देखी भावै । ८०४
जमुना देखे ही । ४३४
जमुना देखी दीनदयाले । ४६१
जमुना-सरस भरत । ५२४

जमुना सरस सिंगार । १३८
जय जय जय जय । ६२७
जयति जयति नरसिंह । १६६
जयति रोहिणीनंदन । ६१२
जसुमति आनंद । ३४१
जसोमति जननी । ८३३
जहाँ जहाँ गान रूप । १६६
जहाँ जहाँ डोलत री । ५४२
जहाँ तुम होत खेलन । १०४२
जाको मन बाँसुरी । ४००
जागि री जागि भोर । ३६७
जागौ जागौ हो । ६
जानिहौं जौ आज । ७४७
जा पै तुम अपने । ६३४
जिद निमानो ! मपटी । ८५०
जिनके मन हरि । ८२७
जिन तुम चाह लिये । २६८
जिनके मन सुविचार परे । १२१
जिन सौं ज्ञान लै ही लौं । ३६४
जियरा मैं क्यों समझाऊं । ५६
जिहि लजात सु न कोई स्वामी । ५८ फु०
जिन्ह अखंडा मैया । ७१२
जुवती ऐसें काम करै । ६०१
जेठ दुपहरी को सुख । ७४८
जेमत कहियाँ करन । ८५०
जै जमुना जीवै । ४७१
जै जमुना मंगल । ४३०
जै जै जै श्री वामन । ६३३
जैसी गैयाँ ले हरि । ६०
जौ तुम बनावौगे । ७२०
जोबन मौसी बसंत ६६८
जो सुख होत है ब्रज । ७३०
जो कोउ वृंदावन । ६६२
जौ तुम दियौ है । ६०३
जौन देसै तौन । ५६६
जो पै लौं सरस । ७३ फु०
ज्यौं ज्यौं निरखि । ४३०
ज्यौं मैं खोज किया । २६७
ज्यौं हो ज्यौं मी चाही । ७६१
झँझावात पवनि । ४५७
झुंझला - दयौहीं रही । ८७४
झुनावलि अवलोकी । ५२६
झूलत फूल-डोल । २१७
झूलत हिंडोलना स्याम । ५१६
झूलि झुलावति रसिक । ५८६
झोनियो कांति दरी ४५३
टेर मुरली की सोंहि । ५७८
ठगिया बसत है री । ५५१
डगमगे चरन । १६६
ढंगन न छोड़े मेरी । ८०४
ढोल की झुलनि में । ६३३
ढोलनि पर अँगन । १००
तरकि छिया भाजी लाज । ८६०
तौ न देखौही । ४१८
तनपेहू तनपेहू पैहू । २७५
तनक सी मुरलिया । ६०
तरुनितनुका तोहि तकीं । ४०३
तान-सुर ताल सौं । १८
तारे गनत गनत निसि । ६०६
ताल सुर भेद जानत । ७६४
तिन सब कछु सापी । ५८५
तिलक महावर को । ८३०
तिहारी श्याम लागि । १४६
तिहारी कौन टेव है । २०२
तिहारी पीत प्यारे । ३५२
तिहारी बतियाँ कहति । ८६६
तिहारे कौन कौन गुन । ७४
तिहारे दरस की आसा । ४६८
तिहारे देखे बिना । ८६८
तिहारो कान्हर कौन । २०३

तिहारौ नेह चौवाई । ८३०
तिहारे रस कौन । २५४
तिहारो सुख जो । ३३८
तुम उनहीं सौं हारे । २०४
तुम ऐसे कैसे रहौ । ६६४
तुमकौं जे सुमिरें । ८८६
तुमकौं देखत हौं । १०२५
तुम तजौ मेरी बांहयौ । ४४२
तुम तन मोर्यो लागत । ६०
तुम देखौ या मुरलिया । १०६
तुमसौं न नेह । ३६५
तुमसौं विनती करिये । १०१
तुमसौं मेरी प्रीति । १६२
तुमहिं रिझाइ रिझाइ । ९०७
तुमहिं रिझाऊं हौं । ३०६
तुम हित नित्य रचौ । ९०५
तुमहिं निरखि ही । ७६
तुमहीं हो हरि । १३५
तुम्हीं सब मोरी मनुवा । ८८७
तुम्हारे सुख सुखी । २०७
तुम्हारो सौं मोहिं तुम । ५
तुम्हें काहू की कछु कहा । १३४
तुम्हें कौ रिझाइ सकै । २४६
तुम्हें जु कछु भाइ । ७१०
तुम्हें रुचै सो रचौ । ५७८०
तुम्हें लिये हौं फिरौं फिरौं । २१२
तू अब चाहौ सो । २००
तू नैन दरसन । २०५
तू को जानत है । ८८३
तू मन मानी है । २६५
तू लाडिलौ रो मोहि । १५८
तेरी गति-लीन की । ३८०
तेरी निकाई लोरी । २०६
तेरी अलाप लीजै । ११३, ४३१
तेरी कटाक्ष भलानि पर । ८३८
तेरी सूरति देखवे कौं । ९०६
तेरे नख [illegible] । १०५४
तेरे नैनौं से [illegible] । १०४४
तेरे मुसकान कौं । ४५८
तेरे ही मुख कौं । ६६०
तैं कहा है दीना । ४६७
तैंखो [illegible] नासका । ६४५
तैं रस-बस कार जानी । ११७
तोरि आसु [illegible] । ३८१
थे कैसी हांसर खेलौ । ४६५
दरबसा नु सरद । ५८४
दसरथ-नन्दन कौं । ८२३
दिन देव दिवा [illegible] । ६६८
दुपहरी जेठ की । ३६३
दुःजन यहि । ८६०
दुखद दुराशा दूरि करौ । २४२
दुखल मन सदा-दुखन । ८७२
दमानि मनोरथदायक । ६८६
देखन की करौ । ५२५
देखन कौ कान हौ । ८७१
देखन मे देखौ काहू । ८६२
देखि सखी [illegible] । ६३८
देखि सुहाई सारद । ५३५
देखौ देखौ जमुना । ५६८
देखौ देखौ हा [illegible] । ४६३
देखौ देखौ हा वृन्दावन । १०६०
देखौ राधा को सुहाग । ६७२
देखौ हा राधा कौ । ५८६
देखौं देखौं राधा कौ । ६६०
देखौं नेहौ नंद । ६२१
देखौ पुजि पूजि बर । ३४४
देखा कैसे भोरहोंगी । ४६
दौड़ [illegible] । ४४६
धनि धनि राधा कौ । ६३४

धनि बन-आँगन आई । १३५
धरम एक ही मन । ५८८
धरकुमार [illegible] । २५५
धन कै नव धन । १०५
धन को आनंद कहौ । ६०१
नंद किशोरी नाम । ९५७
नंद निहारें दिन दिन । ७५६
नन्दनंद प्रिय मैं । २०५
नंदनंदन चरन [illegible] । ६३६
नंदनंदन-चरन अरुन । ८८
नंदनंदन सौं नैन । ८०५
नंद नंदीसुर बास । ५३४
नंद भवन की शोभा । ३०८
नंद महर के आगन । १०४६
नंद महर को कान्ह । ४०८
नंदरानी कुपनानु । ६८६
नंदलाला है आँगें । २०१०
नंदलाल [illegible] होरी । ८८०
नंदमहा उनमनी । २०२६
नई पाहुनी आई है । ३०६
न जानिये कौन भाँति । ३८४
न जानूं कौन भाँति । १०३५
न [illegible] कब पाऊँगा । २५५
नटवर नैंदलाल । ५३०
न रहै मेरा मन । ३६४
नव बसंत फूल्यौ है । ६०३
नव वृंदावन नव । ७६३
नवल बना रो नवेली । ५००
नाचें नाचें [illegible] । ६६०
नादमहल गिरिवर । ५०८
निकसि निकसि मन । ८५५
निगोड़ी [illegible] । ६१५
नित [illegible] । ८१५
नित विहार वृंदावन । ६३७
निपट अलबेली । ६६८
निपट निठुर बिहारी । ४३
निपट निठुर बिहारी हौ । २६५
निपट निपुन नागर । ४३
निपट [illegible] । ५५४
निरख [illegible] । ६८७
निसौंनिसौं सुख बिना । १६१
निसा [illegible] । ८४६
निसा [illegible] । ८३६
निसा [illegible] जागी हैं । १११
नींद [illegible] न आवे । १०५४
नित्यनवी वृंदावन । ५५७
नीके रही हू प्रान । ५८
नीके सुधरी [illegible] । ३०८
[illegible] । ८३१
नैनन देखिबे को आनि । १०४५
नैनन मन मोम । ५५६
नैना मेरे [illegible] । ८४१
नैना तरसत है दिन । ८०५
पकरि [illegible] । ४८३
पगरैया [illegible] । ७५०
पन-[illegible] । ५८
प [illegible] । ४४६
[illegible] । ६०१
परसत [illegible] । ५०८
परि [illegible]-पास । ५५४
पहिरि [illegible] । ३०१
पहिरि [illegible] । ६६
पाय [illegible] । ५६८
पिय को [illegible] । ५३४
पुकारि पुकारि हारी । ८०७
[illegible] । ६५८
[illegible] । ८६
[illegible] । ४२७
प्यारे [illegible] मेरी । २०३४
प्यारे तिहारे मिलिबे कौं । १२६

प्रगटी है बसंत-गुन । २६४
प्रगटी है मंगल । ६५०
प्रात उठे ही स्याम । ५२७
प्रान अधार हौं तू मेरे । ७०६
प्रान मेरे प्रेम संग । १०८६
प्रानसनेही साँवरे । २४४
प्रियसूरति देखन कौं । १५६
प्रीतम प्यारो बनाइ । ३६६
प्रीति करी सो मैं । १०४०
प्रेम तो गोपिनि । २६७
फागुन गायौ है ब्रज । ७७५
फागुन-सुख बिलसत मोहन । ८६६
फूली जोन्ह सुहाई । ८६६
फूली साँझ-जुन्हाई । ६००
बंदौं बिहारि चरन । ७६
बंसी कहा है । ४३५
बंसी की धुनि सुनि स्याम । २१८
बंसी बजावैं रंग सौं । ८४२
बंसी बाजि बाजि घर । ५८२
बंसी बजाइ बजाइ । ६०४
बंसी बजै मनमोहन । ६६
बंसी मोहन की । २६१
बँसुरिया मैं केहर । १८६
बँसुरिया मोहि नें । ५५६
बगर बगर में होरी । ४१६
बजावै काहू तानी । ३५७
बजावै साँवरो बंसी । ४०१
बजै वृषभानु कैं । ६४८
बड़ा हने आए बासन । ८३६
बधाऊँ नए नए नए । ७४६
बधाई नंद के आई । ६४२
बधावनो नंद के । ६५८
बधावो हौं हौं गाऊँ । ६५३
बन तैं ब्रजमोहन । ४८
बन बजी बँसुरिया । ५१६
बनवारी श्री जिन । ४८६
बनवारी के सैयाँ । ६११
बनवारी बन बन । ३८५
बनवारी रे तैं । ५०५
बनवासी कान्हा बिन । ८४५
बनि बनि आई ब्रज । ६४७
बरजत बरजत आँखियनि । ३३०
बरजि रहो री हौं न । ४३८
बरजि री बरजि है । १६
बरजि री या मुरली । ५६०
बरसन मेरी रसना । ७६
बरसाने की गैल सुहाई । ७४५
बरसानेवारी राधा । ७४२
बरसै घमड़ि न बृंदावन । ४६६
बलदेव बलदेव बेस । ६२६
बलिहारी गोकुल । ४५८
बलिहारी हो कान्ह । ११२
बलैया लेहुँ बाबु । ४७२
बसत नंदराइ बान । १०४
बसंत फूल्यौ री । ५०२
बसन सुघरि बदन । ८२८
बसि कर करि कर्यौ । ३६२
बाँस रहे तरनि । ५०४
बहुत दिनन को आस । ८१७
बहुतनि सौं बहुत । ७२२
बाँसुरी है बेर ! बच्यौ । २१५
बाँसुरिया सौं बहु । ३६७
दाखिल ने बिसाई । ५८८
मानैं मन मधुर बैन । ६२६
मानसी सेवन विधी । ११
बिछुरिबे को दुख । ६३५
बिरहा ऐसी है । ८३६
बिरहा हारी लोचन । ४६०
बिरहै सुमिरि । ११८
बिजुस न करिये हरि । १०४६

बिसवासी हौ भए । ३६२
बिहारन वृंदावन रितु । ५८०
बूंदैं आवैं आवैं । ६३५
बूँदावन बृंदावन । ८५४
वृंदावन आनंदघन । १०४४
वृंदावन नीको लागै है । ७०१
वृंदावन बास कान्ह । ४४८
वृंदावन मधि गयु । २६३
वृंदावन-महिमा कौन । ३३६
वृंदावनवासी ग्वाल है । ११४
वृषभान-कुँवरि के । ८१०
वृषभान-भवन मैं । ६५६
बैगि लै आव री । ६४७
बैन बजावै बनमाली । ८४७
बैरनि मुरलि बजि लो । ७४
ब्रज की किन्नवारि । ४८२
ब्रज के द्रुमनि । ८८२
ब्रज के कुलनि लै । ३८७
ब्रज को बिरहन । ५३०
ब्रज को विरह । ६८४
ब्रज की बिरह सही । ४६३
ब्रजनाथ बनैयाँ मो । ७७६
ब्रजपति-मंदिर मैं । ५८७
ब्रजवासी कान्हा हौ । ३६०
ब्रज मंगल आजु । ६५८
ब्रज सारी सरस । ५११
ब्रजमोहन की प्यारी । २७
ब्रजमोहन की बलिमा । ५१३
ब्रजमोहन तू निपट । ६०७
ब्रजमोहन बैठ्यो । ७०८
ब्रजमोहन प्यारे । ६२२
ब्रजमोहन प्यारे को । २६८
ब्रजमोहन प्रानप्यारे । २६५
ब्रजमोहन सौं प्रीति । २३२
भगवानी पढ़ई । ६०८
भजि मन कृपा । २३ कृ०
भट्ट निपट अजान हती । ८३७
भरोसे जीबो आन रह्यो । २७
भरोसो राखे हमैं । ६७७
भले बनि आए हो । ६८०
भागनि भरी ललिता । ८०८
भाजि न आय प्रभु । १०३५
भावती चलियनि लगि । २०६
भूल भई की सुरति करौ । ५४ कृ०
भूलि मेरे श्याम न । ५०५
भुज भरि भरि गाऊँ । ६७५
भुरहरै हो कान्ह । २४३
भुरहरै है बोलत । ४३२
मंगल आरति जगमंगल । ७०६
मंगलनिधि ब्रज । १
मंजन करि कंचन । ८६६
मंजुल मधि लटकि । ४०६
मंडियाना मजनहो । ३४४
मंदिलरा बाजे राग । ६७७
मंदिलरा में चाली । ६१८
मथा तुम्हरा चौवारि । ५३१
मटकि मटकि गारि । ४२७
मतवारो मोहन । ७८०
मदनगुपाल की बँसुरी । ११
मदनगुपाल की बरिन । ५५८
मद-विघूर्नित लोचन । ६०२
मदमाती फागुन । ३२२
मन उरझे सुरझत । २२१
मन की बात नहीं जानै गो । ८१३
मन न रहे मेरो ब्रज । ७१६
मन ! बन तें बाहिर । ८८३
मन भायो त्यौहार । २८३
मन मेरो कोउ लेतु । ५६४
मन मेरो न छोड़ । ५५
मनमोहन की बँसुरिया । ७५

मनमोहन बिन मोहन । ७५७
मनमोहन छैल । १००५
मन लाग्यौ री बंसी । ६६२
महाराज अजराज । ४४६
माँगि मन मजवासिन । ६४७
माखौं कब पुकार लागौंगे । ५० ०
मान तौ मासों करिये । ४१८
मारो गरजि गरजि । ६०१
मिहबोतन डोलत । ७०५
मितवा र तुमो सन । १७१
मिलि चलहु सब यूँ । ६२६
मिहँदी रचनो ६ गि । १२६
मुख मुरली के । ६९६
मुदिन मन नाचत री । ४१४
मुरलिया केलिब कुंज । ७३४
मुरलिया किहारी प्यारी । ७
मुरलिया मैं त्यौहार । ७६२
मुरलियावारे सांवरे । ७११
मुरली कुंजनि । ६७१
मुरली के बोलन । ८६८
मुरली कौन रंग सों । ९६४
मुरली गुपाल को । ६५५
मुरली देर सुनाय रूपा । ८२१
मुरली धुनि सुनत । ७७८
मुरली बन मैं बाजै है । ५२७
मुरली मेरी गुन । २०१
मुरली मैं कौन । ८६२
मुरली मैं मोहन । २०८
मुरलीवारे ने । ३६२
मुसुकावनि री मैं । २०४
मृदु तरवानि मैं । ८६८
मेरी अँखियनि के । ४४८
मेरी अँखियनि वानि । ६८०
मेरी अँखियनि ललचौंहे । ५०६
मेरी अँखिया सुख । ६०८
मेरी प्यारी री । १४
मेरी कहा सकति जी । ७४३
मेरी तुमसों ... गानि । ४१
मेरो चातो मैं बन । १६३
मेरो रसना लाड़िली । २५०
मेरी राधा को सौंहो । २०६
मेरे कौन काम । ८११
मेरे छल गुपाल के । ७१६
मेरे भाग जागे । ५६७
मेरे मन भावनि के । ६०४
मेरे मन में मोहन । ६७
मेरो अब दैया । १०४६
मेरो बसी मुनि जो । १४६
मेरो छाँडू सों न छल । ६३४
मेरो बिन चाहै री । ४२८
मेरो मन मेरे हाथ । ५१
मेरो मन मोहन । ९९३
मेरो मन मोहन सों । १५६
मैं अपनो ग्य गै । ६७
मैंडा दिल नैन । ५४७
मैं तुमसों कैलसो । १२०
मैं न मान्यौं री । ६८५
मैं बारी मैं वारी । २३१
मैं श्याम-उरस पावौं । ८०
मैन-मद-छाकी गुजरिया । १८३
मोकौं सरन रही । ८८८
मोरचंद्रिका मोहि चाहि । १६६
मोरचंद्रिका सीस धरें । ८६४
मोरमुकुट बनमाल । ५१७
मोरो मन बांधिलौ है । ३४८
मोरा मनवा है । १७३
मोरे मितवा तुम बिन । ३६
मोसों छनकौने क्यों । ५७
मोसों होरी खेलन । १०३७
मोहन अब तौ रंगीन । ३२६

मोहन के बदनि । ८६७
मोहन मदन गुपाल । ७६०
मोहन मनमिया बसो है । ६८
मोहन मुरली मैं । ६६६
मोहन मूरति सिसरे । १८४
मोहन मूरति मेरे । ३४५
मोहन राधा के । ४३५
मोहन लाल कौ मल्हाऊँ । ७८४
मोहन सौं नैना । ६४१
मोहि न कोई रे । ७०६
मोहि न कछु है । ६६७
मोहि बिरहा करै । १६५
मोहि भ जाओ । १०४
मोहि मेरे अंतरजामी । ३७६
मोहि गगानु जगाइ । ६१७
मोहि तुम्हरी तुम । ५७५
मोहन नंदजी के महाराज । ७५५
मोहन न्यारी बन में । ६६
यह कौन बिलासना कै । १५५
यही वृंदावन यह जमना । ३०८
यह कहा माँगत है । ६४५
यह तुम कैसे । ४८६
यह रस मन्म जनम । ८०३
या अंत पाइ के । २४०
या गोकुल को गांग । १०२८
या लालिया बैसे । ६४८
या रस कौं जौं मरैं । ७६६
ये लिदेवन । ३४
ये मोके नाके सगुन भए । १८५
रंगनाग अंग नित । ५८२
रंगमहल में प्रति । १५७
रंगमहल मैं बजत । ६८४
रंग-रंगीले सौं प्रज । ०८५
रंग महौ है लिपट । ६०३
रंगीलो जोरी को ब्रज । ७६५
रंगो सांवरिया तोरी । ८४६
रवि-कुल मंडन छाव । ६४३
रस की बतियाँ कहि कहि । २२६
रसमदे नैन सर्वीहैं । ११६
रसना गुपाल के गुन । ६८७
रसमसे नैननि । ३६०
रसमसे लाल निहारे । ४४८
रस राखि होरी खेलो । ५८७
रस रूपौं राधा । १०००
रसिक छैल नद को । ६६३
रसिक नैन नैदलाल बिहारी । २७६
रसिक नै नंदलाल मेरो । ३५५
रसिकनी राधा राधा है । ७६२
रसिक राधारमन । ६०
रसिया को रस लै । २३६
रहौ निरास पाऊँ । १०
रही तू रही रही । ८२८
राग रागनी के नाके । १५०
रात रहारे रौन । २३
राधा की जनम । ६५४
राधा कें हिंसा ला ला । ७१८
राधा-मदनगोपा ल की । ५४
राधा माधौ बिहरें । १८८
राधामोहन को हित । ७७६
राधा-मोहन की बड़ । ५७३
राधा-मोहन को सुख । ६७२
राधामोहन रौन । ६५०
राधामोहन राधा । ५७१
राधामोहन रसबस अ । ८०७
राधामोहन सौं हेत । ७६२
राधा-रंग बिलासी । ६५३
राधारमन की बनि । ४२५
राधा राधा गाऊँ राधा । ७८७
राधा राधा रटौ स्यामैं । ८३५

राधारूप गौर तन कुंजे । ७८६
राधा हरि कर ल । ८२
राधिका-नयन । ८८
राधे कब कैं चावहि । ७०७
राधे नैं वृन्दावन-धाम । ३०३
राधे रमनीमनि । ५८४
राधे राधे राधे राधे । ५६८
राधे लाडु-गहेलरी । ७०२
राम आए ये आए । ५८६
राम अगाधीवन जनम । ६०६
राम श्यामा अभिराम । ६६५
रावलि मैं आति ओप । ४५६
रावलि मैं आनन्द मह्यो है । ३२
रास करि करि सब । २८
रासमंडल बीच । ४१२
रासमंडल में नाचत । १०
रास में रसीली मोहन । ५३५
रास में राधा सब । २६१
रास स्वामी राधा । ६६२
रिधि सुनि सजन । ५५६
रीझि बिबस भए । ६०७
रीझि रीझि सुख । ६०४
रूपवंत रुचिवंत रसीले । ५०१
रूप रुचि कह्यौ । ४०५
रूप-उजारे श्यामसुन्दर । ८१६
रैन-उनींदे मैं न निहारे । ४२५
रैन-उनींदे नैन निरारे । १५
रैन-उनींदे नैन लालन । ५०३
लाई कन्हैया तेरी धीरे । १६०
लागनि को मास । ३८६
लगन लागी है स्याम । ६४८
लगी माँ पलक । ३१३
लगौहैं मनहि । १०३
लखन न आए । ६५०
लखे को सोहली गाऊँ । ६४३
ललित लडाम छिपाएँ । ६८०
लछमन शर्मा री । २५७
लागि रही मन राधा । १०५६
लागी रट राधा । १०४६
लागी है रे निरमोहिया । ८२६
लाड़ली री अब ती । १९०
लाड-गहेली की । ६३६
लाडिली राधा की । ६६०
लाल अनियारे नैनन । १३०
लाल मिलाए ही भए । १००२
लालची नैन हमारे । ८०१
लाल तुम कहाँ तैं । १०३०
लालन-आवन त्यौं ही । ६०५
लोचन लोभी सु फिरि । २७
लाल हिय लोचन भरत । ६६०
लीला की साम । ४२४
लै अनवांरो कब ली । १८१
लै मुरली मुख माधुरी । ११३
लो रंगीं रूपतें । ४०६
लोचन प्यासे हैं । ८६१
ल्याइ री मनाइ की । ५१२
वारिधि वा जीव पै । ७७१
वारी हौं वारि डारी । ४४८
वारौं री वारि डारी । १६८
वारौ भुज हग प । ४१६
वे वो सुख ना नरसाई । ५२६
श्री गोपाल गोकुल । १८५
श्रीचैतन्य दयानिधि धीर । ५२४
श्रीराधा-चरन करि । २६८
संकर गिरिजापति । ३३८
संग लगाऐ ही डोलौ । ६१४
सकल कला-प्रवीन । ६६५
सकल-सुखमा-सदन । ५६६
सकुचनि सौहै । १०८
सगरी रैनि जागे री । २०६

सघन वृन्दावन सुहावौ । ६१२
सदा कृपा दीनबंधु । ६०२
सनमुख आवत सौं । १८०
सब कछु पाइहौं । ८४
सब गोकुल-मीत । ६०६
सब जग कहत काल । २६
सबनैं न्यारो हूँ । १६३
सब निसि मिलसन । ५३८
सब मन सुन । ९२७
सब मिलि आवो । १०५२
सब रंग होरी को । २९६
सब रंग होरी खेलौ । २०६
सब विधु वृन्दावन । ६३४
सब रैनि जागे । ११४
सब सुख सोभा सूल । ७५६
सरद निसि चाँदनी । ६६३
समझो नाहि नेहा । १७७
सरनागत-सुखधाम । ३०८
सरस दरस जमुना को । ८१५
सलोने ब्रज बसाइहैं । ७५४
सलोने साँवरे नागर । ७३१
सलोने साँवरे ही मोहि । ६२५
सलोने मोहन प्यारे । ६७५
सलोने स्याम प्यारे । ७७५
सलोने स्याम सों । १६०
सलोनो स्याम प्यारौ । ७३१
सांवलानंदन । ५६१
साँझी मैं कहूँ । ४३६
साँचे सुर के बिचार । ३८४
साँचे सुरनि गावत । ३६३
साँवरे ब्रजमोहन मोहिं । ६३०
साँवरे संग रंग । १२८
साँवरो होरी खेलै । ८२१
साँवरा छिनजात । १०३
साँवरा सोहना । ६२१
साँवलिया मेरे मन । ६३८
साजन आन न । ६२६
साथ पूरा मेरे । ६५०
साधि कै सुर मुरलिका । ६६६
सारंग पूरी री । ३०६
सारी सुरंग सुहो । ७०१
सालत है मुरली । ४०१
साहनाखों गुरलीवाला । ११२
सिंहासन पै बैठ की । ५४८
सुंदर मनमोहन । ५०१
सुंदर मुख मारुयौ री । ७८३
सुंदर श्री नंदनंदन । ३६१
सुंदराई सुख दे दे । १५०
सुख-सागर स्यामहि । ३४०
सुघर सिखावर धारी । २६८
सुघराई ऐसी फाब । ३०७
सुजान लोरै देखन की । ८५६
सुक सुक पौ गुमानियाँ । ७०२
सुनु नन्द-बंसी री । १०२२
सुदिन कहि जानि । ५६१
सुधि आएँ रंग भीजि । ७०१
सुंदरी मन कहि नन की । ८१६
सुन ये बेपरवाह । ५४४
सुनत कान्ह बगवासी । ७२
सुनहु सयाने स्याम । ४५८
सुनि री कहि हिए । १००८
सुनो मनमोहन चैन । ८३७
सुभ दिन आजु को । ३२५
सुमन हिंडोलना झुलावि । ५१७
सुमिरन करि रे मन । ८५६
सुमिरन स्याम कौ । ५२०
सुमिरि मन हरिपद । ८०
सुरति सबेरी लेहु । ५५३
सुरति सुखमा री । ७१३
सुरति लागी रहे । ३८०

सुहागिनि आवागानी । ६५
सुंदरता धाम । ३२६
साँवरे के उर धारी हैं री । १०३३
साँवरे नगर में । १०३६
साहि नौ अपमान । ६४६
स्याम घन नागरी सों । ३२८
स्याम नयनगा प्यारे । ६३८
स्याम नैनों रों चोर । १०४१
स्याम प्यारे हमसों । ५८३
स्याम मनोहर जमना । ४४२
स्याम सलोने सों आई । ४४१
स्याम सलोने सों बन । ८८६
स्यामसुंदर की सार । ४४१
स्यामसुंदर की जनम । ६५४
स्यामसुंदर ब्रजमंडल । १०४८
स्यामसुंदर ब्रजराज । ३५८
स्याम सुजान के बिन । १०३१
स्याम सौं रंगीली राधा । ७६३
हाँसि हाँसि आ । ६६८
हमकों निहारि है । ३३६
हमसों तब कहि कहि । ३८८
हमसों परोसा को । २४६
हमारी हूलनी शिनतां । २४४
हमारे सुरति कब धौं । ३०
हमारी सुरति करों । ८५
हमें न बिसारि डारौ । ११०
हाया मोर हूढ़ौनी । ६३०
हरिकथा रस के । ८०३
हरिचरनन की रज । ७३
हरि चरननि सौं । ५४६
हरिचरित-सुरसरित । २३६
हरिनाम लै रे लै । ६३
हरिपद नमित भगत । ७६०
हरि भगति लै मन । ३६
हरि-मुख देखन कौं । ६७७
हरि-गोरी सम्हारि । २४६
हरि-राधा के रस । ८०६
हरि राधा रहनरहनि । ४१५
हरि सब काम सुधारे । १६१
हरि सरन तकनहीं । ८१७
हरि होरी खेलत । ४६४
हरि मेरे हिय तें । ३५४
हौं हौं रे मारे मोल । १०१६
हाय हाय बिन बाँसि चले । ५३
हा कृष्ण हा कृष्ण हा कृष्ण । ६४८
हिंडोरे झूलन को । ३८२
हिम रितु रूपाल । ४०
हिय लै न मानि कौन । १६८
हितकर सुख-सार करे । ५४१
हिलगनि मन की । २५८
हिलि मिलि खेलैं गोप । १०५४
हेली मन हरि लीनों । ८८६
हेली बांकि कौन । ४०३
हेली सांवरे सलोने । ४४०
हेली होरी खेलें । ६०६
हेली हौं कैसें के । ४५०
हो प्रभु भावित हम । ५१५
हो छबीले मोहन सौं । १००३
हो जो सांवरे के तो । ८५१
हा हा हा । ७५३
हा नककारों कीनों बन । १०२६
होरी के खिलवार । ६८४
होरी के खिलवार भए । ६८८
होरी के खेल नांदी पै । ८६०
होरी के दिन चालि के । ६६६
होरी के दिनन में । १०४८
होरी के मदमाते । १०४१
होरी को सीन हम । १०३०
होरी खेलन रंगनि । ६८२
होरी खेलि आए मोहन । ८८२

होरी खेलि खेलि मन । ५६४
होरी खेलत मदन । ६८६
होरी खेलें, ... । २७६
होरी खेलिये सँभारि । १०१३
होरी खेलि उमग्यौ है । २७५
होरी खेलें रस भीजे । ६७५
होरी खेले छैल । ८८४
होरी खेलै राधा गोरी । ३४५
होरी खेलौंगी स्याम-संग । १०४०
होरी धूमधाम मचदी । ७८८
होरी रे होरी रे कान्हा । ७४५
होरी होरी बोल । ५७६
होरी खेलन दै री । ६६७
हौ सुंदर सनेही । ३५२
हौ हरि हमसों बतियाँ । १०६
होरी खेलै ... । ३४६
हो हो हो कहि फागिन । १०४५
हो हो होरी हो हो । ५३६
हो हो हो होरी बोलौं । ७०५
हौं तनको रंग ले गरे । ३४८
हौं कहा करौं हो । ३४४
हौं कहा करों री । ७४६
हौं कहा आयौ हम । ५८१
हौं कहा तुम सांचे । ३०
हौं तुम सौं रूठ । ६०६
हौं ता रावरि हौ । ४४४
हौं न जानौं हा हरि । ४८३
हौं बलिहारी राधा । ६५२

———

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ।पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१।२२	भुनि	भूने
७।२४	लाक्ष	सक्ष
७।२७	गुया	गुन=गुण
८।६	थंग अंग	थँग थंग
१५।१६	श्रींगिड़ न	श्रींगिन
१५।२५	मां	भाँ
२१।२३	अतिष्ठा	प्रतिष्ठा
२४।२७	मैणा	मेला
३२।१८	मद्र०	भद्रा०
३६।१८	कलापन	भलापन
५३।२५	चौरस	चौसर
७०।१६	लिलने	मिलने
६७।१९	सुत्समय	सुसमय
६५।२१	बर्दे	निरदई
६६।२५	कर	साँवकर
१२२।२४	घनआनँद	घनआनंद
,,	आनँद	आनंद
१२७।२६	येथांसे तौर	अपनां और
१२८।२८	मम	हम
१४४।२५	उरवी	उरवी०-उरवी।
,,	नव	नभ-नव।
२०१।२४	पानी	जननी
२०७।२२	घरै	घर
२१३।२९	तैन	तेह
२२३।२६	शालाओं	शालाओ
२३२।२७	लहुला	अहिप
,,	लेहाया	लहूरो
२४८।२८	चाप	चाँप
२७४।२७	पारिकर	परिकर
,,	विकट	निकट
२८८।२२	कविता	वृंदा०
३५५।२७	मोर	मुरली
३८४।२४	पास	पास या बिना।
३६०।२७	भास	भास या आवेग
३६८।२७	नृप	यक्ष
४१६।२७	अंकमां	अँकसों
५८१।३०	पैंजनों	पैजनों
६०८।२५	निवारिये	निवारिये,
,,	चंद	चंद्र
६०९।२६	मंहित	मंडित

सूचना—मात्राओं के टूटने से होनेवाली अशुद्धियों का उल्लेख नहीं है।

सुजानहित- पद २१७
पद ४५४

प्रसाद-परिषद्

संवत् १९९५ में वर्तमान हिंदी-साहित्य के महाकवि स्वर्गीय श्री जयशंकर 'प्रसाद' की पुण्यस्मृति में इसकी स्थापना हुई है। साहित्यिकों के पारस्परिक परिचय, सहयोग, सौहार्द, विचार-विनिमय और मनोरंजन के साथ-साथ हिंदी भाषा तथा साहित्य का उन्नयन इसका उद्देश्य है। इसका मुख्य कार्य भाषा की गतिविधि का निरीक्षण, नियंत्रण तथा संचालन और हिंदी के प्राचीन तथा नवीन साहित्य का प्रकाशन और संवर्धन है। परिषद् की हिंदी-जगत् को प्रथम भेंट थी 'घनआनंद और आनंदघन', द्वितीय भेंट 'भारतीय साहित्य-शास्त्र' (द्वितीय खंड) तथा तृतीय भेंट 'भारतीय साहित्य-शास्त्र' (प्रथम खंड)। प्रस्तुत ग्रंथ परिषद् की प्रथम भेंट का द्वितीय परिवर्धित संस्करण है जिसमें नूतन अनुसंधान और परिष्कार है।

परिषद् के प्रथम सभापति थे स्वर्गीय आचार्य रामचंद्र शुक्ल, द्वितीय माननीय श्री संपूर्णानंद, तृतीय श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र, चतुर्थ श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़ 'बेढब' और वर्तमान सभापति हैं श्री करुणापति त्रिपाठी, प्राध्यापक हिंदी विभाग, काशी विश्वविद्यालय। इन महानुभावों के परामर्श और सहयोग से परिषद् उन्नति के पथ पर बढ़ रही है। परिषद् के सदस्य भी हिंदी के प्रतिष्ठित और भविष्णु कवि, आलोचक, लेखक और संपादक हैं। ऐसे सहयोग और शक्ति से संवलित होकर परिषद् हिंदी-संसार की सेवा में निरत है।